MARYADA

1971

K. V.
LIB.

111173

111173

मर्यादा

सचित्र मासिक पत्रिका

रि-0914

111173

सातवां
सातवां भाग, ~~छठाँ~~ खण्ड।

● ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः ●
卐 पुस्तक सं०................ 卐
आगत सं०................
तिथि०................
गुरुकुल ग्रन्थालय काँगड़ी.

अगहन—बैशाख।

(नवम्बर—अप्रेल)

१९७१

वार्षिक मूल्य तीन रुपया।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग।

वर्णानुक्रमिक विषय-सूची ।

विषय पृष्ठ से पृष्ठ तक
१-अकाल की विकरालता ३३१-३३३
२-अकाल और प्रजा ३४१-३४३
३-अकाल से बचने के उपाय-"माननीय ला० सुखबीर सिंह जी" ३४३-३४६
४-अकाल अथवा अद्भुत अनिमंत्रित अतिथि-श्रीयुत माधवाचार्य ३६१-३७१
५-अमर जीवन (कविता) साहित्याचार्य पं० महेश्वरप्रसाद मिश्र ३-४
६-अफ्रीका में भारतवासी-स्वामी मंगलानन्दपुरी १००-१०६
७-अछूत जातियों की दशा-श्रीमती उमा नेहरू २६४-२६७
८-अभ्यर्थना (कविता) कविकुमार महेश्वरप्रसाद मिश्र साहित्याचार्य ३०३-३०४
९-आकाशवाणी (कविता) पं० मन्नन द्विवेदी गजपुरी बी० ए० १९-
१०-आयरलैंड का स्वराज्य-श्रीयुत सुपार्श्वदास गुप्त एम० ए० २९०-२९७
११-आयरलैंड का स्वराज्य-श्रीयुत सुपार्श्वदास गुप्त एम० ए० ३५५-३८१
१२-इङ्गलिस्तान की औरतें-श्रीमती मनमोहिनी चटर्जी २५३-२५९
१३-इन्दुमती-श्रीमती शारदाकुमारी २३७-२४१
१४-कीर्तिस्तवन (कविता)-श्रीयुत पं० बदरीनाथ भट्ट २९८-
१५-केम्ब्रिज विश्वविद्यालय-श्रीयुत लक्ष्मीशङ्कर मिश्र २७३-२८०
१६-क्या लिखूं ? (कविता)-श्रीमती रमा देवी २७१-
१७-गुजराती हिन्दू स्त्रियों की स्थिति और उनकी उन्नति के उपाय २२४-२२५

विषय पृष्ठ से पृष्ठ तक
१८-गुरुदक्षिणा-पं० उदयनारायण बाजपेयी ३२-४१
१९-गैर-सरकारी प्रबन्ध द्वारा अकाल-पीड़ितों की सहायता-मि० एम० एन० जोशी ३४६-३५०
२०-चित्रकूट यात्रा-श्रीयुत पं० पाटेश्वरीप्रसाद त्रिपाठी १७५-१८१
२१-डाक्टर सतीशचन्द्र बैनर्जी-श्रीयुत अमरनाथ झा ५४-५६
२२-दक्षिण अफ्रीका और वहां की शासन प्रथा-श्रीयुत सोमेश्वर दत्त शुक्ल ६८-७०
२३-दक्षिण अफ्रीका की स्थिति-माननीय मि० के० गोखले ७८-८०
२४-दक्षिण अफ्रीका प्रवासी भाइयों पर अत्याचार-"एक सहृदय" ८१-८२
२५-दक्षिण अफ्रीका का दृश्य १०७-११५
२६-दक्षिण अफ्रीका की कहानी ११६-१२३
२७-दक्षिण अफ्रीका में भारत सन्तान-श्रीयुत बाबूराव पराडकर १२३-१३०
२८-दुःखोद्गार (कविता) श्रीयुत नेमधर शर्मा १६८-१६९
२९-दुर्भिक्ष और उससे बचने का उपाय-श्रीयुत पं० रुद्रदत्त भट्ट ३८२-३८५
३०-देवोत्थान एकादशी-पं० मन्नन द्विवेदी गजपुरी बी० ए० ५९-
३१-देहरादून शिमला यात्रा (कवि[illegible]) पण्डित श्रीधर पाठक १४७-१४८
३२-धन्य भाग (कविता)-श्रीमती रमादेवी २६७-
३३-नवीनवर्ष का स्वागत (कविता) श्रीमती तारन देवी जी (लली) २४६-२४७

विषय-सूची।

H.L.
MARYADA
1971
G.K.V.
Lib
HARDWAR

विषय — पृष्ठ से पृष्ठ तक
४-नागरी (कविता)-श्रीयुत शिव-
दास प
५-निरि
मानन्
स्वामी
३६-नेटाल
मि०
७- नेटाल-प्र
जगन्नाथ
८- पचीस
चाहिये
मोहन
३९- परिणा
बसन्त
४०- प्रकृति
श्रीयुत देवसहाय राय, गाजीपुर १८८-
४१-प्राचीन और अर्वाचीन भारत में स्त्रियों की स्थिति और उनके कार्य-श्रीमती कुमुदिनी मित्र बी० ए० २०९-२१७
४२-प्राचीन मिश्र का इतिहास-श्रीयुत अम्बादत्त पंत ३१५-३१७
४३-प्राचीन समय में भारतीय कृषकों की सामाजिक व आर्थिक दशा-श्रीयुत पं० रुद्रदत्त भट्ट ३७२-३७९
४४-प्रार्थना (कविता)-पं० बद्रीनाथ भट्ट ६७-
४५-प्रेम महाविद्यालय-"एक दर्शक" ४९-५४
४६-प्रेम की अन्तिम श्रेष्ठता (कविता) एक प्रेमयोगिनी २१७-२१८
४७-प्रेस-ऐक्ट १८२-१८५
४८-फारस की फांसी-"एक सहृदय" १९-२९
४९-बम्बई प्रान्त की स्त्रियों का औद्योगिक उद्योग-श्रीमती काशीबाई कानिटकर २२५-२२६
५०-बलि-प्रदान (कविता)-पं० माधव शुक्ल २८९-
व्य- २२६-२३०
३३८-३४१
२६८-२७३
लाल ५-१३
थ- ३१०-३१५
ी
-भारत
चिट्ठी-फ्रान्स-प्र १४-१८
५७-भारतीय राष्ट्र-निर्माण-श्रीयुत रामशरण उपाध्याय १६९-१७३
५८-भारतीय स्त्रियों का उत्थान कैसे हो सकता है-मिसेज़ एनी बीसेन्ट १९३-१९५
५९-भारतवर्ष की आधुनिक सुशिक्षिता स्त्रियां-श्रीमती शारदा मेहता २०१-२०८
६०-भारत का अभ्युदय-श्रीयुत पं० व्रजमोहन लाल गुप्त ३२१-३२३
६१-भारतीय अकाल पर एक एमेरिकन की राय ३३३-३३९
६२-मदरासी बहनें-श्रीमती हंडरू २१८-२२२
६३-महाराज दशरथ-साहित्योपाध्याय ० बद्रीनाथ जी वैद्य २८०-२९०
६४-महाकवि भास-श्रीयुत पं० बाबूलाल मायाशङ्कर दूबे ३१७-३२१
६५-मनुष्यमात्र में बड़ा बल है-ए ग्रामीण १३३-१४३
६६-महाराज शिवाजी-श्रीयुत हरिभाऊ उपाध्याय १८३-

३-नागरी
हास
-लि
मानन
स्वामी ७१-७४
६-नेटाल में ३ पाउंड का टेक्स-मि० जी० ए० नटेसन ७४-७७
७-नेटाल-प्रवासी (कविता)-श्रीयुत जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी ८३-
८-पचीस सैकड़ा लगान कम होनी चाहिये-माननीय पं० मदन-मोहन मालवीय ३३७-
३९-परिणाम-पञ्चक (कविता)-पं० बसन्तराम व्यास ७१-
४०-प्रकृति का उपदेश (कविता)-श्रीयुत देवसहाय राय, गाजीपुर १६२-१६३
४१-प्राचीन और अर्वाचीन भारत में स्त्रियों की स्थिति और उनके कार्य-श्रीमती कुमुदिनी मित्र बी० ए० २०९-२१७
४२-प्राचीन मिश्र का इतिहास-श्रीयुत अम्बादत्त पंत ३१५-३१७
४३-प्राचीन समय में भारतीय कृषकों की सामाजिक व आर्थिक दशा-श्रीयुत पं० रुद्रदत्त भट्ट ३७२-३७६
४४-प्रार्थना (कविता)-पं० बदरीनाथ भट्ट ६७-
४५-प्रेम महाविद्यालय-"एक दर्शक" ४९-५४
४६-प्रेम की अन्तिम श्रेष्ठता (कविता) एक प्रेमयोगिनी २१७-२१८
४७-प्रेस-ऐक्ट १८२-१८५
४८-फारस को फांसी-"एक सहृदय" १९-२९
४९-बम्बई प्रान्त की स्त्रियों का औस-तिक उद्योग-श्रीमती काशीबाई कानिटकर २२२-२२६

से पृष्ठ तक
३८६-
५-
श्रीमती आनन्दीबाई सिर्के २२६-२३०
R २-बिना सिंचाई के खेती-श्रीयुत मुख्त्यार सिंह जी वकील सम्पादक 'विज्ञान कल्पतरु' ३३८-३४१
५३-बोलपुर ब्रह्मविद्यालय-श्रीयुत रामनारायण मिश्र २६८-२७३
५४-बृटिश साम्राज्य का आर्थिक अभ्युदय-श्रीयुत ब्रजमोहन लाल गुप्त और कृष्णचन्द्र गुप्त ५-१३
५५-भगवान बुद्धदेव का प्रादुर्भाव-श्रीयुत कृष्णबलदेव वर्मा ३१०-३१५
५६-भारतवासियों के नाम खुली चिट्ठी-फ्रान्स-प्रवासी १४-१८
५७-भारतीय राष्ट्र-निर्माण-श्रीयुत रामशरण उपाध्याय १६९-१७३
५८-भारतीय स्त्रियों का उत्थान कैसे हो सकता है-मिसेज़ एनी बीसेन्ट १९३-१९५
५९-भारतवर्ष की आधुनिक सुशिक्षिता स्त्रियां-श्रीमती शारदा मेहता २०१-२०८
६०-भारत का अभ्युदय-श्रीयुत पं० ब्रजमोहन लाल गुप्त ३२१-३२३
६१-भारतीय अकाल पर एक अमेरिकन की राय ३३३-३३६
६२-मदरासी बहनें-श्रीमती हंडरू २१८-२२२
६३-महाराज दशरथ-साहित्योपाध्याय पं० बदरीनाथ जी वैद्य २८०-२९०
६४-महाकवि भास-श्रीयुत पं० बाबू लाल मायाशङ्कर दूबे ३१७-३२१
६५-मनुष्यमात्र में बड़ा बल है-एक ग्रामीण १३३-१४३
६६-महाराज शिवाजी-श्रीयुत हरि-भाऊ उपाध्याय १८३

विषय	पृष्ठ से पृष्ठ तक
६७-मिलन (गल्प)	८९-१००
६८-मैथिली और हिन्दी-श्रीयुत जीवननाथ राय काव्य व्याकरण-तीर्थ	३०४-३०९
६९-युक्तप्रदेश की स्त्रियों की उन्नति के मार्ग में सामाजिक बाधाएँ-श्रीमती हेमन्तकुमारी देवी	१९६-२०१
७०-युक्तप्रान्त में स्त्रियों की दशा-श्रीमती सावित्री देवी मालवीय	२५०-२५२
७१-यूरोप व भारत-श्रीयुत हेमचन्द्र जोशी	३२३-३२६
७२-लाल-श्रीमती राजदेवी कुंअरि	२२५-२२६
७३-वर्ण विचार-श्रीयुत पं० श्याम-विहारी मिश्र तथा शुकदेव विहारी मिश्र	१४८-१५८
७४-वनिता-विश्राम-एक महाराष्ट्र महिला	२३२-२३७
७५-विजयादशमी-श्रीमती सरला देवी	४६-४७
७६-व्यास-श्रीयुत पं० बालकृष्ण भट्ट	५६-५९
७७-शिवराज स्तोत्र (कविता)-श्रीयुत रामचरित उपाध्याय	८८-८९
७८-शिक्षा-संस्कार-श्रीयुत नाथूराम प्रेमी	८३-८८
७९-शिक्षा की व्यावहारिक आवश्यकता-मिसेज़ रामाबाई रानाडे	२६८-[illegible]
८०-श्रीयुत शारदा चरण मित्र एम० ए० बी० एल०-परलोकगत श्रीयुत रामेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी	१८३-[illegible]
८१-श्रीमती रामेश्वरी देवी नेहरू	२४८-२५०
८२-सभ्य ठग-श्रीयुत रुद्रदत्त भट्ट	१६३-१६८
८३-सद्गृ[illegible]ार-जैन महिला	२२७-२४८
८४-सच्चा मित्र (कविता)-श्रीयुत केशवप्रसाद मिश्र काव्यतीर्थ	३०४-३१०
८५-सम्पादकीय टिप्पणियां	६२-६६
८६-सन्देसा (कविता) "एक भारत-वासी	१०६-
८७-सम्पादकीय टिप्पणियां	१३१-१३२
८८-सम्पादकीय टिप्पणियां	१८४-
८९-सम्पादकीय टिप्पणियां	३२४-
९०-सम्पादकीय टिप्पणियां	३८७-
९१-साहित्य समालोचन	१८७-
९२-साहित्य समालोचन	३२८-
९३-संगृहीत-श्रीयुत हरिकृष्ण अग्र-वाल	३२९-
९४-हमारा नूतन वर्ष	०
९५-हमारा हिन्दी के प्रति कर्तव्य-"अनन्त"	२६०
९६-हमारा पुस्तकालय-"केशव" व "व्यास"	६०-६
९७-हमारा अस्तित्व-श्रीयुत व्रज-मोहनलाल वर्मा	१५४-१६
९८-हमारा पुस्तकालय	१८५-१८
९९-हमारी सरकार और खेती का लगान-श्रीयुत के० डी० मालवीय	३७८-३८५
१००-हतभाग्य (कविता)-श्रीमती राजदेवी कुंअरि	२५४-२६०
१०१-हिन्दू स्त्रियों की जीवन दशा-श्रीमती यमुनाबाई	२३०-२३
१०२-हिन्दू विधवा-श्रीमती रामेश्वरी नेहरू	२४१-२४६
१०३-हिन्दुओं की सामाजिक अवस्था-श्रीमती कुन्ती देवी	२६०-२६४

मर्यादा

डाक्टर सतीशचन्द्र बनर्जी।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग।

111173

पुस्तकालय
गुरुकुल कां

मर्यादा ।

सचित्र मासिक पत्रिका ।

भाग ७] नवम्बर सन् १९१३–मार्गशीर्ष । [संख्या १

हमारा नूतन वर्ष ।

इसे अविनाशी के असीम कृपा ही का फल समझना चाहिये कि आज मर्यादा सकुशल अपने तीन वर्ष के जीवन को समाप्त कर चतुर्थ वर्ष में पदार्पण कर रही है । बाल्यावस्था में जिन जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है उनका मर्यादा ने धैर्य से सामना किया, बड़े बड़े ज्वार और अन्धड़ मित्रों और अमित्रों द्वारा सामने आये किन्तु ईश्वर की कृपा और अपने ग्राहक और अनुग्राहकों की सहायता से मर्यादा विचलित नहीं हुई और बराबर अपने निर्दिष्ट पथ पर बढ़ती ही चली गई ।

यह सब है किन्तु मर्यादा आज भी अभी बाल्यावस्था ही में है, इसमें त्रुटियां अनेक हैं। कुछ ऐसी हैं जो तनिक सावधानी करने से दूर हो सकती हैं और कुछ ऐसी जिनके दूर करने में समय लगेगा । परन्तु यह मर्यादा के बड़े सौभाग्य की बात है कि त्रुटियों के होते हुए भी इसे उदार हिन्दी के प्रेमी और गुणग्राही सज्जन आश्रय देते और अपनाते हैं । ऐसी अवस्था में हम अपने उदार ग्राहकों को धन्यवाद देना अपना कर्त्तव्य समझते हैं और आशा करते हैं कि वे अपनी कृपा कटाक्ष को "मर्यादा" पर से न फेरेंगे और इसकी निरन्तर वृद्धि करने को हमें सदा प्रोत्साहित करते रहेंगे ।

अपने आदरास्पद लेखकों के प्रति, जिन्होंने अपने अमूल्य समय का व्यय कर मर्यादा के प्रकाशन में हमें सहायता दी है, शब्दों द्वारा कृतज्ञता प्रगट करने में हम अशक्त हैं । सच तो यह है कि मर्यादा को अपने लेखक समूह का सदअभिमान है । मर्यादा ने जो कुछ उन्नति की है, उसकी जो कुछ कीर्त्ति है, वह

सब उदार लेखकों के ही कृपा कटाक्ष का फल है। इसके कहने में हमें तनिक भी संकोच नहीं है कि अपने उदारचेता लेखकों की सहायता के बिना हमें मर्यादा प्रकाशन में तनिक भी सफलता का होना केवल दुष्कर ही नहीं वरन असम्भव भी था। ऐसी अवस्था में वे स्वयम् सोच सकते हैं कि हम उनकी कृतज्ञता का भार क्यों कर शब्दों द्वारा उतार सकते हैं।

हमारे कई सहयोगियों ने हमें समय समय पर उचित परामर्श दिया है, किन्हीं किन्हीं ने भ्रमवश और और किन्हीं कारणों से कटूक्ति भी सुनाई है, हम सबों को हृदय से धन्यवाद देते हैं और आशा करते हैं कि वे सदा निर्दिष्ट मार्ग पर अग्रसर होने में हमारी सहायता करेंगे।

उच्चकोटि की साहित्य-शिक्षा के साथ ही साथ राजनैतिक विषयों की शिक्षा देने के हेतु "मर्यादा" का जन्म हुआ था। यह कार्य सरल नहीं है। पहले तो अधिकांश लोग जो इस शिक्षा को देने के योग्य हैं वे हिन्दी में कुछ लिखना अपना अपमान समझते हैं, दूसरे जो लिखना चाहते भी हैं उन्हें समय के अभाव का बहुत बड़ा बहाना है। ऐसी अवस्था में भी हम यह कह सकते हैं कि समय समय पर राजनीति के तत्वों से पूर्ण लेख और सामयिक टिप्पणियां निकालने में हमने यथासाध्य त्रुटि नहीं की है। हिन्दी के प्रायः सभी प्रतिष्ठित विद्वानों, श्रेष्ठ कवियों और नीति निपुण देशभक्तों के गद्य और पद्य लेखों का मर्यादा में समावेश होता रहा है। इतना उद्योग करने पर भी हम अपने कार्य में कहां तक सफल हुए हैं, अपने उदार पाठकों की सेवा हम कहां तक कर सकें हैं इसका विचार विज्ञ पाठकों के ही आधीन है। हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि मर्यादा ने हिन्दी के प्रेमियों के हृदय में स्थान पा लिया है और हम सदा इसी प्रयत्न में लगे रहेंगे कि यह उनके आदर और प्रेम की वस्तु हो जाय।

श्रेष्ठ पुरुषों के किसी विषय पर विचारों को पाठकों के सामने उपस्थित करने का एक नया क्रम कुछ दिनों से मर्यादा में निकाला गया है। यह हिन्दी संसार में नई बात है किन्तु यह सन्तोष की बात है कि विद्वानों ने इसे पसन्द किया है। जैसा उचित है यदि यह उसी क्रम से चल निकले तो इससे बहुत लाभ हो सकता है किन्तु भेंट करनेवालों में कुछ विशेष गुणों की आवश्यकता है और यह कार्य भी सरल नहीं है। आशा है मित्रों की सहायता से हम इस स्तम्भ को लाभदायक बना सकेंगे। प्रत्येक अङ्कों में इसका समावेश होना कठिन बात है किन्तु यथा सम्भव इसके रखने की चेष्टा की जायगी। हम अपनी राम कहानी से पाठकों का बहुत सा समय ले चुके हैं, इसलिए अब हम दो ही एक विनीत विज्ञप्ति के साथ इस लेख को समाप्त करेंगे। हमें खेद के साथ कहना पड़ता है कि हमारे कुछ सनातन धर्मी और आर्य समाजी पाठक मर्यादा से नाराज़ हो गये हैं। कारण यह है कि इसमें परम देशभक्त ला० लाजपत राय के समाज की अवस्था पर लेख और अन्य नियोग सम्बन्धी कुछ लेख प्रकाशित हुए। हम अपने भाइयों को सविनय यह बतला देना आवश्यक समझते हैं कि मर्यादा न सनातनधर्मी है और न आर्यसमाजी। यदि सनातन धर्मियों में दोष हैं तो यह उन्हें प्रगट करेगी और दूर करने की चेष्टा करेगी यदि आर्यसमाज में दोष हैं तो यह उतनी ही प्रबल रीति से उनका भी विरोध करेगी। मर्यादा का उद्देश्य, मनुष्यों में स्वतन्त्रता, समता और भ्रातृभाव की स्थापना और अत्याचारों का दृढ़तापूर्वक विरोध करना है, अत्याचार चाहे ब्राह्मणों के हों, चाहे आर्यसमाज के और चाहे बृटिश गवर्नमेंट के, उनमें भेदभाव की दृष्टि नहीं रखी जायगी। हां, इतना अवश्य है कि हम किसी सम्प्रदाय को, साम्प्रदायिक दृष्टि से कुछ न कहेंगे और मत मतान्तर या धार्मिक झगड़े के लेखों को मर्यादा

में स्थान भी न देंगे । हम आशा करते हैं कि हमारे मानी सनातनधर्मी और आर्यसमाजी भाई इस कारण से मर्यादा पर से अपना प्रेम न हटावेंगे ।.हमने पिछले वर्ष में ही यह प्रकाशित किया था कि हम "भारतवासियों को ईश्वर प्रदत्त मनुष्योचित अधिकार प्राप्त करने में सहायता देने के लिए सदा कटिबद्ध रहेंगे" हम यथासम्भव उसी नीति का अवलम्बन करते हैं ।

इन्हीं उद्देश्यों को शिरोधार्य कर, इन्हीं की पूर्ति करने की आशा को मन में धारण कर ईश्वर की बन्दना करती हुई मर्यादा अपने चतुर्थ वर्ष में पदार्पण करती है और आशा करती है कि परमपिता की दया से और अपने ग्राहकों की सहायता से वह अपने प्रयत्न में सफलता प्राप्त करेगी ।

शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

अमर-जीवन ।

[लेखक—साहित्याचार्य पण्डित महेश्वरप्रसाद मिश्र ।]

पूर्वजन्म कृत सुकृत सहस्रों,
होते हैं जब एकी तीर ।
पाता है तब मनुज मनोहर,
मानव का यह रुचिर शरीर ॥
जीवन-रत्न निराला मित्रो !
इसमें भरी प्रभा भारी ।
कोई ऐसा बिभव नहीं है,
जिसका हुआ न अधिकारी ॥१॥

जीवन विद्या के संगम से,
पूर्णतया खिल जाता है ।
हृदयावरण तुरत हटता है,
स्वच्छ मार्ग मिल जाता है ॥
जिसने जग में आकरके है,
सच्चा मार्ग नहीं पाया ।
उसका जीवन वृथा हुआ है,
निष्फल है नर की काया ॥ २ ॥

जीवन का जंजाल जटिल है,
क्लेश घोर है बारम्बार ।
इससे उसके तत्व सुधारो,
कर करके परका उपकार ॥
सौख्य सहित हम जग में जीवैं,
इसही की मत आश करा ।
दुःख सौख्य की कथा विसारो,
आलस का अभ्यास हरो ॥ ३ ॥

सभी विचारैं अपने मनमें,
क्या कर्त्तव्य हमारा है ।
जन्म हुआ क्या भोग हेतु है ?
सुख का क्या निपटारा है ? ॥
ज्ञान विपर्यय सुख दुख में है,
नहीं बास्तविक तत्व-विचार ।
सुख जीवन का मूल तत्व है,
करना मातृभूमि उद्धार ॥ ४ ॥

लेले जन्म सहस्रों मरते,
नाम नहीं उनका रहता ।
सोता सुयश-शृंग से चलकर
बनकर नदी नहीं बनता ॥
पञ्चतत्व में उसकी सत्ता,
मिलकर हीन विलीन हुई ।
कर्म-विवश करनी करने से,
फिर भी जीवाधीन हुई ॥ ५ ॥

जीवन जिसका अमर बना है,
वही अमरता पाता है ।
देह विनश्वर-मर मर जाता,
नाम शेष रह जाता है ॥
जो आदर्श पुरुष मिलते हैं,
आज यशस्वी सभ्य महान ।
उनका चरित बताता हमको;
कैसा उत्तम साधन ज्ञान ॥ ६ ॥

पूर्वज अमित अमर अब तक हैं,
जिनके होते हैं गुणगान।
उनका जीवन रत्न चमकता,
जग में होता है सम्मान॥
जब तक सूर्यचन्द्र हैं जग में,
तब तक सबको उनका ध्यान।
कवियों के मनमें बिकसा है,
कीर्ति कला का कुसुमोद्यान॥ ७॥

केवल स्वार्थ साधना करना,
जीवन का उद्देश्य नहीं।
हित करना है प्राणिमात्र का,
कोई है विद्वेष्य नहीं॥
सब का मान यथोचित करके,
सब मिल बनो सगे भ्राता।
प्रेम तन्त्र में जोड़ो मन को,
बन जावो अपने त्राता॥ ८॥

जब तक भेद दर्प मन में है,
तब तक प्रम नहीं आता।
पावन प्रेम-विधान विना क्या ?
वैमनस्य है भी जाता॥
प्रेम एकता बन्धन से ही,
दिव्य दृष्टि आ जाती है।
उग्रशक्ति उद्देश्य हेतु की,
प्रखर प्रबलता पाती है॥ ९॥

जीवन अमर किया जो चाहा,
करलो मित्रो! ऐसे काम।
जिससे नाम रहै जगती में,
निश्चित सा होवे सुरधाम॥
वारवार नर तन मिलने की,
आशा, निष्फल होवेगी।
करो उपेक्षा मत जीवन में,
नहीं बात सब खोवेगी॥१०॥

जीवन योग यथार्थ विचारो,
सोचो क्या क्या करना है।
लोक लाभहित जन्म भूमि का,
अन्धकार सब हरना है॥
जिधर बुद्धि जाती है उधरी,
मार्ग कण्टकित पाती है।
कुण्ठित साधनहीन हुई है,
पद पद पर चकराती है॥११॥

विश्व जनीन कार्य को करके,
जीवन को तुम सफल करो।
करो सुधार भारती वीरो ?
अन्धकार अवशिष्ट हरो॥
जिसे मिला परमार्थ मार्ग है,
चला उधर को जाता है।
वही हमारी जन्मभूमि का,
सच्चा मंगलदाता है॥ १२॥

साहस-विकल अमित वे रहते,
करते हैं उद्योग बड़े।
हित के हेतु सकल जनता के,
सहते भी हैं कष्ट कड़े॥
तो भी धैर्य-वीर बन करके,
निज कर्त्तव्य दिखाते हैं।
जीवन का व्यापार यही है,
शिक्षा सुहित सिखाते हैं॥ १३॥
विश्वजनीन हितों में जिसने,
अपने को बलिदान किया।
उनका देखो सब लोगों ने,
कितना जग में मान किया॥
विज्ञजनों के हृदय पटल पर
अटल चित्र अंकित सारे।
नानारंग दिखाते उनको,
चोखे चारु भाव न्यारे॥ १४॥

बृटिश साम्राज्य का आर्थिक अभ्युदय ।

[लेखक—श्रीयुत व्रजमोहनलाल गुप्त और कृष्णचन्द्र गुप्त ।]

"They value only two things-

wealth and worth."–Montesquiew.

प्रथम नेपोलियन ने जो अङ्गरेज़ों के प्रति उपहासकारक शब्द कहे थेः–'A nation of shop-keepers' अर्थात् बनियों की जाति वह सब को विदित है। क्षत्रियत्व के मद में चूर इस महान् योद्धा ने मनुष्य-सुधार के लिए व्यापार की कुछ क़ीमत नहीं की, किन्तु इसने यह दिखला दिया कि विजय के लिए क्षात्रबल के अतिरिक्त निःस्वार्थता, स्वदेश-भक्ति इत्यादि कितने ही अच्छे अच्छे गुणों की आवश्यकता है। कुछ भी हो इस महान् पुरुष ने इङ्गलैण्ड की प्रजा का जीवनाधार तत्व और उसके गुण दोषों का ठीक ठीक दिग्दर्शन उपर्युक्त चार शब्दों में कराया है। इसका इतिहासकार भी पूर्णरूप से अनुमोदन करते हैं। जिस समय नेपोलियन के मुख से ये शब्द निकले थे उस समय केवल बृटिश व्यापार के सूर्य की किरण मात्र ही फूटी थी और समस्त संसार में उसके प्रकाश होने में तब ५०-७५ वर्ष की देरी थी। इस व्यापारी मण्डली ने इतने समय में अन्य कितने ही व्यापारों को स्वाधीन कर लिया और अपने उदाहरण से बहुत से निकटवर्ती साम्राज्यों को वाणिज्य-प्रिय बनाया। इसका इतिहास अनुकरण प्रवृत्ति और जीवन-संग्राम के महान् नियमों के समस्त उदाहरणों को पूरा करता है। परन्तु यहां संसार के नियमों को प्रगट करने अथवा ऐसी कोई उच्च तत्व ज्ञान की दृष्टि से इस इतिहास को देखने का अवकाश नहीं है, यहाँ केवल पाठकों के ज्ञानार्थ इसके स्वरूप के सगठन में योग देनेवाली मुख्य मुख्य बातों का उल्लेख किया जाता है।

नेपोलियन और वर्त्तमान समय के बीच बृटिश साम्राज्य के व्यापार में जो वृद्धि हुई है, वह इस प्रकार हैः–

नेपोलियन के समय में

*माल का निकास	३८,१२०,१२०	पाउंड्स
" की आमदनी	३०.५७०,६०५	"
जोड़	६८,६९०,७२५	"

वर्त्तमान समय में

माल का निकास	६५७,८९९,३६३	पाउंड्स
" की. आमदनी	८०९,१७८,२०९	"
जोड़	१,४६७,०७७,५७२	".

(लगभग डेढ़ अरब पाउंड्स)

उपर्युक्त अङ्कों से विदित होता है कि बृटिश साम्राज्य का वाणिज्य एक शताब्दी में सातकरोड़ पाउंड्स से बढ़कर १५० करोड़ पाउन्ड्स अर्थात् बीस गुना या इससे भी कुछ अधिक हो गया है। इस साम्राज्य के कच्चे और पक्के माल की पैदावार में तो आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है, क्योंकि न तो मनुष्य के खाद्य पदार्थों† में से कोई भी वस्तु ऐसी है जो यहाँ न तैयार की जाती हो और न बनने में काम आनेवाली कोई भी ऐसी चीज़‡

---

* उस समय इङ्गलैंड के सिवाय अन्य स्थानों को किसी देश के साथ व्यापार करने की स्वतन्त्रता नहीं थी। इस कारण इसको बृटिश साम्राज्य के व्यापार का हिसाब मान लेने में कोई भी बाधा नहीं है। (एन्सा० बृटेनिका)

† ४॥ करोड़ मन गेहूं; ४३ करोड़ पाउन्ड चाय (tea); ५०० करोड़ पाउन्ड खाँड़।

‡ करोड़ों मन कपास और सन।

है जो यहां न पैदा होती हो । खान खोदने के काम में लगे हुए मनुष्यों का एक तिहाई भाग वृटिश साम्राज्य में से है। समस्त पृथ्वी में से निकलनेवाले कोयले* का एक तिहाई भाग और सोने† का दो तिहाई भाग इसी साम्राज्य की भूमि में से निकलता है । इतना ही नहीं किन्तु भविष्य में तो जितनी संवृद्धि इस साम्राज्य में होना बाक़ी है उसकी गणना करना असम्भव है क्योंकि इसके अन्तर्गत बहुत सी पृथ्वी वीरान पड़ी है जिसके ऊपर न तो अभी तक बस्ती ही है और न उसके भूगर्भ की ही जांच की गई है । आर्थिक संवृद्धि के एक, दो नहीं किन्तु समस्त अंग वृटिश साम्राज्य में सम्मिलित हैं—कैनेडा के गेहूं के खेत, आस्ट्रेलिया में पशुओं के लिए तृणशालाएं, दक्षिणी एफ्रिका की सोने और हीरे की खानें, इङ्गलैण्ड के अन्तर्गत कपड़े और लोहे आदि के कारख़ाने तथा भारतवर्ष की व्यापारी मण्डियां—ये सब मिलकर इस साम्राज्य को निःसीम संवृद्धि बन गई हैं इस संवृद्धि के उदय होने और बढ़ने के निम्नलिखित कारण हैं:—

१—इङ्गलैण्ड के आर्थिक अभ्युदय का आरम्भ—भेड़ बकरियों का पालन और ऊन का व्यवसाय‡—इन दोनों कामों से हुआ है ।

इस देश ने पहले पहल व्यापार और कारख़ाने आदि के खोलने में हन्सर्ड लोगों से शिक्षा प्राप्त की । ये लोग इङ्गलैण्ड में जिस समय आये थे उससे पहले, शीतकाल में घास की कमी के कारण भेड़ बकरियों का पालना कठिन था और विशेषकर इनका प्रयोग खाने के काम में होता था । यहां के लोगों को सुअर पालना अधिक सुगम पड़ता था । सूअरियां बच्चे अधिक देती हैं इस कारण शीतकाल में उनकी बची हुई थोड़ी सी संख्या भी गर्मियों में फिर बहुत हो जाती थी । ज्यों ज्यों इङ्गलैण्ड का दूसरे देशों के साथ ऊन का व्यापार बढ़ने लगा त्यों त्यों भेड़ बकरियों के पालन में वृद्धि होने लगी ।

पहले अंगरेज़ स्वतन्त्र रीति से व्यापार न कर सकते थे इस कारण इङ्गलैण्ड के सम्राट् ने सन् १५० में कोलोन शहर के कितने ही जर्मन व्यापारियों को बुलाया । उन्होंने आकर लन्दन शहर में अपनी कोठी स्थापित की । ये सब 'स्टील-यार्ड' के नाम से प्रख्यात हुईं । इन जर्मन व्यापारियों की जमात यहां ३७५ वर्ष तक रही और इस कालान्तर में इन्होंने अपने उदाहरण, सम्बन्ध और ज्ञानादि से इङ्गलैंडवासियों को बहुत सा लाभ पहुंचाया । प्रथम यह व्यापारी कम्पनी ऊन, टीन, चमड़ा, मक्खन आदि वस्तुएं ख़रीदती और बदले में अपना वेल्ज़ियम का बना हुआ कपड़ा देती थीं । इस कम्पनी की ऊन की ख़रीद से भेड़ बकरियों के पालने में बहुत उत्तेजना मिली ।

चौदहवीं शताब्दी में इङ्गलैण्ड के ज़मीन्दारों का ध्यान ऊन की पैदावार की बढ़ती देख उसके बुने जाने की युक्तियों को ढूंढ़ निकालने की ओर आकर्षित हुआ ।

२—स्टीलयार्ड को स्थापित हुए अभी पूरे १०० वर्ष भी न होने पाये थे कि तृतीय एडवर्ड ने कपड़ा बुनने के काम को उन्नति देने के लिए कुलेमिश शहर के जुलाहों को विशेष अधिकार देकर वेल्स में बसाया और उनकी उत्तेजना के लिए हर प्रकार के नियम बनाये ।

इङ्गलैण्ड में ऊन के बुनने आदि का व्यवसाय ज़रा जमने ही पाया था कि १५वीं शताब्दी के आरम्भ में वहां एक ऐसा नियम बनाया गया जिसमें विदेशी व्यापारियों को वाध्य किया

---

* एक वर्ष में तीस करोड़ टन से भी अधिक कोयला ।

† प्रति वर्ष पांच करोड़ पाउन्ड का सोना ।

‡ अब भी इंगलैंड का लार्ड चान्सलर (मुख्य न्यायाधीश) ऊन की गद्दी पर बैठता है ।

कि वे जितनी क़ीमत का माल इस देश में लायें उसके बदले में उतने ही मूल्य की वस्तुएँ भी वहां से ले जाया करें।

इङ्गलैएड से अष्टम हेनरी के समय में १५००० बेल्जियम के कारीगर यह कह कर इङ्गलैएड से निकाल दिये गये कि विदेशियों के अन्न बहुत खा जाने से वह महंगा हो जाता है और इस कारण अकाल की सम्भावना बनी रहती है। यहां की प्रजा का अपने ही देश की बनी हुई वस्तुओं का प्रयोग करने और उनके प्रचार में अन्य योग देनेवाली बातों पर विशेष ध्यान रखने से ऊन के बुनने का काम जड़ पकड़ गया, यहां तक कि रानी एलिज़बेथ के समय में वह बहुत अच्छी दशा को पहुंच गया। इङ्गलैएडवासियों को कपड़ा धोना और रंगना न आने के कारण वे इस काम के लिए बेल्जियम पर अवलम्बित थे। यह देखकर प्रथम जेम्स और प्रथम चार्ल्स ने इस कला में अपनी प्रजा को कुशल करने के लिए बहुत प्रयत्न किया और इस प्रकार इङ्गलैएडवासी इस काम में भी दक्ष हो गये।

प्रथम जेम्स के समय में इङ्गलैएड से कपड़े का निकास वर्त्तमान समय के निकास से कुछ ही कम था। जहाँ देखिये वहां इस माल की भरमार थी। यहां तक कि एशिया, स्वीडन, नार्वे, डेन्मार्क आदि के बाज़ारों में इस देश का माल अधिकतर खपने लगा और इससे बेल्ज़ियम के कपड़े के व्यापार को विकट प्रतिद्वन्दिता का सामना करना पड़ा।

कपड़े के व्यापार के साथ साथ कोयला, मछली इत्यादि कई प्रकार के व्यवसाय चमक उठे। जेम्स ने मछली बेचने के व्यापार को बढ़ाने के लिए लोगों को इसके खाने की उपयोगिता का उपदेश देना आरंभ किया और स्वदेशी जहाज़ों के बनाने के काम में उत्तेजना दी। अब तो इङ्गलैएड 'दरियाई प्रजा' होने लगी, उसके जहाज़ पृथ्वी की बड़ी बड़ी यात्रा करने लगे। थोड़े ही समय उपरान्त एक ऐसा राजकीय नियम बनाया गया, जिसने अन्य साम्राज्यों की प्रजाओं को केवल इङ्गलैएड के साथ व्यापार करने पर बाध्य किया। इस प्रकार इसकी नाविक शक्ति दिनोंदिन बढ़ने लगी। सन् १७०३ में इङ्गलैएड ने पोर्चुगाल के साथ मित्र भाव दिखाकर एक ऐसा बन्दोबस्त कर लिया जिससे सिवाय उसके और अन्य देश डच, जर्मन आदि वहां व्यापार न कर सकें। पोर्चुगाल के व्यापार से अधिक लाभ हुआ। रुपये की बहुतायत देख, यहां के व्यापारियों ने चीन, हिन्दुस्तान और उसके पूर्वीय टापुओं के साथ व्यापार करना आरम्भ किया और इस भांति इङ्गलैएड ने हिन्दुस्तान में साम्राज्य की नींव डाली।

सन् १७२१ में राजकीय कर्मचारियों ने प्रथम जार्ज के मुख से निम्नलिखित शब्द कहलाये। इनको यदि सब देशों की सर्वकालिक आर्थिक उन्नति का रहस्य मात्र कहा जाय तो भी अनुचित न होगाः-

"It is evident that nothing so much contributes to promote the public well-being as the exportation of manufactured goods and the importation of the foreign raw materials"

अर्थात्-यह प्रत्यक्ष है कि इतना अन्य कोई काम जनसाधारण की समृद्धि का कारण नहीं हो सकता जितना कि बने हुए माल का बाहर भेजना और वहां के कच्चे माल को ख़रीद कर अपने देश में लाना।

विदेशी कच्चे माल को ख़रीदने और अपने यहां के बने हुए माल को बाहर भेजने के कार्य को इङ्गलैंड ने ऐसी दृढ़तापूर्वक निभाया कि हिन्दुस्तान के (जो उस समय ब्रिटिश साम्राज्य का एक अंग बनने लगा था) सूती और रेशमी कपड़े पर भारी कर लगा दिया गया, केवल इतना ही नहीं किन्तु ऐसा बन्दोबस्त भी कर दिया गया

जिससे यहां का बना हुआ एक धागा भी वहां न जा सके। इंगलैंडवासियों ने भारतवर्षीय उच्चकोटि की कारीगरी से बने हुए वस्त्रों को यूरोप के अन्य देशों में बेचना आरम्भ किया। एक ओर से तो इन लोगों ने इस व्यापार से लाभ उठाया और दूसरी ओर से मोटे और भद्दे स्वदेशी बने हुए कपड़ों को पहिनकर इन्होंने अपने यहां की कारीगरी को सुधार उसे उस उच्चकोटि पर पहुंचा दिया जिसके सामने समस्त संसार की और विशेषकर हिन्दुस्तान की कारीगरी को अस्त हो जाना पड़ा। मनुष्य को जङ्गली दशा में अप्रतिबन्ध व्यापार से अधिक लाभ होता है। वह जङ्गल की, खेत की और जल की सुगम पैदावार सभ्य प्रजा को देकर उसके बदले में अच्छे अच्छे अस्त्र शस्त्र और वस्त्रादि लेता है। इस रीति से वह शनैः शनैः सुधार की उच्च भूमिका पर चढ़ता जाता है, परन्तु इस नई भूमिका पर पदार्पण करते ही उसको अधिक उन्नति के लिए स्वप्रतिबन्ध व्यापार की आवश्यकता पड़ती है। इङ्गलैण्ड ने उपर्युक्त दोनों प्रकार की स्थितियों में समयानुकूल कार्य किया। आरम्भ में इसने अन्य देशीय कारीगरों और व्यापारियों को बिना किसी प्रकार की रोकटोक के अपने देश में आने दिया, इतना ही नहीं किन्तु उन्हें न्योता देकर बुलाया और कारख़ाने खोलने दिये, परन्तु इसके उपरान्त जब ये स्वयं कार्य करने में दक्ष हो गये उस समय इन लोगों ने उन पर सब प्रकार की कड़ाई कर के उनको बिदा किया। इङ्गलैण्ड इस औद्योगिक संक्रान्ति की भूमिका में ही नहीं रह गया किन्तु वह उससे भी एक उच्चावस्था पर चढ़ा अर्थात् साधक दशा से सिद्ध दशा में पहुंच कर इसने साधकावस्था का प्रतिबन्ध निकाल मुक्तावस्था का अप्रतिबन्ध व्यापार आरम्भ किया।

उपर्युक्त प्रतिबन्ध व्यापार से इङ्गलैण्ड को लाभ के अतिरिक्त आरम्भ में थोड़ी आर्थिक हानि का सामना अवश्य करना पड़ा। इन लोगों ने स्पेन की ऊन न लेकर उसके ऊपर अधिक कर लगा अपने यहां ही के तेज़ ऊन को खपाया। इससे ऊनी कपड़े के व्यापार को कुछ धक्का लगा। इसमें संशय नहीं किन्तु यह नुक़सान सहकर इङ्गलैंड ने जो आर्थिक बल सम्पादन किया वह उसको भविष्यत् में बहुत फलदायी हुआ। यदि उसने देश के व्यापार की उन्नति के लिए हानि सहकर भी ऐसा दृढ़तापूर्वक कार्य न किया होता तो एक जर्मन अर्थ-शास्त्री लिस्ट के कथनानुसार आज इङ्गलैण्ड भेड़, बकरियां ही चराता हुआ दृष्टिगोचर होता और उसकी वर्त्तमान आर्थिक समृद्धि का नामोनिशान भी न होता। विदेशियों के संसर्ग से कला-कौशल में निपुण होने के पश्चात् इंगलैण्ड की समृद्धि में योग देनेवाले उपर्युक्त समयानुसार प्रतिबन्धों को (Protections) हम उसके आर्थिक अभ्युदय का प्रथम कारण मानते हैं।

३—जैसे वर्षा का जल बीज को वृक्ष में परिणत करने में सहायक होता है, ऐसा नहीं कि स्वयम् बीज रूप हो जाय, इसी भांति उपर्युक्त प्रतिबन्धों को ही मुख्य कारण का महत्व देना उचित नहीं क्योंकि वे केवल सहकारी कारण मात्र हैं। बीजरूपी मुख्य कारण तो इङ्गलैण्ड की कला-कौशलमयी शक्ति है। यदि इस शक्ति का बीजारोपण न हुआ होता तो ऊपर कहे हुए सब कृत्रिम उपाय निष्फल होते। ऊनी कपड़े के व्यापार में कमी होते देख इस देश की प्रजा ने तुरन्त ही सूती कपड़े का व्यापार हाथ में ले लिया। आरम्भ में तो यहां के लोग बहुत समय तक यही नहीं जानते थे कि वस्त्र क्या वस्तु है। दो या ढाई हज़ार वर्ष हुए होंगे कि एक हिरोडोट नामक मनुष्य ने अपनी पुस्तक में लिखा था कि हिन्दुस्तान में भेड़ के ऊपर ऊन का पहले पहल ज्ञान करानेवाले मूर लोग थे। इन लोगों ने ही इसे स्पेन पहुंचाया और बहुत समय तक यह इटली, सेक्सनी और नेदरलैंड में आता रहा। इंगलैण्ड ने तो इसे बहुत दिनों पीछे अपनाया। ऊनी कपड़े का

व्यापार कम होने पर इस देश के निवासियों ने १८वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सूती कपड़े के बुनने और उसके छापने का काम शुरू किया। इस व्यवसाय की दिनोंदिन उन्नति होती गई; बुनने और छापने की नई नई युक्तियों और कलाओं का आविर्भाव होने लगा, यहाँ तक कि थोड़े ही दिनों में इङ्गलैण्ड ने अपनी कार्य-कुशलता से हिन्दुस्तान आदि सब देशों को पीछे हटा दिया। यहां के कारख़ानों में से इतना अधिक माल निकलने लगा कि उसे अन्य देशों में खपाने के लिए बदले में विदेशी माल लेने की आवश्यकता हुई; इस कारण उसके ऊपर जो अपने यहां के व्यवसाय के रक्षार्थ प्रतिबन्ध लगाये गये थे उनको तोड़ कर अप्रतिबन्धक व्यापार (Free Trade) आरम्भ करना पड़ा। पक्षी जिस अंडे में पोषण पा रहा था उसी को समयानुकूल तोड़ कर वह बाहर निकल उड़ने लगा। प्रारम्भ में तो इसकी गति बहुत थोड़ी थी परन्तु वर्त्तमान समय में वह एक अच्छा गगनचारी विहंग बन गया है यहां तक कि अब तो वह इतना बलवान हो गया है कि सुगमता से वह अपने पोषण की सामग्री एकत्र कर लेता है।

४—इङ्गलैंड के जुलाहों और इञ्जीनियरों के बुद्धि-विकाश में अधिकतर योग देनेवाले लोहे और पत्थर के कोयले हैं। यदि इन दोनों दैवी सम्पत्तियों का प्रादुर्भाव न हुआ होता तो प्रत्येक कार्य के करने में इतनी सुगमता जैसी कि आधुनिक समय में है न होती। लोहा अन्य धातुओं के अतिरिक्त मनुष्य के लिए जितना उपकारी है उतना ही उसका गलाना और साफ़ करना दुष्कर है। इंगलैण्ड में लोहे की खाने थीं इसी कारण रोमन लोगों ने यहां आते ही ग्लेस्टरशायर में इस धातु के कारख़ाने खोले; और कार्नवाल में से टीन और वेल्स में शीशा (lead) खोज निकाला। इन लोगों के यहाँ से चले जाने पर बृटिश प्रजा उनका अनुकरण न कर सकी परन्तु कुछ समय पश्चात् लोहे के कारख़ाने खोले गये जिनमें लकड़ी जलाना आरम्भ किया गया। ईंधन के रूप में लकड़ी का अधिक ख़र्च हो जाने से जहाज़ बनाने के काम में हानि पहुंचती देख पार्लामेंट ने इनको बन्द कराने का विचार किया ही था कि सौभाग्यवश १७वीं शताब्दी के आरम्भ में लार्ड डडले के एक लड़के ने पत्थर के कोयले से लोहा साफ़ करने की विधि ढूंढ निकाली। इससे यह काम बन्द होते होते बच गया। १८वीं शताब्दी के मध्य में प्रति वर्ष १८,००० टन लोहा निकलने लगा। दिनोंदिन इसकी उन्नति होने लगी, यहां तक कि सन् १८०२ में इसकी संख्या १,७०,०००; १८०६ में २,५०,०००; १८२० में ४,००,००० और १८१५ में ७,००,००० हो गई। कोयले की खानें भी इसी प्रकार धीरे धीरे बढ़ने लगीं और सन् १८१५ में सर हेम्फ्री डेविस ने सेफ्टीलैम्प की खोज कर इन खानों में काम करनेवाले लोगों को अग्नि भय से निडर कर दिया। इस तरह खोदने का काम निर्विघ्नता से दिनोंदिन अधिक होने लगा और परिणाम यह हुआ कि आज इंगलैण्ड कोयले की पैदावार में समस्त पृथ्वी में सबसे आगे बढ़ा हुआ है।

५—इङ्गलैण्ड की नाविक शक्ति प्रबल होने के कारण उसको इससे व्यापार में भी बहुत सहायता मिली। जहाज़ जिस प्रकार अन्य देशीय व्यापार के लिए उपयोगी हैं उसी प्रकार नदियां नहरें और सड़कें देश के भीतर एक स्थान से दूसरे स्थान पर माल पहुंचाने के लिए आवश्यक हैं। नदियां गहरी और बारह मास बहनेवाली होनी चाहियें। दूसरे देशों की नदियों से इङ्गलैण्ड की नदियां छोटी हैं किन्तु उनमें पूर्वोक्त गुण विद्यमान है इस कारण पृथक् पृथक् स्थानों का माल लाने और ले जाने में वे बहुत अनुकूल हुईं। १८वीं शताब्दी के आरम्भ में बढ़ते हुए व्यापार के लिए ये भी पर्याप्त न हुईं और इसलिए उनको चौड़ी और गहरी करके

का विचार किया गया । नहरों का खोदा जाना आरम्भ हुआ । कोयला खान से दूसरे स्थान पर ले जाने के लिए पहले पहल ड्यूक आव बृजवाटर ने जेम्स ब्रिन्डलि नामक इञ्जीनियर से अपनी ज़मीन में नहर खुदवाई तत्पश्चात् इसी इञ्जीनियर ने लिवरपूल; हल; ब्रिस्टल और लंदन इन चार बन्दरों को नहरों से जोड़ने की युक्ति सोच निकाली । नहरों के काम में लाभ भी होने लगा । सन् १७६० में तो इनका बनना आरम्भ हुआ और १७६२ में १८ नहरें खुदने लगीं यहां तक कि अन्य दो वर्षों में ८१ नहरों के बनने के लिए नाप जांच हुई । नहरों के अनन्तर सड़कों का बनना आरम्भ हुआ । १८वीं शताब्दी के पूर्व टेलफार्ड और मकेडम नामक दो इंजीनियरों ने, सपाट, सरल और मज़बूत रास्ते बनाने की रीति उपस्थित की । इस रीति के अनुसार बहुत से रास्ते बनाये गये और घोड़ों की पीठ के अतिरिक्त गाड़ियों में माल आने जाने लगा । जिस प्रकार कराल-यन्त्र के शोधन से बुनने के काम में अद्भुतशक्ति आगई उसी भांति स्टीवन्स ने वाष्पबल संपन्न रेलगाड़ी आविष्कृत कर माल का लाना और ले जाना बहुत ही सुगम कर दिया । पृथ्वीपर रेल और जलपर अग्निबोट चलने से व्यापार में सुलभता प्राप्त हुई ही थी कि बिजली के तार का विकाश होते ही उसमें एक अनोखा चमत्कार दृष्टिगोचर होने लगा । सामुद्रिक बल में पहले ही से प्रबल होने के कारण यह सब साधन इङ्गलैण्ड के लिए विशेष उपयोगी हुये । फ्रेञ्च इञ्जीनियर, लेसेप्से, का स्वेज़ की नहर बनाने पर तो इङ्गलैण्ड का हिन्दुस्तान और आस्ट्रेलिया तक से घनिष्ट सम्बन्ध हो गया इसलिए लेसेप्से को बृटिश साम्राज्य के आर्थिक विकाश में सहायक कहा जाय तो अयुक्त न होगा । इस प्रकार १८वीं शताब्दी के आदि से अन्त तक निम्नलिखित कितने ही परिवर्त्तन हो गये ।

१८वीं शताब्दी के आरम्भ में इङ्गलैण्ड से आस्ट्रेलिया तक पहुंचने में ८ महीने लगते थे और लंदन से स्वीडन भेजे हुए पत्र का उत्तर तो दो वर्ष में भी आना असम्भव था । अब १९वीं शताब्दी के आरम्भ में तो यह यात्रा केवल ३१ दिन में हो सकती है और तार द्वारा २४ घन्टे के अन्तर्गत प्रत्येक कार्य-सम्बन्धी बातचीत की जा सकती है । जहाज़ पहले से ६ गुना माल अधिक ले जाने लगे हैं । जिन व्यापार-सम्बन्धी हानि लाभ के लिए वर्षों प्रतीक्षा करनी पड़ती थी, वे अब एक या दो महीने में ही ज्ञात हो जाते हैं । पृथ्वी के उत्तरी और दक्षिणी गोलार्द्ध के बीच परस्पर व्यवहार बहुत शीघ्रता से होने लगा है जिसके कारण मनुष्य एक दूसरे स्थान की प्रतिकूल ऋतुओं का आनन्द सुलभता से प्राप्त कर सकता है । फल, मक्खनादि भोजन के पदार्थ एक स्थान से दूसरे स्थान पर सुगमता से भेजे जा सकते हैं । आस्ट्रेलिया में मक्खन के लिए अनुकूल ऋतु अक्टूबर से मार्च तक रहती है; आयर्लैण्ड और उत्तरी यूरोप में मार्च से अक्टूबर तक । अतः ग्रीष्म ऋतु में बृटेन को आयर्लैण्ड और डेन्मार्क से जो मक्खन भेजा जाता है उसकी पूर्ति विक्टोरिया और न्यू साउथवेल्स १० लाख पाउन्ड्स मक्खन भेज कर करते हैं ।

६—जब कि इङ्गलैण्ड १७वीं शताब्दी के अन्त और १८वीं के आदि में उन्नति कर रहा था उस समय यूरोप की अन्य जातियां फ्रेञ्च विप्लव की गड़बड़ी और नेपोलियन के युद्धों के आघातों से विकल हो रही थीं ; उनके सहस्रों सुन्दर खेत लूटे और विध्वंस किये जाते थे, कारख़ाने माल की बिक्री आदि न होने के कारण बन्द हो रहे थे । ऐसे शोचनीय समय में ज़ब कि चारों ओर अशान्ति का राज्य विराजमान था; इङ्गलैण्ड एक पृथक् द्वीप होने के कारण इन आक्रमणों से सुरक्षित रहा और उसके उद्योग में तनिक भी हानि न पहुंची । इतना ही

नहीं किन्तु इस अवसर में उसने हिन्दुस्तान में साम्राज्य की नींव डाली। अन्य जातियों की मूर्छा भंग होने के पहले ही वह आर्थिक उन्नति में इतना बढ़ चढ़ गया कि इनका उस तक पहुंचना बहुत कठिन हो गया। इङ्गलैण्ड ने नेपोलियन के साथ युद्ध के ख़र्च को भरने के लिए जो कर प्रजा पर लगाया वह भी इस किम्बदन्ती के अनुसार कि "भाग्यशाली को भूत भी लाभदायक होता है।" उसके व्यापार के लिए बहुत लाभकारी हुआ।*

७—इङ्गलैण्ड की आर्थिक उन्नति के कारणों में से यहां के वासियों का देशान्तरवास (Emigration) भी एक मुख्य कारण है। अनेक युद्ध होने से यूरोप की जन-संख्या तो कम हो गई थी परन्तु इङ्गलैण्ड की आबादी इन विनाशकारी संग्रामों से बचे रहने और सुख समृद्धि होने के कारण बढ़ गई थी। इसकी औद्योगिक स्थिति में सुधार होने पर भी ग्रामीणों की संख्या आवश्यकता से अधिक थी। रेल होने के पूर्व ये किसान लोग अपना काम छोड़ कारख़ानेवाले देशों में जाना नापसन्द करते थे और पहले पहल एक नये काम का इनसे सफलता पूर्वक चलना भी दुष्कर था। अतः खेती के काम करनेवालों की अधिकता देख यहाँ के शासकों ने कृषि सम्पन्न देश ढूंढ़ निकालने की आवश्यकता प्रगट की और सन् १८१९ में इनमें से थोड़े मनुष्यों को केप आफ़ गुडहोप भेजने के लिए पचास हज़ार पाउन्ड्स राज्य की ओर से दिये गये। पांच हज़ार मनुष्य एलगुआबे में उतरे जिससे दक्षिणी एफ्रिका का वर्त्तमान बड़ा उपनिवेश उत्पन्न हुआ। इस उपनिवेश का राजकीय परिच्छेद यहां देने की आवश्यकता नहीं है किन्तु उसकी आर्थिक वृद्धि के सम्बन्ध में इतना ही कहना अलम होगा कि सन् १८२७ में इस उपनिवेश में २१६,००० पाउन्ड्स का बृटिश माल खपा; सन १८४४ में इसका दूना ४२४,००० पाउन्ड्स का और अब तो समस्त एफ्रिका में ग्रेट बृटेन और आयर्लैण्ड दोनों को मिला कर २० करोड़ से भी कुछ अधिक का माल बिकता है। नये उद्योग और व्यापारिक साधनों के कारण ग्रेट बृटेन में जो अपरिमिति माल निकलने लगा उसके विक्रयार्थ इन बृटिश उपनिवेशों की आवश्यकता भी थी परन्तु इस आवश्यकता को पूरी करने के अतिरिक्त इन्होंने हीरा, सोना, हाथी दांत आदि वस्तुओं का व्यापार करना भी आरम्भ किया। एफ्रिका की भांति आस्ट्रेलिया भी एक स्थापित किया हुआ उपनिवेश है। सन् १७६९ में शुक्र का संक्रमण (Transit of Venus) देखने के लिए निकली हुई मण्डलियों में से एक बृटिश मण्डली जो कि केप्टिन कुक की अध्यक्षता में थी आस्ट्रेलिया में एक बृटिश उपनिवेश स्थापित करने में फलीभूत हुई और थोड़े से अङ्गरेज़ यहाँ आ कर बसे। सन् १७८८ में यह दूरदेश कालेपानी की भांति क़ैदियों को भेजने के काम में लाया गया। इङ्गलैण्ड ने समय समय पर यहां क़ैदियों का भेजना आरम्भ किया जिनमें से कितनों का तो मार्ग में ही जीवन समाप्त हो गया; कितने ही वहां पहुंच कर मर गये और जो जीवित बचे वे न तो अपना ही और न अपनी मातृभूमि का ही कुछ कल्याण कर सके। अन्त में वहां के गवर्नर ने इङ्गलैण्ड से थोड़े से किसानों को उनके लिए स्थान, भोजन, अस्त्रादि देने की प्रतिज्ञा कर बुलाया। यह प्रयोग सफल हुआ और इस प्रकार शनैः शनैः आस्ट्रेलिया में उन्नति

---

* "Even the taxation which war has necessitated had stimulated traders to fresh exertions. The merchants were continually discovering fresh outlets for British trade, the manufacturers were constantly encouraged to increese their produce"

Spencer Walpole.

होती गई। यहाँ तक कि आज सोने की खानों के अतिरिक्त वह खेती और तृणशालाओं से बृटिश साम्राज्य की सहायता करता है।

८—इङ्गलैण्ड का सामुद्रिक बल-यह बृटिश समृद्धि में योग देनेवाले बहुत से उपर्युक्त साधनों का मूल कारण है। बृटिश उद्योगों के रक्षक पूर्व कथित नाविक प्रबन्ध इसी बल के कारण कार्य में परिणत हुए।* यही बल नेपोलियन की भारत-सम्बन्धी अभिलाषा को फलीभूत न होने देने में समर्थ हुआ और अब तो इसमें इतनी वृद्धि हो गई है कि जगत् की अन्य कोई भी प्रजा अङ्गरेज़ों के साथ युद्ध करने को तैयार नहीं है। "Britannia rules the waves" यह बृटिश स्वदेशाभिमान अक्षरशः सत्य है। और यही बृटिश साम्राज्य के आर्थिक अभ्युदय का रहस्य-सूत्र है।

९—परन्तु इस सामुद्रिक बल का पृष्ठपोषक कोई ऐसा अधिष्ठान अवश्य है जो इसकी सब प्रकार से रक्षा करता है। किसी को हमारे ऊपर स्वदेशाभिमान का वृथा कलङ्कारोपण करने का अवसर न मिले ऐसा विचार कर हम इस प्रश्न के उत्तर में एक प्रख्यात अङ्गरेज़ साम्राज्यवादी के वाक्यों को उद्धृत करते हैं जो कि इङ्गलैण्ड के एक उच्चश्रेणी के पत्र 'The (London) Times' के २४ मई १९११ के 'साम्राज्य दिवस' नामक अङ्क में "उभय राज्य" (The two empires) शीर्षक लेख में इस प्रकार दिये हुए हैं:-

"India stands right across the greatest highway in the world; it is the centre of the East. Through its possession we secured our great predominence in Eastern trade, and from its shores we extended our interests to Australasia, the Malay Peninsula, the Pecific islands and the Chinese coast. The power which holds India must of necessity command the sea. Supreme sea power would be as difficult to maintain without control of India as control of India without supreme sea-power. It is, therefore, in special and peculiar sense the centre of Imperial defence were India lost to us, the security of three great dominions—the Union, the Commonwealth, and the dominion of Newzealand would inevitably be threatened by the power which took over place. We should, moreover, be compelled at once to abandon all efforts to affect the balance of forces in the Pacific and should diminish thereby, to an extent hardly calculable as yet, the security of the whole Pacific Cast of the American Continent !

अर्थात्-"हिन्दुस्तान पृथ्वी के एक अति प्रचलित मार्ग पर स्थित है और पूर्वीय देशों का केन्द्र माना जाता है। उसके आधिपत्य से पूर्वीय वाणिज्य में हमारी प्रधानता हुई है और वहां से अस्ट्रेलेशियन, मलाय पेनिन्सुला, पेसिफिक महासागर के द्वीपों और चीन के समुद्रतटस्थ देशों से हमारा सम्बन्ध हुआ है। हिन्दुस्तान पर अधिकार रखनेवाली शक्ति का सामुद्रिक बल में भी प्रबल होना अत्यावश्यक है क्योंकि बिना हिन्दुस्तान पर आधिपत्य जमाये सामुद्रिक बल में प्रधानता होना उतना ही दुष्कर है जितना कि बिना सामुद्रिक बल की प्रधानता के हिन्दुस्तान का अधिकार। अतः यह राजकीय रक्षा का केन्द्रस्थल गिना जाता है। यदि

---

* इस क़ायदे को नापसन्द करनेवाले अर्थ-शास्त्री इतना तो अवश्य मानते हैं:-Nevertheless these acts coupled with the development of our Indian and American trade resulted in giving us a position of undoubted commercial supremacy".—Gibbon.

हिन्दुस्तान हमसे किसी अन्य शक्ति ने ले लिया होता तो उसने तीन बड़े राज्य-यूनियन, कोमनवेल्थ और न्यूज़ीलैण्ड के भी हस्तगत करने का अवश्य उद्योग किया होता और इस प्रकार पैसिफिकमहासागर में शक्तियों का चढ़ाव उतार होने से एमेरिकन महाद्वीप के पैसिफिक कोस्ट का भी अधिकार रखना कठिन हो जाता ।"

१०—हम इङ्गलैण्ड के आर्थिक अभ्युदय का कारण ढूंढ़ते ढूंढ़ते अपने हिन्दुस्तान पर आ गये । यहाँ आकर यह प्रश्न उठता है कि यह देश किस प्रकार बृटिश साम्राज्य के अन्तर्गत हुआ ? इस प्रश्न का साधारण उत्तर यह है कि तलवार के बल से किंतु वस्तुतः बात ऐसी नहीं है। थोड़े से शब्दों में अङ्गरेज़ों ने अपनी गूढ़ राजनीति, एकता और अन्य बड़े बड़े मानवी गुणों के द्वारा ही भारत का राज्य प्राप्त किया है । अतः बृटिश साम्राज्य के आर्थिक अभ्युदय की कारण-मीमांसा में हम उसकी तलवार से भी प्रबल उस स्वतन्त्र, न्यायी, वीर्यवान् और उदार जीवनमय शक्ति पर विचार करते हैं जिसके संसर्ग से हिन्दुस्तान अब फिर जगत् की महाप्रजाओं में स्थान प्राप्त करने में तत्पर हुआ है । यह भव्य गुण सम्पन्न मनुष्य ही बृटिश साम्राज्य की आर्थिक उन्नति में योग देनेवाले कारणों में से महान् कारण हैं । जिस कवि ने यह शोकोद्गार प्रगट किया थाः-

Ill fares the land, to hastening ills a prey,
Where wealth accumulates, and men decay,

"धन वैभव जहँ बढ़त प्रजा छीजत जहँ जाई ।
नहिं मंगल तिहि भूमि अमंगल नित नियराई ॥"

उसने इतिहास के एक अमूल्य सत्य को तनिक अपूर्ण रूप में दर्शाने से अपने समकालीन देश-बन्धुओं के प्रति अन्याय किया है । जिस समय ये पंक्तियाँ लिखी जा रही थीं उस समय इङ्गलैण्ड की प्रजा बृटिश साम्राज्य रूपी एक विशाल भवन की नींव डालने में तत्पर थी । ऐसा करने में यद्यपि उससे अयोग्य कर्म भी बन पड़े होंगे तथापि अधिकतर तो उसने पूर्वोक्त गुणों ही का अवलम्बन किया । माना कि 'द्रव्य बढ़े और पुरुष घटें' यह स्थिति अमांगलिक है किन्तु विशेष ध्यानपूर्वक विचार करने से वह विश्वनियम के विपरीत ज्ञात होता है ।

"If I were to be asked what is the predilection of the English, I should find it very hard to say not war, nor birth, nor honors, nor success in love, nor the charms of ministerial favours. *They want men to be men. They value only two things—wealth and worth.*"

अर्थात्-यदि मुझसे यह पूछा जाय कि इङ्गलैण्डवासियों का पूर्वानुराग क्या है तो यह कहना मुझको अति दुष्कर प्रतीत होगा-न तो युद्ध, न उच्च कुल, न मान, न प्रेम विजय और न राज्य कृपा । "वे इच्छुक हैं मनुष्यत्वधारी मनुष्यों के । वे मान करते हैं दो बातों का-धन और योग्यता ।"

ऐसा लिखनेवाले फ्रेञ्चमेन ने* गोल्डस्मिथ के अतिरिक्त अधिक व्यापक दृष्टि से अङ्गरेज़ों का स्वभाव देखा है इतना ही नहीं किन्तु धन (wealth) और पुरुषों (men) की पूछ एक ही समय में हो सकती है ऐसा स्वीकार करने में प्रत्येक जाति की आर्थिक समृद्धि का मूलकारण उसके पराक्रमी पुरुष हैं' इस महान् सत्य का पूर्णरूप से अनुभव भी होता है ।

---

* Montesquew.

भारतवासियों के नाम खुली चिट्ठी ।

प्रति वर्ष की रीत्यानुसार आज मैं फिर आप लोगों को पत्र लिखने बैठा हूं। पिछली बार मैंने पत्र फ्रान्स से भेजा था आज मैं पत्र जापान से लिख रहा हूं । इरादा तो था कि फ्रान्स पहुंच कर ही पत्र लिखता किन्तु सम्पादक महाशय का हुक्म टालने का साहस न कर सका। अस्तु, आज जापान ही के सम्बन्ध की कुछ कथा आपको सुनाता हूं।

विगत रूस-जापान-युद्ध के बाद से जापान के अभूतपूर्व रणकौशल और विजय से जापान की ओर संसार की सभी जातियों की दृष्टि आकर्षित हुई है । सभी एशियावासियों की और विशेषकर भारतवासियों की दृष्टि इस ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुई है। युद्ध के आरम्भ में सर्वसाधारण की यही धारणा थी, कि जापान न्याय और धर्म के लिए तथा प्रबल अत्याचारियों के अत्याचारों से निर्बलों की रक्षा के लिए ही ऐसे लोकक्षयकारी भयङ्कर युद्ध में अग्रसर हुआ है। किन्तु युद्ध के समाप्त होने पर शान्ति होते ही उसका निराला ही रंग ढंग दिखाई देने लगा ! जिन लोगों ने जापान, कोरिया और मञ्चूरिया की गत पांच छः वर्षों में होनेवाली घटनाओं को गम्भीर हृदय से विचारपूर्वक देखा है, वे लोग अवश्य ही दृढ़ता के साथ कह सकते हैं कि जापान के युद्ध करने का उद्देश्य कोरिया पर आधिपत्य जमाना और मंचूरिया में पैर फैला कर धीरे धीरे उसका ग्रास करना ही था। रूस का भी यही उद्देश्य था, इसीलिए रूस-जापान-युद्ध हुआ । रूस को कोरिया के पास रहने देने से जापान की स्वार्थसिद्धि का मार्ग कण्टकमय रहता, और सरलता से उसका कोरिया लुण्ठन कार्य सिद्ध न होता। ऐसी इच्छा का होना जापान के पक्ष में स्वाभाविक है, क्योंकि जापान की जन-संख्या प्रति दिन बढ़ रही है, सभी ओर धन के अभाव का कष्ट अनुभूत हो रहा है, बिना धन के देश-हितकर कार्य हो नहीं सकते। जापान की यह स्वार्थपरता अर्थात् दूसरे के धन से स्वदेश के उन्नति-साधन की चेष्टा दूसरे के पक्ष में दुःखदायी होने पर भी उसके पक्ष में बड़ी ही उपकारकारिणी हुई है। यह कार्य धर्मसंगत है, या नहीं ? इसमें सन्देह है, किन्तु इस कार्य से जापानियों के "स्वदेश-प्रेम" का अच्छा परिचय मिलता है, इसमें सन्देह नहीं है। अङ्गरेज़ भी भारतवर्ष में सैकड़ों वर्षों से ऐसा ही कार्य कर रहे हैं, इससे भारत का अमङ्गल और इङ्गलैण्ड का लाभ हो रहा है। यह कार्य चाहे धर्म-सङ्गत न हो किन्तु इससे अङ्गरेज़ों के 'स्वदेश प्रेम' का ही परिचय मिलता है। ऐसा करने ही से आज अङ्गरेज़ अपनी मातृभूमि को समृद्धिशाली बना सके हैं।

हम लोगों के देश में जो विद्वान् और बुद्धिमान् कह के प्रसिद्ध हैं, उनमें अनेकों की यह धारणा है, कि धर्म की प्रधानता ही से जापानियों का युद्ध में विजय हुआ है, और उनके देश की असाधारण उन्नति हुई है । अनेकों का यह मत है कि जब युद्ध में जापानियों ने ऐसी दृढ़ता दिखलाई है, तो उन लोगों ने अन्यान्य विषयों में भी अवश्यमेव आशातीत उन्नति की होगी। ये लोग बात बात में जापान का उदाहरण दिया करते हैं, और सर्वदा हर बातों में भारतवर्ष और जापान की तुलना किया करते हैं । कहाँ तक कहें, जापान की प्रशंसा करते करते ये उसे आकाश पर चढ़ा देते हैं, और अपने को 'दीनातिदीन' कह कर अपनी विचित्र 'विद्या' और 'बुद्धि' का परिचय दिया करते हैं। सुदूर भारत में रहकर जापान के भीतरी रहस्य का जानना दुष्कर है, किन्तु कितने सज्जनों ने स्थिर-चित्त से इसके प्राचीन इतिहास का मनन किया है? आज भारत में जापान, शिक्षित, महानुभाव,

दयालु और सभ्य कहकर प्रसिद्ध हो रहा है, किन्तु इस समय जापान से एक दुर्बल एशियावासी जाति किस तरह विताड़ित, लुण्ठित और दुःखित हो रही है, क्या इस बात पर किसी ने ध्यान दिया है ? कोरिया में प्रति दिन हृदय-विदारक जो आर्तनाद होता है, जान पड़ता है, सुदूर भारत में उसकी प्रतिध्वनि नहीं पहुंचती। किन्तु समय समय पर सागर पार से उस दुःख से निकले हुए आर्तनाद की प्रतिध्वनि जापान में सुनाई पड़ती है। कोरिया के ऊपर जापान की यह "स्नेह दृष्टि" प्रथम ही पड़ी है, ऐसा नहीं है। बहुत दिनों से, ऐसा क्यों, खृष्टीय द्वितीय शताब्दी से जापान की यह लोलुप दृष्टि इस हतभाग्य देश पर पड़ी है। यही क्यों, जापानी इतिहासलेखकों ने लिखा है कि "यह देश (कोरिया) तब से जापानियों की अधिकृत सम्पत्ति है,[*] जापानी लोग कभी शत्रु रूप से कोरिया पर आक्रमण कर, कर (टैक्स) वसूल करते थे, और कभी बन्धु बनकर कोरिया के संग मिलकर चीन के विरुद्ध शस्त्र धारण करते थे, और कभी मित्रपक्षीय दूत बनकर कोरिया जाते थे, और प्रचुर धन लेकर अपने देश में लौट आते थे ।[†]

कोरिया पर कब्ज़ा कर जापान ने अपनी पुरानी हवस मिटाई है। आरम्भ में जापान ने दक्षिण के देशों पर अधिकार जमाने की चेष्टा की थी, फल यह हुआ कि १५६७ ई० के शेष भाग में जापान के साथ कोरिया का युद्ध छिड़ गया। इसी घोर संग्राम में असंख्य देशवासियों के नाश और अनेक तरह की जो क्षति कोरियावासियों को हुई थी, उसी क्षति को पूर्ण करने में उन्हें २०० वर्ष लग गया। इतिहास में लिखा है कि इस युद्ध में तीन लाख मनुष्य मृत्यु के मुख में जा पड़े थे ।[*] जापानियों की सभ्यता के खोज करने से मालुम होता है कि उनकी सभ्यता में कुछ भी ऐसी विशेषता नहीं है, जो कि बहुत दिनों की उनकी निज की सम्पत्ति कही जा सके। जापानी सभ्यता चीन से उधार ली गई है। जापानियों के लिखने के निज के अक्षर नहीं थे, वे भी चीन से लाये गये हैं, धर्म भी नहीं था, वह भारतवर्ष से चीन में, और चीन से जापान में पहुंचा है। तो भी इन सब के लिए चीन की ओर जापानियों की कृतज्ञता का कुछ भी भाव नहीं दिखाई पड़ता। वरन् इस समय भी जब कि चीन में प्रजातन्त्र स्थापित हो गया है जापान शत्रुओं की नांई चीन के मार्ग में कांटा बो रहा है। जापान यह नहीं देखता कि चीन के उठ जाने पर मेल से रहने से ये दोनों एक महाशक्ति हो जांयगी जिसके सामने यूरोप भी नत होगा। वह स्वार्थ से अन्धा हो रहा है और उसे केवल अपने पेट की पड़ी है।

रूस जापान युद्ध के बाद से जापानियों में एक विशेष अहंकार का भाव जाग उठा

---

[*] Japanese Historians agree from this settlement in Korea that the state was a vassal of Japan from second century by conquest of right P. 129, Angus Hamilton's 'Korea'.

[†] They invaded Korea as enemies; levying tributes; they came as allies against China; they appeared as the embassies of a friendly state and returned enriched to the court of their sovereign. P. 30, Angus Hamilton's 'Korea'.

[*] Even at this date Japan was anxious to establish her power in Korea by obtaining possession of the southern provinces. Two hundred years passed before Korea recovered from the desolation of the conflict, which was one in which the loss of three hundred thousand man was recorded P. 132, 133, Angus Hamilton's 'Korea'

है। जो सज्जन जापान में कुछ दिन रहेंगे उन्हें इस बात के जानने में कुछ भी देर न लगेगी। बङ्गदेश में एक कथा प्रसिद्ध है कि "धरा के सरा, ज्ञान करा" अर्थात् पृथ्वी को ढँक कर कोरा ज्ञान कथन करना। इन लोगों के मन की अवस्था भी इसी ढंग की है। गत दस मासों में मैं यहां के धनी, दरिद्र, शिक्षक, और व्यवसायी तथा छात्रों से 'जो कि थोड़े ही दिनों में देश का कार्य करेंगे' अच्छी तरह मिला। इन सब की बातों को सुनकर यही भाव हृदय में उठा कि "चीन निवासियों के साथ इनकी आन्तरिक घृणा है।" इन लोगों से चीन या चीन निवासियों के सम्बन्ध में कुछ पूछने पर ये लोग मुँह बनाकर अपमान की हँसी हँसकर कहते हैं:-

"हम लोग चीन निवासियों को सभ्य नहीं समझते, वे लोग अत्यन्त मलिन रहते हैं, और सुअर अधिक खाते हैं, इत्यादि।" चीन निवासियों से जिन समस्त अमूल्य गुणों को उधार लेकर आज जापान संसार में सभ्यता की डींग हांक रहा है, उन्हीं लोगों से ऐसे प्रतिकूल आचरण करने के समय जापान का मुख जो लज्जा से नीचे नहीं होता, यही आश्चर्य है! चीन की दुर्बल अवस्था को देखकर उसे पदपद पर अपदस्थ करने की जो चेष्टा जापान सदा करता रहता है, इस बात को कई मास पूर्व की घटनाओं को जिन लोगों ने पढ़ा है, अच्छी तरह समझ सकते हैं। 'टोकियो' नगर के जिन छात्रालयों (Boarding House) में चीन के विद्यार्थी वास करते हैं, वहां कदाचित् ही जापानी छात्रों का दर्शन होता है। प्रिय पाठक! जापान का चीन के साथ कहां तक भयानक विद्वेष बढ़ गया है, क्या आपने उसे समझा? भारत के बहुसंख्यक नरनारियों की 'सूक्ष्मदृष्टि' में जापानी लोग पूज्य देवता न होने पर भी प्रायः उनके समान ही हैं! वे सब सद्गुणों के आधार हैं। जापानियों के तुच्छ तुच्छ कार्यों को भी डंके की चोट से चित्ताकर्षक बनाना, एक दल के मनुष्यों का प्रधान कार्य हो रहा है। किन्तु जापान के उस बृहत् कार्य के—जिसके कारण जापान, जापान हो रहा है, अनुसरण करने के लिए जब इन महात्माओं से कहा जाता है—तब इनमें से अधिकांश महात्मा 'बधिर' हो जाते हैं। जो लोग क्लाइव के नाम से घृणा करते हैं वे ही कोरिया शासक प्रिन्स इटोर' के नाम पर नृत्य करें, यह कैसी आश्चर्य की बात है। कब हम भारतवासी निज गौरव से गौरवान्वित होना सीखेंगे? कब हम लोग आदर्श के लिए सबसे पहले अपने घर के भीतर 'आदर्श' ढूंढ़ेंगे?

जापानियों की भारतवर्ष के सम्बन्ध में कैसी विचित्र धारणा है, इस समय उसकी भी कुछ आलोचना करना आवश्यक है। जापानी लोग भारत को बड़ा ही गर्म देश जानते हैं। यदि उन से कहा जाय 'नहीं' भारतवर्ष के सभी स्थान गर्म नहीं हैं, वहां के विशेष विशेष स्थानों में जल वायु का बिल्कुल परिवर्तन है, उष्ण प्रधान प्रदेश भी हैं, और शीत प्रधान प्रदेश भी हैं। तब वे लोग अविश्वास के साथ हँस देते हैं! जापानी सभी भारतवासियों को 'काला आदमी' समझते हैं। और जो जितना ही 'काला' होता है, भारत में उसके सौंदर्य की उतनी ही प्रशंसा होती है, यही उन लोगों का अटल अचल विश्वास है। अनेक जापानियों का विश्वास है, कि भारत के घाट, बाट, सभी स्थानों में सिंह और सर्पों की इतनी अधिकता है कि उनके लिए भारत में जाना घोर विपत्ति का कारण और दुस्तर है! कोई कोई कहते हैं कि अंग्रेज़ों हीं ने भारतवासियों को 'सभ्यता' सिखाई है। अङ्गरेज़ी भाषा को छोड़कर भारतवासियों की निज की भाषाओं का अस्तित्व सुनकर उनका मुख मलिन हो जाता है। भारतवासी हाथों से भोजन करते हैं, यह सुन वे 'कूपमण्डूक' हँस कर कह बैठते हैं कि 'तुम लोग हाथी की तरह खाते हो' और अपनी सभ्यता, सम्मत खानपान की विधि व्यवस्था और रंग ढंग का उल्लेख

करते हैं। पाठक! जापानियों के भोजन का रंग ढंग भी निज की सम्पत्ति नहीं है, चीन से इसकी भी शिक्षा ली गई है। चित्रों में भारतीय रमणियों के मस्तक में टीका देख कर ये आश्चर्य से कहते हैं, 'यह क्या?' यह तो बड़ी हँसी की बात है! किन्तु उनकी स्त्रियां मुँह में सुफ़ेद पाउडर और होठों में लाल पाउडर लगाती हैं, वह सभ्यता का चिन्ह है, और ऐसा करना उन्हें बड़ा ही स्वाभाविक जान पड़ता है। प्रयोजन यह कि अनेक लोग भारतवर्ष को, हम लोगों की पवित्र जननी जन्मभूमि को 'असभ्यों की भूमि' कहने में भी संकोच नहीं करते। जापानी लोग भारतवासियों से कुछ भी स्नेह नहीं रखते, भारतवासियों हीं से क्यों स्वजाति को छोड़कर अन्य किसी भी जाति से वे स्नेह सम्बन्ध नहीं जोड़ना चाहते। यह है भी स्वाभाविक। हम लोग जिस तरह से विदेशी और विजातियों को स्नेह दृष्टि से और स्वदेशनिवासियों को बिलकुल विपरीत भाव से देखते हैं, जापान में इस तरह की विचित्रता नहीं है।

"वसुधैव कुटुम्बम्" के ही कारण हम लोगों का अधःपतन हुआ है। पहले स्वजातीय और स्वदेशियों पर दया, प्रेम, ममता आदि दिखा कर फिर कुछ बचे तो दूसरों पर उन्हें दिखाना उचित है। 'यह नीति की बात है।' जापानी इसी नीति का अनुसरण करते हैं, यही उन लोगों का मूलमन्त्र है, और यही 'नवीन भारत' का भी मूलमन्त्र होना चाहिये। हम लोग यदि अपनी रक्षा करना चाहते हैं, हम लोग यदि उन्नति के पथ पर चढ़ना चाहते हैं, तो हम लोगों को स्वार्थपर होना पड़ेगा। हम लोगों को व्यक्तिगत भाव से नहीं, किन्तु राष्ट्रीय भाव से स्वार्थपर होना होगा। जहां तक सम्भव हो विदेशी और विजातीयों को दूर ही रखना होगा। जापानियों ने ऐसा ही किया है, और अब भी वे ऐसा ही करते हैं, इसके कुछ भी क्षमाशील नहीं मिलते। ये मतलब भर के लिए दूसरे का साथ देते हैं। यहां पर यूरोपीय देशों से कला-कौशल आदि के शिक्षण के लिए कितने ही विदेशी पंडित आते हैं किन्तु उनके रहने की अवधि उतनी ही है जितने दिनों में कि दो एक जापानी उस काम के लायक़ न हो जायं। भारत के समान जन्मभर के लिए उन्हें न तो पट्टा ही लिख दिया जाता है और न उन्हें उतना अधिक वेतन ही दिया जाता है।

अब धन की लालसा से जापानियों की दृष्टि भारत पर पड़ी है। यह कुछ अस्वाभाविक नहीं है, किन्तु जापानी लोग अपने प्रिय बन्धु (अङ्गरेज़ों) के ही रंग ढंग पर ढल रहे हैं। हम लोगों के देश के अनेक लोग विलायती (European) पदार्थों को न ख़रीदकर जापानी वस्तुओं को ख़रीदते हैं, क्योंकि वे लोग जापानी और स्वदेशी पदार्थों में विशेष भेद नहीं समझते। वे लोग जान बूझकर भी नहीं समझते कि ऐसा करके हम देश को कैसी भयानक क्षति पहुंचा रहे हैं। स्वदेश के क्षत विक्षत शरीर पर 'क्षते क्षारावसेचनम्' कर रहे हैं। एक दिन अङ्गरेज़ भी भारतवर्ष में वणिक वेश में आये थे। आज भारतवासी उन्हीं वणिक वेशधारियों के वंशवालों के शासन में रहते हैं। इसीसे बार बार प्रार्थना की जाती है कि 'स्वदेश निवासियो अब भी समय है, सावधान हो जाओ। 'बनियों का मान दण्ड, प्रात हुआ राजदण्ड।' कवि की इस उक्ति का सर्वदा स्मरण रक्खो। असावधानी मत करो। असावधानी से आज हम लोग इस दीन हीन दशा को पहुंच गये हैं। जापानियों की भारतवर्ष में वाणिज्य-विस्तार की जो विपुल-चेष्टा दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ रही है, यह बात 'टोकियो' के इन्डो जापानीज़ एसोसियेशन् (Indo Japanese Association) के कार्य-कलापों को देखकर सहज में समझी जा सकती है। इस सभा के प्रसिद्ध राजनीति-विशारद काउन्ट ओकूमा सभापति हैं। सभा का उद्देश्य धन हरण

सिवा जिसे अङ्गरेज़ी में Exploitation कहते हैं और कुछ भी नहीं है। कई एक भारतीय व्यवसायी और विद्यार्थी इस सभा के सभ्य हैं। अनेक जापानी भी सभ्य हैं, और उन्हीं के इच्छानुसार सभा के सब कार्य होते हैं। ऐसी सभा के साथ किसी भी स्वदेश-हितैषी भारतीय सज्जन का सहानुभूति रखना या इसकी किसी तरह की सहायता करना अभीष्ट नहीं है, क्योंकि ऐसा करना, स्वयम् अपने घर में अपने शत्रु को बुलाना है। अवसर पाते ही जापानी लोग अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए भारतवासियों के हृदय में 'छूरी' मारने में कभी संकुचित नहीं होंगे। एशियावासी समझकर वे कुछ भी आगा पीछा न सोचेंगे। बड़े खेद की बात है कि बम्बई के प्रसिद्ध व्यवसायी मि० ताता ने तीन हज़ार और मैसूर के महाराज ने साढ़े बाइस सौ रुपये से इस सभा की सहायता की है। हम लोगों के देशीय धनीमानी सज्जन जिस दिन ऐसे अनावश्यक और व्यर्थ दानों के बदले स्वदेश निवासी दीन हीन भाइयों की सहायता के लिए मुट्ठी खोलकर दान करेंगे, उसी दिन से अपने भारतवर्ष में अन्न का हाहाकार मिट जायगा, और सभी भाई प्रसन्नतापूर्वक पहले की तरह आध्यात्मिक अभ्युदय की ओर लग जायंगे, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। वह दिन कब आवेगा? जब यहां के राजा महाराजा, धनी व्यवसायी नाम और अङ्गरेज़ी के कुछ अक्षरों की लालच में न पड़कर अपने आश्रित दीन भाइयों के उपकार में अपनी अपनी योग्यता के अनुसार दान करेंगे? जापानियों के सम्बन्ध में हमें केवल इतना ही कहना है:–

जो जापानी बहुत दिनों से कोरियावासियों पर घोर अत्याचार करते आये हैं, बात बात में दुर्बल चीननिवासियों पर अविचार और लाञ्छना का प्रचार कर रहे हैं, और फारमूसा द्वीप के आदि निवासियों की पशु की भांति हत्या करके वहां पर नवीन सभ्यता का बीज वपन कर रहे हैं, इन सब प्रत्यक्ष प्रमाणों हमें शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। जापानियों क धर्म 'जिससे उनका अभ्युदय हुआ है' भारती धर्म नहीं है। अङ्गरेज़ लोग भारतवर्ष में स्कू और रेल बनाकर हम लोगों को जैसा 'सभ्य बना रहे हैं, जापानियों की भी कोरियावासिय को 'सभ्य' बनाने की चाल प्रायः उसी ढंग क है। यदि कोई पूछे कि जापान का कौन सा धर्म है? तो हम दृढ़ता के साथ कह सकते हैं कि जापानियों का 'स्वदेश-प्रेम' ही मुख्य धर्म है हम लोगों का भी इस जातीय अभ्युदय, राष्ट्री उन्नति के समय 'स्वदेश-प्रेम' ही उत्तम तथ अनन्य धर्म हो सकता है, क्योंकि इस धर्म क छोड़कर दूसरे धर्म से हम लोगों का अभ्युद कभी नहीं होना है। हमारे देश के अने आलसी और कापुरुष धर्म की दुहाई देते, देश हितकर सत्कर्मों से कोसों दूर भागते हैं किन्तु जो लोग प्रकृत कर्मवीर और सच्चे धर्मवी हैं, उन लोगों ने अवश्य ही अपने अपने सन्मा को चीन्ह लिया है।

जापान भारतवर्ष को क्या सिखायेगा 'स्वदेश-प्रेम'। अवश्य ही स्वदेश का प्रेम कर पर हम लोग स्वदेश निवासियों का प्रेम करेंगे और जिस दिन अपने देशबन्धु, देशभक्तों क मित्र, परममित्र, हार्दिकमित्र समझेंगे, उस दिन भारत का मुक्तिमार्ग निष्कण्टक हो जायगा। सब तरह के भेद भाव विचारों की भिन्नता और हृदय की दुर्बलता दूर होने से भारत क विभिन्न-जन-समुदाय ज्ञान, धन, विद्या, ब से अलंकृत हो महामहिम नवीन मूर्ति से प्रकाशित होगा और उसी समय से भारत की कालरात्रि का अवसान होगा।

हमें जो कुछ विनय करना था हम कर चुके हमें शीघ्र ही "जेनवा" की ओर प्रस्थान करना है, हो सका तो दूसरा पत्र वहीं से लिखूंगा।

आप लोगों का
वही पुराना फ्रान्स प्रवासी

आकाश वाणी।

[लेखक—पं० मन्नन द्विवेदी गजपुरी बी० ए० ।]

हे भारत मेरी बात ध्यान दे सुन ले।
तू है किसकी सन्तान इसे भी गुन ले ॥ १ ॥
तू क्या था, क्या हो गया आज कल प्यारे।
मर रहे करोड़ों पुत्र भूख के मारे ॥ २ ॥
विद्या, शिक्षा अरु कला कहां गइ तेरी।
सो चुका बहुत हे तात करे मत देरी ॥ ३ ॥
मत भेद जाति के भेद हज़ारों होकर।
हो गया हिन्द बरबाद तेज बल खोकर ॥ ४ ॥
फैला पाखंड प्रपंच महा दुखकारी।
छाया असत्य का अन्धकार यह भारी ॥ ५ ॥
हे कृष्ण आज भी तुम्ही बचा लो इसको।
फिर कर्मयोग योगीश सिखादो इसको ॥ ६ ॥
आलस्य द्रोह से दूर हटा लो इसको।
हे हे ब्रजेश सत्पन्थ दिखा दो इसको ॥ ७ ॥
फिर बन्धु प्रेम की प्रभो बहा दो धारा।
“सबसे बढ़ कर है हिन्दुस्तान हमारा ॥ ८ ॥
हम हैं इसके सन्तान हमारा घर है।
जब तक हम हैं तैयार इसे क्या डर है ॥ ९ ॥
यह रम्य वाटिका हम हैं इसके माली।
हम फूल सुगंधित यह फूलों की डाली ॥ १० ॥
यह है सुनील आकाश हमी हैं तारे।
यह ताल स्वच्छ हम अमल कमल रतनारे”॥११॥
आखें खोलो हे भारत निद्रा त्यागो।
सो चुके हज़ारों वर्ष अजी अब जागो ॥ १२ ॥
मतभेद फूट औ बैर अभी तुम छोड़ो।
है नीच “जाति की प्रथा” इसे तुम तोड़ो ॥१३॥
विद्या का करो प्रचार बुद्धि फैला दो।
तुम हीं हो आर्य संतान इसे दिखला दो ॥ १४ ॥

फ़ारस की फांसी*।

[लेखक—एक सहृदय ।]

(१)

कोई समय था कि एशिया के भाग्य का सितारा सप्तम आकाश में विराजमान होकर अपनी प्रतिभा से सारे संसार को मुग्ध कर रहा था। धीरे धीरे समय ने पलटा खाया एशिया के प्रत्येक देश क्रमशः नीचे गिरते गये। उधर यूरोप में एक मात्र जागृति होगई। चमत्कारिक विद्या और बल का आविष्कार हो गया, किसी न किसी रूप में एशिया के प्रत्येक प्रदेश पर यूरोप का अधिकार हो गया, समस्त महाद्वीप को विदेशियों से पददलित होना पड़ा, हाँ! भाग्यवश किसी किसी प्रदेश की स्वतन्त्रता प्रातःकालीन आभाहीन नक्षत्रों की भांति जहाँ तहाँ टिमटिमाती रही। एशिया के पथ-प्रदर्शक जापान के भाग्योदय के साथ ही उनमें कालक्रम से नवीन जीवन की आशा तरंगें फिर से लहराने लगों। चीन, टर्की, फ़ारस के प्रदेशों में निरंकुश शासन-प्रणाली के सुधार का आन्दोलन आरम्भ हो गया, अगणित स्वदेशप्रेमोन्मत्त महात्माओं ने जातीय समरयज्ञ में आत्मबलि की आहुति देकर अक्षय पुण्य प्राप्त किया। किन्तु सच है:-

सबै सहायक सबल के कोउ न निबल सहाय।
पवन जगावत आग को दीपहि देत बुझाय ॥

फ़ारस भी अभागी एशिया के प्रदेशों में से एक है, इसको भी स्वतन्त्रता देवी की उपासना में हाल ही में असाधारण आपत्तियों का सामना करना पड़ा है, इतने पर भी उसका

---

* Strangling of Persia'–By, W. Morgon Shuster.

भाग्याकाश निराशा के बादलों से आच्छादित है। हाय! जिस फ़ारस की बुलबुलें तक मधुर गीत गाकर वहां के आनन्दमय जीवन का अनुभव करती थीं आज उसी देश के लाखों मनुष्यों का भोजन के लिए हाहाकार, और खोई हुई स्वतन्त्रता के लिए क्रन्दन, बड़ा ही हृदय-विदारक दृश्य है। आज फ़ारस के नर-नारियों के अनुपम रूप लावण्य में उदासीनता की रेखा देखकर किस सहृदय व्यक्ति का हृदय द्रवित नहीं होगा और जब हम यह देखते हैं कि यह बज्रवेदना उनके कर्मों का फल नहीं है, तब तो दुःख की मात्रा बड़ा ही भीषण रूप धारण कर लेती है। उन्होंने तो वही करना चाहा था जो कि प्रत्येक संसार की कर्त्तव्यनिष्ठ जाति को करना चाहिये। वे अपने उद्देश्य में सफल भी हो जाते यदि यूरोप की "संसार को सभ्य बनाने का ठेका लेनेवाली" कुछ जातियां स्वार्थवश उनके न्यायोचित मार्ग को कण्टकाकीर्ण न बनातीं। इन सभ्यताभिमानी जातियों ने एक निरपराध देश को जिस प्रकार फाँसी दी है उसीका संक्षिप्त वर्णन, एक मोर्गन शुस्टर नामी स्वतन्त्रताभिमानी महात्मा की (जिनको कि फ़ारस की गवर्नमेंट ने उसी घोर आपत्ति के समय में अपनी आर्थिक दशा का सुधार कराने के लिए एमेरिका से बुलाया था) लिखी हुई पुस्तक के आधार पर हम मर्यादा के पाठकों की भेंट करते हैं।

(२)

फ़ारस में भी अन्य देशों की भांति गत शताब्दी के अन्त तक निरंकुश शासन-प्रणाली रही। वहां के शाह लोग प्रजा के प्रति कर्त्तव्य-पालन नहीं करते थे उलटे नादिरशाही आज्ञा के मारे उसे उन लोगों ने बड़ा ही तंग कर रखा था। अत्याचार के मारे जब लोगों का हृदय बहुत ही जर्जरित होगया तब सन् १८९० ई० में उन्होंने आत्मोद्धार की चेष्टा की। उस समय नशीरुद्दीन शाह कैज़ार वहां का शाह था। उसने सन् १८९१ में लंदन की एक विदेशी दूकान को देशभर के तम्बाकू के व्यवसाय का ठेका दे दिया। प्रजा के व्यवसायस्वत्व को किसी विदेशी के हाथ इस प्रकार बेच देना सर्वथा अनुचित था। अतः प्रजा ने इसका विरोध किया। देशभक्त मुल्लाओं ने व्यवस्था दे दी कि तम्बाकू का पीना तब तक हराम है जब तक कि उसका व्यापार विदेशियों के हाथ में रहे। शहर की सब तम्बाकू की दूकानें बन्द हो गईं। आदमियों ने उसका पीना छोड़ दिया। शीघ्र ही लंदन की दूकान को ठेका छोड़ देना पड़ा। ५० वर्ष राज्य कर चुकने पर शाह नशीरुद्दीन १ मई सन् १८९६ ई० को गोली से मार डाले गये। उसके बाद उसका बड़ा लड़का शाह मुजफ्फ़रुद्दीन गद्दी पर बैठा। सन् १९०७ में यह भी स्वर्गधाम को चलता हुआ। इसके मरने से कुछ दिन पहले ही प्रजा ने पार्लमेंट स्थापन करने की इच्छा प्रकट की थी। जुलाई सन् १९०६ ई० में एक बड़ी भारी सभा करके शाह से प्रार्थना की गई कि एक जातीय सभा (मजलिस) होनी चाहिये। प्रजा की शक्ति देख कर शाह को प्रार्थना अस्वीकार करने का साहस न हुआ। ५ अगस्त सन् १९०६ को एक मजलिस स्थापित हो गई। इसको क़ानून बनाने और मन्त्रिमण्डल के चुनने का अधिकार दिया गया, इस प्रकार बिना रक्तपात किये ही फ़ारस ने वह बात प्राप्त कर ली जो बहुत से देशों में सहस्रों मनुष्यों का खून होने पर भी कठिनता से प्राप्त होती है। मुजफ्फ़रुद्दीन के मरने पर उस का बड़ा लड़का मुहम्मद अली मिर्ज़ा ४ जनवरी सन् १९०७ को गद्दी पर बैठा। इसने शासनाधिकार प्राप्त करने पर कुरान की क़सम खाकर मजलिस का अधिकार और प्रजा के स्वत्वों का मानना स्वीकार किया। मि० शुस्टर के मतानुसार यह फ़ारस का सबसे बुरा शाह था। वह अपनी प्रजा को दिल से नापसन्द करता था और चाहता था कि किसी प्रकार मजलिस टूट

14173

गुरुकुल कांगड़ी

जाय । उसका एक रूसी मास्टर था। उसकी संगति के फल से वह रूस की गवर्नमेंट के हाथ में कठपुतली बन गया था । उसने अपने शासन के आरम्भ से ही मजलिस के अधिकार कम करने की चेष्टा की । रूस के साथ मिलना और मजलिस के विरुद्ध षड्यन्त्र रचना भी उसने आरम्भ कर दिया । छुपाछुपी रूस और इङ्गलैण्ड से ६० लाख रुपया कर्ज़ लेकर उसने अपने ऐश आराम में ख़र्च कर डाला । मजलिस के सभासदों को यह बात पसन्द कैसे आ सकती थी । रूस और इङ्गलैण्ड को फ़ारस के मामलों में हाथ बढ़ाते देखकर प्रजा के प्रतिनिधियों को भय हुआ कि कहीं उनकी स्वतन्त्रता पर इसका बुरा प्रभाव न पड़े इसलिए उन्होंने शाह से निम्नलिखित प्रतिज्ञायें करानी चाहीं:-

(१) शाह अपना निज का ख़र्च कम कर दें।

(२) शाह के मित्र कर वसूल करने में बेईमानी करते थे वह रोकी जाय ।

(३) एक बेल्जियम कर्मचारी, जो मजलिस का कुछ भी ख़याल न करके अनुचित रूप से अपनी शक्ति बढ़ा रहा था पदच्युत कर दिया जाय ।

शाह को लाचार होकर ये बातें स्वीकार करनी पड़ीं । इससे प्रजा की दृष्टि में मजलिस का मान बढ़ गया ।

शाह ने अपनी शक्ति को हीन देखकर एक मनुष्य को जिसे देश निकाला हो चुका था फिर वापस बुलाना चाहा। यह "अतबक" के नाम से प्रसिद्ध है ।

यह बड़ा ही चालाक, ज़बरदस्त और रूस का बड़ा ही मित्र था । ज्यों ही रूसी गवर्नमेंट ने सुना कि वह बुलाया जा रहा है उसने अपनी पुरानी मित्रता फिर से हरी भरी की और उसे अपने जहाज़ में बैठा कर फ़ारस तक पहुंचा दिया । टेहरान पहुंचने पर उसने बड़ी गड़बड़ पाई । प्रायः सभी प्रान्तों में विद्रोह फैल रहा था। मजलिस और शाह के मतविरोध से फ़ारस की बड़ी दुर्दशा हो रही थी । "अतबक" के पहुंचते ही रूस ने अपनी पोशीदा कार्रवाई छोड़ कर प्रत्यक्ष में मजलिस को दबाना चाहा । उस समय में टेहरान में कई गुप्त सभायें होगई थीं। इनको लोग "अंजुमन" कहते थे । इनके मेम्बरों का सिद्धान्त मजलिस के विरुद्ध जो कोई काम करे उसे सीधा नरक में पहुंचा देना था । एक दिन पार्लमेंट से निकलते समय "अतबक" को किसी ने गोली से मार दिया । मारनेवाला एक अंजुमन का मेम्बर था उसने स्वयम् भी आत्मघात कर लिया ।

जिस समय फ़ारस में यह झगड़े हो रहे थे इङ्गलैण्ड और रूस ने आपस में एक सन्धि की । उसके अनुसार दोनों देशों ने फ़ारस के घरेलू मामलों में हस्तक्षेप न करने की प्रतिज्ञा की । यह सब ठीक था पर इसी सन्धि-पत्र में दोनों देशों ने फ़ारस के दो कल्पित विभाग भी मान लिए और तै कर लिया कि एक के भाग में दूसरे को हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार न रहेगा । इन भागों को इन लोगों ने उत्तरी तथा दक्षिणी के नाम से प्रसिद्ध किया । फ़ारस निवासियों को इस सन्धि-पत्र का कुछ वृत्तान्त ज्ञात नहीं हुआ । ख़ैर ! इस संधि-पत्र का अभिप्राय हम पाठकों को आगे बतायेंगे । इस पत्र पर ३१ अगस्त सन् १९०७ को सेन्ट पीटर्सबर्ग में दोनों देशों के प्रतिनिधियों के हस्ताक्षर हुए थे । एकाएकी ४ सितम्बर को यह सन्धि पत्र अथवा फ़ारस के भाग्य का फ़ैसला टेहरान में प्रकाशित किया गया । देशभक्त फ़ारस निवासियों को यह जानकर बड़ा ही दुःख हुआ कि उनकी " स्वर्गादपि गरीयसी " जननी जन्मभूमि को दो विदेशी जातियों ने कल्पित रीति पर स्वयम् निर्मित स्वत्वों की रक्षा करने के लिए बांट लिया है । यद्यपि देश-विभाजक रेखा काग़ज़ पर ही थी किन्तु उसका वास्तविक तात्पर्य किसी से छिपा न रहा ।

टेहरान में इस संधि-पत्र के विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ हुआ । उसी समय तत्कालीन बृटिश राजदूत सर सिसिल स्प्रिंग राइस ने मजलिस को एक पत्र लिखा जिसका सारांश यह था "मैंने सुना है कि फ़ारस में यह ख़बर फैल रही है कि रूस और इङ्गलैण्ड इस देश को बाँटना चाहते हैं । आप लोगों को मालूम है कि इस सन्धि-पत्र का मतलब और ही कुछ है । मशीरुलमुल्क को समझा दिया जाय कि रूस और इङ्गलैण्ड इन दो बातों पर सहमत हैं:-

(१) दोनों देश फ़ारस के घरेलू मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेंगे ।

(२) इस सन्धि-पत्र के अनुसार हमारे जो पारस्परिक प्रश्न उठेंगे उनसे फ़ारस की एकता और स्वतन्त्रता में कोई बाधा न पहुंचने पावेगी । सर एडवर्ड ग्रे यह भी कहते हैं कि अब तक रूस और इङ्गलैण्ड में कुछ विरोध भाव चला आ रहा है. उसके द्वारा फ़ारस को कोई क्षति न पहुंचे इसलिए हमने आपस में यह संधि कर ली है । अब भविष्य में फ़ारस को इन दोनों पड़ोसियों से सहायता मिलती रहेगी और इस कारण बाहरी कोई डर न रहते हुए वह अपनी समस्त शक्ति अपने घरेलू सुधार में लगा सकता है । अन्त में हम यही कहते हैं कि इस संधि-पत्र से हमारा तात्पर्य यही है कि फ़ारस सदैव स्वतन्त्र रहे ।"

पाठक ! जब संधि-पत्र और इस पत्र के शब्दों पर ध्यान देंगे और इनकी आगे की करतूत देखेंगे तो ज्ञात होगा कि यूरोपियन राजनीति में सत्य बोलना किस को कहते हैं । ख़ैर ! इस संधि के बाद फ़ारस में झगड़े बढ़ते ही गये । मुहम्मद अली शाह ने मजलिस को उखाड़ने के बड़े बड़े प्रयत्न किये । फ़रवरी सन् १९०८ में शाह पर एक बम् फेंका गया जिससे मोटर हांकनेवाले की मृत्यु हुई । शाह को बड़ा डर लगा । उन्होंने रूसी और बृटिश राजदूत से सहायता माँगी । इन दोनों राजदूतों ने मजलिस को धमकाना आरंभ कर दिया और शाह की ओर से रूसी राजदूत ने कुछ धमकियां मजलिस को लिख भेजीं ।

रूस और इङ्गलैण्ड की इन धमकियों को, जो फ़ारस के घरेलू मामलों से सम्बन्ध रखती हैं, हम किस प्रकार उपर्युक्त सन्धि-पत्र और स्थानीय राजदूत के पत्र के शब्दों में समझावें ।

थोड़े दिन के बाद शाह भयभीत होकर शहर के बाहर जा बसे । वहां पर उन्होंने कई देशभक्तों को सलाह करने के बहाने बुलाकर गिरफ्तार कर लिया । भाग्यवश उनमें से एक भाग आया और यों सब हाल लोगों को विदित हो गया । बस अब तो शाह को गद्दी से उतारने की चिन्ता होने लगी । शाह भी लड़ने की तैयारी करने लगा । एक रूसी जेनरल लियाकोफ़ को उसने अपना प्रधान सेनापति बनाया । फिर उसने कुछ रूसी कज्ज़ाकों द्वारा और कुछ अपनी फौज भेजकर शहर में दंगा मचवा दिया । जातीय पक्षवालों के घर लुटवाये गये और जातीय सभा का भवन भी घेर लिया गया । सौ देशभक्त जो वहाँ मौजूद थे उन्होंने बड़ी वीरता से उनका सामना किया । पर बेचारे कहाँ तक लड़ते ? अन्त में सब वीर गति को प्राप्त हुए । मजलिस के काग़ज़ात जला दिये गये और कई दिनों तक टेहरान में जेनरल लियाकोफ़ का मनमाना राज्य रहा । राजधानी की ख़बरें दूर दूर तक फैलने लगीं । करमान, इस्फ़हान और टेब्रीज के प्रान्तों से मदद आई । महीनों की लड़ाई के अन्त में देशभक्तों की जीत रही । टेहरान फिर से उनके हाथ आया और १६ जुलाई सन् १९०९ को शाह ने रूसी राजदूत के यहां शरण ली । उसी दिन एक बड़ी भारी सभा हुई और शाह को देश से निकाल दिया गया । अनन्तर उसके १२ बरस के लड़के सुल्तान अहमद मिर्ज़ा को गद्दी दी गई । पुराने

शाह की पेंशन कर दी गई। वे यूरोप के लिए रवाना हो गये और नई गवर्नमेंट स्थापित हुई।

(३)

अब हम पाठकों को उतना इतिहास सुना चुके जितना कि इस दुःखदायी कहानी के समझाने के लिए आवश्यक था। सन् १९१० का वर्ष भी समाप्त होने पर आया और हम उस स्थल पर आ गये हैं जहां से फ़ारस के जीवन में एक नई बात आरम्भ होती है। सब को आशा थी कि अब फ़ारस के बुरे दिन निकल गये और भविष्य में इसके लिए अच्छा ही होगा किन्तु "मन की मन माहिं रही", प्रकाश की ओर जाता हुआ रथ रुक गया और देश की अवस्था और भी विचित्र हो गई।

एमेरिका निवासियों का आगमन।

सन् १९१० के दिसम्बर में मजलिस ने देखा कि फ़ारस की आर्थिक दशा के सुधार के लिए किसी निष्पक्ष विदेशी की आवश्यकता है। यह निश्चय हुआ कि एमेरिकन गवर्नमेंट से कुछ आदमी मांगे जांय। प्रार्थना की गई और एमेरिकन गवर्नमेंट ने मि० मोर्गन शुस्टर को जाने के लिए कहा। उनके स्वीकार करने पर उनके भेजे जाने की सूचना भी फ़ारस को मिली। उनके साथ ४ एमेरिकन उनके नीचे काम करने को और आये। ये लोग १२ मई को टेहरान पहुंचे और "अतबक" महल में ठहराये गये। वहाँ पर आकर उन्हें मालूम हुआ कि रूसी गवर्नमेंट ने उन्हें रोकने का पूर्ण प्रयत्न किया था।

मि० शुस्टर ने लिखा है कि फ़ारस पहुंच कर जब उन्होंने वहां के अफ़सरों से बातचीत की तो उन्हें बहुत सन्तोष हुआ और आशा हुई कि वे उस अभागे देश के लिए अवश्य कुछ कर सकेंगे। उनकी यह आशा निर्मूल थी जैसा कि आगे मालूम पड़ेगा। उनके वहां पहुंचते ही बहुत से आदमी उनसे मिलने को आने लगे और सब की बातचीत में किसी न किसी प्रकार के षड्यन्त्र की चर्चा होती थी। "मि० शुस्टर आपके विरुद्ध शाह का मन्त्रि-मण्डल षड्यन्त्र रच रहा है," "यह षड्यन्त्रों के लिए बुरी जगह है" इत्यादि बहुत सी बातें सुनाई देती थीं। मि० शुस्टर इन बातों के सुनते सुनते घबड़ा जाते और सब को यही उत्तर देते थे कि कुछ चिन्ता नहीं है एमेरिकावाले षड्यन्त्रों को पसन्द करते हैं और उन्हीं के बीच में घिरे हुए अपने कार्य को सफलतापूर्वक करते हैं।

सबसे प्रथम एमेरिकनों के विरुद्ध जो आन्दोलन खड़ा किया गया वह एक बेल्ज़ियम मोन्स मौर्नार्ड ने (जो चुंगी का अफ़सर था) शुरू किया था। यह एक तुच्छ आदमी था। किन्तु फ़ारस की गड़बड़ में यह खूब बढ़ गया था। इसने मिस्टर शुस्टर की जगह पाने की खूब कोशिश की थी किन्तु मजलिस ने एक भी नहीं मानी क्योंकि वह एक निष्पक्ष मनुष्य चाहती थी। इसने बहुत उद्योग किया कि एमेरिकन अपने कार्य में सफल न हों, किन्तु मि० शुस्टर उसकी चालाकी भली प्रकार समझ गये थे। मि० शुस्टर से लोग पूछा करते थे कि अभी तक आप विदेशी राजदूतों से मिलने नहीं गये इसका क्या कारण है? थोड़े दिन में यह बात बाज़ार की आम चर्चा हो गई। परन्तु शुस्टर साहब न समझ सके कि इस मामूली बात पर इतना ज़ोर क्यों दिया जाता है? एक दिन रीजैन्ट ने उनसे पूछा कि वे बृटिश और रूसी राजदूतों से मिलने कब जायंगे? मि० शुस्टर ने उत्तर दिया "महोदय! यह बड़ा पेचीला सवाल है, मैं उत्तर देने से पूर्व यह जानना चाहता हूं कि "क्या मैं फ़ारस की गवर्नमेंट का नौकर नहीं हूं यदि मैं नौकर हूं तो मुझे अपनी गवर्नमेंट के नियमानुसार चलना चाहिये। मिस्टर शुस्टर फ़ारस की गवर्नमेंट के उच्च कर्मचारी थे और नियमानुसार विदेशी दूतों को पहले उनसे

मिलने आना चाहिये था। शत्रुओं की इच्छा थी कि यदि शुस्टर पहले मिलने चले जायं तो मजलिस यह समझेगी कि वे भी विदेशियों से मिले हुए हैं। जब शुस्टर ने पहले जाने में संकोच किया तब मजलिस की दृष्टि में उनकी प्रतिष्ठा और भी बढ़ गई और टेहरान भर के लोग कहने लगे कि "इन्शा अल्लह! अब की एक फिरंगी आया है जो विदेशियों के हुक्म में नहीं चलता।" मि० शुस्टर को मजलिस से भिड़ाने की यह पहली चाल थी किन्तु वे बच गये।

मि० शुस्टर का भी विदेशी राजदूतों से न मिलने में एक मतलब था। वे सुन चुके थे कि रूस उनकी कार्यवाही के विरुद्ध है इस कारण उन लोगों के मिलने से प्रथम ही वे मजलिस से कुछ बिल पास करा लेना चाहते थे जिससे कि उन लोगों को विरोध करने का अधिक अवकाश न मिले। मि० शुस्टर ने एक क़ानून पास कराया था, जिसके अनुसार लेन देन सम्बन्धी सब काम उनके हाथ में सौंप दिया गया, बैङ्कों में जो कुछ रुपया था सब प्रधान कोशाध्यक्ष के नाम कर दिया गया और बिना उनके हस्ताक्षरों के कोई चेक, नोट आदि उस समय के पश्चात् नहीं चल सकता था। जिस समय कोष का काम इनके हाथ आया कई करोड़ के लगभग गवर्नमेंट पर ऋण था। बिल के पास होते ही रूस ने खुल्लमखुल्ला उसका विरोध करना शुरू किया:-

> "Yet the very day that this law was passed, although it has been discussed publicly in the medjlis in the several previous cessions, the Russian legation openly declared war upon it and the Russian minister announced that the Belgian customs employees should not be subjected to the control or supervision of the American Treasurer-General."

हिमायती रूस की सहायता पाकर मोन्स मोनार्ड ने न तो क़ानून को ही माना और न शुस्टर को प्रधान कोषाध्यक्ष ही स्वीकार किया। किन्तु मजलिस ने उसे जब निकालने को धमका दी तो उसकी बुद्धि ठिकाने आ गई। रूस की यह चालाकी निष्फल हो गई।

अब तक टैकस वसूल करने का कोई अच्छा तरीक़ा नहीं था। बहुत सा तो वसूल नहीं होता था और बहुत सा वसूल करनेवाले खा जाते थे। मि० शुस्टर ने एक कोष रक्षिणी सेना बनाने की इच्छा प्रगट की जो कोष की रक्षा के अतिरिक्त वसूल हुए रुपये को टेहरान पहुंचा दे। इसी समय मिस्टर शुस्टर की मेजर स्टोकस नामक एक अङ्गरेज़ से जान पहचान हुई। उक्त मेजर साहब बड़े ही सज्जन थे। मि० शुस्टर ने कोषरक्षिणी सेना का अधिपति इन्हीं को बनाना चाहा। मे० स्टोकस फ़ारसी में भली प्रकार वार्त्तालाप कर सकते थे। वे फ़ारस की वर्त्तमान दशा से खूब परिचित थे और उसके साथ उन्हें कुछ सहानुभूति भी थी। इसलिए उपर्युक्त काम के लिए वे बहुत ही उपयुक्त समझे गये। किन्तु वह बृटिश सेना में नौकर थे इसलिए जब उक्त गवर्नमेंट से पूछा गया तो यह उत्तर मिला कि मेजर बृटिश सेना की नौकरी छोड़ दें तो वह सहर्ष फ़ारस के नौकर बन सकते हैं। स्टोकस इसके लिए उद्यत हो गये उन्होंने तार द्वारा अपना इस्तीफ़ा भेज भी दिया। इसका रूस ने विरोध किया इसलिए बृटिश गवर्नमेंट ने फ़ारस गवर्नमेंट को लिख भेजा कि यदि मेजर की दक्षिण प्रान्त में नियुक्ति हो तो हम दे सकते हैं अन्यथा नहीं। पाठकों को याद होगा कि सन १९०७ के सन्धि-पत्र० के अनुसार इङ्गलैण्ड को उत्तर में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं था। पाठकों ने इस प्रस्ताव की चाल समझी होगी यदि फ़ारस की गवर्नमेंट यह बात मान ले तो एक प्रकार से यह भी सिद्ध हो जाय कि वह

पूर्व कल्पित विभागों को भी मानती है। ख़ैर! स्टोक्स नौकर न हो सके। कहाँ तो इन शक्तियों ने सन् १९०७ की सन्धि के अनुसार प्रतिज्ञा की थी कि घरेलू मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेंगे कहां इन छोटी छोटी बातों में ऐसा पेचीला विरोध!

मुहम्मद अली शाह का आगमन।

जब स्टोक्स की नौकरी के लिए लिखा पढ़ी हो रही थी तभी समाचार मिला कि पुराने शाह मुहम्मद अली फिर से आ रहे हैं। उनके आने का समाचार अग्नि के समान देश भर में फैलने लगा। टेहरान में यह किम्वदन्ती हो गई कि रूस की गवर्नमेंट फिर से मुहम्मद अली को गद्दी पर बिठाना चाहती है और शाह के दो भाई भी इधर आ रहे हैं। इससे मजलिस को बड़ी चिन्ता हुई। २० जुलाई की रात को एक गुप्त मन्त्रणा हुई। मि० शुस्टर ने सम्मति दी कि मुहम्मद अली के विरुद्ध एक सेना शीघ्र भेज देनी चाहिये, जिसमें राजधानी के लोगों को ज्ञात हो जाय, कि हमारी गवर्नमेंट लड़ने को तैयार है। इससे उनके हृदय में व्याकुलता उत्पन्न न होगी। साथ ही एक विज्ञापन प्रकाशित हो जाना चाहिये कि जो कोई मुहम्मद-अली और उसके भाइयों को जीवित, अथवा मरा हुआ, पकड़कर लावे उसे सहस्रों का पारितोषिक मिलेगा। ख़ैर! थोड़ी बहुत जो सेना इकट्ठी हो सकी रवाना कर दी गई, और टेहरान में जो पुराने शाह के मित्र थे, गिरफ़्तार कर लिये गये।

मुहम्मद अली का पुराना सेनापति अरशादुद्दौला लड़ते लड़ते टेहरान से ४० मील की दूरी तक आ पहुंचा था! टेहरान से जो सेना भेजी गई थी उसकी मुठभेड़ इसी स्थान पर हुई। भाग्यवश इसी लड़ाई में सेनापति घायल हुआ और उसकी फ़ौज भाग गई। वह पकड़ कर डेरे में लाया गया। उसकी बातों ही से रूस की नेकनियती प्रगट हो गई। उसने कहा कि मुहम्मद अली शाह अपना वेष बदल कर और झूठी डाढ़ी लगा कर अपने को बग़दाद का ख़लील नामी सौदागर बताते हुए एक रूसी जहाज़ द्वारा यहाँ आये हैं और उसने यह भी कहा कि मेरे साथ मुहम्मद अली "वियाना" में रूसी राजदूत से दो बार मिले। उसने कहा कि हम प्रत्यक्ष में तो सहायता नहीं दे सकते, किन्तु यदि तुम जा सको तो इस समय मार्ग निर्विघ्न है।

"Arshadud-daula was then asked about the movements of the Ex-Shah in Vienna and after leaving there. He replied that at Vienna. Muhammed Ali and he had twice interviewed the Russian ambassador there who had told him………but that if he was able to do so the road was clear."

क़ैदी सेनापति दूसरे ही दिन मार डाला गया, और उसका शव बहुत देर तक टेहरान के बाज़ार में रखा गया, जिसमें सब लोग समझ जांय कि वह वास्तव में मार डाला गया है।

इसके मरते ही मुहम्मद अली का ताजिया ठण्डा हो गया! उसके भाई भी जातीय सेना से हार गये! उनका पक्ष बिल्कुल निर्बल हो गया! अपने देश को इस आफ़त से बचाने में सबसे अधिक काम इब्राहीम ख़ाँ नामक एक वीर ने किया था। यह पुलिस का प्रधान अधिकारी था। इसने राजधानी में शान्ति रखी और युद्ध में जाकर शत्रुओं को भी खूब हराया। इस प्रकार मुहम्मद अली का अन्तिम प्रयत्न निष्फल हुआ।

यहां पर एक बात और कहनी है! जिन दिनों मुहम्मद अली से लड़ाई हो रही थी उन दिनों रूसी राजदूत और शुस्टर एक दावत में मिले। भोजन के पीछे जब एकान्त में बातें हुईं तो रूसी राजदूत ने कहाः-

"And asked me bluntly whether I would not be willing to remain under Muhammad Ali when he was restored to power. He assured me that if I would do so, I would have the full support of the Russian Government and would be suitably compensated."

"क्या आप मुहम्मद अली के राजा होजाने पर सरकारी नौकर होकर रहना स्वीकार करेंगे? यदि आप ऐसा करेंगे तो रूसी गवर्नमेंट आप को सहायता देगी और पूरा पुरस्कार देगी!"

यह स्वार्थ की महिमा है। मि० शुस्टर को लालच दी जाती थी, कि वे पुराने शाह के पक्ष में हो जांय। क्योंकि पुराने शाह के राज्यत्व से ही विदेशियों का स्वार्थ सिद्ध होता। अब ज़रा १६०७ के सन्धि-पत्र से भी इस भाव का मिलान कर देखिये!

(४)

शाह भाग गये।

शाह और उसका भाई शाह-उस्सुल्तान दोनों हार कर फ़ारस से भाग गये। इस अनहोनी बात को देखकर रूस के छक्के छूट गये। उसे तो पूर्ण आशा थी कि मुहम्मद अली शाह की जीत होगी। ख़ैर! अब यहीं से उसने बेशर्मी लाद कर खुल्लमखुल्ला कारवाई आरम्भ कर दी। मजलिस ने यह निश्चय किया कि पुराने शाह और उसके भाई की जो जायदाद टेहरान के आसपास थी सब ज़ब्त कर ली जाय। इस काम को पूरा करने की आज्ञा मि० शुस्टर को दी गई। ज़ब्ती से पहले रूसी और अङ्गरेज़ी राजदूतों को इस बात की सूचना दे दी गई थी, और उस समय उन्होंने कोई आपत्ति उस विषय में नहीं की! किन्तु दूसरे ही दिन जब मि० शुस्टर के आदमी दख़ल लेने को पहुंचे, तो कुछ रूसी सिपाहियों ने उनको रोका और गोली छोड़ने की धमकी दी। जब मि० शुस्टर को य बात मालूम हुई तब उन्होंने रूसी राजदूत को रूस के सिपाहियों की इस अनुचित कार्रवा के विषय में लिख भेजा। दूसरे दिन मि० शुस्ट ने अपने असिस्टेंट मि० कायरन्स (Mr. Cairns) को कुछ आदमी लेकर मौक़े पर भेजा। फि भी रूसी सिपाहियों ने सामना किया। मि कायरन्स ने स्वयम् रूसी राजदूत से मिलक सब हाल कह सुनाया। कुछ वादविवाद बाद रूसी दूत ने साफ़ साफ़ कह दिया कि सिपाही उसी के हुक्म से वहां गये हैं और हट नहीं सकते। इस पर कायरन्स ने कहा दख़ल ज़बरदस्ती लेना पड़ेगा। यही बात शुस्टर साहब इस प्रकार लिखते हैं:-

"After some discussion the Russia Consul-general refused absolutely. I shoul state here that the Cousul-general durin the entire conversation gave Mr. Cairn and Mr. Merrill the impression that th force which was in the garden was statione there by the instruction of the Consul-general himself."

दख़ल ज़बरदस्ती ले लिया गया। रूसी राजदूत तो बहुत दिनों से ऐसा अवसर ढूं ही रहा था, कि किसी तरह रूस को फ़ारस मामलों में और भी अधिक हस्तक्षेप करने क कोई बहाना मिल जाय। बस अब क्या था उसे बहाना मिल गया और वह चिढ़ भी गया इसी समय मि० शुस्टर ने अपनी सफ़ाई लिए विलायत के टाइम्स अख़बार में एक खुल चिट्ठी छपवाई। इसमें रूसी कारस्तानी क खूब स्पष्ट शब्दों में आलोचना की गई थी। इस पर रूसी गवर्नमेंट बहुत बिगड़ी। दूसर नवम्बर को रूसी राजदूत मोन्स पोक्ल्यूस्क (Mons Poklewski) फ़ारस पर-राष्ट्र-सचिव के पास पहुंच ही तो गये और उन्होंने अपनी

गवर्नमेन्ट की ओर से एक अल्टीमेटम (अन्तिम प्रस्ताव) पेश किया । जिसमें यह कहा गया था कि शाह के भाई " शाह-उस्सुल्तान " के उद्यान भवन से दख़ल उठा लिया जाय और फ़ारस गवर्नमेंट रूस से उस झगड़े के लिए माफ़ी मांगे । उसी समय रूसी राजदूत ने कहा "मैं और कुछ सुनने को तैयार नहीं हूं, केवल "हां" या "ना" चाहता हूं ।" फ़ारस पर-राष्ट्र-सचिव ने कहा कि मैं इस मामले में केबीनेट (मंत्रिमंडल) के बग़ैर पूछे जवाब नहीं दे सकता । दूसरी से ग्यारह नवम्बर तक मन्त्रणा होती रही–किन्त कुछ भी निश्चय न हो सका । उसी दिन रूसी राजदूत के यहां से एक पत्र और आया । जिसमें लिखा था कि वे अपने प्रस्ताव का जवाब चौबीस घन्टे के भीतर चाहते हैं । इसी समय फ़ारस के मन्त्रिमण्डल में कुछ हेर फेर हुए । नई केबीनेट ने रूस से माफ़ी मांगना स्वीकार किया और चौबीस नवम्बर को उसने अपने पर-राष्ट्र-सचिव वातकुद्दौला को इस काम के लिए रूसी राजदूत के घर पर भेजा । इस बेचारे ने अपनी गवर्नमेंट की ओर से बड़ी नम्रता के साथ माफ़ी मांगी और सोचा कि सब मामला ठीक ठाक हो गया, किन्तु यह उसका भ्रम था । रूसी राजदूत ने उसी समय वातकुद्दौला से कहा "इस मामले में तो तुमने माफ़ी मांग ली और मैंने दे दी, किन्तु मेरी गवर्नमेंट की ओर से तुम्हें यह जतला देने की मुझे आज्ञा मिली है, कि हम शीघ्र ही एक दूसरा "अल्टीमेटम" और पेश करनेवाले हैं ।" यह सुनकर वातकुद्दौला के मुंह पर मुर्दनी छा गई ।

"The Persian ministers evidently believed that their self-abasement and the delivery of the estates would appease even Russian anger and settle the whole affair. They reckoned however, without knowledge of the true plans of Russian bureaucracy. A compliance by Persia with Russia's demands was the very last thing that the Russian Cabinet desired what Russia Plainly wanted was to have some pretext for continuing to occupy Northern Persia with her troops."

ख़ैर ! इसके केवल चार ही दिन के बाद २८ नवम्बर को रूसी गवर्नमेंट ने अपना दूसरा प्रस्ताव भी पेश कर दिया । इसमें उसने निम्नलिखित तीन बातें चाहीं थीं:–

(१) मि० शुस्टर और मि० लिकोफ़्की की बरख़ास्तगी ।

(२) फ़ारस गवर्नमेंट यह वचन दे कि भविष्य में किसी भी विदेशी को बग़ैर रूस और इङ्गलैण्ड के पूछे नौकर नहीं रखेगी ।

(३) रूसी फ़ौज के आने में जो ख़र्च पड़ा है उसको फ़ारस गवर्नमेंट चुका दे ।

यह फ़ौज वह थी जो रूस ने फ़ारस गवर्नमेंट को दबाकर पहला प्रस्ताव स्वीकार कराने के लिए भेजी थी । पाठकगण ! अब आप थोड़ी देर के लिए १९०७ वाले सन्धि-पत्र की बातों को स्मरण कीजिये और फिर इस प्रस्ताव का उनके साथ मिलान कीजिये । कहां तो वे बातें और कहां यह धींगाधींगी ! इस प्रस्ताव के प्रकाशित होते ही टेहरान में शोक छा गया । फ़ारस के नर-नारी यदि अपनी कमज़ोर गवर्नमेंट की ओर देखते हैं तो सिवाय निराशा के और कुछ नहीं पाते । क्या उनकी मजलिस रूस का विरोध कर सकेगी ? मजलिस में सन्नाटा छाया हुआ है! यदि प्रस्ताव को मानते हैं तो देश का गौरव जाता है ! और यदि नहीं मानते तो रूसी कज्जाकों की नंगी तलवारों का सामना करना पड़ता है । ख़ैर ! ज्यों त्यों करके पहली दिसम्बर को मजलिस की बैठक हुई । दोपहर का समय था । हज़ारों मनुष्य सभा भवन के हाते में यह देखने को उत्सुक खड़े थे कि देखें आज हमारे देश की स्वतन्त्रता जाती है या रहती

है! सभा भवन के भीतर दर्शकों में छिपकर रूसी गवर्नमेंट के बहुत से जासूस बैठे थे। रूस का प्रस्ताव पढ़ा गया! किन्तु उठकर विरोध कौन करता? कुछ देर तक सन्नाटा छाया रहा। आख़िरकार एक मुल्ला बड़े धैर्य के साथ गम्भीर स्वर से बोला "अल्लाह की यह मर्ज़ी हो सकती है, कि हमारी आज़ादी हमसे ज़बरदस्ती छीन ली जाय, किन्तु, भाई! उसे अपने ही हाथ से क्यों देते हो?"

"Simple words, these yet winged ones. Easy to utter in academic discussions; hard, bitterly hard, to say under the eye of a cruel and overpowering tyrant whose emissaries watched the speaker from the galleries and mentally marked him down for future imprisonment, torture, exile or worse."

शब्द साधारण तो थे किन्तु बड़े मार्के के थे। इसके बाद औरों को भी बोलने का साहस हुआ! यहां तक कि मजलिस के प्रायः सभी सभासदों ने रूस के प्रस्ताव का विरोध किया। मंत्रिमण्डल के मेम्बरों की राय थी कि प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जाय और जब मजलिस ने उसका विरोध किया तो वे उठकर चले गये। मजलिस के सभासदों ने लज्जा और मानहानि से देश के लिए मरना श्रेष्ठतर समझा। रूस को उम्मेद थी कि मजलिस को यह साहस कभी न होगा कि उसका प्रस्ताव नामंज़र कर दे। उसने मजलिस को ज़बरदस्ती तोड़ना चाहा। उत्तरी फ़ारस में अत्याचार होने लगा! रूस से फ़ौज भी आ गई! मसजिदें तोड़ी गईं! देशभक्त मुल्ला मारे गये! और क्या क्या न हुआ? मि० शुस्टर ने मजलिस से कई बार कहा कि उनके चले जाने से शायद फ़ारस में शान्ति हो जाय। इसलिए उनको एमेरिका चले जाने की आज्ञा दे दी जाय। किन्तु मजलिस ने उन्हें नहीं जाने दिया। क्योंकि वे लोग मि० शुस्टर में श्रद्धा रखते थे और जानते थे कि उनके चले जानेपर भी रूस सन्तुष्ट नहीं होगा। इसी समय मजलिस के शत्रुओं ने मि० शुस्टर को मारने की बहुत कोशिशें कीं किन्तु कोई भी सफल न हुए। देशभक्त नवयुवकों ने उनकी रक्षा के लिए एक बाडीगार्ड का दल बना रखा था। उनको भय था, कि यदि फ़ारस के दुर्भाग्य से मि० शुस्टर मारे गये, तो एमेरिका निवासियों का उन पर से विश्वास उठ जायगा। ईश्वर ने उनकी लाज रख ली। मि० शुस्टर का बाल भी बांका न होने पाया।

रूस ने मजलिस तोड़ने के लिए धमकियां भी दीं, और सभासदों को घूंस भी देनी चाही! किन्तु इन बातों का कुछ भी नतीजा न होते देख उसने अपनी फ़ौज को हुक्म दिया, कि वह सभा भवन को घेर ले, और बैठक न होने दे। यही नहीं उसने २४ दिसम्बर को मन्त्रिमण्डल के मेम्बरों से ज़बरदस्ती मजलिस के तोड़ने का हुक्म जारी करा दिया। मजलिस के सभासदों को जान से मारे जाने की धमकी दी, और एक नये प्रकार की गवर्नमेंट स्थापित कर दी। जब मजलिस टूट गई, तब मि० शुस्टर का नौकर रखनेवाला भी कोई न रहा, और नई गवर्नमेंट ने उनको लिख भेजा कि रूस के प्रस्ताव के अनुसार अब उनको नौकर रखना फ़ारस की गवर्नमेंट के लिए असम्भव है। अतः उन्होंने चार्ज देकर एमेरिका चला जाना निश्चय कर लिया। इनके जाने के थोड़े ही दिन बाद अन्य एमेरिकन कर्मचारी भी अपने देश को लौट गये।

फ़ारस की उन्नति उसकी आर्थिक दशा के सुधार पर ही निर्भर थी। मि० शुस्टर काम बहुत अच्छी रीति पर कर रहे थे। यही रूस की नाखुशी का कारण हुआ, और उनके वहां से चले जाते ही फ़ारस की उन्नति की आशा निर्मूल हो गई। जब किसी देश की स्वतंत्रता छीनी जाती है तब विजेता प्रायः कह

करते हैं कि हम उस देश में सभ्यता का प्रचार करेंगे और प्रजा-प्रिय संस्थाएँ स्थापित करेंगे, किन्तु फ़ारस के विषय में ऐसा कोई भी बहाना ठीक नहीं जँचता। कौन कह सकता है कि रूस फ़ारस में सभ्यता के प्रचार के लिए गया है ?

"In some cases where the independence of the people has been wiped out there has been at least a quasi justfication for the act, such as the advancement of civilisation or the creation of better political institutions. In Persia's case no such excuse existed. No serious claim can be made that Russia will further the cause of civilisation and progress in Persia. Throughout the entire controversy··· every utterance and claim has been based on a cynical selfishness that shocks all sense of Justice. It is in the pursuit of "········· Interests······" that innocent people have been slaughtered wholesale."

स्वार्थ तत्परता प्रधान है, और उसी के निमित्त सहस्रों निर्दोष नर-नारियों की हत्या हुई।

अब फ़ारस का ईश्वर ही मालिक है।

हमारा हिन्दी के प्रति कर्त्तव्य।

देश के सौभाग्य से जातीयता का प्रवाह प्रबल वेग से चल पड़ा है। हम अनुभव करने लग गये हैं कि एकभाषा का होना अतीव आवश्यक है। भारत मात्र के लिए एकभाषा का होना जातीयता के भाव की पुष्टि में बड़ा सहायक होगा। इस कारण यह प्रश्न हम लोगों के लिए बड़े महत्व का है। इसकी विवेचना बड़े बड़े विद्वानों ने की है। बहुमत से यह स्थिर हुआ है कि यदि कोई भाषा समस्त देश व्यापिनी हो सकती है तो वह हिन्दी भाषा ही है। इस उच्च पदवी के पाने का सौभाग्य हिन्दीही को प्राप्त है। हिन्दी-भाषा भाषी उच्च स्वर से इसकी प्रशंसा करते हैं ! और इसमें अपना गौरव समझते हैं, कि हमारी भाषा ही किसी समय सर्वोपरि स्थिर होगी। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं, कि हिन्दी-भाषा ही सरलतापूर्वक सर्व देशव्यापिनी हो सकती है। हिन्दी-भाषा-भाषियों की संख्या महान् है और यह भाषा उत्तरीय भारत में सरलतापूर्वक समझी जा सकती है। यह बात और भाषाओं में नहीं है। इसकी उत्कृष्टता के और भी कई कारण हैं। जिनके उल्लेख करने की यहां पर आवश्यकता नहीं है। हिन्दी-भाषा को इस उच्चस्थान के योग्य बनाने का भार विशेष कर उन्हीं लोगों पर है जिनकी यह मातृभाषा है। यह एक महत् कार्य है। बहुत बड़े व्यवसाय तथा प्रयत्न करने से ही हम उस शुभ दिन को देख सकते हैं, कि जब हमारी मातृभाषा भारत के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक अपना आधिपत्य जमावेगी। हमको ठीक ठीक समझ लेना चाहिये कि हिन्दी की आधुनिक दशा क्या है ? भारत के अन्य भाषाओं की क्या अवस्था है? हमको किन किन त्रुटियों की पूर्ति करना है? जिसमें हमारी मातृभाषा इस योग्य हो जावे, कि अन्य भाषा-भाषी भी उसको अपनावें। हम को अच्छी तरह से जान लेना चाहिये कि किन उपायों के अवलम्बन करने से हम अपनी भाषा को उत्कृष्ट बना सकते हैं ? हमें यह कहते शोक होता है ! कि हम लोगों ने इस बात को अभी अच्छी तरह नहीं जाना है, कि हिन्दी को समस्त भारत की भाषा बनाने के लिए हमारा क्या कर्त्तव्य होना चाहिये ? यदि जाना भी है, तो हम उस आत्म-बलिप्रदान के लिए प्रस्तुत नहीं हैं जिसके बिना हम कदापि अपने उद्देश्य को

फलीभूत नहीं कर सकते। हम केवल सभाओं में यह कहना जानते हैं कि हिन्दी ही समस्त भारत की मातृभाषा हो सकती है। परन्तु इस विचार को कार्य में परिणत करने के लिए चेष्टा तथा उद्योग नहीं करते। हमको अपनी भाषा की वर्त्तमान अवस्था पर सबसे पहले दृष्टि देना चाहिये। अवश्यमेव हिन्दी की बड़ी शोचनीय दशा है। गद्य का अङ्ग तो बिल्कुल छूछा ही है। आजकल हिन्दी-भाषा में अच्छे कवि भी नहीं हैं। अधिकतर ही तुकबन्दी करनेवाले हैं। इसका कारण सरस तथा प्रौढ़ कविता क्वचित् ही होती है।

जो कुछ हिन्दी का नाम है वह इसके प्राचीन कवियों की करतूत है। हमारे प्राचीन काव्यग्रन्थ बड़े उत्तम हैं। वे भारत की अन्य भाषाओं के टक्कर के ही नहीं वरन् किसी किसी से बढ़े चढ़े भी हैं। परन्तु काव्य को छोड़कर साहित्य के अन्य विभागों की अवस्था बड़ी शोचनीय है। हमें इस समय यह देखना चाहिये, कि अन्य भाषाओं के साहित्य की क्या अवस्था है? जब हम बङ्गला तथा मराठी-साहित्य की ओर दृष्टि फेंकते हैं, तो आकाश पाताल का अन्तर प्रतीत होता है। बङ्गाली-भाषा इस समय बहुत उन्नति कर रही है और यही मुख्य कारण है कि हमारे बङ्गालीभाई हमारी अपेक्षा बुद्धि और विद्या में बढ़े चढ़े हैं। वे अपनी मातृभाषा का आदर करते हैं। वे उसकी उन्नति के लिए रात दिन चेष्टा करते हैं। क्यों न हो! जो अपनी माता से प्रेम करता है वह अवश्यमेव सुखी होगा। बङ्गाल का आधुनिक काव्य बहुत बढ़ा चढ़ा है। बङ्ग-देश ने वर्त्तमान समय में भी बड़े बड़े कवियों को पैदा किया है जिनकी कीर्ति स्तम्भ के समान अचल रहेगी। हमारे प्रसिद्ध देशभक्त श्रीरवीन्द्रनाथ टैगोर इस समय संसार के सबसे बड़े गीतिकाव्य रचयिता (lyrie poet) समझे जाते हैं अभी अधिक दिन नहीं हुए यूरोप में बड़ी धूमधाम से उनका स्वागत हुआ था। यूरोप के बड़े बड़े विद्वान् कवि तथा साहित्य लेखक सभी उनका आदर करते हैं।

माइकेल मधुसूदन दत्त का "मेघनाद बध" एक बड़ा उत्तम काव्य है। मधुसूदन दत्त की उपमा मिल्टन से दी जाती है। कहने का तात्पर्य यह है, कि बङ्गाली विद्वान् अपनी मातृभाषा की सेवा करने में कसर नहीं करते। वे हमारे यहां के विद्वानों के समान उसका तिरस्कार नहीं करते। हमारे यहां तो जिन्होंने बहुत अच्छी शिक्षा पा ली है। वे हिन्दी-भाषा में लेख लिखना तथा ग्रन्थ रचना अपना अपमान समझते हैं। वे अपनी माता से प्रेम करना कौन कहे उसका अनादर करते हैं। बङ्गालियों को देखिये! वे अङ्गरेज़ी के बड़े भारी विद्वान् होने पर भी अधिकतर अपनी भाषा ही में अपने विचार प्रगट करते हैं। उदाहरण के लिए श्रीरवीन्द्रनाथ टैगोर ही को ले लीजिये। आप अङ्गरेज़ी के एक बहुत बड़े विद्वान् हैं। इसके प्रमाण के लिए इतना कहना पर्याप्त होगा, कि अभी यूरोप में जब आपने स्वरचित कतिपय गीतों का अङ्गरेज़ी अनुवाद शुद्ध करने के लिए एक विद्वान् को दिया था तब उन्होंने उसे पढ़कर यह कहा कि इससे बढ़कर अनुवाद नहीं हो सकता। ऐसा होनेपर भी आप अपनी ही मातृभाषा में कविता करते तथा ग्रन्थ लिखते हैं। गद्य की ओर जब हम ध्यान देते हैं तो वहां भी उन्नति के चिह्न पाते हैं। बङ्गला का गद्य सर्वाङ्ग सुशोभित है। बङ्किमबाबू के नाम से कौन नहीं परिचित है? ऐसा उपन्यास लेखक बङ्ग भूमि में कोई नहीं उत्पन्न हुआ। आपके कुछ उपन्यासों का अनुवाद अङ्गरेज़ी तथा फ्रेञ्च भाषा में भी हुआ है। यह इनके सुन्दर होने का एक मात्र प्रमाण है। फ्रेज़र साहब नें अपने 'लिटरेरी हिस्टरी आव इण्डिया' नामक ग्रन्थ में बङ्किमबाबू की लेखनशैली की बड़ी ही प्रशंसा की है। नाटक भी एक से एक बढ़कर हैं। गिरीशबाबू नाट्याचार्य की पदवी से सुशोभित किये गये

हैं। विश्वकोष भी एक बङ्गाली विद्वान् ने लिख कर अपनी मातृभाषा के गौरव को बढ़ाया है। इस समस्त उन्नति का फल यह हुआ कि प्रत्येक बङ्गाली बच्चा अपनी मातृभाषा से प्रेम करने लग गया है और उसके गौरव को जानने लगा है। बङ्गला-साहित्य की उत्कृष्टता का दूसरा प्रमाण यह है, कि हिन्दी के लेखकों को इस भाषा का सहारा लेना पड़ता है प्रायः सभी हिन्दी के सुलेखक बङ्गला-भाषा से परिचित हैं। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने भी इसका आश्रय लिया था। इसकी भाषा बड़ी मधुर और कोमल है। क़रीब क़रीब यही दशा मराठी की भी है। मराठी में यूरोप के प्रसिद्ध लेखकों के कई ग्रंथों का अनुवाद हो चुका है और अन्याय प्रकार से भी महाराष्ट्रों ने अपने साहित्य की वृद्धि की है। गुजराती-भाषा भी अब उन्नति के पथ पर आरूढ़ हो रही है। यदि कोई भाषा सबसे पीछे है तो वह हिन्दी ही है! तिस पर दावा यह कि यही समस्त भारत की भाषा हो सकती है, और होगी! इस मिथ्याभिमान से कुछ भी काम न चलेगा। यदि हम सच्चे हृदय से अपनी मातृभाषा की उन्नति चाहते हैं, तो हमारा कर्त्तव्य है कि माता का पूजा करें! माता से प्रेम करना सीखें! हमको याद रखना चाहिये कि अन्य प्रान्तवासी हमारी भाषा को कभी स्वीकार नहीं करेंगे, जब तक हमारा साहित्य उनकी भाषा के साहित्य से बढ़ा चढ़ा न हो, जब हमको बङ्ग-भाषा का आश्रय लेना पड़ता है, जब हम उसके गुणों पर मुग्ध हो मुक्तकण्ठ से उसकी प्रशंसा करते हैं और उससे प्रेम करते हैं तो यह कब सम्भव है कि बङ्गाली जिनकी वह मातृभाषा है, जिनके उद्योग से वह इतनी वृद्धि को प्राप्त हुई है, हमारे कहने से उसको त्याग कर हिन्दी का आदर करें? जिस प्रकार बिना बङ्गालियों की प्रार्थना के ही हमने स्वयम् बङ्गला-भाषा को आदर दिया है इसी प्रकार जब हमारा हिन्दी-भाषा का साहित्य भी अपनी पूर्ण उन्नति को प्राप्त होगा तब वे बिना हमारे कहे स्वयम् इसका स्वागत करेंगे। उस समय थोड़े ही परिश्रम से हम इसको देशव्यापी बना सकेंगे। इस कारण मेरा हिन्दी समाज से नम्रतापूर्वक निवेदन है कि सबसे प्रथम हिन्दी-साहित्य की वृद्धि करना ही उसका मुख्य कर्त्तव्य होना चाहिये। इसीके द्वारा हमारी हिन्दी भाषा का कल्याण हो सकता है! अन्यथा नहीं! जब हम किसी बङ्गाली से कहते हैं कि हिन्दी-भाषा ही भारत की भाषा होगी तब वह हमसे पूछता है कि तुम्हारे यहाँ कौन कौन से अच्छे ग्रन्थ हैं? जो हमारे बङ्किमबाबू तथा रवीन्द्र बाबू के ग्रंथों की टक्कर के हों। सच भी है जब उसको हमसे कुछ सीखना ही नहीं, जब हम उसको नवीन विचार नहीं दे सकते तो कैसे उसका प्रेम हिन्दी की ओर उपज सकता है? यह समय हल्ला मचाने का नहीं है। कहावत है "अध जल गगरी छलकत जाय" जो लोग कुछ करते नहीं वे ही हल्ला मचाया करते हैं। हमको चाहिये चुपचाप तन मन धन से इस महत् कार्य में लग जावें। जिसमें माता का मुख उज्ज्वल हो, और संसार में हमारा नाम भी स्थिर रहे। मुझे हिन्दी के विद्वानों से और भी एक प्रार्थना करनी है, आशा है वे मेरी प्रार्थना पर अवश्य ध्यान देंगे। साहित्य की वृद्धि करने का एक सुगम उपाय यह भी है कि अन्य भाषा के अच्छे अच्छे ग्रन्थों का अनुवाद किया जावे। यूरोप में इस कार्य के लिए विद्वानों की एक समिति है! जिसका कार्य यही है कि अच्छे अच्छे ग्रन्थों का अनुवाद यूरोप की मुख्य मुख्य भाषाओं में करे। जब कोई यूरोप का प्रसिद्ध लेखक अपनी भाषा में कोई ग्रन्थ लिखता है, तब वह समिति उस ग्रंथ का अनुवाद यूरोप की मुख्य मुख्य भाषाओं में कर डालती है। इससे यूरोप के साहित्य की वृद्धि होती है। एक देश का दूसरे देश के प्रति प्रेम तथा आदर बढ़ता है। क्या अच्छा होता यदि हमारे देश में भी ऐसी ही एक समिति संगठित

की जाती, परन्तु इसके लिए अभी समय दूर है। हां! हर एक प्रान्त कम से कम इतना अवश्य कर सकता है कि अपने प्रान्त की भाषा में अन्य भाषाओं के अच्छे अच्छे ग्रन्थों के अनुवाद करने के लिए एक ऐसी समिति स्थापित करे। हिन्दी-भाषा को ऐसी समिति की बड़ी आवश्यकता है। यह कार्य तो शीघ्र ही आरम्भ कर देना चाहिये। परन्तु यह कार्य उत्तमता पूर्वक तब तक नहीं हो सकता जब तक हमारे यहां के अङ्गरेज़ी पढ़े युवक हिन्दी के अच्छे लेखक नहीं बनते। कारण यह है कि इस कार्य को वे ही कर सकते हैं, जिनको अङ्गरेज़ी तथा अन्य यूरोपीय भाषाओं का ज्ञान है। परन्तु हमारे यहां के विद्वान् जो अङ्गरेज़ी के पण्डित हैं अभाग्यवश अधिकतर हिन्दी के अच्छे लेखक नहीं होते। क्योंकि उन्होंने अपनी मातृभाषा से प्रेम करना तो सीखा ही नहीं। ऐसी अवस्था में हिन्दी के पण्डितों का यह कर्त्तव्य है कि वे अङ्गरेज़ी शिक्षित युवकों को हिन्दी-भाषा का ज्ञान करावें। सुन्दर हिन्दी लिखने की योग्यता पैदा करने के लिए तथा हिन्दी की ओर प्रेम का अंकुर उपजाने के लिए इस बात की आवश्यकता है कि अंगरेज़ी शिक्षित युवक अपनी भाषा का ज्ञान प्राप्त करें। इसका साधन हिन्दी-भाषा के काव्यों का ज्ञान प्राप्त करना ही है इस में यह एक बड़ी अड़चन पड़ती है कि काव्य के ग्रन्थों की अच्छी टीकाएँ नहीं मिलतीं। प्राचीन टीकाकार अधिकतर पद्य में ही टीका किया करते थे, जो विशेष उपकारी नहीं हो सकतीं। और जो गद्य में भी है उनकी भाषा की शैली प्राचीन ढंग की है। जिस प्रकार अंगरेज़ी के अच्छे ग्रन्थों की टीकाएँ लिखी जाती हैं उसी ढंग की टीकाओं की इस समय आवश्यकता है, हम भी चाहते हैं, कि हमारे विद्वान् हिन्दी के मुख्य मुख्य काव्य ग्रन्थों की टीकाएँ सर्वोत्तम बनावें, जिस प्रकार डाइटेन वेरीटी तथा रोल्फ़ ने शेक्सपियर के नाटकों की टीकाएँ लिखी हैं। ये टीकाएँ इस ढंग से लिखी जानी चाहियें जिसमें वे अंगरेज़ी शिक्षित युवकों को रुचिकर प्रतीत हों! जिसमें वे उनको विशेष लाभदायक सिद्ध हो सकें! इस कार्य के लिए एक उत्तम कोश की भी आवश्यकता है। आशा है नागरी प्रचारिणी सभा जिसने इस कार्य को अपने ऊपर लिया है शीघ्र ही एक सर्वोत्कृष्ट कोश प्रस्तुत कर देगी। जब ये सब साधन विद्यमान होंगे तब हमारी भाषा की वृद्धि बड़ी सुगमता पूर्वक होगी। सबसे पहले हमें इन्हीं त्रुटियों को दूर करने का उपाय करना चाहिये। यदि हिन्दी विद्वानों का ध्यान इस कार्य की ओर गया तो मैं अपना परिश्रम सार्थक समझूंगा।

"अनन्त"।

गुरु दक्षिणा।

(गल्प)

सवेरा हो गया है प्रातःकाल की मन्द सुगन्धित समीर धीरे धीरे चल रही है। विक्रमसिंह नामक एक तेजस्वी नवयुवक दोनें में कुछ फूल लिए हुए एक कुटी के द्वार पर खड़ा है। कुटी के भीतर कोई नहीं है। गुरुदेव स्नान करके अब तक नहीं आये। आ उन्हें लौटने में बहुत देर होगई है।

विक्रमसिंह ने फूलों का दोना एक ओ रखकर पुकारा "अजया"।

किसी ने उत्तर न दिया। तब विक्रम पा के एक बड़े पत्थर के ऊपर जाकर बैठ गय

और धीरे धीरे अपना बनाया हुआ एक भजन गाने लगा ।

निकट ही पर्वतराज हिमालय की विराट देह प्रातःकालीन सूर्यकिरणों के अपूर्व आलोक से आलोकित हो रही थी । कुहेलिकामुक्त नील अरण्य, कुसुमचित्रित लताकुञ्ज, स्वप्नदृष्ट परीराज्य के समान अपना सौंदर्य विस्तार कर रहा था । नील आकाश कैसा उदार, महान और पवित्र है ! विश्वलक्ष्मी ने मानो समस्त सौन्दर्य इसी तपोवन को प्रदान कर दिया है ।

विक्रमसिंह गाना बन्द करके इस मनोमुग्धकारी वन की विचित्र शोभा को देखने लगा । उसकी समस्त इन्द्रियां एकाग्र होकर प्रकृति के इस सुखमामृत को पान करने लगीं । यह सौन्दर्य उसके लिए नया न था । कोई दश वर्ष से वह इस पुण्य तपोवन की गोद में लालित पालित हो रहा था । तथापि वह समझता था कि प्रकृति महारानी प्रति ऊषा को नूतन सौन्दर्य और नवीन सुखमा का अर्घ्य लेकर विश्वदेवता का पूजा करने आती हैं । इस पवित्र कानन की पक्षिकुलकूजित वनच्छाया में बैठकर उसने काव्य, व्याकरण और दर्शनशास्त्र का अध्ययन किया है । इसी प्रशस्त तृणमण्डित भूमि पर अस्त्र विद्या और मल्लयुद्ध के साथ उसका प्रथम-परिचय हुवा था । इसी पत्थर पर बैठकर उसने सङ्गीतशास्त्र का अनुशीलन किया है । शीतकाल के स्निग्ध मधुर प्रभात में गुरुदेव के पास बैठ कर जिस समय वह आदिकवि वाल्मीकि और वेदव्यास की अपूर्व काव्यसुधा को पान करता था और महाकवि कालिदास, भवभूति तथा माघ के सरस और हृदयग्राही श्लोकों की व्याख्या और विश्लेषण में निमग्न होता था उस समय पुष्पगंन्ध व्याकुल पवन ऊषा की किरणों से लिपट कर उसके ग्रन्थों के प्रत्येक पत्र से खेल करती थी और उसकी कल्पना को चञ्चल कर देती थी । प्राचीन काल के विश्वप्लावी गौरव की मरीचिमाला वर्त्तमान में निविड़ तमोजाल को विदीर्ण करके भविष्य के प्रसन्न आकाश में क्या कभी विपुल तेज से प्रदीप्त हो उठेगी ?

कल्पना के स्वप्न और सौन्दर्य के ध्यान में विक्रमसिंह अत्यन्त निमग्न हो रहा था । इस लिए वह न जानसका कि गुरुदेव शङ्करस्वामी उसके पीछे आकर खड़े हैं ।

गुरुदेव ने बुलाया "विक्रम" ।

विक्रम ने चौक कर पीछे देखा और गुरु को देखतेही प्रणाम किया ।

स्निग्ध और प्रशान्त स्वर से सन्यासी ने कहा–वत्स ! तुम्हारे पिता ने तुम लोगों को लेजाने के लिए आदमी भेजा है ! तुम्हारी शिक्षा भी समाप्त हो चुकी है ! हम जितनी विद्यायें जानते थे सब तुम लोगों को सिखा चुके ! अब घर जाओ । तुम्हारे पिता की भी ऐसी ही इच्छा है और हमारी भी यही आज्ञा है । विजय कहाँ गया ? भोजनादि के अनन्तर यात्रा की तैयारी करना होगा । "

शिक्षा समाप्त ?

मनुष्य जीवन में तो शिक्षा का अन्त हो नहीं सकता । आजन्म तपस्या करने पर भी कोई ज्ञान रूपी समुद्र का पारावार नहीं पा सकता, फिर भला बाईस वर्ष का नवयुवक विक्रम अनन्त ज्ञानराज्य का अधिकारी कैसे हो सकता है? परन्तु गुरुदेव की आज्ञा अलङ्घनीय है । उसे अवश्य पालन करना चाहिये । और पिता की भी ऐसी ही इच्छा है । इससे इस विषय में अब प्रतिवाद करना ठीक नहीं है ।

हे तुषार किरीटिन् हिमालय ! हे प्रियतमे शैलराजि ! आपसे आज यह मेरी अन्तिम भेंट है । कलकलनादिनी जाह्नवी के स्फटिक समान स्वच्छ पुण्यसलिल में अन्तिम स्नान होगा ! फल पुष्पिते वनराजि आज मेरी तेरी स्नेहक्रोड़ में विक्रम अब विश्राम न लेगा ?

युवक नें सिर उठाकर ऊपर देखा। उसका हृदय परिपूर्ण हो उठा! यह क्या? आंखों से मोती क्यों झड़ने लगे।

गुरुदेव ने कहा :—"वत्स! कातर न हो। गीता का उपदेश स्मरण करो। केवल शास्त्रावलोकन करना ही मनुष्य का एकमात्र धर्म नहीं है। यदि कर्म के द्वारा सत्य की प्रतिष्ठा न कर सके तो सारी शिक्षा व्यर्थ है। तुम्हारे सामने विस्तीर्ण कर्मक्षेत्र है। इतने दिन तक मैंने जो कुछ सिखाया है अब कर्म के द्वारा उसका फल देखना चाहता हूं।"

विक्रम ने हाथ जोड़ कर कहाः—"आप भी तो हमारे साथ चलेंगे? यदि हम गुरुदक्षिणा न देंगे तो हमारी सब शिक्षा व्यर्थ जायगी।"

स्वामी जी हँस पड़े! वह हँसी कैसी मधुर और कैसी आनन्ददायिनी थी? शिष्य के मस्तक पर हाथ रख कर प्रसन्नतापूर्वक सन्यासी महाराज बोले :—"नहीं विक्रम, अभी हम तुम्हारे साथ न जायँगे। आवश्यकता पड़ने पर तुमसे मिलेंगे। रही दक्षिणा की बात। सो तुम जानते ही हो कि सन्यासी को किसी वस्तु के लेने का अधिकार नहीं है। धन रत्न आदि की आकांक्षा मन में आते ही सन्यास व्यर्थ हो जाता है। हमारा जो कुछ है सो भगवान को अर्पित है। परन्तु हम भी मनुष्य हैं; इस लिए कामना को पूर्ण रूप से जय नहीं कर सके। एक वासना अब भी हमारे हृदय में है। वह कामना बाल्यावस्था में अङ्कुरित हुई थी और यौवन तथा वार्द्धक्य के साथ साथ पल्लवित हो गई है, अब देखें फलवती कब होती है। तुम्हारी हमारी और सब लोगों की जननी-मातृभूमि—हमारी कामना का धन है! माता को कभी नहीं देखा; परन्तु मातृभूमि के दर्शन ज्ञान सञ्चार के साथ ही साथ किये हैं। पहले पहल जिस दिन जननी की सत्ता का अनुभव किया था उसी दिन उसी मूहूर्त में संसार का सुखोपभोग त्याग दिया था। उसी 'स्वर्गादपि गरीयसी' जननी जन्मभूमि की हम हृदय से भक्ति करते हैं।"

सन्यासी के नेत्र न मालूम किस पवित्र आलोक की दीप्ति से उज्वल हो उठे! कण्ठस्व भी कुछ कुछ काँप उठा! स्वामीजी बोलेः- "वत्स जब हमने भगवान का रूप कल्पना करने की चेष्टा की है तभी हमारे सामने माता की विषाद कातर करुणामूर्ति आ खड़ी हुई है। जब हम विश्वस्रष्टा का गौरव कीर्तन करते हैं तभी हमारी जिह्वा पर भारतमाता का वन्दना गीत आ जाता है। ऋषिवन्दिता माता, सुजला सुफला जननी, वेदमन्त्रपूजिता देशलक्ष्मी, हमारे भीतर और बाहर बिराजमान है। वत्स! उसी गरीयसी, लोकपालिनी जननी की पूजा में, उसके कल्याण करने और दुख दूर करने में तुम अपनी समस्त साधना और सम्पूर्ण शिक्षा का प्रयोग करना! यही तुम्हारी गुरुदक्षिणा है। दस वर्ष तक यही शिक्षा, यही भाव तुम्हारे हृदय में सञ्चारित और बद्धमूल करने को चेष्टा की गई है। समाज में लौट जाओ, वहाँ मनुष्यों के संसर्ग से जन्मभूमि के प्रकृतचित्र की यथार्थ अवस्था को देख सकोगे। हे वत्स! उस समय अधीर न होना! उस दृश्य को देख कर हताश होने का कोई प्रयोजन नहीं है। शिक्षा औ संयम के बल से हृदय दृढ़ करके कर्म क्षेत्र जितनी विपद् और बाधायें आवें उनका वीरत के साथ सामना करना। हम आशीर्वाद दे हैं कि हमारी आशैशव साधना और यौव का स्वप्न तुम्हारे द्वारा सार्थक और सफल हो"

गुरुजी? क्या "आशीर्वाद की झोली का मुं हमारे ही लिए बन्द है? क्या हमनें भी भाई क तरह गीता, दर्शन और काव्य नहीं पढ़ा है?।

विजयसिंह को सहसा सामने देखक शङ्करस्वामी कुछ विस्मित हुए। उन्होंने पूछ "तुम कहाँ थे, विजय?"

"इस वृक्ष की डाल पर। आप तो भा

साहब को आशीर्वाद देने में व्यस्त थे! हमें कैसे देख पाते ?"

स्वामी जीने हँसकर कहा:--"विजय का लड़कपन कभी न जायगा! क्या प्रत्येक समय वृक्ष पर चढ़ना अच्छा है ?"।

"फिर क्या करें, गुरुजी ? दिनरात गीता के श्लोक, पातञ्जलि के सूत्र और पाणिनि का तद्धित-ये सब हमें अच्छे नहीं लगते। वृक्ष. लता, पहाड़, नदी, पत्तो, और फूल इन सब के सामने मुझे तो पोथियां नहीं जँचतीं। महाराज, पिता ने जो आदमी भेजा है वह कहाँ है?"।

"चलो, उसके पास तुमलोगोंको ले चलें!"

(२)

संध्या की छाया गाढ़तर होती जाती है! विलास और लालसा का लीलाक्षेत्र, व्यभिचार षड्यन्त्र और विश्वासघात की रङ्गभूमि मुग़ल-राजधानी दिल्ली को पीछे छोड़कर विक्रम और विजय ने गाँव का रास्ता पकड़ा। अब बहुत दूर नहीं है। यह देखो उनकी बृहत पुरी के शिखर सन्ध्या के स्तिमित आलोक में दिखाई दे रहे हैं। सवारियों को विदा करके दोनों भाई नौकरों के साथ पैदल चलने लगे। श्यामा संध्या में जनहीन पगडण्डियां और इधर उधर फैले हुए विस्तीर्ण क्षेत्र दोनों के हृदय में बहुत दिनों की विस्मृतप्राय शैशवस्मृति की याद दिला रहे हैं। आज दस वर्ष के बाद वे लोग इस सुख-स्वप्नमय बाल्यावस्था के क्रीड़ाक्षेत्र और ग्राम के सुखदुःखमय आवर्त्त में लौट कर आ रहे हैं। सरल हृदय, शैशव सहचर, प्रियदर्शन, स्नेहभीरु वृद्धगण, क्या इतने दिनों बाद भी उन्हें देखकर पहचान सकेंगे ?।

पिता का स्नेहप्रफुल्ल सौम्यस्वरूप, दीप्त नयन, और भावदृढ़ मुखमंडल, उन्होंने बहुत दिनों से नहीं देखा था। बीच में एक बार गुरु के आश्रम में वे उन लोगों को देखने गये थे पर यह बहुत दिन की बात है। उसके बाद फिर भेंट नहीं हुई। आज वे लोग पिता की चरणवंदना करके धन्य होंगे, और उनका आशीर्वाद ग्रहण करेंगे। क्या आनन्द है, क्या उल्लास है। भावावेश के कारण विक्रमसिंह का हृदय बड़े वेग से धड़कने लगा। शैशव ही में वे लोग मातृहीन हो गये थे। उन्हें इसकी याद भी नहीं। उस समय विक्रमसिंह तीन वर्ष के थे और विजय केवल एक ही वर्ष के। पिता की स्नेह क्रोड़ ही में वे लोग लालितपालित हुए थे। बहुत से दासदासियों के रहने पर भी पिता अपने हाथ से उन लोगों को खिलाते और अपने साथ घुमाने ले जाते थे। एक ही पलँग पर तीनो जने सोते थे। आज कितने दिनों के बाद वे लोग फिर अपने स्नेहमय पिता के अनिर्वचनीय सङ्गसुख का उपभोग करेंगे।

जिस समय वे लोग नगर के द्वार पर पहुंचे उस समय सन्ध्या के तिमिररूप अञ्चल के द्वारा प्रकृति देवी पर घूंघट पड़ चुका था। पर इतना बड़ा महल ऐसा जनहीन क्यों? एक दीपक भी तो कहीं नहीं देख पड़ता! इतने दासदासी, पहरेदार और कर्मचारियों के रहते हुए भी अब तक दीपक नहीं जला! इसका क्या कारण है ?।

"महेश! क्या पिता की तबीयत कुछ खराब हो गई है ?

"नहीं हुजूर! बीस वर्ष से तो उनकी तबीयत कभी ख़राब नहीं हुई"।

तब इसका क्या मतलब ? इतनी बड़ी पुरी है, इतने मनुष्य हैं, तिसपर भी हमारा घर स्मशान की तरह जनहीन क्यों है ? विक्रमसिंह ने जल्दी जल्दी सिंहद्वार पार किया। पर मनुष्यों का कहीं पता नहीं। उद्वेगाकुलकण्ठ से उसने एक एक करके सब पुराने नौकरों का नाम ले लेकर बुलाया। प्रतिध्वनि शून्य महल में घूम फिर कर नीरव हो गई।

तीनों ही जनों ने सोचा कि दाल में कुछ काला अवश्य है। बहुत देर तक पुकारने के बाद

दूर पर एक कम्पित आलोक रेखा दिखाई दी। उनलोगों ने देखा कि धीरे धीरे पैर रखता हुआ एक मनुष्य उनकी ओर आ रहा है।

निकट आने पर विक्रमसिंह ने उसे पहचान लिया। वह मनुष्य उनका पुराना नौकर रामदास था। पर उसका मुखमण्डल इतना विवर्ण, और देह इतनी जीर्ण, क्यों हो गई है? दस वर्ष में इतना परिवर्त्तन! विक्रम ने उसके गले में लिपट कर कहाः--"क्यों रामदास! तुमने मुझे पहचाना? पिताजी कहाँ हैं?"

वृद्ध ने दीपक रख दिया। बारह वर्ष का बालक अब जवान हो गया है, परन्तु क्या उस मूर्त्ति को वह भूल सकता है? उसी ने तो उन लोगों को गोद में खिला कर इतना बड़ा किया है।

उन्हें देख कर वृद्ध रो उठा और गला भर कर उसने कहा :--"तुम लोग आ गये? पर यहाँ तो सर्वनाश हो गया है।"

यह सुन कर दोनों चौंक पड़े। उन्होंने पूछा :--"क्यों क्या हुआ? पिताजी कहाँ हैं?"

"जज़िया! जज़िया!"

"जज़िया क्या?"

"क्या जज़िया का नाम नहीं सुना? औरंगज़ेब की यह नई कीर्ति है। हर एक हिन्दू को यह राजकर देना होगा। चाहे अकाल पड़े या महामारी; प्रजा के घर में खाने को हो या न हो; पर सम्राट् का खजाना पूरा होना ही चाहिये।"

"जज़िया जाय भाड़ में। पहले यह बताओ कि पिता कहाँ हैं?"

वृद्ध ने दोनों हाथों से मुह ढक कर कहा--"औरंगज़ेब के क़ैदखाने में। वह उन्हें पकड़ ले गया है।

विजयसिंह आगे बढ़ आया। विक्रमसिंह की आँखें क्रोध से जलने लगीं। उसने अधीर होकर पूछा :--'पिता को पकड़ ले गया है? क्यों! सम्राट् के साथ उन्होंने क्या बुराई की थी?'

"वे जज़िया का कर नहीं देना चाहते थे।"

"ठीक तो है! वे कर क्यों दें? हम लोग तो राणा राजसिंह की प्रजा हैं। सम्राट् को क्यों कर दें?

"सम्राट् ने यह उज़्र नहीं सुना। उसकी आज्ञा है कि मोगल अधिकार में जो हिन्दू रहेगा उसको अवश्य कर देना होगा, जो इस आज्ञा को न मानेगा उसका सर्वनाश किया जायगा। तुम्हारे पिता ने कहा था कि आजकल व्यापार के लिए सम्राट् के अधिकार में रहने पर भी हम उदयपुर के महाराणा की प्रजा हैं; इस लिए यह न्यायविरुद्ध कर कभी न देंगे। यह सुनकर सम्राट् ने सेना भेजी। सेना ने आकर गाँव लूट लिया। गाँववाले अत्याचार के कारण भाग गये। तुम्हारे घर का भी दरवाज़ा तोड़कर उन लोगों ने सब कुछ लूट लिया। हमारे तेजस्वी स्वामी ने पैशाचिक अत्याचार में बाधा डाली; इसी लिए सम्राट् की सेना उन्हें पकड़ ले गई।"

पाषाणमूर्ति के समान चुपचाप खड़े खड़े विक्रमसिंह ने अत्याचारी सम्राट् की कीर्त्ति कहानी सुनी। उधर विजयसिंह का मुखमण्डल क्रोध के मारे लाल हो गया।

आओ, देखा जायगा :--यह कहकर वृद्ध विक्रमसिंह को भीतर ले गया। विजय भी उनके पीछे पीछे गया।

सब कमरों में अँधेरा था! घर का सामा इधर उधर टूटा फूटा पड़ा था! मानो किस विकट तूफ़ान के भीषण आघात से हरी भर वाटिका उजड़ गई हो।

उन लोगों के सोने के कमरे में माता क एक चित्र टँगा रहता था! वह भी आज टूट फूटी अवस्था में भूमि पर पड़ा है।

बहुत देर तक किसी ने कोई बात नहीं कही। शङ्कर स्वामी के दिये हुए ग्रन्थों को एक कोने में रखने के बाद महेश एक तरफ़ खड़ा हो गया। विक्रम टकटकी बाँधकर उन ग्रन्थों की ओर देखने लगा। वह सोचने लगा कि इस निर्मम अत्याचार के प्रतिविधान का उपाय, क्या मेघदूत कादम्बरी या उत्तर रामचरित में वर्तमान है? अथवा गीता, सांख्य या वेदान्त के द्वारा इस जटिल प्रश्न की मीमांसा हो सकती है ?

(३)

ऊषा के प्रथम आलोक के घर में प्रवेश करते ही विक्रम ने पुकारा--विजय ! मानसिक दुश्चिन्ता के कारण विजय को आज रात्रि में नींद नहीं आई थी। अतएव भाई की बोली सुनते ही वह उठ बैठा।

ज्येष्ठ भ्राता के आरक्त मुखमण्डल और जाज्वल्यमान नेत्रों को देखकर विजय शङ्कित हो उठा। विक्रम ने कहा :--"वृथा शोक करने का समय नहीं है। हम इसी समय यहाँ से रवाना होंगे। पिता का पता लगावेंगे और यदि हो सकेगा तो इस अत्याचार का बदला लेने की चेष्टा करेंगे। महेश और रामदास इस समय निराश्रय हैं। आजीवन उन लोगों ने हमारी सेवा की है। अब बुढ़ापे में वे कहां जायँगे? उनकी रक्षा का भार तुम्हारे ऊपर है। परन्तु यहाँ मत रहना। उदयपुर, राणा के राज्य में चले जाना। वहाँ हम लोगों की जो सम्पत्ति है उससे तुम्हारा काम अच्छी तरह चल जायगा। इस बीच में यदि गुरुदेव आवें तो उनसे सब हाल कह देना।’

यह कह कर विक्रम उठ खड़ा हुआ !

"भाई, तुम कहां जाते हो ?"

"छिः ! विजय, कातर मत हो। तुम नहीं समझते कि कितना बड़ा काम है ?"

"तो हम भी चलेंगे !"

"पागलों की सी बातें न करो। तुम घर में रहो। यदि हमारी चेष्टा व्यर्थ हो तो तुम पिता के उद्धार करने की चेष्टा करना। इस समय जो कुछ मैंने तुम से कहा है वही करो।"

विजय ने चुपचाप सिर झुका लिया !

तब विक्रमसिंह घुटने टेक कर माता के छिन्न भिन्न चित्रपट के सामने बैठ गया इसके बाद भक्तिपूर्वक किसी को प्रणाम किया !

भाई के चले जाने पर विजय ने सोचा कि गृहसुख क्या केवल हमारे ही लिए है ! क्या कोई दूसरा काम करने का हमें अधिकार नहीं ?

(४)

पुण्य सलिला, कल्लोल मुखरा यमुना के किनारे स्नानार्थी हिन्दुओं के झुंड के झुंड जमा हो रहे हैं। बहुत दिनों के बाद कुम्भ पड़ा है। दुर्भिक्ष और अत्याचार के कारण जीर्णशीर्ण होने पर भी हिन्दू लोग धर्म को नहीं भूले। इसी लिए यमुना के पवित्र जल में पुण्यस्नान की आशा से बड़ी बड़ी दूर के यात्री आ रहे हैं। मुग़ल राजधानी के सिर पर ही यह महान उत्सव ! सचमुच विस्मय की बात है। परन्तु हिन्दू धर्म द्वेषी औरंगज़ेब ने इस पुण्य अनुष्ठान में बाधा नहीं डाली।

नदी किनारे, वृक्षों की छाया में और राजपथ के दोनों ओर दूकानें लगी हुई हैं। युवक और बालक गोल बांध कर इधर उधर घूम रहे हैं। हिन्दुओं का उत्सव देखने की लालसा से कुछ मुसलमान भी इकट्ठा हुए हैं।

स्नानार्थी लोग नहाने में व्यस्त हैं। कोई गायत्री का जप कर रहा है। कोई यमुना जी की स्तुति कर रहा है। कितने ही लोग हँसा दिल्लगी में मस्त हैं। बहुतेरे दूकानों से मिठाई ले लेकर पेट देवता के अर्पण करते चले जाते हैं। साधु सन्यासी और भिक्षुकों की संख्या भी कम नहीं है। सभी अपने अपने सुर अलापने में निमग्न हैं।

पास ही में एक भग्नस्तूप शिखर पर एक तेजस्वी युवक खड़ा है। मध्याह्न सूर्य की किरणमाला उसके प्रतिभादीप्त; विशाल तथा कमनीय ललाट पर नृत्य कर रही है। मुग्ध जनसमूह शुभ्रवसन और उन्नत देह युवक के चारों ओर एकत्रित है। युवक की आकृति कैसी प्रशान्त, दृष्टि कैसी गंभीर और उज्वल है। यह देखो, समस्त कोलाहल सहसा शान्त हो गया। युवक दृढ़ गंभीर कण्ठ से कुछ कह रहा है।

भारत वर्ष की अतीत गौरव कहानी ? वह तो विस्मृति के तिमिरगर्भ में चिर समाधि प्राप्त कर चुकी है। गरीयसी महीयसी मातृभूमि का इतिवृत्त? वह तो विकृतमस्तिष्क मूर्खों की रची हुई कहाँनियां हैं। भारत जननी, हिन्दुओं की माता आज परपददलिता और मुग़ल पादलाञ्छिता हो रही है। वीरप्रसू मातृभूमि का सम्पूर्ण अङ्ग आज ज़ंजीरों से जकड़ा हुआ है।

किन्तु वक्ता की अग्निमयी वाणी, ज्वालामयी भाषा-ज्ञानगरिमा दृप्ता, षड़ैश्वर्यमयी, लोक पालिनी, जन्मभूमि का कैसा उज्वल चित्र खींच रही है। हिन्दुओं का उत्थान, आदिम मानव सम्पदा का प्रथम विकाश, धर्म, कर्म, ज्ञान और विद्या की परिपुष्टि, संयम और शिक्षा के बल पर हिन्दुओं ने किस तरह समस्त संसार को विस्मयमुग्ध किया था -इत्यादि बातों का वर्णन वक्ता ने बड़े ही अच्छे ढँग से किया। श्रोतागण जन्मभूमि के इस अपूर्व इतिहास को सुनकर विस्मित हो उठे।

युवक का कण्ठस्वर धीरे धीरे बढ़ने लगा। समुद्र गर्जनवत् गंभीर वाणी ने दर्शकों के हृदय में एक अव्यक्त शंका और आनन्द का सञ्चार किया। उनके मानस पटल में राजराजेश्वरी मातृभूमि की मणिमुकुटमण्डिता मूर्ति का चित्र अङ्कित हो गया। विस्मय, हर्ष, और गर्व से वे लोग पुलकित हो उठे।

इसके बाद वक्ता का स्वर आवेग से काँपने लगा। तदनन्तर भारत के रौद्रकरोज्वल नीलगगन में सहसा दिगन्तव्यापी अन्धकार छा-गया। वारंवार वज्रनाद, दीप्त दामिनी का अट्टहास, प्रलयझटिका का क्षुब्ध श्वास, देवदानवों का जीवनसंग्राम, ध्वंस और स्थिति का भैरव-कोलाहल हो रहा था। समुद्र से लेकर हिमालय तक समस्त देश इस विकट ताण्डव से सिहुर उठा।

युवक के नेत्र जलने लगे। उसके कंठस्वर से कभी आग्नेय गिरि निसृत उत्तप्त गैरिक धारा निकलती थी, कभी करुणा कल नादिनी की पवित्र और शीतल धारा बहती थी। कभी कभी दूरागत वंशीध्वनि के समान अस्पष्ट कोमल मधुर सङ्गीत स्रोत प्रवाहित होता था।

" हिन्दूगण ! पवित्र यमुना के तीर आज यह किसका उत्सव है? स्नान करके देह पवित्र करोगे ? हा हतभाग्य, हिन्दुओ ! तुम्हारे देवमन्दिर और चिरपूज्य मूर्तियाँ आज धूल में पड़ी ठोकरें खा रही हैं। विधर्मियों के अत्याचार से सनातनधर्म निग्रहीत और क्लिष्ट हो रहा है। पद पद पर देवताओं की भग्न प्रतिमाओं को पददलित करके पुण्य संचय करने चले हो? हायरे हतभाग्य भारतवासियों की भ्रान्ति"।

इन मर्मभेदी बातों को सुनकर श्रोतागण विचलित हो उठे। उनके शरीर में खून जोश मारने लगा; और नसें फड़क उठीं। वास्तव में वक्ता की भाषा बड़ी ही मर्मस्पर्शिनी और ज्वालामयी थी।

"दुर्भिक्ष पीड़ित, निःसहाय और दीनहीन हिन्दुओ ! अपने शरीर का रक्त और अस्थिमज्जा लगाकर जिस विशाल मुग़ल साम्राज्य की भित्ति को तुमने दृढ़ किया है और मान, सम्भ्रम, धन तथा सर्वस्व वेंचकर जिन मुग़लों के गौरव और सम्राट् के राजकोष को परिपूर्ण किया है तथा प्राण देकर जिस भ्रातृहन्ता औरङ्ग़ज़ेब को, भारतवर्ष के स्वर्ण सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया है वही आज तुम लोगों को किस तरह पुरस्कृत

कर रहा है। प्रजा के घर में अन्न नहीं, देह में शक्ति नहीं, खेतों में उपज नहीं, पर सम्राट् को इसकी कोई परवाह भी नहीं। देशभर में अराजकता छाई हुई है; अत्याचार और उत्पीड़न के मारे सब हिन्दू हायहाय मचा रहे हैं; पर औरङ्गज़ेब इसका कोई प्रतिकार नहीं करता। तिस पर भी तुर्रा यह कि इन्हीं दुर्भिक्ष पीड़ित और दीनहीन हिन्दुओं से जज़िया नामक कर लिया जाता है। चाहे हिन्दू भूखों मरें, उनके लड़के बच्चे दाने दाने को मुहताज होकर गली गली मारे मारे फिरें अथवा महाविकराल दुर्भिक्ष के कोप में पड़कर अकाल मृत्यु के पञ्जे ही में क्यों न फँस जांय; परन्तु सम्राट् को इसका तनिक भी ध्यान नहीं। तुम हिन्दू हो, चाहे तुम्हारे घर में खाने को हो या न हो, पर तुम्हें जज़िया का कर अवश्य देना होगा। तुम मरो या जिओ, सम्राट् का ख़ज़ाना पूरा होना ही चाहिये।"

भाइयो! यह निर्लज्ज अत्याचार, अन्याय और पक्षपातपूर्ण एवं राजधर्म के विरुद्ध है। हिन्दू भूखों मरें, साम्राज्य की प्रतिष्ठा के लिए प्राण दें, अत्याचार और अविचार सहें, राजभक्ति का उपहार लेकर सम्राट् को अर्पण करें; इतना होने पर भी जज़िया का असह्य भार उठावें! और जो मुसलमान हैं उन्हें आँच भी न लगे। कैसा सुन्दर राजधर्म है! पर इसका क्या कोई प्रतिकार ही नहीं है?

(युवक ने स्थिर दृष्टि से भीड़ की ओर देखा।)

"प्रतिकार है और अवश्य है। आज यदि समस्त हिन्दू दृढ़ स्वर से प्रतिज्ञा करें कि हम इस न्याय विरुद्ध कर को कभी न देंगे तो सम्राट् को मजाल नहीं कि वे इसे हम लोगों से वसूल कर सकें। क्या तुम लोग यह प्रतिज्ञा न करोगे? आज तुम्हारे लड़के बच्चे भूखों मर रहे हैं, राजकर के भार से तुम लोग दबे जा रहे हो, तिस पर भी अपाहिजों की तरह पड़े पड़े टुक टुक दीदम दमन कशीदम" की कहावत को चरितार्थ कर रहे हो।"

लक्ष लक्ष कण्ठ गरज उठेः-"हम लोग जज़िया न देंगे!"

मुसलमान दर्शकगण चौंक पड़े। आसन्न-विपद् की आशङ्का से गुप्तचर द्रुतवेग से दिल्ली की ओर छूटे।

माथे का पसीना पोंछकर युवक थोड़ी देर तक चुपचाप खड़ा रहा।

इसके बाद कण्ठ स्वर कुछ ऊँचा करके युवक ने कहाः-"तब आओ, हम लोग इस पुण्य-क्षेत्र में खड़े होकर प्रतिज्ञा करें कि जीवन रहते इस जज़िया रूपी कर को कभी न देंगे। हम लोगों पर चाहे जितना अत्याचार क्यों न किया जाय पर सम्राट् की न्याय विरुद्ध आज्ञा कभी न मानेंगे। सुनो भाइयो, इस जज़िया रूपी कर के कारण ही हमारे पिता औरङ्गज़ेब के कारागार में बन्द……………।"

पूर्वोक्त बात पूरी होने न पाई थी कि भीड़ में हुलड़ मच गया। लोगों ने देखा कि बहुत से सवार उल्का के समान तेज़ी से आ रहे हैं। उनकी मियान से निकली हुई, नंगी तलवारें सूर्यकिरण में चमचमा रही हैं।

क्षण भर में ख़बर फैल गई कि सम्राट् की सेना सबको पकड़ने के लिए आ रही है। बस फिर क्या था, शान्तिप्रिय, सतर्क और सावधान बुद्धिमानों ने चाणक्यनीति का अवलम्बन किया!

युवक निश्चल प्रतिमा के समान भग्नस्तूप शिखर पर खड़ा ही रहा। एक पलायनतत्पर व्यक्ति ने कहाः-"तुम भी भागो। यदि पकड़ पायेगा तो औरङ्गज़ेब तुमको मार डालेगा।"

पर युवक वहाँ से न टला। यह देखकर कुछ बलवान् युवक उसे घेर कर खड़े हो गये।

सेना दल तूफ़ान की तरह बड़े वेग से आ रहा है। भीड़ छँटने लगी! जिसको देखो वही

भागा जा रहा है। इस समय पीछे से कोई गम्भीर कण्ठ से बोलाः-"वत्स, विक्रमसिंह, अभी समय नहीं आया। अतएव यदि पकड़ जाओगे तो अनुष्ठित कर्मयज्ञ में विघ्न पड़ेगा।"

विक्रम ने चकित होकर पीछे देखा। कण्ठ स्वर तो चिरपरिचित था; परन्तु बोलनेवाला भीड़ में न दिखाई दिया। विक्रम तब दीर्घ निश्वास त्यागकर धीरे धीरे स्तूप शिखर से नीचे उतर आये। वह आज्ञा उपेक्षा करने के योग्य नहीं थी। भीड़ ने युवक के लिए रास्ता साफ़ कर दिया। क्षण भर में विक्रमसिंह का उन्नत देह लोकारण्य में मिल गई।

(५)

औरङ्गज़ेब ने नगर नगर में मुनादी करवा दी कि विद्रोही युवा को जो कोई पकड़ लावेगा। उसको पाँच हज़ार अशर्फ़ियां पुरस्कार में दी जायँगी। सहस्रों सवार द्रुतगामी घोड़ों पर चारों ओर भेजे गये। दिल्ली के सम्पूर्ण फाटक बन्द करा दिये गये। सन्तोषजनक प्रमाण पाये बिना सिपाही किसी को बाहर नहीं जाने देते थे। दिल्ली के भीतर और बाहर सब जगह गुप्तचर विद्रोही की तलाश में घूम रहे हैं।

समग्र हिन्दुस्तान का शक्तिशाली सम्राट् आज एक अज्ञातश्मश्रु बालक की दो चार अग्निमयी बातों के आघात से इतना चञ्चल और उद्विग्न क्यों हो गया? औरङ्गज़ेब इस बात को जानता था कि अत्याचार और उत्पीड़न के कारण हिन्दू प्रजा दिन दिन असन्तुष्ट होती जाती है। वह यह भी अच्छी तरह से समझता था कि जज़िया कर की पीड़ा से सम्पूर्ण हिन्दुस्तान में विरक्ति और असन्तोष प्रलय-अग्नि के समान दिन दिन प्रबल होता जाता है। इस कारण अपरिणामदर्शी युवक की उत्तेजनापूर्ण वक्तृता से आसन्न विद्रोह की आशङ्का कर औरङ्गज़ेब विचलित हो उठा। शत्रु चाहे क्षुद्र हो या प्रबल, औरङ्गज़ेब के नीति-शास्त्र में उसकी उपेक्षा का उपदेश न था।

अनुसन्धान पर अनुसन्धान होने लगा। गुप्तचर और सिपाहियों के अत्याचार के कारण हिन्दू प्रजा की नाक में दम आ गई। हिन्दुओं का प्रत्येक ग्राम, प्रत्येक गृह मुग़ल सेना का क्रीड़ाक्षेत्र हो गया। साधु हो या सन्यासी किसी पर रियायत नहीं की जाती थी। सिपाही लोग उनकी पकी हुई डाढ़ियों को खींचकर देखते थे कि छद्मवेशी तो नहीं है।

एक सप्ताह बीत गया। पर अपराधी को कोई न पकड़ सका। सिपाहियों के अत्याचार से हिन्दुओं का असन्तोष दिन पर दिन बढ़ता गया परन्तु जिसको पकड़ने के लिए वह सब आयोजन हुआ था वह लोगों की आंखों के नीचे ही छिपा रहा। इससे औरङ्गज़ेब अत्यन्त विचलित और क्रुद्ध हुआ। उसकी कठोर आज्ञा फिर प्रचारित हुई। विद्रोही नगर ही में छिपा है। हिन्दुओं के अन्तःपुर में अनुसन्धान करो; छल से, बल से, कौशल से, जैसे बने तैसे विद्रोही को पकड़ कर हाज़िर करना चाहिये। प्रजा भक्ति के निकट प्रबल राजभक्ति अवनत हो? भारत सम्राट् औरङ्गज़ेब की वासना अपूर्ण रहे? यह कैसे हो सकता है! जैसे बने तैसे विद्रोही को पकड़ना चाहिये।

(६)

रात दो पहर बीत चुकी है! आसन्न दुर्योग की आशङ्का से दिल्ली के प्रमोद भवनों के द्वार पहले बन्द हो चुके थे। विलासलालसामुग्ध, आलोकमालामयी नगरी तन्द्रा में मग्न है। आकाश में घनघोर घटा छाई हुई है। उन्मत्त दैत्य के समान विकट तूफ़ान बड़े बड़े राजमहलों के दरवाज़ों और खिड़कियों के साथ बल परीक्षा कर रहा है। प्रदीप्त दामिनि के चञ्चल नृत्य और बज्रदेव के गुरुगर्जन से सुरनगर

कांप रही है। स्फटिका का अञ्चल पकड़ कर वारिधारा भी उतर आई।

राजपथ जन-शून्य है; चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ है। अन्धकार इतना घना है कि हाथ को हाथ नहीं सूझता। इस भीषण दुर्योग के समय किसका साहस था कि घर से बाहर निकले?

ऐसे ही समय एक मनुष्य चोर की तरह धीरे धीरे एक ऊँचे मकान के पीछेवाले द्वार के सामने आकर खड़ा हुआ। दिन को भी उस ओर बहुत कम आदमी चलते फिरते थे। ज्यों ही वह द्वार के निकट पहुंचा त्यों ही उसके कपाट खुल गये। अत्यन्त सतर्कता और आग्रह के साथ नवागत व्यक्ति ने पूछाः—"भाई की तबियत कैसी है?"

"अभी अभी ज्वर उतरा है। इस बार बचने की आशा नहीं। सात दिन और सात रात्रि तक अचैतन्य अवस्था में मृत्यु के साथ अविरत युद्ध होता रहा!"

"गुरुजी! क्या अन्त में रक्षा हो सकेगी?"

दूसरे मनुष्य ने गम्भीर स्वर से कहाः-इसकी क्या आशा? चारों ओर जैसा कड़ा पहरा है, सतर्क गुप्तचर जैसे आग्रह के साथ अनुसंधान कर रहे हैं, उससे उद्धार की आशा कहाँ? आह! यदि उसी रात को विक्रम बीमार न हो गया होता तो हम लोग अब तक न मालूम कहां पहुंच गये होते। उस समय समग्र मुग़ल सेना मिलकर भी उसका बाल बाँका न कर सकती?

"गुरुदेव अब क्या कोई भी उपाय नहीं है? आज इस दुर्योग के सुअवसर में क्या पहरेदारों की आंखों में धूल झोंक कर भाग नहीं सकते?"

"वत्स! यह असम्भव है। इस आँधीपानी के समय बाहर निकालने से विक्रम की मृत्यु अनिवार्य हो जायगी। फिर वह अभी उठ भी नहीं सकता! अतएव इस समय बाहर ले जा कर उसे मृत्यु के मुख में नहीं फेंक सकते।"

"तब उपाय?"

"वही सोच रहा हूं। यदि महाराज जयसिंह आश्रय न देते तो इतने दिन तक भी विक्रम को छिपाकर न रख सकते। वे हमारे बड़े शुभचिन्तक हैं। इसीसे उन्होंने अपने घर का यह अंश हमारे लिए खाली कर दिया है, किन्तु यह बात वे भी नहीं जानते कि हमने विक्रम को यहां छिपा रखा है। इससे इस स्थान को भी अब निरापद न समझना चाहिये। क्योंकि जयसिंह किसी राजकार्य के लिए कल दिल्ली त्याग करेंगे और तब सम्राट् के गुप्तचर यहां भी अवश्य अनुसन्धान करेंगे। इसमें सन्देह नहीं कि जयसिंह सम्राट् के दक्षिण-हस्त हैं। परन्तु वह उनका भी विश्वास नहीं करता?"

"तो फिर उद्धार का और भी कोई उपाय है या नहीं?"

दीर्घ निश्वास त्याग कर शङ्कर स्वामी ने कहाः-यदि घर घर में अनुसन्धान होना बन्द हो जाय और दिल्ली के फाटक पहले की तरह खुल जायँ तो मुक्ति सम्भव है। परन्तु वत्स, यह कैसे हो सकता है? विक्रमसिंह जब तक न पकड़ा जायगा तब तक अनुसन्धान बन्द न होगा। अतएव उसकी मुक्ति की आशा कैसे कर सकते हैं?"

दिगन्त आलोकित करके दामिनी हँस पड़ी! विजयसिंह मेघमण्डित आकाश की ओर देख कर बोलाः—"निष्ठुर सम्राट् दीनहीन हिन्दुओं पर भीषण अत्याचार कर रहा है, क्या यह बात भाई को मालूम है?"

"नहीं विजय! इधर कई दिन से वह अचैतन्य अवस्था में पड़ा था। इन बातों को सुन कर वह कभी निश्चिन्त न रह सकेगा। यह जानते ही कि इसके लिए निर्दोष हिन्दुओं पर

अत्याचार किया जाता है, वह तुरन्त आत्मसमर्पण कर देगा।"

"गुरुजी! तब तो उनको इस बात का तनिक भी पता न देना चाहिये। भाई की जैसे बने वैसे रक्षा करना होगा। उनके बचे रहने से मातृभूमि का मुख उज्ज्वल होगा, यह बात आप ने एक दिन स्वयम् कही थी। अतएव हे गुरुदेव, आप इसका उपाय शीघ्र स्थिर कीजिये।"

"उपाय करनेवाले तो भगवान् हैं; मनुष्य इस क्षेत्र में कर ही क्या सकता है!"

विजय ने चुपचाप खड़े खड़े कुछ सोचा; इसके बाद कहा:-"चलिये, भाई को एक बार देख तो आवें!"

दोनों ने धीरे धीरे बग़ल के एक कमरे में प्रवेश किया। एक सामान्य शय्या के ऊपर पीड़ित विक्रमसिंह सोरहे थे। उनका चेहरा पीला पड़ गया था। पास ही एक दिया टिमटिमा रहा था। इस दृश्य को देखकर विजय विचलित हुआ। उसके सहोदर, आजन्म के क्रीडा सहचर भाई की यह दशा! औरङ्गज़ेब इसी कोमलमति, सरल और तेजस्वी वीर का मस्तक चाहता है? देश के लिए जिसका हृदय उन्मत्त हो गया है और दूसरे के दुःख को देखकर जिसका हृदय पीड़ित हो रहा है, क्या औरङ्गज़ेब उसी मनस्वी महात्मा का जीवन लेगा? क्या विक्रमसिंह को उद्धार करने का कोई भी उपाय नहीं है?

विजयसिंह भूमि पर घुटने टेककर बैठ गया! और ज्येष्ठ भ्राता के प्रतिभादीप्त पीले मुख को बड़ी देर तक देखता रहा। निद्रा के कोमलस्पर्श से विक्रम के ललाट की चिन्तारेखा मिट गई थी। बड़ी देर तक देखने के बाद विजय ने अपने नेत्रों को ऊपर उठाया और हाथ जोड़ कर दयामय जगदीश्वर को प्रणाम किया।

बाहर बड़े वेग से विकट आंधी चल रह थी। महाभयङ्कर तर्जन गर्जन के साथ पानी भ बरस रहा था।

दृढ़ता के साथ उठकर विजय ने मृदु स्व से कहा:-"तो अब जाता हूं, गुरुदेव! भाई को इस समय जगाना ठीक नहीं है।"

"तुम नगर में किस तरह आये कहीं किस ने तुम्हें देखा तो नहीं?"

"नहीं गुरुजी! रमणी के वेश में यमुना किनारे किनारे आया हूं। ऐसे दुर्योग के कार पहरेदार मुझे नहीं देख सके।"

कल सवेरे नगर के बाहर जाऊँगा और लौटते समय आप से मिलकर जाऊँगा।"

विजय ने फिर एक दफ़े भाई की निद्रित मूर्त्ति की ओर फिरकर देखा। इसके बाद घ से निकल कर वह बाहर बारि विद्युत् व्याकुल अन्धकार में अन्तर्हित हो गया।

(७)

आंधी पानी थम गया है। नीलवसनधारि गगनमण्डल निर्मल और स्वच्छ हो गया है प्रभात के नवीन आलोक प्लावन से बारिधारा सिक्त प्रकृति हँस रही है। दिल्ली के दीवान ख़ास में मणि मुक्तामण्डित विचित्र सिंहासन पर मुग़ल साम्राज्य का धूम्रकेतु औरङ्गज़ेब बैठ है। दरबार-मण्डप अमीर उमरा और दरबा रियों से ठसाठस भरा है।

सम्राट का मुख-मण्डल चिन्ताक्लिष्ट औ आषाढ़ के मेघों के समान गम्भीर हो रहा है साम्राज्य में विद्रोहाग्नि धूमायित हो रही है राजसभा में षड्यन्त्र पर षड्यन्त्र चल रहे हैं विद्रोही युवक अभी तक नहीं पकड़ा गया इसीलिए वह अभी एक कर्मचारी को डाँ रहा था।

नाना दुश्चिन्ताओं से हृदय अवसन्न, औ क्षुब्ध होने पर भी औरङ्गज़ेब अति सहज भा

सें राज-कार्य परिचालन करता था। मुख देख कर उसका भाव समझ लेना प्रायः असम्भव था।

दरबार में कार्य हो रहा है, इसी समय बाहर कुछ गड़बड़ होने लगी। सभा के सभी लोग इस आकस्मिक गड़बड़ का कारण जानने के लिए व्यग्र हुए। सम्राट् का इशारा पाकर सेनापति मोहब्बत ख़ां बाहर गया। थोड़ी देर बाद लौटकर उसने कहा कि एक युवक किसी विशेष काम के लिए सम्राट् से मिलना चाहता है। पर पहरेदार उसे अन्दर नहीं आने देते।

सम्राट् की आज्ञा से सेनापति फिर बाहर गया और साक्षात् प्रार्थी युवक को दरबार में लिवा लाया। आगन्तुक ने प्रशान्त दृष्टि से एक बार चारो ओर देखा। फिर मस्तक ऊँचा कर के औरङ्गज़ेब के सामने गया। उसके इस अशिष्ट और उद्धत व्यवहार को देखकर सभा के सभी लोग विस्मित और स्तम्भित हुए।

मोहब्बत ख़ां ने धीरे से कहाः-"युवक! भारत सम्राट् को अभिवादन क्यों नहीं करता?"

हँसकर युवक ने कहाः-"यह मस्तक ऐसी वैसी जगह, विशेष कर अत्याचारी के सामने अवनत नहीं होता।"

ये शब्द धीरे स्वर से कहे जाने पर भी औरङ्गज़ेब के कान में पड़ गये। सम्राट् के रेखाङ्कित ललाट की नसें सहसा फड़क उठीं। बड़े कष्ट से आत्म-संधारण करके सम्राट् ने गम्भीर स्वर से कहाः-"युवक! क्या तुमने सुजनता की तनिक भी शिक्षा नहीं पाई। कहो! यहां क्यों आये हो?"

युवक ने फिर एक बार विराट् दरबार-गृह के चारो ओर देखा। इसके बाद उन्नत मस्तक को कुछ हिला कर मृदु हास्य के साथ उसने कहाः-"सम्राट्! तुम्हारे इतने बड़े दरबार में ऐसा कोई भी नहीं जो हमें पहचान सके? पांच हज़ार अशर्फ़ियां जिसके मस्तक का मूल्य नियत की गई हैं उसे आज औरङ्गज़ेब के दरबार में अपना परिचय देना पड़ता है! इससे बढ़ कर विडम्बना की बात और क्या हो सकती है?"

यह सुन कर प्रायः सभी दरबारी चौंक पड़े! क्या यही तरुण सुन्दर युवा विद्रोही है? क्या इसी बालक की वक्तृता को सुनकर लाखों मनुष्य उन्मत्त हो उठे थे? दरबारियों के आश्चर्य का पारावार न रहा।

क्या सोचते हो औरङ्गज़ेब? क्या अब भी विश्वास नहीं होता? सत्य के अनुरोध से हिन्दू लोग मृत्यु को भी बन्धु के समान आलिङ्गन कर सकते हैं। इतने दिन तक भारतवर्ष के शासन-कर्त्ता रहने पर भी तुम यह बात नहीं जान सके? हम पकड़ाई न देते! तुम्हारे लाखों सिपाही हमारा केशाग्र भी स्पर्श न कर सकते। पर तुम्हारे नृशंस अत्याचार से हिन्दू प्रजा जर्जरित हो रही है। हमारे पकड़ने के लिए जो पैशाचिक व्यापार हो रहा है उससे दीनहीन और निरीह हमारे प्यारे देशवासी हिन्दूलोग असह्य यन्त्रणा भोग रहे हैं। यह दुःख अब हमसे सहा नहीं जाता। इसीसे पकड़ाई देते हैं। अब तुम्हारा अत्याचार बन्द हो जाना चाहिये।"

औरङ्गज़ेब की आज्ञा पाते ही पहरेदारों ने विद्रोही युवक को घेर लिया। युवक ने हँसकर कहाः—जो स्वयं पकड़ाई देने के लिए आया है उसको बाँधने में बड़ी वीरता प्रगट हो रही है। औरंगज़ेब के साहस को धन्यवाद!

इस विकट कटाक्ष को सुनकर सम्राट का हृदय जल उठा। उसने क्रोधित होकर कहाः-"उद्धत युवक, सावधान। तुम राजद्रोही हो, तुम्हारे अपराध का दण्ड फाँसी है, यह तुम जानते हो?"

उच्चहास्य से सभाभवन गूंज उठा। निर्भीक युवक बोला,-"यदि जीवन की ममता होती तो मुग़ल दर्बार में न आता। भ्रातृहन्ता मुग़ल सम्राट के निकट दया की आशा से मैं नहीं आया हूं।

इस रूढ़ निर्भय सत्य वाक्य को सुनकर सम्राट का मुखमण्डल क्रोध से लाल हो उठा। दाँत पीस कर उसने कहाः- "विद्रोही विक्रम! तुम्हें प्राणदण्ड की आज्ञा हुई।"

सभा के सभी लोग इस निष्ठुर आज्ञा को सुन कर विचलित हो उठे। एक वृद्ध मन्त्री ने कहाः--"जहांपनाह! बालक को ऐसा कठोर दण्ड।"

गरज कर औरङ्गज़ेब बोलाः--"चुप रहो। औरङ्गज़ेब किसी की सलाह से काम नहीं करता।

निर्भीक युवक ने मुस्कराकर कहाः-"केवल प्राणदण्ड! हमारा क्या अपराध है? तुम भारत वर्ष के सम्राट हो, प्रजा के सुख दुःख के नियन्ता हो, भारत की भलाई बुराई तुम्हारे ही ऊपर निर्भर है। पर पवित्र राजधर्म को भूलकर और न्याय के मस्तक पर पदाघात करके तुम बिना विचारे प्रजा का सर्वस्व लूट रहे हो और अन्याय्य करों के भार से दरिद्र प्रजा का सर्वनाश कर रहे हो। इसी लिए मूख प्रजा का पक्ष लेकर हमने तुम्हारे घोरतर अन्याय्य कार्यों का प्रतिवाद किया था। अत्याचार से क्या राज्य की रक्षा हो सकती है? प्रजापीड़न से क्या शान्ति लौट सकती है?"

औरङ्गज़ेब की देह क्रोध से काँपने लगी। उसने चिल्लाकर कहाः--"इस दुष्ट को यहाँ से फौरन ले जाओ और शाम तक फाँसी लटका दो। शहर भर में मुनादी करवादो कि जहाँ पर ख़ड़े होकर इसने पहले पहल राजद्रोह का प्रचार किया था उसी जगह पर इसको प्राण दण्ड दिया जायगा और लाश को कोई जला न सकेगा! उसे सियार और कुत्ते नोच नोच कर खायँगे।

युवक की आँखें जल उठीं। उसने गरज कर कहाः-"औरङ्गज़ेब! हो सकता है कि तुम भारतवर्ष के विधाता हो, परन्तु संसार का भी कोई मालिक है। उसके दरबार में एक दिन तुम्हें इन सब अत्याचारों का जवाब देना होगा। यह न समझना कि तुम राजा होने के कारण बच जाओगे। बल के द्वारा देह का शासन तो हो सकता है, परन्तु विद्रोही हृदय को किस तरह दमन करोगे? केवल शक्ति के बल पर इतनी बड़ी शक्ति को बहुत दिन तक बांधकर कभी न रख सकोगे। तुम्हारे ध्वंस के लिए भगवान का वज्र उठ चुका है। मराठों के अस्त्र-प्रहार से मुग़ल साम्राज्य की भित्ति शिथिल हो चुकी है। प्रजा के ऊपर अत्याचार करते रहने से वह एक दिन अवश्य धूल में मिल जायगी।"

सन्ध्याकालीन आकाश में भास्कर भगवान को अन्तिम रश्मिरेखा भी विलीन हो गई। शोक-मुग्ध दिल्लीवासी धीरे धीरे घर लौटने लगे। संसार का यह भी एक नियम है कि पुरातन जाता है और नूतन उसके स्थान पर अधिकार कर लेता है। जीर्ण, पुरातन दिवस चला गया, नूतन रजनी अन्धकार को साथ लिए आ रही है।

विद्रोही युवक की प्राणशून्य देह को तरुण सन्ध्या की मन्द मन्द वायु स्पर्श कर रही है। ध्वंसावशिष्ट मन्दिर के एक वृक्ष की डाल पर मृतदेह झूल रही थी। आकाश कानन और नदी-तीरस्थ पेड़पत्तों के ऊपर तिमिर यवनिका धीरे धीरे विस्तृत हो रही थी। सहसा गाढ़ अन्धकार ने आकर दिगन्तर रेखा को दृष्टि से छिपा लिया। अब कुछ नहीं देख पड़ता। प्रान्तर, अरण्य, और नदी सब एक हो गये।

यह क्या! यहाँ पर मनुष्य पद शब्द कहाँ से सुनाई देने लगा? भीषण नीरव स्मशान में इस समय कौन आरहा है? द्रुत, कम्पित, अधीर पद ध्वनि सुनाई देती है। विस्तीर्ण प्रान्तर अन्धकार-मय हो रहा है। सामने मृत देह झूल रही है यह तो वास्तव में पिशाचों की रङ्गभूमि है। यहां पर मनुष्य का निश्वास कैसा?

"कहाँ?"

कण्ठस्वर में कैसी यन्त्रणा है, कैसी व्याकुलता है। इस विराट स्मशान में तुम कौन?

एक व्यक्ति ईंटों की ढेर के ऊपर चढ़ा और व्याकुलता के साथ कुछ ढूंढ़ने लगा। यह क्या! वह तो तरवार के द्वारा फाँसी की रस्सी काट रहा है।

रस्सी काटकर आगन्तुक ने शवदेह को दोनों हाथों से आलिङ्गन कर लिया। इसके बाद भूमि में लोटकर मर्मभेदी आर्तस्वर से उसने कहाः—"मेरे प्राणप्रिय भाई तुम्हारी यह दशा! औरङ्गज़ेब का मृत्यु बाण तुमने छातीपर लिया! भाई का जीवन बचाने के लिए आत्मत्याग किया! गुरुदेव! आपने पहले से सब हाल हमें क्यों नहीं बताया ? ।

उस मर्मभेदी विलाप को सुन कर मोह-वर्जित का हृदय भी विचलित हो उठा। उनकी आंखों से आंसू टपक पड़े। उन्होंने कहा :—"हम नहीं जानते थे। हम सवेरे नगर के बाहर गये थे। तीसरे पहर विजय से मिलने की बात थी। वहां जाने पर वह नहीं मिला। हमारे लिए वह एक पत्र रख गया था। उसे पढ़ कर हमने सब हाल जाना। नगर पहुंचने पर सुना कि विद्रोही बिक्रमसिंह को फांसी हो गई। हम नहीं जानते थे कि इस चपलमति बालक का हृदय इतना महान और इतना गंभीर है। वह जानता था कि विक्रमसिंह के बचे रहने से देश को बहुत लाभ होगा। परन्तु विक्रम जब तक पकड़ न जायगा तब तक विक्रम की मुक्ति नहीं होगी। इसी से उसने आत्मविसर्जन किया है। धन्य विजय, तुम्हारा जन्म सार्थक है तुम्हारे समान शिष्य पा कर हम भी अपने को धन्य समझते हैं।"

गुरू के कम्पित कण्ठ स्वर को सुन कर शोकक्षुब्ध युवक उठ खड़ा हुआ। सामने भाई की मृतदेह पड़ी थी। जिसके लिए आज वह भ्रातृहीन हुआ है। वह तो अब भी जीवित है। उसके समान और कितने हतभाग्य इस हृदयहीन सम्राट के अनुग्रह से भ्रातृहीन होंगे। इसका क्या कोई भी प्रतिकार नहीं है ?

अतिशय उत्तेजना के कारण विक्रमसिंह की दुर्बल देह झूमने लगी।

यथेच्छाचारी निष्ठुर सम्राट ने उसका सर्वस्व लूट लिया, बिना विचारे पिता को काराबद्ध किया, रहे सहे भाई का भी प्राण लिया। प्रति दिन असंख्य हिन्दू असह्य यन्त्रणा भोग रहे हैं। देश में सर्वत्र अत्याचार की धूम है। विधाता के उद्यान में इस यथेच्छाचार का क्या कोई भी दण्ड नहीं? इन्द्रदेव का वज्र देवताओं का अभिशाप क्या केवल दुर्बलों ही के लिए है?"

विक्रम के शरीर का रक्त जोश मारने लगा। उसने मुट्ठी बाँध और दांत पीस कर ज़ोर से कहा :—"सारे हिन्दुस्तान में अग्निप्रदीप्त करेंगे। गुरुदेव! इतने दिन जो शिक्षा हमने पाई है वह केवल निष्फल विलाप करने के लिए नहीं। अब निष्क्रिय रहना ठीक नहीं अग्निमयी कविता के द्वारा देश में जीवनवह्नि प्रज्वलित करेंगे। चाहे दिन हो या रात, वर्षा हो या धूप, मुग़लों की अत्याचार कहानी प्रत्येक हिन्दू के कान में भैरव राग द्वारा ध्वनित करेंगे। पर्वत हो या मैदान, कानन हो या नगर, ग्राम हो या घर, क्या विक्रमसिंह की ज्वालामयी भाषा को सुन कर जाग न उठेगा? कभी यदि अत्याचारी औरंगज़ेब का साम्राज्य समुद्र के अथाह जल में फेंक सकें तो हे विजय, क्या तुम्हारी मृत्यु का प्रतिशोध पूरा हो जायगा? मतवाले औरंगज़ेब! निश्चय जान रखना कि विधाता के न्यायराज्य में सत्य की जय अवश्य होगी। गुरुदेव, आपकी शपथ, हिन्दुओं को जगावेंगे और देश में प्राणप्रतिष्ठा करेंगे। यदि ऐसा न कर सकेंगे तो भाई और पिता की हत्या का पाप हमें स्पर्श करेगा। जननी, जन्मभूमि। क्या तुम्हारे मलिन मुख पर ऊषा की हास्यरेखा फिर दिखाई देगी ?"

* * * * * *

वर्षव्यापी आयोजन के बाद राजगढ़ में मुग़ल और राजपूत शक्ति की बल परीक्षा शेष हो गई। राणा राजसिंह के साथ युद्ध में पराजित हो कर औरंगज़ेब ने जो सन्धि की उसके द्वारा जज़िया रूपी करके मूल में कुठाराघात पड़ा है इसके सिवा सम्राट को मज़बूर हो कर बन्दियों को भी छोड़ना पड़ा।

आज पूर्णिमा का दिन है। चारो ओर चाँदनी छिटक रही है। चन्द्रदेव अपनी शीतल किरणों के द्वारा इस त्रिताप तापित संसार पर अमृत वर्षा कर रहे हैं। उदयपुर के उदयसागर ताल ने आज बड़ी ही मनोमुग्धकारिणी शोभा धारण की है। उसके स्वच्छ, सुन्दर और सुरम्य तट पर आज वर्षों के वियोगी पितापुत्र का सम्मिलन हुआ है। सभी उपस्थित सज्जन आनन्द के सागर में कल्लोल कर रहे थे। राणा राजसिंह ने विक्रम का हाथ पकड़ कर कहा;:- "प्यारे विक्रम! आज इस आनन्द के समय अपना वही गान एक बार फिर गाओ जिसके द्वारा राजपूतों के हृदय में तुमने नवीनं प्राण का सञ्चार किया था।"

गान समाप्त होने के अनन्तर एकत्रित सामन्तगण अपने अपने घर लौट गये। राजसिंह भी गायक को प्रसन्नतापूर्वक आशीर्वाद दे कर विश्राम करने गये।

पुत्र के मुख की ओर देख कर पिता ने कहा: "विजय कहाँ है, विक्रम? वह क्यों नहीं देख पड़ता?"

विक्रम का मुख मलिन हो गया। उसकी आखें डबडबा आईं और मुह से बोल न निकला। अतएव वह केवल आकाश की ओर उंगली उठाकर रह गया। पीछे से किसी ने उत्तर दिया:-"भाई के लिए विजय ने प्राण दिये हैं। परन्तु उसके मस्तक का मूल्य इतना अधिक देना पड़ेगा औरङ्गज़ेब इसकी कल्पना भी न कर सका था।"।

आँसू पोंछकर पिता ने पुत्र को छाती से लगा लिया और कहा:--विजय नहीं है, परन्तु हम आज तुम्हारे हृदय में दोनों का प्राण स्पंदन अनुभव कर रहे हैं। सत्य की प्रतिष्ठा के लिए विजय ने प्राण दिये हैं।। आज इस पवित्र समय पर उसके लिए व्यर्थ शोक न करेंगे"।

विजयादशमी।*

[लेखिका—श्रीमती सरलादेवी।]

यह कौन सी दशमी तिथि है? यह बात पूर्व सन्निविष्टं विशेषण ही से प्रकाशित हो जाती है। बारह मासों में चौबीस दशमियां आया करती हैं, उनमें से तेईस निर्विशेषण हैं, केवलमात्र एक ही दशमी जय के संकेत से पूर्ण है। जिस प्रकार पुष्प विकाश के पहले अंकुर का उद्गम होता है और बसन्त की हवा चलने लगती है, तथा जल बरसने के पूर्व बादलों के झुण्ड आकाश में बटुरने लगते हैं, और बिजुली चमकने लगती है; जैसे धूमोद्गम के पहले अँगीठो में अग्नि का आविर्भाव होता है। उसी प्रकार कार्य भी कारण घटनाओं की परम्परा से आत्म विकाश करते हैं। विजयादशमी के उत्सव के पहले कौन सा जातीय अनुष्ठान

---

* यह लेख उचित समय पर प्राप्त हुआ था; अतएव विगत अङ्क में प्रकाशित नहीं हो सका, किन्तु "भाव गर्भित" होने के कारण इस बार प्रकाशित कर आपकी सेवा में उपस्थित करता हूं। सं० म०

देख पड़ता है ? किसके पीछे इस जयदायिनी दशमी का अभ्युदय होता है ? ज़रा इसकी ओर विशेष ध्यान देकर देखिये । "महालय" अर्थात् पितृश्राद्ध और पितृतर्पण ही विजयादशमी का पुरोवर्त्ती महदनुष्ठान है ।

हे हिन्दू सन्तानों ! इसकी गम्भीरता और सार्थकता के विषय में ज्ञानशून्य मत बनो । यदि विजय चाहते हो, यदि तेईस बार निष्फल होने पर भी चौबीसवीं बार अन्तःकरण से सफलता प्राप्त करने की कामना करते हो, तो अपने पूर्व पुरुषों की कीर्त्ति के ध्यान में अवगाहित हो, डूब जाओ, (अवगाहन = स्नान) उन सब महान् कार्यकलापों की ओर श्रद्धायुक्त हो ! विश्वास रखो कि वे सब काम तुम्हारे हमारे ऐसे लोहू मांस वाले शरीरों ही से अनुष्ठित हुए थे, और आज भी अनुष्ठित हो सकते हैं–और उन सब के पाद चिह्नों का अनुसरण कर के उनका तर्पण करो। केवल मात्र ब्राह्मण भोजन करा कर, केवलमात्र भौतिक पिण्ड और जल दान करके अपने को ऋण से मुक्त हुआ मत समझो । इससे भी कठिन, कठिन से कठिनतर साधन ग्रहण करो । पहले जान लेना चाहिये कि उन सब के कीर्त्ति मार्ग किस किस दिशा में रेखा खींच गये हैं, जातीय इतिहास का अनुसन्धान, और गठन करो, और उस ऐतिहासिक प्रतीति को वर्त्तमान में सत्य बना डालो । उन लोगों का मार्गानुसरण ही उन लोगों की मुख्य उपासना है । यही उनकी श्रद्धा प्रदर्शन को पन्था है ।

ध्यान रहे ! इसी पितृपूजा के प्रभाव से जापानी इतने स्वदेशभक्त, सफल प्रयास और विजयशाली जाति बने हैं । तुम लोग भी पितृभक्ति और पितृश्रद्धा की मरी ठठरी को फेंक कर जीते जागते प्राणों के भीतर पहुंच जाओ । पूर्वपुरुषों के तर्पण की इच्छा सब कार्यों में तुम्हारी मातृभक्ति के लिए प्रेरणा करती रहे । जो सब बड़े बड़े महापुरुषगण इस भारतभूमि में लय पा चुके हैं (मर चुके हैं) । राम, कृष्ण, अर्जुन, याज्ञवल्क्य, वशिष्ठ, विश्वामित्र, बुद्ध, शङ्कर, गौतम, कौंडिन्य, अशोक इत्यादि–उनके तेजों के अंश फिर से तुम लोगों के शरीर में और आत्मा में, तुम्हारे कार्यों में और भावों में पुनरुज्जीवित हो जायँ ! यही तुम्हारी उच्चाभिलाषा हो; उनके आदर्शों से परिक्षीण न होंगे, यही तुम्हारा महालक्ष्य हो । पग पग में लक्ष्य भ्रष्ट हो सकते हो, बार बार तुम्हारे पांव फिसल सकते हैं ! परन्तु जितनी बार गिरो फिर उठकर खड़े होजाओ और फिर उसी लक्ष्य की ओर दृष्टि डालो–यह उग्र चेष्टा, यह दुरूह वासना तुमको मृतकल्प जातीय दशा में सञ्जीवित रखे । उन लोगों का तर्पण उनकी प्रसन्नता, उनका अभिनन्दन, सिर माथे रख कर आगे बढ़ो । जो ऐसा कर सकोगे तो अवश्य ही इस पुण्यमयी दशमी तिथि में श्रीरामचन्द्र की तरह विजयश्री तुम्हारे भी करतलगत होवेगी ! और फिर होगी !!

नागरी ।

[लेखक–श्रीयुत शिवदासप्रसाद गुप्त ।]

ईस देववाणी की दशा
देखी नहीं जाती प्रभो ।
जगख्यात भाषा नागरी का
हत हुआ सारा विभो ॥

हे न्यायकर्ता दीनबन्धो
ईश आरत-नाद पर ।
टुक ध्यान दीजै इस दशा पर
देववाणी जान कर ॥ १ ॥

हे देशवासी भ्रातृवर्गो
विनय सुनिये ध्यान धर ।
शुभ मातृभाषा देववाणी
पूर्वजों की मान कर ॥
इस सुभग भारतवर्ष में
त्रय रागणियां हैं चल रहीं ।
है राज्य भाषा, यवन भाषा,
आर्यभाषा भी कहीं ॥ २ ॥

गौतम, कपिल विद्या विशारद
नागरो के प्रेमियो ।
रस काव्यकर्त्ता सूर, तुलसी
आदि तुम सब कहँ गयो ॥
क्या नागरी के प्रेमियो
टुक ध्यान भी दोगे इधर ।
सज जाय शोभा नागरी की
व्यापि जावे देशभर ॥ ३ ॥

हा नागरी ! हा नागरी !
हा नागरी ! भाषा यहाँ ।
सर्वोच्च भाषा हिन्दुओं की
रुचिर पावन है महां ॥
यह मातृभाषा हिन्द के सब
शुद्ध लिपियोँ में भली ।
अविकार भाषा है इसी से
आर्यभाषा हो चली ॥ ४ ॥

हे प्रियवरो टुक ध्यान दीजो
नागरी के नाद पर ।
विलखा रही आतुर दुखित
उन सेवकों की आहपर ॥

हे व्यास, पाणिनि; अङ्गिरा
यह मम विनय सुनि लीजिये ।
इस मातृभाषा की अधोगति-
पर दया टुक कीजिये ॥ ५ ॥

है यवन भाषा त्रुटिन का
भंडार जा सकता कहा ।
मानो अलंकृत यवन भाषा
जाल सा है बिछ रहा ॥

इस म्लेच्छ भाषा से अभी तक
जाल कितने हो चुके ।
क्या जालसाजी यवन भाषा
हिन्दवासी खो चुके ॥ ६ ॥

एक बिन्दु से जुमला पलटता
भाव परिवर्तन कहीं ।
हैं अधिक अक्षर निष्प्रयोजन
बहुत आवश्यक नहीं ॥
फुक, फिक, बहर, भर एक
सम बनता कहाँ लों मैं कहों ।
है जालसाजी ही भरी
सद्घोषणा प्रिय वर कहों ॥ ७ ॥

इस ललित भाषा देववाणी
को सुशोभित कीजिये ।
इस नागरी को प्रियवरो
निज आगरी में लीजिये ॥
पढ़ना, पढ़ाना, वाद, भाषण
नागरी में हो भला ।
इस नागरी का समय पलटे
कलित हों सारी कला ॥ ८ ॥

मिलकर परस्पर आप हम
बिनती करें सरकार में ।
शुभ थान क्यों मिलता नहीं
न्याय प्रिया सरकार में ॥
है राष्ट्र-भाषा देववाणी
ही सुजन प्रज्ञा वरो ।
इस नागरी को सर्व व्यापक
कीजिये हे प्रिय वरो ॥ ९ ॥

यह घोषणा है देशवासी
शिक्षितों सें बार बार ।
नागरी-गुण आगरी हो
नागरी प्रति द्वार द्वार ॥

हे भाइयो करके कृपा
निज आगरी अपनाय लो ।
यह नागरी ही का भजन है
चारु मंगल गाय लो ॥ १० ॥

प्रेम महाविद्यालय ।

प्रेमासागर के नायक भगवान श्रीकृष्णचन्द्र की लीला-भूमि में "प्रेम महाविद्यालय" एक अनुपम "शिक्षालय" है। स्वयम् गाय चराचरा कर भगवान् ने एक समय हमको यह उपदेश दिया था, कि देशोन्नति के लिए, देश को ऋद्धि सिद्धि से परिपूर्ण करना, परमावश्यक है। उसी भूमि में आज "प्रेम महाविद्यालय" हमको उपदेश कर रहा है, कि भारत को संसार की जातियों में उच्च स्थान प्राप्त करने के लिए, भारत सन्तान को उद्योग, वाणिज्य, और व्यवसाय, की शरण लेना अनिवार्य है।

प्रेम महाविद्यालय को जन्म लिए अभी बहुत समय नहीं हुआ, किन्तु थोड़े ही समय में इस ने देश की बड़ी भारी सहानुभूति प्राप्त कर ली है। परमात्मा इसे दीर्घ आयु दे! इसका जन्म २४ मई सन् १९०९ ई० में हुआ था। तब से यह उत्तरोतर उन्नति कर रहा है। आशा है शीघ्र ही देश की शिक्षा पर इसका बहुत बड़ा प्रभाव पड़ेगा। आनरेबुल महाराजा क़ासिम बाज़ार, प्रोफ़ेसर विनयकुमार सरकार, महात्मा मुन्शीरामजी आदि अनेक नेताओं ने इसके कार्य क्रम को देखकर मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। सबसे बड़ी प्रशंसा योग्य बात महाविद्यालय में यह है कि इसमें प्रायः सब कक्षाओं में विज्ञान और शिल्प की शिक्षा आर्यभाषा के द्वारा दी जाती है। हमको पूर्ण आशा है कि प्रेम महाविद्यालय से देश के सरकारी और ग़ैर सरकारी सब विद्यालय शिक्षा ग्रहण करेंगे। वर्षों से प्रजा चिल्ला चिल्ला कर कह रही है कि प्रारम्भिक शिक्षा का प्रचार मुफ़्त होना चाहिये! परन्तु सरकार अब तक इसको असम्भव ही समझती है। प्रेम महाविद्यालय ने अपने यहाँ फ़ीस बिल्कुल न लेकर बतला दिया है कि प्रारम्भिक शिक्षा ही नहीं, किन्तु उच्च शिक्षा भी मुफ्त दी जा सकती है। आवश्यकता है तो केवल इच्छा की है। महाविद्यालय में केवल शिक्षा ही मुफ्त में नहीं दी जाती, किन्तु बहुत सी छात्रवृत्तियां भी नियत हैं। मिकेनिकल इञ्जीनियरिङ्ग क्लास में प्रत्येक विद्यार्थी दस दस रुपया मासिक छात्रवृत्ति पाता है। इसी प्रकार अन्य क्लासों में भी बहुत सी स्कालरशिपें मिलती हैं।

प्रेम महाविद्यालय उस देशभक्त के धन के सदुपयोग का फल है जो धार्मिक झगड़ों को देश के लिए महा हानिकारक समझता है। अतएव इस विद्यालय का किसी धार्मिक सम्प्रदाय से सम्बन्ध नहीं है। वैष्णव, जैनी, आर्यसमाजी, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, प्रत्येक देशवासी के लाभ के लिए इस विद्यालय का जन्म हुआ है। मनुष्य मात्र से प्रेम बर्ताव करने ही के कारण कभी कभी लोगों में वैमनस्य फैल जाता है, किन्तु हमारा दृढ़ विश्वास है कि प्रेम महाविद्यालय के कार्यकर्ता इसको साम्प्रदायिक झगड़ों से सर्वदा बचाये ही रखते हैं और रहेंगे। इस महाविद्यालय के निम्नलिखित सात सिद्धांत हैं:-

(१) एकता।

(२) समता।

(३) स्वतन्त्रता।

(४) देशभक्ति।

(५) मनुष्य मात्र से भ्रातृभाव।

(६) राजभक्ति।

(७) धर्म, जाति, सम्प्रदाय और मतमतान्तरों की उपेक्षा।

प्रेम महाविद्यालय इन्हीं उपर्युक्त सिद्धान्तों को मानते हुए अपना सब काम करता है।

(१) जन-साधारण में विद्या-प्रचार।

(२) लोगों में वाणिज्य, शिल्प और कल कारख़ानों की उच्च विद्या का प्रचार करना।

(३) स्वास्थ्य के नियमों का प्रचार करना।

(४) जीवन के नियमों को उच्च बनाना और वर्त्तमान सामाजिक कुरीतियों को दूर करना।

(५) भारतवर्ष के प्राचीन और मृत्युप्राय उद्योग और शिल्प की उन्नति करना और उनको पाश्चात्य नियमों पर चलाना।

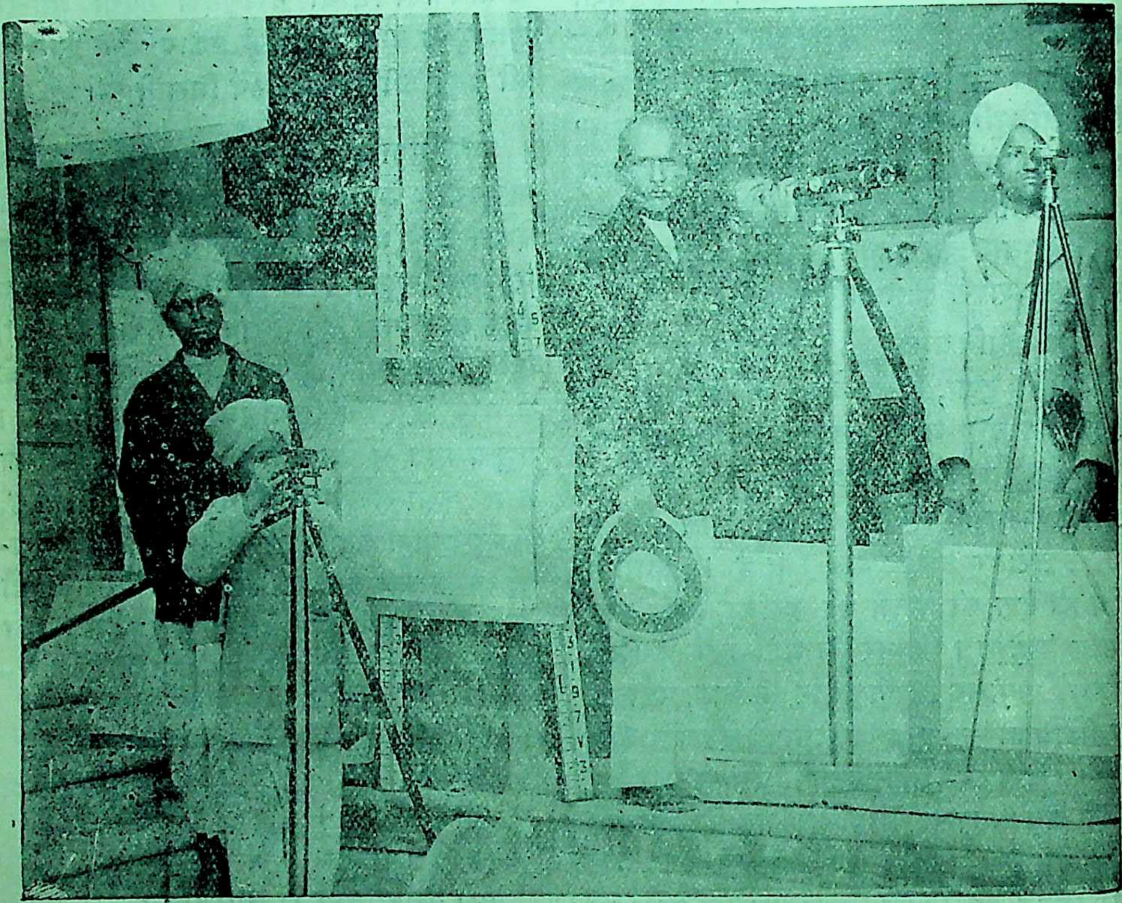

सर्वे (पैमाइश) की शिक्षा।

(६) पाश्चात्य और प्राच्य सभ्यताओं को मिलाकर भारतवर्ष में जातीयता उत्पन्न करना।

(७) उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए यथा-योग्य स्थान, वा स्थानों में मिकेनिकल इञ्जीनियरी, वाणिज्य, कृषि और शिल्प के "महाविद्यालय" खोलना।

चौथे उद्देश्य पर कोई कोई महाशय शङ्का करते हैं और सामाजिक कुरीतियों को दूर करने में साम्प्रदायिक झगड़ों का समावेश समझते हैं। परन्तु यह लोगों की भूल है। प्रत्येक मनुष्य को अपनी इच्छानुसार काम करने का अधिकार है; किन्तु इसमें एक शर्त है, कि वह दूसरों के भी उतनी ही स्वतन्त्रता का बाधक न हो। प्रेम महाविद्यालय भी उन्हीं सामाजिक कुरीतियों का संशोधन करना, अपना कर्त्तव्य समझता है, जिनसे इसके सिद्धान्तों का गला घुटता है। समता के ध्यान से ही प्रेम महाविद्यालय भंगी से लेकर उच्चातिउच्च ब्राह्मण तक और रंक से लेकर राजे महाराजे सम्राट् तक सब को बराबर समझता है। मनुष्य के स्वत्वों का सब को

बराबर का अधिकारी समझता है। अगर कोई धर्म विशेष इस सिद्धान्त को न मान कर ऊँच नीच का प्रचार करें तो "प्रेम महाविद्यालय" उसको मानने के लिए तैयार नहीं है। विद्या के प्रकाश से समाज में सर्वदा संशोधन होते आये हैं; परन्तु "प्रेम महाविद्यालय" का और किसी प्रकार के संशोधन से सम्बन्ध नहीं है।

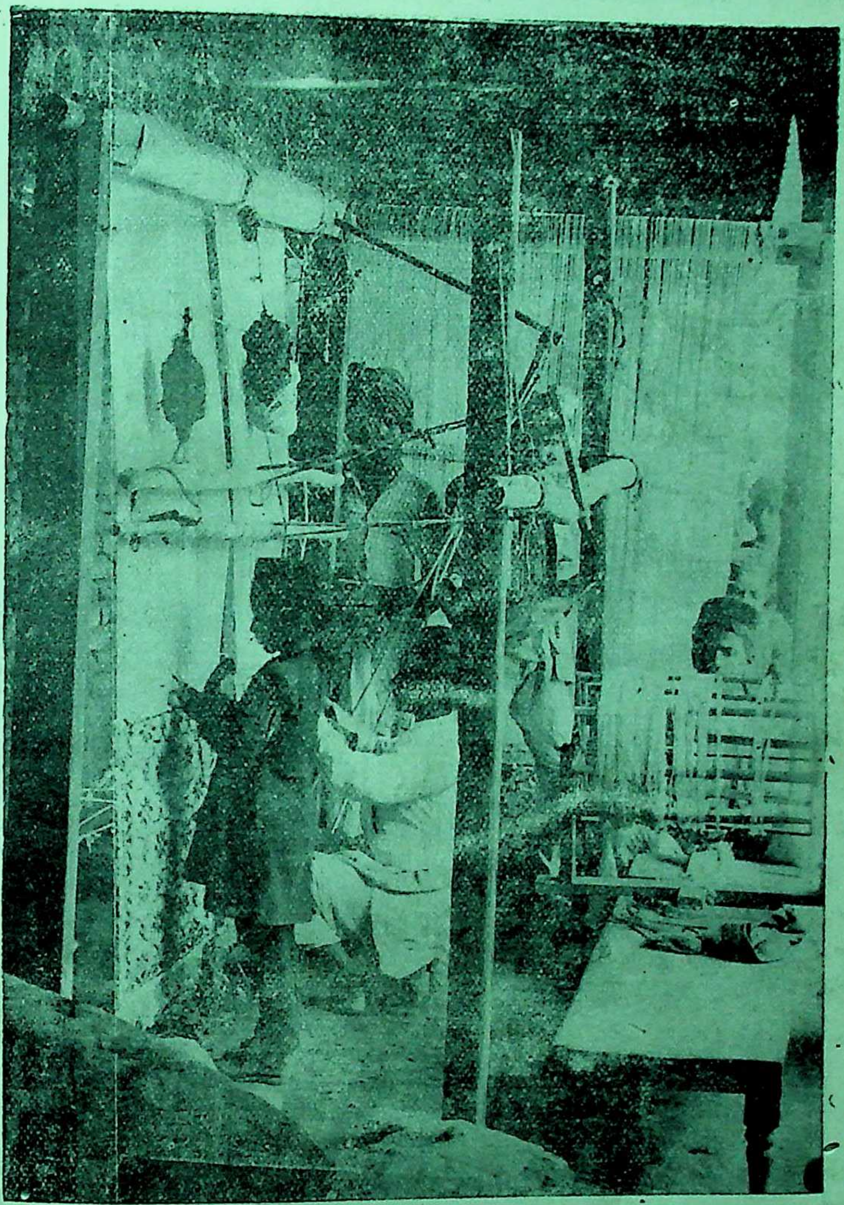

कारपेट बुनने की शिक्षा।

प्रेम महाविद्यालय में कई विषयों की शिक्षा दी जाती है। साधारण शिक्षा के साथही साथ प्रत्येक विद्यार्थी को कोई औद्योगिक विषय भी अवश्य सिखाया जाता है। महाविद्यालय में कुल सात श्रेणियां हैं। सातवीं श्रेणी में अङ्गरेज़ी, इतिहास, साइन्स, हिसाब, हिन्दी आदि में सरकारी मेट्रिकुलेशन क्लास से कुछ अधिक

ही शिक्षा दी जाती है। इसके अतिरिक्त सातवें क्लास में पहुंचने तक प्रत्येक विद्यार्थी कई प्रकार के उद्योग भी सीख लेते हैं। जैसे काठ का काम, लोहे का काम, खिलौना आदि बनाना, कालीन बुनना इत्यादि इत्यादि। सातवीं श्रेणी में उत्तीर्ण होने के उपरान्त विद्यार्थी मिकेनिकल इंजीनियरिङ्ग क्लास में प्रवेश करने का अधिकारी हो जाता है। इस श्रेणी में तीन वर्ष के उपरान्त विद्यार्थी बहुत अच्छा मिकेनिकल इंजीनियर हो सकता है। हमने पाठ्यक्रम को बड़ी गवेषणा से जाँच करके देखा है। हम दृढ़तापूर्वक कह सकते हैं कि प्रेम महाविद्यालय एक दिन इस

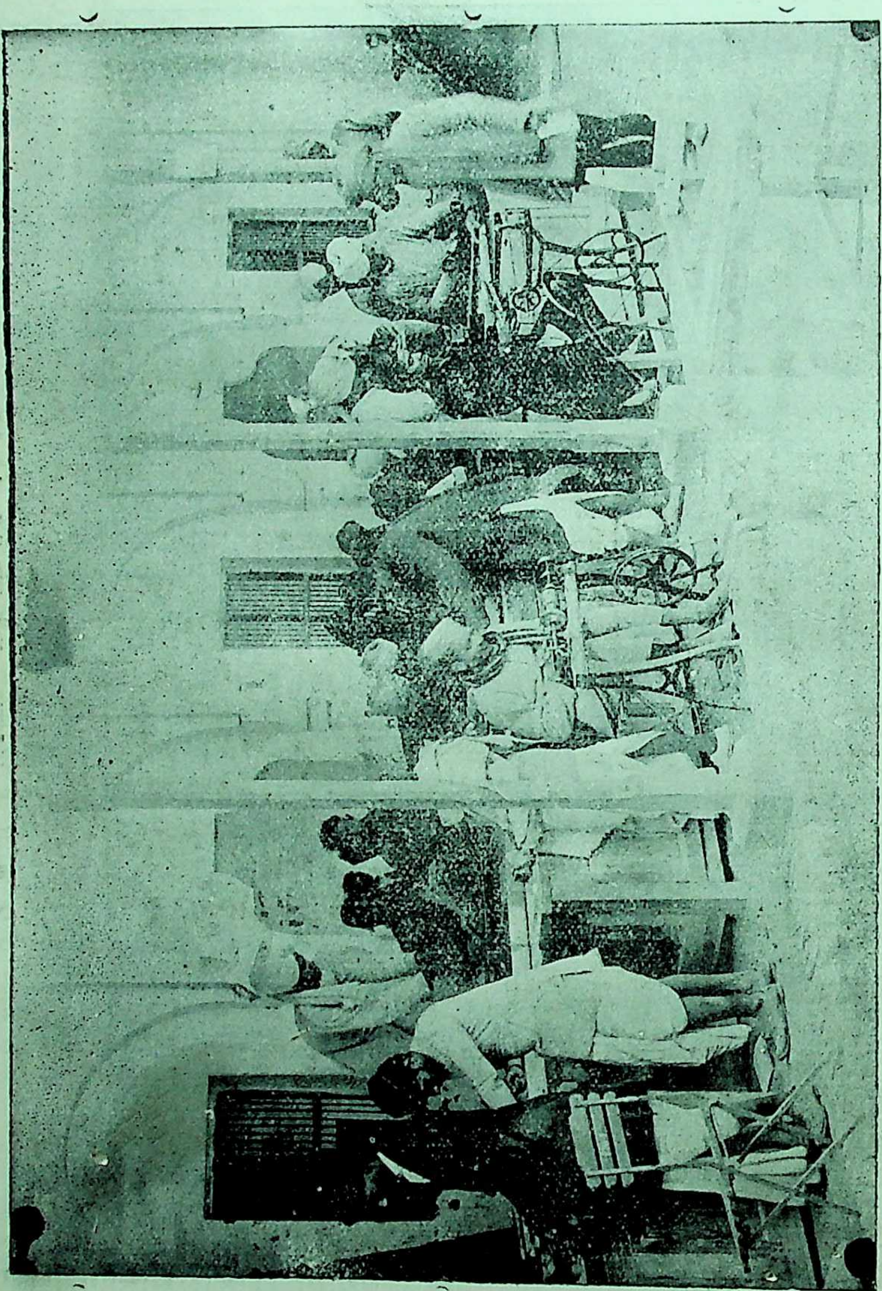

बढ़ई के काम की शिक्षा।

देश के लिए बड़ा लाभदायक सिद्ध होगा और हमारे देश के कल कारखानों को बहुत अच्छी तरह सम्हाल सकेगा।

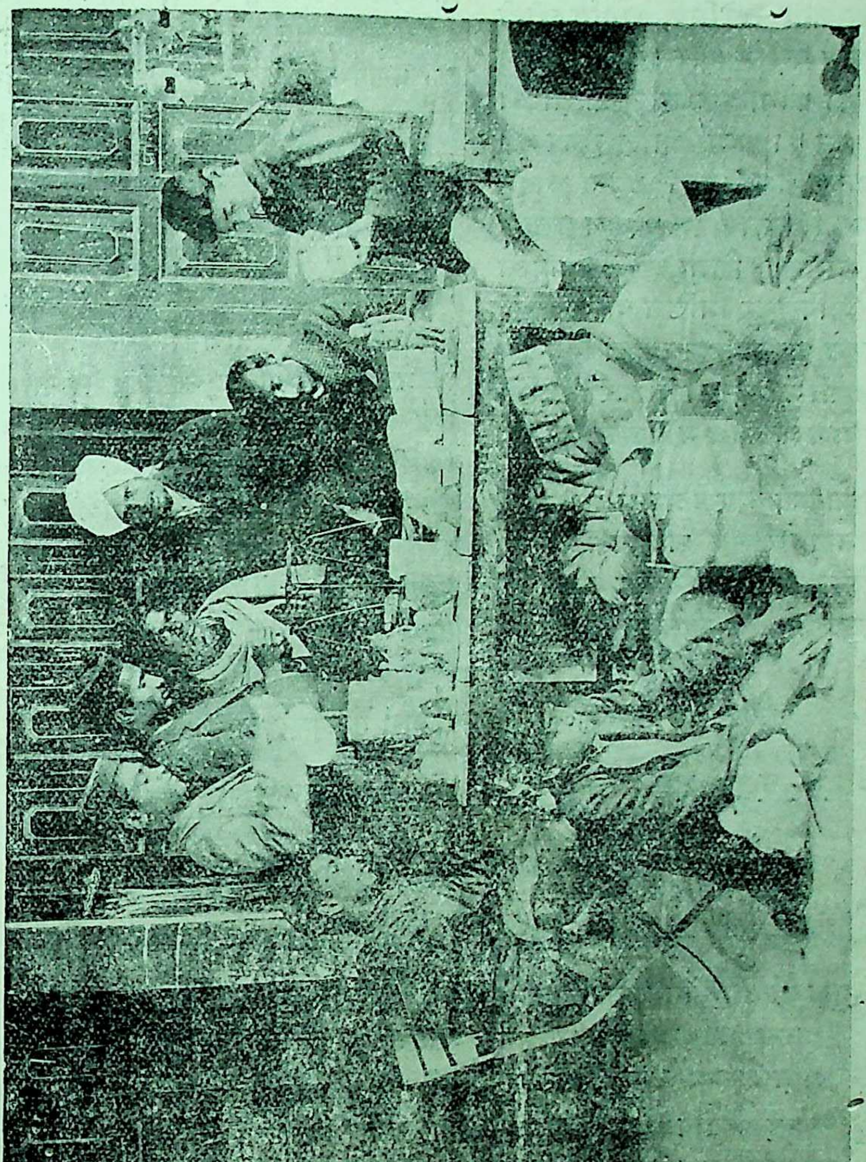

मिट्टी और चीनी के खिलौने, बर्तन आदि की शिक्षा।

मिकेनिकल इञ्जीनियरिङ्ग क्लास के अतिरिक्त कमरसियल क्लास में बहुत से मेट्रिक्युलेशन पास शुदा अथवा मेट्रिक्युलेशन तक पढ़े विद्यार्थी टाइप बुक कीपिङ्ग, शार्ट हैन्ड सीख रहे हैं। इस क्लास में प्रायः सबसे अधिक लड़के पढ़ने आया करते हैं। सर्वे क्लास में पढ़कर लड़के अच्छे ओवरसियर बन सकते हैं। इस क्लास से भी प्रायः पाँच छः विद्यार्थी पढ़कर प्रत्येक वर्ष निकलते हैं।

मैं पहले बतला चुका हूं कि विद्यालय की सातवीं श्रेणी में पहुंचने तक विद्यार्थी कई औद्योगिक विषयों में सिद्धहस्त हो जाता है। इन विषयों में मिस्त्रीगीरी अर्थात् लकड़ी का काम, लोहार का काम, सैरेमिक अर्थात् चीनी मिट्टी के अमृतवान वग़ैरह और खिलौने बनाने का काम, प्रेस का काम, अर्थात् कम्पोज़ीटरी वग़ैरह, चित्र-विद्या का काम आदि मुख्य हैं। जो लड़के साधारण विद्या नहीं पढ़ना चाहते उनके लिए भी विद्यालय ने स्पेशल क्लास खोल कर इन कामों में शिक्षा देने का प्रबन्ध कर रखा है। वर्नाक्यूलर मिडिल पास लड़कों के लिए भी बहुत अच्छा प्रबन्ध है। एक दो वर्ष स्पेशल क्लासों में अङ्गरेज़ी पढ़कर विद्यार्थी चौथे पांचवे क्लास के साथ में पढ़ सकता है।

यहाँ के अध्यापकों ने एक प्रेम क्लब क़ायम कर रखा है। जहाँ पर सब अध्यापक परस्पर आनन्द पूर्वक विचार परिवर्त्तन कर सकते हैं; और वे लोग वृन्दावन की भूमि में सुशिक्षित मनुष्यों के लिए एक अच्छी समिति की कमी को पूरी कर रहे हैं।

लेख बहुत बढ़ जाने के भय से हम पाठकों के सामने डिबेटिङ्ग क्लब, वार्षिकोत्सव, प्रदर्शिनी, खेल, नाटक, इत्यादि इत्यादि मुख्य विषयों का वर्णन नहीं कर सके। पाठकगण प्रेम महाविद्यालय के मुख पत्र 'प्रेम" के द्वारा इस प्रेम महाविद्यालय से अच्छी तरह परिचित हो सकते हैं।

अन्त में हमको श्रीमान् कुंवर महेन्द्रप्रतापसिंहजी से विशेष कर और साधारणतः समस्त देशभक्तों से एक प्रार्थना करनी है। सो यह है कि प्रेम महाविद्यालय सरीखे औद्योगिक विद्यालय के लिए वृन्दावन की भूमि योग्य नहीं है। किसी औद्योगिक केन्द्र में ही ऐसे विद्यालय की आवश्यकता होती है! इसलिए किसी प्रकार इस विद्यालय को देहली, आगरा, कानपुर आदि शहरों में से किसी एक शहर में ले जाना बहुत अच्छा होगा।

डाक्टर सतीशचन्द्र बैनर्जी

एम० ए०, एल० एल० डी०, एफ़० ए० यू०, प्रेमचन्द्र रायचन्द्र स्कौलर,

टैगोर ला लेक्चरर, एडवोकेट, हाईकोर्ट प्रयाग।

[लेखक—श्रीयुत अमरनाथ झा।]

संयुक्त प्रान्तीय पोलिटिकल कानफरेंस का गत अधिवेशन फैज़ाबाद में डाक्टर सतीशचन्द्र बन्धोपाध्याय के सभापतित्व में हुआ। उस अवसर पर सभापति का आसन ग्रहण करते समय जो व्याख्यान उन्होंने दिया वह बड़ा ही सारगर्भित एवं प्रशंसनीय था। यह अवसर नहीं है और न यह स्थान है कि उस वक्तृता की समालोचना की जाय। तथापि यह कह देना हम आवश्यक समझते हैं कि इस वर्ष के सभापति की वक्तृता और सभापतियों की वक्तृता से किसी तरह भी न्यून न थी। आज हम अपने पाठकों को इस वर्ष के सभापति महोदय की संक्षिप्त जीविनी भेंट करते हैं।

डाक्टर सतीचन्द्र का जन्म २० जून सन १८७१ ई० को आगरे में हुआ। आपके पिता वहीं मुन्सिफ थे। कुछ दिनों तक इन्होंने अपने घरही पर शिक्षा पाई। तदनन्तर कुछ दिनों तक ये वहां के "मुफ़ीद आम" स्कूल में पढ़ते रहे।

फिर इन्होंने एक वर्ष मिडिल क्लास में आगरे के "सेन्ट जान्स कलिजियेट" स्कूल में पढ़ा। इनके बाल्यकाल ही की प्रतिभा एवं बुद्धि की विलक्षणता को देखकर बड़े से बड़े विद्वान दंग हो जाते थे। इनके पिता की वहां से प्रयाग में बदली हो गई। यहां सतीश बाबू "गवर्नमेंट स्कूल" में माननीय पं० मदनमोहन मालवीयजी के विद्यार्थी थे और अद्यावधि मालवीयजी का गुरुवत् ये आदर करते हैं। एन्ट्रेन्स से थर्ड ईयर क्लास तक "एम० ए० ओ० कालेज" अलीगढ़ में और बी० ए० से अन्त तक आगरा कालेज में पढ़ा। इनके पिता तब आगरे के ख़फ़ीफ़ा जज हो गये थे।

सन् १८९० में इन्होंने बी० ए० पास किया। फर्स्ट डिवीज़न में उस वर्ष केवल तीन छात्र पास हुये थे। डाक्टर गङ्गानाथ झा, मि० जी० ई० फौय और डाक्टर सतीशचन्द्र। इनमें से ऑनर्स (Honours) केवल झा जी और सतीश बाबू को मिला। पं० झा जी दर्शन-शास्त्र में और डाक्टर सतीशचन्द्र अङ्गरेज़ी में सम्मान सहित पास हुए। किन्तु डाक्टर सतीशचन्द्र ने उसी वर्ष बल्कि उसी मास, कलकत्ते की भी बी० ए० परीक्षा दी और उसे भी फर्स्ट डिवीज़न में पास किया। अनन्तर सन् १८९१ ई० में इन्होंने कलकत्ते और प्रयाग दोनों यूनिवर्सिटियों की अंगरेज़ी में एम० ए० की परीक्षा प्रथम डिवीज़न में पास किया।

सन् १८९२ में आपके प्रिय पिता का स्वर्गवास हो गया। अतः सतीश बाबू को उनके एक चचा ने कृपापूर्वक कलकत्ते ले जाने का प्रबन्ध किया। ये उनके साथ कलकत्ते चले गये। सन् १८९४ के अगस्त में 'हुगली कालेज' कलकत्ते में अंगरेज़ी के असिस्टेन्ट प्रोफेसर मि० एच० सी० हिल साहब (जो मध्यप्रदेश के डाइरेक्टर नियुक्त हुये) के स्थान पर आप नियुक्त किये गये।

सन् १८९४ के नवम्बर में एल० एल० बी० पास करने पर आपने सन् १८९५ के नवम्बर में प्रेमचन्द्र रायचन्द्र की छात्रवृत्ति अंगरेज़ी और फिलासफी में प्राप्त की। सन् १८९६ के जनवरी में कलकत्ते की प्रोफेसरी छोड़कर आप फेब्रुअरी में हाईकोर्ट के वकील हुए और इलाहाबाद के डिस्ट्रिक्ट कोर्ट में वकालत करने लगे। कुछ दिनों तक आप सर सैयद अहमद खां के परम योग्य पुत्र मिस्टर सैयद महमूद (जो हाईकोर्ट के जजी से पेन्शन पाकर फिर से बैरिस्टरी कर रहे थे) के जूनियर Junior का काम करते थे। सन् १८९६ के जून में हाईकोर्ट ने इन्हें बिना ज़िले की वकालत करने की अवधि पूरी किये हाईकोर्ट में वकालत करने का हुक्म दे दिया और नवम्बर मास से ये प्रयाग में रहते हैं।

सन् १८९५ में आप प्रयाग विश्वविद्यालय के फेलो Fellow नियुक्त हुए और सन् १८९९ में ऑनर्स इन ला की परीक्षा पास कर सन् १९०१ में आपने डाक्टर्स आव ला की परीक्षा भी पास की!

सन् १९०६ में कलकत्ता यूनिवर्सिटी के टैगोर ला लेक्चरर नियुक्त हुए और अक्टूबर से दिसम्बर तक में आपने १२ व्याख्यान Law of Pacific Relief in British India पर दिये।

बी० ए० पास करने के अनन्तर आपने सन् १८९१ में टेनीसन के प्रिंसेस पर और सन् १८९२ में बर्किले की टीका लिखी (Annotations on Berkeley's Dialogue's.)

प्रेमचन्द्र रायचन्द्र परीक्षा का लेख इन्होंने सांख्य पर लिखा था। टेगोर ला लेक्चर्स सन् १९०९ में छपे।

आप बराबर कांग्रेस में व्याख्यान देते रहे हैं और कुछ साल तक संयुक्तप्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के मन्त्री भी थे।

अङ्गरेज़ी के अतिरिक्त आपको संस्कृत का भी पूर्ण ज्ञान है और हिन्दू धर्म-शास्त्र की बात आप बड़े महत्व के साथ अङ्गरेज़ी में समझाते हैं।

ऐसे बड़े वकील बहुत कम हैं जो वकालत के सिवा और कुछ कभी करते हों। अगर ऐसे

हैं तो ये हैंः-डाकृर रासविहारी घोष, डाकृर सतीशचन्द्र बैनर्जी और डाकृर तेज बहादुर सप्रू। ये लोग आजकल अपने अपने प्रान्त में वकीलों की उच्च श्रेणी में होते हुए साहित्य को भूले नहीं हैं। केवल क़ानून की किताबों से ये दबे नहीं रहते हैं। इनकी अल्मारियों में जितनी क़ानूनी किताबें हैं उतने ही अथवा उनसे भी अधिक साहित्य एवम् विज्ञान के ग्रन्थ हैं। इनका परिश्रम देख के युवक विद्यार्थी भी दङ्ग हो जाते हैं।

सतीश बाबू उन सूखे व्याख्यानदाताओं में नहीं हैं जो व्याख्यान देते समय कुछ का कुछ कहते हैं और करते कुछ का कुछ हैं। निरथ बातों का करना ये परम हेय समझते हैं। जिस बात को ये पसन्द करते हैं, जिसकी उन्नति इ को अभीष्ट है, जिसकी ये हृदय से प्रशंसा कर हैं, उसकी केवल मौखिक ही नहीं वरन् आर्थि सहायता भी आप करते हैं। डाकृर साहब उ में नहीं हैं जो विद्या और यश को पूर्णतया प्रा करके, केवल धन सञ्चय करते हैं और अप धर्म कर्म को तिलांजलि दे बैठते हैं। ये बड़े ह धर्मात्मा हैं और प्रतिवर्ष बड़े समारोह से दुर पूजा करते हैं।

व्यास।

(पूर्व प्रकाशितानन्तर।)

[लेखक-श्रीयुत पं० बालकृष्ण भट्ट।]

राजा के ७ या ८ सचिव होते थे जिनमें राज्य का सब काम बटा रहता था जो कर उगाहनेवाला मन्त्री या सचिव होता था वह कर में या तो अन्न लेता था या सोना, बड़े नगरों का प्रवंध भी इन्हीं सातों के आधीन कर दिया जाता था। राजा के कर्मचारियों के अत्याचार से प्रजा को बचाये रखना इन सातों सचिवों का मुख्य काम था। जो कर उगाहता था वह सातों का मुखिया होता था व्यापार करनेवालों और कारीगरों से उनकी आमदनी का पांचवाँ हिस्सा कर की भांति लिया जाता था। हर तरह की खान, नमक, शुल्क और नदी के उतारे की आमदनी भी राजा को कर की भांति मिलती थी और इन सबों का कर उगाहनेवाला राजा ही का कोई नगीची रिश्तेदार होता था या राजा का कोई विश्वासपात्र। राजा को हाथी से बड़ी आमदनी होती थी जिसे बिना राजा की आज्ञा के कोई नहीं पकड़ सकता था गोधन उस समय बड़ा समझा जाता था। विराट् राजा का गोधन प्रसिद्ध था। चराई का दाम तब नहीं लगता था और जंगलों में बिना कुछ दिये अपने पशुओं को चराते थे। जंगलों पर राजा का अधिकार नहीं होता था। पाण्डव गुप्तवास के पूर्व जंगलों में घूमते रहे और जंगल की उपज कन्दमूल तथा बनैले पशुओं को मार जीविका करते रहे और दुर्योधन उनका कुछ न कर सका। श्रीकृष्ण महाराज व्रजभूमि के जंगलों में गोचारण करते रहे, पास ही मथुरा में रहकर कंस उनका कुछ न कर सका। व्रजभूमि में ८४ कोस बिलकुल जंगल था। वृन्दाबन, काम बन आदि उनमें प्रधान थे। श्रीमद्भागवत का इन बनों और पर्वतों की छटा का वर्णन इतना रोचक है कि पढ़ने से चित्त रम जाता है। रामचन्द्रजी दण्डक के जंगल में ऋषियों को दुःख देनेवाले राक्षसों को बध करते १४ वर्ष तक घूमते रहे। इससे मालुम होता है कि बन तब बहुत थे और किसी का अधिकार उनपर न होता था। देश में नहर आदि का प्रबन्ध राजा रखता था। देवमातृक नदीमातृक इन शब्दों से सिंचाई का प्रबन्ध कैसा रहता था सो प्रगट है। जहां वृष्टि के जल से

उपज हो वह देवमातृक है। कुल्या या नहरों से जहाँ सींचकर शस्य संपत्ति हो वह नदी मातृक देश है। किरात काव्य में भारवि ने लिखा हैः–

"वितन्वतिक्षे मम देव मातृके
चिरायतास्मिन्कुरवश्च काशते ।"

अमरसिंह ने अमर में नदी मातृक का लक्षण लिखा हैः–

'देशोनद्यम्बु वृष्ट्यम्बु संपन्नव्रोहि पालितः ।
स्यान्नदीमातृकोदेव मातृकैश्च यथाक्रमम् ॥"

सिक्का उस समय निष्क था जो सोने का पुतली के आकार का मालूम होता था। गले में पहिनने का गहना भी उसका बनता था। दासियों के वर्णन में लिखा है। "निष्क कंठ्यो सुदाससः" ब्राह्मणों को दक्षिणा निष्क दिया जाता था। प्रजा से कर जो राजा को मिलता था उसके बदले में राजा प्रजा की सब भांति रक्षा करता था। वह कर्मचारियों के अत्याचार से उन्हें बचाता, राज्य में तालाब और नहर आदि के द्वारा खेती करनेवालों को खेत सींचने का अच्छा सुभीता करता और डकैतों से उन्हें रक्षित रखता था। आबकारी या अफ़ीम आदि मादक द्रव्यों पर किसी तरह के कर का कहीं लेख नहीं है। इससे मालूम होता है मादक वस्तु शराब आदि का प्रचार सर्वसाधारण में कम था। केवल क्षत्री लोग पीते थे। उसमें भी मनु ने १२ प्रकार के मद्य लिखे हैं। सब तरह का मद्य क्षत्रियों के लिए भी विहित नहीं है। लंगड़े, लूले, अन्धे, बहिरे, गूंगे आदि अपाहिजों का पालन पोषण राजा के कर्त्तव्य कर्मों में था।

"कच्चिदन्धांश्च मूकांश्च पंगून् व्यंगानबान्धवान् ।
पितेव पासि धर्मज्ञ तथा प्रव्रजितानपि ॥"

ब्राह्मणों में जो पढ़ा लिखा नहीं होता था और न अग्निहोत्र करता था उसके साथ शूद्र के समान बर्ताव किया जाता था। राज्य का आय व्यय तथा कोष राजा स्वयं प्रतिदिन देखता था और इस बात का ध्यान रखता था कि आमद से खर्च बढ़ न जाय।

"इदमेवहि पाण्डित्य मियमेव विदग्धता ।
अयमेव परोधर्मो यदायान्नाधिको व्ययः ।"

यही पण्डिताई, यही चतुरई और यही परम धर्म है कि आमद से खर्च अधिक न होने पावे। राजा नित्य धर्मासन पर शोभित होकर प्रजा के मामले मुक़दमे सुनता था। उसके आठो सचिव सहायक की भांति रहते थे। ४ विद्वान् ब्राह्मण जो विवाह किये हों, ८ शूरवीर क्षत्री, २१ धनी वैश्य साफ सुथरा वस्त्र पहिने, ३ शूद्र उस समय दरबार में रहते थे। इन सबों की एक कौंसिल में मुक़दमा फैसल किया जाता था। भीष्म ने युधिष्ठिर से बड़ी ताक़ीद के साथ कहा है कि बिना इन सबों की कौंसिल के तुम कभी प्रजा में अर्थी प्रत्यर्थी का न्याय न किया करो। धनियों को जुर्माने का दण्ड दिया करो, धनहीन को क़ैद और दुर्विनीत (दुष्ट) को कोड़ों की सज़ा दिया करो। अर्थी प्रत्यर्थी में विवाद का निश्चय न हो सके तब साक्षियों से न्याय का निश्चय किया करो। उत्कोच (घूस) पर बड़ा ज़ोर दिया है। जो राजा उत्कोच लेकर मुक़दमा फैसल करता है उसका राज्य जल्दी नष्ट हो जाता है और सच्चा न्याय उससे वैसा ही दूर भागता है जैसे बाज को देख कर पक्षियों का समूह। स्टैम्प या फीस नहीं लगती थी पर जितने का दावा होता था उसका दो गुना जुर्माना लिया जाता था। वकील उस समय नहीं थे। चारो वर्णों से जूरी चुन लिए जाते थ वे ही वकील का काम करते थे। चोरी का दण्ड हाथ काट लेना था जिससे चोरी बहुत कम होती थी। कालिदास ने भी रघुवंश में लिखा हैः-

व्यावृत्तायत्परस्वेभ्यः श्रुतौ तस्करता स्थिता ।

अर्थात् कहने सुनने में चोरी का शब्द रह गया, वास्तव में चोरी कैसे की जाती है सो लोग भूल गये।

व्यापारादि के लिए उस समय वार्ता शब्द प्रचलित था जिसका अर्थ जीवनोपाय है। वार्ता से व्यापार खेती, गौ आदि पशुओं का पालन कारीगरी और व्याज आदि के अर्थ लिये गये हैं। अपने राज्य में वार्ता का सब क्रम ठीक रखना यह भी राजा का एक काम था। एक स्थान पर नारद ने युधिष्ठिर से पूछा है:-

"कच्चित्स्वनुष्ठिता तात वार्ता ते साधुभिर्जनैः।
वार्तायां संश्रितस्तात लोकोयं सुख मेधते ॥"

तुम्हारे राज्य में वार्ता अच्छे लोगों से की जाती है। इसलिए कि वार्ता के अधीन लोगों का सुख है। खेती के सम्बन्ध में हम दिखला चुके हैं कि कुल्या या नहर आदि का प्रबन्ध दुर्योधन ने अपने राज्य में अच्छा कर रखा था। ऊख की खेती उस समय बहुत होती थी। नील इत्यादि रंग पैदा करनेवाली वस्तु की खेती का लेख महाभारत में पाया जाता है। अफीम का कहीं नाम नहीं है। इससे मालूम होता है कि अफीम यहाँ की मुख्य उपजों में नहीं है। पशु-पालन पर शालिहोत्र पालकाव्य आदि ग्रन्थ सिद्ध करते हैं कि पशु पालन एक विद्या थी। विराट् के यहाँ गुप्त वास में नकुल घोड़ों की देखभाल और सहदेव गौओं की देखभाल पर नौकर हुये थे। वराह मिहर ने वाराही संहिता में बकरी, मेढ़ा आदि पशुओं के पालन पोषण तथा उनके शुभ अशुभ लक्षण लिखे हैं, इससे सिद्ध होता है कि पशु पालन उस समय एक विद्या या कला समझी जाती थी। गो-धन एक बड़ा धन था जिसकी इस समय अत्यन्त क्षीण अवस्था है। नन्द के यहाँ हज़ारों गौएँ थीं। कार्पास शब्द का प्रयोग महाभारत में बहुत आया है। रानियों के सूक्ष्म वस्त्र भांति भांति के रंग में रंगे जाते थे। चीन जैसा रेशम के लिए विख्यात है वैसे ही भारत कार्पास के लिए। भरूकच्छ निवासियों ने सैकड़ों हज़ारों दासियां यज्ञ में युधिष्ठिर को भेंट में दी हैं जो रूई के कपड़े पहिने थीं:-

"शतं दासीसहस्राणां कार्पासिक निवासितम्।
बलिं च कृत्स्नमादाय भरूकच्छ निवासिनः ॥"

ऐसे ही चमकीले रत्न और मणि तथा कांचन भांति भांति के कपड़े पांड्य और चोल देशवालों ने भी युधिष्ठिर को भेंट में दिये हैं। यहाँ की जुदी जुदी जातियों में "तन्तुवाय" जुलाहे भी गिनाये गये हैं। इससे सिद्ध होता है कि रूई के कपड़े तथा उसका व्यवसाय उस समय अधिक था। यहां के बने हुए कपड़े फ़ारस और टर्की आदि देशों में जाते थे। रेशम और ऊन के भी भांति भांति के महीन काम के कपड़े यहां बनते थे। बड़े दाम के उत्तम कम्बल काम्बोज देश के राजा ने युधिष्ठिर को भेंट दिये हैं। हाथी दांत की कारीगरी का कई जगह वर्णन है। मय की बनाई युधिष्ठिर की सभा के वर्णन में स्थापत्य विद्या का ओर छोर दिखाया गया है। तब निश्चय है कि व्यापार और कारीगरी उस समय परम उन्नति को पहुंच गई थी। कुछ ऐसे मसाले या किसी क़िस्म का ग्लास सभा में लगा था जिससे दुर्योधन को जल में स्थल और स्थल में जल का भ्रम हुआ, जिस पर द्रौपदी और भीम ने हँस कर कहा था कि अन्धे के अन्धे पैदा होते हैं। व्यापार, पशुपालन और कृषि-कर्म वैश्य करते थे। देश में धन वृद्धि के हेतु केवल वैश्य की जाति थी। सोना, चांदी हर तरह के मणि और जवाहिर की यहां खानें थीं। सिंहलदेश (लङ्का) तक के लोग युधिष्ठिर को मूंगा मोती और कुथ चटाई जो किसी प्रकार की घास की बनी होती थी भेंट देते थे:-

"समुद्रसारं वैडूर्यं मुक्तासंघास्तथैव च।
शतशश्च कुथां श्चैव सिंहलाः समुपाहरन् ॥"

इससे सिद्ध है कि आसपास के टापुओं तक के लोग यहां के अधीन थे और उन टापुओं में आवागमन यहां के लोगों का था। लड़ाइयों में हाथी विशेष रहते थे और वे ऐसे सिखाये जाते थे कि शत्रु की सेना में घुस कर सैकड़

को पांव से कुचल डालते थे । हाथी की सूड़ और मस्तक पर ज़िरापोश रहता था । हाथी की उपज़ देश में बहुत अधिक थी । सेलूकस ने ५०० हाथी लेकर चन्द्रगुप्त को अपनी बेटी व्याह दी थी । भगदत्त के हाथी से भीम का युद्ध लिखा है । श्रीकृष्ण कंस के हाथी कुवलयापीड़ से लड़े थे और उसे मार डाला था । हर एक राजा बड़ा से बड़ा सैन्य दल अपने राज में रखता था । १० सिपाही पर १ मुखिया रहता था । ऐसे ऐसे दस मुखियाओं का एक अधिपति अलग रहता था जो शतपति कहलाता था । १० शतपति पर एक सहस्रपति होता था जिसका राजा बड़ा सन्मान करते थे और वेतन भी उसको बहुत अधिक देते थे । वेतन में अधिकतर अन्न दिया जाता था और थोड़ा सा उस समय का प्रचलित सिक्का भी । पैदल सिपाही आसा या फरसा हाथ में लिए रहते थे । तोमर, शूल, भिन्दिपाल आदि उस समय के शस्त्रों के नाम पाये जाते हैं पर ये शस्त्र किस प्रकार के होते थे सो कहीं नहीं लिखा है । गदा और चक्र साधारण लोग नहीं चलाते थे । महारथ कोई बड़ा शूरवीर ही चला सकता था । ब्रह्मास्त्र की बड़ी महिमा लिखी है । अग्निबाण, वरूणास्त्र आदि बहुत से शस्त्रों के नाम पाये जाते हैं और ये शस्त्र कुछ मन्त्र पढ़ कर चलाये जाते थे । जृंभकास्त्र की बड़ी महिमा रामायण में है जिसे विश्वामित्र ने राम और लक्ष्मण को बतलाया था । हर एक राजा धनुर्वेद में पूर्ण निष्णात होता था और बाणविद्या में परम प्रवीण रथ के हाँकनेवाले सारथी बड़े चतुर होते थे और बहुधा रथी को मारने से बचा लेते थे ।

धर्म उस समय वैदिक था । सन्ध्या, तर्पण, अग्निहोत्र द्विजातिमात्र करते थे । पितरों का श्राद्ध और उनका यजन नित्य-कर्म में था । देवताओं में सूर्य और अग्नि की उपासना प्रधान थी । विष्णु, शिव, स्कन्द, दुर्गा और भद्रकाली का भी नाम महाभारत में पाया जाता है । जिससे सिद्ध है कि महाभारत का समय हमारी परम उन्नति का समय था ।

देवोत्थान एकादशी ।

[लेखक—पं० मन्नन द्विवेदी गजपुरी बी० ए० ।]

(१)

कार्तिकी एकादशी है, आज देवोत्थान है ।
हिन्दुओ! मिलकर उठाओ, सो रहा भगवान है ॥

(२)

देख पड़ता सब दिशा में, अगम पारावार है ।
उठ रही नव छीर की, चहुं चारु निर्मल धार है ॥

(३)

जागने से जिस प्रभू के, विश्वमण्डल जागता ।
कोर करुणा की चलाने से, सभी दुख भागता ॥

(४)

भक्त भयहारी विहारी, वह अभी तक सो रहा ।
शोक से संतप्त भारत, इसलिए ही रो रहा ॥

(५)

कीर्ति की कलियाँ सुकोमल, प्रेम का फल फूल हो ।
एक मन हों हिंदवासी, मन धरम अनुकूल हो ॥

(६)

भक्ति हो सब कंठ में, हिय शक्ति का सामान हो ।
चित्त में शुचि भूमि, भारतवर्ष ही का ध्यान हो ॥

(७)

एक स्वर से वह हमारा, गगनभेदी गान हो ।
मातृपद ही जब हमारे, शीस का उपधान हो ॥

(८)

दूर देशों में हमारे, हिंद का जब मान हो ।
सत्यव्रत नर और नारी, धर्म पर कुरबान हो ॥

(९)

फिर नहीं भगवान, अंतर्ध्यान हो सकता कभी ।
देख लो वंशी बजाता, कृष्ण आता है अभी ॥

हमारा पुस्तकालय ।

युगल मालती उपन्यास—लेखक मुलतान निवासी बाबू आत्मारामात्मज बल्लभदास वर्म्मा करांची और उन्हीं से प्राप्य, पृष्ठ संख्या ८८ मूल्य ।=) एक गुजराती अभिनय की छाया पर इस पुस्तक को लिख कर लेखक जी ने इसमें जुए के भयंकर परिणाम का दिग्दर्शन कराया है। भूमिका में आप लिखते हैं "यदि इसे समझ समझा के भी जूआ खेलने की किसी को रुचि हो तो कृपा करके मुझे अवश्य सूचित करदें" परन्तु हमें डर है कि बहुत कम पाठकों को इस पुस्तक को आद्योपान्त पढ़ने का धैर्य्य होगा। पुस्तक अशुद्धियों से परिपूर्ण है प्रत्येक पंक्ति में दो २ तीन २ अशुद्धियों का पाना तो साधारण बात है। भाषा में गुजराती भाषा की झलक सर्वत्र वर्तमान है। तीन चार जगहों पर पुस्तक की भाषा अश्लीलता के बहुत निकट पहुंच गई है, अन्त में हम लेखक महाशय के उस उत्साह और साहस की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते जिसके कारण वे इस पुस्तक के प्रकाशित करने में सफल प्रयत्न हुए हैं और जिसके वश उन्होंने भूमिका में और भी गुजराती भाषा से अनुवादित पुस्तकों को प्रकाशित करने का वचन दिया है। साथ ही साथ हम लेखक महाशय को यह परामर्ष दिए बिना भी नहीं रह सकते कि वे अपनी पुस्तकों को प्रकाशित करने से प्रथम किसी अच्छे हिन्दी लेखक से उनका संशोधन करा लिया करें।

बाल-पंच-रत्न—पण्डित गोपाल प्रसाद शर्मा द्वारा लिखित व कु० हनुमत सिंह रघुवंशी द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ संख्या २८ मूल्य =) पुस्तक प्रकाशक जी को समर्पण की गई है। समर्पण भी ऐसा वैसा नहीं है। समर्पण शर्मा जी ने ३६ पंक्तियों और पूरे दो पृष्ठों में किया है। इसको पुस्तक की भूमिका कहें तो कुछ अत्युक्त न होगी इसमें शर्मा जी ने धर्म पंच-रत्न पुरुष पंच-रत्न नीति पंच-रत्न आदि पुस्तकों को भी अर्पण करने का वचन दिया है। पुस्तक में पांच आख्यायिकाएं हैं। दो भारतीय बालकों के विषय में और तीन क्रमशः जापानी अमेरिकन और अङ्गरेज़ बालकों के बारे में। पुस्तक उत्तम और रोचक है। छपाई और कागज़ बहुत अच्छा है। इस पुस्तक को पढ़कर हमारे बालकों के हृदय में उत्तम प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता। पुस्तक में केवल एक बात हमें खटकती है। इसमें स्वदेशभक्त वाली आख्यायिका को एक बार कई वर्ष हुए हम सरस्वती में पढ़ चुके हैं। परन्तु पुस्तक में इस बात का कहीं उल्लेख नहीं है। लेखक ने समपर्ण में अप को पुराना लेखक बतलाया है। कम से कम पुराने लेखक जी से यह बातें तो छिपी नहीं होंगी कि ऐसा करना अनुचित है। हमें आश है पंच-रत्नमाला की और पुस्तकों में पुरा लेखक जी ऐसी भूल न करेंगे।

सूत्र शिल्प शिक्षक प्रथम भाग—लेखक प्रकाशक बाबू बिपिन बिहारी लाल बी० ए अलीगढ़। पृष्ठ संख्या १३६ चित्र संख्या ११ मूल्य ॥) । इस पुस्तक द्वारा एक व्यक्ति बिना किसी शिक्षक के सूई सिलाई का काम सीख सकता है। पुस्तक में प्रश्नोत्तर द्वारा सरल भाषा में यह बात बतलाई गई है और इसलिये कि यह काम ठीक २ समझ में आजाय चित्र देने में कमी नहीं की गई, पुस्तक बड़ी उपयोगी है और प्रत्येक गृह में स्थान पाने योग्य है हम बाबू विपिन बिहारी लाल जी को ऐसे उत्तम पुस्तक के प्रकाशित करने पर बधाई देते हैं और आशा करते हैं कि इसके और भाग भी वे शीघ्र प्रकाशित करेंगे।

मानव—सन्तति शास्त्र-लेखक मुन्शी हीरा लाल (जालोरी) आकार बड़ा पृष्ठ संख्या २४६ चित्र संख्या १६ मूल्य १)। इस पुस्तक में मानव बीज से लेकर बच्चे के उत्पन्न होने तक बच्चे की तमाम अवस्थाओं का वर्णन है। पुस्तक कदाचित हिन्दी भाषा में अपने ढंग की पहिली ही है। भाषा कहीं २ पर परिमार्जनीय है परन्तु यह दोष पुस्तक की उपयोगिता को देखते हुए कुछ नहीं है। पुस्तक में ६ प्रकरण हैं। प्रथम प्रकरण में प्रस्तुत विषय के जानने की आवश्यकता और उसके महत्व को बतलाया गया है दूसरे प्रकरण में वीर्य्य क्या वस्तु है? इत्यादि से लेकर गर्भाधान विधि तक का वर्णन है। तीसरे में बच्चे के शारीरिक तत्व और वंश परम्परा से आनेवाले गुणों को बताया गया है। चौथे में बच्चे की शारीरिक रचना और पालनपोषण का वर्णन है। पाचवे में बतलाया गया है कि पुत्र अथवा पुत्री अपनी इच्छानुसार किस तरह उत्पन्न किये जा सकते हैं। इस प्रकरण में लेखक ने इस विषय पर पाश्चात्य वैद्यों के विचारों के साथ भारतवर्षीय विद्वानों के सिद्धान्त भी दिये हैं। छठे प्रकरण में मानसिक शक्ति का वर्णन है और आठवें और नवें में बतलाया गया है कि बच्चे का वर्ण, शारीरिक सुन्दरता, उसका स्वास्थ्य और स्वभाव सब कुछ माता पिता की मानसिक शक्ति पर निर्भर है। लेखक जीवधारियों और वनस्पतियों के सब परिवर्तनों का कारण मानसिक शक्ति को बतलाता है। उदाहरण के लिए हम उसके यह वाक्य पृष्ठ १३८ उद्धृत करते हैं:-

कितने ही पेट के बल चलनेवाले प्राणी अपनी रक्षा के लिए पैर उत्पन्न कर लेते हैं कितने ही हिंस्रक जन्तु दूसरे प्राणियों का चित्ताकर्षण कर भक्षण करने के लिए कलों का आकार धारण करते हैं। वास्तव में यह परिवर्तन प्राकृतिक चुनाव (Natural selection) के कारण होते हैं। परन्तु लेखक इन परिवर्तनों का कारण भी मानसिक शक्ति को बतलाता है। बच्चे के वर्ण व सुन्दरता में वंशपरम्परा के प्रभाव को कुछ न मानना हमारे विचार में ठीक नहीं। आजकल के प्राण विद्या-विशारदों का तो मत है कि बालक के स्वभाव व चरित्र पर जन्मकाल के उपरान्त प्रभाव पड़ता है और यदि पैदा होते ही बच्चा अपने माता पिता से पृथक कर दिया जाय तो उसके स्वभाव व चरित्र पर माता पिता का कुछ भी प्रभाव न पड़े। सातवें प्रकरण में दर्शाया गया है कि बिना प्रेम के उत्तम सन्तति नहीं हो सकती। यह प्रकरण सबसे अधिक मनोरञ्जक व शिक्षाजनक है। पुस्तक के अन्त में स्त्रियों के लिए कठिन शब्दों के अर्थ दे दिये गये हैं और एक पृष्ठ शुद्धाशुद्ध पत्र का भी है। पुस्तक खड्गविलास प्रेस-बांकीपूर से मिलती है।

"केशव"।

बालिका-विनय। इसकी रचयित्री एक जैन महिला हैं मूल्य -)

इस छोटी सी पुस्तिका में स्त्रियों के गाने लायक भगवद्वन्दना आदि अनेक छन्दों में दश भजन हैं। जैन धर्मावलम्बिनी स्त्रियों के मनोरञ्जनार्थ अच्छी पुस्तक है। कागज छपाई आदि बहुत साफ़ और बहुत बढ़िया है, पर एक फर्मे की पुस्तक का मूल्य -) आना अधिक है। मिलने का पता-कुमार देवेन्द्र प्रसाद जैन, आरा।

गृहस्थ धर्म-इसके सम्पादक लखनऊ निवासी ब्रह्मचारी शीतलाप्रसादजी हैं। आप "जैन मित्र" के सम्पादक हैं अतः अधिक परिचय देने की आवश्यकता नहीं है। यह जिनेन्द्र मत दर्पण का तृतीय भाग; और "जैन मित्र" के चौदहवें वर्ष का उपहार है। इस पुस्तक में जैनियों के गर्भाधान से लेकर मरण पर्यन्त की क्रियायें बहुत संक्षेप से वर्णित है। इसमें और भी अनेक जैन धर्म के उपयुक्त विषयों का

संग्रह है। सुन्दर कपड़े की जिल्द बँधी ३४० पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य भी १) अधिक नहीं है। जैन मित्र कार्यालय मुम्बई से प्राप्त।

देवियों को शिक्षा-जिसको महात्मा सत्यधारीजी ने रचा और लाला दीवानचन्द ने छपवाया है। मूल्य ।)

इसमें अनेक शिक्षापूर्ण उपदेशों का संग्रह है। सामान्यतया स्त्रियों के लिए उपयोगी पुस्तक है। यद्यपि भाषा इसकी कई जगह संशोध्य है तथापि इसके उपदेशों से प्रत्येक आबाल वृद्ध स्त्रियां लाभ उठा सकती हैं। पुस्तक बड़े बड़े अक्षरों में छपी है। सोलह पेजी साईज़ की ७७ पेज की पुस्तक का मूल्य ।) अधिक है।

मिलनेका पता:-

लाला दीवानचन्द मालिक कुतुबख़ाना
टी० सी० गुजराती लाहौर।

श्राद्ध-यह धर्मोपदेशक ग्रन्थमाला का सप्तम उपदेश है। इसके रचयिता हैं श्रीयुत कालूराम जी शास्त्री। यह पुस्तक लाइट प्रेस कानपूर में छपी है। मूल्य ।)

इसमें वेद वेदाङ्गों के अनेकानेक प्रमाण तथा युक्तियों द्वारा पितृ श्राद्ध का अच्छी तरह मंडन किया गया है। प्रूफ़ संशोधक की असावधानी से कई जगह अशुद्धियाँ रह गई हैं आशा है द्वितीय संस्करण में सुधार दी जावेंगी। कागज़ अच्छा है परन्तु सोलह पेजी साइज़ के ७८ पेज की किताब का मूल्य ।) कुछ अधिक है।

मिलने का पता:-

पं० भीमसेन शर्मा
ब्रह्मप्रेस
इटावा।

कालूराम शास्त्री
अमरौधा
(कानपूर)।

"व्यास"।

ख़ूबसूरत बला-(नाटक) मूल्य ।=) और दिल फ़रोश-(नाटक) मूल्य ।=) उपन्यास बहार आफिस काशी द्वारा प्रकाशित।

ये पारसी थियेटर करनेवाली कम्पनियों के मशहूर खेल हैं। मुंशी जलाल अहमद "शाद" इनके रचयिता हैं। बाबू जयरामदास ने नाटकप्रेमियों के लिए इन्हें "नागराक्षरों" में प्रकाशित किया है।

सम्पादकीय टिप्पणियां।

भागलपुर सम्मेलन।

खेद के साथ कहना पड़ता है कि सम्मेलन के कार्यकर्त्ताओं की कारर्वाइयों से विदित होता है कि वे दूरदर्शी नहीं हैं और उनकी बच्चों की सी करतूतों के कारण सम्मेलन को बहुत बड़ी हानि पहुंचेगी। पहले द्विवेदीजी सभापति चुने गये, वे राज़ी न हुए, केवल तार द्वारा बातें की गईं। ख़ैर, महात्मा मुंशीरामजी चुने गये, वे राज़ी भी हो गये, किन्तु अब उनका स्वास्थ बिगड़ गया और उन्होंने भी अस्वीकार कर दिया। लोगों को सन्देह है कि दोनों सज्जनों ने स्वास्थ्य के कारण नहीं वरन् विरोधियों के डर के मारे ही ऐसा किया है। एक मित्र तो कहते थे कि द्विवेदीजी उनसे स्वयम् ऐसा कहते थे। यदि केवल तार द्वारा ही नहीं वरन् जाकर प्रार्थना की जाती तो यह सम्भव न था कि दो में से एक सज्जन भी राज़ी न होते। ये सब तो कुछ किया गया नहीं किन्तु भागलपुर के एक पत्र से विदित होता है कि बाबू श्यामसुन्दर दास सभापति चुन लिए गये। यह सब क्या है, और इन कारर्वाइयों से क्या सूचित होता

है ? इस पर भी विचित्रता है कि सम्मेलन की तरफ से कुछ विदित नहीं होता और वहां की बातों की सूचना पत्रों से मिल जाती है। सम्मेलन लड़कों का खेल नहीं है। अब भी समय है और हम आशा करते हैं कि कार्यकर्त्तागण एक डेपूटेशन लेकर निर्वाचित सज्जनों की सेवा में उपस्थित होंगे और उन्हें राज़ी करेंगे नहीं तो सम्मेलन को हानि पहुंचाने का कलङ्क भागलपुरी कार्यकर्त्ताओं के माथे मढ़ा जायगा।

* * *

श्रीमती लक्ष्मीबाई।

श्रीमती सौभाग्यवती लक्ष्मीबाई रानडे का परलोकवास हो गया। इनकी मृत्यु से मुम्बई प्रान्त की परिषद को बड़ी हानि पहुंची है। महाराष्ट्रीय समाज सुधारकों में आप एक रत्न थीं। इतना ही नहीं सामाजिक सुधार के कामों में सब काम धाम को छोड़कर प्राणपण से यत्न करने वाली, स्त्री जाति के सुधार के कामों में अभिमानपूर्वक उद्योग करने वाली तथा निकृष्ट और अछूत जाति के लोगों के उद्धारार्थ प्रयत्न करने वाली, ये स्त्री समाज की एक मात्र प्रधान नेत्री थीं। पर-लोकवासिनी सौभाग्यवती लक्ष्मीबाई प० वा० श्रीयुत वामन आबा जी मोड़क की द्वितीय कन्या और प० वा० न्यायमूर्ति जष्टिस एम० जी, रानडे के छोटे भाई डा० श्रीयुत गोविन्द रानडे की धर्मपत्नी थीं। इन्होंने अपने पति के साथ इङ्गलेण्ड यात्रा भी की थी। अङ्गरेज़ी और मराठी भाषा में इनको उत्तम शिक्षा प्राप्त थी। ये लेडीज़ सोशल क्लब आदि कई सार्वजनिक संस्थाओं की सभासद भी थीं। इनका सिद्धान्त था कि स्त्रियों को भी पुरुषों के समान स्वत्वाधिकार मिलने चाहिये। अपने सिद्धान्त को पुष्ट करने में किसी का संकोच नहीं करती थीं। यद्यपि इनका भाषण कड़ा होता था किन्तु इनका स्वभाव और बर्ताव अत्यन्त सरल और प्रेमपूर्ण था। इनकी मृत्यु से मुम्बई प्रान्त के महिला समाज को जो हानि पहुंची है उसकी पूर्ति होना सहसा असम्भव है। मरने के समय आपकी अवस्था केवल ४१ वर्ष की थी। जगन्नियन्ता सर्वान्तर्यामी भगवान से हमारी हार्दिक प्रार्थना है कि श्रीमती लक्ष्मीबाई की आत्मा को अखण्ड सद्गति प्रदान करे और इस देश में उनके ऐसी सार्वजनिक कामों में योग देने वाली अनेक ललनाओं को निर्माण करे।

* * *

इंगलैण्ड और भारत में अन्तर।

भारतीय राजनैतिक अपराधियों की पहले तो रिहाई होती नहीं और यदि कभी भाग्यवश हो भी गई तो समस्त देश धन्यवाद की ध्वनि से गूंज उठता है। इसके बिल्कुल विपरीत आय-

लैंएड में होता है। अभी कुछ ही दिन हुए "लारकिन" नाम का एक मज़दूर दल का नेता क़ैद किया गया किन्तु विवश हो गवर्नमेंट को रिहाई देनी पड़ी। अब वह धन्यवाद के स्थान पर गवर्नमेंट को गाली देता है और कहता है कि लिबरल गवर्नमेंट एक "पामर और खून की प्यासी" गवर्नमेंट है। इतने पर भी आयर्लैंएड को स्वराज्य मिलने ही वाला है किन्तु भारत में उसका नाम भी लेना अपने ऊपर आपत्ति बुलाना है।

* * *

प्रेस एक्ट।

इसकी तीन वर्ष की अवधि अब बीत गई है और देश के नेताओं को इस अन्याययुक्त एक्ट को रद्द कराने की चेष्टा करनी चाहिये। कलकत्ता हाईकोर्ट के फ़ैसले से इसके विस्तृत पंजों का पता चल गया है, जब तक यह क़ानून रहेगा तब तक यथार्थ कथन भयावह है और ऐसी अवस्था में उन्नति भी कोसों दूर है।

* * *

दक्षिण एफ्रिका।

लंदन का "डेली न्यूज़" कहता है कि दक्षिण एफ्रिका की नीति भारतवासियों के प्रति न उचित है और न बुद्धि ही से प्रेरित है।

जो तार मि० गोखले के पास भेजे गये हैं उनमें चाहे अत्युक्ति भी हो किन्तु **भारतीय गवर्नमेंट एक "शब्द" से भारतवासियों पर किये जाने वाले अन्याय को रोक सकती** है और यह आशा की जाती है कि भारतीय गवर्नमेन्ट बिना देर किये ज़बान खोलेगी।

भारतीय गवर्नमेन्ट यदि अशक्त है तो वह इसका जवाब दे।

* * *

खरा कथन।

विलायत का 'डेली ग्रेफिक' कहता है कि भारतवासियों के साथ द० एफ्रिका का व्यवहार बहुत ही बुरा है और **वृटिश गवर्नमेंट का कठिनता से उससे अच्छा** है।

* * *

कोड़ों से मौत।

दर्बन का तार कहता है कि दशा दिन दिन खराब होती जाती है। एक भारतवासी की कोड़े खाते खाते मृत्यु हो गई।

* * *

भूख की ज्वाला

एक तार कहता है कि काम करने पर बाध्य करने के लिए मारपीट की जा रही है। **भोजन नहीं दिया जाता**

* * *

फौजी क़ानून।

काफिर और यूरोपियन घुड़सवार पुलीस, रेलवे के बैरकों में घुस गई और बुरी तरह से मारपीट कर मनुष्यों को बाहर निकाला। दो सौ गिरफ्तार हो गये। चारों ओर पुलीस का कड़ा पहरा है भारतवासियों को डराती धमकाती है। अब खबर न पहुंचे तो समझ लेना **की फौजी कानून जारी हो गया।**

पाठक! फौजी कानून का अर्थ "फौरन गोली से मार दो" है। यदि एक भी अङ्गरेज़ के साथ कहीं ज़रा भी अन्याय किया जाता तो सारी दुनिया हिल जाती किन्तु समस्त भारतवासियों के साथ इतना होते हुए भी वृटिश गवर्नमेन्ट के जूँ तक नहीं रेंगती। कितना कठोर सत्य है।

* * *

हमारी अग्नि परीक्षा।

पाठकों को विदित है कि सभ्यता का झूठा दम भरनेवाले घोर असभ्य, अपने को ईसा की

भेंड़ कह कर मनुष्यों पर भेड़ियों से भी अधिक अत्याचार करनेवाले, दक्षिण एफ्रिका के सुफेद चामवाले नर-पशु, अनेक प्रकार की, मनुष्य को लज्जा पहुंचानेवाली यातनाओं से हमारे भाई और बहिनों को पीड़ित कर रहे हैं! बूढ़े भारत के सपूत, उसके मुकुट के सब से देदीप्यमान मणि, हमारे पथप्रदर्शक, प्रवासी भारतवासियों के एक मात्र सहारा, हमारे प्रिय भाई और नेता मोहनदास कर्मचन्द गान्धी अब जेल में डाल दिये गये हैं। उनकी स्त्री और बच्चे पहले ही से जेल में यातना भुगत रहे थे, अब मि० गान्धी एक वर्ष के लिए जेल में बन्द कर दिये गये। यह चौथी बार मि० गान्धी जेल में गये हैं। इस बार अधिक समय के लिए उन्हें बन्द करने में हमारे वैरियों का यह अभिप्राय है कि द० एफ्रिका में मान-युद्ध में खड़े हुए, हमारे भाई और बहिनों को मि० गान्धी के विपत्ति में ढाढ़स देनेवाले, अधियारे में प्रकाश पहुंचानेवाले, भयङ्कर शीत में हृदय में गरमी पहुंचानेवाले, पवित्र प्रभाव का सहारा न मिले। इस अन्याय की कथा को सुनकर कौन ऐसा पामर भारतवासी है जिसका हृदय शोक से पीड़ित और क्रोध से कम्पित नहीं होता, जिसका रुधिर इस भयङ्कर अन्याय से गरम नहीं होता? कौन ऐसा भारतवासी है जिसके हृदय में इन हबशियों से बदला लेने की प्यारी बासना हिलोड़ें नहीं मारती? क्या हम कुचले हुए सर्प से भी गये बीते हैं कि हमें एक बार फुफकार भरने की भी शक्ति नहीं?

आज हमारे पूर्वज आकाश से बड़े दुःख के साथ हमारे कृत्यों को बड़ी उत्सुकता से निहार रहे हैं, वे देख रहे हैं कि उनका रक्त हम में शेष है या नहीं? वे ही नहीं समस्त संसार आज इस युद्ध को श्वास रोक कर देख रहा है। समस्त संसार को इस समय हमें दिखला देना है कि हम उसी जाति के हैं, जिसमें कृष्ण अर्जुन, भीष्म आदि महापराक्रमी, बलशाली और दृढ़प्रतिज्ञ योद्धा पैदा हो चुके हैं, जिसमें अभी कुछ ही दिन बीते महाराणा प्रताप से वीर पैदा हो चुके हैं जिनका प्रण था कि:-

"चाहे सुत को शत्रु काटि बोटी करि डालै।
चाहे मुझको काट कोई आगी में डालै॥

* * * * * *

वृक्ष छाल हू मिलै नहीं तो मिट्टी खा कर।
करूँ मुक्त मैं मातृभूमि को अलख जगा कर॥
मातृ ऋण हू जो हाय! मात मैं नाहिं चुकाऊँ।
वृथा भूमि पर "कायर" बनकर नीच कहाऊँ॥"

अब हम लोगों की परीक्षा का समय उपस्थित है। यदि इस परीक्षा में हम उत्तीर्ण हुए, यदि दक्षिण एफ्रिका के जंगलियों को हम लोगों ने नीचा दिखा पाया, तो फिर समस्त संसार के सामने हमारा मस्तक ऊँचा होगा, संसार की दृष्टि में हमारी जननी का मान होगा यही नहीं समस्त सुख और स्वतन्त्रता के मूल का कुञ्जी हमें प्राप्त हो जायगी। आज बृटिश गवर्नमेंट और दक्षिण एफ्रिका के जंगली हमारी नहीं सुन रहे हैं

क्यों?

क्योंकि वे जानते हैं कि हममें कुछ कर गुज़रने की शक्ति नहीं, हममें वीरता नहीं, हममें आत्मोत्सर्ग नहीं। हमारे दुःखों का एक मात्र यही कारण है! यदि हममें वीरता होती, यदि हम भी शत्रुओं का मानमर्दन करना जानते, यदि हम भी शत्रुओं के हृदय को कँपा देने और दहला देने की शक्ति रखते तो आज बृटिश गवर्नमेंट की दृष्टि में दक्षिण-एफ्रिकावालों की अपेक्षा हमारा मान अधिक होता। वह सोचती कि दक्षिण एफ्रिका के निवासियों की अपेक्षा भारतवासी अधिक हैं, यदि दक्षिण एफ्रिकावाले एक "ड्रेडनाट" दे सकते हैं तो भारतवासी का एक एक समूह एक एक "ड्रेडनाट" बन सकता है और यदि कभी जर्मनी से मुठभेड़ हुई तो दक्षिण एफ्रिकावालों से कहीं बढ़कर

सहायता भारत की मूक प्रजा देगी । धर्म क़ानून सब कुछ भारतवासियों के पक्ष में है। ऐसी अवस्था में विजय श्री प्राप्त करने का एक मात्र उपाय बदला लेना, आत्मोत्सर्ग और स्वार्थत्याग है। यदि यह सब हम नहीं कर सकते तो आज से संसार के समस्त सुखों की आशा करना हमें छोड़ देना चाहिये। यदि यह स्वीकार नहीं है तो आइये, रणक्षेत्र में उतर आइये, आपको तलवारें नहीं चमकाना है, और न आपको गोलियों की सनसनाहट से आकाश को गुँजाना ही है। हमारा इतना ही कर्त्तव्य है कि हम भारत के प्रत्येक राजा तथा रङ्क के घरों से यह प्रतिध्वनित करा दें और भारतीय गवर्नमेंट के कानों को इससे भर दें कि हम 'बदले' के भूखे हैं और हम दक्षिण एफ्रिका के सब धर्म के विरोधी सफ़ेद भेड़ियों के साथ हम भी वैसा ही व्यवहार करना चाहते हैं जैसा कि वे हमारे भाई और बहिनों के साथ कर रहे हैं। पाठको! आज दक्षिण एफ्रिका के जंगलियों ने हमारे सहस्रों भाइयों को "कानों" के मैदानों में क़ैद कर रक्खा है, हुक्म दे दिया गया है कि वे कोड़ों से पीटे जांय और तनिक भी आनाकानी करने पर वे गोली के निशाने बनाये जांय। यह हुक्म सम्राट् जार्ज की प्रजा के लिए हुआ है! अच्छा है वहां के वे राजा हैं जो चाहे सो करें। भारतवर्ष हमारा देश है यहाँ हम भी उन लोगों के साथ वैसी ही करेंगे। बोर-युद्ध के समय भारतवासियों ने बृटिश गवर्नमेंट की सहायता की थी आज उसी का यह प्रतिफल उन्हें मिल रहा है, अथवा यों कहिये कि आज उसी का वे इस तरह प्रायश्चित्त कर रहे हैं। इस प्रायश्चित में वे कठिन से कठिन यातनायें सह रहे हैं, इसमें हम उनका हाथ नहीं बटा सकते, हम उनके स्थान पर बन्दूकों के शिकार नहीं बन सकते, न हम उनके स्थान पर गुलामों की भांति हण्टर से पीटे जाने का दुःख ही सह सकते हैं। वे कहते हैं [illegible] वे केवल हमसे इतना ही चाहते हैं कि यंत्रणाओं के साथ उन्हें पेट की ज्वाला न सहनी पड़े, उनके बाल बच्चे भूखे न मरने पावें। माता का ऋण चुकाते समय वे माता के नाते हमसे केवल अन्न और वस्त्र की आशा रखते हैं। क्या हम लोग इससे मुँह मोड़ेंगे? क्या हम लोग माता के लिए, माता के दुधमुहे बच्चों को दुग्ध और कम्मल भी नहीं भेज सकते? क्या हम लोगों की रगों का खून बिल्कुल मर गया है? नहीं नहीं ऐसा नहीं है अन्तरात्मा पुकार कर कह रही है "हम अपने भाइयों के साथ जानें नहीं दे सकते किन्तु उनकी स्त्रियों को, उनके बाल बच्चों की जाने हमारे रहते भूख से तड़फ तड़फ कर न निकलने पावेगी। हम स्वयं वस्त्र न पहनेंगे, हम एक ही जून अन्न खा कर जीवन यापन करेंगे, जो हमारे लिए, हमारे पूर्वजों के लिए, हमारी जननी के लिए, और हमारे बाल बच्चों के लिए जानें दे रहे हैं, हम उनके लिए कष्ट सहेंगे, वस्त्र न पहनेंगे, अन्न न खायंगे किन्तु उन्हें इसका कष्ट न होने देंगे। यही हमारा धर्म है और यही हमारा कर्त्तव्य है। हम द्वार द्वार पर माता के लिए भिक्षा मांगेंगे, अलख जगायेंगे, एक एक पैसा की भिक्षा मांगेंगे और अपनी माता, बहिनों, भाइयों और बाल बच्चों को जीवित रखेंगे। आज हम परम पिता परमेश्वर को साक्षी दे कर कसम खाते हैं कि हम नित्य प्रति २४ घंटों में से किञ्चित समय भीख मांगेंगे और माता का ऋण चुकावेंगे?

क्या पाठकों की अन्तरात्मा भी ऐसा ही नहीं कह रही है, यदि कह रही है तो हम आशा करते हैं कि वे अपना कर्त्तव्य आरम्भ कर देंगे और जिससे जो कुछ होगा भिक्षा मांग कर या अपने पास से हमारे पास भेजेगा। सभी माता का ऋण चुकानेवालों का नाम [illegible] होता रहेगा।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग, में बद्रीप्रसाद पाण्डेय के प्रबन्ध से छपकर प्रकाशित हुई

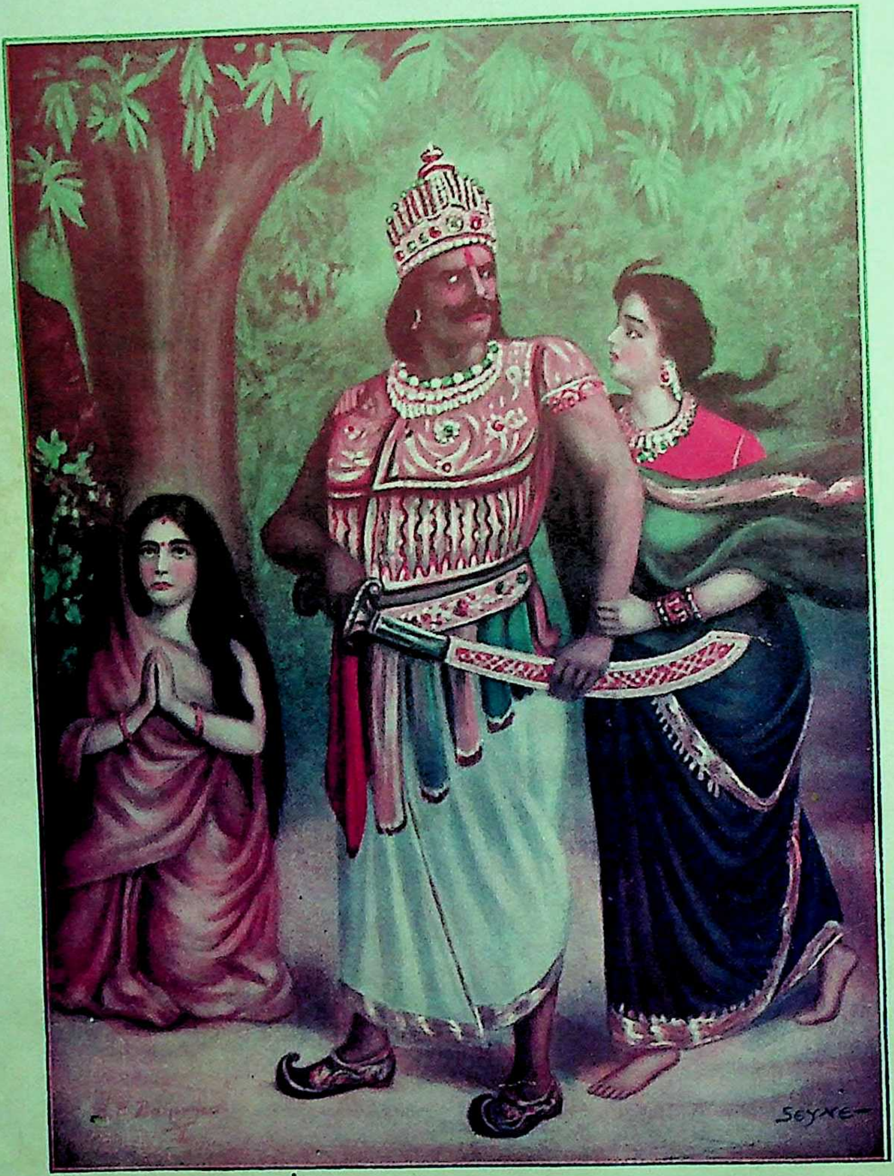
SEYNE

मर्यादा।

सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग ७] दिसम्बर सन् १९१३–पौष। [संख्या २

प्रार्थना।

(सोहनी)

मोहन देश की लाज बचाना,
आत्म-मान की नाव न डूबे,
इसको पार लगाना।
दूर देश में प्रिय है जिनको,
भारत पै मर जाना।
उन आदर्श कर्मवीरों का,
नित प्रति हृदय दृढ़ाना।
बहुत पढ़ चुके हैं हम पहले,
तिल्ली का फट जाना।
किन्तु न कभी सुना था कोड़े,
खाकर जान गंवाना।

श्वान, विलाव आदि की श्रेणी,–
में हमको बिठलाना।

हा! कर्मों के फल देने का,
सोचा यही बहाना।
हैं समर्थ प्रभु आप-कीजिये,
जो चाहे मनमाना।
यही देश है रंगभूमि तव,
इसे भूल मत जाना।

है क्या उचित प्रथम तो हम पर,
यों निज रंग जमाना।

फिर उसकेही हेतु इस तरह,
क्रूर दण्ड दिलवाना?

प्रभो असह्य होगया अब तो,
जीवन्मृत का बाना।

किन्तु सह्य है दुःख सिन्धु में,
जीवन भार डुबाना।

कब से भूले आप दयामय!
अपनों का अपनाना।

दीन दयाल उचित है अब तो,
हम पर दया दिखाना।

हे लीलामय बन्द कीजिये,
अब यों नाच नचाना।

या हम सब को मार, छोड़िये,
"करुणासिन्धु" कहाना॥

बद्रीनाथ भट्ट।

दक्षिणी अफ्रीका और वहां की शासन-प्रथा।

[लेखक—श्रीयुत सोमेश्वर दत्त शुक्ल।]

हमारे देश (भारतवर्ष) से ठीक पश्चिम में अरब से मिला हुआ अफ्रिका नामक महाद्वीप है। इसका दक्षिणी भाग इङ्गलैण्ड के महाराज्य के अधिकार में है और उसका अधिकाँश "दक्षिणी अफ्रिका की संहति या संयोग" के नाम से प्रख्यात है। इसमें केप आफ़ गुड होप, ज़ूलूलैण्ड सहित नेटाल, आरेंज फ्री-स्टेट और ट्रांसवाल नामक चार सूबे हैं। ये अपनी बाहरी सीमाओं पर प्रायः पहाड़ियों से घिरे हुए हैं जो इनके भीतरी अंशों को पूरी तौर से सुरक्षित रखती हैं। यहां की पृथ्वी ज्यादातर समथर है। जलवायु कुछ रूखा होने पर भी अच्छा और स्वास्थ्यकर है। यहाँ की खानों से कोयला, तांबा सोना और रत्न अधिकता के साथ निकलते हैं!

पहले यहां पर जङ्गली आदमी रहते थे। सन् १४८८ में पुर्तगाल देशवालों ने पहले पहल गुडहोप के अन्तरीप को ढूंढ़ा। उसी समय से यहां पर यूरोपवासियों का आगमन आरम्भ हुआ। इसके बाद यहां पर अङ्गरेज़ लोगों ने पैर रक्खा और फिर १६५७ में डच जातीय पूर्वी व्यापार समिति से निकाले गये कुछ सैनिकों और मल्लाहों ने खेती के लिए कुछ ज़मीन पाकर बसना शुरू किया। धीरे २ इनकी आबादी बढ़ती गई। कुछ फ्रांस देशीय लोग भी इनके साथ आमिले। १७५४ में इस उपनिवेश की जनसंख्या आठ से दश हज़ार तक थी। इन लोगों का कारोबार भी बढ़ गया था, परन्तु डच जातीय पूर्वी हिन्दुस्तान समिति इनपर कठोरता के साथ शासन करती थी। इस समिति के अफ़सर लोग इन्हें सभी तरह के दुःख देते थे। १९९५ में इन्होंने उन्हें निकाल बाहर किया और कई एक स्वाधीन राज्यों की नींव डाली। ये ही लोग "बोअर" कहलाने लगे और इन्होंने अब स्वच्छन्दता के साथ इधर उधर जङ्गली आदमियों को दबाकर अपनी बस्तियां बसाईं। इसी समय में इङ्गलैण्ड ने इसके केप कालोनी नामक अंश को जीत लिया और अनन्तर सन्धि द्वारा एवं इसे ख़रीद कर भी इस पर अपने स्वत्व को पुष्ट किया। इस समय यहां पर यूरोपवासियों की संख्या प्रायः २७००० थी। ये बोअर लोग वहाँ के जंगली लोगों पर सभी तरह के अत्याचार करते थे।

सन् १८२९ में कुछ अङ्गरेज़ लोग भी यहां बसने के लिए भेजे गए। इधर पादड़ी लोगों ने अपना धर्म-प्रचार करना आरम्भ करदिया था; इनलोगों ने सबके साथ भलाई का वर्ताव किए जाने के लिए अच्छा उद्योग किया। कुछ बोअर लोग अङ्गरेज़ों के शासन से पीड़ित होकर पूर्व की ओर बढ़े और यहां पर इन्होंने १८४० के लगभग नेटाल नामक प्रजासत्ताक राज्य स्थापित किया। १८४३ में इसे इङ्गलैण्ड का उपनिवेश मात्र बनना पड़ा। अङ्गरेज़ों ने केप-कालोनी में अपनी जाति के लोगों और वहां के साधारण निवासियों के स्वत्व प्रायः समान कर दिए थे और बोअर लोग इसके एकदम विरुद्ध थे। इस कारण से इन्होंने अलग हटकर अपना राज्य क़ायम किया। इसी तरह आरेंज फ्री स्टेट एवं ट्रान्सवाल की भी सृष्टि हुई। पहले पहल इङ्गलैण्ड इन्हें अपने पूर्ण अधिकार में कर लिया करता था और बाद को इन्हें यथाक्रम राजनैतिक स्वत्व देता रहता था। एक दूसरे की उन्नति को देखकर ये छोटे २ राज्य और अङ्गरेज़ एवं बोअर लोग जला करते थे और इनमें ऐक्य होने की आशा

दुराशा मात्र थी। इङ्गलैंएड का आधिपत्य भी इनलोगों को पूरे तौर से खटकता था। इन्हीं सब कारणों से १८९९ से १९०२ तक अङ्गरेज़ों और-बोअरों के साथ घोर युद्ध होता रहा। अन्त में बोअर लोगों को सन्धि करनी पड़ी और सब तरह से इङ्गलैंएड ही यहां का अधिकारी बन बैठा। प्रजासत्ताक राज्यों के टूट जाने से वर्तमान सूबों की प्रतिस्पर्धा कुछ कम हो गई और धीरे २ आपस में मेल हो जाने के लक्षण दिखाई देने लगे।

केप आफ़ गुड होप इस संहति का दक्षिणी सूबा है। केप टाउन इसकी राजधानी है। इस का क्षेत्रफल २७६, ९९५ बर्ग मील और संख्या २,५६१,०२४ है। यहां का दूसरा पूर्वी सूबा नेटाल है। इसका क्षेत्रफल ३५,२९० वर्गमील और आबादी १,१९१,९५८ है। पीटरमेरिज़बर्ग में यहां का शासक रहता है। नेटाल से उत्तर की ओर ट्रान्सवाल और इन दोनों के मध्य में आरेंज फ्री स्टेट नामक सूबा है। ट्रांसवाल का क्षेत्रफल ११०,४२६ बर्गमील और जनसंख्या १,६८६,२१२ है। प्रादेशिक शासक यहां के मुख्य नगर प्रीटोरिया में रहता है। आरेंज फ्री स्टेट का क्षेत्रफल ५०,३९२ बर्गमील और आबादी ५२८, १७४ है। इसका मुख्य नगर ब्लोमफांटीन है, यहीं से इसका शासन होता है।

ये उपर्युक्त चारों सूबे ३१ मई १९१० को इङ्गलैंएड की पार्लीमेंएट से निश्चित कानून के द्वारा एक में शामिल कर दिये गये और इन्हें औपनिवेशिक स्वराज्य दिया गया। उसी समय से यह "दक्षिणी अफ्रीका की संहति" कहाते हैं। अब इनका शासन मुख्यतः यहां के वासियों ही के द्वारा किया जाता है। इङ्गलैंएड के सम्राट के हाथ में यहां के लिए गवर्नरजनरल या बड़े लाट के नियुक्त करने की शक्ति है। इसकी सहायता के लिए एक कार्यकारिणी समिति की आयोजना की गई है। इस समिति के सदस्यों को गवर्नरजनरल अपनी इच्छानुकूल नियत करता है। समस्त कार्यकारिणी शक्ति बड़े लाट एवं उसकी समिति को प्राप्त है। रियासत के मुख्य विभाग भी प्रबन्ध करने के लिए स्थापित किये गये हैं। उनकी देखभाल के लिए गवर्नरजनरल प्रायः दस अहलकार मुकर्रर करता है; यह लोग भी कार्यकारिणी समिति के सदस्य होते हैं।

क़ानून बनाने की शक्ति यहां की पार्लीमेंएट के हाथ में है। इङ्गलैंएड के सम्राट, सिनेट या सचिवसभा और प्रतिनिधि सभा तीनों उसके मुख्य अङ्ग हैं। गवर्नरजनरल इस पार्लीमेंएट को एकत्रित कर सकता है, उसकी बैठक को और तारीख़ों को हटा सकता और इसे तोड़ सकता है। वह चाहे तो सचिव एवं प्रतिनिधि सभा को एक साथ ही अथवा अलग २ कर सकता है, परन्तु संहति के स्थापित होने की तारीख़ से दस वर्ष के भीतर उसे सचिव सभा को तोड़ना न चाहिये। साल में एकबार पार्लीमेंएट की बैठक ज़रूर होनी चाहिये।

सचिव सभा या सिनेट में ४० सदस्य हैं। इनमें से ८ को गवर्नरजनरल नियत करता है। शेष ३२ हर एक सूबे से आठ २ सदस्यों के हिसाब से निर्वाचित किये जाते हैं। सन् १९२० के बाद इसके संगठन में आवश्यकता होने पर परिवर्तन भी किया जा सकता है। जो लोग यूरोपवासियों की सन्तान एवं अङ्गरेज़ी साम्राज्य की प्रजा हैं, जिनकी अवस्था कम से कम ३० वर्ष की हो, वे संहति के किसी सूबे के निर्वाचन में सम्मति देने का अधिकार रखते हों और उसमें जो कम से कम ५ वर्ष तक रह चुके हों, वे ही इस सिनेट के सदस्य बनाए जा सकते हैं। निर्वाचित सिनेटर को ७५००) की क़ीमत की जायदाद का मालिक होना चाहिये नहीं तो वह इस सभा में नहीं बैठ सकता।

प्रतिनिधि सभा में कुल १२१ सदस्य हैं।

इसमें केप आफ़ गुड होप से ५१, नेटाल से १७, ट्रान्सवाल से ३६, और आरेंज फ्री स्टेट से १७, सभासद निर्वाचित होकर आते हैं। इन चारों सूबों में यूरोपवासियों की आबादी बढ़ती या घटती के हिसाब से निर्वाचित प्रतिनिधियों की संख्या में हेर फेर करने के लिए नियमावली निश्चित करली गई है। निर्वाचन करने के लिए हर एक सूबे में विभाग कर लिये गये हैं; इन्हें निर्वाचन ज़िला कहते हैं। प्रत्येक ज़िले से एक प्रतिनिधि उक्त सभा को जाता है। जो नियम सचिव सभा के सदस्यों के निर्वाचन के लिए ऊपर लिखे गये हैं, प्रायः वे ही सब प्रतिनिधि सभा के सदस्यों के लिए भी आवश्यक हैं। पहिली प्रतिनिधि सभा ५ वर्ष तक क़ायम रहेगी। एक ही पुरुष उपर्युक्त दोनों सभाओं का सदस्य नहीं हो सकता। सरकारी नौकर भी इन सभाओं में निर्वाचित होने का स्वत्व नहीं रखता।

रुपये-पैसे के सम्बन्ध में नए कानून बनाने के लिए प्रस्ताव करने का अधिकार केवल प्रतिनिधि सभा को है, परन्तु साधारणतया गवर्ननर जनरल की अनुमति को पाकर ही यह नए टैक्स और खर्च के कानून पास कर सकती है। प्रतिनिधि सभा की स्वच्छन्दता के साथ क़ानून बनाने की शक्ति को सचिव सभा कुछ परमित करती है। दोनों सभाओं में विरोध को ठीक करने के लिए, क़ानूनों पर इङ्गलैण्ड के सम्राट् की मंजूरी के लिए और गवर्नर-जनरल के द्वारा स्वीकृत क़ानूनों को भी रद करने के लिए नियमों की आयोजना की गई है। प्रिटोरिया में गवर्नर जनरल रहते हैं और सभाओं के अधिवेशन केपटाउन में होते हैं।

हर एक सूबे के शासन के लिए गवर्नरजनरल एक एक शासक को पांच २ वर्ष के वास्ते नियत करता है। एक प्रादेशिक सभा भी यहां रहती है। इनके साथ चार सदस्यों की एक कार्यकारिणी समिति की रचना की गई है। प्रादेशिक शासक या छोटे लाट इन कार्यकारिणी सभाओं के अध्यक्ष हैं। ये सब मिलकर अपने सूबों का शासन देखते हैं। प्रादेशिक सभाओं में निर्वाचित होने के लिए किसी को यूरोपवासियों की सन्तान होना ज़रूरी नहीं है। केप आफ़ गुड होप की प्रादेशिक सभा में ५१, नेटाल में २५; टांसवाल में ३६ एवं आरेंज फ्री स्टेट में २५ निर्वाचित प्रतिनिधि बैठते हैं। प्रादेशिक आय,व्यय, शिक्षा, खेती,दान, नागरिक-प्रबन्ध, स्थानीय काम, सड़क, पुल एवं बाज़ार तथा इनसे सम्बन्ध रखनेवाले, दण्ड-विधान इन सभाओं के निरीक्षण में और उनकी अनुमति के अनुकूल होता है। न्याय-विभाग के संचालन के लिए संहति भर में एक श्रेष्ठ न्यायालय है, उसकी अध्यक्षता में और भी छोटे २ न्यायालय हर एक प्रदेश में हैं। अङ्गरेज़ी एवं डच दोनों ही भाषा दफ्तरों में काम में लाई जाती हैं।

अफ्रिका एवं एशियावासी लोग इस संहति में रहते हैं, उनसे सम्बन्ध रखनेवाली हर एक बात का प्रबन्ध बड़े लाट एवं उनकी समिति के द्वारा होता है। इन लोगों के साथ निन्दनीय व्यवहार करने का स्वभाव जो बोअर जातिवालों ने प्रारम्भ ही से सीख रक्खा है। वही, आश्चर्यजनक वैषम्य-घोर अत्याचार-इन दिनों दक्षिणी अफ्रीका की संहति में चरम सीमा को पहुंच गया है।

परिणाम पञ्चक।

कर्मवीर कष्ट के कराह में कराहि रहे,
कान करुणानिधि के वेगि शब्द जायगो।
दक्षिण अफ्रीका में हमारे भ्रातृवर्यन को,
रुधिर गिस्यो है सो वृथाही नहिं जायगो।

अतिहि असह्य दुःख दुसह दुरन्त देखि,
सभ्य सत्पुरुषन को सीस फिरि जायगो।
उनहीं के आह की जो भभकि उठेगी आगि।
इन दुखदायिन को दल जरि जायगो।

भारत निवासी नेटाल के प्रवासी अब,
अनुचित उचित की विवेचना न करिहैं!
अतिहि असह्य कष्ट सहत उन्हें तो आज,
केते दिन बीते अब कौ लौं सह्यो करिहैं।

जहां दबि जाति तहां चींटिहू तो काटि खाति,
मानव सन्तान ह्वैके कौ लौं धीर धरिहैं।
यातो अब होइके स्वाधीनही जियेंगे,
नातो कोड़ेन की मार, या बिना अहार मरिहैं।

ज़ुलुमी ज़ुलुम कानून के मिटाइवे में,
चहै मरिजावें किन्तु तृण ना उठावेंगे।
याहो अवलम्ब पै हज़ारों आज भारत के,
परम सपूत पूत देश कहलावेंगे।

जोपै साम्राज्य सरकार निज प्रभुता,
को डारिहै दबाव तो बखेड़े दबि जांवेंगे।
ह्वैहै परिनाम अति उत्तम अशङ्क अब,
यूनियनलोगन से हम ना डरावेंगे।

जोपै यह आदिही ते हो तो उपचार कहूं,
कठिन समस्या यह उठिवे न पावती।
आजहूं न यामें कछु हानि है विशेष भई,
विज्ञ सरकार काहे विलम्ब लगावती।

भारतनिवासिन पै भारी भीर आय परी,
मौन गहि बैठी निज रूप ना दिखावती।
निज कर्तव्य जो न पालन करैगी कैसे,
न्यायप्रिय लोगन की ह्वैहै मन भावती।

भारतनिवासी नेटाल के प्रवासिन को,
देखि दुख भारी काहि तरस न आवेगो।
भारत को गौरव सनमान राखिवे के हेतु,
कौन सो अजान है जो विलम्ब लगावेगो।

एहो जार्ज पञ्चम! नरेश हो हमारे आप,
करिहो विचार तो उपाय सूझि जावेगो।
वेगि प्रतिबन्ध जो न होयगो हमारे तात,
भारत के गातहूं में जोश भरि आवेगो।

[बसन्त राम व्यास।]

निष्क्रिय प्रतिरोध की लड़ाई।

[लेखक—माननीय वी० एस० श्रीनिवास स्वामी।]

उत्पत्ति।

गत पचीस तीस वर्षों से दक्षिण अफ्रिका के प्रवासी भारतवासी, जिनकी संख्या एक समय में तीन लक्ष और वर्तमान समय में प्रायः बारह लक्ष है, बहुत से अन्यायों को सहते आये हैं। आरंभ में ट्रान्सवाल, में सब से अधिक यातनाएं सहनी पड़ती थीं। इसी उपनिवेश में एशियानिवासियों के विरुद्ध बहुत कड़े २ कानून पास हुए थे। इनमें भारतवासियों का वर्णन "कुली" शब्द से किया गया था और वे वेश्याओं, "चोरों" और ऐसे ही बुरे लोगों की श्रेणी में रखे गये।

इतना ही नहीं किन्तु एक रजिस्टर बनाने का न्याय निकाला गया उसके कारण भले से भले भारतवासी को भी अपने हाथों की दसो अँगुलियों की अलग २ और फिर दोनों हाथों की कुल १२ छाप देनी पड़ती थी। जब इस अपमानजनक काम को उठा देने के लिए सभी उपाय किए जा चुके तब हमारे भारतीय भाइयों ने मि० गांधी के नेतृत्व में एक महती-सभा कर यह संकल्प किया कि जब तक यह अन्यायोचित, अनुदार, और अपमानजनक नियम न उठा दिया जायगा वे बराबर जेल की यातनाएं सहेंगे किन्तु छाप न देंगे। इस तरह निष्क्रिय प्रतिरोध का श्रीगणेश हुआ।

इसकी व्यापकता।

२५०० से अधिक निष्क्रिय प्रतिरोधियों को सख़्तसज़ा से जेल हो चुका है। कई मनुष्य एक एक दो दो तीन तीन बार जेल गये हैं, समस्त व्यापार नाश होगया है, घर उजड़ गये हैं, स्त्री और बच्चे पेट की ज्वाला को शान्त करने के लिए शिक्षा के आश्रित होगये हैं, और कइयों ने बहुत बुरे मार्ग का अवलम्बन किया है। सम्राट् को भेजे हुए अगणित प्रार्थनापत्रों में से एक में हमारे भाइयों ने निराश होकर कहा था, कि यदि उनके कष्ट नहीं दूर किये जासकते तो उनसे यह साफ साफ कह दिया जाय, कि बृटिश साम्राज्य में “बराबर के नागरिक” Equal Citizens की तरह उनके लिए स्थान नहीं है और यह कि बृटिश सिटीज़न बृटिश नागरिक शब्द उनके लिए निरर्थक (बिलामानी) है। पठानों और पंजाबियों ने (जिन्होंने कि बोर युद्ध के समय प्रशंसायोग्य सेवा की थी) कई बार प्रार्थना की, कि इसके पहले कि वे इस अपमानजनक कानून को स्वीकार करने पर बाध्य किए जांय रणक्षेत्र में “जेनरल बोथा” और “स्मट्स” उन्हें गोली से मार दें।

इस समय लड़ाई ने भीषण रूप धारण कर लिया है। सहस्त्रों खानों और इधर उधर काम करनेवाले मज़दूरों ने हड़तालें करदी हैं, कठिन से कठिन यातनाएं प्रसन्नता से सहन की जाती हैं, बहुतसी रमणियों ने निष्क्रिय प्रतिरोध का झंडा उठा लिया है और इन्हीं स्त्रियों में मिसेज़ गांधी भी हैं। मि० गांधी, उनका ज्येष्ठ पुत्र, पोलक और मि० केलनबाख इस लिए जेल में भेज दिये गये हैं क्योंकि वे इस पर सम्मत न हुए कि वे मज़दूरों से हड़ताल करने के लिए न कहेंगे। अब जो खबरें आरही हैं वे हृदयविदारक हैं। खान के हड़तालियों पर पुलीस अत्याचार कर रही है, वे बेतों और हंटरों के सहारे “ख़ानों” में ठूँस दिये जाते हैं, जो कि इस समय जेल मानली गई हैं, और कौन जानता है? कि यदि लड़ाई न बन्द हुई तो वे गोलियों के शिकार नहीं बनाये जांयगे!

हमारा दोष क्या है?

हम लोगों को स्मरण रखना चाहिये कि यह ज़ुल्म केवल रङ्ग के भेद के कारण किया जारहा है। अधिकतर इसका कारण व्यापारिक ईर्षा और यह भय है कि गोरे मज़दूरों को प्रतिद्वन्दता में हार माननी पड़ी है और पीछे हटना पड़ा है। वास्तव में हम लोग वहां अपने सद्गुणों के कारण सताये जाते हैं हमारी इमानदारी, हमारी मेहनत, हमारी सीधी-सादी रहन-सहन ही हमारे मार्ग में कांटा बोरही है कई बार राज़ीनामों की बातें उठीं किन्तु द० एफ्रिका की गवर्नमेंट के कपट और प्रभावशाली गोरे सौदागरों के विरोध के कारण सब टांय टांय फिस्स होगये।

अवसर जो हाथ से निकल गये।

इसी समय में ट्रान्सवाल को औपनिवेशिक स्वराज्य इङ्गलैण्ड से प्राप्त हुआ, साम्राजिक

क़र्ज़ (Imperial loan) उपनिवेश को मिला, द० एफ्रिका के सेवल की सन्धि स्वीकृत हुई, और अभी उसी दिन यूनियन गवर्नमेंट के "इमीग्रेशन रिग्यूलेशन एक्ट" को लज्जाजनक शीघ्रता से "इम्पीरियल गवर्नमेंट" की स्वीकृति प्राप्त होगई यद्यपि इससे न तो भारतवासी निष्क्रिय प्रतिरोध करनेवालों का, और न इम्पीरियल गवर्नमेंट ही का, कुछ अर्थ सिद्ध हुआ । इसी कारण से लड़ाई का झंडा नेटाल में भी उठ गया है ।

तीन पाउण्ड का टैक्स ।

नेटाल की कालोनी में भूतपूर्व प्रतिज्ञाबद्ध मज़दूरों, उनकी स्त्रियों और बच्चों पर तीन पाउण्ड ४५) प्रति वर्ष का टैक्स लगाया गया है । यह टैक्स उस एक पाउण्ड १५) के टैक्स के अलावा है जो कि उन्हें अन्य साधारण मनुष्यों की भांति देना पड़ता है । बच्चों में १६ वर्ष के ऊपर बालकों और १३ वर्ष की लड़कियों पर टैक्स लगाया गया है । इस टैक्स से कालोनी को कोई बहुत आय नहीं होती लेकिन यह इसलिए सख़्ती से लगाया गया है कि या तो वे फिर से प्रतिज्ञाबद्ध कुली हो जांय और या वहां का रहना छोड़ दें । **हम लोगों की वहां केवल इस लिए आवश्यकता है कि हमलोग कड़ी मज़दूरी करें ।** माननीय मि० गोखले को यूनियन गवर्नमेन्ट के मंत्रियों ने प्रायः यह वचन दे दिया था कि यह टैक्स उठा दिया जायगा किन्तु उनलोगों ने ऐसा नहीं किया । यही नहीं वे इस बात को भी अस्वीकार कर रहे हैं कि उन्होंबे कोई ऐसा वचन दिया था ।

हम लोग कितना दब चुके हैं ?

हमारे भाई इसपर राज़ी हो गये हैं कि बृटिश नागरिक के स्वच्छन्दता पूर्वक जहां चाहे घूमने और बसने के स्वत्व को त्याग देंगे ! वे राज़ी हो गये हैं कि दक्षिणी अफ्रीका प्रधानतया गोरे चमड़ेवालों का उपनिवेश रहे ! वे राज़ी हो गये हैं कि प्रति वर्ष आनेवाले भारतवासियों की संख्या बहुत कम रह जाय ! वे इसपर भी राज़ी हो गये हैं कि उन्हें समस्त उपनिवेशों में राजनैतिक मामलों, और अधिकतर उपनिवेशों में म्युनिसिपल मामलों में भी, वोट देने का अधिकार न रहे ! वे रहने, व्यापार करने, रेलवे और अन्य गाड़ियों में सफर करने फुट पाथ पर चलने आदि अन्य अपमानजनक बन्धनों को भी मानने के लिए राज़ी हो गये हैं ! वर्तमान युद्ध में इन सब बातों पर लड़ाई नहीं की जा रही है यह बातें भविष्य में तय की जाने के लिए छोड़ दी गई हैं ।

हम अभी क्या चाहते हैं ?

(१) "इमीग्रेशन एक्ट" के लेहाज़ से (केवल नाम मात्र को) " अन्य यूरोप निवासियों की समता " यह केवल जातीय मर्यादा और बृटिश साम्राज्य में भारतनिवासियों के मान को दृष्टि में रखकर कहा जाता है ।

(२) केपकालोनी में जाने का स्वत्व जो कि नये कानून के पास होने के पहले दक्षिणी अफ्रीका में पैदा हुए भारतवासियों को प्राप्त था ।

(३) नेटाल में निवास करने का स्वत्व जो मियाद पूरी कर चुकनेवाले कुलियों को उस समय प्राप्त होता है जब वे लगातार तीन वर्ष तक ३ पौंडवाले टैक्स को दे चुकते हैं ।

(४) तीन पाउण्ड के टैक्स का रद्द होना ।

(५) " हिन्दू , मुसलमानों के एक व्यांह की स्वीकृति" चाहे वह दक्षिणी अफ्रीका में हुआ हो या अन्य कहीं ।

हमारा कर्तव्य।

हम लोगों को जो भारत में हैं अपना कार्य करना अर्थात् उन्हें धन की चिन्ता से छुटाना, चाहिये। मि० गांधी के हिसाब से २५० पाउण्ड अर्थात् ३७५०) प्रतिदिन का खर्च बैठेगा। मि० गोखले समस्त भारतवर्ष से २०,००० अर्थात् ३०००००) चाहते हैं। गरीब से गरीब भी जननी जन्मभूमि की मान मर्यादा की रक्षा करने के सन्तोष के लिए कुछ न कुछ दे सकता है। इसके सिवाय हर एक शहरों में, ग्राम ग्राम में सभाएं कर "इम्पीरियल गवर्नमेंट" से हस्तक्षेप करने की प्रार्थना तथा बदला लेने वाली बिल पास करने की प्रार्थना के प्रस्ताव पास होने चाहियें। द्वार, द्वार, से भिक्षा मांगने का बन्दोबस्त होना चाहिये।

धन की अतीव आवश्यकता है. उसके लिए जो गहरी पुकार को गई है उसकी सुनवाई भी तुरन्त और पूरी होनी चाहिये।

बोर भाव।

गोरे औपनिवेशिक, बोर विशेषतया भारतवासियों को बाहर निकाल देने पर कटिबद्ध हैं और वे इसके लिए कोई प्रयत्न उठा न रखेंगे। वे हम लोगों के साथ व्यवहार करने में सद्व्यवहार और न्याय का दम नहीं भरते। वे साफ साफ कहते हैं कि वहां रहने या वहां जाने का कोई अधिकार नहीं है। वे कहते हैं स्वतंत्रता और समता इङ्गलैण्ड या और कहीं के लिए भलेही अच्छी चीज़ हों किन्तु उनके लिए अच्छी नहीं हैं। बृटिश साम्राज्य से उन्हें कोई मतलब नहीं है और न उसका उन्हें किञ्चित ध्यान या मानही है। केवल हम लोग ही बड़ी हिम्मत और दृढ़ता से उनके इस पाशविक व्यवहार attitude का सामना कर सकते हैं।

नेटाल में तीन पाउण्ड का टैक्स।

[लेखक—मि० जी० ए० नटेसन।]

इतिहास।

पचास वर्ष बीते सर जार्ज ग्रे केप कालोनी के गवर्नर थे। उस समय में डरबन के कारपोरेशन ने उनसे प्रार्थना की कि "एक निश्चित संख्या पूर्वीय कुली और मज़दूरों की देश में आने पावे क्योंकि कोष्ठ के द्वीपों की संवृद्धि के लिए यह बहुत आवश्यक है।" भारतीय गवर्नमेण्ट से प्रार्थना की गई, और भारतीय गवर्नमेण्ट ने उस ओर ध्यान भी दिया। तदनुसार १६ नवम्बर १८६० को प्रतिज्ञाबद्ध कुलियों का पहला जहाज़ नेटाल में पहुंचा। काम करने की अवधि पहिले तीन वर्ष की थी और उसके पूरी होने पर कुली वहां बस सकते थे। वहां बसने के लिए सब तरह का आराम पहुंचाया जाता था यहां तक कि ज़मीन भी उन्हें मुफ्त में मिलती थी। इसके सिवाय उनके बालबच्चों की शिक्षा का भी अच्छा प्रबन्ध किया जाता था और कुछ समय में कतिपय युवक स्वतंत्र नागरिक हो गये और ऐसी अवस्था में उन्हें बृटिश नागरिक के पूरे पूरे स्वत्व भी प्राप्त थे। वास्तव में भारतवासियों ने इतना अच्छा काम किया कि यूरोप निवासियों ने उन्हें, वहीं बसने पर राजी किया और इसका सबसे अच्छा प्रमाण यही है कि वहां एक नियम बन गया

कि कोई भी स्वतंत्र भारतवासी बिना दस वर्ष वहां वास किए बिना किराया दिए भारत को वापस नहीं आ सकता था।

इंडेंचर का क्रम १८६६ तक कायम़ रहा। उस समय कुछ समय के लिए वह तोड़ दिया गया। परिणाम यह हुआ कि इस प्रथा के वन्द होने के थोड़े ही दिन बाद मजूरों के न मिलने से वहां के कारोबार का नाश आरंभ हुआ। इस कारण १८७४ से यह क्रम फिर जारी किया गया। १५ वर्ष तक नेटाल और अन्य उपनिवेशों की खूब स्वच्छन्दता से श्रीवृद्धि हुई। १८८७ ई० में विरोध की आवाज़ फिर सुनाई दी और एक कमीशन नियत किया गया कि वह विचार करे कि कुलियों का आना क्यों न बन्द किया जाय। पूर्ण अनुसन्धान करने के बाद कमीशन ने एक मत से यह फल प्रकट किया।

The abolition of Indian immigration would cause industries to decline; that absolute and conclusive evidence has been before the commission that several industries owe their existence and present condition entirely to indentured Indian labour and that if the importation of such labour were ablolished under present conditions the industries would decline and in some cases be abandoned entirely. Replacing the Indians by Natives would possibly raise up wages to a prohibitive figure.

अर्थात् भारतवासी कुलियों के न आने से यहां के कारोबार को क्षति पहुंचेगी। इसके पूरे पूरे सबूत मिले हैं कि बहुत से कारोबार की उन्नत अवस्था के प्रधान कारण ये भारतीय कुली ही हैं और यदि उनका आना बन्द कर दिया जायगा तो कारोबारों को क्षति ही न पहुंचेगी वरन कितने बन्द भी हो जांयगे। भारतवासियों के स्थान पर यहां के निवासियों से काम लेने में मज़दूरी बढ़ जायगी और वह भी इतनी कि काम लेना कठिन हो जायगा” प्रकृतवश कुलियों की प्रथा जारी रही। १८९५ तक यह स्थिति रही किन्तु उस समय फिर विरोध आरंभ हुआ। सब से दुःख की बात यह है कि इसी विरोध के समय दक्षिणी अफ्रीका को औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्त हुआ था।

१८८५ के “इमीग्रेशन ला” के अनुसार प्रत्येक भारतवासी को ५ वर्ष की गुलामी की अवधि पूरी होने के बाद यदि वह वहां रहा चाहे तो ३ पांउड का टैक्स देना पड़ता था। यह टैक्स उस एक पाउंड टैक्स के अलावा देना पड़ता था जो कि हर एक को साधारण रीति से देना पड़ता है। यह टैक्स १६ वर्ष के ऊपर बालकों को और १३ वर्ष के ऊपर की कन्याओं को देना पड़ता है। जिस समय कि इस पर वादविवाद हो रहा था लन्दन टाइम्स ने बड़े कड़े शब्दों में इसकी आलोचना की थी और कहा था “a state perilously near to slavery” कि यह प्रायः गुलामी के सदृश है। एक रेडिकलपत्र ने कहा था “a monstrous wrong, an insult to British subjects, a disgrace to its authors and a slight upon ourselves” कि यह भीषण अन्याय है, यह बृटिश प्रजा के लिए अपमानजनक है।

इस टैक्स का सारा मतलब यही था कि या तो जिनकी अवधि पूरी हो गई है वे भारतीय नर और नारी देश से चले जांय या फिर प्रतिज्ञाबद्ध कुली हो जांय। जिस समय यह एक्ट पास हुआ उस समय नेटाल में भी कतिपय भले आदमी थे और उन्होंने इसका विरोध भी किया। मि० जेम्स आर० सैन्डर्स ने, जो कि नेटाल कमीशन के एक सभ्य थे, कहा था :—

Stop Indian immigration and face the results, but do not try to do what I show is a great wrong. What is it *but making the best of our servants and then refusing them their reward.* Forcing them back, (at the point of bayonet ?) when their best days have been spent for our benefit—Shylock-like taking the pound of flesh, and Shylock-like, we may rely on its meeting Shylock's reward. Stop Indian immigration if you will ; if there are not enough unoccupied houses now, empty more by clearing out Arabs and Indians who live in them, and who add to the productive and consuming power of a less than half peopled country.—But force men off at the end of their term of service —this the colony cannot do—and I urge on it not to descredit a fair name by trying सारांश यह कि अगर दम है और कुछ करतूत का भरोसा है तो कुलियों का आना बन्द करदो मगर आये हुए कुलियों को जो कि मेहनत कर अपनी अवधि पूरी कर चुके हैं, और जिनको यहां रहने का पूरा अधिकार है उन्हें इस प्रकार से सता कर देश से बाहर निकालना कोरी निष्ठुरता नहीं तो क्या है? अवधि भर तो उनलोगों ने जान दे काम किया अब जब वे स्वतंत्रता से रहने के अधिकारी हुए तब उन्हें सताना यह कोई न्याय नहीं है और हम प्रार्थना करते हैं कि इस प्रयत्न को करके आप लोग मुख में स्याही न पोतें "। इस कुत्सित टैक्स का बड़ा प्रबल विरोध हुआ और एक कमीशन भारत गवर्नमेण्ट के पास इस नियत से भेजा गया कि वह उसे ठेके की प्रतिज्ञाओं को रद्दबदल करने पर राज़ी करे। उस समय के वाइसराय लार्ड डफरिन टैक्स लगने के प्रस्ताव पर राज़ी हो गये किन्तु उन्होंने दया कर यह निश्चित करा लिया कि भारतवासियों के लौटने से इन्कार करने पर उनपर कोई फौज़दारी कानून लागू न होगा। यहां पर यह भी स्मरण रखना चाहिये कि जिस समय इस टैक्स की बात हुई थी उस समय एकृ से यह नहीं सूचित होता था कि स्त्रियों और बालकों पर भी यह टैक्स लगाया जायगा। किन्तु अफसरों की निगाह से यह बात छिपी न रह सकी और १८९३ के उस प्रस्ताव में यह भी पास हो गया कि स्त्रियों और बच्चों पर भी यह टैक्स लगाया जाय।

मैं विस्तार में यह वर्णन कर कि इस टैक्स का किस निर्दयता से प्रयोग हुआ बहुत सा आप का स्थान नहीं लिया चाहता। मैं केवल आपको यह बतला देना चाहता हूं कि पहिला काम दक्षिणी अफ्रीका की गवर्नमेन्ट ने जो किया वह गवर्नमेंट आफ इन्डिया के साफ साफ इस कथन का, "कि लौटने से इन्कार करनेवाले भारतवासियों पर कोई फौजदारी दावा न किया जायगा" अनादर करना था। जब कभी कोई टैक्स देने से इन्कार करता या यह कहता कि टैक्स देना उसकी शक्ति से बाहर है उसपर मुक़दमा चलाया जाता था, उसपर जरीबाना होता था और न अदा करने पर उसे जेल में जाना पड़ता था। इस टैक्स ने स्त्रियों के साथ बड़ी ही निर्दयता का व्यवहार किया है। ऐसे बहुत से मामले हुए हैं जिनमें गरीब, कमज़ोर, रोग से पीड़ित और जिन्होंने अत्यन्त गरीबी के कारण टैक्स न दे सकने की प्रार्थना की, ऐसी स्त्रियां आज्ञा भङ्ग करने के कारण जेल में भेज दी गई हैं। भारतवासियों को इस टैक्स ने इस संकट में डाल दिया है कि वे या तो भूखे रहें, या घृणित ज़िन्दगी बसर करें और या फिर से प्रतिज्ञाबद्ध कुली हो जांय। डरबन के प्रोटेकृर आफ इमीग्रेन्टस से मुझे यह कहने का अधिकार है कि अधिकतर भारतवासी आवश्यकतावश न कि इच्छा या किसी लालच से फिर से कुली हो जाते हैं।

"To take away from this country helpless men and women to distant land, to assign them there to employers in whose choice they have no voice and of whose language, customs, social usage, and special civilisation they are entirely ignorant and to make them work there under a law which they do not understand, which treats their simplest and most natural attempts to escape the ill-treatments as criminal offences—such a system by whatever name it may be called really borders on the servile."

अर्थात् यह कि दीन असहाय नर नारियों को दूर देश में लेजाकर ऐसे मालिकों की नौकरी में रखना जिनके चुनने में उन्हें किसी प्रकार का अधिकार नहीं, जिनकी भाषा, रहन सहन, रीति रिवाज से वे बिलकुल अनभिज्ञ हैं, और उन्हें उस कानून के नीचे काम करने पर बाध्य करना जिसे वे तनिक भी नहीं जानते और नहीं समझते और जिसके अनुसार अपने मालिकों के अत्याचारों से बचने के सर्व प्रकार से प्राकृतिक प्रयत्न भी दंडित हैं—ऐसी प्रथा चाहे जिस नाम से पुकारी जाय परन्तु वह सरासर अमानुषी और पाशविक है।

माननीय मि० गोखले के शब्दों में ३ पाउंड का टैक्स लगा कर कुलियों को फिर से गुलामी करने पर बाध्य करना पाशविक प्रयत्न के सिवाय और कुछ नहीं है। सच्ची बात तो यह है कि नेटाल की नीति रसचूसी हुई नारंगी की लीजी फेकने की नोति है। यह सदा इस बात की उत्सुक रही है कि भारतवासी कुलियों की भांति आवें और जब तक मर न जांय वे इन मालिकों के कब्जे में बने रहें। जैसे ही किसी भारतवासी ने अवधि पूरी होने पर स्वतंत्र व्यवसाय आरम्भ किया कि उसपर आपत्ति आने लग जाती है। इन्हीं बातों पर ध्यान रखते हुए मि० गोखले ने कौन्सिल में "रिटैलिएशन बिल" को पेश करते समय कहा था कि भारतवासियों के प्रति व्यवहार सरासर स्वार्थान्ध और निष्ठुर है और केवल भारतीय गवर्नमेण्ट के कड़े व्यवहार से भारतवासियों को कुछ सहायता मिल सकती है।

अपमान बहुत बड़ा है और साथ ही साथ घाव भी गहरा लगा है। गवर्नमेंट आव् इंडिया ही १२६० में कुलियों की प्रथा जारी करने की जवाबदेह है, गवर्नमेंट आव् इन्डिया ने ही द० एफ्रिका का पक्ष लेकर भारतवासियों को अधिक संख्या में भेजा, गवर्नमेंट आव् इण्डिया ही अपनी कमज़ोरी से १८९५ में इस बात पर राज़ी होगई कि या तो कुल ३ पाउण्ड का टैक्स दें या फिर से गुलामी का पट्टा लिख दें इसलिए यह गवर्नमेंट आव् इण्डिया और साम्राजिक गवर्नमेंट का (जिसने वास्तव में इस मामले में कोई भी प्रशंसा योग्य काम नहीं किया है), कर्तव्य है कि इस अन्याय को दूर करे।

जिस तरीके से यह मामला हल होगा उसी से यह बात तय होगी कि समस्त बृटिश प्रजाओं को समान स्वत्व और समान न्याय प्राप्त है या नहीं?

दक्षिणी अफ्रीका की स्थिति ।

[लेखक—माननीय मि० जी० के० गोखले ।]

जिस देश को हम दक्षिण अफ्रीका कहते हैं उसके चार भाग हैं (१) केपकालोनी (२) नेटाल (३) ट्रांसवाल (४) आरेञ्ज फ्री स्टेट। इन चारों प्रदेशों को मिलाकर दक्षिण अफ्रीका कहलाता है। इनमें से केपकालोनी और नेटाल उन लोगों की असली बस्ती है जो इङ्गलैण्ड से गये थे। शेष ट्रांसवाल और आरेञ्ज-फ्री स्टेट बोरों के साथ लड़ाई करके अङ्गरेज़ों ने प्राप्त किये थे।

नेटाल के असली निवासी काफ़िर लोग हैं। पर वे न खेती करना जानते हैं और न कोई कारीगरी का काम कर सकते हैं। जब पहले पहल अङ्गरेज़ नेटाल में गये और उन्हें खेती बारी के लिए कुलियों की आवश्यकता पड़ी तो नेटाल के असली निवासी काफिरों से काम न चल सका। नेटाल के अंगरेज़ों ने इम्पीरियल सरकार से हिन्दुस्तानी कुली भेजने की प्रार्थना की। इम्पीरियल सरकार ने भारत सरकार से कहा। भारतीय सरकार पहले हिचकिचाई, क्योंकि जिन प्रतिज्ञाओं पर मज़दूर नेटाल भेजे जाते थे वे बड़ी कड़ी थीं। शर्तें गुलामी से कुछ कम न थीं। कोई भी प्रतिज्ञाबद्ध मज़दूर पांच वर्ष से पहिले कहीं न जा सकता है और न स्वतन्त्रता से कहीं रह सकता है। एक तरह से वह मालिक का गुलाम होता है। पर साम्राजिक सरकार ने बड़ी बड़ी आशाएँ दिलाकर भारतीय सरकार को राज़ी कर लिया। उसने कहा कि पांच वर्ष के पीछे सभी मज़दूर स्वतन्त्र कर दिये जायंगे और उन्हें वहां ज़मीन रखने का अधिकार होगा। ऐसी ऐसी आशाएं दिलाकर हिन्दुस्तान से मज़दूर भेजे गये। यदि उस समय हिन्दुस्तानी कुली नेटाल न जाते तो नेटाल कभी भी वृद्धि न प्राप्त कर सकता। हिन्दुस्तानियों के द्वारा बनाए हुए नेटाल में आज हिन्दुस्तानियों की क्या दुर्दशा है। ट्रांसवाल उस समय बोर लोगों के अधीन था, वहां नेटाल से भी अधिक कड़े नियम थे परन्तु अङ्गरेज़ों के डर से वे भारतवासियों को नहीं सताते थे।

बोर युद्ध ।

१८९९ में अङ्गरेजों और बोर लोगों में युद्ध छिड़ा। उस युद्ध का एक बड़ा कारण यह बताया जाता था कि बोर हिन्दुस्तानी कुलियों से अच्छा व्यवहार नहीं करते। बोर युद्ध में भारतवासियों ने अङ्गरेज़ों की बड़ी सहायता की। महात्मा गांधी और उनके अनुयायी रोगियों और आहतों को स्वयं ढो ढो कर ले जाया करते थे। १९०२ में बोर युद्ध समाप्त हुआ और नेटाल केपकालोनी, ट्रांसवाल और आरेंज फ्री स्टेट मिला दिये गये। इनका नाम दक्षिण अफ्रीका पड़ा और वहां की गवर्नमेंट का नाम यूनियन सरकार हुआ।

हिन्दुस्तानियों से बुरा बर्ताव ?

पहले २५ वर्ष तक दक्षिण अफ्रीकावाले हिन्दुस्तानियों के साथ अच्छा बर्ताव करते थे। ५ वर्ष की अवधि बीतने पर मज़दूर जहां चाहते जा सकते थे और जायदाद भी रख सकते थे। ज्यों ज्यों हिन्दुस्तानियों की संख्या बढ़ती गई और वे परिश्रम से काम करने लगे त्यों त्यों वहांवालों को भय उत्पन्न होने लगा। और वे उन्हें सताने लगे।

अधिकार छिन गये !

धीरे धीरे दक्षिण अफ्रीकावालों ने हिन्दु-

स्तानियों के अधिकारों को छीनना आरम्भ किया। याद रखना चाहिये कि दक्षिण अफ्रीका में तीन श्रेणी के हिन्दुस्तानी बसते हैं। (१) वे जो यहां से मज़दूर बनकर गये थे (२) उनकी सन्तानें जो वहां पैदा हुई हैं। (३) वे हैं जो अपने भाइयों की आवश्यकताओं को पूरी करने के लिए गये थे। इनमें बड़े बड़े धनी और प्रतिष्ठित पुरुष भी हैं। इन सब के साथ एक ही सा बर्ताव किया जाता है। पहिले वे जहां चाहते थे जा सकते थे और पार्लीमेन्ट के सभासदों तक के लिए सम्मति दे सकते थे। अब यह अधिकार उनसे छीन लिया गया है। १९०६ में लार्ड मिलनर ने प्रस्ताव किया था कि सब हिन्दुस्तानी अपना नाम रजिस्टर में दर्ज करावें और अपने अँगूठे की छाप लगावें। हिन्दुस्तानियों ने यह करने से इन्कार किया। उन्होंने कहा कि हम किसी प्रकार के अपराधी नहीं हैं जो अपने अंगूठे की छाप लगावें।

४५) का कर।

इसके साथ ही १९०१ में ४५) का कर लगाया गया। आप लोगों को मालूम होगा कि यह कर कितना भयानक है और कितना अनर्थकारी है। जो मज़दूर हिन्दुस्तान से भेजे जाते हैं वे प्रायः पांच वर्ष के लिए केवल बंधुआ नहीं गुलाम होते हैं। पहले कहा जाता था कि वे पांच वर्ष के बाद स्वतन्त्र होजावेंगे। परन्तु अब दक्षिण अफ्रिकावालों को स्वतन्त्रता देना स्वीकार नहीं है इसी लिए उन्होंने यह महा अनर्थकारी कर लगाया है। इस करके अनुसार प्रत्येक स्वतन्त्र मनुष्य को ४५) साल देना पड़ता है नहीं तो प्रतिज्ञाबद्ध गुलाम बनना पड़ता है। इस तरह से कितनेही बड़े बड़े घराने बिगड़ गए। आप कल्पना कीजिये कि किसी परिवार में एक पुरुष, एक स्त्री और दो लड़के हैं। दक्षिण अफ्रीका में प्रति मास २५ शिलिङ्ग से अधिक नहीं कमाया जाता इस हिसाब से एक वर्ष में दो पौंड से अधिक नहीं कमाये जाते। इनमें से एक पौंड सालाना सरकार को दे देना पड़ता है। इस दशा में सुख पूर्वक नहीं तो न सही कष्ट सहन करने पर भी कोई मनुष्य अपने परिवार का पालन नहीं कर सकता। १९१० में दक्षिण अफ्रिका को स्वराज्य मिलगया और चारों देश मिलकर यूनियन गवर्नमेंट कहलाने लगे। यूनियन बनते ही भारतवासियों पर और भी अत्याचार होने लगे। फिर से अंगूठा लगाने का कानून जारी हुआ। किन्तु फिर भी भारतवासियों ने स्वीकार नहीं किया। बस तभी से निष्क्रिय प्रतिरोध का आरम्भ हुआ। भारतवासियों ने कहा "हम यह कानून न मानेंगे।" इसके तोड़ने का चाहे जो दंड मिले हम लोग सहर्ष भुगत लेंगे। उस समय थोड़े से भारतवासियों ने बड़ी वीरता दिखलाई, सैकड़ों जेल में गए।

प्रतिज्ञा भङ्ग।

१९१० में पंचम जार्ज सिंहासन पर बैठे। उस वर्ष महाराज ने अपनी इच्छा से यह विरोध कुछ देर के लिए शांत करवा दिया। गत वर्ष जब मुझे दक्षिण अफ्रिका जाने का अवसर मिला तो वहां के प्राइवेट सेक्रेटरी मि० स्मटस ने मुझ से प्रतिज्ञा की थी कि ४५) का कर हटा दिया जायगा। पर बोर लोग हिन्दुस्तानियों से बड़ी घृणा करते हैं। बोथा डरता है कि कहीं हिन्दुस्तानियों का पक्ष करने से मेरा महामन्त्रीपन ही न छिन जाय। इसलिए प्रतिज्ञा करके भी उसने उसे तोड़ दिया है। यूनियन सरकार अत्याचार दूर करने की कौन कहे अब और अत्याचार कर रही है।

सब हिन्दुस्तानी स्त्रियां वेश्या हैं।

दक्षिण अफ्रिका का कानून बहु विवाह को स्वीकार नहीं करता। पर अब नेटाल के न्यायालय ने इसका विचित्र अर्थ किया है। न्याया-

लय का कथन है कि हिन्दू और मुसलमान धर्म के अनुसार बहु विवाह हो सकता है इस लिए उस धर्म के अनुसार विवाहिता और पतिव्रता स्त्री को भी वे कुलटा समझते हैं। उनके कानून का अर्थ यह है कि हिन्दुस्तानी स्त्रियां वेश्या हैं और उनके पुत्र दोगले हैं।

हिन्दुस्तानी इस अपमान को कैसे सह सकते थे। उन्होंने फिर निष्क्रिय प्रतिरोध का हथियार पकड़ा। १०० पुरुषों और ४० स्त्रियों ने प्रतिज्ञा करली कि हम जब तक इन दोनों कानूनों को रद्द न करवा लेंगे तब तब तक जेल ही में रहेंगे। अब नेटाल के मज़दूर भी मिल गए। क्योंकि उन्होंने हड़ताल करदी है। वे ४५) के कर से अतीव संत्रस्त हैं। इन हड़तालियों की संख्या ३० हज़ार से कम नहीं है। इन मज़दूरों पर द० अफ्रिका की सरकार अब बड़ा अत्याचार कर रही है। पिछले सप्ताह में जो तार आए उनसे सारा देश कांप गया है। ऐसे अत्याचार गुलामी के समय भी नहीं सुने गए थे। हड़ताली मज़दूरों के लिए खानों को ही जेल बना दिया गया है और खान के मालिक उनके दारोग़ा हैं। वहां उन्हें कोड़ों से पीटा जाता है, डंडे के जरिये से काम लिया जाता है। यूनियन सरकार अत्याचारों से इन्कार करती है। परन्तु कई प्रतिष्ठित अङ्गरेज़ भी कहते हैं कि हमारे पास अत्याचार के काफ़ी सबूत हैं। मेरे हाथ में "इण्डियन ओपीनियन" है। इसमें एक मज़दूर का हाल है जिसका नाम सैयद इब्राहीम था। वह भी हड़तालियों में शामिल था। एक दिन वह खान के कूएँ में पानी भरने गया। खान के गोरे अफ़सर ने उसे छड़ से इतना मारा कि छड़ी टूट गई। वह मज़दू घायल होगया। हम यही कहते हैं कि इ अत्याचारों की पूरी तरह जांच करनी चाहिये।

मि० गांधी छोड़ दिया जाय।

हमें सन्तोष है कि हमारे वायसराय ने इस काम को अपने हाथ में ले लिया। उन्होंने भारत मंत्री को तार दिया है कि अत्या-चारों की जांच के लिए एक कमेटी बना जाय जिसमें हिन्दुस्तानियों के प्रबल प्रति-निधि हों। इस विषय में हम भी इतना अवश्य कहना चाहते हैं कि इस कमेटी में गांधी को अवश्य रक्खा जाय। सदा के लिए नहीं तो उतनेही समय के लिए गांधी कैद से मुक्त कर दिये जांय और इस कमेटी के सभासद चुने जांय। इससे कम में हमको कभी सन्तुष्ट न होना चाहिये।

अन्तिम अपील।

मैं अन्त में आप से एक बात कहना चाहता हूं। ये अत्याचार और इनकी जांच गौण बातें हैं। इनके समाप्त होजाने पर भी वह प्रतिरोध चलता रहेगा जब तक ४५) का कर और विवाह का कानून रद्द न होजायगा और भारतवासियों को समान अधिकार न मिलेंगे। मुख्य बात वही है जिसके लिए महात्मा गांधी और उनके अनुयायियों ने प्रतिज्ञा की है। उनकी सहायता के लिए आपको तैयार रहना चाहिये।

दक्षिण अफ्रीका प्रवासी भाइयों पर अत्याचार।

[लेखक—एक सहृदय।]

कुछ समय पहले भारतवर्ष के भाग्याकाश में महारानी विक्टोरिया के आश्वासन वचनों की ऊषा की लालिमा का आभास हुआ था। लार्ड रिपन ने इस लालिमा को और भी प्रस्फरित कर दिया, कई शताब्दियों से दुर्भाग्यावच्छिन्न भारतवासियों के हृदय में एक धैर्य की तरंग का उत्थान हुआ। जब इन्हें बृटिश नागरिक तथा स्थानिक स्वराज्य स्वत्व प्राप्त हुए तब उस धैर्य में आशा का सुन्दर अंकुरोद्भव हुआ। स्वर्गीय महाराजाधिराज सप्तम एडवर्ड तथा वर्तमान महाराजाधिराज पञ्चम जार्ज महोदय ने समय २ पर महारानी के उन अश्वासन-बचनों को दुहराकर उसी आशा अंकुर को पल्लवित कर दिया। परन्तु दक्षिण अफ्रीका के प्रवासी भाइयों की सम्प्रति दशा देखकर उस आशा-लता को निराशा के पाले ने मुरझा दिया। संसार से गुलामी की प्रथा उठा देने का दम भरनेवाली बृटिश-सरकार के शान्तिमय झंडे के नीचे भी बर्बरों की दुर्दण्डता से पीछा नहीं छूटता, तो क्या भगवन्! यह पुराना भारतवर्ष कालरात्रि के घोर अन्धकार ही में अपना अस्तित्व शेष कर देगा? साम्राजिक सरकार के बार २ प्रतिज्ञा करने पर भी इस अभागे भारत का थोड़ा भी मान न हुआ तो भला फिर क्या आशा हो सकती है? आज कई वर्षों से दक्षिण अफ्रीका में हमारे भाई और बहनों की बड़ी दुर्गति होरही है, उनके साथ पाशविक-व्यवहार होरहा है। प्रातः स्मरणीय गांधी के सदृश महात्माओं को बार २ जेल जाना पड़ा है! मि० गोखले सरीखे कर्मवीर विद्वानों को अपनी सारी शक्ति उधर ही झुका देनी पड़ी है। परन्तु तब भी कुछ विशेष आशा रखने का साहस नहीं होता और हमारी अवस्था दिन पर दिन भीषण रूप धारण करती जाती है।

"स्वारथ के सबही सगे, बिन स्वारथ कोउ नाहिं"

अफ्रीका के गोरों ने जब देखा कि भारतीय मज़दूरों के बिना वहां वे कुछ नहीं कर सकते तो भारत सरकार से प्रतिज्ञाबद्ध मज़दूर लेना निश्चय कर उन्हें अनेक प्रयत्नों से वे वहां लेजाने लगे। पहले तो उनके साथ अच्छा बर्ताव किया गया, उनके रहन सहन का प्रबन्ध किया गया और इनके द्वारा उन लोगों ने खूब लाभ उठाया। जब अवधि व्यतीत होने पर अधिकांश मज़दूर स्वतन्त्र रूप से वहां कारोबार करके गोरे कार्यकर्त्ताओं से प्रतियोगिता में विजय प्राप्त करने लगे तब उन्हीं गोरों को इनका वहां रहना असह्य होगया।

"गरज परे कछु और है, गरज सरे कछु और"

फिर क्या था, इनको निकाल देने के लिए भांति भांति के प्रयत्न होने लगे। प्रत्येक भारतीय पर ३ पौंड प्रतिवर्ष का कर लगाया गया। प्रत्येक कार्य के लिए गवर्नमेंट से आज्ञा लेने का नियम बनाया गया और एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में जाना रोक दिया गया। जब इतनी कठिनाइयों के होते हुए भी सहिष्णु भारतवासियों से गोरे प्रतियोगिता में पार नहीं पा सके तब उन्होंने भांति २ की पैशाचिक लीला आरंभ करदी। सड़कों पर चलना रोका गया गाड़ी में एक साथ बैठने का निषेध हुआ, स्कूल में हमारे बच्चे पढ़ने से रोके गये, एक कानून बनाया गया कि कोई भी भारतीय व्यक्ति अपनी स्त्री को नियमानुसार स्त्री और सन्तति को सन्तति नहीं मान सकता। कारण बताया गया कि यह दाम्पत्यसम्बन्ध एक ऐसे देश के नियमानुसार हुआ है जहां एक पुरुष

एक स्त्री से अधिक स्त्रियों के साथ विवाह कर सकता है, जो प्रभु ईसू मसीह के धार्मिक कानून के प्रतिकूल है। किन्तु हम को कुछ आशा उस गवर्नमेंट से भी है जिसने भारत को निःशस्त्र करके उसके मान की रक्षा का ठेका अपने ऊपर लिया है। भारत ने इङ्गलैण्ड का सुख दुःख में सब भांति साथ दिया है उसको एक शक्ति बना दिया है अब उसका बदला वह चाहता है। हम बृटिश सरकार से कहते हैं कि कहीं हमको अन्त में यह न कहना पड़ेः,—

"शीत बात आतप सही, रखि तेरी हिय आस
तऊ पपीहा की जलद, तैं न बुझाई प्यास"

गत वर्ष में जब माननीय मि० गोखले अफ्रीका गये थे उस समय वहां की गवर्नमेंट ने झूठा वचन दे कर टाल मटूल कर दिया था। इधर भारत सरकार भी उधर ध्यानपूर्वक देख रही थी। परन्तु जब हमारे भाइयों ने देखा कि कुछ होता नहीं, योंहीं इधर उधर से दमपट्टी दी जारही है तब उन्होंने उसी अस्त्र से काम लेना आरंभ किया जिसके द्वारा सभ्य-जगत में बड़ी २ शक्तियों का मस्तक एक पल में झुक जाता है। उनलोगों ने जेल जाना, भूखों मरना, मार-खाना, प्राण देना स्वीकार किया परन्तु अपने पूर्वजों के नाम पर कलङ्क नहीं लगने दिया। वहां पर हमारी बहनों ने जो कर्त्तव्य की पराकाष्ठा दिखाई है उससे सारा संसार सन्नाटे में है। अपने छोटे २ बच्चों के साथ वे हठात् जेल जाती हैं अनेक प्रकार की यातनाएं सहती हैं परन्तु वह अन्याय के सामने सिर नहीं झुकातीं। गांधी का सारा परिवार, बहन, स्त्री, बच्चे जेल में हैं। मिस्टर पोलक, मि० वैस्ट, मि० रिच जैसे सत्यप्रिय विदेशी भी इस न्यायानुकूल आन्दोलन में सम्मिलित होकर कारागृह-वास का कठोरव्रत कर रहे हैं। मज़दूरों को ज़बरदस्ती काम पर लाने के लिए वहां सैनिक-कानून-का प्रयोग आरंभ होगया है। भगवान् आज यह सब क्या होरहा है? परन्तु हां! देखिये इन सब दुखों के भीतर आत्म ज्योति की बिजली का वह सूक्ष्म प्रवाह दिव्य रूप धारण करके बह रहा है। वह देखिये आर्य रुधिर परीक्षा में पूरा उतर रहा है। क्या यह सचमुच प्राच्य कवि शिरोमणि रवि बाबू का कथन चरितार्थ होरहा है। उनकी एक कविता का आशय है कि परमात्मन्! यदि आप हमारे यहां आवें और हमको सोता हुआ पावें तो वज्रवेदना द्वारा हमें जगा देना लौट मत जाना। क्या सचमुच हमारी जागृति के लिए ही यह नैसर्गिक बज्रवेदना हो रही है। जो कुछ हो इसमें कुछ सन्देह नहीं कि इस हरिश्चन्द्रीय नाटक का कारुण्य दृश्य बड़ाही भयंकर होगया है। आज सत्य के मैदान में अगणित हरिश्चन्द्र, शैव्या और रोहिताश्वों का आविर्भाव होगया है। इस स्वार्थत्याग के मैदान में निष्क्रिय प्रतिरोध के द्वारा जातीय मान के लिए युद्ध करनेवाले वीरों के प्रति हमारा यह कर्त्तव्य ही नहीं बल्कि अनिवार्य कर्तव्य है कि हम उनकी सहायता करें। यह सहायता अन्य प्रकार की नहीं है। उन वीरों के पेट की ज्वाला को शान्ति करने के लिए कुछ धन चाहिये। इस जातीय समर यज्ञ में राजा, रईस, व्यापारी, किसान, हिन्दू-मुसलमान सब को अर्थाहुति देकर अपना हृदय पवित्र करना चाहिये। बृटिश सर्कार पर दबाव डालना चाहिये ताकि यूनियन गवर्नमेंट को हमारे बृटिश नागरिक स्वत्वों को नाश करने के लिए पश्चात्ताप और प्रायश्चित्त करना पड़े, अपनी शक्ति के अनुचित प्रयोग के लिए रोना पड़े, और हम संसार के सामने मान मर्यादा रख सकें। हमारे हाथ में केवल धन ही की सहायता रह गई है। परतंत्र होने से बल की सहायता तो देही नहीं सकते और सच तो यह है कि बल रहा ही नहीं। नहीं तो अन्तिम मुगल सम्राट् बहादुरशाह ज़फ़र को यह कहने का अवसर क्यों मिलता।

दम दमे में दम नहीं है, खैर मानो जानकी।
ऐ ज़फ़र बस देख ली, तलवार हिन्दुस्तान की॥

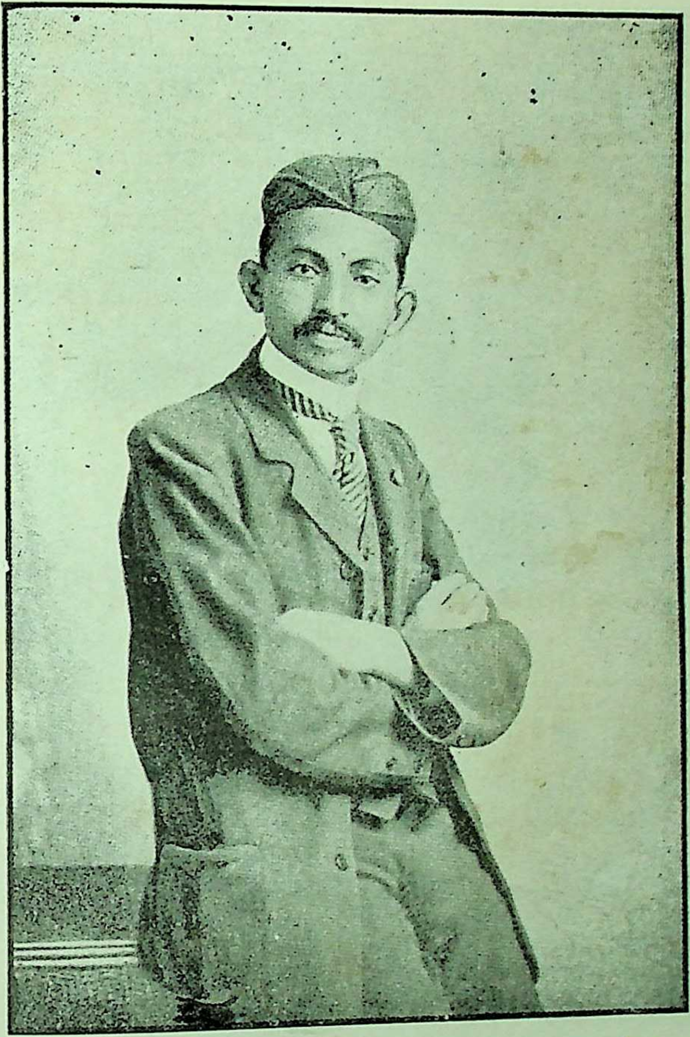

भारतमाता का मुख उज्ज्वल करनेवाले, उनकी मर्यादा के लिए
जान देनेवाले, वीरश्रेष्ठ मि० मोहनदास कर्मचन्द गांधी।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग।

नेटाल प्रवासी ।

[लेखक—श्रीयुत जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी ।]

भारत अधिवासी, सुख के रासी,
बुद्धि विलासी, विज्ञवरो ।
आंखें अब खोलो, टेंट टटोलो,
कुछ तो बोलो, चेत करो ॥
प्रिय बन्धु तुम्हारे, सुख तजि सारे,
सहें विचारे, कष्ट बड़े ।
बालक नर नारी, होय दुखारी,
तकें तुम्हारी, राह खड़े ॥
नेटाल प्रवासी, भारतवासी,
ले गल फाँसी, दास बने ।
भोजन नहीं पावें, कोड़े खावें,
कलेश उठावें, नित्य घने ॥
गान्धी गुननायक, सब विधि लायक,
बने सहायक, जेल गये ।
पोलक अनुरागी, परहित लागी,
सरबस त्यागी, कैद भये ॥
नृप धनिक उदारो, साहूकारो,
मन मत मारो, दान करो ।
अवसर यह आया, वचन सुनाया,
धन की माया, त्याग करो
हे कृष्ण मुरारे, जसुदावारे,
प्रभू हमारे, दयाकरो ।
विनती यह मेरी, विपद घनेरी,
करो न देरी, वेग हरो ॥

शिक्षा-संस्कार* ।

[लेखक—श्रीयुत नाथूराम प्रेमी ।]

कुछ समय पहिले 'स्पेक्टर' नामक सुप्रसिद्ध अङ्गरेज़ी साप्ताहिक पत्र में आयलैंड के शिक्षा-संस्कार के विषय में एक बड़ा ही महत्व का लेख प्रकाशित हुआ था। भारतवासियों के लिए उसका निम्नलिखित सारांश बहुत ही विचारणीय है:—

"यूरोप के जिस युग को 'अन्धकार का युग' कहते हैं, जिस समय बर्बरों के आक्रमण की आंधी से रोम का दीपक बुझ गया था उस समय सारे यूरोप में आयर्लैण्ड ही ऐसा देश था जहाँ विद्या की चर्चा और ज्ञान की ज्योति जगमगा रही थी? उस समय यूरोप के विद्यार्थियों के लिए आयर्लैण्ड के विद्यालय ही एक मात्र शरण थे । सातवीं शताब्दि के इतिहास से मालूम होता है कि वहाँ कई हज़ार विदेशी विद्यार्थी अध्ययन करते थे और उन सब को स्थान, भोजन तथा पुस्तकें बिना मूल्य दी जाती थीं ।

'उस समय यूरोप के बहुत से देशों में विद्या और ईसाई धर्म की निर्वाणप्राय शिक्षा को आइरिश पादरियों ने एक बार फिर से चमका दिया था । आठवीं शताब्दि में फ्रान्स के राजा शार्लमेन ने पेरिस-यूनीवरसिटी की प्रतिष्ठा का भार आयर्लैण्ड के एक क्लेमेन्सर नामक विद्वान को सौंपा था। इस प्रकार के और भी अनेक दृष्टान्त हैं।

प्राचीन आइरिश विद्यालयों में यद्यपि

---

* श्रीयुत रवीन्द्रनाथ ठाकुर की शिक्षा नामक निबन्धावली के एक लेख का मर्मानुवाद ।

लैटिन, ग्रीक, हिब्रू भाषाएँ सिखलाई जाती थीं, तथापि वहाँ शिक्षा देने की भाषा आइरिश थी। गणित ज्योतिष, फलित ज्योतिष, तथा उस समय में और भी जो जो विज्ञान प्रचलित थे वे सब वहाँ आइरिश भाषा के द्वारा ही सिखलाये जाते थे। इससे उस भाषा में पारिभाषिक शब्दों की दरिद्रता न थी—आइरिश भाषा में शब्द सम्पत्ति विपुल थी।

जब आयर्लैंएड पर अङ्गरेज़ों ने आक्रमण किया, तब इन सब विद्यालयों में आग लगा दी गई, हज़ारों वर्ष के संग्रह किये हुए पोथी पत्रे जला दिये गये, और अध्यापक तथा विद्यार्थी हताहत किये गये। किन्तु आयर्लैंएड के जो जो स्थान इन सब उत्पातों से बचे रहे, और देशी राजाओं के आधीन बने रहे, उन सब स्थानों के बड़े बड़े विद्यालयों में लगभग सोलहवीं शताब्दी तक सारी शिक्षाएँ बिलकुल आइरिश-पद्धति के अनुसार ही जारी रहीं। इसके बाद जब रानी इलिजबेथ के समय युद्ध हुआ और सारी आइरिश-सम्पत्ति लूट ली गई, तब विद्यालयों के सहित वहाँ की स्वाधीन-विद्या भी नष्ट भ्रष्ट कर दी गई!

इस तरह आयर्लैंएड निवासी ज्ञान चर्चा से बञ्चित हो गये और धीरे धीरे उनकी भाषा छोटे दर्जे के लोगों की भाषा कहलाने लगी—उनकी मातृभाषा का अपमान होने लगा। इसके बाद उन्नीसवीं-शताब्दि में वहाँ 'नेशनल स्कूल' प्रणाली का सूत्रपात हुआ। इस समय यह आवश्यक था कि आइरिश लोग इस प्रणाली के दोष गुणों पर अच्छी तरह से विचार करते; परन्तु ऐसा न हुआ, ज्ञानपिपासु जन इसकी सादर अभ्यर्थना कर के अपनी प्यास बुझाने लगे। उस समय वहाँ 'जान मेक हेल' नाम का एक विद्वान था। उसने अवश्य ही इस प्रणाली के विरुद्ध आन्दोलन किया और सर्वसाधारण को समझाया कि इससे हमारा अकल्याण होगा। परन्तु इसका कुछ भी फल न हुआ।

"नेशनल स्कूल प्रणाली के जारी करने का उद्देश्य यह था, कि आइरिश लोगों को बलपूर्वक स्याक्सनों के साँचे में ढाल कर अङ्गरेज़ बना दिया जाय। परन्तु प्रकृति ने भिन्न २ जातियों को इस तरह भिन्न २ प्रकार से गढ़ा है कि एक जाति दूसरी जाति नहीं बन सकती—यह चेष्टा व्यर्थ जाती है।

"जिस समय यह शिक्षाप्रणाली जारी की गई, उस समय आयर्लैंएड के निवासी सौ में अस्सी आदमी आइरिश भाषा बोलते थे। यदि शिक्षा देना ही नेशनल बोर्ड का उद्देश्य होता, तो उसे उचित था, कि पहले आइरिश विद्यार्थियों को उनकी मातृभाषा में पढ़ना लिखना सिखलाकर फिर उसी मातृभाषा की सहायता से, उन्हें विदेशी भाषा की शिक्षा देने की व्यवस्था करता। किन्तु ऐसा न करके उसने बालकों को नाना प्रकार के दण्ड देकर मातृभाषा का व्यवहार छोड़ देने के लिए लाचार किया।

"केवल भाषा ही नहीं, आइरिश इतिहास पढ़ाना भी बन्द कर दिया गया और आइरिश-भू वृत्तान्त भी अच्छी तरह से नहीं सिखलाया जाने लगा। इससे बालक विदेश के इतिहास और भू वृत्तान्त सीखकर अपने देश के विषय में अनभिज्ञ रहने लगे।

"इसका फल वही हुआ जो होना चाहिये। मानसिक जड़ता सारे देश में व्याप्त हो गई। बेचारे आइरिश विद्यार्थी बुद्धि और जिज्ञासा लेकर विद्यालयों में प्रवेश करने लगे, और कुछ समय में पंगु मन और ज्ञान के प्रति अरुचि लेकर बाहर निकलने लगे। क्योंकि यह शिक्षा-प्रणाली एक प्रकार की यन्त्र-चालित प्रणाली है, इसका मन पर परिणाम नहीं होता—मन अशिक्षित रह जाता है और बालक तोते बन जाते हैं।

"प्राथमिक शिक्षा के बाद बालकों को माध्यमिक शिक्षा या इण्टरमीडियट एज्युकेशन की सीढ़ी पर चढ़ना पड़ता है। आयर्लैंएड में कोई

अट्ठासी वर्ष तक इस माध्यमिक शिक्षा की जाँच की गई । इसका फल यह हुआ कि वहाँ शिक्षा बिलकुल ही दलित हो गई । जब परीक्षा फल की ओर अतिशय लोभ दृष्टि रहती है—परीक्षा में किसी तरह पास करा देना ही जब मुख्य प्रयोजन हो जाता है, तब कालेजों में वास्तविक शिक्षा देने की चेष्टा नहीं होती, केवल घोलकर पिला देने का ही प्रयत्न किया जाता है । इससे हज़ारों विद्यार्थियों का स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है, और बुद्धि बन्ध्या हो जाती है । अधिक परिश्रम से अकाल में ही उनका मन दुर्बल हो जाता है और विद्या के प्रति उनमें अनुराग नहीं रह जाता ।

"परन्तु इस अन्याय का प्रतीकार करने के लिए आइरिश जाति प्रार्थना नहीं करती । वह न तो विप्लव करना चाहती है और न प्रकृत-शिक्षा पाने का स्वत्व प्रगट करने के लिए उछल कूदही मचाया चाहती है; वह अपने देश की शिक्षा का भार अपने आप उठाना चाहती है । इस के ख़र्च के लिए भी सरकार को अधिक चिन्ता न करनी पड़ेगी—आइरिश लोग स्वयं इसका भार उठाने के लिए तैयार हैं । आयर्लैण्ड को शिक्षा के ख़र्च के लिए जो रकम दी जाती है, वह बहुतही मामूली है । इङ्गलैण्ड में जहाँ पुलिस और अदालत के ख़र्च के लिए एक पौण्ड ख़र्च किया जाना है, वहाँ शिक्षा के लिए आठ पौण्ड अर्थात् अठगुना ख़र्च किया जाता है । परन्तु आयर्लैण्ड में जहाँ अपराधों की संख्या इङ्गलैण्ड की अपेक्षा बहुत ही कम है—पुलिस और अदालत ख़र्च की रकम एक पौण्ड और शिक्षा ख़र्च की रकम १३ शिलिङ्ग ४ पेन्स मात्र है !"

यह सच है कि एक देश के साथ दूसरे देश की पूरी पूरी तुलना नहीं हो सकती, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि आयर्लैण्ड की शिक्षा नीति जिस ढंग से चल रही है, ठीक उसी ढंग से भारतवर्ष में भी चल रहा है । परन्तु आयर्लैण्ड के शिक्षा सङ्कट की आलोचना करने से मालूम होता है कि एक बहुत ही विचारणीय अंश में हमारे देश की और आयर्लैण्ड की दशा बहुत कुछ मिलती जुलती है ।

अर्थात् आयर्लैंडवासियों के समान हमारे मन पर भी शिक्षा का परिणाम नहीं होता—हमारी शिक्षाप्रणाली भी प्रायः कल या यन्त्र-संचालित है । जिस भाषा में हमें शिक्षा दी जाती है, उस भाषा में प्रवेश करने में हमारा बहुत समय लग जाता है और इतने समय तक हमें केवल उसके द्वार के पास खड़े होकर हथौड़ा पीटने और ताला खोलने की तरकीब का अभ्यास करते करते ही मर मिटना पड़ता है । हमारे मन तेरह चौदह वर्ष की अवस्था से ही ज्ञान का प्रकाश और भाव का रस ग्रहण करने के लिए प्रस्फुटित होने लगते हैं । उसी समय यदि उनके ऊपर विदेशी भाषा के व्याकरण की और रटन्तविद्या की शिला वृष्टि शुरू कर दी जाय तो बतलाइए वे पुष्ट और बलवान कैसे हो सकते हैं ? प्रायः बीस वर्ष की अवस्था तक जब हम निरन्तर सिरपच्ची करते हैं तब कहीं बड़ी कठिनाई से अङ्गरेज़ी भाषा पर अपना अधिकार जमा पाते हैं, किन्तु सोचिये तो सही, इतने दिनों तक हमारा मन कौन सी खुराक पाकर जीता रहता है ? हम क्या सोच पाते हैं, हमारा हृदय कौन सा रस खींचता रहता है और हमारी कल्पना वृत्ति सृष्टिकार्यचर्चा के लिए कौन से उपकरण या साधन प्राप्त कर पाती है ! धारणा शक्ति या स्मरणशक्ति तभी पक्की होती है, जब हम जो कुछ ग्रहण करें या सीखें, उसे साथ ही साथ प्रकाशित भी करते रहें, परन्तु हमारी शिक्षा के समय यह बात नहीं होती । क्योंकि पराई भाषा का ग्रहण करना भी कठिन है और प्रकाशित करना भी कठिन है । इस तरह प्रकाशित करने का अभ्यास न रहने से हम जो कुछ पढ़ते लिखते हैं, उस पर हमारा पूरा अधिकार नहीं होने पाता ।

हम केवल 'पास होने की कुञ्जी' रट रटाकर पढ़ने लिखने का काम निकाला करते हैं। यदि कहो कि आगे अवस्था पकने पर हम अपनी इस त्रुटि को पूरी कर सकेंगे तो यह ठीक नहीं! क्योंकि जिस उमर में मन बहुत पक जाता है, उस उमर का लाभ वास्तविक लाभ नहीं कहा जा सकता। कच्ची अवस्था में मन अज्ञात भावसे-बिना जाने अपना खाद्य खींचा करता है। उस समय वह ज्ञान और भाव को अपने रक्त मांस के साथ अच्छी तरह से मिलाकर अपने को सजीव और समर्थ बना रखता है। किन्तु हमारा यहीं बहुमूल्य समय शस्यशून्य, ऊसर और नीरस मैदान में मार दिया जाता है। इस रेतीले मैदान में हमारी बुद्धि का और स्वास्थ्य का कितना घात किया गया है, इसका कोई हिसाब नहीं।

यह हमें अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली से हमारा मन अपरिणत और अपरिपक्क रह जाता है, हमारी बुद्धि का यथेष्ट विकाश नहीं होने पाता। इससे हमारा पाण्डित्य बहुत ही थोड़ी दूर तक आगे बढ़ता है, हमारी उद्भावना शक्ति या आविष्कारक शक्ति अन्त तक नहीं पहुंचती और हमारी धारणा शक्ति में बलिष्ठता नहीं आती। इससे हमारी विचार हीनता और छात्रावस्था की लोलता बराबर बनी ही रहती है, हम नकल करते हैं, नज़ीरें खोजते हैं और जिन्हें बतलाते हैं कि ये हमारे स्वाधीन मत हैं वे या तो किसी रटन्त विद्या की प्रतिध्वनि स्वरूप होते हैं या बच्चों के खेल जैसे होते हैं। या तो हम मानसिक भीरुता के वश दूसरों के पद चिह्नों पर से चलते हैं या अज्ञता की धुन में ऊटपटाँग चलते हैं। किन्तु हम यह किसी तरह स्वीकार नहीं करते कि हमारी बुद्धि में एक तरह की स्वाभाविक कमज़ोरी और तुच्छता है। हमारी शिक्षा प्रणाली में जो इस तरह की बड़ी बड़ी त्रुटियां हैं उनके होते हुए भी हम जो थोड़े समय में अपना मस्तक ऊँचा उठा सके हैं यह हमारी निज की महिमा है-इसका यश शिक्षा-प्रणाली को नहीं मिल सकता।

एक बात और है। वह यह कि यदि शिक्षा देने के उद्देश्य के साथ साथ भीतर ही भीतर कोई दूसरा उद्देश्य भी मिला रहता है तो उससे उत्पात होता है और हानि होती है। आइरिश लोगों को शिक्षा देने के उद्देश्य के साथ उसमें जो उनको स्याकसन बनाने की भी चेष्टा मिली हुई थी उससे उनकी शिक्षा ही मिट्टी में मिल गई। हमारी गवर्नमेन्ट भी हमारी शिक्षा में अपना पोलिटिकल मतलब सिद्ध करने की चेष्टा किया करती है। इसका समझना कठिन नहीं, बहुत ही सरल है। शिक्षा के कार्य में भी देशी लोगों की स्वाधीनता हर तरह से कम करने का कारण यही है कि शिक्षा को वह शासन विभाग के भीतर कर लेना चाहती है। इसीलिए शिक्षाविभाग से अनभिज्ञ अनुभवहीन डाइरेक्टरों द्वारा परीक्षित, अनभिज्ञ लेखकों की लिखी हुई, अतिशय संकीर्ण, अतिशय दरिद्र और विकृत हिन्दी पाठ्य पुस्तकें प्रकाशित होती हैं और उन्हें पढ़कर ही हमारे बालकों को मनुष्य बनना पड़ता है। हमारे विद्यालयों की पुस्तकें इस ढंग से प्रस्तुत और निर्वाचित होती हैं कि उनसे निरपेक्ष और उदार ज्ञानचर्चा पोलिटिकल प्रयोजन की सिद्धि के आगे खण्डित हो जाती है।

केवल यही नहीं। डिसिप्लिन के यन्त्र से जितना पाक देने से बालक संयत होते हैं उसकी अपेक्षा अधिक पाक देने की चेष्टा की जाती है, इससे वे निःसत्व किये जाते हैं। बालकों में जो बालोचित चञ्चलता होती है वह स्वाभाविक और स्वास्थ्यकर होती है। इस बात को अङ्गरेज़ लोग कम से कम अपने देश के बालकों के सम्बन्ध में अच्छी तरह से समझते हैं। वे जानते हैं कि इस चञ्चलता को दमन किये बिना यदि [illegible] करके पुष्ट किया जाय तो एक

दिन यही चरित्र और बुद्धि को बलिष्ठ करता है। इस चञ्चलता को बिलकुल दलित कर देना ही कायरता बढ़ाने का प्रधान उपाय है। जो बालकों के सच्चे हितैषी हैं, वे मानते हैं कि इस चञ्चलता के उत्पन्न करने में प्रकृति का एक बहुत ही कल्याणकारी उद्देश्य है, वे इसे उपद्रव नहीं समझते। इसी लिए जो विद्वान् हैं वे इस बालोचित चञ्चलता के नाना प्रकार के उपद्रवों को स्नेह दृष्टि से देखते हैं और उन्हें दबा देने का प्रयत्न नहीं करते। इङ्गलैण्ड में लोगों के इस क्षमा गुण की–बालकों के उपद्रवों से अशान्त न होने की खूब ही चर्चा है अर्थात् यह गुण वहां बहुत अच्छा समझा जाता है–इतना कि हमें ज़रूरत से भी अधिक जान पड़ता है।

जो स्वयं सोच सकें, स्वयं अनुसंधान कर सकें और स्वयं काम कर सकें, इस प्रकार के मनुष्य तैयार करने की प्रणाली दूसरी है और जो दूसरों की हाँ में हाँ मिलाते रहें, दूसरों के विचारों का प्रतिवाद न कर सकें और केवल दूसरों के काम में योग देनेवाले हों, इस प्रकार के मनुष्य बनाने की प्रणाली दूसरी है। यह कहने की तो ज़रूरत ही नहीं कि हम स्वभाव से ही स्वजाति को स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए प्रस्तुत करने की इच्छा करेंगे; हमारी इस प्रकार की इच्छा अस्वाभाविक नहीं है। इङ्गलैण्ड के जब सुदिन थे, तब वह भी किसी जाति की इस स्वाभाविक इच्छा में व्याघात नहीं डालना चाहता था–भारत की शिक्षानीति के सम्बन्ध में लार्ड मेकाले ने जो मन्तव्य प्रकाशित किया था, वह इस बात का बड़ा भारी प्रमाण है*। परन्तु अब समय बदला है–इसी लिए शिक्षा के आदर्श के विषय में हमारी गवर्नमेन्ट के साथ स्वदेशभक्तों का विरोध खड़ा हो गया है। हम चाहते हैं उपरिलिखित पहिले ढंग की शिक्षा प्रणाली को और सरकार जारी रखना चाहती है, दूसरे ढंग की प्रणाली। परन्तु हम स्कूलों और कालेजों के द्वारा अपने देश में क्लीवता या अन्धकार को चिरस्थायी बनाये रखने के लिए किसी तरह राज़ी नहीं हो सकते। इसलिए अब समय आगया है कि शिक्षाप्रणाली एक बार ठीक ठीक निश्चित हो जाय और वह प्रजा के आधीन हो।

इस बात को हम नहीं मानते कि गवर्नमेन्ट द्वारा प्रतिष्ठित सेनेट या सिण्डिकेट में भारतवासियों के रहने से ही शिक्षा का कार्य हमारे हाथ आ गया। गवर्नमेन्ट का उत्तरदायित्व हमारे या सेनेट के इने गिने मेम्बरों के समक्ष न रह कर सारे देशवासियों के समक्ष रहना चाहिये। क्योंकि यदि हमारा लक्ष्य नौकरी के अधिकार के अतिरिक्त मनुष्यत्व के अधिकार के योग्य होने की ओर हो, तो इस विषय में सन्देह नहीं कि अब शिक्षाविषयक सम्पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करने की चेष्टा के दिन आ गये हैं। और यह अच्छी तरह से समझ रखना चाहिये कि यदि हम देशवासियों को बचपन से ही मनुष्य बनाने का सदुपाय न ढूँढ़ेंगे और इसके लिए हम स्वयं उद्योग न करेंगे, तो हमारा सब प्रकार से विनाश होगा–वास्तव में देखा जाय तो हम प्रतिदिन ही हीन होते जा रहे हैं; परन्तु इसके प्रतीकार की कुछ भी चेष्टा हम से नहीं होती, इसका विचार भी यथार्थ रूप से हमारे मन में उत्पन्न नहीं होता। जब तक हम बचपन से ही वास्तविक शिक्षा

---

*मेकाले का उद्देश्य इतना उदार न था, उसने अङ्गरेज़ी शिक्षा का केवल इसलिए प्रचार किया था क्योंकि वह समझता था कि संस्कृत और अरबी का कोई उपयोगी साहित्य है ही नहीं वास्तविक उद्देश्य इस शिक्षा से केवल उसका यह था कि देश से मूर्ति पूजा उठ जाय और लोग ईसा के अनुयायी होजांय। सं० म०

देने का प्रयत्न न करेंगे, तब तक यह अतिशय मूर्खता से घिरा हुआ निरुद्यम और चरित्र विकार और किसी भी उपाय से दूर नहीं होगा।

महर्षि टालसटाय ने रशिया की शिक्षानीति के सम्बन्ध में एक बार जो वाक्य कहे थे, उन्हें यहाँ उद्धृत करके हम इस लेख को समाप्त करते हैं:--

It seems to me that it is now specially important to do what is right quickly and persistently, not duly without asking permission from Government, but consciously avoiding its participation. The strength of the Government lies in the people's ignorance, and the Government knows this, and will therefore always oppose true enlightenment. It is time we realized that fact. And it is most undesirable to let the Government while it is spreading darkness, pretend to be busy with the enlightenment of the people. It is doing this now by means of all sorts of pseudo-educational establishment which it controls: Schools, High Schools, Universities, academies, and all kinds of committees and congresses. But good is good and enlightenment is enlightenment only, when it is quite good and quite enlightment and not when it is toned down to meet the requirements of Delyanof's or Dournovo's circulars. And I am extremely sorry when I see valuable, disinterested, and self sacrificing efforts spent unprofitable. It is strange to see good, wise people spending their sttesgth (strength) in a struggle against the Government, but carrying on this struggle on the basis of whatever laws the Government itself likes to make.

शिवराज-स्तोत्र ।

[लेखक—श्रीयुत रामचरित उपाध्याय ।

(१)

जो नहीं तू जन्म लेता छत्रपति ! इस देश में,
देख पड़ता तो नहीं कोई स्वदेशी वेश में।
वीर भारत का दुलारा पुत्र तू बलधाम है
शत्रुओं का ध्वंस करना एक तेरा काम है॥

(२)

छत्रपति ! शुभजन्म तेरा है हुआ जब से यहां,
सत्ययुग तब से हुआ कलियुग गया जाने कहां।
शंख-रव के साथ वेदोच्चार भी होने लगा,
धर्म-सेवा के लिए सोता हुआ भारत जगा॥

(३)

नाम जिसका है अमिट बस है वही सच्चा अमर,
प्रेम से शिवराज ! मेरी बात पर विश्वास कर।
भूमि जब तक है बनी तब तक सकल भू-भाग पर,
नाम तेरा भी अटल है देश का उद्धार कर॥

(४)

युद्ध को चलती शिवाजी ! आपकी जब वाहिनी,
आंख तब उठती फड़क रिपुनारियों की दाहिनी।
सूर्य भी मुख को छिपाता धूलि में आकाश में,
कोक-कुल रोता करुण स्वर से नदी के पास में॥

(५)

सूर्य तेरे तेज का ऐसा उदय है देश में,
ओज निज दिखला रहा है वीरता के वेश में।
रात में भी चमकता है मेघ में छिपता नहां,
राहु उसको ग्रस नहीं सकता शिवा मानोसही ॥

(६)

धर्म का जब से शिवा ! तूने मुकुट धारण किया,
बस तभी से देश का भी शीश ऊंचा कर दिया।
शत्रुओं के घर मुहर्रमही सदा सजने लगा,
देश भर में वेद का डंका अहो बजने लगा ॥

(७)

छत्रपति ! तेरे हयोंसी दौड़ काहू में नहां,
चित्त में अनुमान मेरे यह हुआ है सत्य ही।
क्योंकि तेरे सामने से शत्रु-सेना नित्यही,
भाग जाती है लवा सी अश्व हैं उसके सही ॥

(८)

छत्रपति ! तेरे अहित की नारियों की जो दशा,
है वुरी, उसको कहूं कैसे ? गला जाता फँसा।
पुष्प-शय्या से उतरती थीं नहीं जो भूलकर,
आज वेही सोरही हैं बीच बन में धूल पर ॥

(९)

छत्रपति ! तूने किया क्या ? सोच मन में तो सही,
रक्तवर्णा होगई रिपु-रक्त से भारत-मही।
और अरि की नारियों के अश्रु से नदियां सभी,
भानुजा सी होगई क्या क्या करेगा तू अभी ?

(१०)

छत्रपति सर्वज्ञ जग में सर्व दात [illegible] तुझे,
झूठही सब कहरहे हैं जान पड़ता है मुझे।
क्योंकि तुझ में भागने का ज्ञान रण से है नहीं,
और तूने दी नहीं खल को दया-भिक्षा कहीं ॥

(११)

कांपता है सिन्धु ही बाड़व कहीं उसमें नहीं,
भय उसे यह है हुआ बांधा न जाऊँ फिर कहीं।
क्योंकि तूभी राम सा करने लगा सब काम को,
और वह भी छत्रपति ! क्यों भूलता श्रीराम को ?॥

मिलन ।

[गल्प ।]

(१)

शचीश और वीरेन्द्र दोनों सहपाठी हैं ! कलकत्ते के एक किसी छात्रालय में बैठ कर दोनों बातचीत कर रहे थे।

शचीश उत्तेजित कण्ठ से बोला–"नहीं, यतीश का व्यवहार असह्य है,—इससे इसका कुछ न कुछ उपाय करना ही होगा।

"जो तुम्हारा बालसखा है उस पर क्षमा करो शचीश" ! शान्त स्वर में वीरेन्द्र ने कहा।

"क्षमा !–क्षमा करना हो तो तुम करो;–मैं तो क्षमा नहीं कर सकता। वह मेरा बालसखा है, इसी से मैं उस पर क्षमा नहीं कर सकता,"–शचीश के मुख का भाव कुछ कठोर हो गया।

वीरेन्द्र ने देखा शचीश झुँझला गया है। धीरे से उसने कहा,–"उसके मत से तुम्हारा मत यदि नहीं मिलता, तो क्या इतनेही से उसके साथ सब प्रकार का सम्पर्क तोड़ देना ठीक है ?"

"हमारे ही मत के साथ उसका मत नहीं मिलता ? ऐसा नहीं है ! बात यह है कि एक ओर सारे देश का मत और दूसरी ओर उसका मत है ! वह देश के मत की उपेक्षा करना चाहता है। जो देश को परित्याग कर सकता है देश मत के विरुद्ध चलने पर उद्यत है वह चाहे बालसखा या कुछ और सगा क्यों नहो उसके साथ में कुछ सम्पर्क नहीं रख सकता।

"तब भी"–कुंठित भाव से वीरेन्द्र कुछ कहना ही चाहता था ;–

बीच ही में बात काट कर शचीश ने कहा इसमें तब भी, "किन्तु" आदि की कुछ आवश्यकता नहीं। हम अपने जीवनपथ में "तब भी" "किन्तु," आदि को आने देना नहीं चाहते। हम परीक्षा कर देखना चाहते हैं कि सहज सरल भाव से जीवन कटता है या नहीं? वीरेन्द्र ने और कुछ नहीं कहा। दरवाज़े के समीप यतीश आरहा था, शचीश की बातचीत का शेष भाग उसे सुनाई दिया। वह हठात् कह बैठा। [illegible]

"सहज सरल भाव से मनुष्य का जीवन गति का निर्वाह होना कठिन है, सतीश! संसार की विचित्रता में भी भावप्रवीणता से मनुष्य"–

बात काट कर शचीश बोला–"मैं देशद्रोही के मुख से किसी प्रकार का उपदेश सुनना नहीं चाहता।" जङ्गले की ओर मुख फेर कर द्रुत कर्कश स्वर से शचीश यह बात कह कर चला गया!

"इतनी बात!–अच्छा देखा जायगा, देखे चक्र घूमता है या नहीं," कह कर यतीश भी कदम बढ़ाये चला गया।

वीरेन्द्र ने शचीश के मुख की ओर प्रीति भाव से देखा। एक प्रकार की तीव्र उपेक्षायुक्त मुसक्यान उसके होठों पर दिखाई देने लगी।

वीरेन्द्र ने ज़रा आगे बढ़ शचीश का हाथ पकड़ कर कहा,--"चलो शचीश, ज़रा घूम आवें।"

"चलो"--शचीश भी वीरेन्द्र के कमरे से बाहर हो गया। वास्तव में उन लोगों में कोई विरोध की बात न थी।

जब वे घूम फिर कर छात्रावास में आये, तब सन्ध्या हो चुकी थी। अब दोनों मित्र नाटक देखने जायगे। वीरेन्द्र की इच्छा थी, यतीश को भी आवाज़ देकर बुलाते चलें; परन्तु शचीश के भय से वह बुला न सका। वे तीनों सदा साथ साथ अभिनय देखने जाया करते थे। आज पहिला दिन है कि उस नियम का व्यतिक्रम होना चाहता है। रास्ते में वीरेन्द्र ने एक बार धीरे से कहा,–"यतीश को छोड़ आये हैं, अच्छा नहीं लगता!"

भावप्रवीण शचीश की जिह्वा से बड़ी कठोर बात निकलाही चाहती थी,–उस बात को दबा कर उसने कहा,—"झट् पट् चलो, नहीं तो टिकट न मिलेगा।"

नाट्यशाला में दृश्य पर दृश्य उद्घाटित होने लगे। नाना प्रकार की घटनाओं का समावेश और अभिनय चातुर्य, दर्शकगणों में तड़ित्प्रवाह की सृष्टि कर रहा था। शचीश मूठी बांध एकाग्र मन हो विस्फारित नेत्रों से अभिनय देख रहा था। उसके भावप्रवीण तरुण हृदय में एक अनन्त अभूतपूर्व उत्तेजना जागरित हो उठी!

अभिनय समाप्त हुआ,–नायक के दुर्भाग्य से शचीश का हृदय वेदनाप्लुत हो उठा एक करुणापूर्ण रागिनी उसकी मर्मवीणा से झंकृत हो उठी।

(२)

प्रातःकाल वीरेन्द्र ने शचीश को जगा कर, कहा,–"यतीश चला गया है।"

नींद टूटने के साथ ही वीरेन्द्र से इस बात को सुनकर शचीश व्यथित हुआ। शचीश ने कहा,–"कहाँ गया है?"

"लो पढ़ो," वीरेन्द्र ने एक छोटा सा कागज़ शचीश के हाथ में दे दिया।

चिठ्ठी में लिखा था,–शचीश के साथ झगड़ा करके हम एक छात्रावास में नहीं रह सकते, इसलिए आज ही जाते हैं।

शचीश चिट्ठी पढ़कर सोचने लगा, आज तक कितनी ही बार विवाद हुआ है, परन्तु ऐसा तो कभी नहीं हुआ। यतीश के लिए उसका हृदय [illegible] हो उठा! उस समय कल-

कत्ते के हाट बाट में कामकाजियों का कोलाहल मच रहा था,--वह वीरेन्द्र की ओर देख कर बोला,--"तो हम क्या करें ?"

इस बात के कहने के समय पहले जो कोमलता थी वह अन्त में न रह गई !

दुःखित वीरेन्द्र चला गया । शचीश ने मन ही मन में कहा,--"वीरेन्द्र क्यों तुम हम लोगों के विवाद में मिलनसूत्र होना चाहते हो ?"

दूसरे दिन के संवादपत्र में सम्पादकीय मन्तव्य के साथ एक बिना नाम का पत्र प्रकाशित हुआ । पत्र में एक विलायती द्रव्य व्यवहार करने के अपराध में यतीशचन्द्र को छात्रावास से बाहर निकालने का अति रञ्जित, वृत्तान्त छपा था और उसकी सब टिप्पणी में सम्पादक महाशय ने विद्यार्थियों को इस छात्रावास के निवासी विद्यार्थियों के अनुकरण करने का उपदेश देकर अपनी ज्वालामयी लेखनी को विश्राम दिया था ।

यह स्वदेशी की प्रथम अवस्था की बात है। बङ्गाल देश उस समय स्वदेशी के दुन्दुभिनिनाद से संक्षुब्ध हो रहा था ।

दूसरे दिन " इङ्गलिशमैन " ने लिखा कि,-यतीशचन्द्र को विद्यार्थी लोग अन्याय से पीड़ित कर रहे हैं;--यतीशचन्द्र एक सुशिक्षित मनुष्य है, और वह एक उच्च कुल का बालक है, गवर्नमेन्ट यदि इस व्यापार की उपेक्षा करेगी तो विद्यार्थियों की अन्यायस्पर्धा और भी बढ़ जायगी । इससे यतीशचन्द्र जिसमें भविष्यत काल में और लाञ्छित न होने पावे, इसलिए गवर्नमेन्ट को शीघ्रही, कोई उपाय विधान करना चाहिये ।

जिस नवीन छात्रावास में यतीश गया था, वहां भी पहले तो कानाफूसी हुई, और फिर बड़े ज़ोर शोर के साथ तीव्र वितंडावाद होने लगा । अनेक प्रकार के तर्क-वितर्क के बाद उस छात्रावास के मैनेजर-बाबू आकर यतीश से कहने लगे,-"यतीश-बाबू ! मैं आप से अत्यन्त दुःख के साथ कुछ कहने के लिए बाध्य हुआ हूं ।"-

"भूमिका बांधना निष्प्रयोजन है, आपको जो कहना हो खुलासा कह दीजिये "- ज़रा विरक्तिपूर्ण स्वर से यतीश ने कहा ।

" बोर्डिङ्गहाउस" के मेम्बर-लोग आपके यहां ठहरने के सम्बन्ध में "आपत्ति उठा रहे हैं ?"

"बहुत ठीक है, मैं अन्यत्र कहीं सीट खोज लेता हूं-किन्तु मुझे अन्यत्र स्थान खोजने के लिए दो दिन का अवसर दीजिये । यह तो आप भली भांति समझ सकते हैं कि एक व्यर्थ के वितंडावाद में पड़कर मेरे सिर पर आप लोगों ने जो कलङ्क का टीका दिया है, उससे अन्यत्र कहीं भी सहज में मुझे जगह न मिल सकेगी ।"-यतीश इन सब बातों को जल्दी २ कह गया । उस समय उसके मस्तिष्क में एक नवीन कल्पना उठ रही थी ।

"मैं मैनेजर बाबू से इस बात को पूंछ कर आपको उत्तर दूंगा । "-गले का बटन सुधारते हुए जिधर लड़कों का झुण्ड खेलरहा था-मैनेजर बाबू उसी ओर चले गये ।

यतीश समझ गया था कि, अवसर मिलना कठिन है; उसने झट अपना ट्रङ्क उठालिया ।

मैनेजर बाबू प्रायः पन्द्रह मिनट के बाद फिर घूमकर आये;-यतीश ने एक छोटे शीशे के पास ट्रङ्क रखते २ मैनेजर बाबू से पूँछा "कहिये, क्या हुआ ?"-

मैनेजर बाबू कुछ उदासीन भाव से बोले यतीश बाबू !"-

" ओः ! मालूम होता है कि आप अवसर नहीं दे सकते !-" तो ठीक है-मैं अभी जाता हूं, मेरा हिसाब देख लीजिये । "

मैनेजर बाबू हिसाब देखने चले गये । यतीश ने वहां के नौकर को बुलाकर उसके हाथ पर एक अठन्नी रखदी; बोला " तुमको इनाम देते हैं, शीघ्र एक मोटिया बुला लाओ " नौकर तुरन्त बाहर चला गया !

बोर्डिङ्गहाउस का हिसाब चुकता करके यतीश ने कहा,- " मैंने दो दिन यहां टिक कर आपको बड़ा कष्ट दिया, क्षमा करियेगा 'नमस्कार" यतीश कमरे से निकलकर हाथ में ट्रङ्क लटकाये हुए हाते के बाहर निकल आया ।

यतीश ने इसबार किसी दूसरे छात्रावास में जाना उचित नहीं समझा । छात्रावास में कहीं भी उनको रहने के लिए जगह मिलना कठिन था ।

बहुत देर तक स्थान की खोज में इधर उधर घूमते रहने के बाद कहीं टिकने की सुविधा न देखाई देने पर लाचार हो वह एक होटल के पास किराये पर मकान भाड़ा लेकर रहने लगा ।

सम्वादपत्रों में इस विषय पर भी लेख प्रकाशित होने लगे जिनमें यतीश के वहां से निकालेजाने का हाल सविस्तर वर्णित होता था । वीरेन्द्र बाबू एक बङ्गला साप्ताहिक पत्र हाथ में लिए हुए आकर शचीश से बोले-"यह देखो, यतीश वहां भी न रह सका ।"

"तो, हम क्या कर सकते हैं," शचीश के स्वर में आज वह रूढ़भाव न था । यतीश,-वही अपना बालसखा यतीश ।

वीरेन्द्र ने कहा,--"वह तो ऐसा न था, किन्तु ये सब संबादपत्र उसको ऐसा वैसा कर डालेंगे ।

शचीश ने इसपर कुछ भी नहीं कहा । उसके अन्तःकरण में यतीश के चले जाने से मानो उस एक प्रकार की वेदना आरम्भ हुई थी । वीरेन्द्र की बात सुनते ही मानो उस वेदनायुक्त अन्तःकरण पर आघात पड़ा, इस आघात से वह और भी चञ्चल और सचेतन हो उठा । उसके अन्तःकरण से एक दीर्घ निश्वास बाहर निकला ही चाहता था, कि वह उस निश्वास को दबा कर बोला,-मन में आता है, विधाता के अंगुलि संकेत में ही मानो हम लोगों की जीवन-गति विच्छिन्न होती है,-इस बात को हम कैसे रोक सकते हैं, वीरेन्द्र ?

वीरेन्द्र ने कुछ उत्तर न दिया !

शचीश सोचता था,-यतीश ने कितना बड़ा अपराध किया है ? शचीश के साथ उसकी सम्मति नहीं मिलती थी । यतीश का कथन था, कि विदेशीय द्रव्य का एक बार ही परित्याग करने से हमारा काम नहीं चल सकता । हम लोगों ने बाल्यावस्था से ही कुछ ऐसी आदत बिगाड़ ली है कि जिससे आवश्यकता की मात्रा बहुत बढ़ गई है ;-अभ्यास को संयत करने की सामर्थ्य हमारे में इतनी कम है कि इस अभाव की पूर्ति का ठीक २ बन्दोबस्त जब तक देश की ओर से नहीं होता तब तक हम विदेशीय द्रव्य को लहर में पड़ कर एक बार ही त्याग नहीं कर सकते । यदि त्याग करने जाते हैं, तो थोड़े ही दिनों में स्पष्टतया संसार को यह विदित हो जायगा कि हम अपनी प्रतिज्ञा का पालन नहीं कर सकते । यतीश अपने मत की पुष्टि के लिए कभी २ दो, एक विदेशीय वस्तु ख़रीद लाता और उसे खुले तौर पर व्यवहार करता था ।

शचीश दूरदर्शी था ;- इससे नवीन जागरणोत्सव की चंचलता में वह अपनी समस्त शक्ति का प्रयोग करके केवल इतना ही प्रमाणित करना चाहता था कि देश हमारे सब अभावों को एकही दिन में पूरा नहीं कर सकता, यह सत्य है; किन्तु हम लोग यदि

अपने समस्त अभावों की पूर्ति के लिए बारंबार देश ही के आगे हाथ फैलाते रहेंगे,-तो यह निश्चय है कि देश शीघ्रही हमारे अभाव को पूर्ण करेगा। किन्तु जब तक देश हमको न देगा तब तक हम विदेशीय वस्तु नहीं लेंगे। निष्ठा के साथ शक्ति को सम्मिलित करके हम लोग स्वयं अपने अभावों को अत्यन्त सरलता से पूर्ण कर सकेंगे।

शचीश और यतीश के मतभेद का यही एक मूल था। इसी के कारण इतना विवाद बढ़ गया था यह बात शचीश के ध्यान में भी कभी नहीं आई थी कि उनका यह परस्पर का विवाद इतना उग्र रूप धारण करके संसार में सर्वव्यापी हो जायगा!

(३)

यतीश के कई दिन होटल में निरुद्विग्न व्यतीत हुए। बीच में एक दिन "इङ्गलिशमैन" का एक सम्वाददाता उससे मिला और उसने कई बातें पूँछीं।

यतीश ने देखा, अभी व्यापार मन्द नहीं हुआ। अङ्गरेज़ी और बङ्गला समाचारपत्रवालों की दया से उसका नाम देश विख्यात हो चुका था,—और उधर लड़कों की विद्रूपवाण वर्षा की चोट से कालेज तक न जा सकने का जुगाड देख पड़ता था! वह अब किस मार्ग का अनुसरण करेगा। यह बात मालूम नहीं पड़ती। ऐसे समय में एक दिन एक कोई अपरिचित भले आदमी ने आकर उनसे भेंट की। वे एक नामज़द सरकारी उपाधिधारी थे। वे यतीश से उसके नौकरी दिलाने की प्रतिज्ञा करके चले गये।

(४)

सोमवार को निकलनेवाले एक समाचार-पत्र में प्रकाशित हुआ,—"मुझे विश्वस्त सूत्र से पता लगा है, कि'—यतीश बाबू गवर्नमेण्ट की ओर से पुलिस इनिस्पेकृर के स्थान पर मनोनीत किये गये हैं। सम्भव है कि वे कुछ दिन शिक्षानवीसी करेंगे, फिर यथा निर्दिष्ट स्थान पर नियुक्त होंगे। यतीश बाबू एक सुशिक्षित और उच्च-वंशोद्भव राजभक्त पुरुष हैं। इससे गवर्नमेण्ट ने उनके प्रति अपनी गुणग्राहकता का परिचय दिया है।" इत्यादि २।

बङ्गला समाचार-पत्रवालों ने लिखा कि,-"गवर्नमेण्ट देशद्रोही को आश्रय देती है; यतीशचन्द्र अपने कुल में कलङ्क पैदा हुआ है। समाज को उचित है कि उसे जाति से बाहर निकाल दे और नापित द्वारा जाति भर में इस बात की सूचना करादे कि कोई उसकी बावड़ी का पानी न पिये," इत्यादि।

उसके बाद यतीश यथाविहित शिक्षानवीसी करने लगा और अङ्गरेज़ी तथा बङ्गला पत्रों के सम्पादक बरीसाल के कान्फरेंस भङ्ग होने के व्यापार पर बड़ी बड़ी आलोचना कर सम्वाद-पत्रों के पृष्ठ के पृष्ठ रङ्गने लगे।

(५)

बङ्गाल प्रान्त उस समय घोर अन्याय से आप्लावित था; एक दिन प्रातःकाल के समय शचीश एक बङ्गालीभाषा का समाचार पत्र हाथ में लिए हुए अत्यन्त व्यस्तभाव से वीरेन्द्र के वासस्थान पर आकर बोला, कि,--सुनते हो। "जातीय विद्यालय" स्थापित होगा, सब ठीकठाक हो चुका है; इस बार हम लोग यूनीवर्सिटी को तोड़कर बाहर निकलेंगे! देश की शिक्षा यदि देश अपने हाथ में न लेगा तो प्राकृतिक उन्नति का साधन किसी मत से हो ही नहीं सकता; इस बार हम लोग उचित मार्ग का अनुसरण कर रहे हैं।"

वीरेन्द्र ने अपने शान्त नेत्रों को विस्फारित करके शचीश के मुख की ओर देखा, तदनन्तर

कुछ इधर उधर की बातें करके कहने लगा,--"अन्त भले का सब भला।"

शचीश के उत्साह पर माना आघात पड़ा; उसने कुछ रुष्ट होकर कहा,--"इसका अर्थ क्या है ?"

"इसका अर्थ और विशेष कुछ नहीं शचीश हम लोगों में जो इतना अभाव था, उसको एक वर्ष पहले हम लोगों ने भलीभांति समझने की चेष्टा नहीं की। आज सहसा एक साथ ही सब अभावों की उपलब्धि करने के समय शङ्का होती है कि अनुभव की अस्थिरता में पड़ कर कहीं अपने मुख्य कर्त्तव्य का न भूल जांय हमारी शक्ति भविष्य में कहां तक स्थिर भाव से कार्य करने में समर्थ है इसको विचार कर देखना होगा।

बात काट कर शचीश ने कहा, "तुम अपनी युक्ति रख छोड़ो, जिस स्थान में घोर अन्धकार छाया हुआ था, तथा प्रतिपद निक्षेप में सतर्कता शोभा देती थी, वहां जब दिन के समान उजेला देख पड़ता है तब इस प्रकार के विचार करने की कोई भी आवश्यकता नहीं है। काम करनेवाले के साथ में कार्य करने की शक्ति बढ़ती है। प्रातःकाल आँगन में झाड़ू लगाने के साथ ही साथ कार्य का आरम्भ होता है; दिन चढ़ने पर, देव सेवा और अतिथि सेवा भी गृहस्थ की दैनिककार्यतालिका में आ पड़ती है।--दिन भर में कोई भी ऐसा समय नहीं कि जब मनुष्य को अपने सब कामों से विश्राम मिले।"

"इस विचार से देखा जाय तो शचीश, आँगन में झाड़ू देना भी एक प्रकार का काम है, अथवा यों कहना चाहिये कि 'वही सब से पहिला काम है।"

"सर्व प्रथम हो सकता है, और सर्वप्रधान भी।"

"सो ठीक ही है। हमारे इस जातीय जीवन के उन्मेष के दिन, जीवन की इस उषा में क्या जातीय आँगन को झाड़ू देकर परिष्कृत कर लेने की आवश्यकता नहीं है? जिस जड़ता ने चिरकाल से हमारा आश्रय पकड़ रखा है उसको दूर करना होगा।"

वीरेन्द्र की बातें शचीश को असह्य मालूम हुईं। उसने उग्र कण्ठ से कहा, "तो क्या इस बोर्डिङ्ग के हाते के अन्दर बैठे २ दूर करना होगा ?"

वीरेन्द्र ने शचीश की धैर्यच्युति को देखकर हँस दिया, और कहा "नहीं शचीश ! मैं कहता हूं कि, देश ने आँगन झाड़ना, देवार्चन, और अतिथि सेवा, तीनों काम प्रातःकाल सूर्योदय के पहिले ही आरम्भ कर दिया है।"

"सो तो होना ही है। बड़े गृहस्थों के घर में बहुत से लोग रहते हैं, इससे सब काम एक साथ कर सकते हैं।"

किन्तु काम को शृङ्खलाबद्ध तो करना ही होगा, या नहीं ?

"तुम क्या कहना चाहते हो ? काम का गला घोटकर केवल शृङ्खला बढ़ा देने से देखा जाता है कि कभी २ काम समय तक पूरा ही नहीं होता।" शचीश के मुख और नेत्रों पर एक प्रकार के विपुल उत्साह की झलक देख पड़ने लगी ! उसका चेहरा दमक उठा !

जिसके अन्तःकरण में इतना बड़ा उत्साह हो, उसके साथ तर्क वितर्क करना अच्छा नहीं, वीरेन्द्र इस बात को सोच कर चुपरहे।

खुली हुई जंगले की खिड़की से देख पड़ा, कि, रङ्गीन साफा बांधे हुए शिक्षित बालकों का समूह स्वदेशी की भिक्षा मांगने के लिए बाहर निकला है। तरुण सूर्य की कोमल दीप्ति उनके उत्साह चञ्चल मुखपर एक प्रकार के अनिर्व-

चनीय पुलकोच्छ्वास की सृष्टि-रचना कर रही है।

शचीश और वीरेन्द्र उठ खड़े हुए। और बराम्दे से नीचे उतर कर बालकों को अभिवादन करके उनकी छोटीसी सन्दूकची में दोनों ने दो रुपया छोड़ दिया। स्वदेशसेवक बालकों का दल जातीय गीत गान करता हुआ आगे बढ़ा।

वीरेन्द्र ने शचीश का हाथ पकड़ कर कहा, चलो ऊपर चलें- कुछ खालो तब जाना।"- उत्तर की अपेक्षा न करके वीरेन्द्र शचीश को खीच ही लेगया।

सन्ध्या होने के अनन्तर शचीश बड़े वेग से आकर कहने लगा, वीरु, कालेज छोड़ आये। सन्तोष से मेरा हृदय परिपूर्ण है। इससे अब तुम मुझ से कुछ भी मत कहना भाई"

यह उत्साह, यह तरङ्ग क्रमशः वीरेन्द्र को भी स्पर्श कर रही थी,-किन्तु शचीश एक बड़े भारी ज़िमींदार का बालक है, वह कालेज छोड़ सकता है- किन्तु वीरेन्द्र ? हाय, वीरेन्द्र की दशा अकथनीय है! एक दुःखी परिवार के अनेक प्राणी भविष्य पोषण के निमित्त उसी की ओर लालायित दृष्टि से देख रहे हैं।

अभाव की गोद में उत्साह मर जाता है उसकी प्रतिभा नेत्रों के आंसू में देख पड़ने लगती है- इस बात की सत्यता को वीरेन्द्र ने अपने जीवन में भली भाँति अनुभव किया था!

वीरेन्द्र ने शचीश को अभिवन्दना की।

शचीश को वीरेन्द्र की अवस्था का हाल भलीभांति मालूम था; इससे उसका कालेज छोड़ने का परामर्श देना इसको उचित न जान पड़ता था।

उसके बाद दोनों मित्रों में स्वदेशी आन्दोलन के विषय पर बड़ी देर तक तर्क वितर्क होता रहा।

यह तर्क वितर्क मानों उन लोगों का आज कल नित्य का व्यवहार होरहा था। शचीश के उत्साह ने उसे स्थिर न रहने दिया।

कालेज छोड़ने के बाद किसी सुनिर्दिष्ट काम में अपने को लिप्त रखने की इच्छा उसके अन्तःकरण में जाग उठी।

कुछ दिनों तक शचीश इसी सोच विचार में लगे रहे कि इस इच्छा को किस प्रकार सार्थक करें। इतने में उसके पिता के यहां से चिट्ठी आई उसमें पिता ने घर पर आने के लिए लिखा था। यद्यपि उसकी इच्छा घर जाने की न थी; किन्तु पिता ने जब स्वयं बुलाया है, तब देरी करना संभव न था, कलकत्ते के उत्साह स्रोत और कर्म तरङ्ग को पीछे रखकर शचीश एक दिन सन्ध्या के समय रेलगाड़ी पर बैठ मधुपुर की ओर रवाना होगया।

गौरी शङ्कर बाबू ने शचीश से जो बात की उससे उसके विस्मय की सीमा न रह गई। शचीश पिता के विचारों से परिचित था। गौरीशंकर बाबू उसकी कल्पना के प्रकाश करने के पहले हर तरह से उसकी परीक्षा करना चाहते थे। शचीश ने यह जान लिया कि पिता ने उसकी कल्पना को सार्थकता प्रदान करने के मुहूर्त में ही उसको बुलवाया है। शचीश अपने चित्त के उत्साह में फूला नहीं समाता था। इतने दिन के बाद वह देश की भलाई के लिए कुछ कर सकेगा, इस कल्पना के आनन्द में उसका कुछ रङ्ग ही बदल गया।

एक पार्सी सज्जन से गौरी शङ्कर बाबू की घनिष्ट मित्रता थी। देश की यथार्थ अवस्था का ये महाशय विशेष यत्न के साथ पर्यवेक्षण करते थे।

देश माता के लिए स्थाई सेवा प्रदान की आयोजना कर सम्पत्ति की सार्थकता सम्पादन करने का प्रलोभन- क्रमशः दोनों महाशयों

के हृदय में असंवरणीय रूप से बढ़ने लगा। कल्पना को सार्थकता प्रदान करने के विषय में जब कुछ भी द्विविधा न रह गई, तब गौरीशङ्कर बाबू ने शचीश को कलकत्ते से बुलाभेजा।

तीन महीने की अक्लान्त चेष्टा के बाद कलकत्ते के पास गौरीशंकर बाबू ने कपड़ा बुनने का कारखाना स्थापित करना निश्चित किया।

कपड़ा बुनने की कल स्थापित करना ही गौरीशङ्कर बाबू का अभीष्ट था किन्तु जब शचीश ने आंखों में आंसू भरकर कहा,– "प्रिय पिताजी, स्वदेशी जुलाहों का तो कोई उपाय ही नहीं हुआ। तब गौरीशंकर बाबू कुछ देर तक चुप रह कर कहने लगे,–"अच्छा तो फिर राय क्या है ?

शचीश ने कहा,–"देश के कुछ कपड़ा बुननेवाले जुलाहों को इकट्ठा करके एक कपड़ा बुनने का कारखाना स्थापित किया जाय और इस आयोजन को बहुत विस्तृत न करके अन्त में एक सौ जुलाहों का ठीक प्रबन्ध होजाने पर धीरे २ विस्तार बढ़ाते २ कपड़े की कल स्थापित की जाय।"

गौरीशंकर बाबू ने इस प्रस्ताव को स्वीकार करलिया। "कल" स्थापित करने के लिए बहुत समय की आवश्यकता है, वह काम धीरे २ हो सकेगा; आपाततः देश के जुलाहों को इकट्ठा करके कपड़ा बुनने का कारखाना स्थापित करना ही उनके मन में सुसङ्गत प्रतीत हुआ।

उनकी अविरल खटाखट के साथ जब पहले पहल कपड़ा बुनकर तयार हुआ उस समय शचीश का अन्तःकरण आनन्द के उच्छ्वास से अह्लादित हो उठा। उसने इस प्रथम वस्त्र-खण्ड को मस्तक पर धारण कर लिया। मानो उसके आनत मस्तक पर जननी जन्म भूमि के पवित्र आशीर्वाद की वर्षा होरही हो; इस प्रकार की कल्पना के गौरव और सन्तोष ने उसको अत्यन्त निविड़भाव से परिवेष्ठित कर रखा था।

पिता आफ़िस में बैठे हुए हिसाब जांचते थे, शचीश उस वस्त्र-खण्ड को शिर में लपेटे हुए उनके सामने जा उपस्थित हुआ– "गौरीशङ्कर बाबू हिसाब के रजिस्टर पर से निगाह उठा कर पुत्र के मुख की ओर देखने लगे। तीन महीने के अक्लान्त परिश्रम का प्रथम फल आज उन्होंने अपने पुत्र के मस्तक पर देखा। इससे वे अत्यन्त ही सुखी हुए।

वे देश को एक विराट्पालिनी मातृ शक्ति के रूप में ही देखते थे। माता की उस जगद्धात्री मूर्ति ने मनको मुग्ध कर रखा था।

(७)

प्रातःकाल।

यतीश अपने आफिस के बराम्दे में टहल रहा था। तरुण सूर्य की सुवर्णमयी किरणरेखा नवीन पल्लवों पर पड़ रही थी इसी कारण से तुषारसिक्त पल्लवों की शोभा और भी रमणीय देख पड़ती थी।

कल रात्रि में सोते हुए उसने जो स्वप्न देखा था उसी स्वप्न की स्मृति उसके हृदय में अभूतपूर्व वेदना की सृष्टि रच रही थी। स्वप्न को वह जितना ही भूलना चाहता था,– उतनी ही वेदना बढ़ती जाती थी। अनेक वर्षों के बाद उसने अपनी माता को स्वप्न में देखा था। उसी ममता और करुणा से आर्द्र हृदय होने के कारण उसकी आंखों से स्नेहमृतमयी अश्रुधारा प्रवाहित हो रही है। उसका सर्वाङ्ग विमल ज्योति से उद्भासित होरहा है!

स्वप्न में यतीश बड़ी व्याकुलता के साथ माता की मूर्ति की ओर बढ़कर चाहता था कि

आज माता के चरण स्पर्श कर धन्य होऊँ, किन्तु मूर्ति धीरे २ वहां से पीछे को हट चली।

श्यामल क्षेत्र को आलोकित करके सोने का कमल फूला है मानो उस क्षेत्र में वही दीपक जलता हो। पुष्पास्तृत उपत्यका को पैर की आवाज़ से मुखरित करता और कितने ही शान्त तपोवन की नीरवता भङ्ग करता हुआ यतीशचन्द्र चला जा रहा है। उपल खण्डों की बाधा को वह मानता नहीं; तब भी स्वप्न-दृष्ट माता की मूर्ति के साथ उसका दूरत्व समान ही रह गया! एक शिला खण्ड पर वह हताश होकर बैठ गया, माता की पवित्र मूर्ति उस समय भी उसकी ओर वैसी ही स्नेहस्रावी दृष्टि से देख रही है!

“मा--मा!”—कह कर वह पुकारना ही चाहता था किन्तु वह ध्वनि उसके कण्ठ ही में अनुच्चरित रह गई! वह प्राणपण से चेष्टा करता था और चाहता था कि मैं पुकारूँ, “मा-मा!”

इसके बाद यतीश ने अनिमिष नेत्र से देखते २ देखा, कि गिरि, उपत्यका, वन, उपवन, श्यामल क्षेत्र, से वह चला आया है और उसी के शरीर में धीरे २ वह माता की मूर्ति लीन हो रही है।

आज प्रातःकाल स्वप्न की कल्पना और मोहमयी सृष्टि की अभाव दशा में भी, यतीश के मन में वैसा ही भाव उत्पन्न हो रहा था।

चिन्ता की तरङ्गों ने यतीश को एक दम अस्थिर कर दिया; आज प्रभात की अरुण कान्ति में उसके हृदय की दीनता एक प्रकार के असम्वरणीय रूप को धारण कर रही है। हृदय की अस्थिरता के कारण वह और भी जल्दी २ टहलने लगा।

ठीक उसी समय एक नौकर उसके पास आकर खड़ा हुआ, और उसने यतीश के हाथ में एक सरकारी लिफाफा दे दिया। अन्यमनस्क यतीश ने लिफाफा खोला और फिर भीतर के कागज़ को बाहर निकाल कर पढ़ा।

अनेक प्रकार के चक्कर में पड़कर उसने जिस कर्म जीवन को स्वीकार कर लिया है, यह लिपि, उस जीवन के ही एक कर्तव्य को उसके सन्मुख लाकर उपस्थित करती है।

(८)

दिन भर का काम खतम होने पर गौरी शङ्कर बाबू अपने आफिस के सामनेवाले छोटे बरामदे में आकर खड़े हुए।

आकाश में गोधूली देखाई नहीं देती। चिमनी के मुख से निकले हुए कृष्णवर्ण धूम-पुञ्ज ने आकाश की सन्ध्याकालीन उज्ज्वलता और कोमलता को नष्ट कर दिया है।

तब भी पश्चिम आकाश में गेरू के रङ्गवाले बादल देखाई देते थे। सूर्यास्त के साथ ही साथ पश्चिम आकाश में मेघ मण्डल और भी घना होता जाता था।

गौरी शङ्कर बाबू का नियम था कि प्रति दिन काम खतम होने पर वे बाहर आ सूर्यास्त के समय लीला चञ्चल-खंडमेघों की क्रीड़ा देखते थे, इसी समय शचीश ने व्यस्तभाव से आफिस के द्वार पर आकर पुकारा--“ पिता जी ”।

गौरीशङ्कर बाबू के चिन्ता स्रोत में बाधा पड़ी,--उन्होंने फिर कर उत्तर दिया--“ क्या बेटा ”।

शचीश के मुखपर एक प्रकार की उत्कण्ठा का चिन्ह देख पड़ता था,--उसने व्यस्तकण्ठ से कहा, “ पिता जी, पुलिस ने कारखाने को घेर लिया है, जल्दी से इधर आइये।

“ सो क्यों ” शचीश ?—“ गौरीशङ्कर बाबू झट से कारखाने की ओर गये--उन्होंने देखा, कि पूर्व तरफ की सीढ़ी पर से चढ़कर दो यूरोपियन ऊपर आ रहे हैं। ”

गौरीशङ्कर बाबू आगे बढ़ आये--एक यूरोपियन ने पूँछा--" गौरीशङ्कर बाबू आपही हैं ?

" हाँ, कहिये आप लोग क्या चाहते हैं "

आये हुए यूरोपियन ने अपने पाकेट से एक कागज़ का टुकड़ा निकाला--गौरीशङ्कर बाबू ने देखा, एक " सच्चा वारएट "। गौरी शङ्कर बाबू को विस्मित होने का अवसर भी न था। उन्होंने फिर कर शचीश से कहा,--" नीचे जाओ, शचीश, जिसमें अन्य लोग किसी बात से भयभीत न हों " शचीश चला गया।

पुलिस के सिपाही जाकर गांव के कई भले आदमियों को बुला लाये।

वीरेन्द्र भी उस दिन सन्ध्या के समय कारखाना देखने और शचीश से मुलाकात करने को आया था। शचीश ने उसको ऊपर भेज दिया।

वीरेन्द्र ने ऊपर आते ही दोनों यूरोपियनों से कहा, " खानातलाशी आरम्भ करने के पूर्व हम लोग आप के कपड़ों की परीक्षा करना चाहते हैं।"

उन्होंने सन्तुष्ट चित्त से स्वीकार किया,--खुले हुए आँगन में वे लोग चले आये। जो लोग कारखाने के भीतर अनुसन्धान करेंगे, वीरेन्द्र ने उनकी तलाशी ली।

सीढ़ी के पास एक और पुलिस कर्मचारी खड़ा था। वीरेन्द्र उसकी ओर भी बढ़ा और बोला,--" आपकी भी तलाशी लूगा। "

पुलिस कर्मचारी ने कुण्ठित दृष्टि से वीरेन्द्र के मुख की ओर देखा और साथ ही उसने निगाह नीची कर ली ; हाथ में एक छोटी सी बेंत की छड़ी थी, अन्य मनस्क भाव से उसने अपना चपरास का पट्टा खोलकर खूंटी पर लटकाया।

वीरेन्द्र ने पहचान लिया, वह पुलिस इनिस्पेक्टर की वर्दी पहिने हुए उसका बालसखा--सतीर्थ यतीश था।

वीरेन्द्र के कण्ठ से अकस्मात एक शब्द निकल पड़ा, " यतीश ! " यतीश का हृत्पिण्ड उसके हृदय पटल में लुण्ठित हो रहा था।

वीरेन्द्र शुद्ध भाव से यतीश का सिर से पैर तक निरीक्षण कर रहा था। उसने उसे तलाशी नहीं दिया और जल्दी २ वहाँ से बाहर चला गया।

उसके बाद यथा रीति खानातलाशी होने लगी। यतीश भीतर नहीं गया; बाहर ही रहा।

खानातलाशी लेने के बाद कुछ कागज पत्र, कारखाने की मशीन के कई एक टूटे फूटे कल पुर्जे, और दो शीशे से मढ़ी हुई तसबीरें, लेकर पुलिस का दल चला गया। एक फिहरिस्त उन सब चीज़ों की गौरीशङ्कर बाबू को मिली।

गौरीशङ्कर बाबू को पता लगाने से मालूम हुआ, कि पुलिस कर्मचारियों को ऐसी खबर मिली है कि, बहुत से उजड्ड जुलाहों के साथ उन्होंने यह कारखाना खोला है। दिन में कारखाने का काम होता है, और जल्दी से धन बढ़ाने के लिए रात में वे ऐसे कारबार करते हैं, कि, जिनका नाम लेना भी किसी सभ्य पुरुष के लिए लज्जाजनक है।

गौरीशङ्कर बाबू ने सब बातों को सुनकर एक गाढ़ी सांस खींची; और उसके बाद हाथ जोड़ आंख मूंद कर कहने लगे,

"त्वयाहृषीकेष हृदिस्थितेन
यथानियुक्तोस्मि तथा करोमि।-"

वे फल की आकाँक्षा से कोई भी काम नहीं करते। हृदयस्थित भगवान जो कराते हैं, गौरीशङ्कर प्रसन्न चित्त से वही करने के लिए प्रस्तुत रहते हैं।

विपद यदि आपड़े, तो वे उसकी तनिक भी चिन्ता नहीं करते।

(९)

यतीश जिस समय डेरेपर आया उस समय

उसका समस्त हृदय वेदना से आर्त हो उठा था। वर्दी उतार कर वह अपने कैम्प में खाट पर लेट गया। आज उसको किसी तरह पर भी शान्ति नहीं मिलती।

वही वीरेन्द्र—वही शचीश।

जिस दिन वह इन दोनों बालसखाओं से पहले पहल जुदा हुआ था, उस दिन से आज तक जो एक दीर्घ काल व्यतीत हुआ है इतने समय में क्या वह उनको भूल सकता था।

घटना का स्रोत उसको जिस जीवन में खींच लाया है, उस जीवन में वह किसी प्रकार की भी सार्थकता प्राप्त करके धन्य नहीं हो सकता। वह कर्तव्य को अवश्य करणीय विचार कर केवल कर्तव्य ही कर रहा है।

शचीश की ओर से उसके हृदय में एक प्रकार की श्रद्धा का भाव था।

जिस उत्साह को-जिस प्राण स्पन्दन को वह खो बैठा था, आज फिर वह भाव जागृत हो उठा उसने समझ लिया कि मनुष्य सब अवस्था में उपकार कर सकता है। जिस सन्देह से कारखाने की ख़ानातलाशी हुई है- वह सन्देह सर्वथा असम्भव है- तब क्यों उसने यह बात अपने अफ़सरों से नहीं कही? सो परमात्मा जानै।

परन्तु अब यतीश ने अपना कर्तव्यपथ निर्धारित कर लिया।

(१०)

उस दिन प्रातःकाल शचीश उसके पास बैठ मन लगाकर एक तस्वीर देख रहा था।

वीरेन्द्र ने आकर पुकारा, "शचीश"!-

शचीश की तन्मयता टूट गई; वह एकाएक चौंक पड़ा; उसके बाद वह उस तस्वीर को टेबुल पर एक किताब के नीचे दवाकर वीरेन्द्र के मुख की ओर देखने लगा; बोला, "क्या वीरेन्द्र! कहो, क्यों घबराये हुए देख पड़ते हो?

वीरेन्द्र जानता था तस्वीर किसकी है।

शचीश बचपन ही में मातृहीन होगया था वह तस्वीर भी उसकी परलोकवासिनी माता की थी, रोज़ प्रातःकाल और सन्ध्या काल में वह एक बार कुछ देर के लिए तस्वीर के पास जाता और निज जननी का दर्शन कर अपने को कृतार्थ करता था, अनन्तर जननी के चित्रित चरण युगलों को माथे में छुआकर अपने कर्तव्यपालन में निरत होता था।

पृथ्वी तल पर किसी से भी वह अपनी इस श्रद्धा प्रवीणता को प्रकाशित नहीं करना चाहता था। भाव प्रवीणता के सम्बन्ध में मनुष्य की निर्मम समालोचना से वह बहुत ही डरता था। वीरेन्द्र इस बात को जानता था, क्योंकि वह बहुत दिन से शचीश के तरुण-हृदय की इस श्रद्धा को सम्भ्रम की दृष्टि से देखता आया है।

सुनता हूं, शचीश, यतीश आया है"-- वीरेन्द्र की बात पूरी भी न होने पाई थी, कि एक तीसरा आदमी कमरे के भीतर आकर कहने लगा, "हां, वीरेन्द्र, यतीश अपने बाल-सखा के स्नेह पर दावा कर आया है! तुम उसे अस्वीकार द्वारा कुण्ठित न करोगे-लौटा न दोगे- यह उसे विश्वास है।"- बातचीत करते करते यतीश ने दहिना हाथ फैलाया। वीरेन्द्र ने बढ़कर हाथ मिलाया," जो बाल-सखा प्रेम का दावा कर हृदय के इतने समीप आ पड़े उसको किसीदिन भी प्रत्याख्यान करने से काम नहीं चलता। आओ शचीश, आज सुप्रभात है! अपने बालसखा का अभिनन्दन करो!

शचीश ने भलीभांति समझ लिया!

वीरेन्द्र ने जिसे हृदय के पास लाकर खड़ा करदिया, वह निर्मल है-वह अभिनन्दन योग्य है, इसमें शचीश को एक बिन्दुमात्र भी सन्देह न था!

उस समय शचीश ने दोनों हाथ फैलाकर यतीश को आलिङ्गन किया और अत्यन्त मधुर कण्ठ से कहा "यतीश!" "क्षमा करो भाई!" मिलन के आनन्द में अश्रुजल कपोलों को प्लावित कर किस प्रकार बह चला सो वे स्वयं भी न जान सके।

अनुवादित।

अफ्रीका में भारतवासी।

[लेखक—स्वामी मंगलानन्द पुरी।]

हमारा अब इस पूर्वीय अङ्गरेज़ी अफ्रीका (बृटिश ईस्ट अफ्रीका) का तीसरा चक्कर है। यहां की दशा दिन पर दिन शोचनीय होती जाती है। हम सुना तो यह करते हैं, कि अब जागृति औ सुधार का ज़माना है, जहां देखो सभा सोसाइटी, कांग्रेस, कान्फरेन्सों की भरमार देख पड़ती है। लोग कहा करते हैं कि भूतकाल से यह वर्तमानकाल बहुत उत्तम बीत रहा है पर जब आंखें खोलकर देखते हैं तो हमें कुछ और ही नज़र आता है। जिसपर यदि यह कहा जाय तो अनुचित न होगा कि—

मर्ज़ बढ़ता गया ज्यों २ दवा की

हम प्रायः भारतवासियों की सर्वत्र यही दशा पाते हैं। चाहे वे देश में रहें या परदेश में, परन्तु उन्होंने केवल अत्याचारों और कठिनाइयों को सहन करने के लिए जन्म लिया है। इस पूर्वीय अफ्रीका के भूभाग का इतिहास यह है कि गत साठ सत्तर वर्ष वरन एक सौ वर्ष से हिन्दू लोग यहां बसते हुए पाये जाते हैं। उन्हीं लोगों ने इस जङ्गली बियाबान सूनसान देश को बस्ती लायक बनाया है। अब तो प्रायः अच्छे २ शहर मुम्बासा, नैरोबी, दारस्सलाम इत्यादि बस गये और बराबर बसते चले जाते हैं पर इन दुःखी भारतवासियों के पुरुषार्थ का फल इन्हें कौन देता? इनके मुंह का ग्रास छीन २ कर आज यूरोपियन लोगों का पेट भरा जा रहा है।

हमें वे दिन याद हैं जब हिन्दू कुली उगंडा रेलवे के लिए जङ्गल साफ़ करने में लगाये गये थे और वहाँ उस काम के करने में सैकड़ों की जानें गईं क्योंकि शेर चीते आदि अनेक भयानक जन्तुओं के बीच उन्हें काम करना पड़ता था। जब तब यही सुनाई देता था कि आज अमुक को सिंह खा गया, अथवा आज अमुक को चीता पकड़ ले गया, इत्यादि। पर आज जब ६ सौ मील तक रेल दौड़ने लगी तो उतने लम्बे चौड़े प्रदेश में से कोई भाग भी हम भारतवासियों को खेती बारी के लिए नहीं दिया जाता; और अङ्गरेज़ी सरकार को यूरोपियनों को बसाने की इतनी प्रबल उत्कण्ठा है कि प्रत्येक को विलायत से गवर्नमेण्ट तेरह तेरह हज़ार रुपया नगद साथमें देकर भेजती है और ज़मीनभी मुफ्त देती है कि वे उसे आबाद करें। सुना जाता है कि उनमें से कितने यहां आये और खूब गुलछर्रे उड़ाकर जब वह धन समाप्त हो गया तब नौ दो ग्यारह हुए। कितनों ने सरकार से मुफ्त मिली ज़मीन भी बेंचकर समझा कि चलो भागते भूत की लंगोटी ही सही चलते चलाते जो मिल जाय सो अपना—

हम यह नहीं कहते कि यूरोपियनों को न बसाया जाय पर हमें हमारा हक़ तो अवश्य मिलना ही चाहिए । हम कुछ ख़ैरात तो मांगते नहीं । हमने मिहनत की है, पुरुषार्थ किया है, और जानपर खेलकर इस जङ्गली देश को रहने के लायक़ बनाया है तब क्या हमारा इतना भी हक़ नहीं है, कि जहां दूसरों को १३०००) रुपया दक्षिणा के सहित मुफ्त भूमि प्रदान की जाती है वहां हमको बिना किसी सहायता के केवल खेती करने के लिए ज़मीन दे दी जाय?

हां, निस्सन्देह यदि गवर्नमेण्ट यूरोपियनों की भांति हम लोगों को बुलाकर बसाती तो एक मित्र का कथन है कि यह देश अब तक Garden Colony गार्डन कालोनी (बागीचा सदृश प्रान्त) बन जाता । परन्तु हमारे शासनकर्ताओं में स्वदेशप्रेम केवल अपने ही भाइयों की सहायता का ध्यान, ऐसा प्रबल हो रहा है कि वह कदापि किसी दीन हीन दुखिया जाति पर इनकी कृपा होने ही नहीं देता । केनाडा, अमेरिका के अन्य प्रान्त, आस्ट्रेलिया, ट्रान्सवाल और अब पूर्वीय एफ्रिका भी हज़ार २ मील के लम्बे चौड़े देश खाली सूनसान पड़े हैं । यहां यदि घनी बस्तियों से भेजकर कुछ लोग बसाये जांय तो एक तरफ वे जङ्गल भी बस जांय इधर सघन बसे हुए भूभागों का कुछ बोझा भी हलका हो जाय । जैसे भारत इस समय ३१ करोड़ मनुष्यों के बोझ से दब रहा है यदि भारत से दो चार करोड़ मनुष्यों को भेजकर उन २ देशों को बसाया जाय तो दोनों देशों का फायदा हो सकता है पर यूरोपियन जातियों ने खुल्लमखुल्ला यह निश्चय कर लिया है कि हम भरसक इस जनशून्य देश को खाली ही पड़ा रहने देंगे पर ग़ैर यूरोपियनों को न फटकने देंगे । और तो सब जैसा तैसा, पर इससे तो अब हद हो गई । हमारे हिन्दुस्तानी भाइयों में इतना होने पर भी अनेक ऐसे देखने में आते हैं जो आयेदिन कहा करते हैं कि सब अपना २ भाग्य लेकर आये हैं । जिसने जन्म देने से पूर्व माता के स्तनों में दूध उपजाया क्या वह अब अन्न न देगा? इतना ही नहीं वरन कहने वाले तो ऐसे भी हैं कि कहते हैं—

अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम ।
दास मलूका यों कहैं, सबके दाता राम ॥

बस अब क्या है, दास मलूका जी की फिलासफी के आधार पर सारे काम काज, नौकरी, चाकरी इत्यादि त्यागकर चाहे अजगर जैसे महा आलसी बने बैठे रहो तो भी कुछ चिन्ता नहीं क्योंकि राम जी तो सब के दाता हई हैं ।

अस्तु, यह तो वैराग्य का उपदेश था जिस का अर्थ न जानकर आज कल लोग अनर्थ करने लगे हैं पर इसमें सन्देह नहीं कि हमारे पूर्वजों ने जहाँ अपने बाहुबल से हक प्राप्त कर रक्खा था वहां भी हमें अंगूठा दिखाकर यूरोपियन ही अब बसाये जाते हैं ।

यूरोपियन लोग अपने मुनाफे की बात सोचने में बहुत बड़े दूरदर्शी हैं । हम भारतवासियों की भांति वे मूढ़ नहीं हैं । वे यह सोचते हैं कि यद्यपि उक्त केनाडा इत्यादि देश आज सूनसान पड़े हैं पर थोड़ी संख्या में भी केवल अपने भाइयों को बसाना, और दूसरों को न आने देना, इसलिए आवश्यक है कि सौ, दो सौ, चारसौ वर्षों बाद सन्ताना के बढ़ने से जब संख्या अधिक बढ़ जायगी तब उन्हें रहने का ठिकाना रहे । उनके निमित्त अभी से जायदाद Reserved संरक्षित कर रक्खो ।

कहिये पाठकगण ! क्या कभी किसी भारतवासी को भी इतनी दूर की सूझी है । दो चार सौ वर्ष की सन्तानें क्या करेंगी ? इस बात का ध्यान तो हमारे देशवासियों को कभी स्वप्न में भी न आया होगा, वे तो उन बालबच्चों

की ओर से भी बेफ़िक्र हैं जिन्हें वे पैदा कर चुके हैं। वे सर्वस्व खो देने पर भी दूसरे का हक़ छीनना स्वप्न में भी नहीं जानते। यूरोपियन जातियाँ केवल इस दूरदर्शिता के प्रभाव से कि "सैकड़ों वर्ष के पश्चात् उत्पन्न होनेवाली सन्तानों के लिए सामान हस्तगत रहे" इस प्रकार दूसरी जातियों का तिरस्कार करती हैं परन्तु एशिया या हिन्दुस्तान का इतिहास बतलाता है कि अतिथि को प्रथम खिलाकर स्वयं खाना-सो उसी आदर्श को सामने रख कर भारतवासी सर्वस्व खो बैठे। उन्होंने पारसी जाति को शरण दी, यदि भारत उन्हें न अपनाता तो उनका अस्तित्वही संसार में न रहजाता। मुसलमानों को भी उन्होंने अपना अतिथि बनाया, यूरोप के डच, पोर्चुगीज, फ्रेंच और अन्त में अंगरेज़ लोग व्यापारी के रूपमें आये, इनलोगों का भी उन्होंने यथोचित स्वागत किया और करने को तैयार हैं। निदान् चाहे हम कैसेहो दुखी हों पर आगन्तुक का तिरस्कार करना हम अपना अधर्म मानते हैं।

पश्चिमीय और पूर्वीय विचारों की विभिन्नता इसी से जानी जा सकती है कि दोनों के सिद्धान्तों में पृथ्वी आकाश का अन्तर है। जहां प्रथम स्वार्थ का अंधा बनकर "अंधा परसै रेवड़ी फिर २ अपने को देय" इस कहावत को चरितार्थ कर रहा है, वहां दूसरा इस कहावत पर आरूढ़ है कि—

"उदार चरितानांतु, बसुधैव कुटुम्बकम्"।

दोनों में कितना अन्तर है? प्रश्न यह है कि क्या हम अपनी इस उदारता को अब भी पूर्ववत् अपना इष्टदेव बनाये ही रहें? यह एक जटिल प्रश्न है। इसपर देश के विद्वानों को विचार करना उचित है। यहां प्रसंगवश हम अपनी सम्मति भी सुनाये देते हैं। वह यही है कि देश काल का विचार करके अब हमें कुछ परिवर्तन कर डालना चाहिये। इस समय में पश्चिम की टक्कर पूरब से लड़रही है। यदि पूरब अपनी उदारता की डींग में पड़ा रहा, तो पश्चिम का स्वार्थ उसे नष्ट भ्रष्ट कर डालेगा। इसलिए उचित है कि अब हम जैसे के साथ तैसा-शठेन शाठ्यम्-के न्याय पर आरूढ़ होजांय। अंगरेज़ लोग जिस प्रकार स्वदेश प्रेमी (तथा अन्य देश का तिरस्कार करनेवाले) बन रहे हैं, उसी प्रकार हमें भी स्वदेशानुरागी बन जाना उचित है। नहीं तो कल्याण की आशा दुराशा होगी।

हम अफ्रीका का वृत्तान्त कह रहे थे; पाठकों को ज्ञात हो, कि एक तो बड़ा भारी अत्याचर हम पर यही है; जिसका वर्णन पहले ही किया जा चुका है, लाखों बीघे खेत खाली पड़े हैं और यह सब हमारे ही देशवासियों के कठिन परिश्रम और पुरुषार्थ से प्राप्त हुए हैं परन्तु हमको हमारा हक़ नहीं दिया जाता।

अब दूसरी बात सुनिये कि हाल में एक टैक्स लगाया गया है। इसे "पोलटैक्स" (Poll Tax) कहते हैं। इसका तात्पर्य हम चार मास के पूर्व नहीं जानते थे क्योंकि यह नई आपत्ति आगई है और हमें इससे पूर्व कभी किसी ऐसे देश में रहने का अवसर नहीं प्राप्त हुआ था जहां इसका परिचय हुआ होता। यह क्या है? कहते हैं कि बालकों को छोड़कर प्रत्येक विदेशी मनुष्य को एक पाउण्ड १५) प्रतिवर्ष देना पड़ेगा। यह क्यों? इसलिए कि वे अन्य देशों से आकर इस (पूर्वीय अफ्रिका) में बसते हैं। यहां के असली निवासियों पर यह टैक्स नहीं है।

इस प्रकार २५००० भारतवासियों से प्रायः ३७५,०००) पौनेचार लाख रुपये वार्षिक धन खीचे जाने का उपाय करलिया गया है। इस पर कई लोगों ने पुकार भी मचाई कि यह सरासर अंधेर और अत्याचार है! यदि गवर्नमेंट अपनी आय बढ़ाना चाहती है तो "इनकम-

टैक्स" की प्रणाली से काम ले, किन्तु बेचारे गरीब कङ्गाल लोग तो न पीसे जांय।"पोलटैक्स" तो अंधेर नगरी वाले सिद्धान्त–"सब धान २२ पंसेरी" अथवा "टका सेर भाजी टका सेर खाझा को चरितार्थ कर रहा है। क्योंकि जिस मनुष्य की वार्षिक आय दसबीस सहस्र या लाखों तक है वह भी केवल एकही पाउण्ड १५) कर देवे और जो बेचारा वर्ष में केवल सौ दो सौ रूपयाही कमा सकता हो वह भी एक पाउण्ड १५) देवे, नहीं, नहीं! वरन् जो रोगादि कारणों से या नौकरी रोज़गार मिहनत मजूरी के न मिल सकने के कारण से बेचारा बेकार हो, और एक पैसे की भी आमदनी न रखता हो वह भी अङ्गरेज़ सरकार के खजाने में १५ रुपये भर आवे।

वाह, यह तो अच्छा न्याय ठहरा। हम आप बेकार बैठे हैं, पास झंझी कौड़ी नहीं, न जानै कैसे अपने संकट के दिन काट रहे हैं; पर पन्द्रह रुपये कलदार जहां से बने वहां से लाकर, सरकार के घर में भरनाही पड़ेगा। क्यों साहब! हम महा दीन दुखी को तो अपवाद स्वरूप छोड़कर मुसतसना में डाल माफ कर देते?– "नई अम किसी को नई छोड़ेगा। वेल टुम गरीब है तो अफ्रिका क्यों आया? जा यहां से चला जा; अम टुमको नई मांगटा। ए हजूर सरकार आज आप हमको नहीं मांगते पर पन्द्रह वर्ष पूर्व लाहौर और कराँची में एजेन्ट बैठाकर हम लोगों को फुसला २ कर तरह २ की दम पट्टी दे दिला कर वतन से निकलवाया और जहाज़ों में भर २ कर यहां लाये। हमने घर छोड़ा, द्वार छोड़ा, देश छोड़ा, मां बाप की मोहब्बत छोड़ी, बाल बच्चों का प्यार छोड़ा, स्त्री बहिन मां इत्यादि को रोते कलपते छोड़ा, और आपकी चिकनी चुपड़ी बातों के जाल में फंस गये। अपनी आयु का सब से अच्छा भाग (जवानी) आपकी आज्ञा पालन (जंगलों को काट कर बस्ती बनाने) में लगाया, उसका कुछ भी फल नहीं। अच्छा खैर हम भारतवासी सब कुछ अपने ही भाग्य का दोष कह कर बात टालने के चिरकाल से अभ्यासी हैं चलो यहाँ भी यह मान लेंगे कि हमारी क़िस्मत उलटी थी कि हम यहां आ फंसे, पर अब यहां आने पर हम अपने दुःख के दिन जैसे तैसे काट रहे हैं, सो वह भी आप से देखा नहीं जाता। आप बैठे बैठाये हमें छेड़ रहे हैं कि १५) महसूल देदो। भला हम गरीब आदमी कहां से इतना रुपया लावें कि आपका खज़ाना भरें। "टुम चूल्हे भाड़ में पड़ो! अम टुम से टैक्स अलबट लेगा। टुम देगा नहीं इन्डिया को चला जाय बस"–

पाठकगण! आपने देख लिया कि यह, "पोल टैक्स" का भूत हमारे भाइयों के लिए प्लेग से भी बढ़कर दुःखदाई होरहा है। गवर्नमेन्ट को यदि चार लाख रुपया वार्षिक धनही दरकार था, तो ज़मीन की लगान बढ़ाकर, व्यापार पर ड्यूटी बढ़ाकर या "इनकम टैक्स" के ही द्वारा वह इस धन की पूर्ति कर सकती थी, परन्तु यह सब कुछ न करके प्रत्येक विदेशीय मनुष्य पर एक पाउण्ड १५) का टैक्स १।) मासिक या ८ पाई रोज का महसूल लगाना, निस्सन्देह यही प्रगट कर रहा है; कि हम लोग तंग हो कर हिन्दुस्तान को लौट जांय, पर आश्चर्य तो यह है कि बार २ हमको बुलाने के लिए भी तो निमन्त्रण आया करता है। इसी सप्ताह में सुना गया कि उगंडा में (मुम्बासा-पोर्ट से ८०० मील जाकर) एक कोयले की खान बड़ी भारी १००० वर्ग मील की मिल गई है। जिसे जारी करने के लिए वहां तक रेलवे लाइन बनाई जाने की स्वीकृति भी १३०,००,००० एक करोड़ तीस लाख रुपये की होगई है, इत्यादि–अब देखना है, कि इस कार्य के निमित्त आदमी कहां से आते हैं? आखिर

घूम फिर कर वही भारत हाथ बढ़ायेगा। बात तो तब ठीक होती, कि अगर हमें हमारे हक नहीं दिये जाते तो हम से फिर कुछ मतलब सरोकार भी न रक्खा जाता, पर हमारे समझ में यह हमारे भारतीय नेताओं को और मुख्यतः कौंसिल की भूल है; जो मारिशस, नेटाल, बृटिश गायना, ट्रिनीडाड, फ़ीजी, ट्रान्सवाल, केनाडा, उगंडा (पूर्वीय अफ्रीका) इत्यादि २ सभी देशों में हिन्दुस्तानियों की अत्यन्त दुर्दशा देख कर भी भारतसरकार को इस बात पर बिवश नहीं करते, कि उसने जो एक डिपार्टमेन्ट इस अभिप्राय से बना रक्खा है कि कुली भरती कर २ के उपनिवेशों में भेजना (Emmigration Department) वह सर्वथा तोड़ दिया जाय। जिन्हें भारत के मनुष्य दरकार हों वे देश के अनेक समाचार पत्रों में विज्ञापन छपवा दिया करें। तदनुसार जो स्वयं जाना चाहें वे जांय पर गवर्नमेंट बीच में न पड़े। उस दशा में हमारा कोई हक न रह सकेगा; कि हम अंगरेज़ी सरकार पर दोषारोपण करें; किन्तु वर्तमान शैली पर तो हमें यही कहना पड़ता है, कि भारत शासन की बागडोर जिनके हाथों में है वे अंगरेज़ हैं; और नेटाल आदि कालोनियां बसाने को जो गये हैं वे भी अंगरेज़ हैं। इन्हें जंगल काटने, खेत गोड़ने, बोने, सींचने, निराने इत्यादि के लिए कुली मज़दूर आवश्यक हैं जो भारत से अधिक सस्ते कहीं नहीं मिल सकते। अतः वे भारत शासनकर्तागण भाईचारे के नाते वहां के निवासी यूरोपियनों के हितार्थ हमारे देशभाइयों को भेजने के लिए यह एमीग्रेशन डिपार्टमेन्ट का ढोंग रचते हैं।

हमारा श्री० माननीय मालवीय जी से यह अनुरोध है, कि वाइसराय की कौन्सिल में यह प्रश्न उठावें, कि भारत सरकार उक्त डिपार्टमेंट को तोड़देवें, बस यही हमारे दुःख को दूर करने का उपाय है।

गतवर्ष हम मारिशस देश में थे, भारत सरकार ने उस देश के लिए कलकत्ता से कुलियों का भेजा जाना अब तीन चार वर्ष से बन्द कर दिया है, इससे वहां के यूरोपियन ज़मींदारों की अकिल कुछ ठिकाने आई है; और पूर्व की अपेक्षा अब अत्याचार घट गया है, तथा उसी देश के उत्पन्न हुए भारतवासी उनसे पूरा मिहनताना लेकर काम करने लगे हैं। जिससे उन अमीर ज़मींदारों का कुछ अधिक धन खर्च होता है; परन्तु एक तो नये कुली वहां जाकर अनेक प्रकार की आपत्ति भोगने से बच गये दूसरे वहीं के जन्मे हुए भारतीय भूखों मर रहे थे वे अबसुखी हो गये !

यही दशा सर्वत्र की (जहां २ भारतीय भेजे गये हैं) होगी अतः सारी खराबियों जड़ यह एमीग्रेशन डिपार्टमेन्ट (जो २१ नम्बर गार्डन रीच कलकत्ता तथा इसकी शाखायें जो प्रयाग, लखनऊ, आगरा इत्यादि २ में हैं) है इसे निर्मूल करने से भारतियों का महान् कष्ट दूर होजायगा।

हां हम " पोल टैक्स " की कथा सुना रहे थे ! इस टैक्स के बारे में कहा जाता है कि यह नान् अफ्रीकावासियों पर लगाया गया है। अर्थात् जो एफ्रिका के मुख्यनिवासी (वहशी इत्यादि जाति) हैं, उनको छोड़कर दूसरे बाहर से आकर बसनेवालों को यह " पोलटैक्स " भरना पड़ेगा। यह तो इसका बाहरी दृश्य है पर जब आन्तरिक निरीक्षण करते हैं तो हाथी के मुख में जैसे दूसरे छोटे २ दांत भी दृष्टिगोचर होते हैं वैसे ही इसमें भी......

यद्यपि यह कहा जाता है कि यह टैक्स परदेशियों पर लगाया गया है, घर यह भी सुना जाता है कि जर्मन लोगों को यह नहीं भरना पड़ता, फ़्रेञ्चों को भी नहीं देना पड़ता, पोर्तुगीज़, इटैलियन, रशियन, इत्यादि सारे ही यूरोपवासी इससे बचे हुए हैं। यूरोप भर में

एक इङ्गलैण्ड देश ही ऐसा है जहां की प्रजा को इस टैक्स की माफी नहीं हुई।

अब प्रश्न यह उठता है कि अङ्गरेज़ी सरकार यह कैसा न्याय करती है, कि जो टैक्स विदेशियों के ऊपर रक्खा जाना निश्चय हुआ हो वह अमुक २ जातिवालों पर न लगे। पाठकगण सोचिये कि ऐसा बेढङ्गा कानून क्यों गढ़ा जाता है—सुनते हैं, कि यदि वे जर्मन इत्यादि जातियों को अपने राज्य के अन्तर्गत प्रदेशों में न घुसने दें, या ऐसे नियम निर्धारित करें कि अमुक टैक्स देकर तब रह सकोगे, तो यह भय है कि वे शक्ति सम्पन्न महाराष्ट्र सम्भव है बिगड़ कर कहीं अङ्गरेज़ जाति को नाकों में दम न करदें। यह भी सम्भव है कि अपने २ राज्यों में वे भी इन्हें न घुसने दें या कुढ़कर और भी न जानें क्या करें। सारांश यह है कि यह "पोलटैक्स" केवल इन्डियन और इङ्गलिश इन्हीं दो जातियों पर लगाया गया समझना चाहिये। क्योंकि अफ्रीकानिवासियों पर तो यह टैक्स लग ही नहीं सकता अङ्गरेज़ों और यूरोप के किसी जाति पर भी यह लागू न हुआ रहा एशिया सो एशिया में सिवाय भारत को छोड़ दूसरे किसी देशवासी उस प्रान्त (बृटिश ईस्ट अफ्रीका) में नहीं देखे जाते। चीनी और जापानी, नेटाल आदि में तो गये हैं पर मुम्बासा पर इनकी कृपादृष्टि अभी तक नहीं होने पाई। समस्त प्रान्त भर में दो चार व्यक्ति हों तो उनकी कोई गणना नहीं की जा सकती अतः इङ्गलैण्ड की प्रजा पर ही यह "पोल टैक्स" लगाया गया। पाठकों को ज्ञात हो कि जहां इस प्रदेश में २५००० भारतीय हैं वहां मुश्किल से दो हज़ार अङ्गरेज़ होंगे और हमारी निर्धनता तथा अङ्गरेज़ों की धनाढ्यता का अनुमान किया जाय तो यही कहना पड़ेगा कि अङ्गरेज़ों का भी केवल नाम ही मात्र है। अन्ततोगत्वा वास्तविक में यह टैक्स केवल हिन्दुओं पर ही लगाया गया है।

अधिक अनुसंधान करने से ऊपर की परिभाषा भी टूट जाती है।

"पोलटैक्स" केवल हिन्दुओं के लिए लगाया गया है यह बात हम ऊपर कह आये हैं पर हिन्दुस्तान ही का एक गोवा Goa नामक प्रान्त बम्बई से दक्षिण में है, वहां के निवासी गोवानीज़ इन प्रदेशों में बहुत अधिक पाये जाते हैं। सुना गया कि इन गोवानियों पर यह "पोलटैक्स" का भूत नहीं चिपटा। भला यह क्यों? हम हैरान हैं कि हम भी भारतवासी, वे भी भारतवासी, हम भी काले रङ्गवाले और वे भी (बरन् रङ्ग में वे उत्तरी भारतवालों से कुछ सांवले होते हैं) तथा सभी बातों में हम और वे एक समान हैं बरन एक ही महाराष्ट्र (एम्पायर) भारत या इन्डिया के निवासी हैं; फिर यह क्या बात है कि एक पाउण्ड १५) वार्षिक अफ्रीका की पवित्र भूमि पर पैर रखने की दक्षिणा हमसे तो भरली जाय और हमारे ही साथी गोवानीज़ भाइयों से न मांगी जाय?

क्यों पाठकगण, आप कुछ समझे! इसमें क्या गूढ़ रहस्य है? आइये आपको हम यह भेद भी सुना दें। वह यह है कि यद्यपि हम में और गोवानीज़ों में कुछ भी भेद नहीं है परन्तु दो तीन शताब्दियों से एक बड़ा भारी भेद आ पड़ा है। अर्थात् हम तो बृटिश प्रजा हैं, पर वे बृटिश प्रजा नहीं हैं, वे पोर्तुगीज़ Portugese प्रजा हैं।

अच्छा फिर इससे क्या! इन्डियन होने के विचार से तो दोनों एकदेशीय ही हैं, फिर यह कैसी बात है कि हम पर "पोलटैक्स" लगाया जाय और उन पर नहीं।

हां एक प्रकार से यह सम्भव है, क्योंकि वर्तमान काल में हम में और उनमें यह

भेद आ पड़ा है कि बृटिश मंत्रीगण भारतवासियों के हित के लिए उपनिवेशों के अधिकारियों पर दबाव डालना उचित नहीं समझते किन्तु पोर्तुगीज़ सरकार अपने प्रजाजनों को ऊँचा उठाने में प्रसन्न होती है !

पोर्चुगीज़ जाति पर यूरोपियन होने के कारण यह "पोलटैक्स" नहीं लगाया गया, और इस प्रान्त की गवर्नमेण्ट ने गोवा वालों को वैसे ही स्वत्व rights दे रक्खे हैं जो पोर्चुगालवालों को पोर्चुगाल में प्राप्त हैं । गोवानीज़ों को पोर्चुगाल गवर्नमेण्ट की प्रजा होने से इस भूत का शिकार नहीं बनना पड़ा ।

हां, तो परिभाषा कैसे बने ? पोल टैक्स किन पर लगाया गया " नान् अफ्रिकन पर वह महसूल लगाया गया है यह तो कह नहीं सकते । क्यों कि यदि ऐसा होता तो जर्मन् इत्यादि जातियों पर भी " पोलटैक्स " लगाया जाता ! यदि यह कहें कि केवल एशिया वालों पर यह टैक्स लगा है तो यह भी नहीं कह सकते ! क्योंकि अङ्गरेज़ जाति पर भी लगाया गया है । अच्छा यदि कहें कि (इण्डियन लोगों , पर लगाया गया है तो भी नहीं बनता, क्योंकि गोवा प्रान्त इण्डिया के अन्तर्गत है, किन्तु वहां के निवासियों को माफ़ कर दिया गया। इसलिए हमें अपनी परिभाषा definition यों बनानी पड़ी कि " **बृटिश प्रजापर बृटिश अफ्रिका में पोल टैक्स लगाया गया और नान् बृटिश को माफ़ किया गया है** " किन्तु जो बृटिश रियाया नहीं है उनसे "पोलटैक्स" नहीं लिया जाता ।

(इति श्री बृटिश अफ्रीका रेवा खंडे प्रथमो अध्यायः समाप्तः ।)

संदेसा ।

सो रहा है हाय भारत;
आज तू किस नींद में ।
मचरही दुनियाँ में खलबल,
अब न सोना चाहिये ॥

अफ्रिका की जेल में जो,
मौत के बनते शिकार ।
तेरे भाई औ बहन,
उनको बचाना चाहिये ॥

रोकना अन्याय को,
तेरा ही पहला काम है ।
जीते जी तेरे कभी,
ऐसा न होना चाहिये ॥

अफ्रिका की जेल से उन,
भाइयों का हो उबार ।
बस इसी के वास्ते,
हलचल मचाना चाहिये ॥

उस अनाचारी अधर्मी,
अफ्रिकन की जाति को ।
वेगि इस अन्याय का,
प्रतिफल चखाना चाहिये ॥

हारना हिम्मत नहीं,
परमात्मा होगा सहाय ।
अफ्रिकन लोगों से अब,
बदला चुकाना चाहिये ॥

[एक भारतवासी ।]

दक्षिण अफ्रीका का दृश्य।

सड़क।

[कुलियों का प्रवेश]

१ कुली—"चपत हमें चम्पा सम लागै,
घूंसा फूल हजारा है।
लात खात मुख बात न बोलै,
अटल मौन-व्रत धारा है॥

धम धम धम दस पांच करैं जब,
गरुई गदा प्रहारा है।
चलौं पैग भर तब कहुं ऐसो,
सहनशील हम धारा है॥"

२ कुली—ठीक यार ठीक, बिलकुल यही बात है
"अच्छा अब हमारी सुनोः-
मिलै पेट भर भूलि न कबहूं,
यद्यपि हमें अहारा है।
निश्चल चित नीचे सिर राखैं,
मन सन्तोष अपारा है॥

लादैं बोझ बराबर अपने,
मुखते चूं न चकारा है।
अस स्वभाव अस शील हमारो,
जग में केहि नहिं प्यारा है॥"

१ कुली—ओल-रैट डैमफूल वो सुन घंटी बजी चल काम पर चलें।

(घंटी बजाते हुए हिन्दुस्तानी जमादार का प्रवेश)

जमा—(कुली से) तोहार तो घर कासी में न हौ?

१ कुली—हां जमादार। ओही कासी दिहलेस फांसी! ओही कासी में रहत रहली फिर हुंआ से बांदा चल गैयल रहली और उहँई से हियां अइली है।

जमादार—तू पचन ऊ सुनलेहव कि नाहीं? गांधी महराज तो चारो तरफ़ कहतहोवे कि ४५ रुपैयावाला टिक्स जो न उठी तो अपने पचन के सब के जेल चले होई पर ओ टिक्सवा के न माने होई।

१ कुली—जमादार, राम करै गाँधी महराज जियत रहैं। हमके तो पट्टिन से जादे सुख जेलै में मिली। तूं तो सब जनतै हौव, जमादार, हमार बड़कवा भाई पहिले कुली रहल अब नाहीं हौ, ओके ४५ क टिक्स अपने सन्ती देवे पड़ल, ओही ४५) का अपने मेहररुओं के सन्ती देवे पड़ल और ओही ४५) बेटौनव के सन्ती, तौन बेटौनवा ४ महीना से बेराम बाटै और मेहररुवा के गदेला होवे वाला है। आजकल अकेले ओही कमात हवै। अब बताव कहां से लिआवै जौन दे। और तेहू पर सुनत हई कि मेहररुवा के कहतहैं कि सुरैतिन हौ।

जमादार—चुप रह, चुप; देख साहेब आवत हैं। चल, हियां से चल देई अपने काम पर (घंटी बजाता है) [जमादार और कुली दोनों जाते हैं।]

२ दृश्य

[मि० पोलक के गृह का एक कमरा]

(गांधी, पोलक और दाऊद मोहम्मद बैठे हैं)

गांधी—तो बस अब इसी घड़ी निश्चय कर लीजिये कि इसके लिए सब कुछ भुगतना पड़ेगा।

दा० मो—कुछ परवाह नहीं है और अब बर्दाश्त भी तो नहीं होता; इतनी ज़्यादती पर यह दग़ाबाज़ी। गोखल से कह दिया था कि शिकायत ज़रूर रफ़ा करेंगे और अब वक्त पर यह धोखा-! दग़ाबाजी नहीं तो क्या है?

गान्धी—अस्तु आप तैयार हैं। (पोलक से) और आप।

पोलक—तो क्या आप समझते हैं कि मैं तैयार नहीं हूं। मैं सब से पहले तैयार हूं लेकिन मैं इतना सोच रहा था कि कुछ ऐसा करना चाहिये कि अबकी इस झगड़े से छुट्टी मिलजाय।

गांधी—हम लोग ऐसा क्या कर सकते हैं? ज़ालिम बोर सीधे मानेंगे नहीं। वे हमारे रक्त के प्यासे हैं, वे चाहते हैं भारतवासी आवें ज़रूर क्योंकि बिना इनके तो एक दिन उनका काम नहीं चल सकता, साथ ही साथ वे चाहते हैं कि ये गुलाम भी सदा बने रहें, सर न उठावें। वे अन्याय करने से पीछे नहीं हटते न न्याय करने का घमंड ही करते हैं। रहे स्वदेशवासी वे अंधेरे में हैं, तीन हिस्सा उनमें से अन्धे और साथही साथ बहिरे हैं, वे समझतेही नहीं कि इस मान-युद्ध से उनका भी कोई सम्बन्ध है। यदि जननी की मर्यादा भङ्ग की बात न होती तो हम भी चुप रह जाते किन्तु यह मान-युद्ध है लड़ाई लड़ना ही होगा।

दा० मो—आप बज़ा फर्माते हैं लेकिन यह तो कहिये।

"किस क़ौम को मिन्नत से मिली आह रिहाई।
क्या तर्ज़ नया तुम्हीं ये ईज़ाद करोगे"?

क्या यह डूब मरने की बात नहीं है!

"जो दस्तनिगर अपने थे दौलत में हुनर में,
हसरत से अब हम उनकी नज़र देख रहे हैं।"

लेकिन यह वक्त बहस मुबाहसे का नहीं है। हमारी फरियाद मुम्किन है बशर के कानों तक न पहुंचे लेकिन वह पाक अल्लाह के पायेतख़्त को ज़रूर हिला देगी। इस झगड़े से यह भी तय हो जायगा कि बृटिश गवर्नमेंट की निगाह में हिन्दू बृटिश रियाया की कहां तक वकत है, और यह भी कि उन्हें वेही हुक़ूक़ जो और लोगों को हैं हासिल हैं या नहीं? बोरों के खिलाफ होकर हम लोगों ने बृटिश गवर्नमेंट की म की थी, बोरों को दबाने में, उन्हें सर करने हम लोगों ने बृटिश गवर्नमेंट का हाथ बटा था, आज उसी का बदला बोर हम से ले रहे हैं देखना है बृटिश गवर्नमेंट हमारी मदद पलटा किस तरह देती है?

पो०—राजनीति में उदारता को कोई स्था नहीं प्राप्त है। स्वार्थत्याग किए बिना राजनीति के संसार में कुछ नहीं प्राप्त हो सकता। हम जानते हैं आप अङ्गरेज़ों भांति इन ज़ालिमों की मरम्मत नहीं क सकते, न आप उस मिनिस्ट्री का कुछ कर सकते हैं, जिसके इन्तज़ाम में निस्सहाय गरीबों पर इतने जुल्म किए जाते हैं, न आप फ्रेंच या जरमन हैं कि आप लोगों के लिए आपकी गवर्नमेंट लड़ने आवेगी, आप लोगों को सिर्फ अपने उद्देश्य की उत्तमता का और ईश्वर का सहारा है "निष्क्रिय प्रतिरोध" ही आप लोगों के लिए एक मार्ग है।

द० मो—क्या कहा! सिर्फ निष्क्रिय प्रतिरोध

गा०—क्या हानि है। उसे कर देखिये, इसी से हमारी जीत होगी। कल हम सर्वसाधारण सभा में इसका ढिंढोरा पीटेंगे।

(सब जाते हैं)

३ दृश्य

(गांधी के गृह में एक कमरा)

[गांधी एक टेबुल के पास बैठे कुछ सोच रहे हैं उनकी स्त्री का प्रवेश]

गा० स्त्री—यह क्या! आप यहां बैठे क्या सोच रहे हैं। कोई नई विपत्ति आई या यह आनेवाली है?

गा०—विपत्तियों का क्या कहना है, वे तो जब तक हम अन्यायियों की चलती रहेगी, सदा

आती ही रहेंगी। अब प्रतीकार का उपाय भी निश्चित कर लिया गया है उसी के सम्बन्ध में कुछ विचार कर रहा था। कल से मानयुद्ध आरम्भ होगा, एकबार गत वर्षों की भांति फिर निष्क्रिय प्रतिरोध की अग्नि प्रज्वलित होगी। हम लोग भूखों मरेंगे, जेल में जांयगे किन्तु इस अपमानजनक कानून को जीते जी कभी न स्वीकार करेंगे।

स्त्री—धन्य हो नाथ, इस संकल्प की सिद्धि के लिये श्री गोपाललालजी आपको शक्ति प्रदान करें। देशसेवा, जननी के मान-मर्यादा की रक्षा ही एक मात्र सब प्राणियों का धर्म है। मैं स्त्री हूं, आपकी सेवा शुश्रूषा ही मेरा परम धर्म और कर्तव्य है, आज्ञा दीजिये कि अब की बार मैं भी जेल में चलूं।

गान्धी—प्रिये! यह तुम्हारे उपयुक्त ही है। किन्तु तुम कमज़ोर हो, कोमलांगी हो, जेल के दुःसह दुःख तुम न सह सकोगी!

स्त्री—ढिठाई क्षमा करिये, मैं स्त्री हूं सही, किन्तु मुझ में आर्य ललनाओं का रक्त सञ्चारित होरहा है, मैं उसी "स्वर्गादपि गरीयसी" जननी की सन्तान हूं जिनकी बेटियां घोड़ों की पीठ पर सवार हो पति के साथ रणक्षेत्र में जाया करती थीं। कैकेयी हमारे ही देश में पैदा हुई थीं, सीता हमारे ही देश की ललना है। एक नहीं सहस्रों राजपूत बालाएं देश की मर्यादा के लिए, प्राणपति की यशरक्षा के लिए अग्नि में भस्म तक होगई हैं। बर्तमान समय में ही देखिये विलायती रमणियां अधिकार प्राप्त करने के लिए कौन कौन सा कष्ट नहीं सह रहीं हैं? नाथ! आज्ञा दीजिये कि अपने भाइयों, बहनों और बच्चों के मान के लिए कष्ट सह कर मैं भी इस नारी तन को सफल करूं। सुना है कि द्रौपदी की लाज रखने को कृष्ण भगवान स्वयं आसन छोड़ भागे थे, यहां सहस्रों बहनों की लज्जा जाती है, सती नहीं वरन् कुलटा के सदृश कानून उनके साथ व्यवहार करता है, इससे रक्षा शीघ्र होनी चाहिये। इस रक्षा के हेतु हमीं स्त्रियों के आर्तनाद की आवश्यकता है। आज्ञा दीजिये, मैं सब कष्ट सह लूंगी इसकी आप तनिक चिन्ता न करिये।

गा०—यह सब ठीक है किन्तु हमारी अनुपस्थिति में तो घर और बच्चे का भार तुम्हारेही ऊपर रहेगा, इनका क्या करोगी?

स्त्री—नाथ जाने दीजिये। ऐसे हमें न बहलाइये। घर हमारा कहां, जहां आप रहेंगे वहीं हमारा घर होगा, आपकी अनुपस्थिति में हमें इस घर से क्या सरोकार है? रही बच्चे की बात सो वह भी हम लोगों के साथ रहेगा। वह १७ वर्ष का होगया है। चलिये पहले उसकोही जेल जाने दें। फिर कुछ भी चिन्ता न रहेगी।

गा०—(प्रेम से गद्गद हो) प्रिये! तुमसी स्त्री पाकर मैं अपने को बड़भागी समझता हूं। तुम्हारी पवित्र आकांक्षाओं को रोकने की मुझ में सामर्थ्य नहीं। तुम जैसा कहती हो वैसाही होगा! आओ चलें।

४ दृश्य

[नेटाल की सीमा।]

सड़क।

[गान्धी, उनकी स्त्री, बालक और कोई ५०० भारतवासी]

गांधी—भाइयों तैयार हो जाओ, अब यहां पर से हम लोगों को अलग होना होगा। इस सीमा को लांघना ही जेल की सज़ा का सामना करना है। कोई भी

सफेद चीम वाला मनुष्य चाहे दिन भर में १०० बार इस सीमा को लांघे किन्तु वह दंडनीय नहीं, वर्तमान शताब्दि में कोई मनुष्य जहां चाहे जा सकता है यदि कहीं पर वह बेजा तौर से सताया जाय, या उस पर अन्याय हो तो उसके देश की गवर्नमेंट बदला लेने को खड़ी हो जाती है, मजाल नहीं कि उसकी ओर कोई आंख उठा कर देख सके, संसार में एक मात्र भारतवासियों को ही यह स्वच्छन्द विचरण का स्वत्व नहीं प्राप्त है। जिस साम्राज्य पर सूर्य नहीं अस्त होता, उसी साम्राज्य की रियाया को यह बृटिश प्रजा का साधारण स्वत्व नहीं प्राप्त है, गुलामों की तरह हम एक स्थान पर ही रह सकते हैं, अन्यत्र गये नहीं, कि रोक टोक या सज़ा। इस गुलामी पर हम बज्रपात करेंगे, आओ इस कानून की अवहेलना करें, सीमा के पार हो चल, सब कुछ सहना पर इस अपमानजनक कानून को न मानना।

[समस्त भारतवासी एक स्वर से "भारतमाता की जय" कहकर आगे बढ़ते हैं]

गान्धी का पुत्र—(उनकी स्त्री से) माता, इन लोगों के साथ हम भी जांयगे।

गा० स्त्री—अच्छा पुत्र जाना तनिक ठहरो।

गा०—प्रिये, सब भाई आगे बढ़ गये, बिलम्ब करना ठीक नहीं—(पुत्र से) बेटा? सावधान ईश्वर में विश्वास रखना वह अच्छा ही करेगा।

गा० पुत्र—(पैर पर गिर प्रणाम करता है) माता का ख़याल रखियेगा (कह कर आगे बढ़ता है)

गा० स्त्री—नाथ! अब चलिये, आज मेरा भी नारी तन सार्थक हुआ।

(सब सीमा के पार जाते हैं)

५ दृश्य

मि॰ रिच और दाऊदमोहम्मद

सड़क।

दा० मो—हलो मि० रिच लीजिए मैं आप ही के यहां जा रहा था। गान्धी और पोलक तो जेल में हैं अब सब भार हमीं लोगों पर है। एक तो बराबर मि० गोखले और इङ्गलैण्ड को समाचार भेजना और फिर यहां इस बात की फिकिर करना कि सब के सब हड़ताल करदें। कुछ हड़ताल तो शुरू होगई है पर जहां बाकी है वहां भी हो तब ठीक है। इसी भार के कारण हम जेल भी नहीं जा सकते खैर आप अपने तरफ का काम किये चलिए इधर का हम किये चलेंगे। खुदा हाफ़िज़ है।

रिच—ठहरो देखो वो क्या शोर गुल है।

(कुछ सिपाहियों का एक युवती विधवा को पकड़े हुए प्रवेश)

स्त्री०—अरे भाई क्यों पीटते हो क्या मुझ पर दया नहीं आती! मैं विधवा हूं मैं कहां से टिकस का रुपया लाऊं जो तुम्हें दूं और जो यहां न रहूं तो कहां रहूं, कहां जाऊं। लड़काईं से तो यहां रहती थी। हाय दई ४५) रुपया कहां से लाऊं (रोती है) मुझे छोड़ दो, छोड़ दो।

रिच—दाऊद It is horrible piteous Oh God

स्त्री—अरे क्या कोई बचानेवाला नहीं है? बचावै कौन? जब सरकारही ऐसा करती है पर जब मैं अपने पति के साथ कलकत्ते से यहां चली थी तब भर्तीवाले साहेब लोग कहते थे कि वहां बड़े सुख से रहोगी। हा ईश्वर वह सुख कहां है! क्या साहेब लोग भी ऐसे निष्ठुर, झूठे और पापी होते हैं। मैं

पुस्तकालय गुरुकुल कांगड़ी

तो समझती थीं कि ये बड़े सच्चे होते हैं । मेरे परमेश्वर ! मुझे बचाओ, बचाओ—!

(सिपाही ले जाते हैं)

दा० मो—बेशक इससे बढ़कर कोई टिप्पणी भारत सरकार की कार्रवाई पर नहीं हो सकती । जब भारत सरकार ने कुलियों को ऐसा विश्वास देकर भेजा था तो उसका फ़र्ज़ था कि यहां पर सदा इस बात को देखा करती कि वे सुख से रहते हैं।

रिच—बृटिश गवर्नमेंट को अवश्य चुप रहने के लिए पछताना होगा। जब एक एक के हृदय में ऐसी बातों का संचार हो जायगा तो निश्चय समस्त भारत समझ लेगा कि उनका सरकार उनके अधिकार के रक्षा के लिए नहीं है।

दा० मो—मि० रिच बिलकुल ठीक है । चलिये गोखले को लिख दें और कहें कि यदि उनकी सरकार अति शीघ्र इस प्रश्न का निपटारा न करेगी तो एक भीषण भविष्य अवश्य सामने आवेगा ।

(दोनों चलते हैं)

(खान के मालिक और पकड़े हुए कुली का प्रवेश)

मनेजर—यू रासकिल तुम चाहता है सब काम छोड़ दें । हम तुम्हारा बोटी २ काट डालेगा ।

कुली—साहेब आप हमको यह सब क्यों कहते हैं। जब हम काम छोड़ेंगे तो कानून से जो सज़ा हो दिला दीजियेगा । सेतमेत की गाली देने से क्या लाभ ।

मे०—इल्लू का पट्ठा डैम, सुअर बोलता है। देखो अगर तुम अभी से जाकर ठीक २ काम करेगा, नहीं तो हम तुमको खूब ठीक करेगा ।

कुली—हाय विधाता ! साहेब अगर आप चाहते हैं कि हम हिन्दुस्तानी काम करें तो हमारे साथ जुल्म क्यों करते हैं । कानून में जो बुराइयां आप लोगों ने रखी हैं उसे सुधरवा दीजिए । फिर हम लोग तो यहां काम करने के लिए आए हैं देखियेगा कि कैसा काम करते हैं। साहब आपही बताइये कि जब तक आप हमको और हमारे बीबी बच्चों को ऐसा कष्ट देते रहेंगे तब तक हम कै दिन आपका काम ठीक तरह से कर सकेंगे ।

मे०—रोग (Rogue), चुप रहो हम तुम से पालीटिक्स डिसकस नहीं करता । एक दफ़ा में बेलो काम करेगा कि नहीं ?

कुली—साहेब दया कीजिये तनिक हमारी बात तो--

(मैनेजर एक हंटर से ज़ोर से कुली को मारना शुरू करता है, कुली गिर पड़ता है)

मे०—यू सूअर तुमको इस माफिक काम करने होगा। एक ठोकर मुहं पर देता है ।

मे०—बोलो, तुम काम करेगा-

कुली—साहब आपने अपनी बात तोड़ दी है मैं भी अपना सट्टा तोड़ता हूं मैं आपका कुली नहीं हूं मेरे ऊपर हाथ मत उठाना ।

मे०—(सिपाहियों से) इसका हाथ पैर बांधो, जेल ले जाओ ।

कुली—हा ! जब एक दिन यों मरना ही था तो इस निष्क्रिय प्रतिरोध का अवलम्बन क्यों किया । युद्ध क्यों न किया जिससे यदि खुद मरते तो इन पापियों में से दो एक के भार से वसुन्धरा को हलकी तो करते जाते । भगवन् भगवन् भगवन् (मृत्यु)

(सिपाही ले जाते हैं)

६ दृश्य ।

नेटाल ।

(नेटाल के कारागृह के बाहर एक मुसलमान कुली फौड़े से सड़क खोद रहा है, हाथ में छाले पड़ने से थक कर बैठे २ गाता है।)

गजल ।

" उर्यानी न हैरानी न थे पाव में छाले,
हम भी थे कभी आह बड़े नाज़ों के पाले।
जुल खाया फंसे उड़ गई आज़ादी ओ राहत,
अल्लाह ये दिन अपने ते दुश्मन पर न डाले।
मारा है मिटाया है हमें आह उन्हीं ने,
कर बैठे थे हम जानो जिगर जिनके हवाले।
हमने ते हमेशा तेरी खुशनूदही चाही,
खुद बिगड़े मगर काम तेरे सारे सम्हाले।
उसका ये सिला हमको मिला उफरी मुरौवत॥
बरबाद किया डालदिया जान के लाले।
सौगन्द है तुझको तेरे उस जौरे ज़फा की,
जी भरके हमें जितना सताना हो सताले॥
बेबस हुए ज़लील हुए मिट ते चुके हम,
अब और क़यामत भी जो ढाना हो सो ढाले।
किस्मत का कभी अपने भी चमकैगा सितारा,
हम भी कभी देखेंगे आज़ादी के उँजाले॥
बदले की लहर तब तेरे सरचढ़ के कहैगी,
था ज़हर पै केचल से ये लाचार थे काले।"

[पटाक्षेप।]

जमादार--क्यों बे ये तानें लगा रहा है या कुछ काम करेगा?

कुली—(जमादार को हाथ दिखलाता है) भला देखिये किस तरह काम करूं खून बह निकला है, छालों में बड़ा दर्द है, कुछ देर के लिए माफ फर्माइये।

जमादार—जा, जा, नखरे बहुत देख लिए अब काम करता है कि दूं एक दो हंटर।

कुली—खोदा के लिए ज़रा देखो तो भाई मेरी क्या हालत है।

जमादार—तू ऐसे न मानेगा। (यह कह कर गैंडे के चमड़े के हंटर से पीटता है कुली गिर कर बेहोश होता है।)

(डाक्टर का प्रवेश)

डा०—क्या मामला है?

जमा०—यह काम नहीं करता।

डा०—(कुली को देख कर) नहीं नहीं यह काम करने लायक नहीं है, यह फौड़ा उठाने के लायक भी नहीं है, इसे स्पताल ले जाओ।

(सब जाते हैं)

७ दृश्य ।

(मि० रिच का कमरा ! मि० दाऊद का शीघ्रता से प्रवेश।)

दा० मो०—मि० रिच ! आपने सुना। इस्परेंजा में पुलीस ने गोली चलाई है, ४ हिन्दुस्तानी मर गये हैं और करीब ३० के घायल हैं।

रि०—इस दर्दनाक किस्से को मैं सुन चुका हूं इन जालिमों का वक्त आ गया है। घबड़ाइये नहीं खुदा परवर्दिग़ार है हमने तार भेज दिये हैं। आप जाइये देखिये और कुछ नई बात है या नहीं?

[पटाक्षेप।]

८ दृश्य ।

जेल ।

(प्रातःकाल का समय है मि० गान्धी, हसन मिर्ज़ा, अन्य निष्क्रिय प्रतिरोधी और जमादार जेल के बराम्दे में खड़े हैं।)

ह० मि०—जेल मुबारक, कहिये रात को नींद आई थी।

गा०—जेल नहीं, यह हमलोगों का राजभवन है। रात को सोये भी थे, किन्तु अभी पत्थल पर आधा कम्मल ओढ़कर सोने की

आदत नहीं। दो एक दिन में यह भी रवां हो जायगा।

जमा०—गान्धी चल के पाखाना साफ करो; रोज़ सुबह यही काम तुम्हें करना होगा।

१ निष्क्रिय प्र०—(गान्धी से) आप ठहरिये। हम जाकर पाखाना साफ कर देते हैं।

गा०—नहीं नहीं इसकी कोई आवश्यकता नहीं। मैं खुद अपना काम करूंगा। हमें इस मैले काम के करने की भी आदत डालनी चाहिये, इससे भी भविष्य में लाभ होगा।

जमा०—यह क्या बड़बड़ लगा रक्खी है, चलता है कि नहीं? वहां से आकर इन लोगों के साथ तुझे फावड़े से वह सख़ ज़मीन खोदनी होगी।

गा०—चलिये। मैं सब काम करने को तैयार हूं। मैं परीक्षा से पराङ्मुख होनेवाला नहीं। जीवन कर्ममय है, और कर्तव्य पालन उसका मुख्य अङ्ग है।

(जाते हैं।)

६ दृश्य।

दिल्ली का एक भवन।

(मि० गोखले; रिच और दाऊद के तार सामने रखे हुए सोच रहे हैं।)

गोखले—आह क्या ही कठिन समय उपस्थित हुआ है—सत्य है :—

"सेवा समान अति दुस्सह दुःखदायी।
दुर्वृत्ति और अवलोकन में न आयी।
जीना कभी न उसका जग में भला है।
जो पेट हेतु परसेवा को चला है॥"

पर इससे क्या? सेवा क्या गोरे चमड़ेवाले नहीं करते, उनको तो यह दुःख कहीं नहीं है—वास्तव में ये सब बातें इससे हैं कि हमारे हाथ में कुछ अधिकार नहीं है—यदि आज इन कमबख़्त कालोनिस्ट के समान हम भी स्वतंत्र होते तो हम भी वोरों को देख लेते—यह सब फसाद, कष्ट और अत्याचार, इसी कारण हैं कि हमें स्वराज्य नहीं प्राप्त है। अब तो कष्ट भी असहनीय है, क्रोध भी विशेष आता है—इतने दिनों से प्रयत्न करते २ अपना स्वभाव बड़ा गंभीर और शान्तिप्रिय कर लिया था पर इन पैशाचिक अत्याचारों की कहानी पढ़कर क्रोध से हम भी पागल हो जाते हैं-किस नीति का अवलम्बन कर कुछ समझ में नहीं आता। रुपया भेजने से क्या जी को सन्तोष हो सकता है—पर सिवाय रुपया भेजने के और करही क्या सकते हैं।

(नौकर का डाक लेकर प्रवेश)

(गोखले एक २ पत्र पढ़ते हैं फिर इसको ज़ोर से पढ़ने लगे)

मि० गोखले,

यह पत्र केवल आपको इसलिए लिखा जाता है कि आप अपनी चिन्ता से रहित हो जांय—खाली खुशामद से राजनीति पर असर होता आपको जानना चाहिये कि "बिन भय होय न प्रीति।" जो काम आप इतने दिनों से नहीं कर सके हैं वह हम एक महीने में कर के दिखला देंगे—आप बुद्धिमान हैं आप समझ लेंगे—लार्ड कर्ज़न ने हम लोगों के हृदय में स्वराज्य की केवल उत्कण्ठा ही पैदा की थी किन्तु मालूम होता है बोथा और स्मट्स हमारे हृदय में उस भाव को इतना दृढ़ कर देंगे कि बिना स्वराज्य प्राप्त किये हमें चैन न होगा...... हम लोग भी तैयार हो गये हैं। आपको गवर्नमेण्ट का साथ छोड़ना होगा, यदि आपको यह स्वीकार नहीं है तो लाचार आप पर बम चलाया जायगा। सावधान, सभा की ओर से यह चेतावनी दी जाती है।

आपका भाई।

गो०—(पत्र को पुलिस कमिश्नर के पास भेजते हैं।)

(स्वगत)—अफसोस ! इन लोगों का भी दिमाग़ कैसा फिर गया है। यह हमारी ही हत्या करने पर उतारू हैं, अच्छी बात है यदि देश का लाभ इसी से है तो करलें किन्तु हम जानते हैं कि बमबाजी से स्थायी लाभ कभी किसी देश को नहीं प्राप्त हुआ।

ये लोग यह नहीं समझते कि भारतीय गवर्नमेण्ट, बृटिश गवर्नमेण्ट के आधीन है, वह स्वतंत्रतापूर्वक कोई नीति सम्पादन नहीं कर सकती, उधर बोर स्वतंत्र हैं, उन्हें अपनी स्वतंत्रता और अपने बल का गर्व है। जब तक भारतीय गवर्नमेण्ट ज़ोर नहीं बांधती, जब तक वह हमारा प्रस्ताव नहीं पास करती और दक्षिण अफ्रीका से बदला लेने को नहीं तैयार होती तब तक इस झगड़े का हल होना कठिन है। बिन भय होय न प्रीति ! बिन भय होय न प्रीति !!

[पटाक्षेप ।]

१० दृश्य ।

प्रयाग के एक गृह में बहुत से नवयुवक बैठे हैं

गांगोली—ईश्वर को बारंबार धन्यवाद है। जो काम सहस्रों आन्दोलन करनेवाले २०, ३० वर्ष में न कर सकते, जितना असन्तोष वे एक शताब्दि में न फैला सकते वह ईश्वर बृटिश गवर्नमेंट और बोरों से सहज ही में फैलवाये देता है।

रामलोचन-किन्तु द० एफ्रिका के सम्बन्ध में मि० गोखले किस नीति का अवलंबन कर रहे हैं, उनका कार्य क्रम (Propaganda) क्या है ? केवल चन्दा भेजना। भारत स्वयम् दरिद्र है इस समय भी अकाल चारों ओर से उसे ग्रस रहा है। किन्तु इस पर भी हम लोगों को कोई आपत्ति नहीं है किन्तु चन्दा भेजने के साथ ही साथ कुछ और भी होना चाहिये। क्या कारण है कि इसी भारत के निवासी जो "गोआ" में रहते हैं और वहां से पूर्वीय और द० एफ्रिका में जाकर बसते हैं उनसे टैक्स नहीं लिया जाता ? केवल इस लिए न कि वे बृटिश प्रजा नहीं हैं और पोर्तुगाल की गवर्नमेंट से उन्हें वेही स्वत्व प्राप्त हैं जो पोर्तुगाल के गोरे निवासियों को प्राप्त हैं। क्या चन्दा भेज देने ही से हमारे प्रवासी भाइयों की मान रक्षा हो जायगी ? क्या उन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान में स्वच्छन्दता पूर्वक जाकर बसने का अधिकार हो जायगा ? क्या जितनी संख्या में हम चाहें वहां पर जाकर बस सकेंगे।

(**एक सभासद**)—नहीं नहीं कदापि नहीं यह सब कुछ न होगा।) क्या मि० गोखले यह समझते हैं कि इन सब के न होते भी भारतनिवासियों के वास्तविक मान की रक्षा हो सकती है। फिर वृथा केवल चन्दा भेज कर और रक्त सुखाने से क्या लाभ ! हम उतने योग्य नहीं, हम "तीन में न तेरह में" मगर हम इस बात को बख़ूबी जानते हैं कि जब तक कोई कार्यक्रम निर्धारित न होगा Practical step न ली जायगी तब तक हम लोगों को वास्तविक लाभ नहीं पहुंच सकता। क्यों नहीं मि० गोखले बायकाट अस्त्र का प्रयोग करते ? यह नरम दल के राजनैतिक क्षेत्र के बाहर नहीं है, जो बङ्गाल के दुःख दूर करने के लिए काङ्गरेस ने उचित समझा वह इस सर्वमानहन्ता द० एफ्रिका के कानूनों को मिटाने के लिए कहीं अधिक योग्य और आवश्यक है ! हम अराजक दलवाले नहीं हम बमबाज नहीं किन्तु "बायकाट" भी क्या अब माडरेट पालिटिक्स से क्यों बायकाट किया जाता है ?

बहुत से सभासद--(एक स्वर से) बेश, बेश निश्चयी एई ठीक एई आमार कर्तव्य।

शतीश--आपने जिन हर्षसूचक कर्तलध्वनियों से पं० रामलोचन जी की ओज भरी वक्तृता सुनी है उससे यह साफ़ प्रगट होता है कि आप उनकी राय से बिलकुल सहमत हैं।

एक सभासद--वेशक ! वेशक !

अच्छा तो हम लोगों का यह कर्तव्य है कि हम लोग माननीय मि० गोखले की सेवा में निवेदन करें, कि जनसाधारण के सामने हम लोग इस प्रस्ताव को उपस्थित करें, काङ्गरेस के प्लेटफार्म पर से इसकी चर्चा शुरू होनी चाहिये।

एक सभासद--The congress is dead, The congress is dead काङ्गरेस की मृत्यु हो चुकी है।

नहीं नहीं आपका कहना ठीक नहीं है यद्यपि वह कई अंशों में ठीक है। काङ्गरेस अभी जीवित है, उसके शरीर में गर्मी पहुंचाना उसकी आशा का रूप, जीवनमय बनाना हम लोगों का कर्तव्य है। काङ्गरेस हमारी है और हम उसके हैं। वह किसी एक व्यक्ति की जायदाद नहीं। हम लोगों को अपने प्रस्ताव को नेशन के सामने उपस्थित करना होगा, उस समय यह विदित हो जायगा कि वह इस पथ पर अग्रसर होने को प्रस्तुत है कि नहीं ? मि० गोखले आदि अन्य दूरदर्शी नेताओं की भी राय मालूम होगी। यद्यपि हम लोगों की सम्मति में हमारे तरकस में एक यही अस्त्र ऐसा है जिससे होम मिनिष्ट्री के हम लोग कान खड़े कर सकते हैं और वास्तव में इस अन्याय को दूर करा सकते हैं तदपि देखना है मि० गोखले आदि की इस सम्बन्ध में क्या सम्मति है। वे लोग भी स्वतंत्रता के प्रेमी, देशभक्त और दूरदर्शी राजनीतिज्ञ हैं, उन लोगों ने भी तो अवश्य ही इस सम्बन्ध में कुछ विचार किया होगा।

गांगोली—यह तो ठीक ही है किन्तु हम लोगों को भी कुछ कार्यक्रम निश्चित करके चलना चाहिये। आप लोग यह भली भांति से जानते हैं कि इस संबन्ध में यदि कोई कुछ कर सकता है तो वह साम्राजिक गवर्नमेंट है। उसके ऊपर दबाव वेही डाल सकते हैं जिनका उसके संगठन में कुछ हाथ है किन्तु उन्हें इस समय अपने ही झगड़ों से फुर्सत नहीं है। उनकी सहानुभूति आकर्षित करने के लिए यह आवश्यक है कि उन्हें इस घोर अन्याय का दिग्दर्शन कराया जाय, मि० गोखले तथा अन्य नेता वहां जाकर सभाएं करें, वक्तृताएं दें क्योंकि वोट देनेवालों के दबाव के विना साम्राजिक गवर्नमेंट से भी कुछ आशा करना ठीक नहीं है।

महावीर—बात तो कुछ अनहोनी सी है। आज मत जागृति करने से क्या होगा? विलियम स्टेड लिखते २ मर गये, किन्तु कुछ न हुआ। उनके सदृश प्रभावशाली मनुष्य कहां से लाओगे? खैर मुझे कोई आपत्ति नहीं है, यदि आप लोग यही ठीक समझते हैं तो मैं भी आप लोगों के साथ चलने को तैयार हूं।

[एक मुसलमान युवक का एक गज़ल पढ़ना]

मु० यु—

हम अपनी ही हिम्मत में ज़फर देख रहे हैं,
नादान ये नालों का असर देख रहे हैं।
वो ले तो चुके काम को, इज्जत को वकत को,
क्या चाट है अब खूने जिगर देख रहे हैं।
वो तो किए देते हैं रगेजा को दोपारा,
हमको है गुमा दर्दे जिगर देख रहे हैं।
हम जो मुतहम्मिल न थे एक तिरछी नज़र के,
अबरीशे खुद औ दस्ते दिगर देख रहे हैं।
होय सुबहे सादकी या हज़रते बारी,
हम तालये खुफ़्ता कि सहर देख रहे हैं।

(सभा विसर्जन)

" मर्माहत "

बीबी शेख महताब।

ये पहली मुसलमान महिला हैं जिन्हें निष्क्रिय प्रतिरोध के कारण जेल की सज़ा हुई। वाक्सरस्ट जाने के कारण १ अक्तूबर १९१३ ई० को इन्हें तीन महीने की कड़ी कैद की सज़ा हुई थी। (भा० मि०)

दक्षिण एफ्रिका की कहानी।

दक्षिण एफ्रिका।

नेटाल, केप कालोनी, आरेंजिया और ट्रांसवाल, चार प्रदेशों को एक में मिलाकर दक्षिण एफ्रिका का नाम दिया गया है।

भारतवासी।

इनमें प्रायः १॥ लक्ष भारतवासी निवास करते हैं। इन लोगों को हम चार श्रेणी में विभक्त कर सकते हैं (१) प्रतिज्ञाबद्ध कुली (२) कुली जो सट्टे का समय पूरा कर चुके

हैं (३) व्यवसायी और (४) जो इन लोगों की सहायता करने के लिए गये हैं जैसे पंडित, प्रोहित आदि।

कैसे और क्यों गये।

दक्षिण एफ्रिका ऊष्णप्रधान देश है। अङ्गरेज़ वहां कुछ मेहनत आदि करने में अशक्त हैं, वहां के आदि निवासी काफिर आदि विश्वास के योग्य नहीं। इस कारण से अङ्गरेज़ों को ऐसे मज़दूरों की आवश्यकता हुई जो विश्वासयोग्य, सस्ते, तथा मेहनती हों। इसलिए उन लोगों ने साम्राजिक गवर्नमेंट से लिखा पढ़ी शुरू की। साम्राजिक गवर्नमेंट ने भारतीय गवर्नमेंट को लिखा और मज़दूरों को भेजने पर राज़ी किया। उस समय बड़े बड़े प्रलोभन दिये गये थे। यह कहा गया था कि ५ वर्ष तक काम करने के बाद वे स्वतंत्र हो जांयगे, और ज़मीन आदि लेकर स्वतंत्र रीति से स्वतंत्रतापूर्वक जीवन यापन करेंगे। भारतवासियों का जहाज़ भेजा गया और उन लोगों की मेहनत और काम से अङ्गरेज़ बड़े प्रसन्न हुए। उनमें से अवधि पूरी होने पर बहुत से स्वतन्त्र नागरिक भी होगये। उस समय उन्हें पार्लामेंट और म्युनिसिपैलिटी के मेम्बर चुनने में वोट देने का भी अधिकार था, उन्हें ज़मीन मुफ़्त दी जाती थी और हर तरह से वे खुश रक्खे जाते थे।

गुन ऐगुन होगये।

जो स्वतन्त्र होगये उन लोगों ने व्यापार, आदि आरंभ किया। भारतवासी प्रकृति ही से कमख़र्च, मेहनती और इमानदार होते हैं। विपरीत इसके अङ्गरेज़ कम काम करनेवाले और साथही साथ शराब कबाब में अधिक व्ययं करने वाले होते हैं। हिन्दुस्तानी व्यापारी अपने कम खर्च के अनुसार कम मुनाफे पर वस्तु बेचते, इससे खरीदार उन्हीं के पास जाते। धीरे धीरे इनकी वृद्धि हुई। अङ्गरेज़ व्यापारियों को यह कांटा सा चुभने लगा। उन लोगों ने इनके विरुद्ध आवाज़ उठाई, चारों ओर से पुकार मचाई जाने लगी कि भारतवासी निकाले जांय। एक कमीशन बैठा उसने खूब जांच पड़ताल कर यह सम्मति दी कि यदि भारतवासी निकाल दिए जांयगे तो देश को हानि पहुंचेगी, जो कुछ देश ने उन्नति की है उसके एकमात्र कारण भारतवासी हैं यदि ये न रहेंगे तो देश को क्षति पहुंचेगी। कुछ दिनों तक फिर मामला ठंढा रहा किन्तु फिर अङ्गरेज़ों ने ज़ोर बांधा। अब वे इस बात पर कटिबद्ध होगये हैं कि हिन्दुस्तानी किसी प्रकार से वहां पर न रहने पावें।

सताने के ढंग।

हम कह चुके हैं कि ४ प्रकार के भारतवासी वहां निवास करते हैं (१) प्रतिज्ञाबद्ध कुली (२) प्रतिज्ञामुक्त कुली (२) व्यापारी और इतर (४) सहायक लोग। कुली तो उनके गुलाम हैं ही, इन लोगों पर उन लोगों ने मनमाना अत्याचार शुरू किया। ये बेचारे न उनकी भाषा जानते हैं, न उनकी रीति नीति, न उनके कानून। बात बात में ये उन्हें सताने लगे और तनिक सी भूल होने से इन्हें काराबास हो जाता है। एक मज़दूर किसी अपने मित्र से मिलने के लिए एक कोस पर गया बस उसने कुसूर किया और इसके लिए उसे दण्ड मिलता है। एक अङ्गरेज़ अपने कुलियों पर बड़ा अत्याचार करता था। असह्य होने पर एक कुली और उसकी स्त्री काम छोड़कर भागो। वे गिरफ़्तार हुए, मैजिस्ट्रेट के सामने पेश किये गये। मैजिस्ट्रेट से उन लोगों ने कहा कि वे अन्यत्र काम करने पर राज़ी हैं किन्तु उस ज़ालिम के आधीन वे रहना नहीं चाहते। मेजिस्ट्रेट ने एक न सुना, उन्हें कारावास हुआ। छूटने पर फिर उन्हें उनका वही मालिक पकड़ लेगया। ये समझे थे कि कदाचित अब वह उतना न सतायेगा। किन्तु इस बार उसने इतना सताया कि उनका

जीवन उन्हें भारी होगया, वे फिर भागे और पकड़े गये। मैजिष्ट्रेट से उन लोगों ने कहा कि वे जेल में रहना सहस्र गुना अधिक पसन्द करते हैं। वे पुराने मालिक के काम पर न जांयगे। मैजिष्ट्रेट ने न माना, उन लोगों ने कहा कि उसके यहां काम करने की अपेक्षा उन्हें आत्महत्या करना अधिकतर प्रिय है। कौन सुनता है। मैजिष्ट्रेट ने उन्हें उनके मालिक के सुपुर्द कर दिया। वह उन्हें लेकर चला, रास्ते में उसने उन दोनों को गैंड़े के चमड़े की बनी हुई चाबुक से पीटना आरंभ किया। वे निर्जीव हो भूतलशायी हुए। मुकदमा उठा। मैजिष्ट्रेट को सबूतों के कारण विवश हो लिखना पड़ा कि वे चाबुक से पीटे गये हैं। पाठक समझते होंगे कि पीटनेवाले को सज़ा होगी, वे समझते होंगे कि स्त्री पर हंटर चलानेवाले को इसाई राज्य में दण्ड मिला होगा किन्तु नहीं मैजिष्ट्रेट ने अपने फैसले में लिखा कि मालिक ने भूल की कि उसने मर्दों की भांति यह नहीं स्वीकार कर लिया कि उसने पीटा है अर्थात् यदि वह स्वीकार करलिये होता कि उसने पीटा है तो वह दण्डनीय नहीं था। पाठक अब भी समझते होंगे कि कदाचित इस ही भूल के कारण उस पर जुर्माना ही हुआ होगा। नहीं नहीं पाठक आप भ्रम में हैं उस पर कुछ नहीं हुआ। मैजिष्ट्रेट ने उससे केवल यह कह दिया कि देखो भविष्य में ऐसा न करना। यह वहां का न्याय है और इस प्रकार से कुली वहां सताये जाते हैं।

प्रतिज्ञामुक्त कुली।

इनको दबाने के लिए इनपर ३ पाउण्ड या ४५) का जज़िया लगाया गया है। न देने पर इन्हें जेल जाना होता है। इसका अर्थ यही है किया तो फिर वे प्रतिज्ञाबद्ध कुली होजांय और या देश छोड़कर चले जांय। यह कर १६ वर्ष से अधिक के बालकों और १३ वर्ष से अधिक की कन्याओं पर भी लगाया जाता है। अनुमान करिये कि एक कुटुम्ब में चार जन हैं, एक पुरुष, एक स्त्री, एक बालक और एक बालिका। इन सब को १२ पाउण्ड या १८० का वार्षिक कर जज़िया देना पड़ता है। अर्थात् इन लोगों को १५) मासिक केवल जज़िया कर देना पड़ता है। औसद मासिक आमदनी ४ आदमियों की वहां २ पाउण्ड या ३०) होती है जिसमें से १५) जज़िया का निकल गया बाकी बचे १५)। पाठक विचार करिये भारत ऐसे दरिद्र देश में भी १५) में चार आदमियों का निर्बाह नहीं हो सकता और फिर इस १५) में से भी उन्हें अन्य कर देने पड़ते हैं। इस पर भी अत्याचार होता है। कोई मनुष्य जज़िया न दे सका, उसकी गिरफ़ारी के लिए वारेन्ट निकला, पुलिस के यमदूत ने उसे पकड़ा और उसने ३) ४) लेकर उसे छोड़ दिया, जब तक वारेन्ट की मियाद रहती है पुलीसवाला योंही उनके पास जो कुछ रहता है लेकर उनका खून चूसा करता है बाद में अवधि पूरी होने के दिन वह उसे पकड़ ले जाता है और वह जेल में सड़ता है। इस प्रकार से भारतवासी सताये जाते हैं। नेटाल के एक प्रधानमंत्री का कथन है कि यह टैक्स मनुष्यों और स्त्रियों को नीच से नीच कर्म करने पर बाध्य करता है।

व्यवसायी।

दूकानदारों को सताने का ढंग यह है। एक दूकान खूब चलरही है। लाइसेन्स की अवधि पूरी हुई। नया लाइसेन्स लेने को व्यापारी मैजिष्ट्रेट के पास गया। बस उससे कह दिया गया कि यदि यहां से तुम दूकान उठाकर फलाने कोने में ले जाओ तो लाइसेन्स मिलेगा नहीं तो नहीं। लाचार होकर वह राज़ी होगया, रोज़गार नाश हुआ, खरीदार टूटे और वहां पर जमी जमाई दूकान पर एक अङ्गरेज़ ने दूकान की। खैर मेहनत और ईमानदारी के कारण जहां पर व्यापारी गया वहां फिर उसकी दूकान जम-

गई बस फिर उसके साथ वही बर्ताव, इतनाही नहीं हिन्दुस्तानी किसी को साक्षी नहीं बना सकता, केवल गैर मनुष्यों को ही नहीं वह अपने पुत्र को भी साक्षी नहीं बना सकता। फल यह होता है कि व्यापारी बुड्ढा हुआ वह अपने लड़के को दूकान सौंपा चाहता है, यह वह कर नहीं सकता। बस इसके मरतेही दूकान नीलाम करदी जाती है, माल सरकारी होगया। कहिये पाठक! नादिरशाही इससे सहस्र गुनी अच्छी थी या नहीं?

पाठको! यह सदा ध्यान में रखना चाहिये कि यह सब अन्याय केवल उन भारतवासियों के साथ होता है जो बृटिश रियाया है! गोआ, पांडोचेरी, चन्द्रनगर आदि के निवासी भारतवासियों के साथ मजाल नहीं कि कोई ऐसा व्यवहार करे।

धर्मपत्नी नहीं कुलटा।

ऐसे २ अत्याचारों से भी दक्षिण अफ्रीका के पशुओं को शान्ति न पहुंची। जो भारतवासी ५ वर्ष तक काम करने पर स्वतंत्र हो जाते थे और उसके बाद ३ वर्ष तक जज़िया टैक्स भी दे देते थे उन्हें वहां बसने का पूरा अधिकार हो जाता था; यही नहीं जो भारतवासी वहीं पैदा होकर पलते थे उन्हें भी ऐसा ही अधिकार प्राप्त हो जाता था, वे अपनी पत्नी को भारत से लेजाकर वहां निवास कर सकते थे और इस प्रकार से भारतवासियों की संख्या नित्यप्रति बढ़ती जाती थी। यह एक कठिन समस्या थी, इसको रोकने के उपाय सोचे जाने लगे। गवर्नमेन्ट ने साफ साफ भारतवासियों की दशा सुधारने को कह कर एक प्रस्ताव पास किया कि एक ब्याहवाली स्त्री दक्षिण अफ्रीका में धर्मपत्नी मानी जाय। पाठकों को विदित है कि हिन्दू और मुसलिम धर्म में एक से अधिक स्त्री से विवाह करने की भी आज्ञा है। प्रस्ताव के पास होते ही भारतवासियों ने विरोध किया किन्तु गवर्नमेन्ट की ओर से कहा गया कि नहीं नहीं एक विवाह की स्त्री धर्मपत्नी मानी जायगी। सौभाग्यवश परीक्षा के लिए एक मामला भी उसी समय सामने उपस्थित हुआ। एक मुसलमान अपनी स्त्री को यहां से लेकर वहां गया। वह रोका गया और मामला न्यायालय में पहुंचा। कोर्ट ने यह फैसला किया कि मुसलिम धर्म में बहुविवाह की आज्ञा है, तथा उसका विवाह किसी पादरी द्वारा रजिष्टर में दर्ज नहीं हुआ है, इसलिए उसकी पत्नी धर्मपत्नी नहीं वरन रखुई है, अर्थात् उसकी सन्तान दोगली होगी और वे उसके वारिस भी न हो सकेंगे। पाठक गवर्नमेन्ट की पहिली बातों को याद कीजिये, यह दग़ाबाज़ी, यह धोखेबाज़ी, यह अन्याय भारतीय बृटिश प्रजा के साथ किया जा रहा है।

मि० गांधी और उनकी पत्नी।

इससे लोगों को बड़ा दुःख हुआ। एक दिन मि० गान्धी की पत्नी ने उनसे कहा अब मैं तुम्हारी पत्नी नहीं, हमारे बच्चे हमारे वारिस नहीं, ऐसे कानून की छाया में रहकर क्या होगा, चलो घर को लौट चलें। किन्तु वीर गान्धी ने कहा "यह कापुरुषों का काम होगा, हम तो भाग चल किन्तु हमारे अन्य भाइयों का क्या होगा? वे कहां जांयगे और क्या करेंगे? हम लोग यहीं रहेंगे, लड़ेंगे, जेल जांयगे, और यहीं जान देंगे? यह प्रश्न हमारा तुम्हारा नहीं है, यह जननी जन्मभूमि का अपमान है; यह भारतमाता को कलुषित करना है, उनका मुखउज्ज्वल करने को हम रहेंगे और वह कोमलाङ्गी ललना भी जेल जाने को तैयार हुई। पाठको, वहां जेल में बड़ी सख़्तमेहनत ली जाती है और स्मरण रहे कि गांधी और उनकी पत्नी दोनों ही बड़े २ अमीर घरानों की कलियां हैं और बड़े लाड़ प्यार से पाले गये हैं। किन्तु

भारत माता के नाम पर जानें देने के लिए आज वे मान युद्ध के रण क्षेत्र में खड़े हैं।

हम सहायता क्यों करें।

प्रथम तो इसलिए कि वे हमारे भाई हैं वे अपने लिए नहीं वरन् अपने और हमारे दोनों की जननी के मान के लिए लड़ रहे हैं। पिछली निष्क्रिय प्रतिरोध की लड़ाई में हमारे प्रवासी भाइयों को ७५ लाख की हानि सहनी पड़ी थी। उस समय हम लोगों ने केवल एक लाख से उनकी सहायता की थी उसमें से भी ७५०००) मि० रतनताता ने दिया था। १॥ डेढ़ लाख प्रवासी भाइयों ने ७५ लाख की हानि उठाई और २४ करोड़ भारतवासियों ने केवल २५०००) से उनकी सहायता की। कितनी लज्जा की बात है किन्तु उस समय उनके पास धन था, उन्होंने कुछ परवाह न की। अब वे बिलकुल दीन होगये हैं, आठ २ दस २ लक्ष के प्र अब तरकारी का झाबा शिर पर रखकर बे रहे हैं, घर के घर उजड़ गये हैं, उनके पास पैसा नहीं है। क्या ऐसे समय में उनकी सहायता करना हमारा कर्तव्य नहीं है? इसके सिवाय इस समय भारतीय राष्ट्रीयता रूपी सुवर्ण दक्षिण एफ्रिका की गवर्नमेंट रूपी अग्नि में तपाया जा रहा है। भारतीय राष्ट्रीयता की अग्नि शलाका दक्षिण एफ्रिका की गवर्नमेंट रूपी हथौड़े से पीटी जा रही है, इस परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर भारतमाता का मुख उज्वल होगा, एफ्रिका ही नहीं वरन केनाडा, वेनीज़ुला, आष्ट्रेलिया आदि में हमलोग रह सकेंगे। आकाश मेघाच्छन्न है किन्तु यह आशाजनक है और कहता है कि सूय का प्रकाश शीघ्रही दिखाई देगा।

"आर० ए०"

केनाडा में भारतवासी।

[लेखक—श्रीयुत चारूचन्द्र वन्द्योपाध्याय।]

उत्तर अमेरिका में केनाडा नामक जो उपनिवेश है, उसमें इस समय प्रायः ५००० भारतवासी रहते हैं। ये लोग प्रायः सभी पुरुष हैं, स्त्रियां केवल दोही चार हैं। खेतीबारी का काम तथा अन्यान्य प्रकार के शारीरिक परिश्रमों द्वारा जीविका निर्वाह के लिए इन लोगों ने १९०५-०६ ई० से केनाडा में जाना आरम्भ किया। १९०७ ई० के बाद ही उनके विरुद्ध केनाडानिवासियों का द्वेषभाव प्रबल हो चला। उनका विद्वेषभाव बिलकुल "ज़बर्दस्ती" है इसके लिए वे कोई भी कारण नहीं बता सकते। यदि कोई कारण है तो यह है कि भारतवासी परिश्रमी और सच्चरित्र, तथा प्रभुभक्त, "अहिंसा परमोधर्मः" के उपासक, एवं मद्यपान आदि दोष से रहित हैं। वे जापानी और चीनी कुलियों की भांति थोड़ी मज़दूरी में काम न करते हों सो भी नहीं! केनाडा के गोरे वे भी कुलियों के समान मज़दूरी ही करते हैं; किन्तु इतने पर भी भारतवासी ही गोरे कुलियों को अपने कठिन परिश्रम से धन कमा कर देते हैं। सम्पन्न कृषक अथवा अन्य जिस किसी को मज़दूरों की आवश्यकता होती है वे इन्हीं भारतवासी श्रमजीवियों को प्रसन्न करते हैं। सबके सब भारतवासी मज़दूर ही नहीं हैं। अनेक ऐसे भी हैं जिनके पास निज की जगह ज़मीन्दारी है। अनेक ऐसे हैं जिन्होंने वहां पर अपनी व्यवसायकुशलता से हज़ारों रुपये की धन सम्पत्ति जुटाली है। उन्हीं में

एक ऐसे धनी पुरुष भी हैं जिनके व्यापार का मूल-धन तीन लक्ष रुपया है।

इनमें से अधिकांश लोग सिख जाति के हैं। केनाडा की गवर्नमेंट कौंसिल करके अब किसी भारतवासी को वहां जाने नहीं देती। परिणाम यह हुआ है कि इन पांच हज़ार पुरुषों को वहां से अपने २ देश को लौट जाना पड़ेगा;—क्योंकि वहां उनके वंशवृद्धि की कोई सम्भावना नहीं है, कारण उनकी स्त्रियां और उनके परिवारवालों के लिए वहां जाने का कोई उपाय ही नहीं है।

भारतवासियों को केनाडा जाने से रोकने के लिए जो कौंसिल हुई है उसका मन्तव्य यही है कि:—

कोई भी यात्री यदि वह अपने देश से एक ही जहाज़ और एक ही टिकस में बराबर केनाडा तक न आया हो तो उसे जहाज़ पर से नीचे न उतरने दिया जाय।

भारतवर्ष से कोई भी जहाज़ बराबर सीधा केनाडा तक नहीं जाता। भारतवर्ष से केनाडा जाने के लिए चीन देश के हाङ्काङ्ग टापू अथवा किसी अन्य मार्ग, से होकर जाना पड़ता है अस्तु। तात्पर्य यह कि इस मन्तव्य द्वारा भारतवासियों का केनाडा जाना बन्द हो गया है।

जापानी प्रतिवर्ष चार सौ तक केनाडा में जा सकते हैं। प्रत्येक के पास १५०) रु० नगद होना चाहिये। इन दोनों प्रतिज्ञाओं को पालन कर जो जापानी केनाडा जाना चाहे प्रसन्नतापूर्वक अपने परिवारवालों को साथ लेजा सकता है अथवा चाहे तो वहां पर वह विवाह भी कर सकता है।

जापानी और केनाडावासियों का यह मतैक्य राजनैतिक अधिकारजन्य है।

चीनवाले भी प्रत्येक मनुष्य केवल १५०) रुपया कर ही केनाडा जा सकते हैं। वे [illegible] जो अपने साथ एक अथवा एक से अधिक स्त्रियों को वहां लेजा सकते हैं। जापानियों और चीनियों के साथ केनाडानिवासियों का मतभेद नहीं है कारण यह है कि यदि उनके साथ भारतवासियों की भांति अन्याय और अत्याचार किया जाय तो वहां की गवर्नमेंट भी उनसे बदला लेनेवाली नीति का अवलम्बन करने में कसर न करे, और ऐसी अवस्था में उनको विशेष हानि प्राप्त होना स्वाभाविक है।

किन्तु भारतवासी बृटिश साम्राज्य की प्रजा होते हुए भी केनाडा में जाने के योग्य नहीं हैं। भारतवासियों के प्रति इस प्रकार के अनुग्रह का कारण न्यूयार्क के 'लेटररी डाईजेस्ट' अख़बार में प्रकाशित हुआ है। बृटिश हण्ड्यूराज़ अमेरिका का एक बृटिश उपनिवेश है। वहां के गवर्नर सार एरिक जन ईगल्सूसोयेन ने किसी समय सेनानायक का काम किया है। वे कहते हैं "केनाडा में भारतवासी स्वाधीन होना सीखते हैं,—जातिभेद रूप सामाजिक प्रथा की अवज्ञा करना सीखते हैं। सुतरां वे जब भारतवर्ष में फिर कर लौट जांयगे तब असामञ्जस्य और अमिलन के हेतु बनकर भारत-गवर्नमेंट और उसकी प्रजा के साथ जहां तक हो सकेगा मनोमालिन्य पैदा करेंगे, एवं इस प्रकार भारत गवर्नमेण्ट के स्थायित्व के सम्बन्ध में आशङ्का का उद्रेक करते हैं।" सुतरां भारत के निमकख़ार गवर्नर महाशय का मत यह है कि भारतवासी यदि कहीं भी सिर ऊँचा कर के रहने का सुयोग पायेंगे तो भारत गवर्नमेंट के लिए भारी विपत्ति का सामना झेलना पड़ेगा। अतएव भारतवासियों को सदा पराधीन भाव में भारतवर्ष की सीमा के भीतर बन्द करके रखना ही अच्छा है।

चाहे सो हो, इससे दो विषयों में हमारी आखें खुलनी चाहियें (१) हम लोग जितनी हो अधिक संख्या में स्वाधीन देशों में जाकर स्वा-

धीनभाव में रहने का अभ्यास करें उतनाही मङ्गल है;-सुतरां हमारी विदेश यात्रा की जैसे रक्षा हो सके, उसका लोप न हो—यथासाध्य वैसी चेष्टा करना हमारा कर्तव्य है। (२) जाति भेद हमारी सम्पूर्ण राष्ट्रीय क्षमता लाभ का एक बड़ा भारी अन्तराय (विघ्न) है;—यदि कोई अङ्गरेज़ इस प्रथा की प्रशंसा अथवा समर्थन करे तो उसके आन्तरिक मिलाप के सम्बन्ध में सन्देह पैदा होना स्वाभाविक है।

मध्य में १९०८ ईस्वी में केनाडा गवर्नमेंट, बृटिश गवर्नमेंट और भारत गवर्नमेंट ने मिल कर यह परामर्श स्थिर किया था कि केनाडा प्रवासी भारतीयों को बृटिश हण्डयूरास नामक अनुर्वर, जलशून्य अरण्य प्रदेशों में चालान कर देना चाहिये। केनाडा में भारतवासी जन प्रतिमास स्वतन्त्र व्यवसाय से १८०) पैदा करते हैं। केनाडा गवर्नमेंट हण्डयूरास में उनको प्रतिमास २४) रुपया नगद और बारह रुपये का आटा, चावल, दाल आदि रसद देना स्वीकार करती है। किन्तु विशेषता यह है कि केनाडा की स्वाधीन मज़दूरी के बदले में वहां प्रतिज्ञाबद्ध मज़दूरों की भांति काम करना होगा। केनाडा गवर्नमेंट कैसी दयालु है-कैसी उसकी न्यायपरता है--और हमारी गवर्नमेंट ने क्यों कर इस प्रस्ताव पर सम्मति प्रकट की? यह एक बड़े भारी आश्चर्य का विषय है। जो, हो केनाडाप्रवासी भारतीयगण इस प्रस्ताव पर राज़ी न होकर वे अब भी वहां स्वाधीनभाव से अपनी २ जीविका निर्वाह करते हैं।

केनाडा प्रवासी भारतीयों के प्रति कैसा अविचार हो रहा है? इस बात के कई एक दृष्टान्त आज हम अपने पाठकों के सामने उपस्थित करते हैं।

हीरासिंह केनाडा के व्यांकूवर शहर में प्रायः ४ वर्ष निवास करने के अनन्तर अपनी स्त्री और शिशु कन्या को लेजाने के लिए अपने देश आये। उन लोगों को साथ लेकर १९११ ई० में २१ जुलाई को मगिटगल नामक जहाज़ से व्यांकूवर पहुंचे। वे पहले केनाडा के अधिवासी थे, सुतरां उनको तो जहाज़ पर से पृथ्वी पर पैर रखने दिया जाय; किन्तु उनकी स्त्री और कन्या को बलपूर्वक उनके पास से अलग कर भारतवर्ष में चालान करने की चेष्टा की जाय। हीरासिंह भारतवर्ष में अङ्गरेज़ी पल्टन में रहकर अङ्गरेजों की ओर से लड़े थे;--वे सोचने लगे, राजभक्ति का क्याही अच्छा पुरस्कार है! जो हो, तीन हज़ार की नगद ज़मानत दे स्त्री और कन्या का उद्धार कर उन्होंने अदालत में दावा कर दिया। मुकदमे का फल यह हुआ कि उनकी स्त्री और कन्या पर दया करके हाकिम ने उनके साथ रहने देने की आज्ञा दी?

भागसिंह और बलवन्तसिंह दोनों अङ्गरेज़ी पल्टन में सिपाही थे। दोनों ही तीन २ वर्ष से व्याङ्कूवर में रहकर अपनी २ स्त्री और सन्तानों को वहां ले जाने के लिए देश में आये। कलकत्ते की जहाज़ कम्पनियां उनको केनाडा तक का एक टिकट देने में असम्मत थीं। उन्होंने एक मास पर्यन्त कलकत्ते में टिकट खरीदने की चेष्टा को निष्फल देख अन्त में भारत गवर्नमेंट से दरख्वास्त की। गवर्नमेंट ने कहा, "अवश्य तुम लोग जा सकते हो;—केवल केनाडा का कानून मानना पड़ेगा।" यही तो असम्भव है! उसके बाद वे हाङ्काङ्ग में आकर वहां से अमेरिका के युक्त राज्यस्थित फ्रांसिस्को शहर में जहाज़ पर से उतरना चाहते थे। किन्तु वहाँ के कर्मचारियों ने कहा,—"तुम लोग बृटिश प्रजा हो, इसलिए बृटिश साम्राज्य भुक्त केनाडा में जब तुम लोग जहाज़ पर से उतरने नहीं पाते तब हम लोग अपने देश में तुम लोगों को क्यों उतरने देंगे?" अतएव उनको फिर से बहुत सा धन व्यय करके हाङ्काङ्ग लौट आना पड़ा। वहां पर तीन

महीना रह कर १८१२ ई० में २२ जनवरी को वे फ़िर किसी प्रकार से व्याङ्कूवर पहुंचे। वे दोनों ही पहले व्याङ्कूवर के अधिवासी थे, सुतरां उन लोगों को तो जहाज़ से उतरने में कोई आपत्ति नहीं किन्तु उनके परिवारवाले नहीं उतर सकते। वहां भागसिंह और बलवन्तसिंह ने ५०००) नक़द ज़मानत देकर केनाडा गवर्नमेंट से दरख़्वास्त की। मुक़दमे में बहुत रुपया ख़र्च हुआ। उसके अनन्तर "दया कर" केनाडा गवर्नमेंट ने उनके परिवारवालों को उनके साथ रह सकने की आज्ञा दी!

इस प्रकार केवल दो एक स्थान पर केनाडा गवर्नमेंट ने दया कर भारतवासियों के स्त्री परिवार को केनाडा में प्रवेश करने दिया है; किन्तु अधिकांश लोग केनाडा में नहीं जा सकते।

हाकिम सिंह उन्नीसवां बेङ्गल ल्यांसारस घुड़सवार पलटन में थे। वे केनाडा में बहुत सी धन सम्पत्ति एकत्र करके अपने परिवारवालों को वहां पर बुला लाने के लिए देश जाते हैं। किन्तु उनके परिवारवाले आज दो वर्ष से हाङ्काङ्ग में टिकट न मिलने के कारण पड़े हुए हैं टिकट की अपेक्षा कर रहे हैं। किन्तु टिकट नहीं पाते। बृटिश गवर्नमेंट के एक अनुरक्त सिपाही के प्रति यह कितना बड़ा अविचार किया जारहा है।

इसी प्रकार के और भी अनेक दृष्टान्त दिये जा सकते हैं।

कई महीने से, नारायणसिंह, नन्दसिंह, सिंहा और बलवन्त सिंह केनाडा प्रवासी भारतवासियों के प्रतिनिधि स्वरूप हो भारत में आकर उनकी दुर्दशा की हाल स्वदेशवासी बान्धवों के दृष्टिगोचर करते हैं। मार्ग में इङ्गलैण्ड में कतिपय को अपना वक्तव्य सूचित कर आये हैं

दक्षिण अफ्रीका में भारत सन्तान।

[लेखक—श्रीयुत बाबूराव पराड़कर।]

भारत समुद्र के पश्चिम तीर पर अफ्रीका प्रायद्वीप है। यह पृथ्वी के पूर्वी गोलार्ध का अन्यतम महादेश वा खण्ड है। इसके दक्षिण अंश से ही प्रस्तुत विषय का सम्बन्ध है। "केप आव् गुड होप" नेटाल (जिसमें ज़ुलूलैण्ड भी सम्मिलित है), आरेञ्ज फ्री स्टेट और ट्रान्सवाल, ये चार प्रदेश मिलकर वह उपनिवेश बना है। जिसे हम साधारण दक्षिण अफ्रिका कहते हैं। यहां की सरकार यूनियन सरकार कहाती है। पहले इन चारों प्रदेशों के शासन स्वतन्त्र थे; केप आव् गुड होप और नेटाल बृटिश सरकार के अधीन थे और ट्रान्सवाल तथा आरेञ्ज फ्री स्टेट ये दो अलग अर्द्धस्वतंत्र प्रजातंत्र थे। बोर युद्ध के बाद अन्तिम दोनों प्रदेश भी बृटिश सरकार के अधीन हुए तथा सन् १९०९ ईसवी के साउथ अफ्रीका एक्ट के अनुसार सन् १९१० ईसवी की ३१वीं मई को इन्हें स्वराज्य का अधिकार मिला। चारो प्रदेशों की एक पार्लमेंट बनी, जो यूनियन (संयुक्त) पार्लमेंट कहाती है। यहां बृटिश सरकार की ओर से सम्राट् के प्रतिनिधि स्वरूप एक गवर्नर-जनरल रहते हैं। इस पद पर आजकल परलोकगत सुप्रसिद्ध मि० ग्लैडस्टन के पुत्र लार्ड ग्लैडस्टन हैं।

दक्षिण अफ्रीका के आदिम निवासी।

यहां के आदिम निवासी हमारे यहां के

संथाल, भिल्ल और कोल जातियों से भी कहीं अधिक असभ्य जंगली हैं। पहले इन लोगों को कहीं कहीं अरब लोगों की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी थी पर अब अङ्गरेज़, जर्मन और पोर्चुगीज़ जातियों ने प्रायः समस्त अफ्रीका को ही अधीन कर लिया है। स्वतंत्रता के लिए इन्होंने कम प्रयास नहीं किया। अनेक भयङ्कर युद्धों में इनके हज़ारों आदमी कट गये। युद्धों के सिवाय गोरों के नाना प्रकार के 'सभ्य' अत्याचारों से भी इनकी संख्या का बहुत कुछ ह्रास होगया। इनके रक्त से ही अफ्रीका में यूरोपियनों की श्रेष्ठ सभ्यता पुष्ट हुई है और होरही है। सम्भव है कि, एक दो शताब्दियों के बाद ये निर्वंश होजांय और यूरोप के पदार्थ संग्रहालयों में इनके अस्थिपंजर रक्खे जांय।

यूरोपियनों का प्रवेश।

भारत वास्तव में ही बड़ा हतभाग्य देश है! इसके गुण केवल इसके लिए ही नहीं पर औरों के लिए भी घातक हुए हैं। जिस प्रकार इसको खोजते खोजते कोलम्बस को अमेरिका मिला उसी प्रकार इसी की खोज में सन् १४८८ ई० में बार्थोलोम्यू डायज नामक एक पोर्चुगीज़ नाविक को केप आव् गुड होप का पता लगा। अङ्गरेज़ी में "केप" अन्तरीप को कहते हैं। जब भारत की खोज में पोर्चुगीज़ दक्षिण अफ्रीका के दक्षिण तीरवर्ती इस अन्तरीप में पहुंचे तब उनका हताशप्राय हृदय फिर आशान्वित हुआ और इसीलिए उन्होंने इसका नाम "केप आव् गुड होप" (शुभ अन्तरीप) रक्खा। इसी के ९ वर्ष बाद वास्कोडि गामा नामक एक दूसरे पोर्चुगीज़ नाविक ने भारत का पता लगाया। ईसवी की १५वीं शताब्दि में पोर्चुगीज़ लोगों की नाविकशक्ति बहुत बढ़ गई थी। उस समय भारत आदि पूर्वीय देशों के पदार्थ अरब सौदागर वेनिस की राह यूरोप भेजा करते थे। इससे वेनिस नगर बड़ा सम्पत्तिशाली होगया था। यह बहुलाभदायक व्यापार अपने हाथ में करलेने के लिए ही पोर्चुगीज़ लोगों ने भारत का जलमार्ग ढूंढ़ना प्रारंभ किया; इसमें तो वे सफल हुए ही पर साथही अमेरिका और अफ्रीका का भी यूरोप को पता लगा।

पोर्चुगीज़ उपनिवेश।

वास्कोडि गामा भी उसी राह से भारत की खोज में चला जिस राह से ९ वर्ष पहले बार्थोलोम्यू डायज गया था। अफ्रीका के दक्षिण कोण का चक्कर लगाने के बाद वास्कोडिगामा को सन् १४९७ ईसवी की २५वीं दिसम्बर को अफ्रीका के दक्षिण पूर्व तीरपर भूमि दृष्टिगोचर हुई। बहुत दिन की समुद्र यात्रा के बाद विशेषतः उन दिनों की विपत्तिसंकुल समुद्र यात्रा के बाद भूमि दृष्टिगोचर होने पर इन नाविकों को जो हर्ष हुआ होगा उसकी कल्पना करने में भी हम असमर्थ हैं। इसके अतिरिक्त २५ दिसम्बर का दिन ईसाइयों का महा पर्व्व है। इसी दिन ईसामसीह का जन्म हुआ था "नेटाल" शब्द का अर्थ "जन्म सम्बन्धी" है, "नेटाल डे" जन्म दिन को कहते हैं और इसका प्रयोग प्रायः विशेषतया २५वीं दिसम्बर के अर्थ में होता है इसलिए वास्कोडिगामा ने इस स्थान का नाम ही नेटाल रखा। यह वही नाताल या "नेटाल" है जहां आज हमारे एक लाख से अधिक भाई शर्त में बंध कर गुलामी करते हुए वर्णनातीत कष्ट भोग रहे हैं। अस्तु! यद्यपि पोर्चुगीज़ लोगों को दक्षिण अफ्रिका के समुद्र तीरवर्ती स्थानों का पता लग गया पर बहुत दिन तक उन्होंने इन पर अधिकार जमाने वा यहां आकर बसने का प्रयत्न नहीं किया। उस समय उनकी दृष्टि भारत की रत्नगर्भा वसुन्धरा पर थी और इसके रहते दक्षिण अफ्रीका को मरुभूमि की उस समय

उनको क्या परवाह थी? पर दक्षिण की अपेक्षा अफ्रीका का पूर्व तीर अधिक उर्वर और सुन्दर है। इसलिए सन् १५०६ में उन्होंने सोफाला पर अधिकार जमाया और १५४५ में डेलागोआ खाड़ी में वे व्यापार करने लगे। उस समय से अफ्रीका के साथ पोर्चुगीज़ों का सम्बन्ध बराबर बढ़ता ही गया। सन् १६०१ ईसवी में इङ्गलिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कई जहाज़ केप गुड होप के पास टेबुल खाड़ी में पहुंचे और १६२० में दो अङ्गरेज़ कप्तानों ने केप आव् गुड होप पर इङ्गलैण्ड के राजा प्रथम जेम्स का झण्डा उड़ाया। उसी समय हालैण्ड में डच ईस्ट इण्डिया कम्पनी बनी और वह भी पूर्वी व्यापार में पोर्चुगीज़ और अङ्गरेज़ों से प्रतियोगिता करने लगी। सन् १६४८ ईसवी में टेबुल खाड़ी में डच कम्पनी का एक जहाज़ टूट गया और उस पर के नाविकों को कई महीने समुद्र तीर पर काटने पड़े पर इस छोटी सी आकस्मिक घटना का परिणाम अत्यन्त व्यापक हुआ। स्वदेश पहुंचने पर इन लोगों ने डच ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डाइरेक्टरों के पास इस भूमि की बड़ी ही प्रशंसा की और कहा कि केप में यदि छोटीसी बस्ती किलेबन्दी के भीतर बसायी जाय तो पूर्वी व्यापार को बड़ी सहायता मिलेगी। तदनुसार सन् १६५२ ईसवी में कुछ डच लोग टेबुल खाड़ी के किनारे जान वान रेबीक के नेतृत्व में जा बसे और मज़बूत किलेबन्दी कर खेती करने लगे।

अङ्गरेज़ों का आधिपत्य।

क्रमशः नेटाल में डच प्रवासियों की संख्या बढ़ने लगी। डच ईस्ट इण्डिया कम्पनी अपने नाविकों और सैनिकों को यहां लाकर बसाने लगी। थोड़े दिन के बाद कुछ फ्रेञ्च सज्जन भी आ बसे और डच लोगों में मिल गये। सन् १७५४ ईसवी में यहां के गोरे अधिवासियों की संख्या १०-१२ हज़ार थी। पर डच ईस्ट इण्डिया कम्पनी की दृष्टि यहां रहनेवालों की सुविधा या उत्तम शासन पर नहीं थी; इस लिए इसका शासन अनियन्त्रित था। व्यापार में कम्पनी अत्यन्त स्वार्थपरायण थी। उपनिवेश के अधिवासियों और उनकी सन्तानों से ज़बरदस्ती काम लेना, वह अपना अधिकार समझती थी! इससे गोरे अधिवासी अत्यन्त असन्तुष्ट रहते थे और बराबर बलवा किया करते थे। कम्पनी के अत्याचारों सेही वे दूर दूर जाकर बसते, जिससे आदिमनिवासियों से बार २ युद्ध हुआ करते थे। आदिम निवासियों के सर्वनाश का भी यही कारण है। कम्पनी के १४३ वर्षों के बुरे शासन का यह परिणाम हुआ कि, इस उपनिवेश के बोर अनियन्त्रित, क्रूर, अव्यापारी और परिश्रम से विमुख होगये। इन्होंने आदिमनिवासियों को गुलाम बनाया और उनपर भयङ्कर अत्याचार किये। जैसे जैसे ये फैलते गये वैसे वैसे अराजकता भी फैलती गई अन्त में सन् १७९५ ईसवी में यह उपनिवेश अङ्गरेज़ों के अधीन हुआ। पर १८०३ में यह फिर डच लोगों को मिल गया। इन आठ वर्षों में यहां की शासन पद्धति बहुत कुछ सुधारी गई। जिसमें इङ्गलैण्ड के २४ करोड़ रुपये खर्च हुए। थोड़े दिन के डच शासन के बाद सन् १८१४ में फिर अङ्गरेज़ों का इस पर स्थायी प्रभुत्व हुआ पर इससे उपनिवेश के बोर असन्तुष्ट हुए।

आदिमनिवासियों का उद्धार।

प्रवासी गोरों को पहले "हाटेण्टाट" और बाद "बुशमेन" नामक आदिमनिवासियों से काम पड़ा। ये बेचारे गोरों की बन्दूकों का सामना न कर सके और बुरी तरह से मारे जाने लगे। आदिमनिवासी को देखतेही गोरे उन्हें या तो पशु के समान मार डालते थे या गुलाम बना लेते थे। एक एक गोरे ज़मीन्दार के यहां

हज़ार या इससे भी अधिक गुलाम रहते थे। गुलामों की खरीद बिक्री भी खूब होती थी। अनन्तर "बांटू" या "काफिर" नामक नीग्रो लोगों से इनका सामना पड़ा। ये बड़ेही स्वतंत्रताप्रिय तथा निर्भीक थे। इनके कारण बहुत दिन तक गोरों का फैलना बन्द होगया था। पर वैज्ञानिक शस्त्रास्त्रों के सामने ये कब तक टिक सकते थे? प्रायः एक सौ वर्ष तक इनसे लड़ाइयां होती रहीं। जिनमें नीग्रो लोगों की शूरता और स्वतन्त्रप्रियता तथा गोरों की क्रूरता और अत्याचार-प्रियता का खूब ही परिचय मिला। नर रक्त से दक्षिण अफ्रीका की भूमि सींची गई। सन् १८८० ईसवी में लार्ड चार्लस स्टोमर सेट के कहने से वृटिश सरकार ने चुने हुए चार हज़ार अङ्गरेज़, स्काट और आयरिश अफ्रीका में भेजे। स्थान स्थान पर किलेबन्दी की गई। पादरियों ने वृटिश अधिकार की वृद्धि में अच्छी सहायता दी। इन लोगों के कारण आदिमनिवासियों के कष्ट भी बहुत कुछ कम हुए। ये बोगों और अङ्गरेज़ों के राक्षसी अत्याचारों का बराबर विरोध करते थे। लण्डन मिश्नरी सोसाइटी के पादरी डाक्टर जान फिलिप की चेष्टा से सन १८२८ ईसवी में वृटिश सरकार ने स्वतन्त्र आदिम निवासियों को गोरों के समान राजनैतिक अधिकार दिये। सन् १८३४ में वृटिश साम्राज्य से ही गुलामी उठा देने का कानून बना और चार वर्ष स्वाधीनता की शिक्षा देकर पहली दिसम्बर १८३८ को सब गुलाम स्वतंत्र कर दिये गये। इस सत्कार्य में वृटिश गवर्नमेंट के १ करोड़ ८७ लाख ५० हज़ार रुपये ख़र्च हुए। इसके कारण औपनिवेशिक लोग पादरियों से द्वेष करने लगे। पर इसकी कुछ भी परवाह न कर पादरी इन जङ्गलियों में शिक्षा प्रचार का और उनको उन्नत करने का प्राणपण से प्रयत्न करते रहे।

जिस वर्ष गुलामी की प्रथा उठा दी गई उसी वर्ष केपकालोनी के गोरों और आदिमनिवासियों में भयङ्कर युद्ध हुआ। उस समय के वृटिश गवर्नर सर वेञ्जमिन डी उर्बान (D. Urban) की अत्याचारमूलक नीति का ही यह परिणाम था। इससे डी उर्बान को और भी अग्रसर होकर आदिमनिवासियों के प्रदेश आधीन कर लेने का अवसर मिला। पर उपयुक्त पादरी डाक्टर फिलिप के प्रयत्न से वृटिश सरकार को डी उर्बान का अन्याय मालूम हो गया और उसने काफिरों के प्रदेश उन्हें लौटा देने के लिए डी उर्बान को बाध्य किया। इससे असन्तुष्ट होकर प्रायः ८००० वोर और अङ्गरेज़ वृटिश शासन के बाहर आरेञ्ज नदी के पार नेटाल और उत्तर ट्रान्सवाल में जा बसे। उस समय से वोर अङ्गरेज़ों से अधिकतर द्वेष करने लगे इसका परिचय सन् १८१५ के बलवे में और प्रसिद्ध वोर युद्ध में मिला था। यह द्वेशभाव अब तक भी निर्मूल नहीं हुआ है। इधर नेटाल और उसके आस पास अङ्गरेज़ तथा वोरों की बस्ती बढ़ती गई। ये लोग स्वतंत्र ही थे। इन्होंने मारिजवर्ग में स्वतंत्र प्रजातंत्र की स्थापना की थी पर सन् १८४३ ई० में वृटिश सरकार ने नेटाल को भी अपने अधीन कर लिया। इससे असन्तुष्ट होकर बहुत से वोर ड्राकेन्सवर्ग के उस पार जा बसे। तब से नेटाल में वृटिश प्रजा की संख्या बराबर बढ़ती ही गयी। पहले नेटाल केपकालोनी के शासक के अधीन था पर सन् १८५६ ई० में वह केपकालोनी से अलग किया गया और सन् १८९३ में उसे स्वराज्य के अधिकार मिले।

नेटाल में भारतवासी।

ऊपर कहा जा चुका है कि, सन् १८५६ ई० में नेटाल केपकालोनी से अलग किया गया। यहां के अङ्गरेज़ अधिवासियों ने देखा कि [illegible] पूर्वी देशों में होनेवाले प्रायः सभी पदार्थ

हो सकते हैं। ऊख, चाय, रुई, आरारोट आदि की खेती दिन २ बढ़ने लगी। पर मज़दूरों के अभाव से गोरों को बड़ा कष्ट होने लगा। वहां के आदिमनिवासी गोरों को अच्छी तरह पहचान गये थे, इसलिए वे उनके खेत में मज़दूरी करना पसन्द नहीं करते थे। इस दशा में नेटाल के गोरों की दृष्टि भारत पर पड़ी। परिश्रमी भारतीयों के परिश्रम से लाभ उठाने का प्रलोभन वे संवरण न कर सके। उनकी चेष्टा से साम्राज्य सरकार की ओर से भारत सरकार पर दबाव डाला जाने लगा कि, भारत से मज़दूर शर्त में बांध कर नेटाल भेजे जांय। यह बात विशेष ध्यान में रखनी चाहिये। कितने ही मनुष्यों की धारणा है कि, भारतवासी स्वयं ही वहां जा बसे हैं, पर यह ठीक नहीं है। नेटाल के गोरों के कहने से साम्राज्य सरकार ने भारत सरकार को वहां मज़दूर भेजने के लिए बाध्य किया। शर्त इस आशय की थी कि, पांच वर्ष तक मज़दूर वहां के किसी गोरे ज़मीन्दार के यहां काम करें। इसके बाद वे स्वतंत्र हो जांयगे और नेटाल में बस सकेंगे। यहां तक कि उन्हें वहां ज़मीन देने का भी प्रलोभन दिखाया गया था। इस प्रकार, सीधे सादे छल, कपट न जानने वाले भारतवासी मज़दूर नेटाल जाने लगे। इस समय केवल नेटाल में भारतवासियों की संख्या १ लाख १८ हज़ार है; इनमें ३२ हज़ार शर्त्त में बंधे हैं और ७२ हज़ार ऐसे हैं जिनकी शर्त्त की अवधि समाप्त होगई है अथवा जो उन लोगों की सन्तान हैं जो शर्त में बंधकर नेटाल गये थे। इनके सिवा करीब १५ हज़ार व्यापारी हैं। जो अपनी इच्छा से वहां जाकर बसे हैं। ये मितव्ययी, शान्तिप्रिय, परिश्रमी और विश्वासनीय व्यापारी हैं। व्यापार में इन्होंने वहां के बहुव्ययी गोरों को नीचा दिखाया है। यही इनके दुर्भाग्य का कारण है। यद्यपि थोक व्यवसाय करनेवाले यूरोपियनों का इन पर पूर्ण विश्वास है और बाज़ार में भी इनकी अच्छी प्रतिष्ठा है, परन्तु गोरे दूकानदारों की ईर्षा के कारण ये भयङ्कर अत्याचार सह रहे हैं।

दो प्रजातंत्र।

इधर बृटिश शासन से असन्तुष्ट होकर जो लोग आरेञ्ज नदी के पार चले गये थे उनको भी अधीन करने का प्रयत्न केपकालोनी के बृटिश गवर्नर ने कई बार किया था पर वह सफल न हो सका। सन् १८५२ में बृटिश सरकार ने इनकी स्वतंत्रता स्वीकार की। फलतः ट्रान्सवाल में कई छोटे २ संस्थान स्वतंत्र प्रजातंत्र हो गये पर सन् १८६४ में उन सब को मिलाकर एक ट्रान्सवाल प्रजातंत्र बना। सन् १८५४ ई० में आरेञ्ज फ्री स्टेट भी एक स्वतंत्र प्रजातंत्र हुआ। इस प्रकार दक्षिण अफ्रीका में इस समय चार राज्य हुए; केपकालोनी और नेटाल बृटिश उपनिवेशों में गिने जाने लगे तथा ट्रान्सवाल और आरेञ्ज फ्री स्टेट स्वतंत्र प्रजातंत्र समझे जाने लगे। इनके सिवाय बृटिश काफरेरिया नामक एक और छोटा सा संस्थान था जो इङ्गलैण्ड की अधीनता स्वीकार करता था। यद्यपि इन प्रदेशों के सम्बन्ध में बहुत सी बातें जानने योग्य हैं परन्तु स्थानाभाव के कारण यहां पर हम उनका उल्लेख नहीं कर सकते। गोरे औपनिवेशिक दक्षिण अफ्रीका में कैसे गये, यही दिखाने के लिए इतना पूर्वेतिहास बताना पड़ा। इसके बाद जर्मन, फ्रेञ्च, रशियन आदि भिन्न २ यूरोपियन जातियों के लोग इन चारों प्रदेशों में जा बसे तथा इनमें मारकाट भी कम नहीं हुई। बीच में इङ्गलैण्ड ने ट्रान्सवाल को अपने अधीन कर लिया था (सन् १८७७) पर बोरों ने इसका घोर विरोध किया। अन्त में जब मि० ग्लैडस्टन की सरकार ने भी ट्रान्सवाल को स्वतंत्रता देने से इनकार किया तब बोरों ने शस्त्र ग्रहण किया और २७वीं फ़रवरी सन् १८८१ को माजुबा पहाड़ी पर उन लोगों ने आक्रमण कर सर जार्ज कोले की बृटिश

सेना को कतल किया। इस युद्ध में स्वयम् सेनापति भी मारे गये। ट्रान्सवाल के बोरों की इस जीत से दक्षिण अफ्रीका के समस्त बोरों में एकता का भाव दृढ़ हुआ तथा अङ्गरेज़ों से ये घृणा करने लगे। अन्त में सन् १८८१ ई० की तीसरी अगस्त को प्रिटोरिया कानवेंशन से बोरों को स्वराज्य दिया गया और सन् १८८४ के लण्डन कानवेन्शन से ट्रांसवाल अर्द्धस्वतंत्र प्रजातंत्र हुआ।

बोर युद्ध।

ट्रान्सवाल अर्द्धस्वतंत्र प्रजातन्त्र होगया, यह पालक्रुगर के परिश्रम का फल है। इसके बादक्रूगर राष्ट्रपति बनाये गये। इनकी महत्वाकांक्षा यह थी कि, समस्त दक्षिण अफ्रीका एक स्वतंत्र प्रजातंत्र हो और इसमें प्राधान्य बोरों का रहे। इसके लिए तरह २ के प्रयत्न किये जाने लगे। अङ्गरेज़ों के भी राजनैतिक अधिकार छीने गये। ट्रान्सवाल में सोने की खानों के निकलने से उसका महत्व और भी बढ़ गया और साथ ही अङ्गरेज़ व्यापारियों का लोभ भी बढ़ा। वर्षों तक ट्रान्सवाल और ब्रिटेन में कागज़ी लड़ाई होती रही पर इसका परिणाम कुछ भी नहीं हुआ। मनोमालिन्य बढ़ता ही गया। अन्त में सन् १८९९ ई० की नवीं अक्टूबर को ट्रान्सवाल सरकार ने प्रिटोरिया के बृटिश एजेण्ट सर (उस समय 'मिस्टर') कैनिङ्गहम ग्रोन को ४८ घंटे की सूचना दी। तदनुसार ११वीं अक्टूबर को युद्ध की घोषणा की गई। ट्रान्सवाल और आरेञ्ज फ्री स्टेट ने ब्रिटेन के विरुद्ध शस्त्र ग्रहण किया। नेटाल तथा केपकालोनी के बोरों ने भी इनका साथ दिया। दक्षिण अफ्रीका के वर्तमान प्रायः सभी मंत्री—बोथा, स्मट्स, आदि—अङ्गरेज़ों के रक्त से दक्षिण अफ्रीका की भूमि सींचने लगे। ढाई वर्ष तक दोनों में भयङ्कर युद्ध हुआ पर अन्त में बोरों की हार हुई और सन् १९०२ की ३१वीं मई को प्रिटोरिया में शान्तिपत्र पर हस्ताक्षर किये गये। इस लड़ाई में ५७७४ अङ्गरेज़ सिपाही मारे गये और २२८२९ घायल हुए; बोर पक्ष के ४००० सिपाही मरे।

सन्धि की शर्तें।

जिन शर्तों पर युद्ध समाप्त हुआ उनका सारांश यह है—"(१) प्रत्येक बोर पक्षीय पुरुष को शस्त्रास्त्र सहित आत्मसमर्पण करना होगा; (२) वे सब पुरुष, जो अपने को सम्राट् सप्तम एडवर्ड की प्रजा मानेंगे, स्वतंत्र बृटिश नागरिक के अधिकार पावेंगे; (३) आत्मसमर्पण करनेवाले किसी बोर की सम्मति या स्वाधीनता हरण नहीं की जायगी, (४) युद्ध के समय किये हुए कार्यों के लिए किसी पर मुकद्दमा नहीं चलाया जायगा; (५) माता पिता यदि कहें तो उनके लड़कों को सरकारी स्कूलों में उच्च भाषा सिखाई जायगी और वह कचहरियों में भी चल सकेगी; (६) लाइसेन्स लेकर शिकार की बन्दूकें रखने का अधिकार सबको होगा; (७) सन्धि के बाद यथासम्भव शीघ्र फौजी शासन की जगह मुल्की शासन चलाया जायगा और इसके बाद स्वराज्य दिया जायगा; (८) आदिमनिवासियों को नागरिक अधिकार देने का प्रश्न तब तक नहीं उठाया जायगा जब तक दक्षिण अफ्रीका को स्वराज्य न मिल जाय; (९) लड़ाई का खर्च वसूल करने के लिए ज़मीन्दार कर नहीं बैठाया जायगा; (१०) बोर सिपाहियों की क्षति पूर्ण कर देने के लिए एक कमीशन नियुक्त किया जायगा और लड़ाई में खेतों की जो हानि हुई है उसके लिए बोरों को ४॥ करोड़ रुपये दिये जायंगे।" सन्धि की शर्तों का यही आशय है। इसको पढ़ने से ही मालूम हो जायगा कि, इस भयङ्कर युद्ध से इङ्गलैण्ड का लाभ केवल यही हुआ कि, बोरों ने नाम मात्र के लिए बृटेन की अधीनता स्वीकार किया और दक्षिण अफ्रीका

के सब श्वेतांगों को नागरिक के समान अधिकार मिले ।

युद्ध में भारत और भारतवासी ।

भारत की राजभक्ति प्रसिद्ध ही है । यद्यपि दक्षिण अफ्रीका के नेटाल और केप कालोनी में भी प्रवासी भारतवासियों के साथ युद्ध के पहले अच्छा बर्ताव नहीं किया जाता था पर युद्ध के छिड़ते ही हमारे प्रवासी भाई अङ्गरेज़ों के पक्ष से लड़ कर मरने को प्रस्तुत हो गये । पर गोरों की लड़ाई में काले नहीं लिये जा सकते ! इस लिए अपने सम्राट् के लिए लड़ कर मरने का अवसर भारतवासियों को नहीं दिया गया कितनेही राजे रजवाड़े ट्रान्सवाल जाकर बोअरों को वृद्ध भारत के बाहुबल का परिचय देना चाहते थे पर उन्हें अपने उत्साह का दमन करना पड़ा । तो भी भारतवासी सर्वथा शान्त न हुए । हमारे भाई, जो दक्षिण अफ्रीका में थे, वे घायल बृटिश सिपाहियों की सेवा के लिए अग्रसर हुए । प्रारम्भ में अङ्गरेज़ अधिकारियों ने इससे भी इनकार कर दिया तो भी भारतवासी शान्त न हुए । वे बार बार कहते रहे कि और कुछ नहीं तो हमें युद्ध में आहत वीरों की सेवा करने का ही अवसर दीजिये ! क्या पृथ्वी तल पर ऐसी कोई भी अधीन जाति है जो राजभक्ति में भारतीयों की समानता कर सकती हो ? एक अधीन जाति बार २ फटकारी जाने पर भी राजकीय जाति की सेवा के लिए पुनः पुनः प्रार्थना करती है ! क्या इतिहास में कोई ऐसा भी उदाहरण मिल सकता है ? अन्त में बृटिश सरकार को इनकी प्रार्थना माननी पड़ी । अनुमति मिलतेही भारतीयों के दल बन गये । इनके वेही नेता जो आज मनुष्यत्व के सहज स्वत्वों के लिए भयङ्कर अत्याचार सह रहे हैं, युद्ध क्षेत्र में जाकर घायल गोरों की सेवा करने लगे । अपने प्राणों को तुच्छ समझकर और शत्रु की अग्निवृष्टि की तनिक भी परवाह न कर वे सम्मुख रणक्षेत्र में जाकर आहतवीरों को उठा लाते और उनकी शुश्रूषा करते । आज के घोर पीड़ित अनाथप्राय भारतवासियों ने उस समय घोर पीड़ित बृटिश वीरों की जो सेवा की थी उसकी प्रशंसा प्रधान सेनापति लार्ड राबर्ट्स से लेकर अनेक सैनिकों और राजनीतिज्ञों ने की है । "नेटाल एड्वर्टाइज़र" नामक समाचार पत्र जो युद्ध के पहले भारत सन्तानों का कट्टर शत्रु था, युद्ध में उनकी सेवा देखकर पुरानी शत्रुता भूल गया । उसने अपने एक अंक में लिखा कि, "आखिर तो भारतवासी साम्राज्य की ही सन्तान हैं !" और साथही प्रतिज्ञा की कि साम्राज्य उनका यह आत्मसमर्पण कभी नहीं भूलेगा । पर आज बार २ इसकी याद दिलाने पर भी याद नहीं आती, अस्तु ! इसी युद्ध में भारत भी शान्त न रहा । अनेक महाराजों ने जब देखा कि युद्धक्षेत्र में जाकर साम्राज्य की सेवा करना असम्भव है तब उन्होंने बृटिश सिपाहियों के लिए घोड़े और वस्त्र दिये । भारत से इस युद्ध में अङ्गरेज़ों के सहायतार्थ ८००० गोरे अफसर और सिपाही सेवा के लिए ३००० भारतवासी, ६७०० घोड़े, १६०० खच्चर और टट्टू, १००००० गरम कोट, ४०००० थैलियां जिनमें युद्ध के समय सिपाही अपने साथ खाद्य पदार्थ ले जाते हैं, ४५००० सिपाहियों के टोप, ७०००० जोड़ जूते, २६५० जीन ४६० कारीगर और २६५० भिश्ती भेजे गये । इसके अतिरिक्त २६५० घोड़े देशी घुड़सवार सेना और रजवाड़ों की सेना से भेजे गये ।

दक्षिण अफ्रीका में जाकर गोरों के बसने का और अङ्गरेज़ तथा बोरों के सम्बन्ध का यह संक्षिप्त इतिहास जानने से प्रवासी भारतवासियों की अवस्था समझने में सुविधा होगी ।

मर्यादा के सम्पादक महोदय की आज्ञा थी कि, मैं इसी अङ्क के लिए "निष्क्रिय प्रतिरोध का

इतिहास लिखूं, पर पूर्वेतिहास जाने बिना उसका जानना कठिन समझ कर किसी दूसरे अंक में उस आज्ञा का पालन करने की यथासाध्य चेष्टा करूंगा।

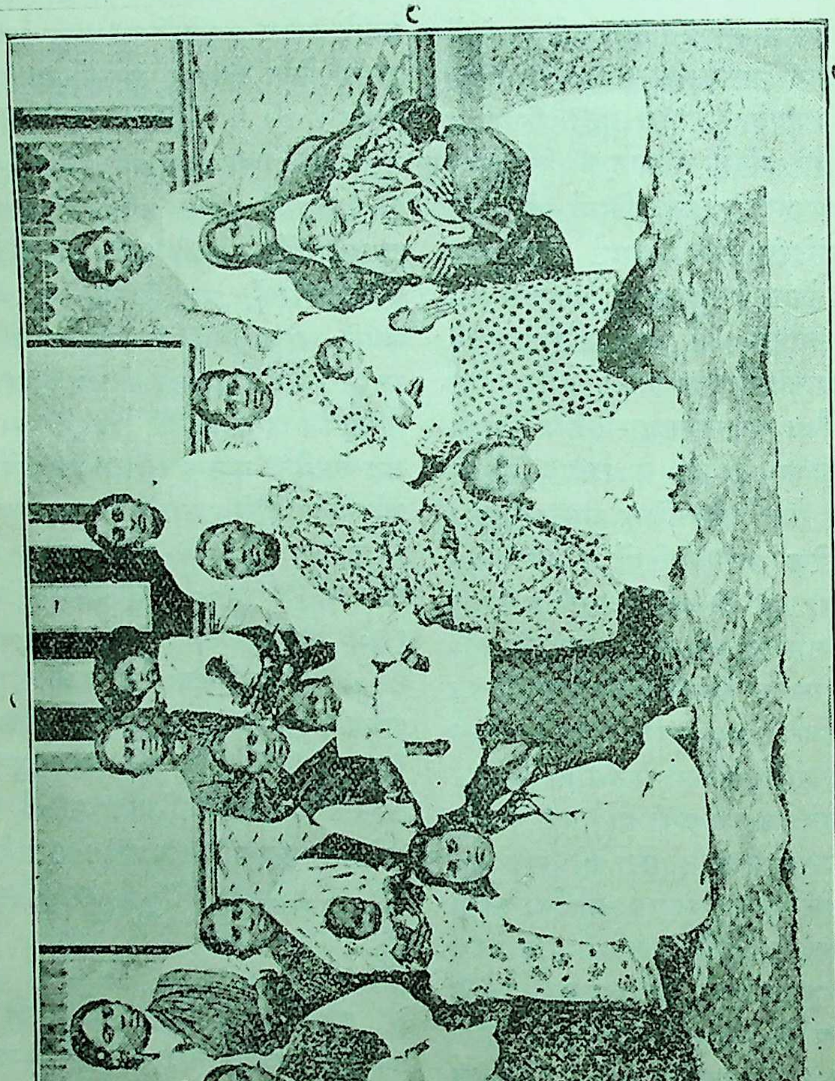

निष्क्रिय प्रतिरोध में योग देनेवाली स्त्रियां।

सम्पादकीय टिप्पणियां ।

दक्षिण अफ्रीका ।

भारतवासियों के प्रति अत्याचारों की जाँच के लिए बोथा गवर्नमेंट ने एक कमीशन नियुक्त किया है। यह उपयुक्त ही हुआ किन्तु इससे किसी प्रकार की आशा रखना भूल है। इसमें जो सभ्य निर्वाचित हुए हैं उनमें अधिकांश खुल्लमखुल्ला भारतवासियों के कट्टर शत्रु हैं। ऐसी अवस्था में वे भला भारतवासियों के हित की क्या बात कर सकते हैं? मि० गांधी तथा और नेताओं ने यूनियन गवर्नमेंट से पत्र लिखकर प्रार्थना की थी कि कम से कम एक पक्षपात रहित अङ्गरेज़ तथा भारतवासियों का एक प्रतिनिधि भी अवश्य कमीशन में सम्मिलित किया जाय किन्तु इसकी सुनवाई नहीं हुई। होती भी क्यों? यदि न्याय करनाही अभीष्ट होता तो अधिकांश सदस्य ऐसे क्यों रखे जाते जो भारतवासियों के शत्रु हैं। मि० गांधी आदि भी जहां तक विदित है कमीशन में योग न देंगे, न कोई भारतवासी ही साक्षिरूप से कमीशन के सामने उपस्थित होगा। यह उचित ही है तनिक और कड़े रहने तथा हिम्मत बांधे रहने से जहाज़ किनारे जा लगेगा। यूनियन गवर्नमेंट के भुलावे में आने तथा उसकी बातों में विश्वास करने का फल भारतवासी बहुत भोग चुके हैं। हमें आशा है वे पिछली बातों को न भूलेंगे और जब तक कोई भारतवासी प्रतिनिधि कमीशन में नियुक्त न किया जाय तब तक वे किसी प्रकार से कमीशन में योग देने को सम्मत न होंगे। संभव है कमीशन में योग देने को उन पर बहुत दबाव डाला जाय किन्तु उनके लिए राज्याभिषेक के समय की बातों को स्मरण कर ऐसे दबाव से दूर ही रहना श्रेयस्कर होगा।

स्वर्गवासी "विलियम टी स्टेड" के नाम को पाठक न भूले होंगे। ये रिव्यू आव रिव्यूज़ के सम्पादक थे। समस्त संसार में इनकी धाप थी और प्रायः रिव्यू आव रिव्यूज़ द्वारा बड़े बड़े राष्ट्रों की नीति संगठित होती थी। ये भारतवासियों के भी हितचिन्तक थे, अपने समय में इन्होंने द० अफ्रीका के सम्बन्ध में भी बहुत कुछ लिखा था किन्तु तब भी भारतवासियों की दशा हीन ही बनी रही। सन् १९०४ में मि० स्टेड ने लिखा था

"We went to war with President Kruger, among other things, because of our holy horror at the scandlous way in which he treated the British Indian subjects of the Queen. *To redress the wrongs of the Indians we went to war, pulled down the Republic*, and *set up a crown colony in Transval*. With what object? *Not only have none of the wrongs of our Indian fellow-subjects been removed but their lot to-day is in every respect worse than it was under President Kruger*.

कि हम लोग भारतवासियों की हीन दशा पर तरस खाकर बोरों से लड़े। हम लोगों ने भारतवासियों की दशा को सुधारने के लिए, प्रजातंत्र को उलट दिया और एक उपनिवेश कायम किया। किन्तु नतीजा क्या हुआ? यही नहीं कि भारतवासियों की दशा तनिक भी नहीं सुधरी, वरन यह कि उनकी दशा पहले की अपेक्षा हर हालत में बुरी होगई। आज इसको ९, १० वर्ष होगये। किन्तु भारतवासियों की दशा में कुछ अन्तर नहीं हुआ। क्या आप इसका कारण बतला सकते हैं कि जिस मनुष्य की बात को संसार के समस्त बड़े बड़े राष्ट्र मानते और आदर की दृष्टि से देखते थे उसकी बात का उसी के देशवासियों पर क्यों प्रभाव नहीं पड़ा? उन लोगों ने उसकी बात क्यों

नहीं मानी ? हमारी समझ में इसका एकमात्र यही कारण है कि निर्बल का पक्ष लेनेवाला भी निर्बल होजाता है, प्रभुताहीन का साथ देनेवाले की भी प्रभुता हीन हो जाती है। भारतवासियों के हाथ में यदि कुछ होता, यदि वे शक्तिसम्पन्न होते, यदि उनका भी कोई राष्ट्र होता, यदि उनमें भी कुछ कर गुज़रने की शक्ति होती तो विलियम स्टेड की बात यों खाली न जाती ।

दृढ़ प्रतिज्ञा, कठिन सङ्कल्प ।

मि० गान्धी ने मि० गोखले को साफ साफ सूचित कर दिया है कि जब तक यूनियन गवर्नमेंट निष्क्रिय प्रतिरोधियों को नहीं छोड़ती और कमीशन के सदस्यों के विषय में कुछ उचित परिवर्तन नहीं होता तब तक वे कमीशन में योग न दे सकेंगे क्योंकि प्रवासी भाई इसके निमित्त पहिले ही कसम खा चुके हैं और कसम के विपरीत आचरण करना भयावह होगा। मि० गांधी ने लिखा है कि हम लोग १८ दिसम्बर को कमीशन के कहने पर छोड़े गये। हम लोगों से उस समय नहीं कहा गया कि हम लोग क्यों छोड़े जाते हैं। यह बिलकुल झूठ है कि हम लोग मुक्त होने पर मंत्रियों से मिलने को प्रिटोरिया गये थे। हम लोग मि० एसीलेन और करनल विली को खूब जानते हैं और इन्हें जानते हुए भला हम लोग प्रिटोरिया क्या करने जाते ? यह असम्भव है कि हम लोग इस बात को अच्छी तरह से न समझें कि कमीशन न्याय करने को नहीं वरन भारतीय तथा बृटिश गवर्नमेंट और दुनिया की आंखों में धूल झोंकने को नियत हुआ है। मि० एसीलेन ने अभी ही अपने एक मित्र मि० मैलर से हिन्दुस्तानियों के विरुद्ध बहुत सी बातें कही हैं। करनल विली हिन्दुस्तानियों के घोर शत्रु हैं। सन् १८९६ में वे एक मजमा लेकर डरबन में दो जहाज़ों पर आये हुये भारतवासियों को उतरने से रोकने के लिए गये थे। एक सर्वसाधारण सभा में उन्होंने कहा था कि यह अच्छा हो यदि भारतवासियों सहित जहाज़ समुद्र में डुबा दिया जाय। यही नहीं उन्होंने एक वक्ता के इस वाक्य का कि वह एक हिन्दुस्तानी पर गोली चलाने के लिए खुशी से एक मास की तनख़्वाह दे देगा, बड़ी दिलचस्पी से समर्थन किया था। वे साफ २ कई बार कह चुके हैं कि ३ पौंड के टैक्स को रद्द करना उचित न होगा। कमीशन केवल जांच करके ही सन्तुष्ट न होगा, वह भविष्य के लिए नीति भी सम्पादन करेगा। ऐसी अवस्था में यह असम्भव है कि अकेला सभापति नीति के सम्बन्ध में अन्य दो सदस्यों की राय को डङ्क रहित कर दे। जिन दो सदस्यों के विरुद्ध बातें कही जा चुकी हैं वे ही जज नियुक्त किये गये हैं। यह कटे पर निमक छिड़कना है। समस्त भारतवासी इस समय क्रोध से पागल हो रहे हैं, कोड़ों से पीटने, गोली चलाने आदि की बातों को, जो पहले किम्बदन्ती प्रतीत होती थी, उन लोगों ने आंखों देखा है। यही नहीं जो जेल से छूट कर आये हैं उन पर किये गये अत्याचारों की बातों को सुन कर क्रोध का पारा चढ़ता जाता है। आज पर्यन्त जेल में ऐसे दुःख नहीं दिये गये। भोजन नहीं मिलता था, कम्मल छीन लिए जाते थे। वार्डर केवल मर्दों के साथ ही नहीं वरन् स्त्रियों से भी, बेजा बर्ताव करते थे, इन्हीं कारणों से एकमत होकर यह निश्चय हुआ है कि यदि कुछ भी मानमर्यादा का विचार बाकी है तो तब तक कमीशन में योग न दिया जाय, जब तक कमीशन में उचित सुधार नहीं किया जाता। हम लोगों ने इसकी कसम खाली है और जो हो हम कसम के विरुद्ध कार्य न करेंगे।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग, में बद्रीप्रसाद पाण्डेय के प्रबन्ध से छपकर प्रकाशित हुई ।

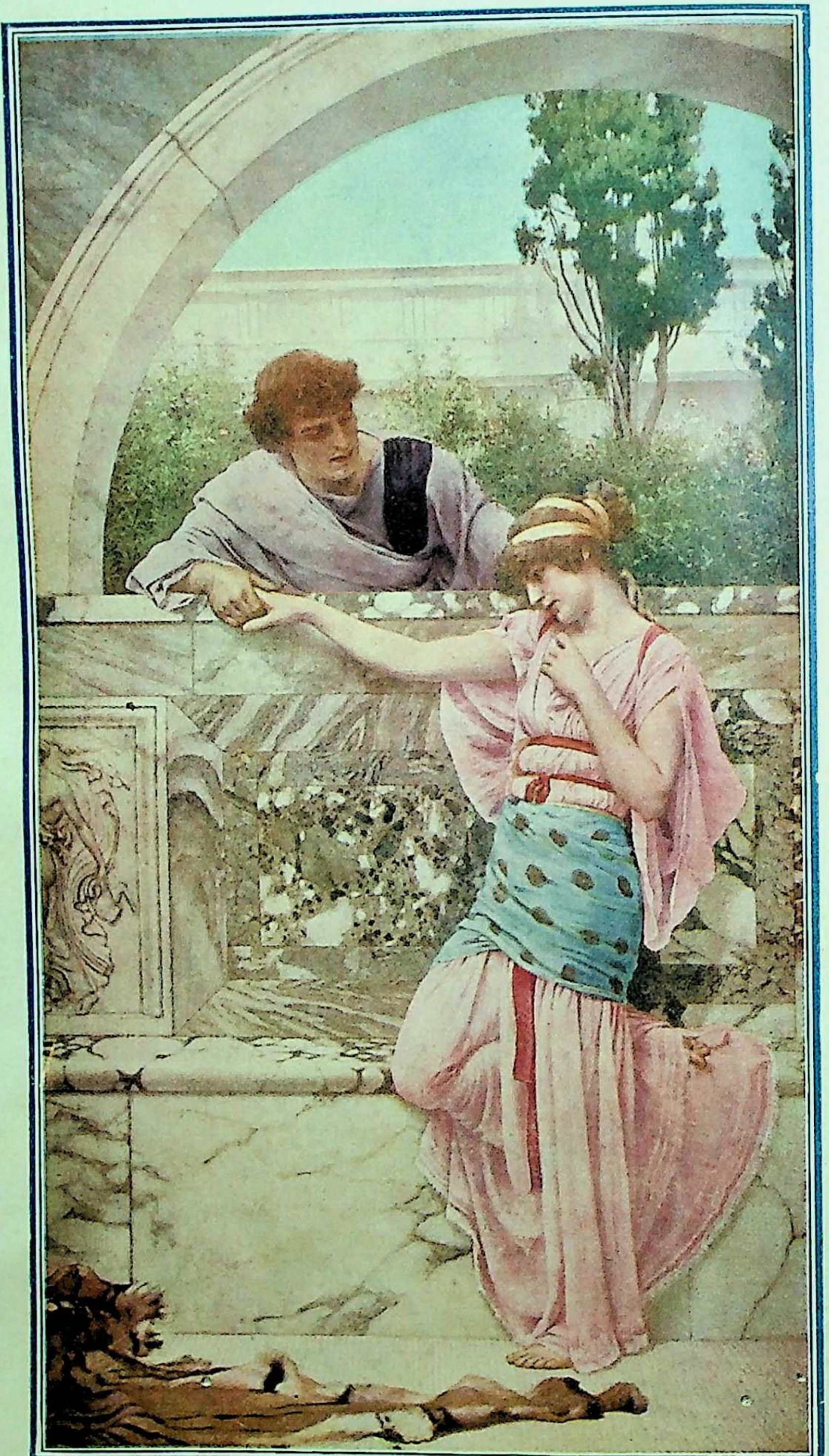

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

मर्यादा ।

सचित्र मासिक पत्रिका ।

भाग ७] जनवरी सन् १९१४—माघ । [संख्या ३

मनुष्यमात्र में बड़ा बल है ।

[एक ग्रामीण ।]

सृष्टि और हम ।

परमात्मा की लीला अपरम्पार है। जिस समय महात्मा लोग उस दयामय की लीला के रहस्य में निमग्न होते हैं उस समय संसार के सारे दुःख दूर भाग जाते हैं। संत जनों का हृदय शुद्ध और निर्मल होता है। परमात्मा की एक २ रचना में परमानन्द की झलक दिखलाई देती है। परमात्मा की सृष्टि की अगमता का पता लगाना कठिन है। परन्तु हे ईश्वर तू धन्य है! संसार में तेरे समान उपकारी कोई नहीं है। तभी तो तेरे यशरूपी अमृत रस को पीकर महात्माजन अमरत्व को प्राप्त हुए हैं। तूने जहां सृष्टि के भेद को दुर्ज्ञेय रखा, वहां मनुष्यों को उन शक्तियों का भी दान किया जिनके द्वारा वे तेरी अलौकिक रचना का अनुसन्धान कर सकें।

हम जहां हैं, वा जहां जायँगे चारों ओर सृष्टि ही दिखलाई देगी, शहर की अट्टालिकाओं एवं हिमालय की कंदराओं में चाहे जिस स्थान पर हम भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल को व्यतीत करें, सृष्टि हमें प्रसन्नतापूर्वक अपना अतिथि बनायेगी। जहां देखिये! चारो ओर हवा, पानी, पृथ्वी, आकाश और अग्नि, दृष्टिगोचर होगी। हम कितनाही उद्योग करें कि इन पंचतत्वों से अलग होजायँ पर सम्भव नहीं कि इन भूतों से मुझे छुटकारा मिले। सच्चिदानन्द परमात्मा ने हम सब मनुष्यों को वो शक्तियां

दी हैं जिनके द्वारा पंचतत्वों का ज्ञान प्राप्त हो सकता है ।

दिन रात हम अपने को कोसा करते हैं। आज हमें बड़ी चिन्ता है, क्या करें भाई यह काम बड़ा कठिन है, यह हम से नहीं होसकता, हम में इसके करने की सामर्थ्य नहीं " ऐसी हतोत्साह करनेवाली बातें हमारे मुंह से निकलना एक प्रकार से स्वाभाविक है । पर स्मरण रखने की बात है कि " हम में इस काम के करने की शक्ति नहीं है " इस वाक्य का कहना ईश्वर की सत्ता का तिरस्कार करना है । गुलाब के पुष्प की सुगंधि हमको कितने आनन्द में मग्न करती है । सुन्दर पक्षियों का कलरव हमारे कर्णों को तृप्त करता है । सुरम्य वस्तुओं को देखकर आंखें लालायित होजाती हैं । तात्पर्य यह कि वाह्य इन्द्रियों से जब हम स्थूल एवं सरल पदार्थों का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं तो क्या उन शक्तियों का अस्तित्व हममें नहीं है जिन से हम गूढ़ विषयों पर विचार प्रकट कर सकें ? निश्चय है कि सब शक्तियां हम में विद्यमान हैं ।

कोई काम जब प्रारम्भ किया जाता है, उस समय कठिन प्रतीत होता है पर जिस समय काम में सफलता प्राप्त होती है तब वह सरल होजाता है । जब विद्यार्थी पढ़ना प्रारम्भ करता है तब 'क' का जानना ही बड़ा कठिन होता है पर कई परीक्षाओं के उत्तीर्ण करने के पश्चात् उससे क को पूछिये तो वह क का बताना परिहास समझने लगता है । यही हाल संसार के और २ विषयों का भी है । जो ज्ञात है वह सरल, जो अज्ञात है वही कठिन अतएव किसी पदार्थ के ज्ञान प्राप्त करने में यह न सोचलेना चाहिये कि इसके प्राप्त करने का बल हम में नहीं है । क्या दक्षिणी ध्रुव का अनुसन्धान करना असम्भव नहीं प्रतीत होता था ? परन्तु नहीं मि० स्काट ने अपनी शक्तियों को प्रयोग में लाकर दक्षिणी ध्रुव का पता लगाया। यदि मनुष्य में अन्वेषण शक्ति न होती तो आज हम अमेरिका यूरोप की कौन कहे यहां तक कि अपने आसपास की वस्तुओं को भी न जान सकते । अतएव यदि मनुष्य अपनी शक्तियों का उचित प्रयोग करे तो सृष्टि के सम्पूर्ण पदार्थों का ज्ञान प्राप्त कर सकता है । ज्ञान अपरिमित है, ज्ञान की अवधि नहीं अनुभव तथा साहस द्वारा हमें सफलता प्राप्त हो सकती है ।

मनुष्य स्वतन्त्र है ।

न्यायकारी परम पिता परमात्मा ने मनुष्य को स्वतंत्र बनाया । बंधन में रखना ईश्वर को अच्छा नहीं लगा । ईश्वर ने उचित समझा कि स्वतन्त्रताही एक ऐसी शक्ति है जिससे सृष्टि सुखमयी अवस्था में रह सकती है । इसी कारण उसने मनुष्य को स्वतन्त्रता प्रदान की । पर साथ ही निर्णयकर्त्ता और फलदाता होना स्वयं उसने उचित समझा । ईश्वर को इस अलौकिक रचना से उन " देहाभिमानी " लोगों को शिक्षा लेनी चाहिये जो दूसरों को पैर तले दबा कर यश के भागी होना चाहते हैं । भले बुरे सब को ज़ुल्म से दुखी करते हैं बुरे यदि खुशामद करें तो उन्हें छोड़ भी देते हैं । परमात्मा का नियम है कि "हे मनुष्यो ! तुम काम करने में स्वतंत्र हो पर फल भागने में परतन्त्र हो । " ईश्वर यह देखकर भी कि अब सृष्टि में स्वतन्त्रता रखने से चोर चोरी ज़्यादा कर रहे हैं, दुष्टों की संख्या बहुत बढ़ रही है, स्वतन्त्रता नहीं छीन लेता । दुष्कर्मियों को वह दंड देता है किन्तु बुरे कर्मों के कारण स्वतन्त्रता नहीं छीन लेता । परमपिता को तो दृढ़ विश्वास है कि स्वतन्त्रता ही इस दुष्ट को सुधारेगी, स्वतन्त्रताही, इसे सज्जन बनायेगी, जब तक भूला भटका है तभी तक उसकी यह दशा है । नहीं तो चेत जाने पर स्वतन्त्रता द्वारा यह बड़े बड़े कामों को

करेगा। क्योंकि जिन शस्त्रों को काम करने के लिए यह ढूंढ़ेगा वे सब इसी के पास हैं। इस लिए जानकारी स्वतन्त्रताही से होगी। इसी लिए कहा है कि "स्वतंत्रता जीवन है और परतन्त्रता मृत्यु"

क्या स्वतन्त्रता से मनुष्य बिगड़ सकता है ?

मेरा स्वतन्त्र विचार है कि स्वतंत्रता से मनुष्य कभी नहीं बिगड़ सकता। इस जगह प्रश्नों की भरमार होजायगी, कोई कहेगा "फिर आदमी चोर क्यों होता है ? दूसरों की हानि क्यों करता है इसी प्रकार और कुत्सित कार्य क्यों करता है ? यदि दबाव में होता तो ऐसा न करता, यदि किसी बन्धन में होता तो ऐसा न करता स्वतंत्र होनेही के कारण ऐसा करता है। और लोग भी स्वतन्त्रतापूर्वक काम करने ही के कारण खराब होते हैं। मैं कहता हूं कि चोर परतन्त्रता में रहने के कारण चोरी करता है, डाकू बंधन में रहने के कारण डाका मारता है। विचार करने का स्थल है। जब चोरी करने के लिए चोर घर से चलता है तो उसकी दशा पर दृष्टि डालिए वह अपने चारों ओर देखता रहता है कि कोई हमको देख न ले। वह जानता है कि यह काम बुरा है, उसकी उज्वल शक्ति पुकार कर कहती है कि तू इस काम को मत कर पर हा परतन्त्रता ! तू बड़ी दुःखदायिनी है, तू बड़ों को भिक्षुक बना देती है, राजा को रंक बनाने में तनिक भी देर नहीं लगाती। तुझमें दोषी बनाने का बड़ा बल है। सोचिये चोर की उस शक्ति ने, जिसको परतन्त्रता के कारण वह दुर्बल बना चुका है, उसकी स्वतन्त्रता को छीन लिया। वह जी हुज़ूर, ग़रीबपरवर, जहांपनाह कहनेवाली होगई है। अपनी बुराई की प्रबलता के कारण वह अपनी ओर खींच लेती है और एक सज्जन मनुष्य को धीरे धीरे बड़े से बड़ा चोर बना देती है। फिर तो वह चोर चोरी करते करते उसी में दिन बिताता है। आपने सुना होगा कि बाज़ चोरों को जेलख़ाने की रोटी से इतना घना सम्बन्ध होजाता है कि उनको वर्ष में तीन बार दंड मिलता है। सफ़ाई पसन्द आदमी गंदगी में नहीं रह सकता और गंदगी में सदा पलनेवाला मनुष्य सफ़ाई के गुणों से वञ्चित रहता है। बहुत से ऐसे जन्तु भी हैं कि गंदगी में ही जी सकते हैं सफ़ाई में वे मर जाते हैं। पनाले में रहनेवाले कीड़ों को साफ़ पानी में रखकर अनुभव कर लीजिये वे चट मर जायंगे। क्यों ? कारण यह है कि गन्दगी से उनको विशेष प्रेम होगया है, यद्यपि पमात्मा ने उनको भी शुद्ध जलवायु प्रदान किया है तथापि उनका गन्दगी से घनिष्ट सम्बन्ध है। ठीक इसी प्रकार स्वतन्त्रतात्यागी परतन्त्रता की साकड़ से बहुत दिन तक जकड़ा हुआ आदमी, अपने को स्वतन्त्र होने में दुखी समझता है। यदि कुछ देर के लिए वह परतन्त्रता से निकाल भी दिया जाय तो उसका पनाले में रहनेवाले कीड़े कासा हाल होजाता है। अपनी शक्ति पर कुछ भरोसा नहीं। "ग़रीब परवर जो आप कहते हैं वही ठीक है" "चाहे हुज़ूर आम को इमली कहें या इमली को आम कहें" जो हुज़ूर कहें सब ठीक है"। क्या ऐसे वाक्यों का अभाव है ? कहीं नहीं चारो ओर इसकी ज्वाला धधक रही है। और वह ज्वाला उन्हीं को लपक कर जला रही है जो उसे बुझाना चाहते हैं।

भाइयो ! हम अपने को इतना नीच न समझ लें कि अपनी शक्तियों का भी हनन कर दें। हमें परमात्मा पर विश्वास रखकर सदा निर्भय रहना चाहिये। सच्चाई से क्लेश का डर नहीं रहता, पर झूठा तथा खुशामदी टट्टू बनने से "माया मिली नहीं राम मिले दुविधा में गये सजनी सुनो दोऊ" की दशा हो जाती है। खिड़कियों को रोक कर देखिये

उनको भी परतन्त्रता अस्वीकार है। सोने के पींजरे से भी सुग्गा भागना चाहता है।

शक्तियों के नाम।

अब मैं क्रमशः उन आभ्यन्तरिक शक्तियों का वर्णन करूंगा जो मनुष्य के जन्म को सार्थक करती हैं। उन्हीं के दुरुपयोग से मनुष्य ख़राब होजाता है। उनके नाम संक्षेपतः ये हैं:—बुद्धि इच्छा; भावग्राहक वेदन, भावना, स्मरण, मनीशा, तर्क, निर्णय, अनुमान और परामर्श शक्ति इन्हीं शक्तियों का वर्णन संक्षेपतः इस लेख में किया जायगा। इन शक्तियों को उचित रीति से काम में लानेवाला मनुष्य उच्च कोटि का पुरुष बन सकता है और इनका दुरुपयोग करने वाला बुरा से बुरा हो सकता है।

१—बुद्धि।

सब शक्तिया से पहले बुद्धि का नम्बर है। यह सबको मार्ग दिखलाती है। इसी के द्वारा सब शक्तियों में बल का संचार होता है। इसके बिना आदमी अपने को सँभाल नहीं सकता। इसकी महिमा यहां तक गाई गई है कि "एक मन विद्या के लिए दस मन बुद्धि चाहिये।" आप विद्वान भले ही हो जाँय पर बुद्धि के बिना कुछ नहीं हो सकता। जब हम कंगाल रहते हैं तो तरसते हैं कि बिछौना, ओढ़ना मिल जाता तो बड़ा अच्छा होता पर, बिछौना ओढ़ना मिलने पर महल मिलने की सूझती है। इस प्रकार हमारी तृष्णा प्रबल होती जाती है। क्यों? निर्बुद्धि होने के कारण! बुद्धिमान ऐश्वर्यवान होने पर भी चार बजे प्रातःकाल उठता है शौच, स्नान, सन्ध्या, व्यायाम इत्यादि काम करने पर सर्वसाधारण के परोपकार में लगजाता है। पर मूर्ख "प्यादा से फ़र्ज़ी बन्यो टेढ़ो टेढ़ो जाय" को चरितार्थ करता है, यही कारण है कि धन, विद्या और अनेक ऐश्वर्य होने पर भी निर्बुद्धि मनुष्य सदा दुखी रहता है। बुद्धि ही मनुष्य को सुखी करने में सब से अधिक सहायता करती है। हर एक पदार्थ की जानकारी बुद्धिद्वारा होती है। बुद्धि दो प्रकार की होती है। विध्यात्मक विधि और निषेध विधि।

विध्यात्मक विधि—यदि कोई विषय विशेष गुण सम्पन्न हो तो बुद्धि को भली प्रकार उस विषय के मनन करने के लिए छुट्टी देदी जाय, और उस विषय को भली भांति जानना-उसमें हर समय लिप्त रहना, उस विषय के गुण पर विशेष सावधानी से विचार करना इसी का नाम विध्यात्मक विधि है। इस विधि का भली प्रकार सम्पादन करना चाहिये। यदि इस विधि में अहर्निश हम न लगे रहेंगे तो सम्भव है कि किसी न किसी दिन धोखा खा जाँय—इस रीति का अवलम्ब कदापि न छोड़ना चाहिये। जब बुद्धि अच्छे विषय के मनन करने में लगी रहेगी तो कदापि सम्भव नहीं कि हम बुरे बनें।

निषेध विधि— जो बुरे कार्य प्रतीत हों उनको उसी समय छोड़ देना, तनिक भी देर न लगाना। जब यह निश्चय हो गया कि "वेश्यायां मदन ज्वाला रूपेन्धन समेधिता" तो फिर क्या आवश्यकता है कि वेश्या का नाच देखा जाय कभी ऐसे विषयों की ओर न झुकना चाहिये, जिनका परिणाम बुरा हो। ऐसे विषयों को बुद्धि के सामने रखना भी बहुत ही बुरा है। सदा उपर्युक्त दोनों रीतियों का साथ २ साधन करने से मनुष्य सज्जन बन सकता है। बुरे कार्यों को तुरन्त छोड़ना तथा भले कार्यों को भली भांति समझना बूझना, उसी में अपने समय को लगाना—यह उत्तम अथवा सुधरी हुई बुद्धि का काम है। कृष्ण महराज ने अर्जुन से कहा है:—

असंशयं महाबाहो-मनो दुर्निग्रहं चलं।
अभ्यासे नतु कौंतेय वैराग्येण च गृह्यते॥"

अर्थात् हे अर्जुन, वैराग्य (दुष्कार्यों को छोड़ना) और अभ्यास से सत्कार्यों का प्रति-

पादन करना, इन्द्रिय-निग्रह के लिए बहुत ही आवश्यक है। हर समय अच्छे काम में लगे रहने से बढ़कर और कोई काम दुनिया में ऐसा नहीं है जो आदमी को अच्छा बनाये। १० से ४ तक सोना भी अच्छा काम है। मन को अच्छे विचारों से भर देना चाहिये, जिससे उसमें बुरे विचार कहीं से न आने पावें। जब मन में बुरा विचार ही न आवेगा तो फिर आप कभी बुरे नहीं हो सकते।

२—भाव ग्राहक।

प्रत्येक विषय के भाव को ग्रहण करना ही इस शक्ति का कार्य है। यदि इस शक्ति का सुधार हो चुका है तो हमारे हृदय में अच्छी वस्तु को देखकर बुरे भाव कभी नहीं आ सकते और नहीं तो (मालूम होने पर भी) बुरे भाव ही अपना प्रभाव जमाते रहते हैं। भाव ग्राहक शक्ति का सुधार विशेषतया अनुभव, आदर्श और उदाहरणों से होता है। इसके प्रतिकूल आचरण करने से हम अपने को सदा दुखी ही पायँगे। अच्छा से अच्छा मनुष्य भी हमको मिले तो हम उसको अच्छा न समझेंगे। अच्छी से अच्छी बात हमारे लिए बताई जाय हम उसका तिरस्कार ही करेंगे। इसके न सुधारने से कभी कभी बड़ी हानि हो जाती है। किसी समय भी हम बुराई से नहीं बच सकते। जब तक इसका सुधार नहीं होता तब तक हम ज्ञान की परिधि समझ कर अपने ही विचार में कूप के मेढक बने रहते हैं। एक जगह एक विद्वान, अनुभवी सज्जन का व्याख्यान हो रहा था। वक्ता महोदय आर्य समाजी थे पर संकीर्ण विचार के नहीं थे, विचारवान थे। और २ बातों के साथ हीं उन्होंने इन वाक्यों को भो कहा था "सज्जनो गंगा ऐसी पवित्र नदी का इस जगह होना हम लोगों के सौभाग्य का कारण है, पर हम लोग इस नदी से कुछ लाभ नहीं उठाते। आज से ८ वर्ष पहले यहां के लोग ३,४ बजे उठ कर गङ्गा स्नान करके सन्ध्योपासन करते थे और शेष समय व्यायाम एवं पठन पाठन में बिताते थे पर अब देखने में आता है कि कल के पानी के विरोधी जनों को छोड़कर और लोग कभी गङ्गास्नान नहीं करते। जब छः सात बजे तक कहीं पानी आता है तब चारपाई पर से उठकर लोग प्रातःकाल की नित्यक्रिया प्रारम्भ करते हैं। ऐसे लोगों का दिमाग़ संसार के लिए क्या कर सकता है? जो स्वयं अपनी रक्षा नहीं कर सकता उसकी रक्षा कौन कर सकता है?" इसका अर्थ एक या कई व्यक्तियों ने यह निकाला "अमुक मनुष्य लेकचर देता था कि गङ्गा स्नान से अधिक लाभ न समझना चाहिये। गङ्गा एक नदी है जैसे सब नदियां हैं वैसे ही गङ्गा..............।" यह केवल भ्रममात्र है।

लोगों में से शायद ही कोई ऐसा हो जिसमें इस अमूल्य शक्ति के सुधार करने की आवश्यकता न हो। यही कारण है कि देश में इस समय अशान्ति फैली हुई है। एक दूसरे के भाव में तारतम्य भरा पड़ा है। परस्पर मनुष्यों के भावों में बड़ा अन्तर है। किसी को किसी का विश्वास नहीं है। सब अपने २ अभिमान के नशे में चूर हैं। सुधार की ओर दृष्टि ही नहीं होती, हो कहां से? भाव तो घट गया, व्यापार में घटी होती चली जायगी। भाव को सुधारने के लिए कोशिश करनी चाहिये।

३—इच्छा शक्ति।

भाव ही के कारण इच्छा शक्ति उत्पन्न होती है। जिस समय हम किसी पदार्थ को देखते हैं उसी समय उसकी जानकारी होने के पश्चात् उसके विष में ऐसा भाव उठता है कि यह वस्तु अच्छी है या ख़राब! तत्पश्चात् इच्छा अपना काम करने लगती है, अच्छी है तो इसको लेना चाहिये, बुरी है तो छोड़ना चाहिये। इच्छा इस

प्रकार जब अपना काम प्रारम्भ कर देती है तब प्रेरक शक्तियां इसकी बड़ी सहायक होती हैं। इसका झुकाव भाव पर निर्भर रहता है। जैसा भाव है वैसीही इच्छा होगी। अतएव इच्छा शक्ति पर आदमी का भला या बुरा निर्भर नहीं है। पर हां, इतना अवश्य है कि इच्छा शक्ति का परिणाम इच्छा को ठीक करता है। अतएव उपर्युक्त दोनों शक्तियों का सुधार करना परम आवश्यक है। इच्छा शक्ति के दो गुण कहे गये हैं।

दृढ़ता—जो इच्छा हमारे हृदय में उत्पन्न हो वह प्रबल हो, पहाड़ की चट्टान की तरह दृढ़ हो, किसी के हटाये न हटे, कभी हम अपने उद्देश्य से न हटें, प्रबल इच्छा करके जिस काम में लगें उसको बिना पूरा किये न न छोड़ें। यदि इच्छा दृढ़ है तो विचलित होना कठिन होता है। जिनकी इच्छा में दृढ़ता नहीं वेही अच्छे कामों से दूर भागते हैं, उन्हीं को सब काम कठिन प्रतीत होते हैं। उनका मन भले कामों में लगताही नहीं। वे साहस की न्यूनता के कारण अच्छे कामों से दूर ही रहते हैं। उनमें हाथ ही नहीं लगाते। प्रबल इच्छा वाला पुरुष कूद पड़ता है और गहरी नदी को तैर कर पार करता है।

चिरस्थिरता—इच्छा बलवती होने पर यदि चिर काल तक स्थिर भी रहे तो कोई कार्य भी बिना पूरा हुए न रहे। बीच में अन्तर पड़जाने से भी काम में त्रुटि पड़ता है। चिरकाल तक उत्तम विचारों के प्राप्त करने की इच्छा रखनी चाहिये। यदि आज हमें कोई वस्तु अच्छी लगे तो उसमें अपनी प्रबल इच्छा रखनी चाहिये। और कोशिश करनी चाहिये कि हमारी यह इच्छा चिरस्थायिनी हो। यह नहीं कि आज कुछ पढ़ना आरम्भ किया तो कल छोड़ दिया। विघ्न को तो हम स्वयं उपस्थित करते हैं हम नहीं तो हमारे देशभाई ही सही। पर वे भी तो हमारे भाई ही हैं। अगर हम विघ्न से बचना चाहें तो प्रबल इच्छा करके विघ्न को दूर करने में लग जांय और इच्छा को चिरस्थिरता से विभूषित करें। क्या यह सम्भव है कि हमारे सामने फिर विघ्न दिखलाई दे?

४—वेदन शक्ति।

वेदन शक्ति सदा वाह्य इन्द्रियों से काम लेती है। "यह फूल लाल है। इसकी महँक बड़ी अच्छी है। अमेरिका में पढ़े लिखे मनुष्य अधिक हैं। हिन्दुस्तान में पढ़े लिखे भी अपने कर्त्तव्यों का पालन उचित रीति पर नहीं करते। अतएव अमेरिका अच्छा देश है। हिन्दुस्तान भी कभी अच्छा था क्योंकि मनु जी ने लिखा है कि

"एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्र जन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः"॥

ऐसी ऐसी जानकारियों द्वारा सम्बन्ध लगाना वेदन शक्ति का काम है। तकिया काठ की नहीं लगाई जाती, रुई मुलायम होती है। यह सब जानना और इनका परस्पर सम्बन्ध दिखलाना, इस शक्ति का प्रधान कार्य है। महाराज रामचन्द्र जी कैसे थे, उनका व्यवहार सर्वसाधारण के साथ कैसा था? क्या अमुक व्यक्ति उनकी समता कर सकता है? इस घंटे का शब्द वैसा ही है जैसा कालेज के घंटे से निकलता है? ऐसी बातें वेदन शक्ति सुझाती है। इस शक्ति की उन्नति करनेवाले लोग दुनियां में बहुत कुछ कर सकते हैं। इस समाचारपत्र के लेख अच्छे होते हैं, स्वतन्त्र विचार के लेखकों की लेखनी से लिखे हुए रहते हैं, इसलिए यह समाचार पत्र अच्छा है, इससे ज्ञात होता है कि इस अख़बार के सम्पादक महोदय भी इसी विचार के मनुष्य होंगे यह काम भी वेदन शक्ति ही करती है। इसी से इसके दो काम हैं:—१ इन्द्रियज्ञान, २—सम्बन्ध गठन।

४—भावना शक्ति।

जब आदमी, बचपन की अवस्था में रहता है, उस समय उसकी बुद्धि में अपने ही घर का

ज्ञान समाया रहता है। जब तक उसके ज्ञान में वयोवृद्धि होने पर विस्तार नहीं होता तब तक सदा यही हाल रहता है। यदि बच्चे को अपने कुत्ते का नाम "झबरा" याद है तो वह जितने कुत्तों को देखेगा सब को "झबरा" नाम से पुकारेगा। पर क्या यही हाल सदा रहेगा? नहीं, आगे चलकर उसे ज्ञात होजायगा कि "झबरा" की सूरत के जितने जानवर हैं उन सबों को कुत्ता कहते हैं। और फिर जब कुत्ते को देखेगा तो कहेगा कि कुत्ता जाता है। आपने देखा होगा कि बच्चे खिलौने से बातचीत करते हैं। वे उसकी ओर संकेत करते हैं, खिलाते हैं। आजा, बिल्ली आजा वाह रे मुन्ने तू बड़ा अच्छा है, आजा ऐसी ऐसी बातें बच्चे चित्रों के प्रति करते हैं। यही भावना शक्ति है। वह शक्ति इस समय काम करती रहती है। इसी लिए कहा गया है कि जो आदमी भावना शक्ति का सुधार नहीं करता वह कुछ दिनों के बाद पागल होजाता है। "कट्टरपने का रोग" इसी शक्ति के कारण होजाता है। मूर्ति पूजा का कुछ भी रहस्य न जाननेवाला आर्यसमाजी किस प्रकार बक झक करता है, उसके नये जोश का तमाशा प्लेटफ़ार्म पर देखने योग्य होता है। यह दशा ऐसेही लोगों की होती है जिनको ज्ञान के विस्तार करने का अवसर नहीं मिला है। "व्यवस्था" की भरमार है, "आर्यसमाज बड़ा बुरा है" सनातनधर्मी मूर्ख होते हैं, ब्रह्मसमाजी ' नास्तिक हैं, वेद को जो अपौरुषेय कहे वह बज्र नास्तिक है, स्वामी दयानन्द का भाष्य बहुतही ख़राब है" ऐसी व्यवस्थाएं सुन लीजिये! ऐसे व्यवस्थापकों में से शायद ही किसी को आर्यसमाज का वास्तविक ज्ञान हो, विरलाही कोई सनातन धर्म के गूढ़ तत्व को जानता हो, किसी २ को ही ब्रह्मसमाज का मर्म विदित होता है; चाहे कुछ मनुष्य वेद का अध्ययन किये हुए हों वा स्वामीदयानन्द के सम्पूर्ण भाष्य को देखे हों, पर व्यवस्था सुन लीजिये। भावनाशक्ति के सुधार न होने का मूल कारण यह भी है कि दूसरा कोई चाहे जिस तरह समझावे हम नहीं मानेंगे। हमजो जानते हैं वही ठीक है। पर स्मरण रखना चाहिये कि जिन सज्जनों की इस शक्ति का सुधार होगा या है उनको हर एक वस्तु में गुण प्रतीत होता है। उनकी दृष्टि पवित्र दृष्टि होजाती है। वेही सज्जन गम्भीर आशय के कहे जाते हैं। और ऐसेही अपक्षपाती स्वतंत्र विचारशील लोगों की दुनियां में सच्ची प्रतिष्ठा होती है। सम्भव है कुछ दिन तक "आकर्षणशक्ति" के आविष्कर्त्ता न्यूटन को कुछ कष्ट मिला हो, गिलेलो का दिन दुख से कटा हो। पर आज सारा संसार उन नियमों पर सिर झुकाये हुए है जिनका प्रादुर्भाव उपर्युक्त सज्जनों ने किया था। स्वतंत्र विचार से निकली हुई बातें अटल होती हैं। कभी न कभी वे सच अवश्य ठहरती हैं। प्रसंगवश एक छोटासा दृष्टान्त यहां पर उद्धृत करता हूं।

इब्राहीम बड़ा ईश्वरभक्त था, वह नियमानुसार प्रति दिन एक फ़क़ीर को खिला कर तब खाता था। संयोग से एक दिन देर हो जाने पर भी कोई भिक्षुक दिखलाई न दिया। इब्राहीम स्वयं ढूंढ़ने चला और इधर सेवकों को भी ढूंढ़ने की आज्ञा दे दी। एक बूढ़ा फ़क़ीर मिला, बड़े आदर सत्कार से अदहमसुवन ने उसको आसन दिया, हाथ पैर धुलाया भोजन परोस कर वहीं बैठ गया। देखता क्या है कि बुड्ढा बिना कुछ कहे सुने भोजन करने लगा। इब्राहीम ने पूछा "आपने ईश्वर के नाम पर भोजन गिराया नहीं। ईश्वर का नाम बिना लिये ही आप खाने लगे यह क्यों?" फ़क़ीर ने कहा, "बादशाह! मैं तो ईश्वर को मानता ही नहीं! मैं क्यों नाम लेने लगा।" इब्राहीम को इस पर बड़ा क्रोध आया और वह बिगड़ खड़ा हुआ और कहने लगा कि "आज हमने बड़ा पाप किया जो बिना जाने बूझे एक पापी नास्तिक को खाना खिलाया" किन्तु इब्राहीम

शुद्ध हृदय का आदमी था—उसके अन्तःकरण में ईश्वर की प्रेरणा हुई कि 'इब्राहीम' तू बुड्ढे को मत सता। मैं जानता हूं कि बुड्ढा मुझको बहुत मानता है। मैंने भूखा समझ कर उसको तेरे पास भेजा। तुझको चाहिये कि उसको भूखा समझ कर खाना दे और आज से याद रख कोई बुरा नहीं है। नास्तिक होने से यदि वह चोरी करने लगे तो बहुत ख़राब है। पर नास्तिक होकर भी जब वह हमारे अस्तित्व को जानना चाहता है तो वह हमको नहीं मानता यह कहना तुम्हारी भूल है" इब्राहीम की सी ग़लती एक दो नहीं वरन् इस समय भारत में फी सदी ९९ लोग कर रहे हैं। पक्षपात, अन्धविश्वास, संकीर्ण विचार, अन्ध भक्ति की उत्पत्ति भावना शक्ति के सुधार न होने के कारण होती है। प्रत्येक मनुष्य का काम है कि सोच समझ कर गम्भीरता के साथ किसी विषय का मनन करे और जब सर्वसाधारण में अपनी सम्मति प्रकाश करना हो तो स्वतंत्रापूर्वक प्रकट करे, इसी में कल्याण है।

६—स्मरण शक्ति।

'विचारों का कोष' इसी शक्ति को कहना चाहिये। एक साधारण व्यक्ति को भी विदित है कि कोष में रुपये की थैली है, तो चांदी नहीं मिल सकती। चांदी वहीं होगी जहां चांदी का कोष है। किताबों के कोष में से जितनी किताबें हैं उतनी ही मिल सकती हैं। हमारे जेब रूपी कोष में जितने पैसे होंगे वेही मिलेंगे, अतएव आभ्यन्तरिक आत्मिक कोष (स्मरण शक्ति) में हम जिस प्रकार की चाहें उन्नति कर सकते हैं। अगर हम चाहें तो उसमें वेश्याओं की गज़लें रखलें, पर ख़राब ग़ज़लें नींद तक न लेने देंगी, चित्त को दिनों दिन खिन्न करेंगी। हम चाहें तो उसमें राममूर्ति का व्यायाम भरलें, हम चाहें बादशाह की तस्वीर रखदें, हम चाहें अपने देश की दशा भर दें। हम अपने कोष में जो चाहें सो देख सकते हैं। उन दुःखियों की दशा को भी जो पेट भर खाने के लिए भी तरस रहे हैं, हम उसमें रख सकते हैं और उन दावतों का दृश्य जो राय बहादुर तथा आनरेबुल होने के बदले में दी जाती हैं हम उसमें रख सकते हैं। अपने ख़ज़ाने को किन पदार्थों से नहीं सजा सकते। पर यह सब मन की रुचि पर निर्भर है कि यदि हमारे मन की दौड़ नेकटाई लगाने तथा चश्मा चमकाने में है तो इसी प्रकार की वस्तुएं अपनी शोभा से हमारे हृदय कोष को पूरित करेंगी। थोड़े में समझ जाइये मन को आप जैसा रखियेगा वैसाही आपका कोष होगा क्योंकि इसमें द्रव्य रखने का मालिक मन है। हमारी प्रार्थना है कि हम लोगों को ऐसी कोशिश करनी चाहिये कि मन को बुरी वस्तुओं का ज्ञान तक न प्राप्त हो। जो लोग अनुभव विचार से ज्ञान प्राप्त करें वे करें, मैं तो इससे सहमत नहीं हूं क्योंकि मन की दौड़ सोने पर भी बड़ी तेज़ी से होती है। यदि उसको विषय वासनाओं की ओर लगाया जायगा तो वह आदमी को ख़राब कर देगा। इसलिए सोच समझ कर काम करना चाहिये। मन को रोकना चाहिये। हर वक़्त यह ध्यान रखना चाहिये कि मन किसी बुरी राह पर तो पैर नहीं रखता। वेश्याओं का नाच देखकर बचनेवाले लोगों को चाहिये कि वे तनिक महात्मा की पैरारम्भिक कथा से शिक्षा लें। "हमको यह करना चाहिये? इस प्रश्न को स्मरण रखने से इस शक्ति के सुधार की विशेष सम्भावना है। स्मरण शक्ति के गुण सुगमता, अवैकल्य धारण तथा उपहरण है॥

७—मनीषा-शक्ति।

इसी शक्ति के बाद तर्क शक्ति का नम्बर है। अतएव यहीं से कुछ तर्क का प्रारम्भ होजाता है। पानी ठंड से जमता है, दूध और घी भी जमता है। इन उदाहरणों द्वारा यह विचार

करना चाहिये कि यह द्रव है इसको जमानेवाली जो चीज़ है वही ठंढक है। मनीषा शक्ति का यही काम है। रंडी का नाच बुरा है या अच्छा है, क्यों बुरा है या क्यों अच्छा है यहां तक पहुंचजाना इस शक्ति का प्रधान कार्य है। सब लोग जो उत्पन्न हुए मरगये, हम भी मरेंगे, किसने क्या किया, किनको कौन सी बड़ाई मिली, राय साहब ही तक रह गये या और कुछ हुए, अपनी गद्दी पर ही दिन बिताये या बाहर भी पैर रक्खे, देश के लिए कौन २ से काम किये। ऐसे ऐसे विषयों को सोच कर इस परिणाम तक पहुंचजाना कि हम भी वशिष्ट हो सकते हैं। हम भी ऐसे अच्छे लोगों में अपनी गणना करा सकते हैं। तथा हम भी इस प्रकार की खुशामद करें तो इज़्ज़त पा सकते हैं। इन विचारों का प्रादुर्भाव होना इसी शक्ति पर निर्भर है। इसके सुधार पर ध्यान रखने से मनुष्य अपने को पहिचान सकता है।

८—तर्क।

यही शक्ति आदमी को उच्च बनाती है। पर जिनको इस शक्ति के सुधार का अवसर नहीं मिलता वे विचित्र रूप से "अल्प विद्या भयङ्करी" को चरितार्थ करते हैं। हर बात में तर्क करते हैं, अगर मुसलमान के साथ खालें तो क्या हर्ज? अगर हम चोरी करें तो क्या दोष? यदि न पढ़ें तो क्या हमारा निर्वाह नहीं हो सकता? क्या जब लेखों की कमी होजायगी, तो सब अखबार बन्द होजायंगे, यदि अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा को आज्ञा होजायगी तो मज़दूर कहां मिलेंगे? फ़लां जगह स्कूल खुलजाने पर लड़के कहां मिलेंगे? अगर हम यह चीज़ ले लें, या पा जांय, तो उसको संभालेगा कौन? हालां कि उत्तर सब के दिमाग़ मे गूंजते हैं और सच सच, पर स्वभाव की प्रबलता से तर्क शक्ति का दुरुपयोग, बाज़ बाज़ सज्जन कर ही देते हैं। यदि तर्कशास्त्र का ठीक प्रयोग किया जाय और उसके द्वारा निर्णय किया, जाय तो प्रत्येक मनुष्य आविष्कर्त्ता, हो सकता है पर दूसरे की निन्दा करना आदि, बुरे काम जब हमको छुट्टी दें तब तो हम गूढ़ विषयों की ओर झुकें। हा भारत! तेरे पैदा किये हुए रत्न क्या सदा सोये ही रहेंगे? एक बार भी उनके हृदय में भूकम्प न आवेगा? क्या वे न जगेंगे? उनको सुबुद्धि न प्राप्तहोगी? उनका देश से गाढ़ प्रेम न होगा? एक बार तुम फिर कोशिश कर देखो, जिससे भावी सन्तान तुम्हारा आदर करना न छोड़ें! वे अपने कर्तव्य को समझें!! अपनी शक्तियों को काम में लावें!!! दुनियां में उनको क्यों परमात्मा ने भेजा? इसको समझें और अपने भारत पिता की सेवा पूर्ण रीति से करें!!!! हे भारत तुम मन्त्रणा दो कि तुम्हारे पूत सपूत बनें, जिससे तुम्हारी सेवा शुश्रुषा भली भांति करें।

इस शक्ति का सुधार करने में तनिक भी कसर न लगानी चाहिये। नहीं तो "मज़हब में अक़ल का दख़ल नहीं" इस मुसलमानी जुम्ले को सोचते सोचते जीवन के सत्यानाश हो जाने का डर बना रहेगा।

९—निर्णय शक्ति।

तर्क द्वारा किये हुए कार्य का जब परिणाम निकलता है तो वही निर्णय का साक्षी होजाता है। मान लीजिए कि कोई आदमी आगरे से बङ्गाल तक यात्रा करके यह निर्णय कर ले कि जितनी नदियां दुनियां में हैं वे पूरब की ओर को बहती हैं! भला विचार तो कीजिये कितना बुरा निर्णय है! जब तक भली भांति छान बीन न करले, तब तक किसी बात का निर्णय न करना चाहिये। नर्मदा और ताप्ती को देखकर कोई सब नदियों को पश्चिम की ओर बहनेवाली समझले तो भला कितना अनर्थ होगा? अतएव सदा तर्क शक्ति द्वारा हर एक काम का निर्णय करना चाहिये।

जब तक ठीक २ निर्णय नहीं कर सकता तभी तक आदमी टीले को भूत मानता है। जो वस्तु जैसी हो, उसको उसी के अनुसार जानकर निर्णय करना चाहिये। निर्णय शक्ति से ज्ञान की वृद्धि विशेष रूप से होती है।

१०—अनुमान।

पहाड़ पर धुआं उठता है इसलिए वहां आग ज़रूर होगी। ऐसी सम्भावनाओं को सोचना ही अनुमान का काम है। बाज़ बाज़ समय अनुमान का सुधार न होने से बड़ा धोखा हो जाता है। पाठकों ने नेवला, सांप और उस औरत के बच्चे का किस्सा तो सुना ही होगा, जिसने नेवले के बदन पर खून के छीटे देखकर उसको मार डाला था, यद्यपि नेवले ने उसके बच्चे को सांप से बचाया था। इसी प्रकार के अनर्थ अधिकता से होते रहते हैं। न्यायी लोगों का अनुमान बहुत उन्नत होता है। जो लोग अन्यायी हों, समझ लेना चाहिये कि उन बेचारों के अनुमान पर पाला पड़ा है। जिस मनुष्य का अनुमान सुधरा हुआ रहता है, उसके विवेक की उन्नति अहर्निश होती रहती है। वह कभी भविष्यत् में धोखा नहीं खाता। वह बादल देखते ही 'पानी बरसेगा' या नहीं, इसको ठीक ठीक बता सकता है! जो अनुमान को ठीक रीति से काम में लाता है। देश में सुधार होगा या नहीं? अमुक मनुष्य आगे चलकर इस ढर्रे पर चलेगा या नहीं? इसका भी बताना उन सज्जनों के लिए कठिन नहीं है, जिन्होंने अपनी इस अमूल्य-शक्ति का सुधार कर लिया है। वहशी लोगों में हम जातीयता का भाव कैसे फैला सकते हैं, और इसमें सफलता कैसे प्राप्त हो सकती है? इस बात का ज्ञान अनुमानशील पुरुष को ही हो सकता है। क्या कारण है कि बहुत से लोग निठल्ले के निठल्ले ही बने रहते हैं? मुख्य कारण इस शक्ति का दुरुपयोग है। उनको पता नहीं लगता, कि हम बन रहे हैं या बिगड़ रहे हैं।

११—परामर्श।

दश शक्तियों के पश्चात् अन्तिम शक्ति परामर्श अथवा सम्मति है। इसी पर मनुष्य की सारी शक्तियों की परीक्षा निर्भर है। जिसकी सम्मति अच्छी होती है वह अच्छा और जो बुरी राय देता है वह महा नीच समझा जाता है। एक बार एक मनुष्य का एक दूसरे मनुष्य से वार्तालाप हो रहा था! स्त्री शिक्षा की चर्चा चली। पहले ने स्त्रियों पर विषयदृष्टि से अनेक प्रकार के दोषारोपण किये पर दूसरे सज्जन ने कहा "मित्र, इस चश्मे को उतार कर एक बार आप "जालन्धर-कन्या-महाविद्यालय" को हमारे साथ चलकर देखिये मैं आशा करता हूं कि आपकी काया पलट जायगी" दोनों आदमियों की सम्मतियों का मिलान कीजिये! यही नहीं इस प्रकार की सम्मतियां अनेक लोग दिया करते हैं। जो लोग अपनी उपर्युक्त शक्तियों का सुधार करके सम्मति देते हैं—उनकी सम्मति अवश्य माननीय होगी। सुधरी हुई शक्तियों से निकली हुई सम्मति कभी निरर्थक नहीं होती। यों तो परामर्श-शक्ति का सुधार न होने के कारण विरोध उठाही करते हैं क्या आपको विश्वास नहीं है कि माननीय मि० गोखले का बिल अवश्य पास होगा, चाहे जब हो! जब देश में परामर्श-शक्ति से सुधरे हुए लोगों की संख्या बढ़ेगी तब वह ज़रूर होगा। अभी इसी से संतोष कीजिये—और यह सच्चा संतोष भी है—कि लोग उसके विषय में, जब तक कि परामर्श-शक्ति का सुधार न होगा, ठीक सम्मति नहीं दे सकते। सम्मति देनेवाले भी तो लायक हैं, बुद्धिमान हैं, चतुर हैं, सज्जन हैं, समझ बूझ कर ही राय क़ायम करेंगे। शीघ्रता हर काम में बुरी होती है। अब मैं कुछ नहीं कहूंगा

"हेयं दुःख मनागतम्"। आनेवाले दुःख को दूर करने के लिए, सर्व शक्तियों का सुधार करके आइये हम सब लोग मिलकर कटिबद्ध हो जांय।

महाराज शिवाजी।

[लेखक—श्रीयुत हरिभाऊ उपाध्याय।]

(१)

हुई आर्या पृथ्वी, जब मुग़ल राज्याश्रित दुखी।
नहीं था कोई भो, नर पशु सुपक्षीगण सुखी॥
अधर्मी, अन्यायी, कुटिल, नरघाती अति छली।
मुसल्मां नेता थे, सुजन-दुख-दाता बहु बली॥

(२)

कटी लाखों गायें, अगणित मरे वीर रण में॥
जहाँ पाया हिंदू, पकड़ कर डाला निगड़* में॥
गई भगवन्मूर्ती, अतिरुचिर तोड़ी सब कहीं।
उड़ाया था लोहू, सुर-निलय में भी तब सही॥

(३)

दुखी होके हिन्दू, तब मरन लागे, सुधि नहीं।
पिता, माता, बन्धू, तिय तनुजकी भी जगरही॥
महाराजा राजा, विभव धन के जो पति बड़े।
रहे हा! वे आगे, यवनपति के थे सब खड़े॥

(४)

सहस्रों, आर्यों ने, कठिन शर नीचे यवन के।
तजे प्राणों, से भो, अधिक अति प्यारे धरम के॥
सभी सिद्धांतोंको, रुचिर शुभ चिन्हादि तकको।
गुलामी म्लेच्छोंकी, सुखद पड़ती जान उनको॥

(५)

"गुलामी के हेतू-जनम सब हिन्दू पुरुष का।
मुसल्मानों को ही, अधिक सुख है राज धनका॥"
यही हा! ये हिन्दू, सतत जपते मग्न मन थे।
रहे खाते, पीते, सुख समय सोते सकल थे॥

(६)

परन्तू दीनों के, दुखित-चित-ज्ञाता हरि विभो!
जगत्कर्त्ता धर्त्ता, अघहरणकर्ता जय प्रभो॥
तुम्हारी ही इच्छा-वश सकल का ये दुख हरा।
शिवाजी के द्वारा, अतुल सुखकी भी शुचिछटा॥

(७)

दिखाई आर्योंको, निजसुखद स्वत्वों कि विभुता।
बचाई गौओं को, अवनि-सुर† नाशी थि लघुता॥
कहो! कोई भी है, नर जगत में जो नहिं चहै।
सुना उनकीगाथा, दुखित-हितमें जो दुख सहै॥

(८)

सुनाता हूं मैं भो, तुम सब जनों को वह कथा।
कहाँ? कैसे? औ क्यों? अवतरितशम्भू जगत था॥
सुनो! प्यारे बन्धो! तुम मन लगा वीर करनी।
नहीं था, है, होगा, अचल शिव सा शूर धरणी॥

(अपूर्ण)

श्रीयुत सारदा चरण मित्र एम० ए० बी० एल०।

[लेखक-परलोकगत श्रीयुत रामेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी।]

बङ्गाल प्रान्त के हुगली ज़िले में पनशेओला नाम का छोटासा ग्राम है। जिस समय की बात यहां कही जाती है, उस समय वहां प्रतिष्ठित तथा प्रसिद्धिप्राप्त बङ्गाली कायस्थों का अच्छा जमघट था। धनी मानी सेठ साहूकारों की भी खूब भरमार थी। बोस और मित्र घराने के नामी-ग्रामी लोग वहां

---

* बन्धन। † ब्राह्मण।

भरे पड़े थे। व्यापार कुशल लखपती आसामी तारिणी चरण बोस और बङ्गला भाषा के विख्यात लेखक प्यारीचन्द्र मित्र तथा स्वर्गीय किशोरी चन्द्र मित्र के नाम इस सम्बन्ध में विशेष उल्लेख योग्य हैं। मतलब यह कि वहां किसी समय बड़ी चहल पहल थी। उसी पनशोले की चोटी पर घनी बस्ती में प्रख्यात न्यायाधीश श्रीमान् शारदाचरण मित्र महोदय का भी जन्म सन् १८४८ ईस्वी की १६वीं दिसम्बर को हुआ था। शारदा बाबू एक कुलीन कायस्थ हैं। इनके भाई बन्धु पढ़े लिखे हैं। दो एक उच्चपदस्थ सरकारी कर्म्मचारी भी रह चुके हैं। इनके एक चचेरे भाई अवसरप्राप्त ज़िला जज हैं और दूसरे अवसरप्राप्त सदराला हैं। और चार भाई वकालत करते हैं। शारदा बाबू के पिता कलकत्ते में व्यवसाय करते थे। उन्होंने अपने काम में अच्छी सफलता प्राप्त करली थी।

शारदा बाबू पर बचपन के सत्सङ्ग का अधिक प्रभाव पड़ा है। काव्य, सङ्गीत, पुराण और कृषि से इन्हें सदा प्रेम रहा है और रहता भी है। पुराण के प्रेम के कारण प्राचीन इतिहास की ओर इनकी प्रबल प्रवृत्ति हो गई है। इस समय भी नगरवास की अपेक्षा ग्रामवास इन्हें अधिक प्रिय है। पेड़ पत्तो लगाने और खेती बारी के काम धन्धों में इनका बहुत मन लगता है। अवकाश के समय मन बहलाव के लिए यह इन्हीं कामों में लगे रहते हैं। अनेक आवश्यक कार्य्यों के रहने पर भी शनिवार और रविवार को बिना घर गये इन्हें कल नहीं पड़ती।

पांच वर्ष की अवस्था में शारदाचरण पढ़ने के लिए गुरू के यहां बैठाये गये थे। गुरू जी महाराज का स्वभाव कुछ रूखा सा था और इधर शारदाचरण भी परम उद्दण्ड प्रकृति के थे। बस, फिर क्या था, यह ज़रा भी चीं चपड़ करते तो इनकी अच्छी तरह खबर ली जाती थी। इनकी बुद्धि तीव्र थी और यह बड़े परिश्रमी और अध्ययनशील थे। दो एक सप्ताह में इन्हें अक्षरों का अभ्यास हो गया और यह बङ्गला पुस्तकें पढ़ने लगे। यह सब होने पर भी जब गुरू जी बिगड़ते तब इनके यह गुण ज़रा भी काम नहीं आते थे। ६ वर्ष की छोटी उम्र में ही कोमल हृदय शारदाचरण को मातृवियोग का दुस्सह दुःख सहन करना पड़ा। स्वर्ग सिधारते समय इनकी माता की उम्र सम्भवतः तीस वर्ष की हुई होगी। वह दो लड़के और एक लड़की छोड़ गई थीं। माता के मरने पर दादी और चाची बालक शारदाचरण का बड़े चाव से दुलार, प्यार करने लगीं। जन्म से ही शारदाचरण को स्वास्थ्य सुख का सुन्दर सौभाग्य कभी प्राप्त नहीं हुआ। यह बड़े दुबले पतले और कमज़ोर थे। इसलिए मातृवियोग के मानसिक कष्ट ने इनके बचे खुचे स्वास्थ्य को भी सहज में नष्ट कर दिया। इनकी अवस्था इतनी खराब हो गई कि कुछ दिनों के लिए पढ़ना लिखना छोड़ देना पड़ा। पढ़ना प्रारम्भ करने के दो वर्षों से कुछ कम समय में ही कुशाग्र बुद्धि शारदाचरण ने पाठशाला की प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त की। उसके बाद यह शिवपुर के बङ्गला विद्यालय में बैठ गये। शिवपुर हबड़े के पास है। वहीं इनके पिता रहते और नित्यप्रति काम काज करते कलकत्ते जाया करते थे। वहां इन्होंने कुछ ही महीने पढ़ा होगा कि बड़े भाई हैजे की बीमारी से परलोक सिधारे। भाई के शोक से यह इतने कातर और दुर्बल हो गये थे कि स्कूल से नाम कटा कर इन्हें घर जाना पड़ा। स्कूल छोड़ कर प्रायः डेढ़ वर्ष यह घर बैठे रहे। शारदाचरण को समय का मूल्य भली भांति मालूम था। पढ़ने लिखने का चाव भी इतना अधिक था कि इनसे और लड़कों की भांति खेल कूद में व्यर्थ समय नहीं नष्ट किया गया। उन डेढ़ वर्षों का इन्होंने

बड़ा सदुपयोग किया। उस समय बङ्गला की जितनी पुस्तकें उपलब्ध थीं, उन सब का खूब जी लगा कर अध्ययन कर डाला। इतने पर भी इन्हें सन्तोष न हुआ। गांव के कुछ समवयस्क बालक अंग्रेज़ी पढ़ने जाते थे। उनके सौ सौ निहोरे कर शारदाचरण ने कुछ थोड़ी सी अंग्रेज़ी भी सीख ली। प्रवीण कृषकों से खेती करने की शिक्षा ग्रहण की और वह इस विषय में भी खूब दक्ष हो गये। बहन की सहायता से आम का एक बगीचा लगाया। यह अब भी बना हुआ है। आलू इन्हें कुछ ज्यादा भाता है, इसलिए इन्होंने उसकी भी खेती की।

१८५८ के अगस्त महीने में यह कलकत्ते लाये गये और वहां चाचा के निरीक्षण में रक्खे गये। इनका नाम हेयर स्कूल में लिखाया गया। उस समय हेयर स्कूल का नाम कोलटोला स्कूल था और उसकी बङ्गाल के उत्तमोत्तम स्कूलों में गिनती की जाती थी। यशस्वी अध्यापक प्यारी चरण सरकार इसके हेडमास्टर थे। विद्यार्थियों को शिक्षा देने में वह बड़े निपुण थे। सरकार महाशय की ख्याति चारों ओर फैल रही थी। श्रीयुत प्यारी चरण की भांति सुयोग्य शिक्षक पाकर शारदा चरण ने पढ़ने में खूब मन लगाया। अपनी पारदर्शिता से झटपट नाम कर लिया। यह बराबर अपनी श्रेणी में प्रथम स्थान प्राप्त करते थे। सन् १८६५ के दिसम्बर में यह कलकत्ता विश्वविद्यालय की एंट्रेन्स परीक्षा में सम्मिलित हुए। परन्तु उसके पहलेही १८६२ में मातृहीन शारदा चरण को पिता ने भी शोकसागर में डुबाते हुए इस असार संसार को त्याग दिया। पितृ शोक से यह बड़े शोकाकुल हुए। इनका शारीरिक बल बिलकुल घट गया। चौदह वर्ष की कम उम्र में रोग ने धर दबाया। इस दुःखदायी रोग ने अब तक इनका पिण्ड नहीं छोड़ा। यह सब कुछ होने पर भी बुद्धिबल में अद्वितीय बङ्गाली जाति में जन्म ग्रहण करनेवाले शारदा चरण की मानसिक शक्ति तनिक भी नहीं घटी। वह ज्यों की त्यों बनी रही। यह विश्वविद्यालय में प्रथम स्थान ग्रहण करने में समर्थ हुए। नम्बर भी इन्हें अधिक मिले। सरकार इन्हें इङ्गलैण्ड जाकर शिक्षा पूरी करने के लिए छात्रवृत्ति देने को तैयार थी। पर कुटुम्बियों ने इन्हें भारत छोड़ने नहीं दिया। लाचार यह १८६६ की जनवरी में कलकत्ते के राजकीय प्रेसीडेन्सी कालेज में प्रविष्ट हुए। १८६७ में यह एफ० ए० की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। गणित में अलौकिक विज्ञता के लिए इन्हें एक स्कालरशिप दी गई। १८७० की जनवरी में इन्होंने बी० ए० की डिग्री प्राप्त की और इस बार भी यह शीर्ष स्थानीय ही रहे। दूसरे महीने (१८७० फरवरी में) इन्होंने एम० ए० में इङ्गलिश आनर्स की परीक्षा दी। केवल एक महीने के कड़ाचूर परिश्रम के फल से शारदा बाबू उत्तीर्ण तो हुए पर इनका नम्बर तीसरा हो गया।

इतने थोड़े समय में और इस प्रकार धड़ाधड़ परीक्षा पास करना बिलकुल नई बात थी। कलकत्ता विश्वविद्यालय के कानवोकेशन में इन्हें बी० ए० और एम० ए० के डिप्लोमें एक साथ ही प्रदान किये गये। इसके अतिरिक्त इन्हें ईशान स्कालरशिप भी दी गई। दूसरे ही वर्ष इन्होंने अङ्गरेज़ी, संस्कृत तथा इतिहास, इन तीन विषयों में रायचन्द्र प्रेमचन्द्र की अति कठिन परीक्षा में सम्मानवर्द्धक सफलता लाभ की। कलकत्ता विश्वविद्यालय में किसी ने भी एंट्रेन्स पास करने के कुल पांच वर्ष बाद रायचन्द्र प्रेमचन्द्र की परीक्षा में बहुतज्ञता प्रदर्शित कर पुरस्कार नहीं प्राप्त किया था। जो किसी ने नहीं किया उसे सहज में कर दिखाने का अनुपम साहस शारदा बाबू ने दिखाया। सम्भवतः इनके बाद कोई दूसरा

छात्र भी ऐसा दुःसाध्य कर्म करने में समर्थ नहीं हुआ। शारदा बाबू शीघ्र ही प्रेसीडेन्सी कालेज में अङ्गरेज़ी के अध्यापक नियुक्त हुए। इक्कीस वर्ष के नवयुवक के लिए ऐसे उच्च पद पर प्रतिष्ठित होना उस समय बड़े गौरव की बात समझी जाती थी। अध्यापन कार्य्य में पटुता प्रदर्शन कर यह छात्रों के प्रिय एवं प्रतिष्ठापात्र बन गये। विद्यार्थियों में कई इनके ही उम्र के थे, पर सब ही इनका सप्रेम सत्कार करते थे। इन सब बातों के होते हुए भी शारदा बाबू का उद्देश्य कुछ और ही था। वकालत करने के लिए उनकी उत्कट उत्कण्ठा उमड़ रही थी अतः बी० एल० की परीक्षा देने के लिए एक वर्ष के बाद ही इन्हें कालेज से अलग होना पड़ा। बङ्गला भाषा के भाग्य से उसके सुपूत हिन्दी रसिकों की तरह पाश्चात्यविद्या में नैपुण्य प्राप्त करने पर भी उसकी सेवा से मुंह नहीं मोड़ते, उसमें कुछ लिखना पढ़ना पाप नहीं समझते, प्रत्युत वह माता के परम पुनीत चरणों में श्रद्धा भक्ति पूर्वक जीवन को समर्पण करना अपना अहोभाग्य समझते हैं। नित्यप्रति नवीन और अनुपम रत्नों से माता का घर भरने की अक्लान्त चेष्टा में तत्पर रहते हैं। यही कारण है कि आज बङ्गला भाषा अपनी अन्य बहनों से कहीं अधिक उन्नत है। अस्तु–शारदाचरण का हृदय मातृभाषा के अविरल प्रेम से परिपूर्ण था और वे उसकी सेवा में तल्लीन होना अपनी मर्यादा समझते थे। इन के हृदय में भाषा की उन्नति करने का विचार बाल्यावस्था में ही उत्पन्न हुआ था। पठन पाठन से जो अवकाश मिलता उसे यह बङ्गला भाषा के अध्ययन में लगाते थे। कानून का अध्ययन करते समय इन्होंने बङ्गला भाषा के शब्द शास्त्र पर उत्तम एवं गवेषणापूर्ण लेख लिखा था वह श्रीयुत शम्भुचरण मुकर्जी की मासिकपत्रिका में प्रकाशित हुआ था। उसी समय यह विद्यावली का सम्पादन भी करते रहे। इस समय हुगली, नदिया और वर्द्धमान आदि ज़िलों में मलेरिया बुख़ार बड़े ज़ोर से फैल रहा था! शारदा बाबू को भी मलेरिया ने धर दबाया इनके सारे बदन में लाल २ दाने निकल आये और इनकी अवस्था बड़ी शोचनीय हो गई।

पर भगवान ने बड़ी कुशल की। ये आरोग्य हुए। १८७३ ईसवी में इन्होंने बी० एल० पास किया पर द्वितीय श्रेणी में। उसी वर्ष की २२वीं मार्च को यह कलकत्ता हाईकोर्ट के वकील हुए। प्रायः यह देखा गया है कि जब तक सब ओर से ध्यान हटाकर कानूनही में मनुष्य तल्लीन नहीं हो जाता तब तक वह उसमें ख्याति नहीं प्राप्त कर सकता। शारदा बाबू की भी यही दशा थी। साहित्य सेवा में लगे रहने के कारण पहले तो इनकी कुछ चली नहीं पर पीछे इन्होंने उधर से बिलकुल मन हटा लिया। इसका स्वाभाविक फल यह हुआ कि इनकी वकालत खूबही चल निकली श्रीयुत अक्षयचन्द्र सरकार एम० ए० बी० एल० और शारदा बाबू मिलजुलकर काव्यसंग्रह नामक पत्रिका का सम्पादन करते थे इसके प्रथम तथा अन्य कई अङ्कों में विद्यापति का विकाश हुआ था।

इसके अतिरिक्त यह साहित्य सम्बन्धी और भी अनेक सुन्दर एवं सुपाठ्य लेख लिखने में संलग्न रहते थे। इन्होंने भारतचन्द्रराय की समालोचना की गवेषणा एवं पाण्डित्यपूर्ण प्रत्यालोचना की। इस लेख की बड़ी प्रशंसा हुई। "हबड़ा हितकारी" नामक समाचार पत्र का सम्पादन भार वस्तुतः इन्हीं पर था। यह हबड़े से प्रकाशित होता था वहां शारदा बाबू ने बाल्यावस्था का सुखमय समय कुछ दिनों तक विताया था। वहां इनके अनेक इष्टमित्र रहते थे। कुछ दिनों के बाद इन्होंने कायस्थ कारिका प्रस्तुत की। इसमें कायस्थों के वंश का परिचय दिया गया था। उसी समय यह कल-

कत्ता कारपोरेशन के कमिश्नर निर्वाचित हुए। १८७८ से ८० तक यह कमिश्नर रहे। पीछे पुनर्निर्वाचन के लिए इन्होंने उद्योग नहीं किया। १८८४ ईसवी में यह बङ्गाल के सेन्टूल टेक्स्ट बुक कमेटी के सदस्य बनाये गये। सन् १९०० में यह संस्था टूट गई। जब तक वह रही तब तक इनका सम्बन्ध उससे बना रहा।

इसमें इन्होंने बहुत से उपयोगी कार्य्य किये। १८८५ में यह कलकत्ता विश्वविद्यालय के सिनेट के सभ्य नियुक्त हुए। कई वर्षों तक आर्टस और ला फेकेल्टी के भी सभ्य रहे थे। १८९८-९९-१९०० में ला फेकल्टी के प्रतिनिधि स्वरूप सेन्डीकेट के सभ्य रहे। १९०१ और १९०२ में लाफेकेल्टी के सभापति भी चुने गये थे। १८९५ में यह टेगोरला लेक्चरर बनाये गये और बङ्गाल के भूमि सम्बन्धी कानूनी विषयों पर इनके विचारपूर्ण लेक्चर हुए। नवीन नियमों के अनुसार सीनेट के संगठित होने पर यह फिर भी सीनेट और सेन्डीकेट के सदस्य हुए।

इधर तो शारदा बाबू इन उपयोगी सार्वजनिक कार्यों में लगे थे और उधर उनकी वकालत खूब चमकी। दिनों दिन इनकी उन्नति होती गयी! जटिल विषयों को यह अति सहज में समझ लेते थे और जज्जों को भी थोड़े से चुने हुए शब्दों में सार बातें इस प्रकार समझाते थे कि जज, बारिष्टर वकील सब के सब बड़े प्रसन्न हो जाते थे। इनका बहस करने का ढंग भी बहुत अच्छा था। १९०२ की फरवरी में सर गुरुदास बनर्जी विश्वविद्यालयों की कमीशन के सदस्य बनाये गए। उनकी जगह शारदाबाबू को मिली। ताः १८ फरवरी को ये पहली बार विचारासन पर बैठे। इनकी अद्वितीय विद्वत्ता अपूर्व तेजस्विता अलौकिक उत्साह अदम्य साहस आदि सद्गुणों का सौरभ अति शीघ्र चारों ओर फैल गया। इनके सत्यासत्य निरूपण एवं दृढ़ विचार शक्ति का पता लोगों को तुरंत लग गया। नियुक्ति के दिन से ता० ४ सितम्बर सन् १९०२ तक इन्होंने सर गुरुदास बनर्जी, सर एच० प्रेवी प्रिन्सपे और जस्टिस सेल के स्थान पर बराबर कार्य किया। मि० हिल्ल के छुट्टी लेने पर ताः १७ मार्च से ताः ३ सेपटम्बर १९०३ तक यह फिर स्थानापन्न जज्ज नियुक्त हुए। स्थायी जज बनाये जाने के पूर्व अपने अगाध पाण्डित्य के पूर्ण परिचय देने का अच्छा अवसर शारदा बाबू के हाथ लगा था। बुद्धगया का महाबोधी मन्दिर एक हिन्दू महन्त के अधिकार में आगया था। इससे बौद्धों में बड़ी हलचल मच गयी थी। इस झगड़े की जाँच करने के लिए सर्कार ने महामहोपाध्याय पण्डित हरप्रसाद शास्त्री को गया भेजा। बङ्गाल के उस समय के छोटे लाट ने इनकी भेजी हुई रिपोर्ट पढ़कर कहा था कि यह पाण्डित्य उद्योग योग्यता और सब से बढ़कर निष्पक्षपातन्याय का बड़ा भारी खजाना है।

देहरादून-शिमला-यात्रा।

(४)

[लेख--पंडित श्रीधर पाठक।]

तिन महँ मह्व तुरतवा, उतरेउँ तत्र
सँग सोहत लघुपुतवा सहित कलत्र
निरखत उपरि-उकतवा दरस विचित्र
उभरिस उरसि इकतवाँ, प्रेम पवित्र

तिहि सद भाव-सहितवा, बाहिर आय
ठाढ़े भए स-हितवा, हिय हरखाय

घिरी तहूँ. एक भिरिया, सुघर सुहाय
सजि रहीं सिजिल सवरिया पंक्ति बनाय

सजी प्रथम घुड़गड़िया-बढ़िया श्रैनि
पुनि टमटम खड़खड़िया, लढ़िया-लैनि ८५

अरु एक ओर सुरँगवा, तँगवा-पाँति
ठाढ़े बहु, बहु ढँगवा, भिन भिन भाँति

रहे मसूरि-पहड़वा-पथिकन-काज
ताँगा सुदृढ़ सुघुड़वा, सुन्दर-साज

जिन कर अतिव सुगड़वा, सकल प्रबंध
अरु तनक न गड़बड़वा, सुखप्रतिबंध

हम तहँ एक सुथरवा, तँगवा कीन
आर्य-समाज-मँदिरवा-मगवा लीन ९०

पहुँचे शीघ्र मँदिरवा सहित उछाह
बीचोंबीच नगरवा, नीक जगाह

है यह एक दु-खनवा, भौन विसाल
बिलसत बीच सोहनवा, विस्तृत हाल

पूरब और उतरवा, दुइ दालान
पच्छिम ओर कोठरवा, बंद मकान

उत्तर केरि दलनवा-मध्यम द्वारु
तिहि तट सुघर हवनवा-वेदी चारु

उहि अहै वेद-वचनवा-बाँचन-थान
हरि-गुन-ज्ञान-कथनवा-थान प्रधान ९५

आगें सुघर अँगनवा सोभा देत
सुरभित लता, सुमनवा मन हरि लेत

सुंदर दरस समनवा, दक्खिन ओर
भएउ हरस लखि मनवा उदित, अथोर

इहि विधि आर्य-मँदिरवा उत्तम थान
करेउ जाय निज डेरवा, सह-सनमान

पै रह्यौ तासु परोसवा निपट मलीन
अतिव असुच्छ, स-दोसवा, सुचिता हीन

जदपि अनेकन घरवा सुघर सुहायँ
बाहिर दरस सुथरवा, सुठि सरसायँ १००

पै जदि जाउ भितरवा, सब अति मैल
केवल बहिर बहिरवा, बड़ भड़कैल

घिच-पिच, घनी बखरियां, कुढब, कुढंग
गड़बड़, गैल सकरिया, रस्ता तंग

तहँ, जहँ तहँ, चहबचवा-जल बहिराय
उमड़ि उमड़ि मग-बिचवा, बहत दिखाय

तथा मलिन-जल-नलवा, बहु-विस्तार
करत कुगंध प्रबलवा, नगर मझार

दूषित डगर बगरवा, घरवा पाय
उरवा गइस नगरवा-नेह नसाय १०५

(क्रमशः।)

श्रीप्रयाग।] [२४-६-१९१३

वर्ण विचार।

[लेखक—श्रीयुत पं० श्यामबिहारी मिश्र तथा शुकदेवबिहारी मिश्र।]

प्रथम साहित्य सम्मेलन के समय पण्डित गौरी शङ्कर, हीराचन्द ओझा, बाबू शारदाचरण मित्र तथा पण्डित केशवदेव शास्त्री ने इसी विषय से मिलते हुए विषयों पर लेख लिखे थे। बाबू साहब ने बङ्गाली होकर भी हिन्दी लिपि प्रणाली एवं अक्षरों को भारतवर्ष भर में सर्वश्रेष्ठ बतलाया। आपका यह मत आदरणीय है कि भारत में राष्ट्र लिपि होने की पात्रता केवल हिन्दी के अक्षरों को है और इसी भांति राष्ट्र भाषा होने की योग्यता भी केवल हिन्दी भाषाही रखती है। इसी भांति माननीय पण्डित कृष्ण स्वामी ऐयर का भी मत था कि राष्ट्र लिपि होने की पात्रता केवल देवनागराक्षरों को है। हिन्दी भाषाभाषी देशों के अतिरिक्त बम्बई, गुजरात, पंजाब आदि देशों के प्रसिद्ध विद्वानों ने भी बड़ी गम्भीरता

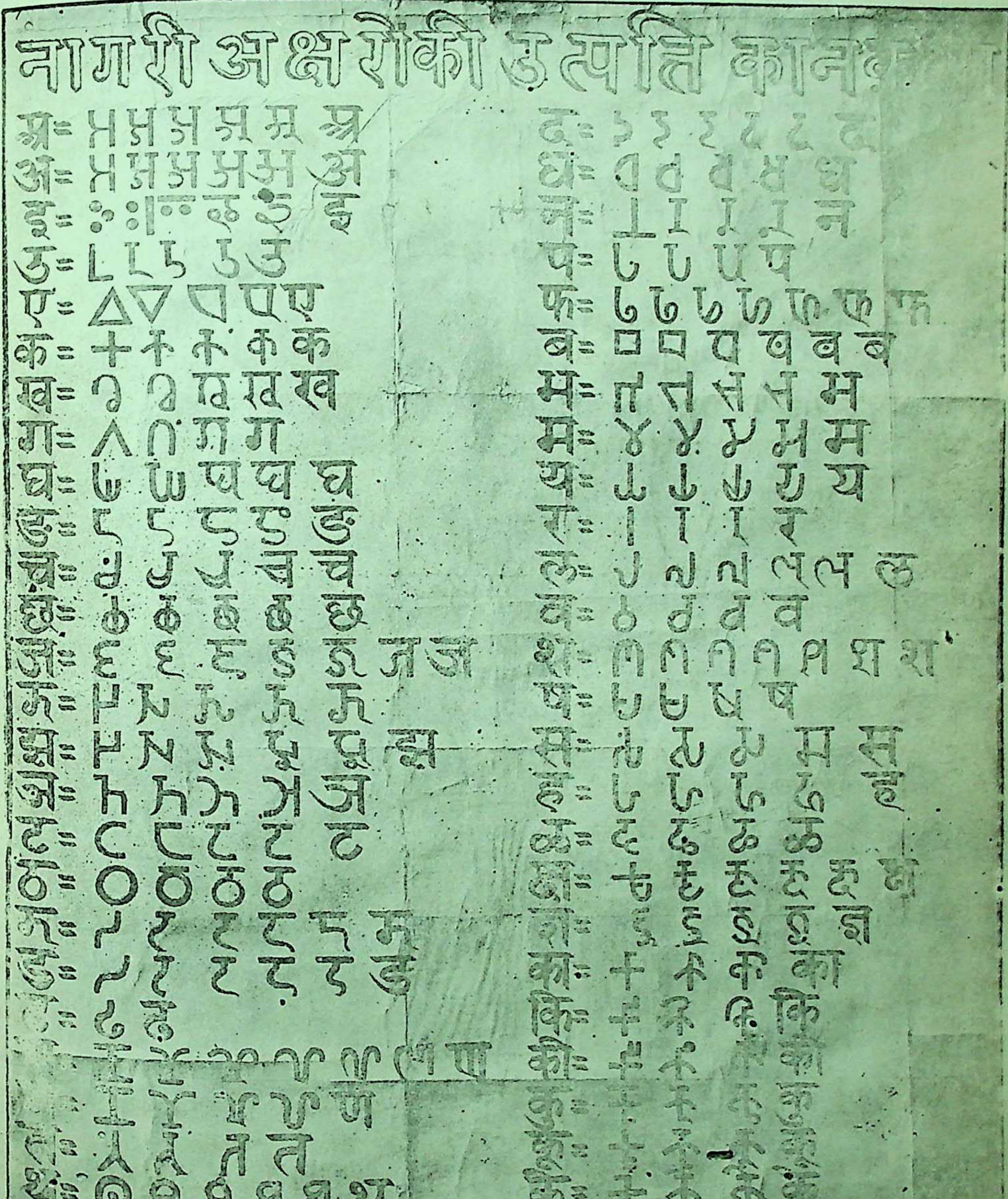
नागरी अक्षरों की उत्पत्ति का नक्शा
अ=
अ=
इ=
उ=
ए=
क=
ख=
ग=
घ=
ङ=
च=
छ=
ज=
झ=
ञ=
ट=
ठ=
ड=
ढ=
ण=
त=
थ=
द=
ध=
न=
प=
फ=
ब=
भ=
म=
य=
र=
ल=
व=
श=
ष=
स=
ह=
ळ=
क्ष=
ज्ञ=
का=
कि=
की=
कु=
कू=
के=

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग।

से यही मत प्रकट किया है और आज तक करते हैं। भारतवर्षीय भाषाओं और अक्षरों में यह गरिमा केवल हिन्दी को ही प्राप्त है कि जहां वह नहीं भी प्रचलित है, वहां तक के विद्वान् एवं दूरदर्शी पुरुष मुक्तकण्ठ से उसकी उपयोगिता को स्वीकार करते हैं और उसके प्रचार के सहायक हैं। ऐसी दशा में यह विचार उठता है कि इसके अक्षरों में और भाषा में कुछ अनमोल गुण अवश्य हैं, जो इसको पण्डित समाज से मिलाता है। आज हमको इस पंडित समाज से उन्हीं पर विचार करने एवं उसकी त्रुटियों पर ध्यान दिलाने की आज्ञा मिली है। इस पर किसी विद्वान् पुरुष का विचार करना अधिक युक्ति संगत था, परन्तु कभी कभी बड़े लोगों को भी बाल विनोद से चित्त बहलाने की इच्छा होती है। सम्भव है इसी विचार से हमें इस विषय पर विचार करने की आज्ञा मिली हो। जो हो, हमें तो आज्ञा पालन करना ही उचित है।

उपर्युक्त तीनों लेखकों में से ओझा जी ने हमारे वर्तमान अक्षरों की उत्पत्ति के विषय में अपनी अनमोल सम्मति प्रदान की है और शास्त्री जी ने उनके स्वरूपों का गुरुमुखी, मराठी और बङ्गाली अक्षरों से मिलान किया है। इन दोनों महाशयों के लेखों से इस बात का भी कुछ कुछ पता लगता है कि कौन २ से रूप किस २ समय प्रचलित थे और उनसे मिलान करने से भारत के अन्य प्रान्तों के अक्षरों की उत्पत्ति भी जानी जा सकती है।

वर्णविचार में ध्वनियों और अक्षरों से सम्बन्ध रखनेवाले प्रधान दो विभाग हैं। हम इन दोनों पर पृथक पृथक विचार करेंगे। वर्णों की उपयोगिता में ध्वनि सम्बन्धी यह उत्तमता होनी चाहिये कि भाषाओं में प्रचलित सभी प्रकार की ध्वनियों के लिए पृथक् २ अक्षर होने चाहियें और प्रत्येक ध्वनि के लिए एक ही अक्षर होना चाहिये। अक्षरों के रूपों में चार गुणों की प्रधानता मुख्य है, अर्थात् निश्चय, सरलता, सुन्दरता और त्वरा की लेखन उपयोगिता। अब सोचना चाहिये कि हमारे अक्षर इन विचारों की कसौटी में कहां तक खरे उतरते हैं और भारतवर्ष में प्रचलित अन्य अक्षरों से तुलनाजन्य गौरव किनमें अधिक है। इस स्थान पर यह कह देना अधिक आवश्यक है कि यद्यपि इन विचारों में भारतवर्षीय सभी अक्षरों पर सोचना उचित है, परन्तु सम्मेलन की आज्ञा है कि यह तुलना विशेषतया केवल उर्दू और रोमन अक्षरों से की जावे। इसी कारण हम यहां पर केवल उर्दू एवं रोमन अक्षरों से तुलना करेंगे। यह प्रायः सर्वसम्मत बात है कि स्वदेशी भाषाओं में हिन्दी अक्षरों का क्रम श्रेष्ठतम और सरलतम है। अवश्यही कुछ लोगों का यह विचार है कि त्वरा लेखन में हिन्दी से गुर्जराक्षर श्रेष्ठ हैं, परन्तु शिरोभाग की रेखा छोड़ देने से हिन्दी एवं गुर्जराक्षरों में बहुत कम भेद रह जाता है। यह रेखा केवल सौन्दर्य वर्धन के विचार से लिखी जाती है। यदि यह निश्चय हो कि सौन्दर्य की अपेक्षा त्वरा लेखन अधिक आवश्यक है, तो इस रेखा के छोड़ने से हिन्दी के अक्षर त्वरा लेखन में भी गुजराती से श्रेष्ठतर ठहरेंगे; क्योंकि यद्यपि उनका 'झ' अक्षर हमारे से सरल है तथापि इधर हमारे च, ठ, ध और अ उनके इन्हीं अक्षरों से सरलतर हैं।

ध्वनि विचार।

अब हम ध्वनि विचार से अपने लेख का मुख्य भाग प्रारम्भ करते हैं। इसमें जितनी अपेक्षाकृत बातें लिखी जावें वे रोमन और उर्दू अक्षरों के सम्बन्ध में समझनी चाहियें। हमारे अचार्यों ने स्वरों को पृथक रक्खा है और व्यञ्जनों को पृथक तथा उनके पीछे। हमारे

कुछ स्वर तो ऐसे हैं जो अक्षर और मात्रा दोनों का काम देते हैं और कुछ ऐसे हैं जो संस्कृत में चाहे अक्षर हों परन्तु भाषा में मात्रा मात्र रह गये हैं। अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ नामक दश स्वर अक्षर भी हैं, और मात्रा भी। इनमें से अ इ उ एकहरे स्वर हैं और शेष सब दोहरे, क्योंकि उनमें उन्हीं स्वरों की ऊंची ध्वनियां हैं। अतः अ, इ, ए, ओ, उ, ए, ओ मुख्य स्वर ऐसे रहे जो अक्षर और मात्रा दोनों हैं, शेष स्वरों में ऋ संस्कृत के नियमों के कारण स्थिर है, किन्तु हिन्दी में उसकी कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि अक्षर के रूप में उसका काम साधारणतया रकार में इकार की मात्रा मिलाने से निकल सकता है और मात्रा की दशा में भी अर्द्ध रकार के साथ इकार मिलाने से प्रयोजन की सिद्धि हो सकती है। यथा ऋषि एवं नृप को रिषि एवं न्रिप भी लिख सकते हैं। संस्कृत के नियमों पर ध्यान देने से इन शब्दों की ध्वनियों में भेद अवश्य है, परन्तु साधारण जनसमुदाय में कोई भी इन उच्चारणों में भेद नहीं करता। हमी लोग उर्दू की लिपि में ث ص س तथा ض ز ذ ظ नामक अक्षर समुदाय का एकही एक ध्वनि बोधक होना बतलाकर दोषारोपण करते हैं, किन्तु उनके विद्वान मौलवी लोग इनके उच्चारणों में कुछ कुछ भेद अवश्य बतलाते हैं, जो सर्वसाधारण के समझ में नहीं आता और फ़ारसी एवं उर्दू लिपि को केवल दुर्बोध बनाने का काम करता हैं। यही दशा हमारे ऋ और ष की है। इन अक्षरों के उठा देने से हमारी लिपि प्रणाली में सरलता आ सकती है और दोष कुछ भी नहीं पड़ सकता है। ॠ अर्थात् बड़ी ऋ का प्रयोग वेदों और कहीं कहीं संस्कृत में अवश्य होता था, परन्तु भाषा में कहीं नहीं होता। इस अक्षर का रहना न रहना दोनों बराबर है। ल और लृ मिलित अक्षर हैं न कि एक एक अक्षर। इससे वस्तुतः अक्षर क्रम में इनका न होना ही ठीक है। अं और अः मात्रा मात्र हैं। इनके स्वरूप अ अक्षर के प्रयोग द्वारा दिखलाये गये हैं। अः का प्रयोग हिन्दी में बहुत कम होता है। इसी प्रकार ओ और औ भी मात्रा मात्र कहे जा सकते हैं, क्योंकि उनके भी रूप अकार पर उनके प्रयोगों द्वारा दिखलाये गये हैं। वास्तव में अ को छोड़ कर सभी स्वर केवल मात्रा कहे जा सकते हैं, क्योंकि इ, उ, ए भी अि अु अे करके उत्तमतापूर्वक लिखे जा सकते हैं। अतः वास्तव में अकेला अकार अक्षर और मात्रा दोनों है बाकी के शेष स्वर केवल मात्रामात्र हैं। इन मात्राओं का प्रचार अधिक होने के कारण त्वरा लेखन में सुविधा के विचार से इनके रूप अलग बना दिये गये हैं। फिर भी ओ का कोई अलग रूप नहीं है और ऋ त्वरा लेखन में भी सहायता के स्थान पर अड़चन डालता है। अतः हमारा स्वतन्त्र विचार है कि ऋ और ॠ अनावश्यक वर्ण हैं, तथा इ उ ए का काम अ से निकल सकता है किन्तु त्वरालेखन के विचार से ये अक्षर आवश्यक हैं। स्वरों का उच्चारण जिह्वा द्वारा प्रायः एकही प्रकार से होता है।

व्यंजनों में हमारे यहां ऋषियों ने पांच वर्ग स्थिर किये हैं, आठ अक्षर पृथक रक्खे गये हैं और क्ष त्र और ज्ञ दो दो वर्णों के मिश्रण के फल हैं, न कि स्वतन्त्र वर्ण। इनको हम अक्षरों की संख्या में नहीं गिनते। वर्गों में एक एक का उच्चारण जिह्वा, दन्त, ओष्ठ, तालु आदि के एक ही एक प्रकार के मिलाने से होता है, अर्थात् कवर्ग का एक प्रकार से, चवर्ग का दूसरे प्रकार से और इसी भांति अन्यान्य वर्गों का पृथक २ भांति से। वर्गों के अक्षरों का शेष अक्षरों से मुख्य भेद यही है कि वर्गोंवाले वर्णों के पूर्व अनुस्वार होने से अनुस्वार का शुद्ध उच्चारण उस वर्ग के पंचमाक्षर का होता है, जिसके पहले वह आवे, परन्तु शेष व्यंजनों के प्रथम आने से उसका उच्चारण शुद्ध अनुस्वार

का होता है। यथा रंग में अनुस्वार ङ हो जावेगा, कंज में ञ, कंटक में ण, दंत में न, और पम्पा में म्, परन्तु संहार, संसार आदि में अनुस्वार का शुद्ध रूप रहता है। आजकल हिन्दी के लेखकों का विचार संस्कृत के इस पंचमाक्षर में अनुस्वार को बदलनेवाले नियम के प्रतिकूल है। उनका विचार है कि अनुस्वार को सदा अनुस्वार ही रखना चाहिये, चाहे वह जिस वर्ण के पहले आवै। साधारण बोलचाल में कवर्ग तथा य (संयम) और ह के प्रथम आनेवाले अनुस्वारों का उच्चारण शुद्ध अनुस्वार का होता है, पवर्ग एवं व (संवाद) के प्रथमवाले अनुस्वारों का उच्चारण शुद्ध मकारका होता है और शेष अनुस्वारों का उच्चारण अर्द्ध नकार का होता है। ये उच्चारण शुद्ध उच्चारण के प्राकृतिक नियमों के अनुसार आप से आप ऐसे होंगे, चाहे कोई पंचमाक्षर का प्रयोग करे चाहे अनुस्वार का। ऐसी दशा में पंचमाक्षर के प्रयोग का छोड़ना कुछ अनुचित नहीं समझ पड़ता। यदि यह पंचमाक्षर का प्रयोग छूट जावे तो ङ और ञ अक्षरों की कोई आवश्नकता न रहेगी। वर्गों से इतर वर्णों में सब का उच्चारण प्रकार एक दूसरे से पृथक है, परन्तु फिर भी र ल श स का कुछ कुछ मिलता है और व का पवर्ग से कुछ समानता रखता है। ष संस्कृत में तो शायद आवश्यक हो, परन्तु भाषा के लिए बिलकुल अनावश्यक समझ पड़ता है, क्योंकि कहीं तो वह श का उच्चारण रखता है और कहीं ख का। ऐसे स्थानों पर श या ख ही लिखे जा सकते हैं।

यदि ञ और ङ को निकाल डालें, तो हमारे यहां किसी भी ध्वनि के लिए एकही अक्षर अथवा मिलित वर्ण निकलता है; इस लिए लेखन अथवा उच्चारण में किसी प्रकार का भ्रम नहीं पड़ सकता, प्रत्येक लिपि के लिए यह आवश्यक है कि उसमें प्रत्येक भाषा में व्यवहृत हर एक ध्वनि के लिए कोई स्वच्छन्द अथवा मिलित अक्षर हो और एक ध्वनि के लिए एक ही अक्षर हो। इन दोनों बातों का हमारे यहां लिपिप्रणाली में पूरा ध्यान रक्खा गया है। हमारे यहां उर्दू के ع ق خ غ ز ف अक्षरों के लिए कोई अक्षर न थे, क्योंकि ऐसे उच्चारण ही संस्कृत या हिन्दी में न थे। इन उच्चारणों के लिए उनसे मिले हुए अक्षरों के नीचे विन्दु रखकर नई ध्वनियां बहुत दिनों से निकाली जाचुकी हैं। यथा अ़ क़ ख़ ग़ ज़ फ़। इन ध्वनियों के आ जाने से उर्दू एवं फ़ारसी के समस्त उच्चारण हमारी लिपि प्रणाली में आ गये हैं। अङ्गरेज़ी के o और v नामक अक्षरों के उच्चारण हमारे यहां न थे। इनके स्थान पर अ के ऊपर ◡ चिन्ह से O का काम निकाला गया है। और व के नीचे विन्दु देकर v का उच्चारण लाया गया है। इसी भांति लघु और गुरु के बीच का उच्चारण भी खड़ी के स्थान पर ऽ मात्रा या रेखा से निकलता है। इस प्रकार अंगरेज़ी के भी सब उच्चारण हमारे यहां आ गये। अब मराठी का एक अक्षर एवं मदरासी भाषा का एक अक्षर रह गया जिनकी ध्वनियां हमारी लिपि में अब तक नहीं हैं और जिनके लिए नये अक्षरों के बनाने की आवश्यकता है। उनके लिए हमारी समझ में व के पीछे ष निकालकर उन्हीं अक्षरों के चिन्ह उन्हीं ध्वनियों के लिए हिन्दी में रख देना चाहिये। केवल उनके शिरों पर रेखा रखने से हमारा काम चल जायगा। इस प्रकार हमारी लिपि प्रणाली समस्त भारतवर्षीय भाषाओं की ध्वनियों एवं उर्दू तथा अङ्गरेज़ी की ध्वनियों को प्रगट कर सकती है।

अब अन्य भाषाओं की लिपियों पर ध्यान देने से विदित होगा कि वे कई अनावश्यक अक्षर रखती हैं और कई आवश्यक ध्वनियां

उनमें शुद्धतापूर्वक अथवा निश्चित प्रकार से नहीं लिखी जा सकतीं। कभी कभी उनके यहां एक ही अक्षर से कई ध्वनियां निकलती हैं। यदि उर्दू के अक्षरों को लेवें, तो विदित होगा कि अनावश्यक अक्षरों की उसमें अच्छी भरमार है और निश्चय नहीं हो सकता कि किसी विशिष्ट ध्वनि के लिए कौनसा अक्षर लिखाजावे। सकार के लिए वहां س ص ث नामक तीन चिन्ह हैं। खुश में सकार ث से लिखी जावेगी, ख़ास में ص से और ख़स में س से। इन तीन अक्षरों में से दो नित्तान्त अनावश्यक और भ्रमवर्द्धक हैं। इसी प्रकार हकार के लिए ح और ه नामक दो चिन्ह हैं, तकार के लिए ت और ط हैं, अकार के साधारण बोल चाल में ع और ا हैं, और जकार के लिए तो ز ذ ض ظ नामक चार चिन्ह वर्तमान हैं। अतः ३६ अक्षरों में से आठ अनावश्यक हैं। अब जब चिन्हों की कमी की ओर ध्यान दीजिये तो ई ए ऐ के लिए वही ے। का प्रयोग होगा। इसी भांति ऊ ओ और औ की लिखावट में भेद नहीं है। ङ ञ ण लिखेही नही जा सकते। उनका और उंका में कोई भेद नहीं है। अर्द्धाक्षर कोई नहीं लिखा जा सकता। यथा धर्म को धरम, शक्ति को शकति, पंखा को पनखा, आदि उर्दू में लिखेंगे। ज़ेर ज़बर पेश का विचार है अवश्य, परन्तु उनका प्रयोग कभी नहीं होता। इसलिए सकत, सकतु, सकति, सिकिति, सिकतु, सुकुतु आदि अनेकानेक शब्द उर्दू में एकही प्रकार से लिखे जाते हैं। मृत्युञ्जय, ऊधव आदि शब्द उर्दू में भ्रान्तिरहित प्रकार से लिखेही नहीं जा सकते। ऊधव को ओधो, औधो, औधौ, ओधौ, औधू, ओधू, ऊधू आदि अनेक प्रकार से उर्दू में पढ़ सकते हैं। स्वयं उर्दू का शब्द अलीहज़ा लिखा और अलाहाज़ा पढ़ा जाता है। इसी भांति अल्लह लिखकर अल्ला पढ़ते हैं। यदि ज़ेर ज़बर पेश को मान भी लेवें, तो भी उपर्युक्त सब दूषण उस लिपि प्रणाली में पूर्ण रूप से प्रस्तुत हैं। अतः लिपि प्रणाली में प्रायः चौथाई अक्षर आवश्यकता से अधिक होकर उसे भ्रान्तिजनक बनाते हैं और न जानें कितनी ध्वनियों के लिए उसमें चिन्ह ही नहीं है। अतः साथही साथ उसमें अव्याप्ति और अतिव्याप्ति दूषण वर्तमान हैं। उर्दू की लेखन प्रणाली और अक्षर ऐसे भ्रष्ट हैं कि उसमें संस्कृत के किसी भी श्लोक के लिखने से उसका पढ़ना प्रायः असम्भव होजावेगा। यथा,

> जयत्वदभ्र विभ्रमद्भ्रमद्भुजङ्गमस्फुरत्,
> धगद्धगद्विनिर्गमत्कराल भाल हव्यवाट्।
> धिमिद्धिमिद्धिमिद्ध्वनन्मृदङ्ग तुङ्ग मङ्गल-
> ध्वनि क्रम प्रवर्त्तितप्रचण्ड ताण्डवः शिवः॥

को यदि उर्दू या अङ्गरेज़ी में लिख देवें, तो इस श्लोक का न जाननेवाला इसे कभी न पढ़ सकेगा। उधर फ़ारसी का कोई कठिन से कठिन छन्द भी हिन्दीलिपि में शुद्धता से लिखा एवं पढ़ा जा सकता है। यथा,

> अलाया अइय उस्सा की,
> अदर कासिन अनावेल हा।
> कि इश्क़ासां नमूदौवल,
> वले उफ़्तादः मुश्किल हा॥

फ़ारसी के कठिन छन्द तक हिन्दी लिपि में सफलतापूर्वक लिखलेने तथा हिन्दी के उर्दू में न लिख पाने से इन दोनों भाषाओं के लिपियों की आनुषंगिक गरिमा एवं हीनता प्रकट होती है।

अब अंगरेज़ी अर्थात् रोमन लिपि पर विचार किया जाता है। इसकी दशा अव्याप्ति और अतिव्याप्ति में उर्दू से भी ख़राब है। इसमें एक ही शब्द समय समय पर विविध प्रकार की ध्वनियों का काम देता है, और एकही ध्वनि विविध स्थानों पर विविध भांति से लिखी जाती है। यथा वही अक्षर A, bat शब्द में ए का काम देता है, स्मार्ट में आ का और अलर्ट में अ का। अदर में O ई अकार का काम

देता है। th यदि आगे हो तो ough ओ का काम देते हैं, परन्तु d आगे हो तो वेही अक्षर फ़ बनजाते हैं। इस भाषा में कई स्थानों पर अक्षरों और उच्चारणों से कोई सम्बन्ध ही नहीं समझ पड़ता। S अक्षर अनेक स्थानों पर सकार का काम देता है और अनेक स्थानोंपर ज़कार का। ककार का काम कभी kसे लेते हैं, कभी ch (chemist) से और कभी केवल c से। वही ch अनेक स्थानों पर चकार का काम देता है। Z और X अक्षर अनावश्यक हैं उनके काम अन्य अक्षरों से निकल सकते हैं। cअक्षर स्वयं अनावश्यक है। क्योंकि इसका काम स s से चल सकता है और क का k से, c केवल h के साथ मिलकर चकार का काम देता है। ऐसी दशा में सीधा सादा चकार का ही बनाना अधिक युक्ति संगत था। इस लिपि में अनावश्क अक्षरों एवं ध्वनियों के दुरुपयोग की अच्छी भरमार है। उधर उनका, उङ्का, ऊंका, ऊनका सब एकही प्रकारसे लिखे जावेंगे। इसी भांति कांटा, कान्टा, कनूटा आदि लिपि में एक ही हैं। ङ ञ ण ढ़ ड़ क़ त लिखेही नहीं जा सकते और ढ एवं ध तथा ठ एवं थ को एकही भांति से लिखते हैं और ख़ एवं ख को भी। इस उदाहरण समूह से प्रकट हुआ होगा कि रोमन लिपि अनेकानेक उच्चारण व्यक्त करने में असमर्थ है और जिन्हें व्यक्त भी करती है, उन पर एक नियम पर न चलकर सन्देह उपस्थित करती है। यदि उपर्युक्त श्लोक को कोई रोमन में लिखना चाहै, तो उसे पढ़नेवाला कोई भी न मिलेगा। इधर हिन्दी लिपि में कठिन से कठिन अँगरेज़ी शब्द समूह का यथावत लिखना अत्यन्त सुगम है, यथा,

ए लूनेटि[illegible] लवर ऐण्ड ए पोएट ।
आर इन इमेजिनेशन आल कम्पैक्ट ॥
वन सीज़ मोर डेविल दैन वास्ट सी कैन होल्ड।
दैटइज़ दि मेडमैन, येल्यूनिटिक आल एज़बोल्ड॥

उर्दू और रोमन लिपियों का अक्षर क्रम भी किसी वैज्ञानिक रीति पर नहीं चलता जैसा कि हमारे यहां है। उनके अक्षरों के उच्चारण भी और प्रकार से हैं, परन्तु वे ध्वनियां और व्यक्त करते हैं। उर्दू में कहेंगे अलिफ़ और प्रयोजन लेंगे अ का, कहेंगे जीम और मानेंगे ज, इसी प्रकार दाल, डाल, ज़ाल, सीन, शीन, स्वाद, ज्वाद, ऐन, गैन, काफ़, क़ाफ़, गाफ़, लाम, मीम, नून और वाव की दशा है। शेष अक्षर भी कहे तो बे पे आदि जाते हैं और माने जाते हैं ब, प आदि। उचित यह है कि जो अक्षर कहा जाय वही माना जाय। उसमें अनावश्यक ध्वनियां भ्रमवर्द्धक हैं और उनसे वैज्ञानिक सत्यता का वहिष्कार होजाता है। इसी भांति अङ्गरेज़ो में यफ़्, यच्, आई, यल्, यम, यन्, क्यू, आर, एस, डब्लू, यक्स, वाई और जेड़् का हाल है। शेष अक्षर ए, बो, सो आदि में भी बे, पे, आदि की भांति सीधी ध्वनि नहीं कही गई है।

फिर इन भाषाओं के अक्षर क्रमों में स्वर और व्यञ्जन अनावश्यक प्रकार से हिला मिला कर लिखे गये हैं। उचित यह था कि हमारे यहाँ के समान स्वर और व्यंजन अलग अलग रक्खे जाते। हमारे यहां स्वरों में भी विशेष व्यवहारिक गरिमानुसार उनका पूर्वापर क्रम है। "अ" का सबसे अधिक व्यवहार है और बच्चे पहले अ बोलते भी हैं। फिर अकार शेष स्वरों का मूल स्वरूप है, जैसा कि ऊपर दिखलाया जा चुका है, क्योंकि उसी में मात्रा लगाने से शेष स्वर निकल सकते, अर्थात् लिखे जा सकते हैं। अ के पीछे इ की पदवी है और फिर क्रमशः अन्य स्वरों की। व्यंजनों में एक २ प्रकार से उच्चारण होनेवाले अक्षरों के पांच समूह एक पास लिखे हुए हैं और प्रत्येक वर्ग का पंचमाक्षर-क्रम अनुसार के सम्बन्ध में प्राकृतिक नियमानुसार एक ही है, जैसा कि ऊपर दिखलाया गया है। पकार को निकालकर शेष सात अक्षरों का उच्चारण क्रम एक दूसरे से अन-

मिल है और उनके प्रथम अनुसार का शुद्धरूप स्थिर रहता है। उधर अङ्गरेज़ी में अक्षरों के क्रम का कोई शुद्ध कारण ही नहीं है। उर्दू में ध्वनियों पर क्रम नहीं रक्खा गया है, किन्तु रूपों पर कुछ २ क्रम विचार है। फिर भी फ़े को बे, पे के समीप होना चाहिए था और उसके पीछे बड़ी ये एवं काफ़ और गाफ़ को क्योंकि ये रूप कुछ २ मिलते हैं। इसी भाँति ऐन, ग़ैन, क़ाफ़, स्वाद, ज्वाद, लाम, नून, सीन, शीन और छोटी ये को जीम, चे आदि के पीछे रहना चाहिये था, क्योंकि ये सब कुण्डलवाले अक्षर हैं। वाव तथा छोटी हे को दाल, डाल के निकट रहना चाहिये था और तोय, ज़ोय को इन्हीं के पीछे। इस प्रकार इन थोड़े से अक्षरों में न ध्वनि का क्रम ठहरता है, न रूप का, न स्वर का और न व्यंजन का। इस प्रकार ध्वनि विचार में हमारे अक्षर सर्वश्रेष्ठ ठहरते हैं। इनमें जो कुछ लिखा जावे, वही संशय-रहित दृढ़तापूर्वक पढ़ा जावेगा और ये सब प्रचलित ध्वनियों को लिख सकते हैं।

रूप विचार।

किसी वर्णमाला के लिए ध्वनि विचार मुख्य है और रूप विचार अप्रधान। हर वर्णमाला के लिए ध्वनि व्यक्तीकरण सामर्थ्य प्रधान गुण है, क्योंकि इसी के लिए वह बनता है। यह ऊपर प्रकट हो चुका है कि सामर्थ्य हमारे वर्णमाला में खूब प्रचुरता से है। अब अक्षरों के रूपों पर विचार शेष रहा। सामर्थ्य के पीछे रूपों में निश्चय, सरलता, सुन्दरता और त्वरा लेखन उपयोगिता के विचार मुख्य हैं, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है।

हमारे अक्षरों के रूपों की उत्पत्ति का हाल जानना अभी तक के अनुसन्धान से निश्चित नहीं हुआ है। ओझा जी महाशय ने लिखा है कि इनके पुराने से पुराने रूप महाराजा अशोक के समय से मिलते हैं। इससे पूर्व को केवल एक पंक्ति नेपाल की तराई के एक मन्दिर में रक्खे हुए एक शिला लेख में है, जिसमें केवल १४ अक्षर हैं। ये अक्षर अशोकाक्षरों से मिलते हैं, केवल इनमें दीर्घ स्वर चिन्हों का अभाव है। ये पूरे अक्षर मिले नहीं और इनमें मात्रायें भी ठीक नहीं हैं। अतः अद्य पर्य्यन्त के अनुसन्धान हमें अशोक के समय के अक्षरों तक ले जाते हैं। उस समय के हमारे अक्षरोंवाले रूप हमारे वर्त्तमान अक्षरों के रूपों से बिलकुल पृथक हैं। ओझा जी ने उन रूपों ने किस प्रकार बदलते २ वर्त्तमान रूप ग्रहण किये, इस बात का एक नक़शा दिया है। उस नक़शे की एक प्रतिलिपि हम इस लेख के साथ भी लगाते हैं। इसके देखने से विदित होगा कि कैसे बदलते २ हमारे अक्षर बने हैं। उन्होंने इन अनेक मध्यवर्ती रूपों के समय भी लिखे हैं। इन कई रूपों से गुजराती, बङ्गाली, मराठी आदि अक्षरों के वर्त्तमान रूप मिलते हैं। इनको मिलाने से यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि वे वर्णमालायें उसी समय बनीं जब हमारे अक्षरों के वे रूप प्रचलित थे। इस लिपि प्रणाली को ब्राह्मी और नागर कहते थे। कहते हैं कि पूर्वकाल मे जब कि देवताओं की प्रतिमाएँ नहीं बनीं थीं, तब उनके पूजन सांकेतिक चिन्हों द्वारा होते थे। ये चिन्ह भाँति भाँति के त्रिकोणादि यंत्रों के मध्य में लिखे जाते थे। इन यंत्रों को देवनगर कहते थे, मानों चिन्हों के कारण देवताओं के लिए वे निवासस्थान अथवा नगर थे। समय पाकर यही सांकेतिक चिन्ह अक्षर हो गये। इसी लिए ये अक्षर "देवनागरी". कहलाये।

महाराज अशोक ईसा से प्रायः २५० वर्ष पूर्व हुए। उनके समय के ४४ अक्षरों में से गोलाई युक्त प्रायः २० अक्षर हैं और इतने ही कोण प्रधान हैं। बिन्दु युक्त केवल दो हैं और

२६ ऐसे हैं जिनमें सीधी रेखाओं का प्राधान्य है। शिर पर किसी अक्षर के रेखा नहीं है, केवल चार अक्षर ऐसे हैं जिनके शिर पर रेखायें उनके रूपों के अङ्ग हैं। इन अशोक-अक्षरों के देखने से प्रकट होगा कि हमारे वर्त्तमान अक्षरों से ये सरलतर अवश्य हैं, किन्तु मिलित वर्ण लिखने में इनकी उपयोगिता संशयाकीर्ण है और समझ पड़ता है कि मिलाने में ये अक्षर निश्चय ही कठिनता से पढ़े जाते होंगे। इन्हीं या अन्य कारणों से समय के साथ ये बदलते चले यहां तक कि अब उनसे प्रकट में वर्त्तमान अक्षरों से कोई सम्बन्ध ही नहीं समझ पड़ता।

हमारे यहां प्राचीन काल में ताम्रपत्र, ताड़पत्र, शिलाओं आदि पर लेख अधिक लिखे जाते थे और कागज़ आदि पर कम। भोजपत्र आदि का प्राचीन समय में कुछ कुछ प्रचार तो अवश्य हुआ, किन्तु अधिकता से नहीं। अधिकतर प्राचीन पुस्तकें ताड़पत्रों पर ही लिखी जाती थीं। इन कारणों से लिखने में मुलायम लेखनियों से उतना काम नहीं लिया जाता था जितना कि पुष्ट लोह यन्त्रों से। इसीलिए हमारे अक्षर भी ऐसे थे जो सूजा आदि से सुगमता एवं सफलतापूर्वक लिखे जावें। ज्यों ज्यों समय के साथ सभ्यता की वृद्धि से लेखन कार्य्य की भी वृद्धि होती गई, उसी प्रकार मृदुल लेखनी और काग़ज़ आदि का भी प्रचार हुआ और तदनुसार अक्षरों के रूपों में भी हेर फेर हुए।

इन हेर फेर करनेवालों ने स्वाभाविक प्रकार से अक्षरों के सौन्दर्य्य एवं शीघ्र लेखन उपयोगिता पर भी ध्यान रक्खा, यद्यपि निश्चय की ओर से भी ध्यान हटाया नहीं गया। निश्चय पर ध्यान रहने से यह फल हुआ कि आजकल हमारे वर्णों द्वारा जो कुछ लिखा जाय, ठीक वही पढ़ा जावेगा। इसमें कोई सन्देह नहीं पड़ सकता। सौन्दर्य्यवर्द्धन के विचार से अक्षरों के ऊपर उठी हुई रेखाओं के शिरों पर पगड़ी की भांति कुछ छोटी रेखायें लगाई जाने लगीं, जो समय पर प्रत्येक अक्षर के शिर पर आड़ी रेखा के स्वरूप में बदल गईं। इन शिरोभागवाली रेखाओं के कारण सौन्दर्य्य की वृद्धि अवश्य हुई, किन्तु त्वरा लेखन उपयोगिता को क्षति पहुंची। त्वरा लेखन के विचार ने अक्षरों के रूपों में ऐसे हेर फेर कराये, जिनके कारण पूरा अक्षर बिना लेखनी उठाये लिखा जा सके। यदि सौन्दर्य-वर्द्धक शिरोभागवाली आड़ी रेखायें निकाल डाली जावें, तो अशोकाक्षरों के ४४ में से १५ ऐसे थे जिनके लिखने में लेखनी एक साथ बिना उठाये काम नहीं कर सकती थी। आजकल भी उतनेही अक्षर उसी प्रकार के हैं और फिर भी निश्चय गुण की पूरी वृद्धि हो गई इसलिए यह उन्नति सन्तोषदायिनी है। सरलता के विचार में आजकल के अक्षर अच्छे नहीं ठहरेंगे, क्योंकि यद्यपि आजकल के ढ और य की सरलताओं में उस समय वाले अक्षरों से समानता है और हमारा वर्त्तमान भ उस समय के भ से सरलतर है, तथापि शेष सब अक्षर उसी समय के सरलतर थे। फिर भी निश्चय प्राप्ति के विचार से सरलता का यह थोड़ा सा ह्रास बुरा नहीं कहा जा सकता, क्योंकि निश्चय गुण वर्णों के सभी रूपवाले गुणों से श्रेष्ठतर है। सुतरां हमारे वर्त्तमान वर्णमाला में अशोकाक्षरों की अपेक्षा निश्चय और सुन्दरता के गुण अधिक हैं, किन्तु सरलता और शीघ्र लेखन उपयोगिता के कम। हमारे वर्णों से शिरोभागस्थ रेखाओं का उठा देना बहुत हो आवश्यक है, क्योंकि यद्यपि इसके न रहने से सुन्दरता में कुछ क्षति पहुंचेगी, किन्तु त्वरालेखन उपयोगिता कई गुण खूब बढ़ जावैगा। यह एक बड़ाही उत्कृष्ट गुण है। हर बात में समय का दुरुपयोग बचाने

का विचार अवश्य रखना चाहिये । शिरोभाग की आड़ी रेखा में हटाने से केवल घ ध, म, भ, झ और ख में कुछ फेरफार करना पड़ेगा, क्योंकि इस रेखा के हटाने से घ और ध में कुछ भेद न रहेगा । इसी प्रकार भ और म में भी कोई भेद न रहेगा । झ में रेखा के हटाने से भी कोई भ्रम नहीं पड़ सकता, क्योंकि वैसा कोई दूसरा अक्षर नहीं है । ख और र व में इस समय में भी साधारण लेखन शैली से पूरा भ्रम पड़ता है । इस कारण हमारे विचार से ख का रूप बदलना चाहिये । विशेषतया इसलिए भी कि यह त्वरालेखन के भी प्रतिकूल है । यदि ऊपर रेखायें अन्य अक्षरों से भी हटाई जावें, तो ख का रूप हो सका है, जो इसी नाम के अशोकाक्षर का रूप है । यदि शिरोभाग की रेखा न हटाई जावे, तो इस रूप में गड़बड़ पड़ेगा अतः गुजराती का ख हम ले सकते हैं, जिसका रूप हमारे उद्देश्य साधन के उपयुक्त है । भ और ध में अन्त की रेखा आधी कर देने से म और घ से अन्तर हो सकता है । गुजराती में यह रूप ध का है, जिसमें आरम्भ में ही टेढ़ी रेखा द्वारा घ से अन्तर किया गया है । भकार का इसी प्रकार का रूप लिखा गया है, जिसके आदि में एक रेखा बनाकर म से अन्तर किया गया है । इस प्रकार गुजराती अक्षरों के सहारे हम त्वरा लेखन उपयोगिता बढ़ाने में अपने ख ध और भ के उपयोगी ऐसे रूप पा सकते हैं, जो हमारे इन्हीं वर्त्तमान अक्षरों के रूपों से मिलते भी हैं । सारांश यह है कि हमारी सम्मति में शिरोभाग की रेखाएं हमारे अक्षरों से हट जानी चाहियें । और ख, ध और भ को उपर्युक्त प्रकार से लिखना चाहिये । हमारा ण भी अच्छा नहीं है । क्योंकि टवर्ग के अन्य अक्षरों से मिलने पर यह रा होकर भ्रामक होजाता है । यथा पाण्डव (पांडव) को पाराडव भी पढ़ सकते हैं । इसका गुरमुखी का रूप ग्रहण करने के योग्य है ।

बहुत लोगों का मत है कि अक्षर ऐसे होने चाहियें जो लेखनी उठाये बिना उर्दू और अङ्गरेज़ी की भांति कई २ साथ ही साथ लिखे जा सकें । हमारे विचार में यह बात बिल्कुल ही अनुचित है । त्वरा लेखन एक आदरणीय गुण है, परन्तु निश्चय उससे कहीं बढ़कर आदरणीय है । यदि किसी लेखन प्रणाली से निश्चय गुण कुछ भी घट गया, तो उसके सारे अन्य गुण व्यर्थ हैं । वर्णमाला की रचना ही इस कारण होती है कि वह ध्वनियों को शुद्धतापूर्वक व्यक्त करे । यदि वह ऐसा करने में कुछ भी असमर्थ हुई, तो त्वरालेखन आदि सब गुण व्यर्थ हैं । जहां अक्षर ऐसे होते हैं कि कई वर्ण एक ही में मिलाकर लिखे जावें, वहां सदैव पूरा भ्रम पड़ता है । अङ्गरेज़ी की लेखन शैली छपनेवाले अक्षरों से नितान्त पृथक है । फल यह निकलता है कि कई अक्षर एक ही प्रकार से लिखे जाते हैं और उनका पढ़ना गद्देबाज़ी पर ही निर्भर रह जाता है । m n i e i w h b l g q f p आदि अक्षर प्रायः ऐसे भ्रामक और हिले मिले होते हैं कि उनका पता ही लगना दुस्तर हो जाता है । उर्दू अक्षरों के मिलान तो ऐसे भ्रमयुक्त होते हैं कि खुगीर को होना और चुकर घंट में भी भेद नहीं रहता । नहीं जान पड़ता कि मौलवी साहब अजमेर गये हैं या आज मर गये हैं । कभी २ सरकारी लेखों में ऐसे भ्रम पड़े कि हज़ारों रुपये फुँकने के बाद विलायत से फ़ैसला हुआ कि अमुक लेख में अमुक शब्द लिखे हैं । शिरोभाग की रेखायें निकल जाने से नागराक्षर ऐसे हो भी जायँगे कि त्वरा लेखन तक में उर्दू के अक्षरों से आगे बढ़ जावें । महामहोपाध्याय पंडित सुधाकर द्विवेदी ने युक्त प्रान्तीय छोटे लाट के सम्मुख इन अक्षरों की त्वरालेखन उपयोगिता तक प्रमाणित कर दी थी, यद्यपि उनमें शिरोभाग की रेखा भी वर्त्तमान थी । रेखा निकल जाने से तो इनकी शीघ्र लेखन उपयोगिता ख़ूब ही

नागरी	गुर	बंगाली	गुज॰
क	ਕ	ক	ક
ख	ਖ	খ	ખ
ग	ਗ	গ	ગ
घ	ਘ	ঘ	ઘ
ङ	ਙ	ঙ	ઙ
च	ਚ	চ	ચ
छ	ਛ	ছ	છ
ज	ਜ	জ	જ
झ	ਝ	ঝ	ઝ
ञ	ਞ	ঞ	ઞ
त	ਤ	ত	ત
थ	ਥ	থ	થ
द	ਦ	দ	દ
ध	ਧ	ধ	ધ
न	ਨ	ন	ન
ट	ਟ	ট	ટ
ठ	ਠ	ঠ	ઠ
ड	ਡ	ড	ડ
ढ	ਢ	ঢ	ઢ
ण			

नागरी	गुरु	बंगाली	गुज॰
प	ਪ	প	પ
फ	ਫ	ফ	ફ
ब	ਬ	ব	બ
भ	ਭ	ভ	ભ
म	ਮ	ম	મ
य	ਯ	য	ય
र	ਰ	র	ર
ल	ਲ	ল	લ
व	ਵ	ব	વ
श	ਸ	শ	શ
ष	ਸ਼	ষ	ષ
स	ਸ	স	સ
क्ष			ક્ષ
ज्ञ			જ્ઞ
अ	ਅ	অ	અ
इ	ਇ	ই	ઇ
उ	ਉ	উ	ઉ
ऋ		ঋ	ઋ
लृ			

पढ़ जावेगी। रोमन अक्षर आज भी त्वरा-लेखन तक में हमारे अक्षरों का सामना नहीं कर सकते। निश्चय ही उर्दू और रोमन अक्षर नितान्त व्यर्थ हैं और सुन्दरता में भी वे नागरी अक्षरों के पीछे ही छूट जावेंगे। रूपों की सरलता में ये लिपियां अवश्य हमारी लिपि से अच्छी हैं, किन्तु ध्वनि व्यक्तीकरण विपर्य्यय से बहुत देर में छात्रों के समझ में आती हैं। यदि कोई अनपढ़ मनुष्य हमारे अक्षरों को पढ़कर छः मास में लेखक बन सकता है, तो इन लिपियों में उसे दो तीन साल लग जावगे। उपर्युक्त विचारों से यह प्रकट होता है कि उर्दू या रोमन की वर्णमाला ध्वनि और रूप, दोनों में हमारी वर्णमाला से बहुत पिछड़ी हुई है।

भारतवर्ष में मदरास प्रान्त के अक्षरों को छोड़कर हिन्दी, बंगाली, गुरुमुखी (पंजाबी), गुजराती मराठी वर्णमालायें प्रधान हैं इनमें हिन्दी और मराठी के अक्षर मिलते हैं, सो ४ वर्णमालायें प्रधान रह जाती हैं। इस लेख के साथ हमने इन चारों के अक्षर एक दूसरे के सामने एक पृथक् पृष्ठ पर दिखलाये हैं। उनके देखने से प्रगट होगा कि ध्वनि विचार में तो इन वर्णमालाओं में कोई अन्तर नहीं है, भेद है तो केवल अक्षरों के रूपों में है। रूपों के देखने से भी विदित होगा कि गुजराती वर्णमाला हमारी वर्णमाला से बहुत कुछ मिलती है; प्रधान भेद केवल अ, ख, च, इ, ए, ज, ब, ल में है। इनमें से ख उनका अच्छा है और च, अ, इ, ए और ल हमारे। उनके स और ल एक से होने के कारण कुछ भ्रामक हैं। शेष अक्षरों में न्यूनाधिक्य का प्रश्न नहीं उठता। इससे प्रकट है कि ये दोनों वर्णमालाएँ प्रायः समान हैं। यदि हमारे अक्षरों के शिरोभाग की रेखाएं हटा दी जावें, तो सरलता एवं त्वरालेखन उपयोगिता हमारे अक्षरों में कुछ विशेष है। रेखाओं के रहने से सरलता एवं सुन्दरता हमारे अक्षरों में अधिक है, किन्तु शीघ्रलेखन उपयोगिता उनमें है।

बङ्गाली—बङ्गाली अक्षरों की आनुषंगिक अनुपयोगिता स्वयं बङ्गाली भी मानते हैं। उन में के क, घ, ठ, ड, ढ, न, फ, ब, म, य, ल, व, ष, स, अ और उ हमारे इन्हीं अक्षरों से बहुत कुछ मिलते हैं, किन्तु शेष अक्षरों से बहुत कुछ भेद है। भेदवाले अक्षरों मे ख, ग, ङ, ज, ञ, ट, त, थ, द, ध, प, र, श, ट और ऋ हमारे सरलतर हैं, तथा केवल छकार उनका। उनके यहां णकार है ही नहीं। अतः सरलता के विचार से बँगला अक्षर हमारे अक्षरों से बहुत पीछे छूट जाते हैं। सुन्दरता और त्वरा लेखन उपयोगिता भी हमारे ही यहां अपेक्षाकृत दृष्टि से बहुत विशेष है। निश्चय के विषय में विचार तो हमारे ही अक्षरों की श्रेष्ठता का उठता है, किन्तु हम इस बात पर अपने बँगला ज्ञान संकुचन के कारण कुछ निश्चय न कर सके!

गुरुमुखी—गुरुमुखी के अक्षरों से जब हमारे अक्षर मिलाये जाते हैं, तब प्रकट होता है कि अ, उ, क, ग, च, ज, ट, ठ, ड, ढ, म, ए और र दोनों के प्रायः समान हैं अथवा उनमें अन्तर बहुत कम है। शेष अक्षरों में से घ, ञ, प, ल, व, ष, श, स और इ हमारे सरलतर हैं, तथा ख, ध, ण, फ और भ उनके सरलतर या श्रेष्ठतर हैं। शेष अक्षरों में कोई विशेष अन्तर नहीं है। सुन्दरता एवं निश्चय में कोई विशेष भेद नहीं समझ पड़ता है किन्तु त्वरा लेखन उपयोगिता हमारे ही अक्षरों में अधिक देख पड़ती है।

गुजराक्षरों में शिरोभाग की रेखाओं का सर्वथा अभाव है, किन्तु बँगला के २२ और गुरुमुखी के २९ अक्षरों में शिरोभाग की रेखाएं

है। कहीं इन रेखाओं के अस्तित्व और कहीं अभाव से इन लिपियों के सौन्दर्य्य में हमारे अक्षरों के देखते कुछ कुछ बट्टा अवश्य लगता है। हर स्थान पर एक नियम का पालन सुगम होता है और वैज्ञानिक शुद्धता का भी वर्द्धन करता है। गुरुमुखी अक्षरों में थ और ब के स्वरूपों में भ्रम पड़ सकता है और श तथा स में केवल विन्दुओं का भेद है। अतः सब वर्णमालाओं से मिलाने से कुछ या अधिक श्रेष्ठता हमारे ही अक्षरों में निकलती है।

अन्य बातें—अब अन्य बातों पर भी कुछ विचार किया जाता है। पण्डित केशवदेव शास्त्री का मत है कि बङ्गला अक्षर तेरहवीं शताब्दी में बने, तथा गुरुमुखी एवं गुजराती अक्षर सोलहवीं, सत्रहवीं शताब्दियों में। कम से कम दसवीं शताब्दी तक ये कोई अक्षर न थे इधर हमारे अक्षरों से ये सब निकले हैं और अशोक के समय से हमारे अक्षर चले आते हैं, यद्यपि समय के साथ इनमें उन्नति अवश्य हुई। अतः प्राचीन और पिता भाव से भी हमारे अक्षर पूज्य हैं। यदि सुगमता पर ध्यान दिया जाय तो हमारे अक्षर आज बिहार, युक्तप्रान्त, बुन्देलखण्ड, बम्बई, राजपूताना, ग्वालियर, मध्यप्रदेश और अर्द्धपंजाब में प्रचलित हैं और बङ्गाली, गुरुमुखी, गुजराती अक्षर एकही एक प्रान्त में चलते हैं। अतः यदि इनमें से कोई वर्णमाला भारत में चले तो उस प्रान्त को सुगमता अवश्य हो, किन्तु शेष समस्त देश के सीखे हुए अपने अपने अक्षरों का ज्ञान भुलाना पड़े। इधर यदि हिन्दी के अक्षरों का प्रचार हो तो बंगाल, गुजरात एवं अर्द्ध पंजाब को अपने अपने अक्षर छोड़ने पड़ें, किन्तु एक मदरास छोड़ शेष भारत को कोई भी असुविधा न हो। फिर ये तीनों लिपि प्रणालियां आपस में भिन्न २ हैं, यद्यपि हिन्दी से इन सब के रूप बहुत कुछ मिलते हैं। अतः हिन्दी के अक्षरों को मानने से इन देशों की असुविधा भी बहुत कम होगी और भारत भर में ऐक्य स्थापन का बड़ा काम होजावेगा। ऐसी दशा में हम आशा करते हैं कि ऐक्य के विचार से हमारे अन्यान्य देश निवासी भाई इस लिपि संशोधन को अवश्य ही मान लेंगे और हमारे हिन्दी भाषा भाषी भाई भी दुराग्रह छोड़ कर अपनी वर्णमाला में त्वरावर्धक एवं संशय विनाशक कुछ फेर फार अवश्य करेंगे।

हे भाइयो।

(१)

निज देश भाषा की करहु उन्नति करन मैं यत्न,
जनि तुच्छ हिन्दी को गनहु भाषान की यह रत्न।
सरबांग पूरन स्वच्छ याकी वर्णमाला ख्यात,
अरधांस सुन्दर अन्य भाषन में न जौन लखात॥

(२)

जो जो सकै नर भाष यामें शुद्ध लिखिये तौन,
आह्वान करि हम कहैं ऐसी और लिपि है कौन?
पुनि दूसरो गुण एक यामें है अमोल महान।
जो और भाषन में न लेसहु मात्र जग ठहरात॥

(२)

जोकछु लिखौ सोईपढ़ौ भ्रमवरि न सकै कदापि,
उर्दू सरिस भाषान में को सकै यह गुन थापि।
है शुद्ध सुन्दर सरल संसैहीन तुर गतिवान,
प्राचीन लिपि यह बहुत प्रान्तन मांहि पूर्णमहान॥

(४)

द्वै वर्षही में सकैं बालक शुद्ध लिखि पढ़ि याहि,
पर और लिपि के ज्ञान को षट वर्षहूं बसनाहिं
अपनाय याहि अदालतन अरु देस में फैलायं,
अब करहु ऐक्यमहान मिलि हे बन्धुगण हरषाय।

हमारा अस्तित्व।

[लेखक—श्रीयुत व्रजमोहन लाल वर्मा इन्दौर ।]

ऐसी कौन जाति है जो अपना नाश स्वयं चाहे? ऐसा कौन धर्म है जो मनुष्य की उन्नति में सङ्कीन दीवारों की आड़ देवे? ऐसा कौन देश है जिसे ऊँचे उठने की अभिलाषा न हो? उत्तर मिलता है कि वह वर्तमान हिन्दू जाति है, वह हिन्दू धर्म के नाम से पुकारा जानेवाला धर्म है, और वह हिन्दू जाति का निवासस्थान हमारा अभागा भारतवर्ष है।

पाठक कदाचित यह समझें कि मैं धर्म पर कटाक्ष कर रहा हूं—जाति पर कटाक्ष कर रहा हूं और अपने को उनसे अलग समझ रहा हूं। परन्तु नहीं मैं भी आपलोगों में से ही हूं, आपका हमारा साथ है, था और रहेगा, प्रत्येक चैतन्य हिन्दू के हृदय में यह विचार उठता है कि क्या ये उन्हीं ऋषियों के नाम को उज्ज्वल करनेवालों की सन्तान हैं जिन्होंने भारत को ही नहीं किन्तु सारे संसार को—जिस समय कि सारा संसार घोर निद्रा में पड़ा हुआ था उपनिषदों के द्वारा ज्ञान देकर जागृत किया था? क्या यह वही देश है जहां से अनेकों फिलासफी का आरम्भ हुआ जो आज दिन भी यूरोपीय विद्वानों का इस भारत भूमि की ओर सिर झुकवा रही है! भूमि वही है! निस्सन्देह वही है! परन्तु हम वह नहीं हैं! सबको अपनी २ जाति और देश के गौरव का ध्यान होता है परन्तु यहां किसी को उसका कुछ भी ध्यान नहीं है।

संसार का यह नियम है कि जो दूसरों को अपने तले दबावेगा वह भी कभी न कभी दबाया जायगा। चाहे उसको दबानेवाली शक्ति दृश्य हो या अदृश्य, स्वामी विवेकानन्द के उस दूरदर्शितापूर्ण विचार को हमें फिर से दुहराना पड़ता है कि "जब से भारतवासियों ने म्लेच्छ शब्द की सृष्टि की तब से उनपर विपत्तियों का आना आरम्भ हुआ।"

ऐसा क्यों न हो? हमने इस शब्द का उनलोगों के लिए व्यवहार किया जो विदेशी थे—और इसी विचार से हम विदेशियों को नीच समझते रहे। साथ ही साथ उनकी शक्ति को भी तुच्छ समझते रहे जिसके कुपरिणाम से एक बार ही नहीं किन्तु पद २ पर हमें अनेक आपत्तियां झेलनी पड़ीं, यही "नीच" विचार था। जिसने हमारे हृदय को जहां पहले दया क्षमा धैर्य्य और देशभक्ति आदि गुण वर्तमान थे—महा नीच बना दिया।

इसका कुपरिणाम हम देख चुके हैं हम इसी कारण इतनी अधोगति को पहुंचे कि फिर उठने की भी सामर्थ न रही।

जहां हम पहले बाहरी लोगों को नीच कहा करते थे वहां इस नीच मन्त्र की बाग हमने अपने ही भाइयों की ओर फेरी। और जो हम से मिला उसे दूर-दूर-दूर कहकर अलग किया। ब्राह्मण टूट कर १७ भाग में छितर बितर हो गये, क्षत्री उधर जीवन पर्य्यन्त अपना रक्त बहा कर मिट चुके, वैश्यों के अलग तीन टुकड़े हुए। परन्तु सब से बुरी बला भारत के स्थम्भ और पैरों पर पड़ी। जो शूद्र थे उनकी दशा शोचनीय हो गई सब ने "भेद" महा दुष्ट मन्त्र का आवाहन आरम्भ किया। और आज इसी का दुष्परिणाम है कि हिन्दू संसार में असंख्य जातियां अपनी शक्ति को तोड़ मरोड़ कर सदा के लिए अलग पड़ी हैं।

यह रोग आज का नहीं है। इसे कई सौ वर्ष हो गये। यह जीर्ण हो गया है। परन्तु

जिस समय "हिन्दू शरीर" के लिए धनधान्य की कमी नहीं थी जिस समय हम एक रुपये में एक मन और कहीं एक मन से अधिक अनाज लाकर अपने शरीर को पुष्ट रख सकते थे यह रोग नहीं प्रत्युत महारोग दबा रहा परन्तु भीतर ही भीतर बढ़ता गया। आज हम देखते हैं कि जब चारो ओर महामारी-ज्वर-प्लेगादिक व्याधियां हमारे अस्तित्व को नाश करने में लगी हुई हैं—तब यह महा विषम ज्वर उन नाशकारक तत्वों में सब से प्रधान बन गया है।

"हिन्दू शरीर" के हड़पने के लिए आज दो ऐसे वैद्य हाथ बढ़ाये हुए हैं—जिनके फलीभूत होते ही—भारतवर्ष आर्यावर्त या हिन्दुस्तान नाम का अस्तित्व भी न रहेगा। हमारे आठ करोड़ चुटियारखानेवाले हिन्दुओं की आंखें मक्का और जेरुसेलम की ओर लग जावेंगी।

पाठक जान गये होंगे कि ये दो वैद्य एक जेरुसेलम के प्रचारक महात्मा मसीह और दूसरे अरब के लड़ाकू ख़ूँख्वार जातियों में एकता महामन्त्र के फूंकनेवाले महात्मा मोहम्मद के अनुयायी हैं।

इस समय हमारे अस्तित्व का प्रश्न बड़े महत्व का है। हम में अछूतों की संख्या लगभग ७ करोड़ के है। हिन्दू इनका मुंह भी देखना नहीं चाहते, उस समय तक जब तक कि उनके सिर पर चोटी है। शेष १५ करोड़ हिन्दुओं में यदि मेल होता तो हम कह सकते थे कि यह व्याधि हमारे लिए कुछ वर्षों तक हानि कारक न होगी। परन्तु शेष १५ करोड़ हिन्दुओं में से १ करोड़ भी ऐसे नहीं जो एकता की दुन्दुभी बजा सकें। हम १५ करोड़ हैं तो अवश्य परन्तु छितरे बितरे हुए।

छितरे बितरे नेशन या राष्ट्र नहीं कहला सकते और जो राष्ट्र नहीं उनका अस्तित्व असम्भव है।

हिन्दू जाति ऐसी शोचनीय दशा में पड़ी है। उसके अस्तित्व पर हमारे धर्म का अस्तित्व निर्भर है। इसको नाश से हिन्दू वैदिक जैनादि सब धर्मों का लोप हो जावेगा। जब हम इस भयङ्कर परिणाम को देखते हैं तो हमारा हृदय कांप उठता है। शोक! वे वेद ही न रहेंगे! जिनके प्रमाणों से हम औरों को अपने पैरों तले दबाना सिद्ध करते हैं। वे पुराण कहां जावेंगे? जिनके प्रमाणों से हम शूद्रों को उच्च स्थान देना अधर्म समझते हैं। वे स्मृतियां हमारे "नाश के पश्चात्" कहां रहेंगी? जिनके एक मात्र आधार से हम शूद्रों को रामायण सुनने महाभारत पढ़ने और मन्दिरों तक जाने की मनाही करते हैं।

मुसलमानों के समय में हमारे धर्म ग्रन्थों का नाश अत्यन्त निर्दयता से किया गया; परन्तु असंख्य पुस्तकों के नाश होने पर भी हमारा अस्तित्व ज्यों का त्यों बना रहा। कोई कितना भी दुष्ट राजा हो किसी का नाश कदापि नहीं कर सकता जब तक वह जाति या वह व्यक्ति स्वयं नाश होने योग्य न हो। इस समय हमारे अस्तित्व को मिटानेवाले न तो ईसाई हैं न मुसलमान परन्तु हम स्वयं—ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य ही इसके कर्ता हैं। प्रवर्तक हैं और साथ ही इस महा दुष्ट कर्म और घोर पाप के अपराधी हैं।

नीच जातियों के लिए वह चोटी भार है। जो उनको मनुष्य के दर्जे तक पहुंचने में बाधक होती है ऐसा भार वे लोग कब तक अपने सिर पर रख सकेंगे। इसका हल करना हर एक चैतन्यहिन्दू का धर्म है। एक और भी आवश्यक प्रश्न है! सो यह कि मनुष्य स्वभाव सेही स्वतन्त्र है-इसी कारण सब में स्वतन्त्रता की अग्नि वर्तमान है-ज़रासी हवा से यह प्रज्वलित हो उठती है। भला इस स्वतन्त्रता को कोई ईर्षा द्वेष मतभेद अहङ्कारादि के वश में होकर कहां

तक रोक सकता है ? वह स्वतंत्रता फूट कर निकल जावेगी। हम इन अछूत जातियों को मनुष्य पद तक लाने के लिए और उनको विद्यादान देने के लिए यदि तैयार नहीं हैं तो हम आत्मा के स्वाभाविक गुणों पर पर्दा डालने के अपराधी हैं। यह स्वभाव से विरुद्ध अज्ञान का पर्दा कब तक रह सकेगा।

बड़े आश्चर्य की बात है कि यदि वही हिन्दू मुसलमान या ईसाई होजावे तो उसी क्षण उसके अधिकार हमारे बराबर होजाते हैं इससे तो हिन्दू अपनी कमज़ोरी खुल्लमखुल्ला बतला रहे हैं कि हिन्दूधर्म में मनुष्य को पवित्र करने की वह शक्ति ही नहीं है, जो ईसाई या मुसलमान धर्म में है। जब तक वह हिन्दू है तब तक वह पतित है, इसलाम या ईसाई धर्म में आतेही वह शुद्ध स्वरूप हो जाता है। यह क्यों ? क्या यथार्थ में हिन्दू धर्म की शिक्षा मनुष्य को मनुष्यत्व से अलग रखती है और उसे नीच बताती है, कदापि नहीं—हिन्दू धर्म मनुष्य को मनुष्यत्व से मिलाता है उसके जिस आशय पर दृष्टि डाली जावे—एकता का मूल मंत्र दिखाई देता है, Magesthenes मैगस्थनीज़ यूनान का यात्री लिखता है कि "भारत में सेवक नहीं पाये जाते...किसी को गुलामी में रखना महा पाप समझा जाता है। इनके धर्म में किसी को नीच नहीं बनाया जाता" वेदांत तो यहां तक आगे बढ़ा है कि :—

वह मनुष्य को ईश्वर का पद देता है, वह सारे संसार के मनुष्यों को एकही आत्मा का आभासमात्र समझता है, उसका सिद्धान्त हैकि "प्रकृति ने एक से दो किया और करती है, तुम अनेक से एक बनो।"

प्राचीन इतिहास को देखकर हमको ऐसा प्रतीत होता है कि हिन्दू जाति गिर कर इस सीमा को पहुंच चुकी है कि उसके पूर्वजों की उच्च से उच्च शिक्षाओं को वह अपनी गिरी हुई बुद्धि के अनुसार, गिरे हुए आशय में समझती है।

इस समय यदि हम अछूत जाति के उठाने का काम आरंभ न करेंगे तो बहुत जल्दही वे ईसाई या मुसलमान होजावेंगी।

जहां उसको अपने ऊँचे होने का अवसर मिल सकता है ध्यान रहे कि यदि इसका कुछ ठीक उपाय न हुआ तो वह हिन्दुओं की क्रूरता, दुष्टता और अमानुषिक व्यवहार को अच्छी तरह देख कर सदा के लिए हमसे तुरन्त अलग हो जावेगी। यदि किसी कारण से देर भी लगी-तो इस त्रुटि को हटानेवाला वह बिल होगा जो अवश्य बहुत शीघ्रही पास होगा - प्रारम्भिक शिक्षा बिल-इस बिल से हमारा कल्याण होना है, हमारे यहां से अविद्या रूपी अन्धकार को सदा के लिए बाहर निकालना होगा, परन्तु उसके पास होने के पहले यदि हमने अपना सहानुभूति सूचक हाथ अछूत जातियों की ओर न बढ़ाया तो यह बिल हमारे नाश का कारण होगा।

इस बिल के पास होजाने पर अछूत जाति को विद्या दान से कोई वंचित नहीं रख सकता। वो अवश्य विद्या प्राप्त करेगी और तुम्हारा अमानुषिक बर्ताव देखकर मुसलमान या ईसाई--जिनका हाथ वर्षों से उनकी ओरबढ़ा है—उनके धर्म में चली जावेगी।

तब क्या हिन्दू जाति पैरों बिना जीवित रह सकेगी ? या तीन वर्णों में से फिर पैर नये बनाये जावेंगे ? यदि यह भी मान लिया जावे-तो भी कुछ दिनों के पश्चात् वह भी अन्य धर्मियों के काल ग्रास में आ पड़ेगी। उधर अन्य धर्मियों की शक्ति बढ़ती जावेगी-- हर तरह से हम इस दुष्ट नीति के परिणाम में भारत से हिन्दुओं का अस्तित्व मिटनाही देखते हैं। यदि वे अब भी न जगे तो......

परन्तु हमें यह बात स्वीकार करना पड़ता है कि हिन्दू बुद्धिमान हैं। इस गिरी हुई दशा में भी हिन्दुओं में ऐसे कितनेही विद्वान ब्राह्मण वर्त्तमान हैं जो हृदय से हिन्दुओं की मंगल कामना चाहते हैं कदाचित् उनको इस आनेवाली आपत्ति का हाल न मालुम हो ।

हम उनसे इसी लिए प्रार्थना करते हैं कि वे अछूत जाति उद्धार के प्रश्न को आर्यसमाज और सनातनियों की आपुसकी दुलत्ती न समझ परन्तु यह हमारे जीवन मरण का प्रश्न है जिसके सिद्ध होतेही हम संसार में प्रथम श्रेणी में राष्ट्र कहला सकेंगे और जिसमें जरासी असावधानी करने से हमारा अस्तित्व हीन रहेगा ।

प्रकृति का उपदेश ।

[लेखक-श्रीयुत देवसहाय राय, गाजीपूर ।]

संसार है यह पाठशाला,
जो चहो सो सीख लो ।
प्रकृति है उपदेशिका
टुक, ध्यान देकर दीख लो ॥ १ ॥

सर्वत्र उद्यत है प्रकृति,
निःशुल्क शिक्षा दान को, ।
क्या है नहीं यह मूर्खता,
यदि दे न उसपर ध्यान को ॥ २ ॥

हम ध्यान देवें या न देवें,
तोभी वह रुकती नहीं ।
शिक्षा दिये जाती सतत,
नहिं शिथिलता करती सही ॥ ३ ॥

परिवर्तना प्राकृतिक, नियमा,
धार पर उन्नति महा ।
होता अवश्य अधःपतन,
विपरीत आचरते जहां ॥ ४ ॥

यों तो प्रकृति के कार्य से,
कोई नहीं अनजान है ।
पर विटप की शिक्षा यहां पर,
देना कह सुखमान है ॥ ५ ॥

असहाय जंगल में खड़ा है,
पेड़ वह देखो हरा ।
कैसा उतङ्ग सुदृढ़ महा,
मज़बूत शाखों से भरा ॥ ६ ॥

आश्चर्य ! तौ भी वायु उसको,
जड़ से देतो है हिला ।
धराशायी, करदिया
क्षण, में उसे मिट्टी मिला ॥ ७ ॥

पर गर्व पूरित वायु की भी,
दाल नहिं गलती वहां ।
दुर्भेद्य मंडल बांध कर गुम्फित,
विटप बहु हैं जहाँ ॥ ८ ॥

शाखा झुका इक एक को,
देते सहारा सर्वदा ।
हैं सहज में उत्पात वायू,
की हँसी करते सदा ॥ ९ ॥

इस भांति वह नर जो एकाकी,
विश्व में होता खड़ा ।
रण धीर हो गम्भीर विद्या,
गार कैसाहु बड़ा ॥ १० ॥

तौ भी उसे पड़ता है पल्ला,
दुश्मनों से जब कभी ।
अपमान होता है उसीका,
देखते हैं यह सभी ॥ ११ ॥

पर दुश्मनों के दांत खट्टे,
सुख से वह नर करतु है ।
निज ज्ञातियों से स्नेह रस्सी,
में जमो वह बंधतु है ॥ १२ ॥

मुक्त हिय से बन्धु उसको,
बान्धवों को वह सदा।
देते सहारा हैं परस्पर,
आपदा आती यदा ॥ १३ ॥

एकता को कदापि इह,
संसार में भूलो नहीं।
विटप हमको दे रहा है,
नित्य ही शिक्षा यहीं ॥ १४ ॥

सूक्ष्म दृष्टि से जिधर,
देखो उधर ही आती नज़र।
विद्या कला इतिहास में,
विज्ञान में उसीकी क़दर ॥ १५ ॥

क्या ही विलक्षण शक्ति,
एका भाव में सुन्दर भरी।
संसार सारे में यही;
कानून दीखत हर घरी ॥ १६ ॥

हिन्दुओं के धर्म ने वह,
माग है दिखला दिया।
संकीर्णता तजि विश्व से,
एकता करन सिखला दिया ॥ १७ ॥

भेद बुद्धी छाड़ि तब हम,
सर्व हिन्दू क्यों नहीं।
स्वदेश हित साधन निमित,
लग जाते तुरते सब कहीं ॥ १८ ॥

सभ्य ठग।

[लेखक-श्रीयुत रुद्रदत्त भट्ट।]

(एक सत्य वृत्तान्त)

आज कल चारों ओर उन्नति की पुकार सुनाई पड़ रही है। सब ही अपनी २ व्यवस्था सुधारने की धुन में एकचित्त होकर लगे हुए हैं। इधर डाक्टर, हकीम अथवा वैद्य नई २ "राम बाण" औषधियों का आविष्कार कर समाचारपत्रों के पेजों के पेज विज्ञापनों से भर रहे हैं। उधर सामान्य पुरुष भी अनेकानेक प्रकार के "अति सुगन्धित" तेल निकाल कर सुन्दर रंगबिरंगे चित्र लेबल पर देकर भारतीय ललनाओं के केशों की वृद्धि एवं उनके लम्बे व काले बनाने की चिन्ता में हैं। कोई पाश्चात्य सभ्यता के अनुसार अपनी २ दशा सुधारने का हृदय से प्रयत्न कर रहे हैं। इस प्रकार चारों ओर उन्नति की पुकार सुन कर वर्षों से गहरी निद्रा में सोए हुए भी जाग उठे हैं। चोर, ठग, डाँकू गिरहकटों पर भी उन्नति का भूत सवार हो चुका है। वे भी अब सभ्य ठग बन कर आजीविका का प्रयत्न कर रहे हैं। सब से पहले पाश्चात्य ठग जाग उठे हैं। बाज बाज बातों में तो उन्होंने लखनऊ के प्रसिद्ध ठगों को भी मात देदी है। लखनऊ के ठग तो अपने ही नगर के मनुष्यों पर या कुछ मुसाफिरों पर हाथ साफ कर सन्तुष्ट रहते थे। पर पाश्चात्य ठगों को इतने ही में सन्तोष क्यों हो सकता था? वे अन्य दूर २ देशों के मनुष्यों पर भी दूर ही से हाथ साफ करने की चेष्टा में लगे हुए हैं। यदि उनमें कुछ विशेषता न होती तो सभ्य ठग कैसे कहलाते। हाल ही में एक स्पेन के मैड्रिड देश निवासी सभ्य ठग साहब की मुझ पर भी कृपा हुई है जिसका वृत्तान्त मैं आज पाठकों की भेंट करता हूं। जूलाई महीने की सातवीं तारीख थी। झमाझम पानी बरस रहा था। सारा गगनमण्डल मेघों से आच्छादित हो रहा था। मेरे एक मित्र प्रयाग को जानेवाले थे, मैं उन्हीं की बाट जोह रहा था कि डाकिये ने आकर बारह तेरह चिट्ठियां मेरे हाथ में रखदीं।

मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि आज इतनी चिट्ठियां कहां से आगईं, पर डाकिये ने कहा कि आज सोमवार के कारण विलायती डांक भी पहुंच गई है। मैं समझ गया कि इन पत्रों में विलायत के सूचीपत्र इत्यादि होंगे और मेरी उत्कण्ठा जाती रही। अचानक मेरी दृष्टि एक अधखुले लिफाफे की ओर पड़ी जिसके बाहर मेरा पता पूरा २ कांपते हुए अक्षरों में लिखा हुआ था। कौतूहलवश मैंने झट लिफाफा फाड़ा, उसके भीतर एक सुन्दर सुफेद रूलदार काग़ज़ में तीन पेजों की एक लम्बी चिट्ठी थी। सारी चिट्ठी पढ़ने का अवकाश न होने के कारण मैंने सोचा कि कम से कम नाम तो देखलूं बाकी फिर पढ़ लूंगा, नाम पढ़तेही मेरे आश्चर्य का ठिकाना ना रहा। नाम था! एडवर्डो व्लेङ्को भट्ट, अब पत्र तो पढ़ने की उत्कण्ठा दुचन्द होगई और मैं भली प्रकार उसको ध्यान से पढ़ने लगा। पत्र स्पेन के मैड्रिड़ नाम नगर से आया था। पत्र का सारांश मैं नीचे लिखे देता हूं।

मेरे परम प्यारे मित्र;

तुम्हें आज पहले पहल मुझ से पत्र पाने पर अति आश्चर्य होगा पर मैं तुमको विश्वास दिलाता हूं कि मैं तुम्हारा बहुतही निकट-सम्बन्धी हूं। इस समय घोर विपत्ति आपड़ने के कारण मैं तुमको यह कष्ट देता हूं और मुझे आशा है कि तुम मेरी बिनती स्वीकार करोगे। मेरी दशा बहुतही खराब है, तथा दिनों दिन और भी अधिक खराब होती जारही है और मुझे बहुत कम आशा है कि तुम्हारे पत्रोत्तर भेजने तक मैं जीवित रहूंगा। तथापि ईश्वर पर भरोसा करके मैं इस पत्र को तुम्हारे पास भेजने का साहस करता हूं। मैं बहुत समय तक पोर्टुगाल देश के टकसाल में काम करता रहा। वहां मैंने बहुत सा धन उपार्जित किया। धन उपार्जन करने के पश्चात् मैंने सोचा कि वाणिज्य करूं जिससे धन की और भी वृद्धि हो, इसी उद्देश्य से मैं स्पेन आया। मेरा स्पेन आना था कि पोर्टुगाल में राजा के विरुद्ध बलवा और प्रजातन्त्र राज्य की नींव पड़ गई। पोर्टुगाल के राजा भी उन दिनों स्पेन में थे मुझे देखकर उन्होंने एकान्त में बुलाया और मुझे १५०००) का एक इङ्गलैण्ड बैङ्क का नोट एवं एक पारसल देकर पोर्टुगाल में एक युवती को दे देने का आदेश किया। नोट को अपने धन के साथ छिपाकर मैं फिर पोर्टुगाल को लौटा और अपने प्राण हथेली पर रख कर वह पारसल उस युवती को दे आया। इस प्रकार मैं अपने राजा का काम करके फिर स्पेन को लौट आया और अपने सञ्चित धन को लण्डन के एक प्रसिद्ध बैंक के पास बतौर अमानत के रख आया, बैङ्क का अमानती रुक्का व राजा का दिया हुआ नोट मैंने बड़ी खबरदारी के साथ अपने एक ट्रंक में जिनको कोई भी मनुष्य सामान्य प्रकार से नहीं देख सकता रखा है। अमानती रुक्का किसी खास आदमी के नाम का नहीं है वरन् जो कोई उसको लेजावे उसी को उसकी कीमत अर्थात् लगभग बारह लाख रुपये मिल सकते हैं। इस प्रकार अपने धन को जोखिम से बचाकर मैं फिर स्पेन आया और वहां से अपनी चौदह वर्ष की पुत्री को लेकर आपके सुन्दर पवित्र देश को आने का प्रबन्ध कर रहा था कि एकाएक कई पुलिस-वालों ने पोर्टुगाल सरकार के कहने पर मुझे गिरफ़ार कर लिया, उनके ऐसा करने पर मुझे गुस्सा चढ़ आया और मैं पुलिसवालों से भिड़गया। एक को तो मैंने बुरी प्रकार से घायल करदिया पर मुझे भी छाती में गहरी चोट लगी जिससे मुझे अब बचने की कुछ भी आशा नहीं है। मुझे अब दिन रात अपनी एकलौती पुत्री का शोच बना रहता है। सो यह कि इतने धन के होते हुए भी न जाने उसको कितने कष्ट से जीवन व्यतीत करना पड़ेगा? इस कष्ट में

मेरे साथ इस बन्दीगृह के पादड़ी ने बड़ी सहानुभूति दिखलाई है। उसी के मतानुसार छिप कर मैंने यह पत्र तुमको लिखा है। अब मैं तुमसे यह प्रार्थना करता हूं कि तुम कृपया मेरी प्यारी पुत्री की परवरिश करना अंगीकार करलो। पादड़ी ने मेरी दशा पर तरस खाकर मेरी पुत्री को मेरे ट्रंकों सहित जिनमें से एक में वह रुक्का व नोट छिपाकर रखे हुए हैं तुम्हारे घर तक पहुंचा देने का वचन दिया है। तुम कृपाकर मेरी पुत्री की देखभाल और रहने का प्रबन्ध करदेना जिसके वास्ते मैं अपने धन का चौथाई भाग तुमको सहर्ष इनाम देता हूं। मेरे ट्रंक सरकार में रक्खे हुए हैं उनको छुड़ाने के लिए जिस प्रकार पादड़ी कहे उस प्रकार उसको सहायता देना। आपही मेरे एक मात्र सम्बन्धी हैं इस हेतु मैं आपही को कष्ट देने पर बाध्य हूं। पर आप विश्वास रक्खें कि आपको किसी और प्रकार का कष्ट उठाना न पड़ेगा, मैं आपको उक्त पादड़ी का पता नीचे देता हूं बाहर लिफ़ाफे में उसका पता लिखकर भीतर के लिफ़ाफे में मेरा पता लिखदेने से ही पत्र ठीक तरह से मेरे पास पहुंच जावेगा। मुझे पूण आशा है कि आप मेरी बिनती को स्वीकार कर मरते समय मेरे सरपर से एक भारी बोझ उतार देंगे।

आपका कृपाभिलाषी

इडवर्डो ब्लेङ्को भट्ट।

आदि से अन्त तक पत्र को पढ़कर मैं बड़ा चकराया। पत्र कुछ अच्छी अङ्गरेज़ी में लिखा हुआ न था और अक्षर भी एक निरालेही ढङ्ग के थे। इधर जो बारह लाख की चौथाई पर ध्यान जाता तो हृदय हाथ २ भर उछल उठता था। उधर किसी तरह मेरे समझ में नहीं आता था कि हमारे सम्बन्धियों में से तो विदेश में कोई भी गया ही नहीं फिर लिखनेवाला कैसे अपने को हमारा सम्बन्धी बतलाता है। खैर इसी प्रकार शोचसागर में निमग्न हो कर गोते खा रहा था। इसी बीच में मेरे मित्र हरिश्चन्द्र प्रयाग जाने के वास्ते तैयार हो आ गये, उन्होंने मुझे इस प्रकार सोचते हुए देख मेरे सोच का कारण पूछा। मैंने पत्रही हाथ में दे दिया, पत्र पढ़ कर वे भी एक बार चकरा गये बोले "भाई हमें तो कुछ समझ नहीं पड़ता कि बात क्या है? तथापि उत्तर देने में कुछ हानि नहीं है कह दो हम राज़ी हैं ज़रा मज़ाक तो रहे" खैर! दूसरे दिन पत्र डाल दिया और साथही मेड्रिड के बृटिश कौंसल के नाम भी एक पत्र लिखा कि वे कृपा कर यह लिखें कि एडवर्डो ब्लेङ्को भट्ट नामी कोई मनुष्य किसी कैदखाने में है या नहीं। कुछ दिन बीतने पर पत्र की बात भूल गई और मैं समझ गया कि यह सब ठग साहब की सभ्य रीति से सीधे सादे मनुष्यों पर हाथ साफ करने की चालाकी है। लगभग डेढ़ महीने के पश्चात मेरे पास फिर एक पत्र पहुंचा। उस पत्र में एडवर्डो ब्लेङ्को ने उसके प्रस्ताव स्वीकार करने के लिए मुझे धन्यवाद दिया था और लिखा था कि "मैं अब बहुत दिन तक न जी सकूंगा और मुझे पूर्ण आशा है कि जिस प्रकार आज तक मैं अपनी प्यारी पुत्री का रक्षक था अब से तुम सदा के लिए रहोगे। जिस प्रकार पादड़ी कहे उसको सहायता पहुंचाने का प्रयत्न करना। मैंने अपनी वसीयत बनाकर अपने वकील को दे दी है। और पुत्री के भविष्य का ऐसा अच्छा प्रबन्ध कर सन्तुष्ट हो अब सहर्ष प्राण त्याग करूंगा।" इस पत्र के साथ ही एक टाइप में छपा हुआ पादड़ी साहब का पत्र था और दो काग़ज़ और थे जिसका वर्णन मैं नीचे करूंगा। पादड़ी साहब ने लिखा था:—

मेरे प्यारे महाशय

आपका रिश्तेदार, विचारा एडवर्डो ब्लेङ्को भट्ट कल रात के आठ बजे जगत्पिता परमेश्वर

का स्मरण करते हुए इस असार संसार से कूच कर गया, अब इस संसार में उसकी दुखिया पुत्री के आपही एक मात्र रक्षक हैं, मैंने उसके मरते समय उसको वचन दिया था कि मैं स्वयं उसकी पुत्री को तुम्हारे पास पहुंचा आऊंगा और मैं शक्ति भर उसको हर प्रकार से सहायता पहुंचाने के हेतु कटिबद्ध रहूंगा। उसके मरने का सार्टिफिकेट व एक समाचार पत्र में छपा हुआ कुछ उसका वृत्तान्त उनके अङ्गरेज़ी भावार्थ सहित तुम्हारे पास अवलोकनार्थ भेजता हूं। कल को मैं सरकार में उसके माल अथवा ट्रङ्कों को वापस मांगने की प्रार्थना उसके पुत्री के नाम से करूंगा और जो कुछ उत्तर मिलेगा उसको पीछे निवेदन करता रहूंगा। अब की डांक में मैं उसकी वसीयत भी तुम्हारे पास भेजूंगा। तुम विश्वास रक्खो ईश्वर की कृपा व तुम्हारी सहायता से सब काम भली भांति परिपूर्ण होंगे। ”

यह पत्र पढ़कर मैं विस्मित हो गया। मुझे आश्चर्य हुआ कि अभी तक तो ठग महाशय ने मुझसे कुछ भी नहीं मांगा तब इतनी बातों के लिखने का आशय क्या है? मौत का सार्टीफिकेट जो मेरे पास भेजा था उसमें सरकारी मोहर व एक जज के हस्ताक्षर थे। काग़ज़ बहुत बढ़िया पार्चमेंट का था और तीन पेजों में कुछ लिखा हुआ था जिसका आशय पादड़ी साहब ने यह दिया था "पादड़ी जुअन मैलोनेटा जो कि शाही बन्दीगृह में नियुक्त हैं कैदी एडवर्डो ब्लेङ्को की अन्तिम यात्रा के समाचार देते हैं। एडवर्डो ब्लेङ्को जो कि हमारे एक सिपाही को घायल करने के अपराध में पकड़ा गया था पोर्टगाल में नौकर था। उसके (एक बड़ा व दो छोटे) ट्रङ्क जो हिरासत में रखे गये थे ५० दिन के भीतर लौटाये जावेंगे यदि उसके वारिस या वारि सान सरकार में उतना रुपया जमा करें जितना सरकार को उसके बारे में खर्च करना पड़ा है। ५० दिन के अन्दर यदि माल न छुड़ाया जावेगा तो सरकारी तरफ़ से नीलाम में बेचा जावेगा। ”

JUZGADO DE PRIMERA
INSTANCIA
MADRID.

समाचार पत्र में से जो एक टुकड़ा काट कर मेरे पास भेजा था उसका भावार्थ पादड़ी साहब ने अपनी टूटी फूटी अङ्गरेज़ी में इस प्रकार दिया था "कल रात में एडवर्डो ब्लेङ्को नामी एक कैदी जो पहले पोर्टगाल के टकसाल में नियुक्त था मर गया। सुना जाता है कि उसकी एक पुत्री चौदह वर्ष की पाठशाला में पढ़ती है। उसके पास बहुत धन बतलाया जाता था पर मालूम नहीं कि मरते समय उसके पास क्या निकला "। वाह वा, सफ़ाई इसी को कहते हैं। सरकारी काग़ज़ हस्ताक्षर और मोहर सहित ठीक, समाचार पत्र का वृत्तान्त ठीक, कहीं भी कुछ संदेह करने का स्थान नहीं। सब काग़ज़ों को पढ़ कर मैं दंग होगया। भला सरकारी मोहर की नकल इन्होंने कैसे करली? लखनऊ के ठगों में भला इतनी चतुरता का होना कब सम्भव है! एक सप्ताह पश्चात् मेरे पास एक रजिस्टरी किया हुआ बड़ा सा लिफाफा पहुंचा। लिफाफे में पांच काग़ज़ थे। हर एक का ब्योरा मैं पाठकों के चित्त विनोदार्थ पृथक २ लिखता हूं। पहिला पत्र पादड़ी साहब का टाइप में छपा हुआ था। पत्र के बाएं सिरे पर क्रौस का बड़ा अच्छा छपा हुआ निशान था। क्रौस के नीचे पादड़ी साहब का नाम छपा हुआ था। पत्र का आशय यह था।

मेरे प्यारे महाशय,

पहला पत्र भेजने के पश्चात जिसमें विचारे एडवर्डो ब्लेङ्को के शोकजनक मृत्युसमाचार लिखे गये थे मैंने सरकार में ट्रङ्कों को लौटा दे

की प्रार्थना की। सरकार ने आज्ञा दी है कि यदि पचास दिन के भीतर एक सौ अठारह पौन्ड अर्थात् १७७०) रुपये सरकार में जमा किये जावेंगे तो तीनों के तीनों ट्रङ्क वापस मिल जांयगे । सरकारी आज्ञा मैं तुम्हारे पास भेजता हूं। विचारा एडवर्डो ब्लेङ्को एक सच्चा भक्त, व दयाशील पुरुष था और मरते समय उसने मेरा वचन लेलिया था कि ट्रङ्कों को छुड़ाकर मैं उसकी निस्सहाय बालिका को तुम्हारे शरण में पहुंचा दूं। इसी कारण मैं भी सब प्रकार सहायता पहुंचाने को प्रस्तुत हूं। पर मेरी आर्थिक दशा इतनी अच्छी नहीं है कि मैं अपने पास से इतना धन दे सकूं। इस कारण आप से प्रार्थना करता हूं कि आप शीघ्र इतने रुपयों का चेक मेरे भांजे के नाम भेज देना जिससे मैं ट्रङ्क छुड़ा सकूं और किसी को कानों कान खबर भी न हो। आप न अपने किसी मित्र को यहां भेजिये न कौन्सिल को लिखिये ऐसा करने से सारा मामला गड़बड़ हो जावेगा और पीछे पछताना पड़ेगा। यदि आप मेरे कहने के अनुसार चलेंगे तो सब काम शीघ्र सफल हो जावेंगे।" अङ्गरेज़ी का नमूना दिखलाने के लिए मैं नीचे कुछ पंक्ति पादड़ी साहब के पत्र से उद्धृत करता हूं।

"How unique midle of to send me the money without to call the attention of any body you send me it of this form in a register letter a original first Draft on a London Bank at the name and address of my nephew son of a sister of mine in his birth place as follow-etc etc."

दूसरा पत्र सरकारी आज्ञा का था। काग़ज़ खूब मोटा, सिरे पर बाएं ओर "एडमिनिस्ट्रेशन आव् जस्टिस" की सरकारी मोहर बीचों बीच एक औरत का चित्र व दाहिने ओर नं० A3S१०२७७ छापा हुआ था। पत्र के अन्त में एक मोहर और थी। पत्र का भावार्थ पादड़ी साहब ने इस प्रकार दिया था—"श्रीयुत...... वकील ने एडवर्डो ब्लेङ्को के मृत्यु के समय लिखा हुआ वसीयतनामा पेश किया। वसीयत में उसने अपने धन का मालिक अपनी एकलौती पुत्री को बनाया है। अदालत इस वसीयत का ठीक व सही होना मंजूर करती है। एडवर्डो ब्लेङ्को के तीन ट्रङ्क जो उनके कैद होते समय पकड़े गये थे सरकार में रक्खे हैं। उसके पास कैद किये जाने के समय १६ पौन्ड नक़द व ४८० पौंड के पोर्टुगीज़ नोट निकले। पोर्टुगीज़ सरकार की आज्ञानुसार नोट उनके पास भेजे गये हैं। १६ पौंड अभी सरकार में जमा है। कानून के अनुसार मुकदमे का सारा खर्च एडवर्डो को देना पड़ता था। यह खर्च कुल ७४ पौंड होता है। एडवर्डो ने हमारे सिपाही सेलोमीरो पर कैद किये जाने के समय हमला किया जिससे उसको गहरी चोट आई और वह सरकारी काम लायक न रहा। इसलिए सरकार ने ६० पौंड बतौर इनाम के सेलोमीरो को दिये हैं। यह भी एडवर्डो के जिम्मे हैं। इस प्रकार एडवर्डो के पास के १६ पौंड घटा कर कुल उसके तरफ सरकारी ११८ पौंड निकलते हैं जिनको यदि उसके वारिस ५० दिन के भीतर जमाकर देंगे तो उसके तीनों ट्रङ्क लौटा दिये जावेंगे। ५० दिन के भीतर अदा न करने पर तीनों बकस नीलाम हो जावेंगे। मेड्रिड ३ सितम्बर १८१३।

तीसरा काग़ज़ एडवर्डो ब्लेङ्को भट्ट की वसीयत थी। चार पेजों का एक पुस्तक स्वरूप खूब मोटे पार्चमेंन्ट में तीन पेजों में कुछ लिखा हुआ था। बाहर एक मोहर छपी हुई थी।

नीचे वकील अथवा नोटेरी का नाम छपा हुआ था। इसका भी उल्था पादड़ी ने अङ्गरेज़ी में किया था जिसका आशय यह था कि मैं लड़की का रक्षक बनाया गया था और मुझ से प्रार्थना की गई थी कि मैं उसको अपनी ही पुत्री समान रक्खूं और उसको आदेश दिया था

कि वह पिता के ही तरह मेरा सन्मान व आदर करे। इसके वास्ते मुझे उसकी सम्पति का चतुर्थांश देना स्वीकार किया गया था। इसमें तीन मनुष्यों के हस्ताक्षर थे। चौथा पत्र टाइप में छपा हुआ था और उसमें पादड़ी साहब ने सरकारी हुक्म और वसीयत का अङ्गरेज़ी में उल्था किया था। पांचवां पत्र एक काले किनारे के लिफाफे के भीतर बन्द था। उसके भीतर एक बालिका का चित्र भी था पत्र बालिका का लिखा हुआ था और अक्षर भी जनाने प्रतीत होते थे। बालिका ने पत्र में पितृ वियोग पर शोक प्रकट किया था और भारत में आकर चैन से दिन व्यतीत करने की उत्कण्ठा प्रकट की थी। यह भी लिखा था कि एक पत्र आपके हाथ देने को मेरे पिता ने मुझे दिया है जिसे मैंने भली भांति छिपाकर रखा है और शीघ्र आकर अपने हाथों आपको दूंगी। कृपाकर जैसे बने पादड़ी को सहायता पहुंचा शीघ्र ट्रङ्कों को छुड़ाने का प्रयत्न कीजिये इत्यादि।" अब तो मुझे ठग साहब का अन्दाजा मिलगया और मैं जान गया कि यह सब करतूत ११८ पौण्ड खसोटने के हेतु है। दूसरे सोमवार को स्पेन वृटिश कौंसल का भी पत्र आगया जिसमें लिखा था कि मुझे ठग एडवर्डो ब्लेङ्को से किसी प्रकार का सम्बन्ध न रखना चाहिये। खैर मैं तो बचही गया पर इन पाश्चात्य ठगों की चातुर्यता पर मुझे आश्चर्य हो आया। काग़ज़, मोहर, लेख तारीख, शब्दरचना, हस्ताक्षर, नाम सब ठीक अब कहिये इन ठगों को क्या कहना चाहिये। थैकर्स डाइरेक्टरी से नाम उतार कर न जाने इन ठगों ने भारत से कितनों पर हांथ साफ करने की ठानी है और न जाने कितनों पर हाथ साफ करलिया है। पाश्चात्य देशवाले सबही निश्चय उन्नति की ओर झुक पड़े हैं।

दुःखोद्गार।

[लेखक—श्रीयुत नेमधर शर्म्मा।]

छप्पय।

ब्राह्मण।

(१)

ज्ञान सदा जो श्रेय वेद काही शुभ राखत,
सत्तम पूजा साधि मधुर वाणी थे भाखत।
निसि दिन मन था लीन ईश की सेवा मांही,
था सर्वत्र विधेय निन्द्य कछु जग में नाही।
यह संतति तिनकी यहां धर्म त्यागि घूमत फिरै,
उदर निमित्त मान तजि ब्राह्मण २ कहि मरै॥

(२)

सदा वेद का पठन आदि जिनका था कारज,
सदा तथ्य महँ लिप्त तत्वदर्शी आचारज।
धर्म्म मर्म्म युत कर्म्म निरन्तर शिक्षा करना,
अवशि श्रेय अनुमानि कार्य्यवाही चित धरना।
संतति यह उनकी लखो ब्राह्मण नाम डुबोयकर,
करत घृणित बहु कर्म हैं [illegible]॥

क्षत्रिय।

(३)

गहिकर करमें तेग वीररस ही में पगकर,
खल जन नाशन हेत दृढ़व्रत मन में धर कर।
वेद प्रथा से कर्म्म, विप्र की सेवा करना,
दीनों के दुख सभी आपही नित प्रति रहना।
अहह! पुत्र उनके वही पेट पकड़ घूमत फिरैं,
दीन भिखारी नीच ह्वै तुच्छन की सेवा करैं॥

(४)

अहो सिंह बनभेंड़ निरखि टक्कर है खाता,
सरप भगै सहराय देखि मेढ़क को आता।
चूहा भी बल पाय बिलारिहिं नित्य डरावै,
काल बड़ा है वीर कुली नरपतिहिं खिझावै।
आज लखो वेही यहां एक समय शासक रहे,
[illegible] फिरैं पूर्ण उठल्लू हो रहे॥

वैश्य ।

(५)

नीति सहित गुण युक्त सदा सन्मारग में रत,
विद्या विनय विवेक यथारथ स्वारथ में सत ।
वनिज वृत्ति अवलम्ब सत्य की गहे कसौटी,
कपट दगा छल छिद्रहिं देयं हमेश चुनौटी ।
हाय विमल उनकी यहां संतति देखो क्या बनी,
नित छदाम हित धर्म तजि हैं ठगविद्या के धनी ॥

(६)

परम पूज्य गुणवान महाजन रहे कहाते,
श्रेष्ठ योग्य कबहुं न तनिक अभिमान जनाते ।
शील सरल सद्भाव सौम्यता के थे राशी,
हा ! वेही कर्मण्य साधु अतिही विश्वासी ।
आज बिगड़ कर वे बने निन्द्य महा अति नीच,
कपट कटारी कर गहे फँसि माया के बीच ॥

शूद्र ।

(७)

विप्र करैं जो यज्ञ सदा सामान जुटाना,
क्षत्रिन के शस्त्रास्त्र निन्तर आप बनाना ।
कृषी हेतु बहु भांति अनेकों यन्त्र बनाते,
शिल्प-कला-आचार्य शूद्रही रहे कहाते ।
सेवा का व्रत गहे अहो अति उपकारी बन,
शूद्र हुए थे पूज्य सकल दिशि रखधारी जन ॥

(८)

वही शूद्र की जाति करन उन्नति चित धारे,
क्षत्रिय या वर वनिक हमी तो जगत मंझारे ।
द्विज बनने के हेतु बने केते बैरागी,
पहिन जनेऊ आज तापते फिरते आगी ।
धिक धिक बारम्बार है माया तेरी प्रबलता,
पुण्य यही देखो सही धारि चुकी है नीचता ॥

काल ।

(९)

अरे काल तू कुटिल बड़ा है अति भयकारी,
तुव लीला अतिपोच घृणित अतिही दुखकारी ।
देश यही है हिन्द जहां जन्मे रघुनायक,
वही आर्य-सन्तान कृष्ण थे जिनके नायक ।
आज हाय उसको दला रे रे पापी अधम खल,
दया तोहिं तनिकहु नहीं अरे नीच गर्वी प्रबल ॥

भारतीय राष्ट्र निर्माण ।

[लेखक—श्रीयुत रामशरण उपाध्याय, महया हाउस, मुजफ़्फ़रपुर ।]

(१)

इन दिनों आप जहां कहीं सभ्य समाज में जाइये वहीं भारतीय राष्ट्रनिर्माण के विषय में बातें होती हुई सुनाई देंगी । कोई २ तो भारतवर्ष को एक भौगोलिक स्थिति मात्र ही (mere Geographical expression) समझ कर अपनी राय प्रकट करते हैं और कहते हैं कि भारतवर्ष में जातीयता का आविर्भाव होना बहुत ही कठिन—बल्कि असम्भव—है। भारतवर्ष के निवासी एक मतानुयायी नहीं हैं, यहां पर केवल हिन्दू, मुसलमान, पारसी और ईसाई ऐसे ऐसे दो तीन ही भिन्न २ मत के लोग नहीं, अपिच उनमें भी प्रत्येक के कई भिन्न २ सम्प्रदाय हैं। जैसे आर्य्य-समाजी, सनातन-धर्मावलम्बी ब्राह्म, धर्म, प्रार्थना इत्यादि इत्यादि समाजी। इन और इसी प्रकार के अन्य भिन्न धर्मावलम्बियों तथा मतानुयायियों के विषय में एक जाति (nation) में संगठित होने की आशा करना बालू की भीत

बनाने के समान है। इसके सिवाय लोग कहते हैं कि इस देश के भिन्न २ प्रदेशों की भाषा भिन्न २ हैं, बङ्गाली पंजाबी से बातें नहीं कर सकता और गुजराती मद्रासी से अपने मन का भाव नहीं प्रकट कर सकता। प्रादेशिक भाव, ईर्षा और घृणा (Provincial feeling jealousy, and hatred) की वृत्ति भारतवासियों के चित्त से अभी तक नहीं हटी है। इन सब बातों के सुनने के साथ तो एकाएक यही सत्य मालूम होने लगता है कि भारतवर्ष में जातीयता की आशा दुराशा मात्र ही है, लेकिन जब हम स्थिर चित्त से भिन्न २ देशों के इतिहासों का मनन करते हैं और राजनैतिक शास्त्रों (political philosophy) के सिद्धान्तों की ओर देखते हैं तो हमारी आशा-लता लहलहा उठती है और हमलोगों की जातीयता और राष्ट्रीयता सिर्फ़ कल्पना मात्र ही नहीं, किन्तु वास्तव में व्यावहारिक भी सिद्ध होने लगती है।

सब से प्रथम हमें यह देखना चाहिये कि ऐसे कौन से बन्धन हैं जिनसे इस संसार में एक मनुष्य दूसरे से बँधा है। राजनीतिज्ञ लोग इन बन्धनों को दो भागों में विभक्त करते हैं, प्रथम प्रावृत्तिक अथवा स्वाभाविक natural और द्वितीय कृत्रिम (artificial)। प्रावृत्तिक बन्धनों में वंश, भाषा, मत अथवा धर्म, और पृथ्वी नियुक्त हैं और कृत्रिम बन्धनों में नियम चाल और व्यवहार, एकराज्य के स्वत्व में निवास और एक ही राजनैतिक, सामाजिक और साम्पत्तिक उद्देश्य नियुक्त हैं।

इन बन्धनों को जानलेने के पश्चात हमें भिन्न २ देशों के इतिहासों में यह देखना चाहिये कि उन देशों में जो जातीयता स्थापित हुई है, उनमें ऊपर लिखे सभी बन्धन वर्तमान हैं, अथवा कुछ नहीं भी हैं। तर्कशास्त्रज्ञ (Logicians) आप को बतलायेंगे कि कारण दो प्रकार के होते हैं एक तो (accidental) अर्थात् जिसके योग से संयोगवश कोई कार्य हो जाय और दूसरा वह जिसके बिना उस कार्य का होना असम्भव हो। इस प्रथा के अनुसार हम लोगों को भी विचार करना होगा कि इन बन्धनों में से कौन जातीयता का एक मात्र मुख्य कारण है जिसके बिना जातीयता स्थापित नहीं हो सकती और कौन केवल (accidental) कारण है। सब देशों का इतिहास तो अलग रहे, सिर्फ़ अमेरिका के इतिहास ही से हमें ज्ञात हो जाता है कि वंश, भाषा, मत, संयुक्त नियम और चाल व्यवहार (race, language, religion, common law and customs and manners) मुख्य कारण नहीं हैं, केवल सांयोगिक (accidental) हैं, क्योंकि इनके न रहते हुए भी अमेरिकानिवासियों में जातीयता पूर्ण रूप से विराज रही है। यही दशा जर्मनी, और इटली में भी है। ऐसी अवस्था में अब इनके सिवाय जो तीन बन्धन (१) पृथ्वी अथवा एक देश में निवास, (२) एक राज्य का स्वत्व, और (३) एक ही प्रकार के उद्देश्य, बच रहे हैं वे ही जातीयता के मुख्य कारण माने जा सकते हैं, क्योंकि उनके बिना जातीयता किसी देश में नहीं निर्माण हुई है।

हम लोगों को अब इस बात पर ध्यान देना होगा कि भारतवर्ष में ये मुख्य बन्धन वर्तमान हैं या नहीं। क्योंकि यद्यपि भारतवर्ष में एक मत, वंश, भाषा, चाल, व्यवहार आदि नहीं हैं तो न रहें क्योंकि वे राष्ट्रीयता के प्रधान कारण नहीं। इटली और जर्मनी के इतिहास ही (जिन्हें राष्ट्र में संगठित हुए अभी एक शताब्दि भी नहीं हुई हैं,) हम से कहते हैं कि इनके न रहते हुए भी राष्ट्रीयता असम्भव नहीं है। अब रहे मुख्य कारण जिनमें से प्रायः सभी हम में वर्तमान हैं। भारतवासी एक देश के निवासी हैं, उसी की उन्नति और वृद्धि से उनकी भी उन्नति और अवनति से अवनति है। यों, कहते

के लिए कोई महाशय अपने को फारस और टर्की ही का आदि निवासी क्यों न बतलावें, लेकिन उन देशों से इन्हें क्या २ लाभ हो रहा है सो सर्वसाधारण को विदित ही है। जब कि मुसलमान लोग विद्यालय के हेतु चन्दा वसूल कर रहे थे, टर्की ने भारतवर्ष के मुसलमानों को एक पैसे की भी सहायता नहीं दी थी, किन्तु कुछ महाशय ऐसे निकले कि विश्वविद्यालय का चन्दा भी टर्की की सहायता के हेतु भेजने पर आरूढ़ हो गये। बड़े हर्ष की बात है कि उनमें भी ऐसे उदार और महानुभाव पुरुष उत्पन्न होने लगे हैं, जो देश के प्रति अपने कर्तव्यों को पूर्णतया समझते हैं। एक राज्य के स्वत्व में भी ईश्वर की कृपा से हम लोग आ गये हैं। आज यह अवसर है कि सारा भारतवर्ष हिमालय पर्वत से ले कुमारी अन्तरीप और बङ्गाल से गुजरात तक एक बृटिश साम्राज्य के अधीन है। अब रहे हमारे उद्देश्य, सो उनके विषय में तो यह कहने की आवश्यकता ही नहीं है कि वे एक हैं। हम यही चाहते हैं कि हमारी मातृ भूमि में सभी प्रकार की राजनैतिक, धार्मिक, साम्पत्तिक और सामाजिक उन्नत्ति हो। कुछ दिनों से इस विषय में कुछ मतभेद आपड़ा था सो अब उसका भी निबटेरा हो गया। मुसलिम लीग ने भी अब कांग्रेस के ही उद्देश्य को स्वीकृत कर लिया है।

ऊपर जो कुछ लिखा जा चुका है, उससे स्पष्टतया पाठकों को विदित हो गया होगा कि भारतवर्ष में राष्ट्रीयता के हेतु सभी आवश्यक सामान उपस्थित हैं। केवल Will अर्थात् दृढ़ संकल्प की आवश्यकता है, और यदि यह संकल्प थोड़े से भी सहृदय भारतवासियों में दृढ़ हो जाय तो राष्ट्रनिर्माण कोई भारी बात नहीं है। हम आशा कर सकते हैं कि थोड़े ही दिनों में उसके फल फूल देख पड़ने लगें।

(२)

अब हमें उन उपायों को दिखलाना है जिनके अनुसार कार्य करने से हम राष्ट्रनिर्माण में कृतकार्य होंगे। इनमें सब से बढ़कर ये बातें अत्यावश्यक हैं कि हम लोगों में (Pride in a common post) अर्थात् पूर्व समय में हिन्दू, मुसलमान, इत्यादि भिन्न २ जाति के लोग जो कुछ कार्य इस देश में कर गये हों उनमें धर्म और जाति के विचार बिना, एक प्रकार के गौरव का बीज वपन करदिया जावे और (Hope for a common future) अर्थात् भविष्य के लिए एकही आशा का संचार होजावे। हम इन दोनों विषयों पर विचार करेंगे कि ये कहां तक और किस प्रकार सम्भव हो सकते हैं!—

अ--“ भूतकाल के इतिहास में एक प्रकार का गौरव! इसके सुनने के साथ कितने महाशयों की बुद्धि चकरा उठेगी और वे कहने लगेंगे कि भारतवर्ष में यह कब होने लगा। इतिहास का अवलोकन मात्र ही कहे देता है कि भूतकाल में हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख और मरट्ठों में कैसी २ लड़ाइयां हो चुकीं हैं, तो अब भला क्योंकर सम्भव है कि उनकी सन्तान उनके कार्यों में एक प्रकार का गौरव सम्पादन कर सके। हम उन लोगों से केवल इतनी ही प्रार्थना करेंगे कि वे ज़रा पाश्चात्य देशों के इतिहासों को पढ़ें और लिखें कि वहां के आधुनिक राष्ट्रों के पूर्वजों में किस २ प्रकार के काण्ड हो चुके हैं। जब हम Tuscan और Neapolitan, Hanovarian और Perssian के झगड़ों को अपने यहां के झगड़ों से मिलाते हैं तो पृथ्वी और आकाश का अन्तर देख पड़ता है। सभी राष्ट्रों और जातियों के संगठन के समय लोहे के चने चबाने पड़े हैं। राष्ट्र निर्माण के लिए इनकी भी आवश्यकता है, पर जब किसी समय में उन्हीं भिन्न २ लोगों के चित्त में राष्ट्रीयता का भाव जम जाता है तब फिर वही लड़ाइयां और वही झगड़े सभी लोगों में उनके पूर्व पुरुषों की संयुक्त-वीरता के गौरव के कारण

होजाते हैं यदि कुछ लोगों को यह ख्याल होता हो कि हिन्दू इस देश के आदिनिवासी हैं अतएव केवल वे ही भारतवर्षीय कहलाने के पात्र हैं तो यह उन लोगों की भूल है। यहां फिर भी पाश्चात्य देशों का इतिहास हमारा सहायक होता है और बतलाता है कि पूर्व में नौरमनों ने (Normans) इङ्गलैंड पर चढ़ाई की, लेकिन राष्ट्रनिर्माण के साथ ही आज वहां के निवासी न तो नौरमन हैं और न सैक्सन वे अब (Englishman) इङ्गलिशमैन हो गये। अब रहा धर्म और मतविभेद और पूर्व का हठ इसके लिए भी एक वार हमें इन्हीं यूरोपीय देशों का शरण लेना होगा, जहां अब राष्ट्रीयता की ध्वजा फहरा रही है। वहां हम लोग देखते हैं कि महारानी मेरी प्रोटेस्टैन्ट लोगों को जलाती थी, एलिज़बेथ और क्रौमवेल, कैथलिकों का वध करते थे; लुई ह्युगुमट्स को देश से निकल जाने और प्राणदण्ड की सज़ा देते थे इत्यादि २। ऐसी २ बातों की संख्या वहां इतनी अधिक है कि यदि कोई महाशय उनके संग्रह करने का साहस करें तो एक छोटी मोटी पुस्तक बन जाय। लेकिन अब आजकल की दशा देखिये, उन्हीं की सन्तान अब एक साथ रहती है और जब कभी किसी देश के ऊपर किसी प्रकार की आपत्ति आ पड़ती है तो फिर वही रोमन कैथलिक, एंगलिकन, प्रोटेस्टन्ट और मेथोडिस्ट प्रत्येक देश में एक साथ हो जाते हैं और एक स्वर से चिल्ला उठते हैं "मैं इङ्गलिशमैन हूं" "मैं जर्मन हूं" "मैं फ्रेञ्च हूं"। तो क्या एक भारतवर्ष ही के लिए यह असम्भव है कि यहां के हिन्दू, मुसलमान, ईसाई और पारसी एक चित्त होकर एक स्वर से अपने को भारतवर्षीय कह कर पुकारें। एक प्रकार का गौरव उत्पन्न करने के लिए पहले हमको शिक्षाविभाग की सहायता लेनी होगी। हमारे स्कूलों में जो विदेशियों के लिखे हुए इतिहास पढ़ाए जाते हैं वे हमको अपने पूर्वजों में श्रद्धा उत्पन्न करने के बदले घृणा उत्पन्न कराते हैं, आपस के वैमनस्य को बढ़ाते हैं। भारतवासियों को उचित है कि वे ईर्षाद्वेष से रहित हो अपना इतिहास आप ही लिखें और सभी पार्टी, सभी जाति और सभी धर्म के बड़े २ लोगों की वीरता की कहानी लिखकर सभों में एक प्रकार की भक्ति उत्पन्नकरावें, उस इतिहास में सभी धर्म के लड़के और लड़कियों को पृथ्वीराज, राणाप्रताप, शेरशाह, अकबर, गुरुनानक, मानसिंह, शिवाजी और गोविन्द सिंह की ओर एक प्रकार के गौरव की दृष्टि से देखना सिखलाया जावे।

(२) भविष्य का उद्देश्य और आशा- देशभक्त लेखकों और वक्ताओं को उचित है कि वे लोगों के हृदय में यह उद्देश्य अङ्कुरित करें और अपने लेख और व्याख्यानों के द्वारा मातृभूमि का एक ऐसा चित्र खींच दिखलावें जिसमें भिन्न २ मत और जाति के भिन्न २ रङ्ग चित्र की शोभा हो। Actual होने के पहले राष्ट्र आदर्श रूप में ही रहता है। इसलिए राष्ट्र के आदर्श का सभी जगह उपदेश किया जाना अत्यावश्यक है। इतिहास से हम लोग इसके फल को देख सकते हैं। इटली के लेखक राष्ट्रीयता के विषय में तभी लिखते थे जब इटली जाति का नामोनिशान भी नहीं था, इटली के कवि इस पर कविता बनाते थे और गायक लोग गान करते थे, यहां तक कि इटली का आदर्श भिन्न २ प्रकारेण इस प्रकार दिखलाया गया कि सभी इटली निवासियों का हृदय मातृभूमि के नाम से धड़कने लगा और उसका फल यह हुआ कि "इटली" राष्ट्र आदर्श की दशा से स्थिति की दशा में आगया। जर्मनी राष्ट्र निर्माण का भी इतिहास इसी प्रकार का है। मातृभूमि की भक्ति सभी जगह सिखलाई जानी चाहिये। ज्ञानी इस पर विचार करें, वक्ताजन इस पर वक्तृता दें, लेखकगण इस पर लेख लिखें, जिससे यह आदर्श देश के प्रायः सभी

लोगों के हृदय में जम जाय और तब एक समय आवेगा कि कोई Bismark बीसमार्क अथवा Mazzini मेज़ीनी उठ खड़ा होगा और भारतीय राष्ट्र की नौका को ले कर पार लगावेगा।

कुछ राजनैतिक उक्तियां।

[लेखक—श्रीयुत पीरमुहम्मद "मूनिस"।]

अरस्तु, स्पेन्सर, मिल, फाक्स, विल्सन, मिल्टन, पिट और बर्क आदि, प्राचीन और अर्वाचीन राजनीतिज्ञों की राजनैतिक उक्तियां।

१—मनुष्य स्वभावतः राजनैतिक जीव है।

२—मनुष्य स्वभावतः स्वतन्त्र और स्वाधीन है।

३—राजनीति का बीज मनुष्य जाति के हृदय में आरम्भही से बोआ हुआ रहता है।

४—मनुष्य को राजनीति से अलग रखना वैसाही है, जैसे सिंह के बच्चे को शिकार से।

५—किसी जाति को, किसी जाति की स्वतन्त्रता हरण करने का अधिकार कदापि नहीं है।

६—मनुष्य जाति को अपनी रक्षा करने का पूर्ण अधिकार है। इसका अर्थ उसके जातीय ज्ञान और राजनैतिक बल को बढ़ाना है।

७—पराधीनता "जातीय पतन" की सूचक है, और स्वाधीनता "जातीय अभ्युदय" की।

८—सर्वोत्तम राज्य व्यवस्था स्वतन्त्रत राज्य-प्रणाली ही है। इससे सब प्रकार के जातीय उद्दश्य सिद्ध होते हैं।

९—उदार नीति ही शासन की सच्ची नीति है।

१०—किसी आदमी को तर्क द्वारा कोई गुलाम नहीं बना सकता।

११—पूर्णज्ञान और मनुष्यत्व की प्राप्ति के लिए समाज की आवश्यकता पड़ती है।

१२—मनुष्य को पूर्ण सभ्यता और उन्नति प्राप्त करने के लिए "स्वतन्त्रता और सामाजिक जीवन की बड़ी आवश्यकता है।

१३—गवर्नमेंट यथार्थ में किसी जाति अथवा समाज की "शासक" नहीं है, वरन् उसकी "सेवक" है। क्योंकि वह अपनी उन्नति से समाज के उद्देश्यों, विचारों और इच्छाओं का सम्पादन करती है।

१४—गवर्नमेंट एक ऐसी व्यवस्था का नाम है जिसकी उत्पत्ति और स्थिति, किसी जाति के उद्देश्यों को प्राप्त करना है।

१५—गवर्नमेंट से समाज वा जाति (Nation राष्ट्र) श्रेष्ठ है। अर्थात् समाज वा जाति शरीर है तो गवर्नमेंट उसका अङ्ग है!

१६—समाज वा जाति को ईश्वरप्रदत्त अधिकार है कि वह अपने इच्छानुसार गवर्नमेंट में परिवर्त्तन करे।

१७—सामान्य दशा में एक जाति का, दूसरी जाति को, अपने आधीन रखना अन्याय है।

१८—यदि शासन करनेवाली जाति अपने आधीन जाति को, सब प्रकार से, सभ्यता में ऊँचे चढ़ाने का उद्योग न करे तो वह अपने बड़े भारी कर्त्तव्य न करने की दोषभागिनी होगी।

१९—सुराज्य स्वराज्य के समान नहीं हो सकता।

२०—अराजकता की औषधि स्वतन्त्रता है, न कि गुलामी ! जैसे मिथ्या धर्म की औषधि सद्धर्म है, न कि नास्तिकता।

२१—किसी जाति को, किसी जाति पर मनमाना शासन करने का अधिकार कदापि नहीं है। यदि कोई जाति ऐसा करे भी तो वह प्रकृति के नियम से विरुद्ध है।

२२—कार्य तत्पर, उन्नतिशील, बहुसंख्यक और सत्ताशाली जाति को अधीन करने के लिए, गवर्नमेंट का बलप्रयोग करना एक बहुत निर्बल शस्त्र है।

२३—शासकों में ईमानदारी और दया होने ही से, शासितों में राजभक्ति, उद्वेग, शान्ति और उनके प्रति आदर उत्पन्न होता है।

२४—राजनीति का यह अटल सिद्धान्त है कि कठोरता से अशान्ति; बलप्रयोग से राज्यक्रान्ति और दमन नीति से अराजकता फैलती है।

२५—दया से प्रगाढ़प्रेम; न्याय से शासन की स्थिरता और उदारता से राजभक्ति की मात्रा निस्सीम बढ़ जाती है।

२६—बड़े लोग राष्ट्र के पथ प्रदर्शक और उन्नति के चिन्ह हैं।

२७—सर्वसाधारण के विचारही कानून के बल शस्त्र अथवा आधार हैं।

२८—समाज के साधारण भाव को एक दिशा में लाना—एक रूप देना—एक नियमानुकूल कपड़ा पहिराना—उसे विशेष रूप से स्वीकार करना व्यवस्थापक सभा का सच्चा उद्देश्य है।

२९—राजनैतिक विचार में ठकुरसुहाती कहना और मित्रता रखना भिन्न २ बातें हैं। किसी को धोखा देना उसका कार्य्य करना नहीं कहा जासकता।

३०—यह बात निर्विवादहै कि-राजनैतिक क्षेत्र में भिक्षुकों को स्थान नहीं है। राजनैतिक अधिकार पाने के लिए नैतिक और वास्तविक बल पैदा करना चाहिये नहीं तो, अप्रसन्नता पर धक्का, और प्रसन्नता पर दाता से टुकड़ा मिलता है।

३१—यह बात स्वयं सिद्ध है कि राजनैतिक अधिकार मांगना, गवर्नमेंट से द्रोह करना नहीं है बल्कि उसके शुभचिन्तक और राज भक्त बनना है।

३२—"सार्वजनिक विपत्ति" एक बहुत बड़ा संघट्ट-कारक-तत्व है। और, ऐसे अवसर जीवन में प्रायः आते हैं कि जब छोटी से छोटी भलाई के अवसर को काम में लाना, मनुष्य अपने लिए परम आवश्यक समझता है।

३३—राजनीति में अपनी 'डेढ़ चावल की खिचड़ी' अलग पकाना, वैसाही है जैसे एक भव्य और विशाल भवन की ईंट को खसकाना अथवा तखड़ पखड़ करना।

३४—शृङ्खलाबद्ध जातीयएकता को तखड़ पखड़ करना लोगों को अकारण 'दोषी' ठहराना 'राजविद्रोही' कह देना; गवर्नमेंट के लिए अपनी उन्नत्ति के मार्ग में स्वयं कण्टक बोना है।

३५—विद्यार्थियों को राजनीति से अलग रखना, उनके मानसिक विकास और नैतिक ज्ञान को नष्ट करना है। क्योंकि ? जो अग्नि प्रारम्भ ही से धीरे २ प्रज्वलित होती है वह कदापि भयानक नहीं होती परन्तु, जो अग्नि सहसा प्रज्वलित हो उठती है; वह भयानक और दुःखदायिनी होती है।

३६—किसी राजमंत्री का स्वार्थवश कादर होना, उतना ही अपमानजनक है जितना किसी सैनिक का युद्ध क्षेत्र में कादर होना। परन्तु ! देशोपकार सम्बन्धी कार्य में डरना (Timidity) एक महान गुण है।

३७—सरकार को अपनी शक्तिद्वारा किसी जाति के प्रजासत्तात्मक धर्म को बदल देना वैसाही है जैसे किसी स्वतन्त्र जाति की वंशावली को बदल देना ।

३८—किसी जातिको पराधीन बनाने का सब से बड़ा उपाय, उसके जातीय गौरव, स्वदेशाभिमान और आत्ममर्यादा को नष्ट करना है ।

३९—किसी मनुष्य अथवा मनुष्य समूह के, अशान्ति और क्रोध के समय की चाल और भाषण देखकर, उसके शान्ति और स्थिरता के समय का स्वभाव, निश्चित कर लेना न्यायसंगत नहीं है ।

४०—मनुष्य जाति किसी शासन विषयक अथवा स्वतन्त्रताविषयक मानसिक सिद्धान्त को उतना कार्यरूप में प्राप्त करना नहीं चाहती जितना न्यायशास्त्र के अनुसार इसका फल निकलता है ।

४१—गवर्नमेंट की इच्छा कैसी ही हो; पर, किसी जनसमुदाय अथवा जाति पर उसका शासन करना तभी फलीभूत हो सकता है जब उस जाति के स्वभाव, आचार, विचार भेष, भाषा और उसके अस्तित्व में वह अपना अस्तित्व अच्छी तरह मिला देवे ।

४२-गवर्नमेंट को अपनी कल्पनाओं अथवा केवल स्वत्व के सिद्धान्तों ही के अनुसार किसी जाति पर शासन नहीं करना चाहिये । गवर्नमेंट को (Abstract theories) अवच्छिन्न सिद्धान्तों के अनुसार शासन करना कभी फलीभूत नहीं हो सकता ।

४३—जब प्रजा को दरिद्र बनाने का काम पूरा होगा-उस समय याद रहे, कि प्रकृति अपनी साधारण राह पर चलती रहेगी और, ज्यों २ दुःख बढ़ता जायगा, त्यों २ असंतोष भी बढ़ता जावेगा । यह भी याद रक्खो कि सभी समाजों के भाग्य में ऐसाही विषम समय आता रहता है-जब कि उनके थोड़ी ही भलाई करने से असमर्थ जातियां उनकी पूरी बराबरी करने में पूर्ण समर्थ हो जाती हैं ।

४४—यदि किसी बनैले जानवर का बहुत दूर तक पीछा करो तो अन्त में, वह अवश्य तुम पर आक्रमण करेगा । यदि प्रजा तुम्हारे शासन के साथ अपनी स्वतन्त्रता नहीं रख सकती-तो वह किस वस्तु को प्यार से चाहेगी। अन्त में इसका परिणाम यही होगा कि तुम्हारे शासन को तुम्हारे ही मुंह पर वह (दूर) फेंक देगी ।

४५—जब कोई समाज दूसरे समाज के आधीन रहता है तब, ऐसे सम्बन्ध में अधिक भय यह है कि उन दोनों में से, उन्नतर समाज में अत्यन्त गर्व और अहमन्यता होजाय और सभी मामलों को वह अपनी ओर खींचे ।

चित्रकूट-यात्रा ।

[लेखक—श्रीयुत पं० पाटेश्वरी प्रसाद त्रिपाठी ।]

विद्यार्थी-जीवन का सर्वोच्च अभिप्राय शिक्षालाभ ही है । शिक्षा ही के लिए ब्रह्मचर्य्याश्रम की आवश्यकता पड़ती है । अनेक विद्यालय स्थापित किये जाते हैं । परन्तु याद रहे कि बालक बालिकाओं की शिक्षा केवल विद्यालय में ही समाप्त नहीं होती-पूर्ण रूप से शिक्षा तब मिलती है जब बाहरी शिक्षा-सामग्री का भी प्रयोग किया जाता है । विद्यालय के बाहर

जिन २ मार्गों से हमें शिक्षा मिलती है उनमें देशदेशान्तर की यात्रा प्रधान है। भारतवर्ष में जहां विद्यालय की शिक्षा का अभाव सर्वत्र विद्यमान है वहां यात्रारूपी शिक्षालाभ की तो सर्वथा शून्यता ही समझनी चाहिये। यात्रा अर्थात् पर्य्यटन शिक्षा का एक अंग है। यूरोप में प्रत्येक पुरुष यात्रा को अपना कर्त्तव्य समझता है। विद्यालय से सम्मानप्राप्त पुरुष भी यात्रा के बिना अपने को पूर्णतया शिक्षित समझने में संकुचित होता है। प्रायः देखा जाता है कि यूरोप के विद्यार्थी छुट्टियों में यात्रा किये बिना नहीं रहते। यही कारण है कि वे शिक्षा के स्वादुफल को चखते हैं। मेरी समझ में बेकन (Bacon) के ललितपदों को उद्धृत कर देने से पाठकगण भलीभांति समझ जांयगे कि पूर्वोक्त बातों के लिखने का क्या अभिप्राय है—" Travel, in the younger sort, is a part of education ; in the elder, a part of experience." अर्थात् यात्रा युवक के लिए शिक्षा और वृद्ध के लिए अनुभव का काम देती है।

दीवाली निकट आ पहुंची और म्युअर सेन्ट्रल कालेज भी तारीख़ २८ अक्टूबर को पढ़ाकर बन्द हुआ। तीन रोज़ की छुट्टी मिली ऐसा होते ही यह विचार उपस्थित हुआ कि चित्रकूटगिरि का भ्रमण अवश्य करना चाहिये। हिन्दू बोर्डिंगहाउस के बहुतेरे छात्रों ने मुझे अनुमति देने में मेरे विचारों का अनुमोदन किया। अतएव हम लोग ता० २८ को सायंकाल के समय इलाहाबाद के स्टेशन पर जा एकत्रित हुए—स्टेशन पर भीड़ अधिक थी। प्लेटफार्म यात्रियों से खचाखच भरा हुआ था। हम लोग कुल दस आदमी थे। टिकट लेकर क़िसी तरह गाड़ी में जा सवार हुए। इधर उधर पूछने से ज्ञात हुआ कि ता० २९ अक्टूबर अर्थात् कातिक बदी ३० को चित्रकूट में मेला होगा और सहस्रों यात्रियों सहित दीपमालिका का उत्सव मनाया जायगा। इस बात को सुनते ही लोगों को असीम हर्ष हुआ। कारण यह था कि चित्रकूट में देवताओं तथा देवर्षिस्थानों के दर्शन के अतिरिक्त उस प्रान्त के जन समागम को देखने का शुभ अवसर प्राप्त होगा। परन्तु साथ ही खेद भी होता था, क्यों ? कि ज्यों २ गाड़ी आगे बढ़ती जाती थी त्यों २ गाड़ी में भीड़ अधिक होती थी। यहां तक कि दो, तीन स्टेशन जाने के बाद बाहरी मुसाफिरों के लिए गाड़ी में स्थान न रहा। स्टेशनों पर यात्रियों की भरमार थी। परिणाम यही होता था कि गाड़ी अपने समय पर छूटती थी और अनेक यात्री भी गाड़ी में स्थान न पाकर प्लेटफार्म पर दांत पीसते खड़े रह जाते थे। मानिकपुर में हमलोगों को गाड़ी बदलनी पड़ी। यहां वहां दौड़ धूप कर जिसने जहां पाया वहीं पर घुस गया।

रात को १२ बजे के पश्चात् गाड़ी करवी स्टेशन पर पहुंची। स्टेशन से थोड़ी दूर पर एक बड़ी भारी धर्मशाला बनी हुई है। हम लोग सीधे वहीं पर चले गये। खान पान के अनन्तर थोड़े समय तक विश्राम किया। पुनः ४ बजे रात को चित्रकूट को प्रस्थान किया। थोड़ी दूर जाकर एक बावली नज़र आई। जो बहुत रमणीय थी और जिसके विषय में यह सुना गया कि वह किसी पेशवा की बनवाई हुई है। कुछ दूर तक रास्ता अच्छा था परन्तु ज्यों २ पहाड़ों के निकटवर्त्ती होते थे त्यों २ रास्ता दुर्गमसा दीख पड़ता था। लगभग ७-८ बजे हम लोग चित्रकूट पहुंचे और एक पण्डा जी के यहां जाकर आसन जमाया। तत्पश्चात् पतितपावनी मंदाकिनी में हम लोगों ने स्नान किया और सन्ध्यादि कर्म से निवृत्त हुए और कुछ देर विश्राम करके हम लोगों ने चित्रकूट के पहाड़ों पर भ्रमण करने के लिए

प्रस्थान किया। भ्रमण में सुविधा होने के लिए हम लोगों ने एक पुस्तक 'चित्रकूट-यात्रा-माहात्म्य" खरीद रक्खी थी। जिससे हमलोगों को बहुत सहायता मिली। दूसरी बात यह थी कि पहाड़ों में जाते समय हम लोगों ने पण्डाजी महाशय के एक आदमी को अपने साथ लेलिया था जो बराबर हम लोगों को मार्ग प्रदर्शक (Cicerone) का काम देता था।

पहाड़ों में सफर करते समय रास्ता कटने नहीं आता। कहीं ऐसा भी होता है कि जो पहाड़ निकटस्थ मालूम होता है वह अधिक चलने पर भी दूरस्थ प्रतीत होने लगता है। पाठकवृन्द यह स्थान, जिधर हम लोग जारहे हैं, उसका नाम

कोटि तीर्थ

है—यहां पर पहुंचने के लिए हम लोगों को अति विषम मार्ग से होकर जाना पड़ा। कुछ दूर के बाद पक्की सीढ़ियां मिलने लगीं। उनको पार कर हम सब इस स्थान पर उपस्थित हुए। यहां पर एक विचित्र कुण्ड है और निकटही एक झरना विद्यमान है जिससे फौआरे के स्वरूप में सदा पानी निकला करता है। हम लोगों ने इसके पानी का आस्वादन किया और वास्तव में इसे अत्यन्त शीतल तथा स्वादु पाया। गिरिवर के शिखर पर पहुंचने के लिए हमलोगों ने अतीव प्रयत्न किया परन्तु बहुत दूर जाने के बाद निराश होकर लौट आना पड़ा। यह कहा जाता है कि यहां पर कोटि ऋषियों को एक साथ दर्शन देने के लिए मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्र प्रकट हुए थे।

पहाड़ी तथा जंगली रास्ते से होते हुए यहां से हम लोग आगे बढ़े। कभी ऊंचे पहाड़ों पर चढ़ना पड़ता था और कभी नीचे उतरना पड़ता था। चलते २

देवांगन

नाम पवित्र स्थान पर पहुंचे। यहां पर एक मनोहर झरना है और सामने एक देव-मन्दिर बना हुआ है। उस स्थान की छटा कुछ और ही थी। वहां पर यह ज्ञात हुआ कि इसी स्थान में भगवान श्रीरामचन्द्र के दर्शन के लिए देव-समूह एकत्र हुआ था। वहां से थोड़ी ही दूर जाकर हम लोग एक ऐसे विचित्र स्थान पर पहुँचे जिसका नाम

सीता रसोइयां है।

लोगों से ज्ञात हुआ कि यहां पर कुछ काल तक भगवान अपनी प्रियतमा सीता के साथ निवास करते थे और इसी से इस स्थान का प्रचुरमहत्व भी है।

यहां से आगे चलकर हम लोग गिरिवर की छटा देखते हुए तथा अनेक प्राकृतिक सौन्दर्य का निरीक्षण करते हुए सङ्कर्षण गिरि पर जा पहुंचे। देवांगन से दो मील की दूरी पर इसी गिरिवर के कटिभाग में

हनुमान धारा

नामक अत्यन्त रमणीय तीर्थ है। इस पवित्र स्थान पर हनुमान् जी की एक विशाल मूर्ति शयन कर रही है। और उस मूर्ति की भुजाओं पर पातालगङ्गा का अति निर्मल नीर सदैव गिरता रहता है। इसके नीचे दो कुण्ड हैं जिनका जल शिशिर तथा मधुर है। नीचे से पहाड़ के ऊपर हनुमानधारा तक पहुंचने के लिए ३६० सीढ़ियां बनी हुई हैं। हम लोगों ने इन्हीं सीढ़ियों से होकर अवतरण किया और सम भूमि पर चलकर जङ्गली रास्ते से होते हुए एक रमणीक स्थान पर जा उपस्थित हुए जिसका नाम

प्रमोद बन है।

रास्ते में प्राकृतिक सौन्दर्य को देखकर हृदय आह्लादित होता था। प्रमोदवन हनुमान-धारा से दो मील की दूरी पर पश्चिम दिशा में मंदाकिनी के बाएँ किनारे पर स्थित है। यह बहुत मनोहर स्थान है। इसमें एक सुन्दर उपबन है। यह स्थान रीवां नरेश महाराजा विश्वनाथ सिंह का बनवाया हुआ है। इस स्थान पर एक अति उत्तम मन्दिर है। महाराज का निवासस्थान भी अति उत्तम बना हुआ है। विशेषता यह है कि इसमें सहस्त्रों कोठरियां पूजा पाठ के हेतु बनी हैं। यहां पर प्रायः भजनानन्दी तथा विद्वज्जन रहते हैं। इस स्थान पर आते समय हम लोगों ने एक निर्झरिणी को पार किया था। वहां भी उसकी शोभा इतनी निराली थी कि मानों वह सौन्दर्यस्वरूपिणी प्रकृति देवी की द्वितीया सहचरी थी। अस्तु। इस प्रकार हमलोग "भगवान श्रीरामचन्द्र के चरण कमल स्पृष्ट स्थानों" का दर्शन करते हुए ता० २८ के सायंकाल को अपने निवास-स्थान चित्रकूट पर प्राप्त हुए। इस समय मंदाकिनी के दोनों उपकण्ठों पर उच्च-प्रासाद स्थित दीपमालिकाएँ अपनी कांति से चित्रकूट की महिमां को दर्शकों के हृदय पटल पर अंचित कर रही थीं। उस समय का हर्ष और आनन्द अकथनीय है। पाठकवृन्द! इस भांति प्रथम दिवस की यात्रा आनन्दपूर्वक समाप्त हुई।

इसके अनन्तर मन्दाकिनी के तट पर सायं सन्ध्यादि क्रियाओं से निवृत्त होकर हम लोग अपने निवास-स्थान को चले। वहाँ पर पहुंच, तथा भोजनादि से छुट्टी पाकर हम लोगों ने निद्रा देवी की गोद का आश्रय लिया। प्रिय बन्धु! विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं, आप स्वयं समझ सकते हैं कि दिन भर के परिश्रम के बाद नींद कितनी मीठी मालूम होती है। घोर निद्रा के पश्चात् हम लोग ब्राह्ममूहूर्त में उठ पड़े और चटपट थोड़े बहुत वस्त्रादि लेकर हम लोगों ने अनुसूया के स्थान को प्रस्थान किया।

चित्रकूट से थोड़ी दूर जाकर एक एकान्त स्थान में जा पहुंचे जिसका नाम

खिरक्षा बन है।

यह स्थान बहुत सुहावना है। यहां पर शान्ति देवी का निवास समझिये। इसके मध्य में एक बड़ासा मन्दिर भी बना है जहां पर तीर्थसेवी लोग आसन जमाते हैं। जो हो, ऐसे पुजारी जन तो प्रत्येक मन्दिर में खामित्व रखते हैं। परन्तु यहां पर यह कह देना अनुचित न होगा कि पहाड़ी और जङ्गली रास्तों से होते हुए हम लोगों ने ऐसी मूर्त्तियों का दर्शन किया जो सर्वथा लंगोटिया यार थे। सर से पैर तक राख लगाकर बहुतेरे तो अपने अधम शरीर को अग्निदेव के मुख में हवन कर रहे थे। मेरे मित्रों में से यदि कोई किसी प्रकार का प्रश्न भी करता तो उत्तर यही मिलता था 'पेट के वास्ते' सच है भारतवर्ष में आजकल परिश्रमहीन या यों कहिये कि जांगरचोर और काहिलों ही के लिए यह मार्ग खुला हुआ है। धिक् रे भारत सन्तान तुझे धिक् है। तूने भारत माता के मुख में कालिमा लगाई। जो मार्ग एक समय पवित्र समझा जाता था और जिससे होकर साधुजन ईश्वरीय पद को प्राप्त होते थे उसे तूने दूषित कर दिया!—इस बन में एक विशेषता यह भी थी कि पक्षियों तक के कलकल कलरव नहीं सुनाई पड़ते थे।

चलते २ हम लोग उस मनोहर चित्ताकर्षक स्थान पर प्राप्त हुए कि जैसा स्थान हम लोगों ने कहीं भी नहीं देखा था। यह वह स्थान है कि जिसका नाम श्रवण करने से हम

लोगों का हृदय आनन्द से गद्गद हो उठा। इस स्थान का नाम परम मनोरञ्जक

श्रीजानकी कुण्ड है।

इस स्थान की जितनी महिमा गाई जाय सब थोड़ी है। संक्षिप्त रीति से तो यही कहा जा सकता है कि यह स्थान प्राकृतिक-सौन्दर्य्य का केन्द्र है। यह स्थान मन्दाकिनी गङ्गा के तट पर विद्यमान है। यहां पर एक स्वच्छ शिला पर श्री जनकदुलारी का चरणचिह्न अङ्कित है और नीचे कुण्ड है कुण्ड का जल अत्यन्त निर्मल है और विविधमत्स्यपरिपूर्ण है। जल ऊँचे से आकर पत्थरों के टुकड़ों से टकराते हुए नीचे को अत्यन्त सुन्दरता के साथ गिरता है। इस अनुपम स्थान के आसपास बहुत सी गुफाएँ हैं। जिनमें दूर २ से आये हुए त्यागी भक्तजन भजन-भाव करते हैं। यह स्थान 'फोटो, लेने के योग्य है परन्तु साथ में 'कैमेरा' न होने के कारण हमलोगों को हांथ मींजकर पछताना पड़ा। इस स्थान के विषय में यह कहा जाता है कि भरतमिलाप के समय में लोग इसी स्थान में ठहरे थे।

यहां से आगे बढ़कर हम लोग फिर आधे मील की दूरी पर मन्दाकिनी के तट पर पहुंचे यहां पर

स्फटिक शिला

वर्त्तमान है। यहां पर चिकने पत्थर पर पुरुषोत्तम भगवान रामचन्द्र के चरण चिह्न अङ्कित हैं। यह कहा जाता है कि यहीं पर जयन्त ने सीता जी के चरणों में चोंच मारी थी। इस स्थान से प्रस्थान करने के अनन्तर हम लोगों को गहन वन से होकर चलना पड़ा। रास्ता विकट और टेढ़ा था। सन्तोषपूर्वक चलकर कुछ काल व्यतीत होने पर हम लोग स्फटिक शिला से ५ मील की दूरी पर दक्षिण दिशा में मन्दाकिनी गङ्गा के तटपर अनुसूया तथा अत्रिऋषि के आश्रम में पहुंचे। यहां पर मन्दिरों में अनुसूया तथा अत्रिऋषि की मूर्त्ति विद्यमान है। यह वही स्थान है जहां पर अनुसूया जी ने सीता जी को पातिव्रत धर्म का उपदेश दिया था और यथोचित उत्तर भी पाया था। इस स्थान के विषय में यह कहा जाता है कि यही अनुसूया जी कठिन तप करके मन्दाकिनी गङ्गा को लाई थीं। मन्दाकिनी का उद्गम इस पहाड़ में अमरावती स्थान पर है। इसी पहाड़ के दक्षिण दंडक बन प्रारम्भ होता है। यह स्थान बहुत सुन्दर है। मन्दाकिनी के दोनों किनारे पर पर्वत शृङ्खलायें दूर तक चली गई हैं। इसी पहाड़ में २०० सीढ़ियां चढ़कर

सिद्धाश्रम

मिलता है। यह कहा जाता है कि कुछ वर्ष पहले यहां पर एक बड़े सिद्ध महात्मा रहते थे। स्थान विचित्र है। यहां पर मन्दाकिनी के निर्मल जल में हम लोगों ने स्नान किया तथा सन्ध्यादि देवार्चन कर्म के अनन्तर प्राण पूजा के खेल मे प्रवृत्त हुए। किञ्चित काल विश्राम करने के पश्चात् हमलोगों की सेना आगे को बढ़ी। पहाड़ों में अगम मार्ग से होते हुए हम लोग बसुन्धरा के सम-भूमितल पर जा उपस्थित हुए। ग्रामीण दृश्य भी क्याही होता है। ग्राम के चारों तरफ़ और खासकर ग्राम के सन्निकट हरे २ पौधे दृष्टिगत होते हैं। कहीं गो समूह विचर रहा है और कहीं जनसमूह भी, अपने कृषि कार्य में तत्पर दीख पड़ता है। स्त्रीजन अपने गृह-कार्य में तन मन से आसक्त हैं। कहीं छोटे २ बालक यत्र तत्र खेल रहे हैं, क्या उन्हें भी संसार की चिन्ता व्याप सकती है? कहीं खुले मैदान से होकर और कहीं ग्राम से होकर हम लोग

गुप्तगोदावरी

को जा पहुंचे। पाठक महोदय यहां पर यह

कह देना आवश्यक होगा कि जैसे यात्री-गण वद्रिकाश्रम इत्यादि स्थानों में पहुंच कर 'चट्टी' नाम के स्थानों से लाभ उठाया करते हैं उसी प्रकार इस पुण्य-स्थान में भी ऐसे स्थान बने हैं कि जहां यात्रियों के लिए भोजनादि पदार्थ सुगमतया मिल सकते हैं। गुप्तगोदावरी का स्थान सिद्धाश्रम से ५ मील की दूरी पर उत्तर दिशा में है। यहां पर तुङ्गारण्य पर्वत की अँधेरी गुफा के अन्तरगत दो शीतोष्ण कुण्ड हैं। गुफा बहुत अन्धेरी है। यद्यपि पुजारी लोग थोड़े-बहुत प्रकाश का प्रबन्ध करते हैं परन्तु वह किसी काम का नहीं होता। सच पूछिये तो ऐसे स्थान में प्रवेश करना यात्रियों के लिए भीतिजनक नहीं परन्तु हानि-कारक भी हो सकता है। एक बात तो यह कि प्रकाश तथा वायु का अभाव ही उसे यमद्वार तक पहुंचाने के लिए काफी होसकता है और दूसरी बात यह कि वहां जाने में यात्री को पुजारियों के हाथ की गुड़िया होजाना पड़ता है। यहां पर दर्शन करते २ हम लोगों को अति काल होगया और सूर्य भगवान भी अपनी यात्रा समाप्त करने लगे, यह देखकर हम लोगों ने भी चौबेपुर नामक ग्राम में जाकर बसेरा करने के प्रस्ताव को निश्चय किया। और इसी स्थान पर हम लोगों के द्वितीय दिवस की यात्रा की इतिश्री हुई।

चौबेपुर बघेलखण्ड में है। इसे कैलाश स्थान भी कहते हैं। यहां के वर्त्तमान नरेश चौबे राधाचरण जी बड़े भक्तशिरोमणि और कवि हैं। आपने कृपापूर्वक हम लोगों का अतिथि-सत्कार किया और अपने दर्शन से हम लोगों के उत्साह को बहुत ही बढ़ाया। रात्रि भर आपही के निवास-स्थान पर हम लोगों ने विश्राम किया। प्रातःकाल होतेही पुनः आपने अपने अपूर्व दर्शन से हमलोगों को कृतार्थ किया। वार्त्तालाप से प्रकट हुआ कि आप देशभक्तों में भी हैं। अतएव हम आशा करते हैं कि आप आर्थिक सहायता तथा शिक्षा प्रचार से जननी जन्मभूमि की उन्नति अवश्य करते रहेंगे जिससे जगदीश्वर आपकी दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति करेगा।

प्रिय पाठक! बघेलखण्ड में कुछ निराली बातें देखने में आती हैं। डाढ़ी मूंछ का संवारना हर एक पुरुष का परम कर्त्तव्य है। ध्यानपूर्वक देखने से ज्ञात होजाता है कि वीरता के चिह्न अभी उनके हृदयपटल से गये नहीं हैं। अस्तु हम लोग यहां से आगे चले। मनोहर भूमि का अवलोकन करते हुए हमलोग चित्रकूट से चार मील के लगभग भरतकूप नामक तीर्थ को जा पहुंचे। इसी बृहत् कूप में भरतमिलाप के समय श्रीवशिष्ठ जी की आज्ञानुसार कैकेयीनन्दन ने सम्पूर्ण तीर्थ के जल को छोड़ा था। इस स्थान पर हमलोग मध्याह्न काल के अवसर पर पहुंचे। स्नान पूजा के बाद भोजन विश्राम किया तत्पश्चात चित्रकूट की तरफ परावृत हुए।

चित्रकूट में ४ बजे दिन को पहुंच गये। कतिपय मन्दिरों को देखा। कविवर गोस्वामी तुलसीदासजी के मन्दिर अथवा आश्रम को देखकर जो आनन्द प्राप्त हुआ उसे मेरी तुच्छ लेखनी लिखने में असमर्थ है। जिसके नाममात्र के श्रवण करने से कर्ण असीम सुख प्राप्त करते हैं, हृदय आह्लादित होजाता है, तथा समस्त शरीर में आनन्द प्रवाह उमड़ पड़ता है। क्या उस महात्मा के निवासाश्रम को देखकर ये चंचल नेत्र तृप्ति साधन नहीं कर सकते। क्या इन्हें आनन्द-वाष्प परिपूर्ण न होना पड़ेगा? पाठकगण आप लोग स्वंयं विचार कर उत्तर दीजिये। यह वही कविशिरोमणि महात्मा तुलसीदास का कुछ दिनों के लिए निवासस्थान, अथवा योग-स्थान वा अध्ययन-स्थान था जिन्होंने अपनी प्रवल लेखनी की शक्ति से सर्वदा के लिए अपना नाम प्रातःस्मरणीय बना रक्खा है। जिन्होंने

केवल भारतवर्ष ही में नहीं किन्तु सारे संसार में अपनी कीर्त्ति को अटल तथा स्मरणीय बना दिया है। लेखविस्तार के भय से हम इस महात्मा की अधिक प्रशंसा नहीं कर सकते परन्तु यह अवश्य कहेंगे कि समस्त हिन्दू जाति अथवा आर्य जाति इस महात्मा की ऋणी हो चुकी है और ऋण ऐसा है कि जिसका चुकाना भी सर्वथा असम्भव है। जब हम यह देखते हैं कि इङ्गलैण्ड देश में सहस्रों पुरुष, स्त्री महाकवि शेक्सपियर, मिल्टन, सर वाल्टर स्काट तथा अन्य कविवरों के निवासाश्रम, अध्ययनशाला तथा पुस्तकालय को देखने के लिए प्रतिदिवस प्रति मास और प्रतिवर्ष धावा करते हैं तो क्या हम यह यथान्याय कहने का दावा कर सकते हैं कि इस कविवर ने हम लोगों के साथ जितना उपकार किया है उसके लिए हमलोग सम्यक् प्रत्युपकार करते हैं, कदापि नहीं। हम में वह श्रद्धा, वह भक्ति तथा वह गाढ़ प्रेम नहीं है जो पाश्चात्य देश के विद्वानों के हृदय में उनके कविश्रेष्ठों के प्रति वर्तमान है।

चित्रकूट से १० कोस की दूरी पर मंदाकिनी के तट पर राजापुर नामक ग्राम भी स्थित है। यही ग्राम उपर्युक्त कविशिरोमणि का जन्मस्थान है। समय संकीर्णता के कारण हम लोग वहां तक नहीं जा सके और तीसरे दिन सायंकाल को अपनी सम्पूर्ण यात्रा को समाप्त करके ७ बजे के समय हमलोगों ने चित्रकूट से बिदा होकर स्टेशन की तरफ प्रस्थान किया। असबाब लेचलने के लिए हम लोगों ने एक बैलगाड़ी भी ठीक कर लिया था। स्टेशन पर दस बजे के लगभग आपहुंचे। उसदिन रात को भी भीड़ बहुत थी। यात्रीगण इधर उधर टकरा रहे थे। गाड़ी में प्रवेश पाने की आशा किसी को न थी। सब के सब अपनी २ युक्ति लड़ा रहे थे। हम लोग स्नान पान के पश्चात् इधर उधर घूम रहे थे कि इतने में १२ बजे के समय निरन्तर सीटी से कान फाड़ती हुई और धक धक करती हुई रेलगाड़ी आ पहुंची। टिकट तो किसी प्रकार लेलिया था फिर क्या करना था झटपट असबाब लेकर (क्योंकि कुलियों की महंगी उस दिन अधिक थी) दौड़-धूप कर और कूदफाँद कर गाड़ी में जा सवार हुए। यात्री अधिक थे, जिसने जहां जगह पाई वह वहीं घुस गया, तिस पर भी बहुतेरे बेचारे यात्री रातकी ठंढी हवा खानेके लिए वहां रहही गये। यह तो हुआ, गाड़ी ने भी अपनी क्रूरता का अच्छा परिचय दिया। जो कुछ यात्री चटपट मिल सके उन्हें लेकर आगे चली। फिर क्या पूछना है मानिकपुर होते हुए हमलोग पांचवें दिन के प्रातःकाल को प्रयाग के स्टेशन पर ५ बजे आपहुंचे और तुरन्त हम लोगों ने बोर्डिंग-हाउस का रास्ता लिया।

प्रिय पाठकवृन्द! अब शीघ्र ही मैं संक्षेप में अपने कुछ अभिप्राय को प्रकट करने के पश्चात् अपनी लेखनी को विश्राम दूंगा। इस लेख के लिखने का अभिप्राय यही है कि भारतवर्ष में यात्रा-विस्तार की नितान्त आवश्यकता है। प्राचीन स्थानों को देखने से हमारे हृदय में जो पूर्वज-प्रेम तथा ऋषि-भक्ति उत्पन्न होती है वह अकथनीय है। मुझे आशा है कि यदि इस लेख में कुछ त्रुटि रह गई हो तो आप लोग अवश्य क्षमा कीजियेगा। क्योंकि विद्यालय के पठन कार्य से समय चुराकर यह लेख लिखा गया है। अतएव समय के अभाव से कोई कार्य पूर्ण रीति से नहीं होसकता। फिर यदि इस लेख से चित्रकूटगामियों को कुछ भी लाभ हुआ तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूंगा।

प्रेस एक्ट ।

> "The right to power is always derived from reason never from will. No one has a right to impose a law because he wills it; no one has a right to refuse submission to it because his will is opposed to it; the legitimacy of power rests in the conformity of its laws to the eternal reason—not in the will of the man who exercises, nor of him who submits to it"
>
> Guizot.

आज दिन प्रेस एक्ट की चारों ओर चर्चा हो रही है। सभी स्वतन्त्रता और न्याय के प्रेमियों को यह आशा थी कि प्रेस एक्ट की अवधि पूरी हो चुकी और अब भविष्य में इस स्वतन्त्रता के घातक और विचारशून्य एक्ट से भारतीय कानूनी किताब कलुषित न होगी किन्तु यह सब आशा दुराशा मात्र ठहरी। गवर्नमेंट की वर्तमान गठनप्रणाली और व्यवस्थापक सभाओं में गैरसरकारी सभ्यों की गणना के अनुसार यद्यपि लोगों को यह सहसा विश्वास नहीं होता था कि एक्ट रद्द हो जायगा किन्तु सरकारी सभ्यों की न्यायप्रियता पर भी लोगों का विश्वास था और वे समझते थे कि संसार में सबके पहले प्रतिनिधि-शासन-प्रणाली की नीव डालनेवाली जाति के सभ्य तथा प्रजानुरंजन में दत्तचित्त लार्ड हार्डिंज अवश्य ही "विचार" को सर्व प्रधान महत्व देंगे और ऐसी अवस्था में यह विचारशून्य एक्ट ज़रूर रद्द किया जायगा। यह कहा जाता है कि इङ्गलैंड ने भारतवासियों को स्वतन्त्रता देने ही की नियत से भारत के शासन की बागडोर अपने हाथ में ली थी। यह भी सम्भव है कि जिन राजनीतिज्ञों ने ऐसी उदारता प्रकट की थी उनलोगों ने केवल समयानुसार अपने प्रतिपक्षियों पर विजयलाभ करने ही के लिए ऐसे उदार वचन कह डाले थे। जो हो किन्तु इसमें सन्देह नहीं हो सकता कि बृटिश जाति स्वतन्त्रता के नाम पर जान देनेवाली जाति है, वह प्रथम स्वतन्त्रता को स्थान देकर तब अन्य किसी भाव को सामने आने देती है अर्थात् सबसे पहले वह 'विचार' को आसन देती है। पाठकों को यह बात भली प्रकार समझ लेनी चाहिये कि जो विचार पर स्थित है, जिसको प्रत्येक आत्मा अन्तःकरण से ठीक माने वही स्वतन्त्रता है। स्वतन्त्रता की हनन करनेवाली ज़बर्दस्ती और निरंकुशता है। इसी कारण से प्रतिनिधि-शासन-प्रणाली सबसे अच्छी गवर्नमेंट समझी जाती है क्योंकि उसकी कार्यवाही विचार पर स्थित रहती है। इसी मत को प्रतिपादन करने के लिए ग्यूज़ो ने कहा था कि "शासन की शक्ति का स्तम्भ विचार है न कि स्वेच्छा। किसी को यह अधिकार नहीं है कि वह कोई कानून बनावे केवल इसलिए कि उसकी वैसी ही इच्छा है, साथ ही साथ किसी को यह अधिकार भी नहीं है कि वह कोई कानून न माने इसलिए कि वह उसकी स्वेच्छा के विरुद्ध है। शक्ति की सच्चाई इसमें है कि उसके कानून "दैवीविचार" पर स्थित हों न कि शासक या शासित की इच्छा पर।" यह मानने में किसी को आपत्ति न होगी कि "प्रेस एक्ट" दैवी विचार (Divine Reason) पर स्थित नहीं है। विचार की तीरों के सामने उसका एक सेकन्ड भर भी खड़ा रह सकना असम्भव है। उसको कानून से बाहर निकाल फेंकना ही विचार की आज्ञा है किन्तु यह बड़े दुःख की बात है कि व्यवस्थापक कौंसिल में माननीय मि० बनर्जी का उप-प्रस्ताव भी स्वीकृत न हुआ। पाठकों को विदित है कि मि० बनर्जी केवल इतना ही चाहते थे कि शासन की कठोर आज्ञा को न्याय की कसौटी पर कसने के लिए जो

कोई प्रबन्ध नहीं रक्खा गया है वह रख दिया जाय। पाठकों को यह याद होगा कि माननीय मि० सिंह ने "प्रेस एक्ट" को सभा में उपस्थित करते समय कहा था—"We have put in all kinds of safeguards अर्थात् हर प्रकार की बचाव की शर्तें रखली गई हैं और इनमें एक शर्त यह भी थी कि ज़ब्ती होने पर हाईकोर्ट में अपील की जाय। सर हर्बर्ट रिज़ले ने कहा था कि यदि हाईकोर्ट यह समझेगी कि धारा ४ के अनुसार ज़ब्ती नहीं हो सकती तो वह ज़ब्ती को रद्द कर देगी। उन्होंने यह भी कहा था कि उनकी सम्मति में प्रेस एक्ट की कुठार तथा शासकों की मनमानी के दमन के लिए यह प्रतिशेधक उपाय बहुत उचित है। उपस्थित करते समय यह कहा गया था किन्तु पाठकों को विदित है कि बङ्गाल के चीफ़ जस्टिस ने यह सब कर सकने में अपनी असमर्थता प्रगट की है। भारतवासी केवल यह चाहते हैं कि जिन प्रतिशेधक उपायों के लिए वचन दिया गया था वे एक्ट में मौजूद नहीं हैं और वे रख दिये जायँ। मि० सिंह ने यह भी कहा था कि ज़ब्ती की आज्ञा देते समय गवर्नमेंट यह बतला देगी कि कौन से शब्द, लेख आदि आपत्तिजनक हैं किन्तु जैसा कि पाठकों को विदित है यह साधारणतः न किया जाता है और न चीफ जस्टिस के कथनानुसार हाईकोर्ट ऐसा करने के लिए गवर्नमेंट पर कोई दबाव ही डाल सकती है। इस तरह जो कुछ प्रतिशेधक उपाय बतलाये गये थे। वे वास्तव में नहीं हैं और सुरेन्द्र बाबू यही चाहते थे कि वे सब रख दिये जायँ। यह विचार की बात है, प्रस्ताव विचार और विवेक पर स्थित है और आज चाहे हमारे शासक इसको न मानें किन्तु एक दिन सत्य और विवेक की विजय होगी और होगी।

प्रेस एक्ट के पक्ष में सरकार तथा एङ्गलो-इण्डियन पत्रों की ओर से जो कुछ कहा जाता है वह यही है कि प्रेस एक्ट की कुठार तेज अवश्य है किन्तु जिस तरह से उसका प्रयोग किया जा रहा है, उसको देखकर यह कहना कि वह एक्ट रद्द करदिया जाय या उसमें कुछ परिवर्तन किया जाय उचित नहीं है। मतलब यह है कि प्रेस एक्ट का प्रयोग बड़े विचारपूर्वक किया जाता है। और इसलिए उससे भयभीत होने का कोई कारण नहीं है। इसके प्रमाण में यह कहा जाता है कि ४ वर्षों में इसका प्रयोग जिस तरह से किया गया है उसको देखकर लोगों को गवर्नमेंट पर विश्वास रखना चाहिये। हमें इस उक्ति से सर्वथा सन्तोष नहीं है। 'कामरेड' की बात न कहकर भी अभी बम्बई के "धर्म" की बात ताज़ी है। किन्तु थोड़ीदेर के लिए यह भी मानकर कि प्रेस एक्ट का प्रयोग अब तक बिलकुल उचित रीति से हुआ है, और उसमें किसी प्रकार से भी अंगुली उठाने की जगह नहीं है, हम प्रेस एक्ट का विरोध सिद्धान्त के अनुकूल करते हैं।

सरकारी पक्ष की सब बातें मानते हुए भी यह मानने में किसी को कोई आपत्ति न होगी कि एक्ट इस तरह से बना हुआ है कि जो कुछ लिखा जाता है उसे सरकार की कृपा ही समझनी चाहिये। आज सरकार उसे कठोरता से नहीं बरतती किन्तु वह कठोरता से बरता जा सकता है, उसके पंजे बहुत विस्तृत हैं और उससे बचने का कोई उपाय भी नहीं है। आज सरकार कड़ाई नहीं करती किन्तु यदि वह कल उसे कड़ाई से बरतने लगे तो उसके रोकने के लिए प्रजा के हाथ में क्या है? इसकी गारेन्टी कौन कर सकता है कि सब वाइसराय लार्ड हार्डिंज के सदृश ही होंगे? ऐसी अवस्था में आज न सही तो कल प्रेस एक्ट भीषण होजायगा। लार्ड हार्डिंज की गवर्नमेंट के पास कौन सा ऐसा विधान है जिससे वह

कह सके कि इस धारा में एक दिन सब स्वतंत्रलेखन बह न जायगा ।

"Liberties are nothing until they have become rights,–positive rights formally recognised and cousecrated. Rights, even when recognized, are nothing so long as they are not entreched with guarantees. And lastly gurantees are nothing so long as they are not maintained by forces independent of them in the limit of their rights. Convert liberties into rights, surround rights by guarantees entrust the keeping of these guarntees to forces capable of maintaining them—such are the successive steps in the progress towards a free Government."

Guizot.

केवल सरकार की दया से हम कोई कार्य करने पाते हैं, यह स्वतन्त्रता कुछ नहीं है जब तक कि वही स्वतन्त्रता हमारा वास्तविक अधिकार नहीं हो जाती और वे अधिकार भी वास्तव में अधिकार नहीं हैं जब तक कि उनके लिए हमारे पास कोई गारेन्टी नहीं है, जब तक कि हमारे पास वैसे उपाय नहीं हैं जिनसे कि उन अधिकारों को हम सदा कायम रख सकें। इतना सब होते हुए ये गरेन्टी भी कुछ नहीं है यदि इनके प्रयोग के लिए स्वतंत्ररक्षक नहीं है। (sufferance) दया, स्वतन्त्रता को अधिकार के रूप में परिवर्तित करो, इन अधिकारों की रक्षा के लिए चारों ओर से गारेन्टी रक्खी जायँ और अन्त में यह कि इन गारेन्टियों की रक्षा स्वतंत्र शक्तियों के हाथ में रहे, स्वतन्त्र शासन की ये सब सीढ़ियां हैं। ये ग्यूज़ो के वचन हैं। इसी के अनुसार हम यह नहीं चाहते कि हम जो कुछ लिखें वह गवर्नमेंट की कृपा पर निर्धारित रहे, हम चाहते हैं कि दया से प्राप्त स्वतंत्रता हमारी अधिकारप्राप्त स्वतंत्रता होजाय, उसकी रक्षा के लिए प्रतिशेधक उपाय रक्खे जायँ और उनका रक्षा का कार्य स्वतन्त्र शक्ति न्यायविभाग हाईकोर्ट के करकमलों में स्थापित रहे। जो कानून विचार और विवेक की कसौटी पर नहीं कसा जा सकता, जो कानून ब्यूरोक्रेसी की स्वेच्छा पर निर्धारित है, उस कानून से हम अपना गला नहीं घुटवाना चाहते क्या हम आशा करें कि महोदय लार्ड हार्डिंज का ध्यान इस ओर आकर्षित होगा।

'हम आह भी करते हैं तो
हो जाते हैं बदनाम।
वो क़त्ल भी करते हैं तो
चर्चा नहीं होती॥"

दूसरी बात प्रेस एक्ट के सम्बन्ध में जो विचारणीय है वह यह है कि उसका प्रयोग भी एक प्रकार से भेदभाव की दृष्टि से किया जाता है। गारे पत्र मनमानी जो चाहते हैं लिखा करते हैं। वे गवर्नमेंट के तथा हमलोगों के प्रति जैसी कडुई २ बातें लिखते हैं यह किसी से छिपा नहीं है किन्तु उनके सब कुछ लिखने पर भी प्रेस एक्ट का प्रयोग उनपर नहीं किया जाता। दिल्ली के राजधानी के होने के समय कलकत्ते के गोरे पत्रों ने लार्ड हार्डिंज पर जैसा आक्रमण किया था, उस तरह से तो क्या यदि उसका शतांश भी कोई देशी पत्र लिखता तो मालूम नहीं कितने वर्षों तक उसके सम्पादक को जेल की हवा खानी पड़ती किन्तु गोरे सम्पादक चैन कर रहे हैं; वे भारतवासियों को भी मनमाना कोसते हैं, गाली देते हैं किन्तु उनका कुछ नहीं होता। यह अन्याय दूर होना चाहिये, काले गोरों के लिए एक कानून होना चाहिये और जो कानून इन दोनों को भेदभाव की दृष्टि से देखे उसका कानूनी पुस्तक में रहना कभी उचित नहीं कहा जा सकता।

(अभ्युदय)

हमारा पुस्तकालय।

सिरोही राज्य का इतिहास–रचयिता–पं० श्री गौरीशङ्कर, हीराचन्द ओझा। मूल्य २) दो रुपये। ग्रन्थकर्त्ता के पास अजमेर में मिलेगा। पृष्ठ संख्या ४२८।

यह सिरोही राज्य का इतिहास बड़े खोज से लिखा गया है। इसमें प्रायः समस्त राजपूताने का कुछ २ हाल है अनेक प्रमाणों से यह सिद्ध किया गया है कि यहां के राजा अग्निवंशी हैं। हमारी समझ से टाड साहब के राजस्थान के बाद यदि कोई पुस्तक याथार्थिक राजपूतों का इतिहास है तो यही है। छपाई बड़े अक्षरों में बहुत साफ है और इसमें इण्डियन प्रेस की छपी हुई पांच तसवीरें भी हैं। हिन्दी में इतिहास की बड़ी न्यूनता है। आशा है कि ओझाजी इसी प्रकार और इतिहास लिखकर साहित्यसेवा करेंगे। पहले तीन प्रकरण में इस राज्य का प्राचीन इतिहास है और शेष पांच प्रकरणों में वर्तमान राज्य वंश के वर्णन के साथ वर्तमान महाराव श्री केसरीसिंह जी का फोटो सहित संक्षिप्त किन्तु उत्तम जीवनचरित्र भी है। महाराव साहब पूर्वीय विचारों के सङ्ग पाश्चात्य शिक्षा एवं अनुभव का भी पूर्ण ज्ञान रखते हैं। ईश्वर आप को तथा ओझा जी को चिरायु रक्खे।

वीर चरित्र माला नं० २–अङ्गराज कर्ण–सम्पादक व प्रकाशक उपाध्याय पं० इन्दुशर्म्मा भारद्वाज निरुक्तनिधि महाविद्यालय, ज्वालापुर। मूल्य ।)॥ साढ़े चार आने। पृष्ठ संख्या १८×६०।

यह पुस्तकमाला अच्छी जान पड़ती है। और इसके सम्पादक भी सुविज्ञ एवं सुलेखक जान पड़ते हैं। ऐसी पुस्तकों की बाल-हिन्दी भाषा में बड़ी आवश्यकता है। अभी हमें अपने भारत के प्राचीन इतिहास को पढ़कर शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। उपक्रम में वेदतीर्थ नरदेवशास्त्री जीने दो बड़े महत्व के वाक्य लिखे हैं—"किसी जाति को नष्ट करना हो तो उसके इतिहास को नष्ट कर दो! इसके विपरीत जाति को उठाना चाहो तो उसजाति में प्राचीन इतिहास का संचार करदो।" पुस्तक की भाषा में कुछ दोष नहीं है। यदि कुछ दोष है तो यह कि साधारण हिन्दी के पाठक कदाचित इस संस्कृतमयी भाषा को बखूबी न समझ सकें। छपाई शुद्ध नहीं है और बहुधा एकही पृष्ठ में पांच २ अशुद्धियाँ रह गई हैं। आशा है द्वितीय संस्करण में ये दोष न रहने पावे ऐसी चेष्टा की जायगी।

कर्ण के नाम से सभी परिचित हैं। जिसने महाभारत पढ़ा उसने कर्ण का भी कुछ इतिहास अवश्यही पढ़ा होगा। महाभारत के पाठकों में कर्ण की सच्चरित्रता के विषय में मतभेद है। यहां इस बात के वर्णन करने की आवश्यकता नहीं किन्तु इतना हम अवश्य कहेंगे कि उपाध्याय जी कर्ण के कुछ अधिक पक्षपाती हैं। कर्ण अत्यन्त क्रोधी था, घमंडी था और कुसंगति से चरित्र को बिगाड़ चुका था। यह सत्य है कि यदि प्रारम्भही में पांडवों को ज्ञात हो जाता कि कर्ण उनका बड़ा भाई है तो प्रायः महाभारत न होता। किन्तु जब कर्ण को कुन्ती और कृष्ण के द्वारा ज्ञात हो गया कि वह पांडवों का भाई है तब भी उसका उनसे लड़ना कुसंगति का प्रभाव नहीं तो क्या था? हम यह नहीं कहते कि कर्ण स्वयं कुपुरुष था। नहीं! सूर्यतनय कुपुरुष नहीं हो सकता। वह दानवीर था, वह रथिश्रेष्ट था, वह परम तेजोराशि था, उसका नाम सदा प्रख्यात रहेगा तथापि इस यशोगरिष्ठ का पूर्णचन्द्रमा कलङ्कहीन, तथा

मालिन्य रहित नहीं है। कहीं कहीं काले धब्बे दीख पड़ते हैं। किन्तु इनसे उसकी कीर्ति और भी बढ़गई है–'मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्मलक्ष्मीं तनोति।'

सभी हिन्दी प्रेमियों को इस पुस्तक से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये, लेखक महाशय का उत्साह बढ़ाना चाहिये और हिन्दी का उपकार करना चाहिये।

मानव-सन्तति-शास्त्र ! लेखक हीरालालजी जालोरी, मूल्य १) । पृष्ठ संख्या २४६ । मिलने का पता—मैनेजर खड्गविलास प्रेस, बांकीपुर।

इसग्रन्थ में लेखक ने यह दिखाया है कि उत्तम सन्तान किस प्रकार से उत्पन्न की जा सकती है । ग्रन्थ बड़े खोज से लिखा गया है। स्थल विशेष पर बराबर चित्र भी दिये गये हैं। काग़ज़ और छपाई आदि प्रशंसनीय है। पुस्तक गृहस्थ मात्र के संग्रह करने योग्य है।

पाक विधि—भोजन की वस्तुओं के बनाने की विधियों से भरी हुई यह एक छोटी सी पुस्तिका है। पुस्तिका अच्छी है तौभी नागरी प्रचारिणी कम्पनी की शक्ति, समय और सम्पत्ति के खर्च किये जाने के हेतु यह कार्य नहीं था यदि वह समय को सोचकर पुस्तकें प्रकाशित करे तो इतनी ही छोटी पैंफलेटों का प्रचार कर वह कई उपयोगी कार्य कर सकती है। विज्ञान हमारा प्राण है। "युवकों का रुधिर" देश के उत्साह की बाढ़ "महता का दुरुपयोग" मातृभाषा के उद्धार का पहला प्रयत्न भाषा की महानता, आदि कई विषय पैंफलेट प्रकाशित करने के हेतु पड़े हैं और इधर उधर की पुस्तकें प्रकाशित की जा रही हैं। इसकी क़ीमत ≈) है, गुमटी बाज़ार लोहार के पते से उक्त कम्पनी के पास मिल सकती है।

सूत्र-शिल्प शिक्षक—लेखक स्वर्गीय बाबू तोतारामजी साहब वकील हाईकोर्ट के पुत्र बाबू विपिन बिहारी लाल बी० ए० हैं। इसमें १५६ पृष्ठ और ११४ चित्र हैं। मिलने का पताः- भारतबन्धु प्रेस, अलीगढ़।

यह पुस्तक हमारे पास समालोचनार्थ आई है। वास्तव में यह पुस्तक स्त्री समाज के लिए बड़ी उपयोगी है। इसमें मोज़े, गुलूबन्द, बनियाइन आदि के बुनने की रीति बड़ी सरल हिन्दी में लिखकर समझाई गई है और उसकी क्रियायें चित्र द्वारा इतनी आसान करदी गई हैं कि जिससे लड़कियां बड़ी सुगमता से इन वस्तुओं को बुन सकती हैं। यह पुस्तक स्त्री पाठशालाओं में जारी करने के योग्य है। प्रत्येक गृहस्थ को इस पुस्तक की एक प्रति अपने घर में मंगा कर अवश्य रखनी चाहिये।

गंगाभरण—रचयिता कविवर लेखराज जी। प्रकाशक उक्त कविवर के पौत्र श्रीयुत कृष्ण विहारी मिश्र गन्धौली। मूल्य ।=) प्रकाशक महोदय से प्राप्त होसकती है।

इस पुस्तक की उपयोगिता के विषय में तो हमें कुछ कहना नहीं है परन्तु इसमें विशेषता यह है कि लेखक ने इस पुस्तक में श्रीमती पतितपावनी श्रीगंगाजी की स्तुति के व्याज से अलंकार का अच्छा वर्णन किया है। इसके पाठ करने से पुण्य और पुरुषार्थ दोनों का लाभ होना स्वाभाविक है। विशेष हाल पुस्तक मंगाने पर मालूम होगा।

सोहंतत्वः—अनुवादक ज्वालादत्त शर्मा, मुरादाबाद। मूल्य ॥)

यह परमहंस श्री सोहंस्वामी जी की लिखी हुई बँगला पुस्तक का अनुवाद है। इसमें नवीन रीति से वेदान्त के सिद्धान्तों का प्रतिपादन

किया गया है। इस पुस्तक के देखने से मालूम होता है कि इसके मूल ग्रन्थ में निश्चय ही वेदान्त के विषय 'ब्रह्मोपलब्धि' और 'आत्मोपलब्धि' की मीमांसा अच्छी तरह की गई है। छपाई और सफाई सामान्य है, भाषा भी अच्छी नहीं है, इसमें बहुत से संस्कृत के निष्प्रयोजक शब्द भी भरे पड़े हैं और इतनी छोटीसी पुस्तक का मूल्य भी ॥) अधिक है।

पुस्तक मिलने का ठिकाना नहीं लिखा है सम्भवतः अनुवादक महाशय से ही प्राप्त हो सकती है।

विदूषक :—पुस्तक मिलने का पता नागरी प्रचारक लखनऊ। मूल्य ॥=)

प्रसिद्ध हिन्दी मासिक पत्र नागरी प्रचारक में निकलनेवाले शर्म्मा महाशय के हास्यपूर्ण लेखों का सङ्कलन करके यह ग्रन्थ रचा गया है। इसके २१ निबन्ध शिक्षापूर्ण और हास्यरस से परिपूरित हैं। इस प्रकार के निबन्ध हमारे हिन्दी साहित्य में बहुत कम दीख पड़ते हैं।

प्रहसन होने पर भी इसके निबन्ध उपदेशप्रद हैं यही विशेषता है। हम आशा करते हैं कि शर्म्मा जी अपनी इस शक्ति का और भी सदुपयोग करते रहेंगे और ऐसे २ ग्रन्थ निकाला करेंगे। प्रहसन लिखनेवाले इन निबन्धों को पढ़कर देख सकते हैं कि इस प्रकार की रचना में अश्लीलता लाये बिना भी काम चल सकता है।

स्वयं चिकित्सक—श्रीयुत डा० राधावल्लभ पाठक एल० एम० पी० का बनाया १) रुपये में पाठक एण्ड को० मथुरा से मिल सकता है।

इस पुस्तक में डाक्टर महाशय ने पहले शारीरिक शास्त्रोपयोगी विषयों का संग्रह किया है। इसके अनन्तर प्रसिद्ध रोगों का निदान, लक्षण और उपाय भलीभांति समझाया है। अनन्तर अङ्गरेज़ी डाक्टरों की अनुभूत औषधियों का गुण वर्णन कर स्वास्थ्यरक्षण का उपाय भी संक्षेप में बतलाया है।

इस पुस्तक की सम्पादनशैली भी अच्छी है। इस पुस्तक से सुगमता के साथ आरोग्य शास्त्र के मुख्य विषयों का ज्ञान होना सम्भव है। यद्यपि इसमें इसके निबन्ध विदेशी डाक्टरों का अनुसरण करते हैं तथापि इसके सर्वोपयोगी होने में ज़रा भी संशय नहीं है। ऐसे २ निबन्धों की वर्तमान समय में अधिक आवश्यकता है। अपना स्वास्थ्य और दीर्घजीवन चाहनेवालों को यह पुस्तक अवश्य मंगानी चाहिये।

साहित्य समालोचन।

मनोरञ्जन—इसका दूसरा वर्ष अभी हाल ही में आरम्भ हुआ है। पहला अङ्क बड़ी सजधज से निकला है। ऊपर तीन रंगों में छपा हुआ एक सुन्दर चित्र है, भीतर कुल मिलाकर नौ चित्र हैं। पढ़ने योग्य लेखों और कविताओं की संख्या ३५ है जिनके लेखक श्रीयुत मैथिलीशरण गुप्त, बाबू श्यामसुन्दर दास बी० ए०, पं० श्यामबिहारी मिश्र एम० ए०, पं० बदरीनाथ भट्ट बी० ए०, पं० बालकृष्ण भट्ट, मुन्शी देवी प्रसाद आदि सुप्रसिद्ध साहित्य सेवीगण हैं। इस वर्ष से इसका आकार बढ़कर 'मर्यादा' के समान हो गया है और मूल्य में केवल चार आने की वृद्धि की गई है। इस अङ्क में ८८ पेज हैं। यों तो सभी लेख इस संख्या के महत्वपूर्ण हुए हैं तथापि पं० सकल नारायण पाण्डेय का 'बिहार का प्राचीन गौरव' बाबू श्यामसुन्दर दास का 'हमारी लिपि' और 'कविविलहण' पर का लेख विशेष उल्लेख योग्य हैं।

पं० रूपनारायण पाण्डेय लिखित 'क्या समझें' नामक कविता बड़ी मर्मस्पर्शिनी है। बिहार से अब तक ऐसा बढ़िया मासिकपत्र नहीं निकला था, इसे निकालकर आरानिवासी पं० ईश्वरी प्रसाद जी ने अपने प्रान्त का एक बड़ा भारी अभाव दूर किया है, ईश्वर उन्हें क्रमशः सहायता दे।

प्रभा—भारों की प्रभा अब निकली है। कई अच्छे २ लेख इस संख्या में प्रकाशित हुए हैं। श्रीयुत माधव दास राम दासी का 'हमारी सहायता कौन करेगा?' शीर्षक लेख बड़ा उपयोगी और शिक्षाप्रद है। पं० रूपनारायण पाण्डेय की 'बन विहंगम' नाम की कविता बड़ी ही रसीली हुई है। प्रसन्नता का विषय है कि पाण्डेय जी की काव्यरचना दिनोंदिन सर्वप्रिय होती जाती है और वे अपनी कृति में अधिकाधिक सफलता भी लाभ कर रहे हैं। 'हिन्दू जाति की शारीरिक हीनता' 'कविवर लल्लू लाल जी' 'सामाजिक नेता' 'समालोचना और उससे साहित्य का लाभ' 'कुमारी कृष्ण' आदि इस संख्या के लेख अच्छे लेखों में हैं। प्रभा के विविध विचार अवश्य ही बड़े विचारपूर्वक लिखे जाते हैं। यदि यह नियमित समय पर प्रकाशित हुआ करे तो और भी अच्छी बात हो।

इन्दु—(दिसम्बर) इस संख्या से इसने चौथा वर्ष समाप्त किया। इन्दु अच्छे २ लेख छापता है। सौ पेजों में इसकी एक संख्या निकलती है। एक चित्र भो बराबर रहता है पर शायद कभी कोई सामयिक चित्र रहता हो। इतने बड़े आकार के पत्र में एक चित्र का रहना अच्छा नहीं मालूम होता। यदि चित्रों की संख्या बढ़ाई जाय तो अधिक सौन्दर्य आसकता है। वर्त्तमान संख्या में सन्तान शास्त्र' 'पुरातन पाटली पुत्रान्तर्गत नालन्दा' 'महात्मा बुद्ध की मृत्यु' ये लेख अच्छे हैं। कविताएँ न तो उतनी सरस हैं और न कुछ विशेषतापूर्ण। 'निदर्शन पर न्यायशास्त्री' यह उसी चर्खे का एक सूत है जो बहुत दिनों से इन्दु में चलाया जा रहा है। यद्यपि हम इस पत्र की अन्यान्य बातों को पसन्द करते हैं तथापि इसका भाषा-दोष बहुत खटकता है। अति साधारण शब्दों के लिंग में भी गड़बड़ रहती है। पहले बिहारी भाषा की ही लोग खिल्ली उड़ाया करते थे पर 'इन्दु' की भाषा उससे कम हास्यजनक नहीं। हम लोग कभी इन्दु की भाषा की सराहना नहीं कर सकते। आशा है कि इन्दु के सम्पादक महोदय इस ओर ध्यान देंगे और यह न समझेंगे कि ये विचार उनके उस लेख के प्रत्युत्तर में हैं जिसका शीर्षक 'हिन्दी भाषा की एक मासिक पत्रिका' था।

बङ्गला।

गृहस्थ (माघ)—बङ्गला मासिकपत्रों में गृहस्थ भी एक अपूर्व ही चीज़ है। इसके लेख बड़ोही उच्चकोटि के होते हैं। इसका आलोचन-स्तम्भ बड़ीही खोज और विचार के साथ लिखा जाता है। अन्यान्य बङ्गला मासिकपत्रों की भांति इसमें गल्प आदि की भरमार नहीं रहती। लेखों की गंभीरता और प्रौढ़ता की ही ओर इसके सम्पादक का ध्यान रहता है। इस अङ्क में 'प्रतिभाविकाश का सुयोग' 'कवि कालिदास का वासभवन' 'ओलकचूर चाप' 'संकर जाति' आदि कई अच्छे लेख प्रकाशित हुए हैं। वह दिन क्या ही अच्छा होगा जब ऐसे ही बढ़िया २ मासिकपत्र हिन्दी में प्रकाशित होने लगेंगे और साथ हो सस्ते दामों में प्राप्त हो सकेंगे।

वसन्त की-बधाई।

[लेखक—भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के पूज्य पिता
कविशिरोमणि बाबू गिरिधरदासजी।]

फूलैगो अनार कचनार कुन्द कुञ्जन में।
फूलैगो सिरीस त्योंही पनसहु फूलैगो॥
फूलैगी कियारिन में नर्गिस निवारीतिमि।
सेमर पलास फूलि आगि सम तूलैगो॥
फूलैगी चमेली मञ्जु मालती महंकदार।
फूलैगो गुलाब जाहि देखि चित्त भूलैगो॥
हम ऋतुराज को बधाई देत आसा लाय।
बिरवा हमारे हू मनोरथ को फूलैगो॥ १॥

किंसुक न फूले ये है मानिक समूह फूल्यो।
मल्लिका नहीं ये मोतीवृन्द अनुमानिये॥
कुसुम नहीं हैं ये प्रवाल गिरिधरदास।
पल्लव नहीं हैं इन्हैं पन्ना पहिचानिये॥
फूले ना बसन्त पुखराज हैं न कुन्द यह।
हीरा ये न नाफरमा नीलमनि जानिये॥
गोविन्द गुनाकर न है ये कुसुमाकर।
हमारी जान आयो रतनाकर हि जानिये॥२॥

कोकिल न बोलैं ये बोलैं मुनिगण संत।
शीतल न वायु है सुभाव शुभ मन को॥
बौरे नहिं आम रामनाम रस बौरे साधु।
बन नहिं फूल्यो है मनोरथ सबन को॥
गिरिधरदास सालिगराम की सिला हैं सुनो।
नहीं नीरजातन पै बास मधुकर को॥
एरी ना बसन्त यह सकल ऋतु कन्त हेरी।
भक्तनसमाज में महन्त सन्तगण को॥ ३॥

सम्पादकीय टिप्पणियां ।

इन्सपेक्टर की हत्या ।

कलकत्ते में इधर फिर एक पुलिस इन्स्पेक्टर नपेन्द्रनाथ घोष की हत्या हुई। हत्या करनेवाला पकड़ा गया है। वह अपने को निर्दोष बतलाता है। इस दुर्घटना के सम्बन्ध में एक बात यह भी देखने में आई कि हत्या करनेवाले को पकड़ने में जनसमुदाय ने पुलीस की अच्छी सहायता की। इन हत्याओं को कोई भी अच्छा नहीं समझता और इनको बन्द करने का एक मात्र उपाय सर्वसाधारण को अपनाना है न कि कठोर कानून पास करना।

* * *

वेतनभोगी वाइस चांसलर ।

जनसाधारण के मत का मान कहां तक होता है उसी को मानो एक बार फिर प्रत्यक्ष करने के लिए यह निर्णय हो गया है कि अब कलकत्ता विश्वविद्यालय का "वाइस-चान्सलर" कोई वेतनभोगी मनुष्य होगा। पाठकों को विदित होगा कि सभी सम्प्रदाय के लोगों ने इसके विरुद्ध अपनी २ आवाज़ें उठाई थीं। इसके बतलाने की कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती कि क्यों। अपना भाई हमारी शिक्षा का जो बन्दोबस्त कर सकता है वह ग़ैर मनुष्य कभी नहीं कर सकता। बङ्गाली भाइयों की उन्नति के प्रधान कारणों में यह भी एक कारण है कि विश्वविद्यालय के वाइस-चान्सलर सर गुरुदास बनर्जी, सर आशुतोष मुकर्जी आदि सज्जन रहे हैं। इन लोगों के न होते "बङ्गला" की विश्वविद्यालय में पूछ होती कि नहीं इसमें भी सन्देह है और डाक्टर राय, डाक्टर सील आदि कालेज पास करके कुछ वास्तविक काम करने में समर्थ होते कि नहीं यह भी सन्देहजनक है। आरम्भ में ग़ैर मनुष्य अवश्य लाभ पहुंचा सकते हैं किन्तु अन्ततोगत्वा यह निर्विवाद सत्य है कि एक भाई ही अपने भाई की शिक्षा का समुचित और वास्तविक प्रबन्ध कर सकता है। हमारे कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि किसी ग़ैर मनुष्य ने आज तक हम लोगों की शिक्षा का प्रबन्ध नहीं किया है। हम कृतघ्न नहीं हैं, किन्तु अवधि सब बातों की होती है और अपनी शिक्षा की स्थिति को ध्यान में रखते हुए हम यह कहने को बाध्य होते हैं कि अब वास्तविक शिक्षा के लिए यह बहुत आवश्यक है कि उसकी लगाम हमारे ही भाई के हाथ रहे। इसके सिवाय हमारा कार्य बहुत योग्यता के साथ बिना कुछ खर्च के सम्पादित होता था। अब छत्तीस, चालीस हज़ार रुपया इसके लिए हमें देना होगा। जिस देश में अनेकों लाभदायक कार्यों के लिए रुपये की कमी का रोना हो, उस देश में यह अपव्यय नहीं शोभा देता। इसी ४०,०००) वार्षिक से हम एक अच्छा स्कूल चला सकते हैं जहां सहस्रों विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर अपना जीवन सुफल कर सकते हैं। यही नहीं, जब तक पद वेतनरहित रहा तब तक तो न केवल यह सम्भव ही रहा वरन् अधिकतर इसकी संभावना रहती थी कि कोई भाई ही इस अवैतनिक कार्य को करेगा किन्तु इतने वेतन के हो जाने से यह निश्चितसा प्रतीत होता है कि अब इस पदप्राप्ति का स्वप्न देखना भी भारतवासियों के लिए दुष्कर है। शिक्षा धीरे धीरे सरकारी हो गई, वह जनसमुदाय के हाथ आवेगी कि नहीं इसे पाठक स्वयम् सोचलें।

* * *

झूठ का रङ्ग काला नहीं है ।

विलायत के स्कूलों में जो किताबें पढ़ाई जाती हैं उनमें कहीं२ भारत-सम्बन्धी भी कुछ

बातें रहा करती हैं। इनमें से एक पुस्तक "जियाग्रफी रीडर" के नाम से प्रसिद्ध है। यह "ब्लैकी एएड सन्स" की छापी हुई है। इसमें बहुत सी बातें ऐसी हैं जिन्हें पढ़कर क्रोध और हँसी भी आती है। एक दो बातों को उद्धृत कर हम पाठकों को दिखाना चाहते हैं कि "अङ्गरेज़ों" को बालकपन ही से कैसी २ बातें सिखाई जाती हैं। एक स्थान पर पुस्तक में लिखा है "What makes our magistrates respected, above all, is that the natives know they will tell the truth and try to do justice. Lying is the weak point of Easter nations........."

अर्थात् "हमारे मेजिस्ट्रेटों का अधिक मान इसलिए होता है क्योंकि भारतवासी यह जानते हैं कि वे सत्य बोलेंगे और न्याय करेंगे। झूठ बोलना पूर्वीय जातियों की एक कमज़ोरी है........."

पाठको, आपने देखा! मालूम पड़ता है कि पश्चिमीय देश के निवासियों को अल्लाहताला से सत्य बोलने का पट्टा मिल गया है। साथ ही साथ एक अङ्गरेज़ की उक्ति भी हम यहां पर उद्धृत कर देना आवश्यक समझते हैं। मि० टम्पिल रेप्टन के हेड मास्टर ने एक जगह अभी ही लिखा है कि "When an Englishman talks about telling the truth, he only means saying what he thinks, which very likely is not the truth at all." अर्थात् "जब कि कोई अङ्गरेज़ कहता है कि 'हम सच कहते हैं' उस समय वह अपने विचारानुकूल कुछ कहता है जो वास्तव में सत्य के बिलकुल विपरीत होता है"!

भाई दूसरे भाई को अच्छी तरह जान सकता है और उसके सम्बन्ध में वह जो कुछ कहे वह ठीक भी हो सकता है किन्तु एक ग़ैर मनुष्य का ग़ैर मनुष्य को दूर रहते हुए भली प्रकार से जान लेना कठिन है और ऐसी अवस्था में उसका अनुमान भी ग़लत हो सकता है।

कारण है।

भारतवासियों को बाहर निकाल भगाने का प्रायः सभी देशों में आन्दोलन हो रहा है। आस्ट्रेलिया में वे घुस नहीं सकते, वह तो सफेद चमड़ेवालों के लिए सुरक्षित है; केनाडा में उनके लिए स्थान नहीं क्योंकि वहां रहकर वे जातिपांति को भूल जाते हैं और स्वतन्त्र रहने में क्या मज़ा है यह जान लेते हैं, अनन्तर भारत में लौट आने पर स्वतंत्र होने की चेष्टा करते हैं और इस प्रकार देश में असन्तोष फैलाकर बृटिश शासकों को चिन्तित करते हैं, दक्षिण अफ्रीका में उनके लिए स्थान नहीं है क्योंकि वे कम खर्च हैं, थोड़े मुनाफे पर माल बेचकर अमीर होते हैं, वहांवाले उनके व्यवहार से प्रसन्न होकर उन्हींसे माल ख़रीदते हैं और इस प्रकार वे फज़ूलखर्च अङ्गरेज़ व्यवसायियों के पैदा करने के मार्ग में कएटक हैं। सभी देशों में उनके न रहने पाने के कारण हैं। अब प्रजासत्ताक राज्य एमेरिका के प्रेसिडेन्ट मि० वुडरो विल्सन ने भी "हिन्दुओं" को निकाल बाहर करने का प्रस्ताव किया है। यह क्यों? क्योंकि वे जापानियों को बाहर नहीं निकाल सकते। जापानियों के साथ फौज है, और उनका एक राष्ट्र है। हिन्दुओं के साथ फौज नहीं, उनका कोई राष्ट्र नहीं, और सबके ऊपर क्यों कि उनका उनके घर ही में आदर नहीं है, क्यों कि उनको सम्राट् ही के राज्य में उनके लिए स्थान नहीं है।

अभी यह नहीं विदित हुआ है कि हिन्दू विद्यार्थी एमेरिका में रहने पावेंगे कि नहीं? यदि प्रेसीडेन्ट ने यह भी आज्ञा दे दी तो और भी कठिनाई सामने उपस्थित होगी।

हमारी पिछली संख्या।

पिछली संख्या हमारी अनुपस्थिति में छपी थी इस कारण से उसमें कई एक आवश्यक बातें न छापी जा सकीं। आशा है पाठकगण इसके लिए हमें क्षमा प्रदान करेंगे। सबसे प्रथम आवश्यक बात जो हमें कहनी है वह यह है कि मि० जी० ए० नटेसन माननीय मि० शास्त्री तथा माननीय मि० गोखले के नाम से जो लेख प्रकाशित हुए हैं वे "मर्यादा" के लिए नहीं लिखे गये थे। अङ्गरेज़ी लेखों या स्पीचों से अनुवादित कर ये लेख प्रकाशित किये गये थे।

दूसरी आवश्यक बात मुख्य चित्र के सम्बन्ध में है। चित्र में दर्शाया गया है कि एक अत्याचारी बर्बर जाति का प्रतिनिधि राक्षस रावण सभ्यता के शिखर पर पहुंची हुई जाति की एक प्रतिनिधि सीता पर, जो कि भाग्य के फेर से उस समय निःसहाय और उसके हाथ में है, पैशाचिक बल के भरोसे अत्याचार करने को उद्यत है। मंदोदरी रावण को बरजना चाहती है किन्तु वह स्त्री है, उसे शक्ति नहीं और वह केवल वचनों ही से राक्षस को मना करती है।

* * *

अगली संख्या।

फरवरी मास की संख्या स्त्रियों की एक विशेष संख्या होगी। समस्त लेख स्त्रियों द्वारा ही लिखे हुए होंगे। देश के सभी प्रान्तों की शिक्षित ललनाओं ने अपनी सहानुभूति प्रगट की है और लेख भेजने के लिए वचन भी दिये हैं। अभी तक मिसेज़ बीसेन्ट, श्रीमता काशीबाई कनिटकर, मिसेज़ हंडू, मिस चैटर्जी आदि विदुषियों के लेख आ चुके हैं। संख्या को शीघ्रही प्रकाशित करने के लिए प्रबन्ध किया जारहा है। अभी बङ्गाल और पंजाब प्रान्त से लेख नहीं आये हैं किन्तु उनके शीघ्र ही पहुंचने की आशा है। इस संख्या का सम्पादन भार भी श्रीमती उमादेवी नेहरू ने कृपाकरके अपने ऊपर लेलिया है। हम आशा करते हैं कि पाठकगण इस संख्या को देखकर प्रसन्न होंगे।

हमें खेद है कि कई कारणों से वर्तमान संख्या के लेखों और प्रूफों को हम नहीं देख सके। इसी कारण इसमें अनेक अशुद्धियां रह गई हैं। भविष्य में ऐसा नहीं होगा और हमें आशा है कि पाठक और लेखकगण इसके लिए हमें क्षमा करेंगे।

* * *

अब भी अँधेरे में हैं।

भाटिया समाज में "विदेशयात्रा" के प्रश्न पर मतविरोध हो गया है। कुछ लोग विदेश से लौटे हैं, उन्हें जाति में सम्मिलित करने तथा न करने पर विचार होने लगा। लकीर के फकीर घेरे के बाहर नहीं निकलना चाहते। न्यायपरायण लोग जिन्हें आज दिन लोग सुधारक कहते हैं, अलग हो गये। अब बिरादरी में तड़बन्दी हो गई है। शास्त्रानुकूल विदेशयात्रा को धर्मसङ्गत माननेवाले प्रायः १५० एक ओर हैं दूसरी ओर शास्त्रानुमोदित विदेशयात्रा को धर्मविरुद्ध माननेवाले लकीर के फकीर हैं। मालूम नहीं इतना प्रकाश होते हुए भी ये अँधेरे में कैसे रह गये हैं? जब आज पर्यन्त भारतवासी विदेशयात्रा के प्रश्न को, जो कि सर्वथा धर्मसङ्गत है, नहीं हल कर पाये हैं, तो फिर वे कब और कैसे उन्नति करेंगे यह सोचने की बात है।

* * *

प्रेस एक्ट का शिकार।

प्रेस एक्ट अपने विस्तृत पंजे का सबूत देता ही रहता है। पाठकों को विदित है कि अभी कुछ ही दिन पहले "ज़मीन्दार" की २,०००)

की ज़मानत ज़ब्त हो चुकी है। ज़मानत ज़ब्त होने पर उसको १०,०००) की ज़मानत और जमा करने की आज्ञा दीगई थी। "ज़मीन्दार" के प्रेमियोंने १०,०००) की ज़मानत जमा करदी। अब गवर्नमेंट ने १०,०००) की ज़मानत भी ज़ब्त करली है साथ ही साथ प्रेस की ज़ब्ती के लिए भी हुक्म दे दिया गया है। पंजाब गवर्नमेंट ने "ज़मीन्दार" के ३ लेखों को आपत्तिजनक बतलाया है। हम लेखों के सम्बन्ध में कुछ नहीं कह सकते कि वास्तव में वे कैसे हैं। यह निर्विवाद बात है कि प्रेस एक्ट के पंजे से कोई लेख बच ही नहीं सकता। ऐसी स्थिति में कोई लेख कैसा है इस पर सोच विचार करना व्यर्थ है। जबतक प्रेस एक्ट रहेगा, पत्रों का बन्द होना एक साधारण बात है। "ज़मीन्दार" के विचारों से हम सहमत नहीं हैं किन्तु हम चाहते हैं कि मुक़द्दमा कम से कम परीक्षा के लिए चीफ कोर्ट में अवश्य चलाया जाय। कलकत्ता हाईकोर्ट के सामने विचार हो चुका है और वहां के माननीय जजों की राय भी प्रकट हो चुकी है। अब देखना है कि पंजाब की चीफकोर्ट क्या निर्णय करती है। "ज़मीन्दार" अपने प्रेमियों को कितना प्यारा है उसका इससे बढ़कर कौन सा सबूत होगा कि सुना जाता है कि फिर से १०,०००) जमाकर पत्र निकालने के लिए रुपया एकत्र हो गया है! कितना ज़ब्त हो चुका यह भी ध्यान में रखने की बात है। क्या हिन्दी के पत्र के लिए भी कभी ऐसा हो सकता है?

हुलिया मिलती है इसलिए चोर हो।

'गजाधरप्रसाद' स्थानीय कायस्थ पाठशाला में पढ़ता है। इसकी उम्र २० वर्ष की है। १ फरवरी, रविवार को वह एक अपने साथी के बहकाने पर, जो कि एक पुलिस कान्सटेबिल का बेटा है, घर से कुछ दूर चला आया। साथी एक आदमी को बुलाने का बहाना कर और शीघ्र आने का वचन देकर चला गया। इतने ही में एक कान्सटेबिल ने आकर उसे गिरफ़्तार कर लिया। लड़के के मामा श्यामलाल को सन्ध्या समय पता चला कि उनका भानजा हवालात में है। उन्होंने जाकर एक अपने मित्र ला० नौरंगीलाल से ५००) की ज़मानत कराई; तब लड़के को हवालात से रिहाई मिली। बहुत पूछने पर भी यह न मालूम हुआ कि लड़का क्यों गिरफ़्तार किया गया? जहां तक विदित हुआ है उससे मालूम होता है कि उसी हुलिया के एक युवक ने मुगेर पोस्टआफिस से ५००) चुराया है। हुलिया मिलने के कारण गजाधरप्रसाद को ५ घंटे हवालात भोगनी पड़ी। इसपर टीका टिप्पणी करना हम व्यर्थ समझते हैं। यह निस्सन्देह पुलिस की असीम शक्ति का एक नमूना है।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग, में बद्रीप्रसाद पाण्डेय के प्रबन्ध से छपकर प्रकाशित हुई।

निवेदन ।

खेद से कहना पड़ता है कि इस विशेष संख्या के निकालने में अधिक देर हो गई। कारण यह है कि प्रथम तो लेख विलम्ब से आये, दूसरे उनके अंगरेज़ी, उर्दू, गुजराती, बंगला, मराठी आदि भाषाओं में होने के कारण से अनुवाद कराने पड़े। अनुवाद कराने में बहुत समय लगा। आशा है कि इस देर के लिए पाठक तथा पाठिका महोदया हमें क्षमा प्रदान करेंगी। इस विशेष संख्या में अनेक बातों का विशेष ध्यान रखा गया है। इसमें हमने औरतों की कहानी औरतों की ज़बानी कहलवाई है, इसलिए कि प्रथम तो औरतों को इसका अवसर मिलेगा और इच्छा पैदा होगी दूसरे यह कि औरतों की कही हुई बातों का स्वभावतः औरतों पर अधिक प्रभाव पड़ेगा और अन्तिम कारण, जो कि वास्तव में भी अन्तिम नहीं है, यह है कि इससे हमारे मर्दों को हमारी भीतरी हालत से जानकारी होगी।

सामयिक राजनैतिक बातें विशेष रीति से नहीं रखी गई हैं क्योंकि वे साधारणतः "मर्यादा" में रहती हैं और हम इस संख्या को एक स्थायी महत्व की चीज़ बनाना चाहती थीं।

इस संख्या में हमने जानकर ऐसे लेख नहीं प्रकाशित किये जिनमें औरतों औरतों में, और औरतों मरदों में मतभेद हो सकता है। उदाहरणतः "स्त्रियों के स्वत्व", "स्त्रियों का वोट," "स्त्रियों की आर्थिक स्वतंत्रता," "विवाह-समस्या," आदि। यूरोप के समाज में इन विषयों के वादविवाद ने एक बड़ी और भयानक हलचल पैदा कर दी है। वहां मतभेद से बढ़ते बढ़ते मनमोटाव तक की नौबत पहुंच गई है। मतभेद को हम बुरा नहीं समझतीं हैं और न हम इस किस्म के मनमोटाव से डरती ही हैं। हम तो इनको जागृति और जीवन का चिह्न समझतीं हैं। अगर हमारा इरादा कुछ अरसे बाद एक दूसरी विशेष संख्या इन रोचक और वादग्रस्त विषयों के सम्बन्ध में निकालने का न होता तो हमने किसी न किसी तरह कुछ जगह उनको इस ही अङ्क में दे दी होती।

वर्तमान संख्या में बहुत सी ग़लतियां और त्रुटियां रह गई हैं। हम आशा करती हैं कि हमारे पाठक पाठिका उनके लिए हमें क्षमा करेंगी।

उमा नेहरू।

मर्यादा।

सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग ७] फरवरी सन् १९१४—फाल्गुन। [संख्या ४

भारतीय स्त्रियों का उत्थान कैसे हो सकता है।

[लेखिका—मिसेज़ एनी बीसेन्ट।]

एकाएक यह कह देना कदाचित कुछ असम्बद्ध मालूम होगा कि भारतीय स्त्रियों की उन्नति का एक वास्तविक उपाय यह है कि उनके मार्ग में जो अप्राकृतिक बाधाएं पड़ी हुई हैं वे दूर करदी जायँ और उन्हें स्वयं अपनी उन्नति करने का अवसर दिया जाय। आधुनिक समय में बहुत कम लोग इस बात को अनुभव करते हैं कि भारतीय धार्मिक और राजनैतिक इतिहासों में भारतीय स्त्रियों ने कितना बड़ा भाग लिया था। उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक भारत की कितनी ही प्रसिद्ध स्त्रियों के नाम गिनाये जा सकते हैं, और यह एक विचित्र संयोग की बात है कि ज्यों ज्यों यहां बृटिश राज का अधिक प्रसार होता गया त्यों त्यों लोकसेवा के क्षेत्र से भारतीय स्त्रियों का लोप होता गया! यह एक अत्यन्त आश्चर्यकारक घटना है, तथापि यह निस्सन्देह अपूर्वचिन्तित और अवांछित है। इसका कारण अंशतः यह हो सकता है कि पुरुषों को तो अङ्गरेज़ी प्रणाली से शिक्षा दी गई और इसके साथही साथ स्त्रियों ने प्रायः अपनी पुरानी शिक्षा खो दी और नई से भी उन्होंने कोई विशेष लाभ नहीं उठाया। वर्तमान समय में भी भारतीय स्त्रियों के स्वभाव से धीरता, आत्मत्याग, और लोकसेवा के गुण—जिन गुणों ने भूतकाल में भारतीय स्त्रियों को प्रसिद्ध किया—लोप नहीं होगये हैं। इसका प्रमाण हमें दक्षिण एफ्रिका में मिल रहा है, जहाँ भारतीय स्त्रियां अपने पतियों और पुत्रों के साथ जेलों की कुल यातनाओं का सामना कर रही हैं। यह क्यों? क्योंकि पुरुषों के जो सार्वजनिक हित और आकांक्षाएँ हैं उनमें स्त्रियों का भी हिस्सा है। इसी लिए विरक्ति के

समय प्रत्येक कठिनाई के सहने में स्त्रियां पुरुषों का साथ दे रही हैं। भारतीय स्त्रियों के हृदयों में प्राचीन भाव (साहस) अब भी छिपा हुआ पड़ा है और यदि पुरुष उसका आह्वान करें तो वह जागृत और तत्पर हो सकता है। स्त्रियों को सुविधा और अवसर दो और फिर देखलो कि मातृभूमि को अपनी पुत्रियों के कारण लज्जित होने की कुछ आवश्यकता न रह जायगी। यदि और अधिक प्रमाण की आवश्यकता है तो उन वक्तृताओं को पढ़ लो जो द० एफ्रिका के उत्पीड़ितों के सम्बन्ध में यहां भारतीय स्त्रिया ने दी हैं। इनसे न केवल उनकी सामयिक अवगति ही प्रकट होती है वरन् इनकी एक एक पंक्ति से उत्साह और सहानुभूति की धारा बह रही है।

पिछले इतिहास पर क्षण भर दृष्टि डालने से ऊपर कही हुई बातें प्रमाणित होती हैं। प्राचीन समय में स्त्रियों के लिए दो मार्ग खुले थे; या तो वे साधारणतः पत्नी और माता होतीथीं, अथवा वे ब्रह्मवादिनी होकर मुक्ति प्राप्त करने के लिए तपस्वियों की तरह जीवन व्यतीत करती थीं या गृहस्थ जीवन समाप्त होने पर वे ब्रह्मज्ञान को प्राप्त करती थीं, जैसा कि मैत्रेयी ने याज्ञवल्क्य से सीखा था अथवा अपने पति के साथ वाणप्रस्थ आश्रम में प्रवेश कर सकती थीं। सार्वजनिक कार्यों में भी स्त्रियां भाग लेती थीं। देखो भरी राजसभा में, राजाओं और सेनापतियों के बीच में, गान्धारी ने अपने पुत्र को समझाया था। प्राचीन इतिहास को छोड़कर, जिनको आजकल बहुत लोग केवल किस्सा ही मानते हैं, हाल के समय में भी हमें प्रसिद्ध स्त्रियों के उदाहरण मिलते हैं। मेवाड़ की पद्मिनी की याद करो जिसने १२७५ ई० में अपने पति को कैद से छुड़ाया और पुरुषों के अन्तिम वार रणक्षेत्र में जाने पर समस्त स्त्रियों को लेकर अग्नि में भस्मीभूत होगई। १५३५ ई० की घटना का स्मरण करो जब उसी प्रसिद्ध नगर की राजमाता (जवाहर बाई) ने दीवाल की दरार में से अपनी सेना को निकालकर रणक्षेत्र में सैनिकों सहित अपनी जानदी। १५६६ ई० की बात सोचो जब एक वीर लड़के को छोड़कर सब सरदार मर चुके थे, उसकी माता ने उसे मृत्युसूचक केसरिया बाना पहिनाया और उसकी बालवधू के सहित हाथ में बरछा लेकर उसने रणक्षेत्र में जाकर अपने प्राण दिये। लड़के को अकेले इस लिए जाने नहीं दिया कि जिसमें उन्हें पीछे छोड़ जाने के ख़याल से उसके हृदय में निर्बलता न उत्पन्न हो जाय। अथवा ताराबाई, चान्दबीबी या इन्दौर की प्रसिद्ध रानी अहिल्याबाई का उदाहरण लो जो १८०५ ई० में मरीं। मातृभूमि की पुत्रियों ने कैसे कैसे कार्य किये इसको दिखलाने के लिए विस्तृत इतिहास पड़ा हुआ है; और इसीलिए मैं कहती हूं कि उनकी उन्नति का पहिला उपाय उनके पिताओं, पतियों और पुत्रों के हाथ में है। उनको अवसर दो।

दूसरी आवश्यकता उनकी यथेष्ट सहायता करने की है। पहिले शिक्षा का प्रबन्ध होना चाहिये। यह अत्यन्त आवश्यक है कि लड़कियों की शिक्षा का कार्य सर्वथा अपनी अधीनता में रहे और भारत की तीन प्रसिद्ध जातियां हिन्दू, मुसलमान और पारसी स्वयं शिक्षाप्रणाली को निश्चित करें—यद्यपि इसके निश्चय में जैनियों और सिक्खों की बात पर भी ध्यान देना होगा। भारतीय लड़कियों की शिक्षा का कार्य विदेशी मिशनरियों के हाथ में जाने देना भारतीय राष्ट्रीयता की आशा का नाश करना है और इसके परिणाम में निश्चय ही जो आध्यात्मिक पतन होगा उसकी बाबत मैं यहां कुछ नहीं कहती। मिशनरियों के प्रभाव से कैसी दुर्दशा उपस्थित हो सकती है इसकी चेतावनी हमें पंडिता रमाबाई की ख़राबी से अच्छी तरह मिलती है। उक्त विदुषी भारत में स्त्रियों की

शिक्षा की नेत्री हो सकती थी। वह अपने वंश और विद्वत्ता से नेतृत्व की अधिकारिणी थी किन्तु उसकी विक्रिया ने उन्नति के चक्र को २० वर्ष के लिए उलटा चला दिया और अब भी उसका उदाहरण बहुत लोगों को स्त्रीशिक्षा का विरोधी बनाये हुए है।

लड़की के धर्म के अनुसार शिक्षा धार्मिक और नैतिक होनी चाहिये; शिक्षा साहित्यिक भी होनी चाहिये और देशी भाषा के साहित्यिक ज्ञान के अतिरिक्त एक प्राचीन भाषा और अङ्गरेज़ी भी पढ़ाई जानी चाहिये। अङ्गरेज़ी की शिक्षा इसलिए आवश्यक है कि जिसमें वह अपने पति के देश-हित-सम्बन्धी उद्देश्यों और कार्यों से सहानुभूति रखने योग्य हो सके; शिक्षा वैज्ञानिक भी होनी चाहिये अर्थात् स्वास्थ्य और स्वच्छता के नियमों का ज्ञान, खाद्य पदार्थों के गुण और व्यवहार, गृह-चिकित्सा और 'प्रथम सहायता'; भारतीय कलाकौशल शारीरिक व्यायाम इन सबके संबन्ध में कुछ कुछ ज्ञान बहुत आवश्यक है। यहां मैंने साधारण शिक्षा की केवल मोटी मोटी बातें कहीं हैं।

इसके अतिरिक्त उन लड़कियों की उचित शिक्षा के लिए सुभीता होना चाहिये जो शिक्षिका, डाक्टरनी या दाई होना चाहती हैं। सन्तानहीन विधवाओं की खेदजनक बड़ी संख्या में से उपर्युक्त प्रकार के काम करनेवाली स्त्रियां निकाली जायँगी। इन स्त्रियों के लिए, और अन्य लड़कियों के लिए, जो उच्चतर शिक्षा प्राप्त किया चाहती हैं, कालेज और 'शिक्षा-गृह' स्थापित होने चाहियें जिनमें वे यूनिवर्सिटी की डिग्रियों के लिए उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकें। इनमें से कुछ में स्त्रियों के अस्पताल भी खुलने चाहियें, जिनमें दाइया आदि की शिक्षा का भी प्रबन्ध रहे। 'विधवाश्रम' के बजाय मैं 'शिक्षा-गृह' के नाम का इसलिए प्रस्ताव करती हूं कि एक तो 'विधवा' शब्द को भारतवासी शुभ नहीं समझते, दूसरे सयानी अविवाहित लड़कियों को भी उनमें प्रवेश करना आवश्यक होगा।

यह और बतला देना वांछनीय है कि भारतीय स्त्रियों की उन्नति के लिए बालविवाह की प्रथा दूर होना अत्यन्त आवश्यक है, और इसीसे बालविधवाओं का अन्त होगा। १६ वर्ष की अवस्था के पहले, अर्थात् जब तक वह १७वें वर्ष में प्रवेश न कर चुके, किसी लड़की का विवाह न होना चाहिये। यह भी सबसे छोटी अवस्था है जब वह मानसिक दृष्टि से विवाहयोग्य होती है, और इस अवस्था में भी उसे मैं माता होने योग्य नहीं कह सकती।

बालविवाह-निराकरण के अनन्तर कुछ और आवश्यक सुधार ये हैं:—

पर्दा की प्रथा, जहां वह प्रचलित है, दूर की जाय और सामाजिक उत्सवों के अवसरों पर यूरोपियन स्त्रियों के साथ भारतीय स्त्रियां भी उपस्थित हुआ करें; पुनर्विवाहित स्त्रियों का बहिष्कार बन्द किया जाय; रंडियों का अन्त किया जाय; 'सिविल' विवाह जायज़ बनाये जायँ और ऐसे विवाह करनेवालों को हिन्दू न होने की शपथ न देनी पड़े; युवती-विवाह भी जिनके जायज़ होने में कुछ सन्देह किया जाता है जायज़ माने जायँ और लड़कियों का मन्दिरों को समर्पित किया जाना कानून से रोका जाय।

मुझ सच्ची भारतहितैषिणी और सेविका को भारतीय स्त्रियों की उन्नति के जो उपाय मालूम पड़े हैं उनका वर्णन मैंने यहां स्थूल रीति से किया है।

युक्तप्रदेश की स्त्रियों की उन्नति के मार्ग में सामाजिक बाधाएं।

[लेखिका—श्रीमती हेमन्त कुमारी देवी।]

युक्तप्रदेश की सामाजिक प्रथा इस प्रकार की है कि महिलागण सहज में आपस में मिल जुल कर नहीं रह सकतीं। सब से प्रथम यही कुप्रथा हम लोगों की उन्नति के मार्ग में बाधक है। मनुष्य जब तक एक दूसरे से मिलते नहीं तब तक वे अपना भाव एक दूसरे पर नहीं प्रकट कर सकते। स्त्री और पुरुष दोनों ही के लिए यह बात एक समान प्रयोजनीय है। पुरुष के लिए बाहर निकलने में किसी प्रकार की रोक टोक न होने से वह अपने अभाव दूर कर सकता है परन्तु स्त्री यह नहीं कर सकतीं। स्त्री जाति के जो स्वाभाविक अभाव हैं उन सबको पुरुष भली भांति समझ नहीं सकते, इसलिए कि उनमें उनलोगों की आशा के अनुरूप समहृदयता नहीं होती। इस कारण पुरुष प्रायः अपनी रुचि, अभाव, और अवस्था के अनुसार रमणीगणों को बनाना चाहते हैं। जब तक स्त्री जाति अपने विषय को स्वयं सोचकर स्वाधीन भाव से काम नहीं कर सकती तब तक उसकी उन्नति होना असम्भव है। स्वाधीन भाव का अर्थ पर पुरुष के साथ वार्तालाप, मुह खोल कर सड़क पर घूमना अथवा खाने पीने में विचार न करना नहीं है; क्योंकि कोई समझदार इस प्रकार की अनुचित बात नहीं कहेगा और यदि कहे भी तो उसकी बात मानी नहीं जायगी। रमणियों का कार्यक्षेत्र ही स्वतन्त्र है। स्त्रियां पर्दे के भीतर भी बड़े से बड़े कार्य कर सकती हैं। कम से कम वे अपना अभाव दूसरे पर प्रकट कर सकती हैं और इसके द्वारा उसको पूरा सकती हैं। इस समय पर्दा प्रणाली प्रचलित रहने से उनका आपस में एक दूसरे से मिलना कठिन है; इसी कारण वे मन का भाव दूसरी रमणी से कहने का अवसर भी उन्हें नहीं मिलता। पुरुष आपस में मिल सकते हैं, अपने अभाव को विदित कर सकते हैं सुधार भी कर सकते हैं, परन्तु रमणीगण को यह सुविधा नहीं है? युक्तप्रदेश में रमणीगण के आपस में मिलने के स्थान (१) न्योता और (२) रहस हैं। परन्तु यहां पर भी मिलते समय इनमें अहंकार, द्वेष, हिंसा और कलह स्पष्ट देख पड़ते हैं। कोई अपने गहने की गर्मी के मारे दूसरे के साथ बोलती चालती तक नहीं। यदि कोई दिल खोलकर मिली भी तो असभ्य विषयों की चर्चा करके अपनी बुद्धिमानी प्रकट करती हैं। यदि विवाहादि में औरतें आईं तो वे अश्लील भाषा में लीन होकर गालियों की वर्षा करने लगती हैं; उस समय वे भूल कर भी नहीं सोचतीं कि निर्लज्जता की भी सीमा होनी चाहिये। असभ्य भाषा में गाना सुशिक्षिता का परिचायक नहीं है। भद्रता, सभ्यता और सामाजिकता के लिए ये सब बातें स्त्रियों को छोड़ देनी पड़ेंगी। अब वह समय आगया है जब कि रमणियों को आदर्श बनना चाहिये। समाज में जो स्त्रियां शिक्षिता, सभ्य, पुण्यात्मा और धर्मात्मा हैं वे चाहें तो अपने स्वामियों को उत्साहित करके रमणीगण के मिलने के लिए एक स्थान नियत करा सकती हैं। इस जगह रमणीगण इकट्ठी होकर यथार्थ उन्नति और सामाजिक सुधार की आलोचना कर सकती हैं। लखनऊ नगर में एक हिन्दू बालिका विद्यालय है। इसमें हर महीने स्त्रियां एकत्र होकर गम्भीर विषयों की चर्चा करती हैं। उक्त सभा बहुत से बड़े कार्य कर रही है इसमें सन्देह नहीं। आपस में मिलने के कारण स्त्रियों में एकता, सहृदयता और अनुसन्धिता क्रमशः बढ़ रही है और साथ साथ उस

विषयों की आलोचना करने की शिक्षा भी आपस में हो रही है। यदि प्रत्येक नगर में ऐसी सभाएं स्थापित हो जांय तो स्त्रियों की उन्नति का मार्ग सुगम हो जायगा। उक्त सभा का पुरुषों के साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है। रमणी पर्दे के भीतर पुरुष की दृष्टि से छिपी हुई काम करती हैं। इस प्रकार की सभा में जाने से किसी को प्रतिवाद नहीं हो सकता बल्कि पुरुष इसमें स्त्रियों के सहायक हो सकते हैं। बड़े ही हर्ष की बात है कि इस प्रदेश में ऐसी २ रमणियां हैं जो केवल अपनी असाधारण विद्या ही का परिचय न देकर अपनी समाज के हित में भी भलीभांति से लगी हुई हैं। ऐसी रमणियों का नाम लेना भी पुण्य है। खैरीगढ़ की रानी, दियरा की रानी, प्रतापगढ़ की रानी, स्त्री दर्पण की सम्पादिका, गृहलक्ष्मी की सम्पादिका, इत्यादि रमणी भूषणों के नाम उल्लेख योग्य हैं। इनमें से कोई २ सर्वसाधारण के हित के लिए पुस्तक लिखकर और कोई समाचारपत्रों द्वारा रमणी समाज का विशेष उपकार कर रही हैं। अन्य स्त्रियां भी यदि इन्हीं की तरह काम करें तो स्त्री समाज की बहुत कुछ उन्नति हो सकती है।

केवल रमणियों के आपस में मिलने ही से सब कुछ नहीं हो सकता। इसके साथ ही साथ विद्या पढ़ने की भी आवश्यकता है। विद्यालय और पुस्तकालय खोलने ही पड़ेंगे। वर्तमान समय में पुरुष और स्त्री उभय वर्गों में केवल एक ही की शिक्षा होने से आपस में अन्तर पड़ रहा है। इस कारण से विद्वान् युवकगण स्त्रियों के साथ क्या राजनीति, क्या साहित्य, क्या विज्ञान, क्या धर्म और दैनिक सांसारिक कार्य किसी विषय में सम्मिलित नहीं होते। स्त्री और पुरुष में यदि एक सुशिक्षित और दूसरा अशिक्षित रहे तो उनमें एकता नहीं हो सकती, जहां पति और पत्नी के इच्छा में विरोध है वहां सुख कहां? यह विषय क्या हमारे देश के पुरुषों के विचार करने के योग्य नहीं है? समाज के एक अङ्ग को अशिक्षा के गढ़े से निकालना क्या पुरुषों का कर्तव्य नहीं है? मेरे मत में वर्तमान शिक्षा प्रणाली स्त्री और पुरुष में भेद पैदा कर समाज में दुःख का परिमाण बढ़ा रही है। यदि दोनों अङ्गों को सुशिक्षा दी जाय तो दोनों हा उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होकर सुखी हो सकते हैं। वे केवल पवित्र भाव से गृहकार्य करने में यथाशक्ति परस्पर सहायता ही न देंगे परन्तु सर्व जाति के चरित्र गठन और उन्नति साधन में भी वे मिल कर परिश्रम करेंगे। सहस्रों वर्ष से जिन २ कुसंस्कारों और अनिष्टकारक देशाचारों ने इस देश पर अधिकार जमा लिया है उन सब के नाश करने के लिए स्त्री और पुरुष एक स्थान में बैठकर उपाय सोचेंगे। इस प्रकार वे लोग अपने उच्च ज्ञान और संस्कार के प्रभाव से सारे समाज और परिवार का संशोधन कर सकेंगे।

देश के पुरुषगण! यदि आप रमणियों को मूर्खता के पंजे से छुड़ाना चाहते हैं, यदि आप उन्हें सभ्यता का शुभफल चखाना चाहते हैं तो अवश्य ही उनको सुशिक्षा देने का प्रबन्ध करिये। सुशिक्षा देने में उनको विजातीय भाव न सिखाइये। यदि स्त्रियों का गहना पहिनना, अङ्गरेज़ी भाषा में वार्तालाप करना, मातृभाषाघाती बनना, पिआनो बजाना इत्यादि को आप सत् शिक्षा समझते हो तो आप पछतायेंगे। विजातीय अनुकरण से भारतीय ललनाओं को किसी प्रकार से सफलता प्राप्त न होगी। यदि आपको उन लोगों का दुःख दूर करना अभीष्ट है, यदि आप उनकी उन्नति चाहते हैं तो उन लोगों के मन को उन्नत और पवित्र करने का उपाय कीजिये। वस्त्र, भूषण, भोजन आदि वाह्य आडम्बर के विषय में उनको शिक्षा देने की आवश्यकता नहीं है। उनको देशीय भाषा में साहित्य, विज्ञान, धर्मनीति और धर्म

के उन्नत भाव की शिक्षा दीजिये। इसी मार्ग पर चलने से उद्देश्य की सिद्धि हो सकती है अन्यथा नहीं।

विद्या

विद्या के बल से मनुष्य क्या नहीं कर रहे हैं? विद्या के कारण मानव सन्तान पृथ्वी के क्षुद्रतम प्रदेशस्थित भूपृष्ठ की सारी बातें जानकर ही सन्तुष्ट नहीं होती। विद्वान लोग भू मण्डल की आभ्यन्तरीण घटनाओं को देख कर चुप नहीं हैं। लाखों योजन की दूरी पर अवस्थित अनन्त आकाश का असंख्य नक्षत्र मण्डल उनका आलोच्य विषय है। वे पृथ्वी में रहकर असीम और जगत् के ग्रहोपग्रह-नक्षत्र तत्व को जान रहे हैं! छोटी छोटी नक्षत्र मालाओं के सूक्ष्मातिसूक्ष्म मन्तव्य पथ का वे आविष्कार कर रहे हैं। चन्द्र सूर्य प्रभृति ज्योतिमण्डली की ग्रहण गणना कर वे पृथ्वी में आश्चर्य वर्षा कर रहे हैं; कोई अनिर्दिष्ट दुर्लक्ष्य सौरजगत् को अपनी कक्षा में घुमाने की कल्पना कर रहे हैं, कोई अचला पृथ्वी की सचलता प्रतिपन्न कर रहे हैं-अन्यान्य ग्रह उपग्रहों का सूर्य की किरणों से प्रकाशित होना सिद्ध कर रहे हैं—इस प्रकार के अनेक अलौकिक तत्वों का आविष्कार विद्वान मनुष्य कर रहे हैं। बुद्धिमान मानव परिदृश्यमान इस विश्व के सूक्ष्मतम तत्वों की आलोचना करने मात्र से सन्तुष्ट नहीं है। नश्वर मानव का लक्ष्य, अदृश्य, अचिन्तनीय, अलक्ष्य अवाङ्-मनस-गोचर परमेश्वर का तत्व जानना है; संसार के दुरुच्छेद्य झंझटों को दूर कर निर्वाण मुक्ति की वे अभिलाषा करते हैं। इन सब अलौकिक कार्यों का प्रवर्तक कौन है? अनन्त संसार सागर में मानव बुद्बुद के समान उत्पन्न और बिलीन होरहे हैं। परन्तु बुद्बुद के समान मानव संतति से जो सारबान और स्पृहणीय सिद्धान्त निकल रहे हैं उन्हें सहस्रों शताब्दियाँ मिटा नहीं सकेंगी; सर्वभक्षी काल का कराल मुंह उसको खा नहीं सकेगा। अतीत युग के मानवों की शुभ कामनाओं का फल वर्त्तमान युग के मानवगण भोग रहे हैं। फिर यह प्रश्न उठता है कि इन सब अलौकिक कार्यों का प्रवर्त्तक कौन है? इसका उत्तर "विद्या"। विद्या अध्ययन से होनेवाले संस्कार के सिवा और कुछ नहीं है। मानव बाल्यकाल से जिस प्रकार की शिक्षा पाते हैं उनका संस्कार और उनकी रुचि भी उसी के समान होती है। रमणियों की शारीरिक और मानसिक कोमलता शिक्षा के लिए किसी प्रकार बाधक नहीं होसकती वरन् कोमल अन्तःकरण शिक्षा के लिए अधिक उपयोगी है। क्योंकि बालकों के कोमल हृदय में विद्या का बीज बड़ी जल्दी अंकुरित होता है। अतएव स्त्री जाति का कोमल अन्तःकरण विद्या सीखने के लिए समीचीन है। विद्या से स्त्रीगणों के दुर्बल हृदय में बल आ जाना युक्तियुक्त है। विद्या एक प्रकार की रक्षिका है। विद्या के तेज से बलवती होने पर स्त्रियां बड़ी सरलता से आत्मरक्षा कर सकती हैं। इसलिए मनु जी ने कहा है कि:—

आत्मानमात्मना यास्तु रक्षेयुस्ताः सुरक्षिताः।

जो रमणी अपनी स्वयं रक्षा कर सकती है वही सुरक्षिता है। स्त्री विदुषी होने पर इस श्लोकार्द्ध को सहज ही काम में ला सकती है। अविदुषियों के लिए यह कठिन काम है इसमें सन्देह नहीं।

मनुष्य समाज का अर्द्ध स्थान स्त्री जाति से अधिकृत है। स्त्री शिक्षा अनुचित होने पर समाज के अर्द्धांश के साथ विद्यालोक का किसी प्रकार संस्रव नहीं रहता। सुमेरु और चन्द्रमण्डल की भांति मनुष्य समाज का एकार्द्ध उज्वल आलोक से आलोकित और अपराद्ध सदा अन्धतमसाच्छन्न रहेगा। यह वैश्-

निक सूदम सिद्धान्त से ठीक हो सकता है पर मेरी स्थूल बुद्धि उसकी सत्यता पर अणुमात्र विश्वास करने को तैयार नहीं है। जो विद्या अन्न वस्त्र से भी ज़रूरी और उपादेय है, स्त्री जाति उससे वंचित रहे यह नैसर्गिक नियम नहीं हो सकता। पुरुष कठोर चिन्ता के प्रभाव से जितनी दूर अग्रसर होते हैं स्त्रियां उतनी दूर न जाने पर भी जो सिद्धान्त करती हैं वह बड़ी जल्दी से करती हैं। इसलिए कहा जासकता है कि स्त्रीगण सवदा भाव राज्य में विचरण करती हैं; पुरुष गण किसी सिद्धान्त में बहुतही धीरगति से उपस्थित होते हैं; उन लोगों में व्यग्रता का भाव नाममात्र को है; वे लोग कठोर चिन्ता को अवलम्बन कर किसा विषय की मीमांसा करते हैं। देश की भाषा न जानने पर स्त्रीगण अपरिज्ञात भाषा सुनकर जिस प्रकार वक्ता का मानसिक भाव समझ लेती हैं पुरुषगण उस प्रकार नहीं समझ पाते। साराँश यह है कि स्त्रीगण की कल्पना शक्ति पुरुषगणों से अधिक है। सुतरां शिक्षा के ऊपर उन लोगों का जितना हक है पुरुषगणों का उतना नहीं। आजकल अर्थ के अभाव से सन्तति की विद्या शिक्षा के लिए, उपयुक्त मास्टर रखना कठिन है। सुतराँ इस अवस्था में यदि स्त्रियां शिक्षित होवें तो उन्हें शिक्षा के काम में लगाया जा सकता है।

मनुष्य यौवनावस्था में पैर रखने पर प्रखर ज्ञान के प्रभाव और स्वाभाविक तेजस्विता के कारण विचार न कर अनेक समय सहसा इच्छा को काम में लाने का प्रयत्न करते हैं। उस अवस्था में पिता प्रभृति रूखी प्रकृति पुरुष के उपदेश उन लोगों के अहंकार स्फीत चित्त को वश में नहीं ला सकते, परन्तु माता यदि पुत्र से ज्ञान में उन्नत हो तो वह उस समय अपने स्वभाव सिद्ध आश्चर्यकारक वशीकरण गुण से सहजही यौवन के औद्धत्य को दूरकर उनको यथार्थ ज्ञान मार्ग में ला सकती है। मातृहृदय का निष्कपट स्नेह और पवित्रता के साथ यदि उज्वल ज्ञान का संयोग हो तो उस से सन्तान का बहुत कल्याण हो सकता है और शिशुकाल में जिस प्रकार माता के ऊपर लड़के की अकपट श्रद्धा रहेगी उसके यौवन में भी माता की संमानना उतनीही बढ़ जावेगी।

सामाजिक हित के लिए रमणियों का साथ देना संसार में नई बात नहीं है। पुरातत्व के अनुसन्धान करने पर हम लोगों को बहुतेरे दृष्टान्त मिलते हैं। रामायण और महाभारत में सीता और द्रौपदी के वृत्तान्त कौन नहीं जानता? वे कार्य क्षेत्र में स्वामी की परामर्शदात्री थीं और उनके साथ बन में जाते भी भीति न हुई! जिस देश में पर्दा का कठिन नियम है उसमें भी इस प्रकार के उदाहरण हमलोगों को बहुत से मिलते हैं। पुराकाल में अरब देश में मुसलमान रमणीगण को पुरुष के साथ विद्या शिक्षा में समान अधिकार था। मुहम्मद की अन्तःपुरचारिणी महिला आलस्य से काल नहीं बिताती थीं। उनकी प्रथम स्त्री "खादिजा" अन्यून २५ वर्ष तक उनके दुःख और सुख को समभागिनी थीं। प्रथम स्त्री के मरने के बाद मुहम्मद की युवती स्त्री "आयशा" ऊंट की लड़ाई में स्वयं निष्काषित तरवार हाथ में लेकर सैन्यसंचालन करती थी। उनकी कन्या "फातिमा" राजनैतिक विचार में सर्वोच्च स्थान पर अधिकार किये थी। उनकी पोती पारिवारिक और सामाजिक कार्य में विशेष क्षमता रखती थी। मुहम्मद ने रमणीगणों को आलस्य में काल बिताने का किसी प्रकार नियम नहीं रक्खा था। मुसलमान स्त्रियां एक समय राजा, शिक्षक और धर्मवक्ता थीं। सुलतान वैयाजिद के राजत्वकाल में ललनाएं मसजिदों में धर्म पर वक्तृता देती थीं। आधुनिक समय में हम लोग देखते हैं कि फिनलैण्ड, नार्वे, स्वीडन, आइसलैण्ड प्रभृति देशों में स्त्रियों का आदर अधिक है। फिनलैण्ड में

स्त्रियों को वोट देने का अधिकार है। वे पार्लियामेंट की सदस्या बन सकती हैं। नार्वे में जिन महिलाओं को म्युनिसिपिल कार्य्य में वोट देने का अधिकार है वे पार्लियामेंट में भी वोट दे सकती हैं। कहां तक कहें असभ्य रूस देश में भी रमणीगणों का अधिकार पुरुषों के समान ही है। विलायत में रमणीगणों की उन्नति किस प्रकार हुई है उसकी आलोचना भी समयानुकूल है। १८७० ई० में विवाहिता रमणीगणों की सम्पत्ति का आईन पास हुआ। इस से विवाहिता ललनाओं को सम्पत्ति ख़रीदने बेचने का अधिकार मिलगया। १८९४ ई० में शिक्षिता स्त्रियों को District Council, Boards of Guardians, London County Council और Parish Council की सदस्या बनने का अधिकार मिला। १९०७ ई० में महिलाओं को Alderman और Mayor पद प्राप्त करने का अधिकार दिया गया। केवल विचार के आसन पर बैठने का अधिकार वहां स्त्रियों को अप्राप्य है। परन्तु अमेरिका, नार्वे और फिनलैण्ड में यह अधिकार भी रमणियों को प्राप्त है। यूरोप में स्त्रियों की संख्या अधिक होने से और सामाजिक अवस्था भारतवर्ष से सम्पूर्ण स्वतन्त्र होने के कारण रमणियों का जीविकार्जन का रास्ता न खोलने से यूरोपीय समाज में एक बड़ी गड़बड़ पैदा होजाती। भारत में रमणीगण समय पर विवाहिता होने से उन लोगों के भरण पोषण का भार पुरुषों के ऊपर आजाता है, सुतरां जीवन संग्राम में भारतीय पुरुषों को ज़्यादा मेहनत करनी पड़ती है। यूरोपीय सामाजिक प्रथा में ज़्यादातर स्त्रियों के भाग में शादी नहीं होती है, सुतरां अपने पोषण के लिए रमणीगणों को स्वयं मेहनत करनी पड़ती है। इसलिए रुपया पैदा करने के लिए नये २ ढंगों का आविष्कार यूरोप में होता रहता है।

भारत में मध्यवित्त के आदमी की सामाजिक अवस्था अति शोचनीय है। पुरुषगण दफ्तर में बाबूगीरी के सिवाय और किसी प्रकार के काम के लिए अनुपयोगी सिद्ध होते हैं इसलिए द्रव्योपार्जन कम होता है परन्तु खर्चा दिन दिन बढ़ रहा है। रुपया पैदा करने का रास्ता प्रशस्त करने की कोशिस मर्दों में है ही नहीं। पुरुष रमणीगणों को शिक्षा नहीं देते सुतरां उनके पश्चात् स्त्रियों को बड़ाही कष्ट उठाना पड़ता है। विधवा स्त्रियों को जिस प्रकार कठिन कष्ट भोगने पड़ते हैं उसका वर्णन साध्य नहीं है। स्वामी की मृत्यु के वाद ही देवर प्रभृति आत्मायों की कोशिश यह होती है कि किस प्रकार विधवा को ठगें! जिस समय विधवा का धन उन लोगों के हस्तगत हो जाता है उस समय से उसकी अवस्था मज़दूरिन से अच्छी नहीं रह जाती। साधारणतः विधवा के भाग्य में निर्य्यातन की कोई बात ही नहीं। यह तो होता ही है। इस निर्य्यातन के सबब से बहुत सी विधवाएं असत्पथ का अवलम्बन करती हैं। क्षुधा से बढ़कर दुःखदायी पदार्थ पृथ्वी में और कोई नहीं है। भूख क्या नहीं कराती? वाल्यकाल से वालिकागणों को विद्या न सिखलाने से विधवा होने पर वे लड़का पढ़ा कर अपनी उदरपूर्ति नहीं कर सकतीं! देश के पुरुष स्वदेशी वस्त्र वा शिल्प के पक्षपाती नहीं हैं सुतरां विधवाएं कपड़ा तैयार कर अथवा शिल्प द्वारा जीविका निर्वाह नहीं कर सकतीं। विधवा होने पर पितृगृह अथवा श्वशुर गृह में उनको स्थान नहीं। क्या इस प्रकार की अवस्था में रमणीगणों का प्रलोभन में आजाना कोई आश्चर्य की बात है? पुरुषगण अपनी मर्कट बुद्धि के सबब से रमणीगणों की जीविका का रास्ता नहीं खोजना चाहते किन्तु वे साथही यह चाहते हैं कि स्त्रियां आदर्श रमणी होजांय। कैसे आश्चर्य की बात है।

पुरुषगण! तुम लोग रमणीगणों की सामाजिक अवस्था को क्या समझ नहीं पाते हो?

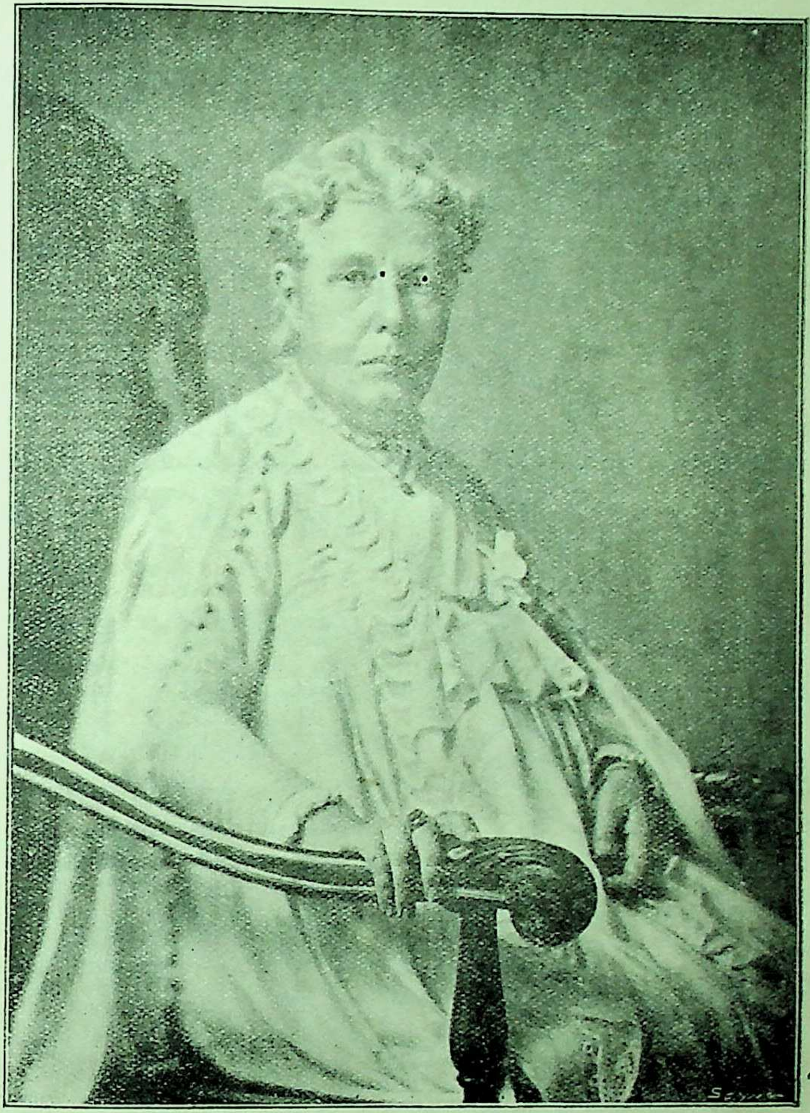

श्रीमती एनी बीसेन्ट ।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग ।

कितने दिन और आंखों में पट्टी बाँध कर बैठे रहोगे ? तुम्हारी सामाजिक प्रथा तुम्हारे कर्मों का फल है। जबतक सामाजिक सुधार नहीं करोगे तब तक अपनी माता, स्त्री, बहन और कन्या की दशा क्या होगी यह शोचने से भी हृदय कांप उठता है । यदि रमणीगणों की उन्नति चाहते हो तो रमणीगणों का किया हुआ सिलाई का काम आपस में खरीदने का यत्न करो, विलायती चीज़ों की तरफ न दौड़ो। इसमें तुम्हारे परिवार का ही भला है। हर गांव में, हर शहर में नारीशिल्प प्रदर्शिनी आगार बनाया जाय । वहां नारीगणों का बनाया हुआ शिल्प रक्खा और बिक्री किया जावे। स्वदेशजात शिल्प का जिसमें आदर बढ़े वैसे काम करो । रमणीगणों के शिल्प की बिक्री के लिए एक दलाल रक्खो जिसको फी सैकड़ा चार या पांच रुपया कमीशन दिया जाय। ऐसा करने से रमणीगणों की उदरपूर्ति का एक रास्ता खुल जायगा। रमणीगणों के लिए और एक रास्ता खुला हुआ है; वह पेशा डाक्टरी का है। रमणी की चिकित्सा रमणी से ही होनी चाहिये। इस ओर रमणीगणों की दृष्टि आकर्षित होनी चाहिये। यह सब बातें केवल पुरुषों की सहायता से ही हो सकती हैं। उन लोगों के मदद न करने से रमणियों की उन्नति की आशा केवल दुराशा मात्र है। मेरी परमेश्वर से यही अन्तिम प्रार्थना है कि वे पुरुषों को सुबुद्धि दें।

भारतवर्ष की आधुनिक सुशिक्षिता स्त्रियां ।

[लेखिका—श्रीमती शारदा मेहता ।]

मेरी प्यारी बहिनो ! भारतवर्ष में आधुनिक स्त्रियां कैसी होनी चाहियें, आज मैं इसी विषय पर अपनी अल्प बुद्धि के अनुसार कुछ विचार करना चाहती हूं। यद्यपि यह विषय इतना गहन और दूरगामी है कि मेरी ऐसी तुच्छ स्त्रियों के लिए उसपर कुछ लिखना साहस अथवा अमर्याद समझा जायगा, परन्तु मेरा उद्देश्य केवल इतना ही है कि मैं अपने विचारों को प्रकट करूं, जिससे हमारी दूसरी बहिनों को भी अपने २ विचार प्रकट करने की उत्तेजना मिले, और परस्पर के अभिप्राय विनिमय से पीछे पड़ी हुई तथा अज्ञानग्रस्त बहिनों का कल्याण हो।

आजकल जहां देखिये वहां सुधार की चर्चा होती है; परन्तु जनसमाज की रहनसहन पर ध्यान दिये बिना, तथा कुटुम्ब में और जनसमूह में स्त्रियों को प्राचीन समय में जो स्थान प्राप्त था, और भविष्य में जो प्राप्त होगा इसका ठीक ठीक विचार किये बिना जो चर्चा होती है उसका निष्फल होना सम्भव है। इसी वर्तमान स्थिति को देखकर ऐतिहासिक विकाश (Historical development) द्वारा क्या होता है और क्या होना चाहिये इसी विषय पर आज मैं कुछ लिखने का प्रयत्न करती हूं।

आधुनिक अथवा नूतन सुशिक्षिता स्त्रियों में नवीन भारत का एक अंश है। यह कोई छोटा सा अंश नहीं बरन् समस्त भारतवर्ष की उन्नति का एक बहुत बड़ा अंश है। अपने देश की अर्वाचीन स्थिति पर विचार करने से इतना तो सहज ही में मालूम होजायगा, कि "देश की उन्नति हर एक विषय में पाश्चात्यों के अनुकरण करने ही से नहीं हो सकती!" क्योंकि हमें उनका अनुकरण करके सब प्रकार का परिवर्तन नहीं करना है बल्कि अपनी ही

रीतिरिवाज़ में उनका अनुसरण करते हुए, कुछ फेरफार करके दोषों को दूर करना, और उनका संशोधन करना है। इसलिए यह हमारा प्रथम कर्त्तव्य है कि हम प्राचीन समय में स्त्रियों की स्थिति कैसी थी इस बात की जांच करें।

अमुक देश में स्त्रियों का किस प्रकार सम्मान होता था इसी बात से उस देश में सुधार की मात्रा किस दर्जे तक पहुंची थी इसका अनुमान हो सकता है। अज्ञानी और अनपढ़ लोगों में प्रायः देखा जाता है कि पुरुष अपनी स्त्री को गुलामों की श्रेणी में गिनते हैं। समुन्नत काल में स्त्रियों के साथ सम्मान और सभ्यता का बर्ताव किया जाता है। इस विषय में प्राचीन हिन्दू आर्य ग्रीस और रोमन आर्य लोगों से चढ़े बढ़े थे। होमर के समय के तथा सोफोक्लीस और युरीपीड़ीस के समय के ग्रीक साहित्य से मालूम होता है कि ग्रीक जाति में स्त्रियों को बहुत मान नहीं दिया जाता था; वैसे ही ग्रीक इतिहास से स्त्रियां बहुत उच्च विचारवाली होती रही होंगी यह भी नहीं सिद्ध होता। रोमन इतिहास में कहीं २ सुशिक्षिता और सुशीला स्त्रियों का हवाला मिलता है परन्तु रोमन साम्राज्य के निवासियों के अत्यन्त धन-वैभव और आनन्द में निमग्न होजाने से सब कुछ थोड़े ही समय में नाश होगया।

भारतवर्ष के प्राचीन इतिहासग्रन्थों में देखा जाय तो उनमें सुशिक्षिता, बुद्धिमती और साथही साथ गुणवती स्त्रियों की बहुत सी कथाएं मिलती हैं। ऋग्वेद में जो लगभग आज से चार हज़ार वर्ष पहले बना है स्त्री और पुरुष दोनों एक साथ बैठकर धर्म यज्ञ आदि शुभ कर्म करते थे, ऐसा वर्णन मिलता है। यही नहीं स्त्रियां उस समय ग्रन्थ भी रचा करती थीं। हम लोगों को मालूम है कि विश्ववारा नाम की एक विदुषी ने स्वयं एक स्तोत्र लिखा है। उपनिषदों में जो प्रायः ३ हज़ार वर्ष पहले के बने कहलाते हैं, गार्गी नाम की एक विदुषी का वर्णन मिलता है। इसने महाराजा जनक के दरबार में अपनी विद्वत्ता दिखलाकर पुरस्कार लेने का प्रयास किया था। भरतखण्ड के प्राचीन ग्रन्थों में जिनमें आज से २ हज़ार वर्ष पहले के आर्यों की रीति नीति का वर्णन है प्रतापी और सद्गुणी स्त्रियों ने उस समय जनसमूह को अपने आचरणों से कितना लाभ पहुंचाया था और उसका जनसमूह पर कैसा असर पड़ा था इसके अनेक दृष्टान्त मिलते हैं। गान्धारी और कुन्ती कैसी पतिव्रता रानियां थीं? महाभारत में किसी समय राजा धृतराष्ट्र अपनी रानियों के साथ दर्बार में कोई तमाशा देखने के लिए आये थे उसका वर्णन है और रामायण तो महाभारत से भी बढ़कर सद्वर्तनशाली स्त्रियों के वर्णन का भंडार ही है। श्रीमती सीता जी का वर्णन स्त्रियों के सद्गुण की सीमा तक पहुंच गया है।

अब ज़रा मनुस्मृति के समय का विचार कीजिये। महात्मा मनु जी ने तो स्पष्टही लिखा है कि—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते, सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।

जहां रमणियों का आदर है वहाँ सब देवता रमण करते हैं। जहां स्त्रियों का अनादर है वहाँ सब क्रियाएं निष्फल होजाती हैं। और भी कहा गया है कि—

शोचन्ति जामयो यत्र, विनश्यत्याशु तत्कुलम्।
न शोचन्ति तु यत्रैता, वर्धते तद्धि सर्वदा॥

जहां स्त्रियों को दुःख मिलता है उस कुल का विस्तार नहीं होता—वह कुल शीघ्रही नष्ट होजाता है और जहाँ स्त्री वर्ग सुखी रहता है उस कुल की सर्वदा वृद्धि होती है।

जामयो यानि गेहानि, शपन्त्यप्रतिपूजिताः।
तानि कृत्याहतानीव, विनश्यन्ति समन्ततः॥

स्त्रियां सम्मान न होने के कारण जिस गृह को शाप देती हैं वह गृह कृत्या अर्थात् अलौकिक विनाशकारक शक्ति से मारे हुए की भांति सब प्रकार से नष्ट होजाता है ।

तस्मादेताः सदा पूज्या, भूषणाच्छादनाशनैः ।
भूतिकामैर्नरैर्नित्यम्, सत्कारेषूत्सवेषु च ॥

इसलिए अपने सुख सौभाग्य की कामना रखनेवाले मनुष्य को चाहिये कि हर एक धर्म-कार्य में और उत्सवों में भूषण, भोजन और आच्छादन द्वारा सदा उनका सत्कार और उनको प्रसन्न करता रहे ।

सन्तुष्टो भार्यया भर्ता, भर्ता भार्या तथैव च ।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं, कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ॥

जिस गृह में अपनी पत्नी से पति प्रसन्न रहता है, और पति से पत्नी प्रसन्न रहती है, वहीं अर्थात् उसी गृह में वास्तविक कल्याण प्राप्त होता है ।

अन्त में संस्कृत नाटकों तथा अन्यान्य वार्तिक पुस्तकों से इस बात का पूरा २ पता लगता है कि सन् ईस्वी के आरम्भ में स्त्रियों की सांसारिक स्थिति वर्तमान स्थिति से कहीं ऊंचे दर्जे की रही होगी । इसका कारण यह था कि उस समय में इस भांति स्त्रियों को मनुष्यत्व से वंचित रखने की प्रथा न थी । उस समय बालिकाओं को लिखना, पढ़ना, तथा और तरह २ की अनेकानेक कला कुशलता सिखलाई जाती थी । संगीतविद्या में निपुण होना उस समय स्त्रियों का आभूषण समझा जाता था । उच्च कोटि का संस्कृतज्ञान भी उस समय स्त्री संसार में प्रचुर रूप से वर्तमान था । स्त्रियां अपने नित्यव्यवहार के अनुसार देवस्थानों में, स्नान करने के घाटों पर, तथा अन्य खुली जगहों में, जाया करती थीं । एक प्रकार से देखा जाय तो महाकवि कालिदास तथा भवभूति के नाटक, कादम्बरी, दशकुमारचरित्र और कथासरित्सागर, ऐसे उच्च ग्रन्थों में भी उस समय के अनेक ऐसे सन्तोषदायक प्रमाण पाये जाते हैं ।

जब से हमारे देश पर विदेशियों ने हमला करना आरम्भ किया तब से सब प्राचीन व्यवस्था अस्तव्यस्त होगई । स्त्रियों की " अवनति " का आरम्भ भी उसी समय में हुआ । विदेशियों ने इस देश पर अपना दखल जमा लिया और हिन्दुओं के साथ मनमाना ज़ुल्मी वर्ताव करने लगे । वे बेचारी स्त्रियों के साथ भी भांति २ का ज़ुल्म करने लगे । दुखी हो लोगों ने राजदर्बारी, अर्थात् मुसलमानी रीतों का अनुकरण किया । इससे स्त्रियों के रक्षा करने के हेतु स्त्रियों को छिपाकर परदे में रखने की प्रथा चलाई गई । प्रायः सभी लोग अपनी बहू बेटियों को मुसलमानों के भय से परदे में छिपाये रहते थे और कभी किसी के सामने नहीं निकलने देते थे । उस समय से लगाकर जब तक अङ्गरेज़ी राज्य का प्रबन्ध इस देश में पूरी तरह से नहीं हुआ था तब तक इस देश की स्त्रियों की वैसोही " अवनत दशा " बनी रही । इतने दिन के विशाल समय में अनेक प्रकार की जड़ता ने आकर इस देश की सीधी सादी भोली भाली स्त्रियों के अन्तःकरण में डेरा जमालिया है । जब से यह देश बृटिश सरकार के अधीन हुआ तब से इस सुधरी हुई राज्यव्यवस्था के परिणाम के फल से देश में चारो ओर न्याय और शान्ति का प्रचार हुआ किन्तु फिर भी स्त्रियों पर होने वाले अन्याय शान्त न हुए थे कि इधर कुछ सुधरे हुए लोगों ने स्त्रीशिक्षा की चर्चा चलाई ।

बहनों ! मैं पहले कह चुकी हूं कि बृटिश साम्राज्य होने पर न्याय और शान्ति का प्रचार होते हुए भी स्त्री जाति पर होनेवाले अत्याचार शान्त नहीं हुए थे, यही कारण था कि उस समय स्त्रीशिक्षा की चर्चा करना एक प्रकार से विवाद का विषय होगया था । सौभाग्य से अब

वह बात नहीं रही। अब हर एक मनुष्य को स्त्री शिक्षा आवश्यक जंचने लगी है। कारण यह है कि "समय अपना काम निरन्तर करताही रहता है" ज्यों ज्यों पुरुषों में ज्ञान प्राप्त करने की आकांक्षा बढ़ती गई और शिक्षा के द्वारा यूरोपियन तथा हिन्दू जनसमुदाय में शिक्षा का प्रत्यक्ष फल दिखलाई पड़ने लगा त्यों त्यों स्त्री वर्ग में भी शिक्षा के प्रभाव ने एक प्रकार के नवीन बल का सञ्चार किया। भारतीय स्त्रियां भी, यूरोप और अमेरिका की बहनों को विद्या, कला तथा स्वतन्त्रता में बहुत आगे बढ़ी हुई देखकर जागीं उनके अनुकरण करने की लालसा हमारी बहिनों में उत्पन्न हुई और अब बराबर स्त्री-शिक्षा का प्रचार क्रमशः बढ़रहा है।

व्यवहारोपयोगी और पाठशाला में प्राप्त हुई दोनों शिक्षाओं से युक्त स्त्री को ही "भरतखण्ड की आधुनिक सुशिक्षिता स्त्री" कहना उचित है। खेद की बात है कि ऐसी सुशिक्षिता स्त्रियों की संख्या अभी इस देश में बहुत थोड़ी है। हमें पूरा विश्वास है कि आधुनिक सुशिक्षिता स्त्री अर्थात् नवीन प्रकार के समूह में पली हुई स्त्री जिसकी बुद्धि नवीन साहचर्य और समागम (Association) के लिए और ही प्रकार से परिपक्क की गई है। अपने पुरुष के साथ स्वत्व वगैरः के बारे में कभी तकरार न करेगी। वह प्रति घड़ी अपने पति के साथ बराबरी का अधिकार प्राप्त करने की इच्छा न रक्खेगी वरन् वह "अपना कर्तव्य क्या है?" इस बात को भली भांति समझेगी तथा समझने की चेष्टा करेगी। अङ्गरेज़ों के प्रसिद्ध कवि (Tennyson) टेनीसन साहब कहते हैं।

The Woman's cause is man's
They rise or sink together
Dwarfed or godlike, bond or free.

* * * * *

.Ifshe be small, slight natured,
Miserable, how shall men grow ?
Let her make herself his own,
To give or keep, to live and learn
And be all that harms not

DISTINCTIVE WOMANHOOD.
For woman is not undeveloped man,
But diverse; could we make her as the man
Sweet love wereslain: his

Dearest bond is this-not like
To like but like in defference.
Yet in the long years liker must they grow
The man be more of woman, she of man,

He gain in sweetness and in moral height
Nor loose the wrestling thews that
throw the world.
She mental breadth, nor fail in child world
care.

Nor loose the childlike in the larger
mind.

Till at last she set herself to man.
Like perfect music unto noble words.
Self reverent each, and reverencing each.
Distinct in individuals, but like each other
Even as those who love, Then springs
The crowning human kind
May these things be ?

उसके साथ उसके शरीर की और मन की प्रसन्नता में कमी न करना होगा। योग्य ज्ञान देने में और सामाजिक आनन्द भोगने में उसके लिए किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं होसकता। किसी प्रकार का प्रतिबन्ध किये बिना उसको स्वतन्त्र रीति से पालना होगा।

इसलिए यह आवश्यक है कि पुत्र और पुत्री के पालन में भेद न रखाजाय। जिस प्रकार माता अपने ऊपर अपने पुत्र का पोषण भार लेती है वैसेही पुत्री के पोषण में भी उसे ध्यान देना उचित है। कारण यह है कि वह कोई निरुपयोगी जीव नहीं है। ज्योंही बालि काए पल कर ज़रा बड़ी हों उनकी शिक्षा

आरम्भ करे। साधारण ज्ञान की शिक्षा के लिए लड़की और लड़कों में भेद करने की कोई आवश्यकता नहीं है। अपने देश की उन्नति के लिए हर एक व्यक्ति को शिक्षा ग्रहण करनी परम आवश्यक है। भेद केवल उसमें होना चाहिये जो विषय केवल स्त्री मात्र के लिए आवश्यक हों। पुरुष अपनी सामान्य शिक्षा ग्रहण कर चुकने पर वकील, डाकृर अथवा व्यापारी होते हैं। वैसेही स्त्री जाति को भी कार्यक्षेत्र की अन्य दिशा में निपुणता प्राप्त करनी आवश्यक है। उसको सांसारिक कुशलता प्राप्त कर चुकने पर अनेक कलाओं में कुशलता प्राप्त करनी चाहिये। उसको संगीत विद्या, चित्र विद्या, सीनापिरोना रसोई, गृहव्यवस्था, अर्थशास्त्र, तथा बच्चों का पालनपोषण आदि अनेक व्यावहारिक कार्यों में कुशल होना आवश्यक है। पुरुष पैसा कमाता है, स्त्री को वही पैसा योग्य रीति से बैपरना पड़ता है। जिसमें रोज़ कुछ पैसों की बचत हो ऐसा करना उचित है। बचाया हुआ पैसा सन्तान को योग्य शिक्षा दिलाने और समयानुसार सांसारिक जीवन यात्रा के मार्ग में अग्रसर करने में व्यय हो सकता है।

महात्मा मनुजी ने स्त्रियों के कर्तव्य विषयों का इस भांति वर्णन किया है :—

सदा प्रहृष्टया भाव्यं, गृहकार्येषु दक्षया।
सुसंस्कृतोपस्करया, व्यये चा मुक्तहस्तया॥

स्त्रियों का धर्म सदा प्रसन्न रहना, गृहकार्यों में दक्ष होना, अपने घर का सारा सामान ठीक तरह पर व्यवस्थित रीति से रखना और ऐसी रीति से द्रव्य ख़र्च करना कि जिसमें फ़ज़ूलख़र्ची न हो।

शिक्षा दो प्रकार की होती है एक तो शालाओं (कालेजों) में जो शिक्षा दी जाती है वह और दूसरे घर में जो शिक्षा मिलती है। नीति की शिक्षा (moral culture) तो घर में माता पिता से मिलती है, इसलिए छोटे बच्चों के सामने माता पिता को बहुतही सावधानता के साथ छोटी २ बातों में भी नीति के नियमों पर ध्यान रखकर वर्ताव करना उचित है। ऐसा करने से बालकों के हृदय पर शुद्ध और निर्मल होने के कारण छोटी उम्र से ही नीति मार्गावलम्बन का प्रभाव पड़ता है। माता पिता की यह ज़िम्मेदारी इतनी कठिन है कि बिना सुशिक्षिता स्त्री की सहायता के यह सर्वथा असम्भव है और कभी किसी प्रकार से सम्भावित नहीं होसकता।

कन्या अच्छी तरह पढ़ लिख कर सब कामकाज में कुशल हो बड़ी होजाय तभी उसके बिवाह करने का विचार करना चाहिये और उसके साथ माता पिता को ऐसा वर्ताव करना चाहिये कि जिसमें सब कोई उसका आदर करे। शास्त्र में लिखा है कि

उपाध्यायाद्दशाचार्य, आचार्याणांशतंपिता।
सहस्रं तु पितुर्माता, गौरवेणातिरिच्यते॥

एक गुरु उपाध्याय से दश गुणा बढ़कर पूज्य होता है, गुरु से भी सौगुना बढ़ के पिता पूजनीय है परन्तु अपने गौरव से पिता से भी सहस्र गुण बढ़कर माता पूजनीय मानी गई है। अस्तु !

तात्पर्य यह है कि सब तरह से सुयोग्य होने के लिए कन्या की अवस्था पुष्ट होनी चाहिये। इसलिए बालविवाह तो नवीन समय में सर्वथा निन्द्य है। पिता के घर में रहकर ज़िन्दगी की ज़िमेम्दारी का निर्वाह करने के उपरान्त "सरलता से अपना सांसारिक व्यवहार चला सकने की योग्यता प्राप्त करलेने तक" कम से कम इतनी उमर बीतने पर कन्या का विवाह करना इस समय में उचित जान पड़ता है। इस प्रकार की सुशिक्षिता स्त्री घर में आवे तो पुरुष को सब प्रकार का आनन्द अपने घर में मिलना स्वाभाविक है। फिर उसको क्लब वगैरह का आश्रय न लेना पड़ेगा। वही घर

उसको अपने लिए और अपने मित्रों के लिए क्लब से भी अधिक सुखद प्रतीत होगा। तभी हिन्दू संसार में अपने अथवा अपने पूर्वजों के बनवाये और बढ़ई पेलराज आदि मजूरों के बनाये ईंट पत्थल मिट्टी चूने से खड़े किये हुए घर महाराज मनुजी के "गृहणी गृह मुच्यते" इस वाक्य में कहे मुताबिक घर देखाई देने लगेंगे।

सुशिक्षिता स्त्री इस समय में अपने घर के कामकाज से फुर्सत पाने पर अपने अपने घर में ही बैठी न रहेंगी वरन् वे अपनी बहनों की उन्नति करने के लिए उनका मनोरंजन करने के लिए, और देश को उन्नत स्थिति में लाने के लिए, सब प्रकार से प्रयत्न करेंगी। क्योंकि जैसे इस समय पुरुषों के लिए अपने और अपने कुटुम्ब के निर्वाहार्थ केवल द्रव्य उपार्जन करके बैठे रहने का अवसर नहीं है वैसे ही सुशिक्षिता स्त्रियां भी अपने लिए निरुद्योग बैठकर काल यापन करना उचित नहीं समझेंगीं। उनसे यह कभी न होगा कि वे खाली बैठी रहें। वे परोपकार के हर एक कार्य में मदद करेंगी।

अभी तक अपने देश की स्त्रियों के मस्तिष्क में नवीन समय के अनुसार उनके कर्तव्य में किसी प्रकार की नवीनता का संचार नहीं देख पड़ता। स्त्रियों का कर्तव्य तीन प्रकार का कहा गया है। एक तो उन्हें अपने पति की प्रियमित्र तथा सहाभागिनी होना चाहिये। दूसरे उनको अपनी सन्तान के पालन पोषण करने योग्य शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। स्त्रियों का तीसरा कर्तव्य यह है कि वे जिस जनसमाज में रहती हों वहां वे अपने आचार विचार का शुद्ध और ऊंचे प्रकार का असर पैदा करने का प्रयत्न करें। प्राचीन काल में हर एक सुधरी हुई प्रजा में और हर एक सुधरे हुए देश में यही स्त्रियों के कर्तव्य गिनाये गये हैं और भविष्य में भो उन्नति और सुधार के लिए निरन्तर यही तीन प्रकार के कर्त्तव्य स्त्रियों के लिए उपयुक्त होंगे। हिन्दू स्त्रियां प्राचीन समय में यही तीन प्रकार के कर्तव्य पालन करती थीं। आधुनिक स्त्रियों को भी यही तीनों कर्तव्य पालन करना है। फेर केवल इतनाही मात्र है कि जैसे २ समय बदलता जाता है वैसे ही वैसे सांसारिक स्थिति में भी कुछ २ फेर पड़ता जाता है। उस फेरफार का अनुकरण करते हुए काम करना चाहिये। समय के फेरफार को न देखकर केवल "जो था वही अच्छा था" यह सोचकर इसी के आधार पर बैठे रहने से अपनी उन्नति नहीं हो सकती। जो हम ऐसा करेंगी तो हमारा जन्म पशुवत होजायगा। वर्तमान काल में सब प्रकार की उद्योग चपलता इतनी बढ़रही है कि स्त्रियां यदि केवल अपने पतिमात्र को देवता मानकर बैठी रहेंगी तो काम न चलेगा। उनको प्रचलित आन्दोलन में भी भाग लेना आवश्यक है परन्तु इस बात पर उन्हें सदा ध्यान रखना चाहिये कि जिस स्त्री को इस संसार में उच्च शिक्षा प्राप्त हुई हो और जिसे कुछ स्वतन्त्रता प्राप्त हो उसको उसका दुरुपयोग करना और प्राचीन कथाओं के उदाहरणों को विस्मृत कर सब बात में पुरुषों का अनुकरण कर अपनी स्वाभाविक सुन्दरता का नाश न करना चाहिये। अपने देश की प्राचीन परंपरा प्राप्त भावना प्रणाली से पृथक होने की आवश्यकता नहीं है। वे सब उदाहरण उनके उपरान्त अर्वाचीन स्त्रियों के उदाहरण भी आजकल के बदले हुए समय में स्त्रियों को ध्यान में रखना चाहिये। यह बड़े आनन्द की बात है कि अपनी कन्याओं के रोम रोम में प्राचीन समय के श्रेष्ठ विचार बहुमूल्य हैं। परन्तु फिर भी बचपन की अवस्था में माता पिता को बहुतही सावधानी से इनके साथ वर्तन करना चाहिये। हिन्दुस्तान की पढ़ी लिखी स्त्रियों ने अपनी प्राचीन काल की बहनों के वृत्तान्तों को, अपने जाति स्वभाव और अपने

तीन प्रकार के कर्तव्यों को, जो इस लेख में एक ठिकाने गिनाए जा चुके हैं, सदा आदर किया है। मैं पढ़ी लिखी स्त्रियों पर ज़ोर देना चाहती हूं कारण यह कि अन्य "नई औरतें" जिनका स्वभाव मूर्ख होने के कारण दूषित होरहा है केवल निरुपयोगी और समय को लज्जा प्राप्त करानेवाली हैं। ऐसी स्त्रियां इस समय केवल अपवादमात्र समझी जाती हैं। नवीन प्रकार की सुशिक्षिता देवियों के उदाहरण से इस बात का पूरा परिचय मिल सकता है कि इस समय जो उनको अधिक सर्वगामी शिक्षा प्राप्त होती है उससे उनके व्यावहारिक सद्गुण जो स्त्रियों की सुन्दरता, चतुराई और आभूषण समझे जाते हैं कम नहीं होते। वर्तमान समय की शिक्षाओं से हिन्दू स्त्रियों के मन अथवा विचार अस्थिर हुए हों ऐसे उदाहरण सम्भव हैं मिलें किन्तु बङ्गाल, मुम्बई तथा दक्षिण की सब सुशिक्षिता स्त्रियों को एक वर्ग में संयुक्त कर अर्थात् एक साथ मिलाकर देखने से मालूम होगा कि वे अपने घर के काम काज में, अपनी सन्तान की रक्षा करने में और जनसमूह के लिए उपयोगी होने में, साधारण स्त्रियों की अपेक्षा बहुत ऊँचे दर्जे पर चढ़ी हुई हैं।

आज से ५० वर्ष पहले जो शंका उत्पन्न होती थी कि अपनी कन्याओं को यदि सर्वगामी शिक्षा दिलायेंगे तो उनका गृह संसार बिगड़ जायगा वह शंका अब नहीं रह गई। अनेक स्थानों में स्त्रियों को उच्च शिक्षा दी गई है और शिक्षा प्राप्त करने पर भी वे अपने व्यावहारिक सद्गुणों को कायम रख सकी हैं। वास्तव में एक नई बात होने के कारण स्त्री शिक्षा ने अभी अधिक विस्तार नहीं पाया है। इससे प्रतीत होता है कि स्त्रियों के मुख्य कर्त्तव्य वर्तमान समय में यद्यपि प्राचीन काल के समान ही हैं तथापि उनकी स्थिति कुछ बदली हुई अवश्य है। इससे अपने व्यवहार के अनेक सूक्ष्म विषयों में फेरफार हुआ है। प्रथम तो पूर्वकाल में जो शिक्षा दी जाती थी उससे अधिक ऊँचे दर्जे की शिक्षा और सर्वगामी शिक्षा आजकल के समय में देनी अभीष्ट और आवश्यक भी है। आज सकड़ों वर्ष पहले से कथाओं द्वारा दिया हुआ शिक्षण इस समय के लिए पर्याप्त नहीं है। वर्तमान समय का, वर्तमान समय के इतिहास का, और पृथक् पृथक् साहित्यों का, ज्ञान होना भी आजकल के समय में आवश्यक है। केवलमात्र भरतखण्ड के प्राचीन राजाओं और महापुरुषों के चरित्र और रीतिभांति के ज्ञान से लाभ नहीं हो सकता। विदेशी प्रजाओं के इतिहास का ज्ञान भी ज़रूरी है। वर्तमान कालीन विज्ञान में आश्चर्यकारक फेरफार और परिशोधन होता है। उसका ज्ञान प्राप्त करने की सभी को तृष्णा होनी चाहिये।

आधुनिक सुशिक्षित स्त्रियां अपने देश का गौरव बढ़ाती हुई जगत् में क्या होरहा है इस बात का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करती हैं। जब ये सब ज्ञान उचित रीति पर प्राप्त होते हैं तब वह स्त्री अपनी सन्तान को बहुत अच्छी तरह शिक्षण दे सकती है। साथही साथ वह अपने पति की भी आनन्ददायिनी और सहचारिणी हो सकती है। नूतन स्त्री अधिक स्वतन्त्रता की सरसता तभी समझ सकेगी जब पुरुष और स्त्रियों के समाज में घूम फिर कर वे सामाजिक संस्थाओं में भाषण वगैरह में योग्य भाग लेंगी और घर के एक कोने में बैठकर अपने अमूल्य समय को नष्ट न करेंगी वरन् अपने घर में अपने पति और त्योंहीं अपने अतिथि वर्ग का मनोरंजन करेंगी। सम्भव है पुरानी लकीर के फ़क़ीरों को इस प्रकार का रहन-सहन अमर्याद मालूम हो और इससे उनको भविष्य में मर्यादा भङ्ग हो जाने का भय हो परन्तु इसमें भय का कोई भी वास्तविक कारण नहीं है। स्त्रियों को सदाचरण से पुरुषमण्डल पर भी अच्छा प्रभाव

पड़ेगा। ये नवशिक्षिता स्त्रियाँ सांसारिक सुधार के कार्य में अनेक प्रकार से सहायभूत होंगी। स्त्रीशिक्षा के प्रचार का प्रयत्न ये सुशिक्षिता स्त्रियाँ अत्यन्त आतुरता के साथ करेंगी। जातिभेद का बन्धन भी शीघ्रही शिथिल होना सम्भव है। बंगाल सरीखे आगे बढ़े हुए भाग में ऐसी स्त्रियों के अनेक उदाहरण वर्तमान हैं और ऐसी स्त्रियों की संख्या दिन दिन बढ़ती जाती है। इङ्गलैंड आदि देशों में जाकर जिन्होंने शिक्षा प्राप्त को है वे जब वहां से लौट कर आते हैं तो सुशिक्षिता और कलाकुशल कन्याओं के साथ ही विवाह करना पसन्द करते हैं और ऐसी स्त्रियों के माता पिता भी अपनी प्यारी पुत्रियों को योग्य वर मिले इसलिए सब प्रकार के बन्धनों को दूर करने के लिए तैयार होरहे हैं। इस सुधरे हुए वर्ग में विधवाओं पर होनेवाले अनेक प्रकार के क्रूर अत्याचार नहीं होने पाते और निरंतर हर एक विषय पर धीरे २ सुधार की मात्रा बढ़ती जाती है। यह सब सुशिक्षित स्त्रियों के परिपक्व विचारों का ही परिणाम है।

इन सब बातों से मालूम पड़ता है कि समस्त भारतवर्ष में आजदिन जो कुछ उन्नति दिखाई देती है वह सब आधुनिक सुधार का परिणाम है। इस बात की कल्पना करने से अपने को आनन्द प्राप्त होता है। स्त्रियां अपने देश और प्रजा के मुख को उज्ज्वल कर सकती हैं। अपनी उन्नति से कितनो ही बातों में तो उनका अग्रगामिनी होना सम्भव है। उनको चाहिये कि सुधार के कार्य में उत्तेजना दें और उच्च प्रकार की स्त्रीशिक्षा प्राप्त करें। जातीय उन्नति के आन्दोलन में शिक्षित स्त्रियों की सहायता बहुमूल्य होगी। आशा है कि हमारे देश की स्त्रियां प्राचीन समय की आर्य स्त्रियों के उदाहरणों से शिक्षा ग्रहण करेंगी और अपना सुधार करने में सफलप्रयत्न होंगी। और हम आशा रखेंगी कि अपने देश की और प्राचीन समय की आर्य स्त्रियों का उदाहरण लेकर सुधार करने में वे सफल प्रयास हों और अपनी ज़िन्दगी में योग्य फेरफार करें।

Tennyson टेनीसन साहब कहते हैं।

Everywhere two heads in council,
Two beside the hearth, two in the
Tangled business of the world,
Two in the liberal offices of life,
Two plummets dropt for one to sound
The abyss of science and the secrets of the
Mind, muscian, painter, sculptor,
Critic more, and everywhere the broad
And bounteous earth should bear a
Double growth of those rare souls
Poets, whose thoughts enrich the blood of the world.

और,

Nor stanger seemed their hearts,
So gentle, so employed should close in Love
Then when two dew drops on the petal shake

Two the some sweet air and tremble,
Deeper down and slip at once
All fragrant into one."

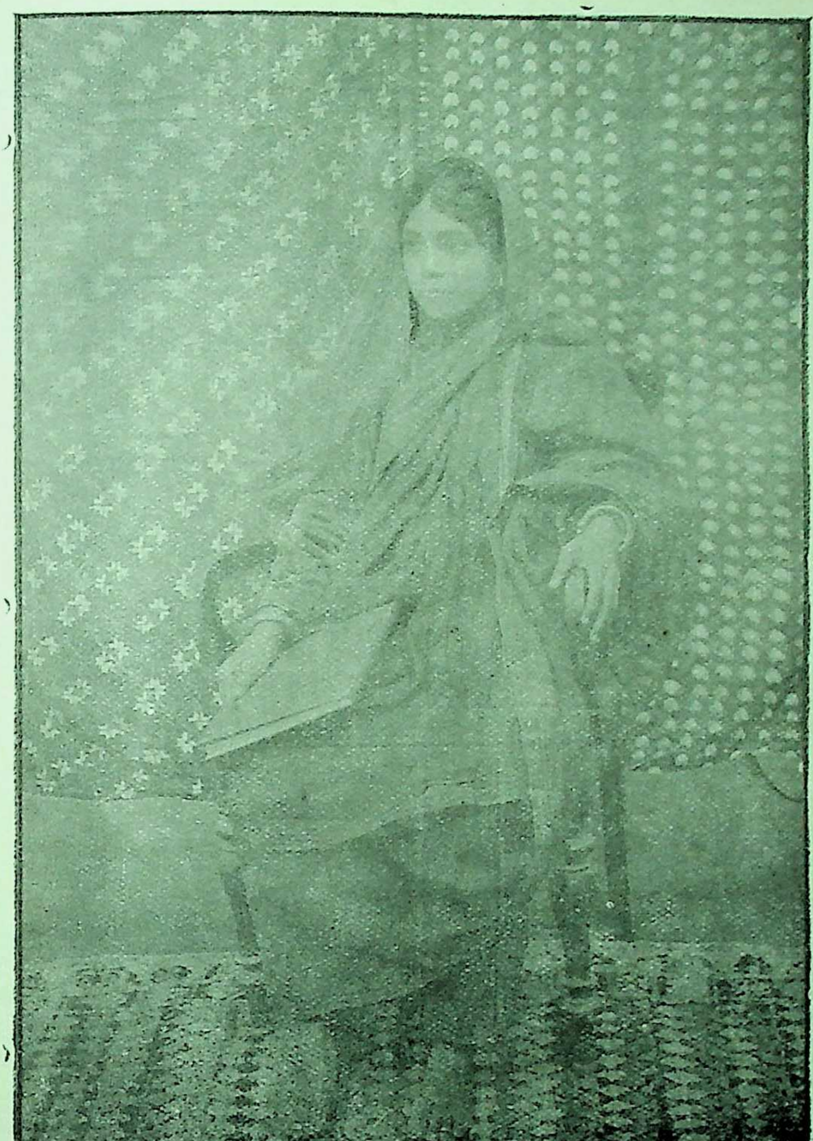

श्रीमती हेमन्तकुमारी देवी ।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग ।

प्राचीन और अर्वाचीन भारत में स्त्रियों की स्थिति और उनके कार्य*

[लेखिका-श्रीमती कुमुदिनी मित्र, बी० ए० ।]

उन्नति साधन के लिए अर्थात् उन्नति के पथ पर अग्रसर होने के लिए जिस महान आन्दोलन ने वर्तमान समय में समस्त संसार को क्षुब्ध करदिया है उस आन्दोलन द्वारा एशिया द्वीप की स्त्रियों की हृदयतन्त्री भी आहत हुई है। वे भी अब इस संसारव्यापी आन्दोलन में भाग लेने के लिए उत्सुक तथा चिन्तित हुई हैं। वे केवल गार्हस्थ्य जीवन के सुख से ही अब सन्तुष्ट नहीं हैं किन्तु वे अपनी मातृभूमि तथा मनुष्य जाति के कल्याण के निमित्त कार्य करना चाहती हैं। अब स्त्रियां सत्य के लिए अपना जीवन समर्पण करने को अग्रसर होरही हैं।

प्राचीन काल में जब भारत गौरवान्वित था, भारतीय स्त्रियां धार्मिक उत्साह से उतना ही तथा विद्या के प्रकाश से उतना ही देदीप्यमान होती थीं जितना कि वे ईश्वर सन्तान की सेवा के लिए तत्पर तथा उद्यत होती थीं। धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक मामलों में उन्हें पूरी स्वतन्त्रता थी और वे अपनी इच्छानुसार जिस प्रकार चाहतीं जीवन व्यतीत करती थीं। कतिपय वैदिक गीत स्त्रियों द्वाराही रचे गये हैं। उपनिषदों में हम गार्गी नाम की एक शास्त्रप्रवीणा बिदुषी को विद्वान तथा ऋषियों की सभा में याज्ञवल्क्य नामक एक महर्षि के साथ आध्यात्मिक विद्या सम्बन्धी भ्रान्ति में डालने वाले प्रश्नों पर तर्क करते हुए पाते हैं। गार्गी ब्रह्मवादिनी कहलाती हैं। गार्गी के समान और भी स्त्रियां थीं जिन्होंने भारत के ज्ञान विषयक दिङ्मण्डल को अपनी अलौकिक प्रतिभा तथा विद्वत्ता से उज्वल नक्षत्रों के तुल्य उद्भासित किया था। मैत्रयी दूसरी ब्रह्मवादिनी हैं जिनकी कथा हम उपनिषदों में पाते हैं। जब उनके पति ने ईश्वरचिन्तन के निमित्त सन्यास लेने के विचार से अपनी समस्त संपत्ति को अपनी दो स्त्रियों के बीच में उनके पालनार्थ बांटना चाहा तब मैत्रेयी सहसा बोल उठीं "मुझे उस पदार्थ से क्या सम्बन्ध जो मुझे अमृतत्व प्रदान नहीं कर सकता"? भारत के पुरुषों और स्त्रियों के जीवन का यही आन्तरिक अभिप्राय था और इस दिन भी यह विचार भारतवासियों के नैतिक जीवन पर छिपे छिपे प्रभाव डालता है।

प्राचीन भारत की स्त्रियां जीवन के प्रत्येक विभाग में पूर्ण रूप से स्वच्छन्द थीं। वे ज्योतिष, गणित, दर्शनशास्त्र, न्याय तथा साहित्य में पटु होती थीं। इन विषयों पर वे ग्रन्थ भी रचती थीं। लीलावती जिसने बीजगणित पर ग्रन्थ लिखे, तथा खन, जो ज्योतिष में प्रवीण थी इन विदुषियों के नाम घर घर प्रसिद्ध हैं। खन के विषय में ऐसा कहा जाता है कि चूंकि वह अपने पति तथा श्वसुर की अपेक्षा ज्योतिष तथा अन्य शास्त्रों में कहीं अधिक निपुण थी इस कारण से उसकी जिह्वा ईर्षा से काटली गई परन्तु यह चित्र उस समय का है जब भारत का पतन आरम्भ होगया था।

भारत की गिरी अवस्था में भी आज को भारतीय विदुषियों के उदाहरण बतलाये जा सकते हैं। जब भारत स्वतन्त्र था, भारतवासियों का हृदय भी स्वतंत्र, उन्नत, निष्कपट तथा असंदिग्ध था, इसीलिए भारतीय पुत्रियां भी अपने विचार तथा कार्य में पूर्ण रीति से

---

* यह लेख विशेषकर बुधापेस्ट में होनेवाली स्त्रियों की कांग्रेस के लिए लिखा गया था। लेखिका महोदया वहां न जा सकीं और इस कारण से यह वहां पढ़े हुए के समान मान लिया गया।

स्वतंत्र थीं। वे विद्यारसिक और साथ ही साथ साध्वी भी होती थीं। वे राज्य के कार्य सम्पादन करती थी। अवसर पड़ने पर वे स्वदेश के लिए युद्ध भी करती थीं। उनकी वीरता के उदाहरण इतिहास प्रसिद्ध हैं। अस्तु सुवर्णमय भारत के सुदिनों में भारतीय स्त्रियां धार्मिक उत्साह, वीरता, विद्या, आत्मोत्सर्ग तथा सच्चरित्रता के लिए प्रसिद्ध थीं और यह अवस्था कम से कम १००० वर्ष ईसा के पूर्व अवश्य थी। मैं कहती हूं कि भारतीय स्त्रियों का अवस्था "कम से कम १००० वर्ष ईसा के पूर्व" ऐसी अवश्य थीं क्योंकि स्त्रियों की विद्वता तथा उन्नत अवस्था के उदाहरण वेद में हमको मिलते हैं और वैदिककाल का आरम्भ २०००–१५०० वर्ष ईसा से पूर्व वियाना के अध्यापक बलिर (Professor Brihler of Vieuna), गिटिंगन के अध्यापक कीलहार्म (Professor Kielhorm of Gittingen) तथा मोक्षमूलर भट्ट प्रभृति योरुप के प्राच्य विद्या विशारदों द्वारा निर्धारित हुआ है। बान विश्वविद्यालय के अध्यापक जकोबी साहब (Professor Jacobi of Boun) गणित के आधार पर ऋग्वेद का समयारंभ ४००० वर्ष ईसा से पूर्व मानते हैं। ऋग्वेद का समय चाहे जो हो इतना तो पूर्ण रूप से पाश्चात्य विद्वानों द्वारा स्थिर हो गया है कि वेद का साहित्य ग्रीस देश के साहित्य से कहीं प्राचीन है। यह भी माना जाता है कि यह साहित्य बहुत कुछ स्त्रियों द्वारा सुसम्पन्न किया गया था।

उस समय के भारतवासियों का मानसिक जीवन इस विचार के सर्वथा अधीन था! कि यह जगत् माया है और इसलिए समस्त सांसारिक कार्य तथा जीवन दोषमूलक हैं। इस विचार के प्रभाव से उन्होंने कोई इतिहास नहीं लिखा। इसके अभाव से प्राचीन भारतसम्बन्धी प्रत्येक बात जब तक कि कतिपय योरुपीय विद्वानों का भारत, भारतीय साहित्य तथा भारतीय सभ्यता के प्रति विशेष रूप से अनुराग अंकुरित नहीं हुआ तब तक अन्धकाराच्छन्न तथा गुह्य रही। यह केवल उन्हीं के उद्योग तथा आत्मोत्सर्ग का फल है कि १०० वर्ष के भीतर ही समस्त संस्कृत साहित्य भंडार का अनुसन्धान हो गया है और भारत का इतिहास वह कितना ही अपूर्ण और दोषयुक्त क्यों न हो–लिखा जा सका है। इतना हमको लज्जा के साथ स्वीकार करना होगा कि भारतवासियों ने अपने ही इतिहास, सभ्यता तथा साहित्य को जानने को कुछ भी चेष्टा नहीं की। किन्तु जैसा मैं पहले कह चुकी हूं सांसारिक विषयों की ओर अश्रद्धा ही इस दुर्बलता का प्रधान कारण है और सांसारिक बातों से उदासीन रहने के कारण ही उनकी विचारशक्ति बहुत प्रबल हो गई थी। वस्तुतः उन्होंने मानसिक लोक का अनुसन्धान करने तथा उसको लावण्यमय बनाने में ही अपनी समस्त शक्तियों तथा मानसिक बल का उपयोग किया था। भूनसृष्टि में उनकी तनिक भी आसक्ति न थी। इसका परिणाम यह हुआ कि भारतवासी स्वतन्त्र रूप से कई दर्शनों का विकास कर सके और यह उनकी उच्च विचारशक्ति का प्रमाण है।

पाश्चात्य विद्वान संस्कृत साहित्य के निरन्तर परिशीलन तथा आर्य जाति के मूल तथा सभ्यता विषयक खोज से जिन परिणामों पर पहुंचे हैं वे निम्नलिखित शब्दों में जिनको मैं संस्कृत के बोडेन अध्यापक कारपस क्रिस्टी कालेज के डाक्टर मुग्धानल रचित 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' नामक ग्रन्थ से उद्धृत करती हूं बताये जा सकते हैं।

"जितना मनोयोग संस्कृत साहित्य के अध्ययन में इस देश में अब तक दिया गया है उससे कहीं अधिक मनोयोग देने की आवश्यकता है। कारण यह है कि भिन्न २ भाषाओं

तथा धार्मिक विचारों के मूल तत्व जानने के लिए संस्कृत साहित्य एक उत्तम सामग्री है और निस्सन्देह हिन्दू सभ्यता के ज्ञान के लिए तो यह एक मात्र उपाय है ।

मानव विकास के अध्ययन करने के लिए ग्रीस के साहित्य की अपेक्षा संस्कृत साहित्य की उपयोगिता बढ़ी चढ़ी है । इसका प्राचीनतमकाल ग्रीक साहित्यकाल से कहीं प्राचीन होने के कारण धार्मिक विश्वासों के पूर्व रूप को कहीं अच्छी तरह प्रकट करता है और इसीलिए संसार के अन्य प्राचीन ग्रन्थों की अपेक्षा धार्मिक विचारों के विकास का कहीं अच्छा चित्र इससे मिलता है । प्राचीन भारत के साहित्य का गौरव उसकी अपूर्वता में है । प्रकृति ने ही भारतवर्ष को हिमालय पर्वत द्वारा समस्त संसार से पृथक करदिया है और इसीलिए आर्यजाति के प्रथम आक्रमण के समय से ही जम्बू द्वीप एक छोटासा संसार है और इस समस्त देश में एक नवीन प्रकार की आर्यसभ्यता फैली है ।

जिस समय ईसा के पूर्व चतुर्थ शतक के अन्त में ग्रीक लोगों ने भारत के उत्तम पश्चिम के भाग पर आक्रमण किया था उस समय भारतवासियों ने अपनी जातीय सभ्यता कायम करली थी । उस पर विदेशीय प्रभाव तनिक भी नहीं पड़ा था । पारसी, ग्रीक, शक तथा मुसलमानों के निरन्तर आक्रमण होने पर भी भारतीय आर्य जाति के जीवन तथा साहित्य के विकास का प्रवाह तनिक भी न रुका और बृटिश राज्य काल के आरम्भ तक वाह्य प्रभावों से वह अविकृत रहा ।

ऐसा पृथक् तथा स्वतन्त्र विकास इण्डोयोरोपियन जाति की किसी अन्य शाखा द्वारा नहीं अनुभूत हुआ है ।

चीन को कदाचित् छोड़कर और कोई ऐसा देश नहीं है जहां भारत के समान भाषा, साहित्य, धार्मिक विचार तथा आचार और गार्हस्थ्य तथा सामाजिक नियम का तीन हज़ार वर्ष तक अविच्छिन्न विकास पाया जाता हो ।

विज्ञान की भिन्न २ शाखाओं जैसे स्वर विद्या, व्याकरण, गणित, ज्योतिष, आयुर्वेद तथा धर्मशास्त्र में भी भारतवासियों ने उत्कृष्ट सफलता प्राप्त की थी । इनमें से कुछ विषय तो ऐसे हैं जिनमें वे ग्रीक लोगों की अपेक्षा कहीं अधिक सफल हुए हैं । यह एक विशेष बात है कि इस प्रशंसनीय उद्योग में भारत की सुपुत्रियों ने वही भाग लिया है जो भारत के सुपुत्रों ने ।

बौद्धकाल

५००–२०० वर्ष ईसा के पूर्व है । भिन्न २ बौद्ध धर्म संगीतियों की लेखबद्ध तिथियों से यह निर्धारित हुआ है कि बुद्ध का निर्वाण ईसा के ४८० वर्ष पूर्व हुआ था । बुद्ध के जीवन काल में सहस्रों स्त्रियां बुद्ध के निर्दिष्ट किये हुए मोक्ष मार्ग से परिचित थीं और उन्होंने बुद्ध के झंडे का आश्रय लिया था । उन्होंने अपना घर त्याग दिया और भिक्खुनी अर्थात् परिव्राजिका बन गईं । पाली भाषा में एक ग्रन्थ है जिसका नाम 'थेरीगाथा' (अर्थात् विदुषियों के गीत) है । इस ग्रन्थ में धार्मिक तथा विदुषी स्त्रियों द्वारा रचित ऐसी गाथाएं हैं जिनमें धार्मिक उन्नति तथा आध्यात्मिक उत्साह के परिणाम दर्शाए गए हैं । जिन्होंने स्वयं भगवान बुद्ध के मुख से उनकी शिक्षाओं को दत्तचित्त हो सुना था और उनसे अपने जीवन में लाभ उठाया था उनमें से केवल ७३ स्त्रियों के ही गीत 'थेरीगाथा' में निबद्ध हैं । इन गाथाओं में बहुतों ने अपने जीवन के वृत्तान्त तथा धर्म सम्बन्धी अनुभवों को लिखा है ।

इन गाथाओं से विदित होता है कि स्त्री-स्वातंत्र्य तथा स्त्री-शिक्षा के विषय में भारत का

बहुत उन्नत स्थान था। इनसे यह भी स्पष्ट प्रमाणित होता है कि बौद्धकाल में स्त्री-स्वातंत्र्य तथा शिक्षा का प्रचार समस्त देश में विस्तृत था। इन थेरियों (विदुषियों) के जीवनचरित्रों के आधार पर पाश्चात्य विद्वानों ने यह मत प्रकट किया है कि संसार में विद्या तथा स्वातंत्र्य प्राप्ति के लिए स्त्रियों द्वारा जो उन्नति हुई है उसका वैसा ही दूसरा उदाहरण नहीं मिल सकता जैसा कि भारत की स्त्रियों द्वारा लगभग २५०० वर्ष पहिले हमको मिलता है। अध्यापक रीज़ डेविड्स (Rhys Davids) अपनी 'बौद्धधर्म' (Buddhism) नामक पुस्तक में लिखते हैं:- थेरीगाथा में हमको थेरियों के जीवन का एक उपदेशपूर्ण चित्र मिलता है। स्त्रियों को इतनी स्वतन्त्रता तथा समाज में इतना उच्च स्थान देना बौद्धधर्म के नेताओं के लिए एक बड़ीभारी बात थी। परन्तु इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि इस कार्य में उनको सफलता प्राप्त हुई और इनमें से बहुत सी स्त्रियाँ विद्या कौशल के लिए उतनाही प्रसिद्ध थीं जितना कि धार्मिक उत्साह तथा ज्ञान के लिए वे विख्यात थीं।

मैं समझती हूं कि प्राचीन काल में भारतीय स्त्रियों की उन्नत अवस्था के सम्बन्ध में मैं काफी कह चुकी हूं। अब मैं इस प्रश्न की दूसरी अवस्था की ओर आती हूं।

स्त्रियों की इस उच्च तथा प्रशंस्य अवस्था में बौद्धकाल के अन्त तक कोई परिवर्तन नहीं हुआ। वरंच ईस्वी सन् १०० में जो मुसलमान आक्रमण हुआ था। उस समयतक उनको सामाजिक स्वतंत्रता रही। स्त्रियों को अन्तःपुर में बन्द रखने का नियम मुसलमानों के साथ इस देश में आया—यद्यपि मुसलमानी राजत्वकाल में भारतवर्ष की आर्थिक दशा में कुछ अन्तर नहीं पड़ा तथापि भारतवासियों के सामाजिक नियमों में उनके बुरे प्रभाव के पड़ने से एक दम हेर-फेर हो गया—बहुविवाह के नियम के कारण वे बलात्कार अच्छे कुलों की लड़कियों को जो उनकी दृष्टि में सुन्दर होती थीं अपने अन्तःपुर में लेने लगे। मुसलमानों के विजय तथा उन भारतवासियों की शिथिलता के कारण जो अपनी कन्याओं को अपने से अधिक बलवान विजेताओं के हाथ से बचाने में असमर्थ थे उनको विवश होकर अपनी कन्याओं को घर के भीतर बन्द रखना पड़ा। इस बात का सब से दृढ़ प्रमाण यह है कि भारत के उन भागों में (उदाहरण के लिए महाराष्ट्र) जो मुसलमानी शासन में स्वतन्त्र थे इस समय भी परदे का प्रचार नहीं है। इससे भारतवासियों की स्वच्छन्दता बहुत कुछ नियमित हो गई और बारम्बार मुसलमानों से पीड़ित किये जाने पर धीरे २ वे बाल्य-विवाह तथा परदे का रिवाज़ पड़ गया। बाल्य-विवाह की कुप्रथा का यह फल हुआ कि स्त्रियां शिक्षा से बञ्चित रहने लगीं और धीरे २ वे अज्ञान के अन्धकार में रक्खी जाने लगीं। जब कि हिन्दू लोग ईश्वरवाद से परिभ्रष्ट होकर मूर्तिपूजा करने लगे तथा आनुषंगिक मूढ़ विश्वासों में फँस गये तब लोग स्त्रियों की ओर आशंका करने लग गये तथा उनको और कड़े परदे में रखने लग गये। १६वीं शताब्दी तथा उसके पश्चात् भारतीय स्त्रियों की दशा अत्यन्त ही शोचनीय हो गई थी। सच तो यों है कि इस समय भारत की धार्मिक, राजनैतिक तथा सामाजिक अवस्था सर्वथा गिरी हुई थी।

राजा राममोहन राय।

भारतीय स्त्रियों का पुनरुत्थान राजा राममोहनराय के समय से आरम्भ होता है। राजा साहेब १८वीं शताब्दी के सब से बड़े भारतवासी हो गये हैं। वस्तुतः आप धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा शिक्षा सम्बन्धी उन्नति में अग्रसर रहे और स्वदेश के कल्याण तथा दिन साधन की सदा चेष्टा करते रहे हैं। आपने अपने ही उद्योग से इतनी योग्यता प्राप्त की। सोलह ही वर्ष की अल्पावस्था में आपके

पिता ने आपको मूर्तिपूजा-जो उस समय प्रचलित धर्म था—पर अश्रद्धा होने के कारण घर से निकाल दिया था। उन अन्धकार के दिनों में जब भारतवर्ष की दशा गड़बड़ थी, जब कि देश अवस्थान्तर को प्राप्त हो रहा था, और जब कि अङ्गरेज़ अच्छी प्रकार से देश में जम भी न पाये थे, बालक राममोहन सत्य की खोज में बौद्ध धर्म की शिक्षा प्राप्त करने के विचार से तिब्बत गया। वहां उसे सर्वदा भय लगा रहता था। तिब्बत के लोग विदेशियों को अपने देश में नहीं आने देते। वे हर एक नव-आगन्तुक को संदिग्ध दृष्टि से देखते हैं और उनको इसका भय लगा रहता है कि कहीं इनके कारण स्वतन्त्रता न खोना पड़े! परन्तु बालक तिब्बती स्त्रियों द्वारा सुरक्षित था, वे रक्षापूर्वक उसको भारत की सीमा तक पहुँचा गईं, इस कृपा के लिए वह इतना कृतज्ञ हुआ कि उस समय से मरणकाल तक स्त्री जाति के प्रति उसकी अगाध श्रद्धा तथा प्रीति बनी रही और उसने इस बात का निश्चय कर लिया कि वह अपने समस्त जीवन को स्वदेश की स्त्रियों की अवस्था सुधारने में व्यतीत करेगा। उन्होंने संस्कृत साहित्य में बड़ी निपुणता प्राप्त की। वेद, उपनिषद तथा अन्य धार्मिक ग्रन्था के ज्ञान से उन्होंने भारत के प्राचीन ईश्वरवाद को पुनर्जीवित किया और उसको सर्वसाधारण तक पहुंचाया। जो समाज उन्होंने स्थापित किया वह इस समय ब्रह्म-समाज के नाम से जानी जाती है और वह भारत की धार्मिक तथा सामाजिक उन्नति का प्रभाव है। राजा राममोहन राय ने भारतीय स्त्रियों की अवस्था उन्नत करने में अपना जीवन व्यतीत किया। उन्होंने सती की कुप्रथा उठा दी तथा भारतीय स्त्रियों के पूर्व पद पर प्रतिष्ठित करने के लिए बहुत से ग्रन्थ लिखे तथा पण्डितों से वादानुवाद किया। स्वयं संस्कृत, अरबी, फ़ारसी, उर्दू, बंगाली, अङ्गरेज़ी, फ्रेंच, लैटिन, ग्रीक तथा हिब्रू भाषाओं में भलीभांति व्युत्पन्न होने के कारण वे भारतवासियों को शिक्षा देने के बड़े पक्षपाती थे। उस समय अङ्गरेज़ी कर्मचारियों में इस बात का विवाद चल रहा था कि कौन सी शिक्षा-प्रणाली भारत में परिगृहीत करना श्रेयस्कर होगा। एक दल इस नीति का पक्षपाती था कि भारतवासियों को फ़ारसी तथा संस्कृत की ही शिक्षा देना चाहिये और दूसरा दल अङ्गरेज़ी शिक्षा के पक्ष में था। राजा राममोहन राय भी अङ्गरेज़ी शिक्षा के पक्षपाती थे। उन्होंने गवर्नर जनरल लार्ड ऐमहर्स्ट (Amherst) को एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने भारतवासियों को अङ्गरेज़ी शिक्षा देने की नीति का प्रतिपादन तथा समर्थन किया। उन्होंने पत्र में यह भी दिखलाया कि यह नीति न्यायसंगत है तथा फ़ारसी, संस्कृत मृतप्राय होने के कारण लोगों के चित्तों से मूढ़ विश्वासों के पृथक् करने में और उनको सत्य से उद्भासित करने में कदापि समर्थ न होंगी। उन्हीं की चेष्टा तथा उद्योग का यह फल है कि भारत का अंधकार दूर होने लगा और वह आगे बढ़ रहा है। स्त्रियां भी गाढ़ निद्रा से जागरही हैं।

वर्तमान वैज्ञानिक काल के प्रभाव ने उनकी आंखें खोलदी हैं और वे अपने प्राचीन गौरव को अनुभव करने का प्रयत्न कररही हैं। वे उन्नति के पथ पर आगे बढ़ना चाहती हैं। वे पुरुषों के साथ साथ मातृभूमि के कल्याण के लिए उद्योग करना चाहती हैं। उनके चित्त अब केवल गार्हस्थ्य जीवन के सुख से ही सन्तुष्ट नहीं हैं। वे मनुष्य जाति के मंगल के लिए कार्य करने को उत्सुक हैं तथा उनमें इस बात की उत्कट इच्छा है कि वे संसार के प्रसिद्ध पुरुष तथा स्त्रियों में उच्च पद को ग्रहण करें।

जो विद्या के प्रकाश से उद्भासित हुई हैं वे इस प्रकाश को चाहती उन बहिनों में फैलाने

के लिए उत्सुक हैं जो अभाग्यवश उस प्रकाश से वंचित रहगई हैं। भारत की कुछ स्त्रियों में इस बात की उत्कट इच्छा उत्पन्न हुई है कि वे अपनी प्यारी मातृभूमि के लिए अपना जीवन समर्पण करें। हमारा ऐसा विश्वास है कि जब तक भारत की स्त्रियां सुशिक्षित न होंगी तब तक भारत का कल्याण साधन नहीं होसकता। भारत की स्त्रियों में विद्या के प्रचार से बढ़कर कोई उत्कृष्ट कार्य नहीं है। हमें केवल शिक्षा की ही अपेक्षा है। स्त्रियों को अवश्य शिक्षा देना चाहिये और उनको ऐसी शिक्षा देना चाहिये जिससे वे "भारत के प्राचीन गौरव काल में उनकी क्या उत्कृष्ट अवस्था थी" इस बात पर विचार कर सकें। स्त्रियों को अवश्यही उचित शिक्षा देना चाहिये और पूर्व इसके कि भारतवर्ष अपने पूर्व पद की प्राप्ति की आकांक्षा करे इस बात की आवश्यकता है कि भारतीय स्त्रियां गम्भीर भाव से मनन करना सीखें।

ब्रह्मसमाज ने प्राचीन ऋषियों के ईश्वरवाद को देश में फिर से प्रतिष्ठित किया है और स्त्रीस्वातंत्र्य और स्त्रीशिक्षा को पुरातन काल के समान प्रतिपालन किया है। गवर्नमेंट द्वारा १९११ में जो मनुष्यगणना हुई थी उससे विदित होता है कि ब्रह्मसमाज ने अपने विचारों को कार्य में परिणत करके दिखा दिया है। भारत के उच्च आदर्श को सम्मुख रखते हुए और ऋषियों के मार्ग का अनुसरण करते हुए ब्रह्मसमाज ने संसार के आगे ईश्वर हम सब का पिता है तथा सब मनुष्य भाई हैं इन उच्चविचारों का प्रख्यापन किया है। ब्रह्मसमाज ने इस बात की उद्घोषणा की है कि पुरुष और स्त्री हर तरह से समान हैं। उसने जातिभेद को निर्मूल करदिया है। उसने बाल्यविवाह तथा इच्छा विरुद्ध वैधव्य को सामाजिक कुरीतियों को देश से निर्मूल करने का प्रयत्न किया है। उसने लोगों के सन्मुख मनुष्य सेवा के उच्च आदर्श को रक्खा है। उसने इस बात का उत्कीर्तन किया है कि प्रत्येक मनुष्य यदि उसमें ज्ञानोपलब्धि की उत्कट इच्छा विद्यमान है। चाहे पुरुष हो वा स्त्री चाहे जिस जाति का हो और चाहे जिस मत का अनुयायी हो ईश्वरीय ज्ञान को प्राप्त कर सकता है। मैं ब्रह्मसमाज के इन उत्कृष्ट कार्यों का उल्लेख न करूंगी क्योंकि वे यहां पर असंगत होंगे। मैं ब्रह्मसमाज के केवल उन्हीं कार्यों का यहां कथन करूंगी जो उसने शिक्षा के सम्बन्ध में किये हैं। १९११ की मनुष्यगणना से प्रकट होता है कि कलकत्ते में जो अभीतक भारतवर्ष की राजधानी थी १००० ब्रह्मसमाजियों में ८६२ और १००० ब्राह्म स्त्रियों में ८१३ शिक्षित हैं। हिन्दू समाज में (यहां 'हिन्दू' का प्रयोग विशेष अर्थ में है, तात्पर्य समाज के कट्टर भाग से है) १००० पुरुषों में ४२२ और १००० स्त्रियों में १३८ ही शिक्षित हैं। मुसलमानों में तो १००० पुरुषों में २०७ और १००० स्त्रियों में केवल ३२ ही पढ़ी लिखी हैं और ईसाइयों में १००० पीछे ८२२ पुरुष और १००० पीछे ६७३ स्त्रियां पढ़ी लिखी हैं। इस सूची से यह प्रकाशित होता है कि ब्रह्मसमाज ने बालक बालिकाओं की शिक्षा में कुछ भी भेद नहीं रक्खा है। उनके सिद्धान्त तथा व्यवहार में कुछ भी अन्तर नहीं है और हम आशा करते हैं कि अगले दश वर्ष के भीतर शिक्षितों की संख्या और बढ़ेगी। जो असमता बची है वह भी लोप होजावेगी। ब्रह्मसमाज ने समस्त भारत पर गम्भीर प्रभाव डाला है। स्त्रीस्वातंत्र्य तथा स्त्रीशिक्षा के आदर्श को देशभर के शिक्षित समुदाय ने स्वीकार किया है। अब कट्टर से कट्टर घरों में भी लड़कियों को कुछ शिक्षा दी जाती है यद्यपि यह शिक्षा बालविवाह की कुप्रथा के कारण अधूरी रह जाती है। ब्रह्मसमाज में इस समय लगभग ३० ऐसी स्त्रियां हैं जिन्होंने बी० ए० की उपाधि प्राप्त की है। यह उल्लेखयोग्य बात है कि लण्डन यूनिवर्सिटी को छोड़कर बृटेन के अन्य

विश्वविद्यालय स्त्रियों को उपाधि नहीं प्रदान करते परन्तु भारत की गवर्नमेंट भारतीय स्त्रियों को उपाधि प्रदान करती है । इसका कारण यही ज्ञात होता है कि भारत में अनादि काल से नालन्द, तक्षशिला तथा अन्य विश्वविद्यालयों में स्त्रियों को भी उपाधि प्रदान की जाती थी ।

भारत की सुशिक्षिता स्त्रियों ने धार्मिक, लोकोपकारक, शिक्षा तथा व्यवसाय सम्बन्धी कार्यों का भार अपने ऊपर लिया है और इन कार्यों को सम्पादन करने के लिए भारतवर्ष भर में वे समितियां संगठित कर रही हैं। अब मैं कुछ ऐसी समितियों का विवरण सुनाऊंगी जिनका प्रबन्ध सर्वथा भारतीय स्त्रियों ही के हाथ में हैं ।

शिक्षा सम्बन्धी कार्य ।

भारतीय स्त्रीमण्डल नाम की एक सभा का सूत्रपात किया गया है, इसका उद्देश्य कट्टर घरों की स्त्रियों को शिक्षा प्रदान करना है। ऐसे घरों में बाल्यविवाह के कारण बालिकाओं की शिक्षा अधिक से अधिक १४ वर्ष की अवस्था में समाप्त होजाती है क्योंकि विवाह के पश्चात् लड़कियां पाठशाला में पढ़ने नहीं भेजी जातीं।

प्रत्येक मनुष्य इस बात को विचार सकता है कि कितनी शिक्षा इस छोटी सी अवस्था में प्राप्त हो सकती है। इस असुविधा को दूर करने के लिए यह स्त्रीमण्डल स्थापित किया गया है। इसका कार्य घर पर जाकर लड़कियों को शिक्षा देना है। इसकी शाखाएं लाहौर, अमृतसर, दिल्ली, करांची, हैदराबाद, कानपुर, बांकीपुर, हज़ारीबाग़, मिदनापुर, कलकत्ता तथा अन्य प्रसिद्ध नगरों में खोलीगई हैं। कलकत्ता की शाखा सभा की ओर से कोई २० शिक्षिकाएं नियत हुई हैं। सौ से अधिक घरों की लड़कियां शिक्षा पाती हैं। शिक्षिकाएं इनको पढ़ाने के लिए घर२ जाती हैं। कलकत्ते में इस सभा ने लड़कियों की प्रारम्भिक शिक्षा के लिए भी एक पाठशाला खोली है। चार से लेकर ११ वर्ष तक की अवस्था की कोई ६० लड़कियां इस पाठशाला में पढ़ने आती हैं। अन्य स्थानों में पाठशालाएं खोली गई हैं जहां पड़ोस की अविवाहित बालिकाएं पढ़ने आती हैं और विवाहित लड़कियों को घर पर पढ़ाने के लिए शिक्षिकाएं नियुक्त हुई हैं। सभा का विचार भारतवर्ष भर में शाखा सभाएं खोलने का है।

कलकत्ते में लड़कियों के लिए भी एक पाठशाला है जहां मैट्रिक्यूलेशन कक्षा तक की शिक्षा दी जाती है। यहां स्त्रियां ही शिक्षक का कार्य करती हैं और इसका प्रबन्ध एक समिति के हाथ में है जिसमें स्त्री और पुरुष दोनों सदस्य हैं। यहां कट्टर घरों की भी लड़कियां आती हैं। कलकत्ते में एक संस्था 'स्त्री समाज' (Assembly of Ladies) नाम की भी खोली गई है। इसका उद्देश्य स्त्रियों में साधारण शिक्षा फैलाना है। यहां हर एक पक्ष में प्रसिद्ध कलकत्ता नगर के वैज्ञानिक, आचार्य, डाक्टर तथा अन्य विद्वानों के साहित्य, इतिहास, भूगोल, ज्योतिष, दर्शन, वनस्पतितत्व, जीवतत्व, भ्रमण विज्ञान, अर्थशास्त्र, राजनैतिक दर्शन, जीवनचरित्र तथा शिक्षासम्बन्धी विषयों पर व्याख्यान होते हैं। कभी २ मैजिक लैन्टर्न चित्रों द्वारा भी व्याख्यान उदाहृत होते हैं। बंगाल के भिन्न २ ज़िलों में स्त्रियों की साधारण शिक्षा के लिए बहुत सी सभाएं खोली गई हैं। कुछ सभाओं का उद्देश्य साथ २ लोकोपकार भी है। बिहार, उड़ीसा प्रान्त में संबलपुर नामक एक नगर है। यहां एक बंगाली विदुषी ने जो कविता भी करती हैं लड़कियों के लिए एक स्कूल खोला है। इस स्कूल में बङ्गाली, उड़िया, मदरासी तथा महार लड़कियां एक साथ शिक्षा पाती हैं। इसमें सन्देह नहीं कि भारतवर्ष भर में गवर्न्मेंट तथा ईसाई मिशनों के स्कूल और कालेज

विद्यमान हैं परन्तु मैं उनका उल्लेख नहीं करूंगी। सात वर्ष के लगभग हुआ कि कलकत्ते में एक विदुषी स्त्री ने अनाथ विधवाओं के लिए एक व्यावसायिक स्कूल खोला था। वही इस स्कूल की मंत्री भी हैं और इसका प्रबन्ध एक स्त्रियों की समिति द्वारा होता है। इस स्कूल में बुनना, लैस बनाना, कपड़ा सीना, काढ़ना और अन्य उपयोगी व्यवसाय सिखलाया जाता है जिससे अनाथ विधवाएँ अपना जीवन निर्वाह कर सकें। स्कूल में इन विधवाओं को प्रारम्भिक शिक्षा भी दी जाती है और उनमें से जो सुयोग्य होती हैं और शिक्षका बनने की इच्छा रखती हैं वें गवर्नमेंट ट्रेनिंग कालेज में भेज दी जाती हैं जहां की मुख्य अधिष्ठात्री लंडन के मैरिया ट्रेनिंग कालेज (Maria Training College) में शिक्षा पाई हुई एक स्त्री है। स्कूल के सम्बन्ध में एक आश्रम भी है जहां ३० विधवाएं रहती और शिक्षा पाती हैं। यहां कट्टर घरों की भी अनाथ विधवाएं रहती हैं। मदरास प्रान्त में कांजीवरम का हिन्दू गर्ल्स स्कूल है। इसका प्रबन्ध श्रीमती पार्वती देवी अन्य स्त्रियों की सहायता से करती हैं। वह सुशिक्षिता हैं, बालिकाएं स्कूल में बहुत काल तक अध्ययन नहीं कर सकतीं इस कारण से वह उनको एक अद्भुत उपाय द्वारा केवल ५ वर्ष के ही थोड़े समय में साहित्य, इतिहास, भूगोल, गणित, तथा लिखना, बोलना सिखला देती हैं, उनको ऐसी शिक्षा दी जाती है जिसमें वे अध्यापिकाओं की सहायता के बिना ही स्वयं अध्ययन कर सकें। मैसूर राज्य में बहुत दिन हुए महाराणी ने बालिकाओं के लिए एक कालेज खोला था।

कलकत्ते में स्त्रियों ने भारतीय संगीत तथा वादन सीखने के अभिप्राय से दो समाज स्थापित की हैं। यहां युवतियां तथा बालिकाएं गाना बजाना सिखाई जाती हैं। इन समाजों के स्थापित होने के पूर्व देशी बाजों का बहुत आदर न था, किन्तु जब से इन समाजों का जन्म हुआ है कदाचित् ही कोई शिक्षित घर मिलेगा जहां भारतीय संगीत का चर्चा न हो। कन्या पाठशालाओं में संगीत तथा वादन शिक्षा के लिए शिक्षक नियत किये जाते हैं।

२—लोकोपकारक सम्बन्धी कार्य।

कलकत्ते में कई सभा हैं जैसे भारतीय स्त्री समाज (Indian Ladies' Association) भगिनी समाज (Sisters society) प्रेम समाज (Association of Love)। इनका उद्देश्य गरीब दुखिया को सहायता पहुंचाना है, सभ्यों से जो चन्दा आता है वह सब दान में व्यय होता है, कभी २ गरीब विद्यार्थियों की सहायता पुस्तक तथा फीस से की जाती है। कभी २ बिधवा तथा गरीब कुलीनों में रुपया बांटा जाता है। कभी उन रोगियों की सेवा के लिए रुपया दिया जाता है जो निर्धन होने के कारण वैद्य की चिकित्सा नहीं कर सकते। कभी चिकित्सालयों की सहायता धन अथवा वस्त्रों द्वारा की जाती है। अच्छे घरों की स्त्रियां जो भारतीय स्त्री समाज की सभ्य हैं आवश्यकता पड़ने पर रोगियों की सेवा के लिए जाती हैं। पूर्व बंगाल के प्रसिद्ध नगर ढाका में कुछ स्त्रियों ने एक बिधवा आश्रम और एक अनाथालय खोला है। बिधवा आश्रम का प्रबन्ध एक कुलीन सुशिक्षिता बिधवा के हाथ में है। अनाथालय के प्रबन्ध का भार एक दूसरी स्त्री के ऊपर है। इस अनाथालय में लड़के लड़की दोनों रहते हैं।

मुम्बई प्रान्त में 'सेवा सदन' तथा 'शारदा सदन' उत्तम कार्य कर रहे हैं। 'सेवा सदन' शिक्षा के प्रचार, रोगियों की सेवा तथा दुखियों की सहायता करने में सराहनीय उद्योग कर रहा है। 'शारदा सदन' एक बिधवा आश्रम है। यह बहुत दिन हुए पंडिता रमाबाई के उद्योग से खुला था।

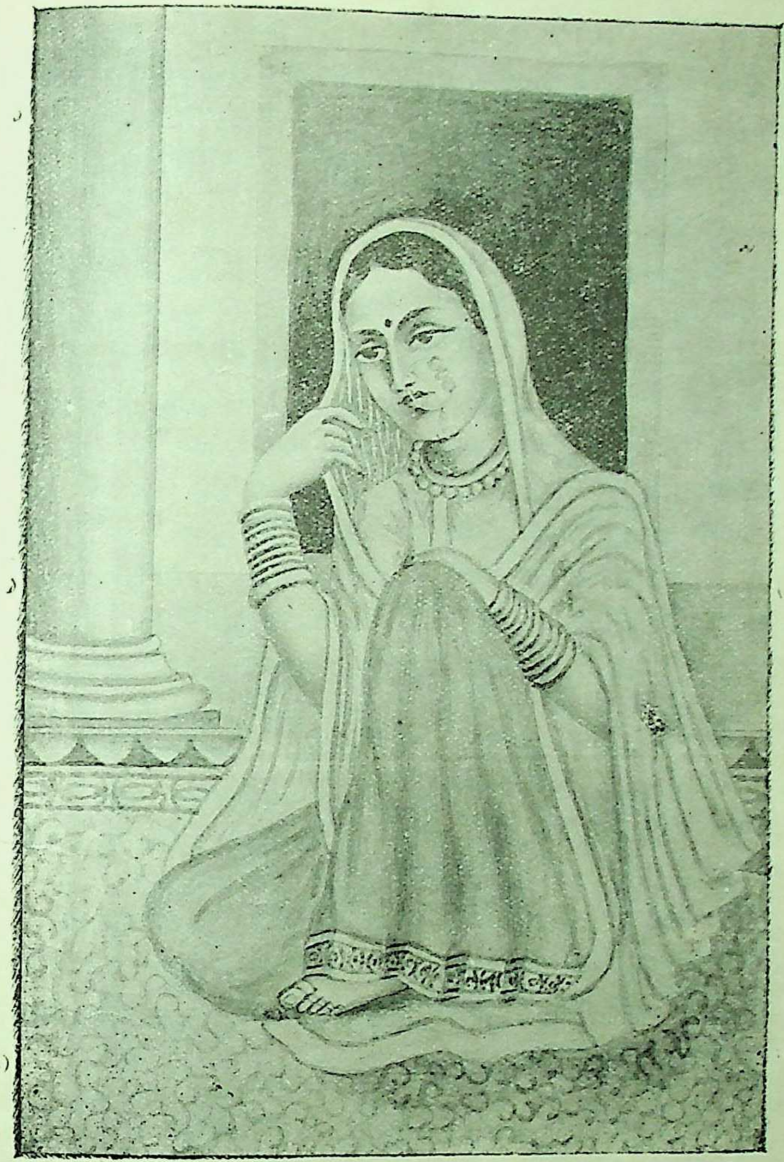

पंजाबी ललना।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग।

धर्म सम्बन्धी कार्य ।

कलकत्ते के 'भारतीय स्त्री समाज' का धार्मिक विभाग भी है। उसमें पक्ष में एक बार धार्मिक प्रश्नों पर तर्क होता है, प्रार्थना की जाती है और धार्मिक तथा दार्शनिक विषयों पर निबन्ध पढ़े जाते हैं।

व्यवसाय सम्बन्धी कार्य ।

एक बङ्गाली स्त्री ने एक "देशी बस्तु भांडार" कलकत्ते में खोला है। वहां कपड़े, कलम, कागज, पेंसिल, रोशनाई मोमबत्ती, शीशे की चूड़ियां, साबुन, जूते, बरतन और बहुतसी चीज़ें बिक्री के लिए रक्खी जाती हैं। यह स्त्री स्वयं मोमबत्ती, रोशनाई, बालों में लगाने की पिन, और सुगन्ध बनाती है। उसने इनका बनाना अपने पति से जो जापान से इनका बनाना सीख कर आये हैं सीखा है। अपने पति की सहायता से उसने जूते का फ़ीता, बाल में लगाने की पिन और कागज की पैन्सिल बनाने के लिए कुछ यंत्र खरीदे हैं। उन्होंने अपने घर में ही इन छोटे व्यवसायों के सिखाने का प्रबन्ध भी किया है। वह धीरे २ लैस तथा रिबन बनाने के लिए छोटे २ यन्त्र खरीदने का विचार कररही है। हम लोगों का विचार भारतवर्ष में भी जापान के समान छोटे २ व्यवसायों को खोलने का है।

उनका अनुसरण करते हुए दो अनाथ विधवाओं ने पिन बनाना सीख लिया है और अब दूसरों के सहारे वे जीविका निर्वाह नहीं करतीं। उनकी बनाई हुई चीजें भी इसी भाण्डार में बिक्री के लिए रक्खी जाती हैं और वे अपनेही उद्योग से जीवन निर्वाह के लिए काफ़ी धन कमा लेती हैं। बहुतसी अनाथ विधवाएं तथा निर्धन स्त्रियां भी अपनी बनाई हुई चीजें इस भाण्डार में बिक्री के लिए भेजती हैं और इस प्रकार धन उपार्जन करती हैं।

प्यारी बहिनो! यहां मैं अपने विवरण को समाप्त करती हूं। यद्यपि मुझे मालूम है कि इसमें बहुतसी त्रुटियां रह गई हैं परन्तु मैं सच्चे हृदय से आशा करती हूं कि आगामी महासभा के अधिवेशन में मैं स्वयं उपस्थित हो सकूंगी और इससे बढ़कर विवरण आप के सन्मुख उपस्थित कर सकूंगी। बहिनो! भारत की स्त्रियों में जागृति होगई है। आप एक स्वतन्त्र तथा प्रभावशाली जाति की पुत्रियां हैं। आप से वे प्रेम, सहानुभूति तथा सहायता की आशा करती हैं। आप हमारे लिए ईश्वर से प्रार्थना कीजिये कि हम फिर अपने पूर्व उच्च पद को प्राप्त करें। मैं आपकी महा सभा के लिए सफलता चाहती हूं। यद्यपि मेरा शरीर आप से हजारों मील की दूरी पर है। तथापि मेरा हृदय आपके उच्च उद्देश्य के लिए आपके साथ है।

प्रेम की अन्तिम श्रेष्टता ।

[लेखिका—एक प्रेमयोगिनी ।]

धन्य है प्रेम को बीज हिये,
अरु धन्य जो प्रेम निबाहन हारो ।
धन्य वो व्यक्ति जो प्रेम करें,
जग धन्य है प्रम पसारन हारो ।
दूजेन की शरणागत लै,
सुख पूर्वक प्राण करावन हारो ।
आठहु जाम न भूलत प्रेम,
जो बावर चित्त करावन हारो ॥ १ ॥

ज्यों रवि मंडल में रवि है,
भुव मण्डल तेज प्रकाशन हारो ।
तैसेहि प्रेम की ज्योति प्रकाश,
से प्रेमी को चित्त रहे उंजियारो ।
ज्यों बिरहानल आतुर को,
संयोग की आश दे प्राण उबारो ।
तैसे वियोगिन के मन को,
सुख सुन्दर प्रेमहि एक सहारो ॥ २ ॥

ज्यो नभ मण्डल में शशि राजत,
उष्ण की रैन जुड़ावन हारो ।
तैसहि प्रेमिन के मन में,
एक प्रेमहि शान्ति प्रचारन हारो ।
या सम रत्न नहीं जग में,
सुख सम्पति मान बढ़ावन हारो ।
श्रेष्ठ यही एक प्रेम अहै,
जो बावर चित्त करावन हारो ॥ ३ ॥

बिन देखे सुकोमल मूरति को,
मनही मन रोदन ठानति हैं ।
हिय प्रेम सनेम की क्षेम सुने बिन,
चित्त दशा पहिचानति हैं ।
नित प्रेमहि आस लगाये रहे,
इतनो हिय कर्तब जानति हैं ॥
प्रिय प्रेम तिहारे निहारे बिना,
दुखियां अँखियां नहिं मानत हैं ॥ ४ ॥

सूखि जात कण्ठ घर २ घहरान लागै,
चित्त ह्वै निरास भूण शय्या ही गहत है ॥
तौहू होत आश प्रिय प्रेम को मिलाप भास ।
प्रेम को प्रकाश निसि बासर रहत है ॥
ध्यान ज्ञान मान अपमान सब वाही पर ।
प्रेम की तरंग प्रेम धार में बहत है ॥
प्रेम दृष्टि लागी मम प्यारो प्रेम प्यारो प्रेम ।
प्रेम को पियासो प्रेम प्रेमही कहत हैं ॥ ५ ॥

मदरासी बहनें ।

[लेखिका—श्रीमती हंड्रू ।]

मेरी प्यारी बहनों! आपने मदरास का नाम तो अवश्यही सुना होगा। आज मैं आपको वहां का कुछ हाल सुनाना चाहती हूं! मदरास एक बहुत बड़ा शहर है। यह हिन्दुस्तान के प्रायः कलकत्ता, मुम्बई आदि सभी बड़े २ शहरों से ज्यादे लम्बे चौड़े मैदान में बसा हुआ है। यहां की सड़कें बड़ी चौड़ी २ हैं। यहां पर हर एक घर में छोटा या बड़ा बगीचा लगा रहता है। यहां के रहने वालों को अपने घर में सफाई रखने का बड़ा शौक है। यही कारण है कि मदरास में आज तक प्लेग आदि गन्दगी से उत्पन्न होने वाले रोगों का उपद्रव नहीं हुआ है अस्तु

अब मैं आपको यहां की रहने वाली बहनों का कुछ थोड़ासा हाल सुनाती हूं। यहां शूद्रों के अतिरिक्त ४ सभ्य ऊंची जातियां हैं। इन चारो जातियों में आपस में खान पान का व्यवहार नहीं है। एक जाति का मनुष्य दूसरी जाति में विवाह भी नहीं कर सकता है। इतना हो तभी सब जातियों में आपस में सच्ची मोहब्बत का बर्ताव हो सकता है। यहां की बहनों को जब कोई नई बात करना अभीष्ट होता है तब सब कौम की बहनों की मिलकर एक मीटिङ्ग होती हैं। इसी मीटिङ्ग के मन्तव्य के अनुसार विचार कार्य रूप में परिणत किये जाते हैं। अपनी तरक्की का प्रायः सभी काम यहां की औरतों ने अपने हाथ में ले रखा है। यहां की सुशिक्षिता स्त्रियों ने छोटी २ लड़कियों के पढ़ने के लिए अनेक छोटे २ स्कूल खोल रखे हैं। इन स्कूलों का सारा प्रबन्ध स्त्रियां स्वयम करती हैं। इन स्कूलों में सब कौम की लड़कियाँ पढ़ सकती हैं। फीस भी बहुत कम लीजाती है। इन स्कूलों के खोलने का उद्देश्य केवल यही है कि हर एक कौम की लड़कियाँ अवश्य पढ़ाई जायँ। यहाँ विवाह होजाने के बाद भी वर्षों तक लड़कियां स्कूल में पढ़ने जाती हैं। यहां की ५० बर्ष तक की उमर वाली औरतें अङ्गरेज़ी में बात चीत और लिख पढ़ भी सकती हैं। इधर लगभग २० वर्ष से तो यहां स्त्री

शिक्षा का प्रचार बहुतही चढ़ा बढ़ा है। शिक्षा प्रचार के अतिरिक्त यहां की स्त्रियों ने गोशाला, अस्पताल आदि सार्वजनिक संस्थाओं का काम भी अपने हाथ में रक्खा है। स्त्रियों के उद्योग से यहां पर एक ऐसी अस्पताल खोली गई है जिसमें लगभग डेढ़ सौ हिन्दू मुसलमानों की बीमार औरतों के इलाज का प्रबन्ध हर समय ठीक रहता है। अस्पताल का खर्च हिन्दू मुसलमानों से चन्दा वसूल करके चलाया जाता है और उसमें हमेशा सा डेढ़ सौ हिन्दू मुसलमानों की बीमार औरतें रहती हैं। अस्पताल का सब काम कमेटी के द्वारा चलाया जाता है। यह कमेटी भी मदरासी औरतों की कमेटी है। इसी कमेटी के द्वारा विधवा आश्रम का काम भी चलाया जाता है। यहां की सब बहनों ने मिलकर एक क्लब भी खोल रखा है। इसमें हिन्दू मुसलमान और यूरोपियन सभी जाति की स्त्रियां सम्मिलित हैं। यहां के गवर्नर साहब की बीबी अर्थात लेडी पैटलैण्ड इस क्लब की प्रेसीडेन्ट हैं। इसमें कलेक्टर तथा हाईकोर्ट के जजों की बीबियां भी शामिल हैं। जो बहनें इसमें शामिल होना चाहें वे केवल दो औरतों की शिफ़ारिस से शामिल हो सकती हैं। इस क्लब का भी कुल काम कमेटी के सुपुर्द है। इस क्लब में करीब तीन सौ औरतें हर कौम की शामिल हैं। इस क्लब में औरतों के खेलने के लिए बिलियर्ड टेबुल है। कुछ औरतें बिलियर्ड और कुछ बडमिन्टन खेलती हैं। इस क्लब में दो टेनिस कोर्ट हैं। बहुत सी लड़कियां टेनिस खेलती हैं। बड़ी उम्र की औरतें शतरञ्ज या ताश खेला करती है। गरज यह कि साढ़े चार बजे से साढ़े सात बजे शाम तक यहां सब के लिए कुछ न कुछ खेलने का सामान रहता है। प्रति सप्ताह में दो दिन क्लब खुलता है। वहां बड़ी आज़ादी से मदरासी बहनें यूरोपियन लेडियों से मिलती जुलती हैं। इस क्लब में चन्द रानियां भी शामिल हैं, अकसर टीपार्टियें भी होती रहती हैं। उनका भी सब बन्दोबस्त येही बहनें (जो कमेटी की मेम्बर हैं) करती हैं। अभी थोड़े ही दिन हुए हैं कि लेडी हार्डिंज हिन्दुस्तान से दौरा करती हुई मदरास आई थीं। उस समय यहां की इन्ही मदरासी बहनों ने इसी क्लब में लेडी हार्डिंज की बड़ी धूमधाम के साथ चाह पिलाने की दावत की थी। लेडी हार्डिंज इस दावत से बहुतही प्रसन्न हुईं और उन्होंने यहाँ की औरतों की बड़ी तारीफ की। साथही साथ उन्होंने हिन्दुस्तान की औरतें की दशा पर खास कर जो पर्दे में रहकर अपना जीवन बिताती है अत्यन्त खेद प्रकट किया। यह बड़े हर्ष की बात है कि जिस भांति मदरास के पुरुष अपनी उन्नति साधन में निरन्तर लवलीन हैं वैसेही मदरास की स्त्रियां भी अपने को उन्नत करने के लिए तीव्र उद्योग में लगी रहती हैं। मदरासी बहना ने ऐसे कई समाज स्थापित किये हैं जहां वे सुगमता के साथ आपस में एक दूसरे के साथ मिल जुल सकतीं हैं और अपने कर्तव्य को निर्धारित कर सकती हैं। आज से तीन वर्ष पहले की बात है कि ये लोग आपस में एक दूसरी कौम की स्त्री के साथ बैठकर चाह पीना नहीं पसन्द करती थी क्योंकि तब तक जाति का भेदभाव यहां भी पूर्ण रूप से अपना सिक्का जमाये हुए था। अब इधर थोड़े दिनों से इन लोगों ने आपस में मिलकर इस जातीय मिथ्या भेदभाव को दूर करदिया है और आपस में सब एक दूसरे के साथ बैठती हैं, फल मिठाई आदि खाती हैं, चाह पींती हैं ज़रा भी किसी से कोई घृणा नहीं करतीं। यहां की स्त्रियों का यह बर्ताव अवश्यही सब सभ्य देश की बहनों के लिए अनुकरणीय है।

रहन सहन।

अब मैं यहां पर इनकी चालढाल और रहन सहन का कुछ परिचय देना चाहती हूं।

ये इतनी सीधी सादी तरह पर रहती हैं कि इनको देख कर सहसा कोई भी यह नहीं समझ सकता कि ये इतनी लायक हैं क्योंकि ये अपनी उसी पुरानी वजह से रहती हैं, जूता नहीं पहनतीं, सिर खुला रखती हैं। सब सौभाग्यवती स्त्रियां माथे में रोली का टीका लगाये रहती हैं। स्वदेशी बनी हुई लाल, पीली, हरी, नीली रेशमी साड़ी इनका लिबास है। जो अधिक रुपयेवाली हैं वे ज़री की कामदार साड़ियां भी पहनती हैं। ये हीरे का या और २ रत्नों का जड़ाऊ एक दो जेवर पहने रहती हैं। ये व्यर्थ क्रोध और आपस में कभी वादविवाद नहीं करतीं। ये हर एक बहनों से आपस में बड़ी नम्रता के साथ मिलती हैं और अपनी पुरानी चाल छोड़ने की कोशिश कभी नहीं करतीं। फैशन की ओर भूल कर भी कभी इनका ख़याल नहीं जाता। यदि उनकी कोई यूरोपियन सखी उनसे पूछती है कि तुम जूता क्यों नहीं पहनतीं तो वे झट यही उत्तर देती हैं कि हमारा और हमारे देश का यही दस्तूर है। इसी तरह वे बी० ए० और एम० ए० की डिगरी प्राप्त करने के लिए जाती हैं और मेडिकल स्कालरशिप लेती हैं। पर हां इनके साथ बातचीत करने से अलबत्ता इनकी लियाकत ज़ाहिर होने लगती है। ये अपने पतियों के साथ सब जगह जाती हैं। यहां की औरतों के लिए पहले ही से परदे का रिवाज नहीं रखा गया बस यही इनकी उन्नति का मूल कारण है।

विडोहोम (विधवा आश्रम)।

मदरास का यह सौभाग्य है कि यहां की देवियां सभ्य संसार में आगे की ओर कदम बढ़ाये चली जा रही हैं। क्या इस देश के लिए यह बात कम प्रशंसनीय है कि यहां की स्त्रियां इतने बड़े २ कामों का सम्पादन अपनी जिम्मेदारी पर सुगमता के साथ कर सकती हैं ? यहां की रहनेवाली एक ब्राह्मण-बालिका ने कठिन परिश्रम के साथ अध्ययन करके बी० ए० की डिग्री प्राप्त की और उसके अनन्तर उसने विडोहोम खोल दिया। आज दो वर्ष के भीतर बहुत सी बेचारी बेवा लड़कियां उसके होम में आ गई हैं। अब गवर्नमेंट ने अपनी ओर से उन बेवा लड़कियों पर इसको सुपरिण्टेण्डेण्ट बना दिया है। इस विडोहोम की कमेटी में भी स्त्रियां हैं। ये प्रति सप्ताह होम की कार्य सञ्चालन प्रणाली पर विचार करती हैं और इस बात की देखभाल करती हैं कि कैसा काम हो रहा है। इन सब विधवा बालिकाओं को उच्च शिक्षा दी जाने का पूरा प्रबन्ध किया गया है और उनके आराम से रहने के लिए भोजन, वस्त्र, स्थान आदि का अच्छा बन्दोबस्त है। इस होम में प्रायः सब लड़कियां ब्राह्मणों की हैं। इनको देखने के लिए अकसर मेम साहब भी आती हैं। वह लड़की जिसने इस होम की स्थापना की है रात दिन इन्हीं लड़कियों के साथ रहती है। दिन को ६ बजे से ४ बजे तक वह कालेज में जाती है। इन सब लड़कियों को भी वह अपने साथ ले जाती और अपने साथ ही ले आती है। इसके इस कार्य से इसके घर के सब प्राणीवर्ग इस पर बहुत प्रसन्न हैं। यहां के निवासी लोग इस के इस कार्य की हृदय से सराहना करते हैं।

मेरी प्यारी बहनो! अब आप सोच सकती हैं कि जब इस होम की लड़कियां पढ़ लिख कर तैयार होंगी तब वे अवश्य ही कोई न कोई काम करने लगेंगी। यदि आपकी समझ में न आया हो और आप समझती हों कि इन बेचारियों को कौन काम देगा कि ये काम करेंगी तो बहनो खूब अच्छी तरह इस बात को याद कर लो कि "पढ़ी लिखी औरतों को कहीं भी काम की कमी नहीं है। वे अपने मन से, अपने बुद्धिबल द्वारा अपने लिये काम निर्धारित कर लेती हैं"। यहां बहुत सी औरतें

काम करती हैं, श्रीमती सौभाग्यवती श्रीमहारानी मैसूर ने तो आम हुकुम दे दिया है कि जो ब्राह्मण की लड़की बी० ए० की डिग्री प्राप्त करने के उपरान्त मुझसे जगह के लिए प्रार्थना करेगी मैं अवश्य उसे अपने यहां जगह दूंगी। तीन बी० ए० पास लड़कियां उनके कालेज में काम करती हैं। वे ही कालेज के प्रोफेसरों का भी काम करती हैं। इनमें से दो के तो बच्चे भी हैं। जिस दिन तक बच्चा पैदा होता है वे बराबर काम करती हैं। फिर एक महीना छुट्टी लेकर वे घर में रहती हैं। महीने भर के बाद बच्चों को वे दाई के सुपुर्द कर देती हैं। वह उनका पालन पोषण करती है और वे फिर दूसरे महीने से कालेज का काम बराबर पहले को भांति करने लगती हैं। उनके घर के पुरुष भी रियासत में नौकर हैं। आजकल मद्रास में महारानी साहबा की भेजी हुई दो लड़कियां आनर बी० ए० की परीक्षा के लिए तैयार हो रही हैं। इनको महारानी साहबा की ओर से चालीस रुपये महीने की सहायता दी जाती है। परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर इनको कालेज में अच्छी से अच्छी जगह दी जायगी। इस देशोपकार के लिए महारानी साहबा को धन्यवाद देती हुई मैं परमात्मा से यही मनाती हूं कि हमारी महारानी साहबा की उदार मनसा फलीभूत हो। कुछ लड़कियां डाक्टरी में डिग्री प्राप्त करने भी गई हैं। दो पास करके काम भी करने लगी हैं। उनमें से एक नायडू जाति की लड़की जो अब तक अविवाहिता (कुमारी) है और जिसकी विवाह करने की इच्छा भी नहीं है आजन्म कुमारी रहने का प्रण भी कर चुकी है। यहां की लेडी डाक्टरों में उसकी प्रतिष्ठा है और उसको सब से ज़ियादा आमदनी भी होती है। पहले तो वह यहां की रहनेवाली है दूसरे वह तेलगू बोली भी अच्छी तरह जानती है। इस कारण यहां की रानियां उसे अपने यहां इलाज करने के लिए बुलाती हैं अभ्यास क्रम से भी उसने अपने को ऐसा सिद्धहस्त बनालिया है कि वह आनन फानन में रोगी की वेदना हरण कर लेती है। इससे सर्वसाधारण में उसने अपने को विख्यात कर रक्खा है। सभी उसको अपनाते हैं हिन्दू और ब्राह्मण की कन्या होने के कारण पुराने तरीके के और पुराने फैशन के घरों में भी उसका अधिक आदर होता है। दूसरी डाक्टर मरहठा जाति की औरत है। उसके ईश्वर की दया से बाल बच्चे भी हैं, उसको भी महीने में अच्छी आमदनी हो जाती है। उसने अपने घर में अस्पताल खोल रक्खा है और वहां अच्छे २ घराने की औरतें इलाज कराने आती हैं।

मेरी बहनों! मैं सोचती हूं कि इन खबरों को सुनकर तुम्हें खुशी होगी। आप लोगों के मन में भी इन भद्रशालाओं के अनुकरण करने का भाव जागृत होगा। उन्नति का प्रयत्न करते रहने से एक दिन आप से आप वह अवसर भी आजाता है जब मनुष्य अपने को अथवा अपने देश को खूब उन्नत अवस्था में देखकर प्रसन्न होता है। यह हर्ष की बात है कि इधर कुछ दिनों से भारतवर्ष में भी स्त्री शिक्षा की चर्चा सुनाई पड़ने लगी है और प्रायः आबाल वृद्ध सब के हृदय में सुधार का भाव जागृत हो उठा है। परमात्मा भारतवासियों की सहायता करेगा हमें अब घबराना न चाहिये। इसी भांति धीरे २ तरक्की होगी। यद्यपि हिन्दुस्तान में अभी तक स्त्री शिक्षा पद्धति ठीक नहीं है तथापि इस जागृति की ओर ध्यान देने से आशा है कि सम्भवतः ऐसा प्रबन्ध भी शीघ्र होजायगा जिससे औरतें उच्च शिक्षा ग्रहण कर अपनी बेहतरी का तरीका निकाल सकें। यदि स्त्रियों के उच्च शिक्षण सम्बन्ध में जो कठिनाइयां पड़ती हैं दूर करदी जाँय तो ये सब सूरतें आपही पैदा हो सकती हैं किन्तु उच्च शिक्षा का प्राप्त होना भी कठिन बात है। जब

तक बड़े बड़े लोग इस काम के करने में कटिबद्ध न हों तब तक बेचारी स्त्रियों (खास कर हिन्दुस्तानी औरतों) को उच्च शिक्षा नहीं प्राप्त हो सकती। हां यदि बड़े आदमी जिस भांति वे लड़कों के लिए उच्च शिक्षा दिलाने का प्रबन्ध करते हैं उसी भांति लड़कियों की तालीम का का भी ख्याल करें तो यह कार्य बहुत सरल हो सकता है। इस समय जो काल चक्र घूमता हुआ दिखाई देता है इससे आशाही नहीं वरन् पूरा पूरा यह भरोसा होता है कि अब उदार हिन्दू लोग अपनी बहन बेटियों के कल्याण के लिए इस बात का शीघ्रही प्रबन्ध करेंगे। मैं भी हिन्दुस्तान की रहने वाली तुम्हारी बहनों में से एक हूं। यहां भाग्यवश कुछ दिनों से रहती हूं। यहां की सद्व्यवस्था देख जी में आया कि आप लोगों को यहां की कहानी सुनाऊं। आपको यदि मेरी यह नीरस कहानी फीकी मालूम हुई हो तो क्षमा करियेगा।

बम्बई प्रान्त की स्त्रियों का औन्नतिक उद्योग।

[लेखिका—श्रीमती काशीबाई कानिटकर।]

मेरी प्यारी बहिनो! इस समय यदि ध्यान देकर देखा जाय तो समस्त संसार उन्नति के उद्योग में निरन्तर व्यस्त और गड़बड़ में फँसा हुआ देख पड़ता है—यहां "समस्त संसार" से मेरा मतलब केवल मनुष्य जाति से ही है। मनुष्य जाति में भी दो विभाग होते हैं, स्त्री और पुरुष। इस समय संसार में जो उन्नति का उद्योग हो रहा है उस उद्योग में दोनों वर्ग समान परिश्रम कर रहे हैं अथवा एक वर्ग उद्योग में निमग्न है और दूसरा उदासीन है? यह प्रश्न हम लोगों के सामने उपस्थित होता है। इस प्रश्न का उत्तर देना यद्यपि सहज जान पड़ता है तथापि विचार पूर्वक इसका उत्तर देना कठिन ही होगा। हमारा पुरुष वर्ग उन्नति के मार्ग में कितना बढ़ा चढ़ा है और हम लोग अर्थात् स्त्री वर्ग उस मार्ग में कितना पिछड़ी हुई हैं इसकी तुलना करना एक हँसी की बात है। मान लो कि हमारा पुरुष वर्ग उन्नति के मार्ग पर चलता हुआ अपने उद्देश्य के निकट पहुंचा है तो यह कहना अनुचित न होगा कि हम लोग उस मार्ग तक भी अभी नहीं पहुंच सकी हैं। ऐसी अवस्था में हमारी और उनकी किसी अंश में यदि कुछ समानता हो सकती है तो केवल मुम्बई प्रान्त ही में हो सकती है। सम्भवतः अन्य प्रान्तों को यह स्थिति अभी नहीं प्राप्त हुई है। यह कहना मेरी अल्प बुद्धि में अत्युक्ति नहीं प्रतीत होता। सुधरे हुए राष्ट्रों में हमारी बहनें और भाई दोनों मिल कर बड़े २ कार्यों का उत्साह के साथ सम्पादन करते हैं किन्तु हमारी भारतीय भगिनियों को यह अवसर अभी नहीं प्राप्त है। हम लोगों में से जिनको हमारे सुजान भाइयों ने थोड़ी सी स्वतंत्रता दी है वे बहनें अपने भाइयों की सहायता देने के लिये अग्रसर हुई हैं। इस प्रकार की उद्योगप्रिय कुछ बहिनों ने अपनी मातृभूमि की जो सेवा की है और अपने भाइयों को जो सहायता दी है उसका विवरण बहुत थोड़े में दिया जा सकता है। यद्यपि यहां पर इसबात का उल्लेख करना व्यर्थ है तो भी स्त्रियों को कुछ थोड़ी सी भी स्वतन्त्रता और ज्ञान देने से ही वे कहां तक उपयोगी सिद्ध हुई हैं इस बात का एक छोटा उदाहरण देना यहां पर असङ्गत न प्रतीत होगा।

पण्डिता रमाबाई विलायत जाने के पहले यहां आईं और उन्होंने पूना में "आर्य महिला" नाम की एक स्त्रियों की सभा स्थापित की।

अनन्तर उन्होंने ऐसी ही एक सभा बम्बई में भी स्थापित की। उसके पहिले बम्बई की प्रार्थना समाज की मुख्य पाठशाला में प्रति शनिवार को एक स्त्रियों की सभा होती थी। इन सभाओं में लोग सामाजिक, शास्त्रीय, धार्मिक, अथवा व्यावहारिक या और किसी विषय पर व्याख्यान देते थे। कभी २ स्त्रियां भी एक आध विषयों पर लेख लिख कर लाती थीं और सभा में पढ़ती थीं। उस समय सभा में जाना स्त्रियों के लिए बहुत कठिन काम था। क्योंकि उस समय पुरुषों का मत इतना उदार नहीं था कि वे स्त्रियों को सभा में जाने दें। पुरुषों के सिवाय प्रौढा स्त्रियां भी इस बात को नीति के विरुद्ध समझती थीं। नवीन स्त्रियों के मन में सभा में जाने का उत्साह पैदा होने लगा था लेकिन उनके वहां जाने में घर के लोग बाधक होते थे इस कारण ऐसी सभाएं किस कोने हुआ करती थीं इसका पता भी लोगों को नहीं लगता था। नियमित चार पांच कुटुम्बों की स्त्रियां हीं सभा में जाया करती थीं परन्तु इस छोटी सी सभा के द्वारा धीरे २ बहुतसी स्त्रियों के मन में सुशिक्षा और स्वतन्त्रता का विकाश होने लगा जिससे भविष्य के लिए यह काम बहुत कुछ सहज होगया। जिस समय बम्बई की दूसरी राष्ट्रीय सभा (कांग्रेस) सङ्गठित हुई थी उस समय सात आठ स्त्रियां कांग्रेस में डेलीगेट (प्रतिनिधि) होकर गई थीं और ये स्त्रियां कलकत्ता और बम्बई ही की थीं। उनमें भी बम्बई प्रान्त की स्त्रियों कीं संख्या अधिक थी। उस समय डेलीगेट होकर जाने में स्त्रियों का केवल यही उद्देश्य था कि भविष्य में कांग्रेस में स्त्रियों को डेलीगेट होने में किसी प्रकार की विघ्न बाधाएं उपस्थित न हों और इसी कारण आरम्भही से कांग्रेस में जाने की प्रथा स्त्रियों ने स्वीकार की। उस समय बहुत से विचारवान पुरुष भी इसके विरुद्ध थे। यह सदा का नियम है कि जब स्त्रियाँ किसी विषय में एक क़दम भी आगे बढ़ना चाहती हैं तो उसके सम्बन्ध में बहुत सी विवादयुक्त चर्चा हुआ करती है और जो पुरुष बड़े विचारशील समझे जाते हैं उनका भी मन ऐसे समय में संकुचित हो जाता है। उस समय भी ऐसही दशा हुई परन्तु देश-हितैषिणी स्त्रियां अपनी भविष्य सन्तति का मार्ग सहज करने के उद्देश्य से डेलीगेट होकर कांग्रेस में सम्मिलित हुईं।

इसके अनन्तर कई बार नागपुर, कलकत्ता आदि स्थानों में स्त्रियां डेलीगेट थीं। हमारे महाराष्ट्र देश में पुरुषों के विचार आफिस की दीवारों के बाहर नहां जाते। उन विचारों को रसोई घर में जाने की आज्ञा नही। अर्थात् आफिस के और रसोई घर के विचार भिन्न २ हुआ करते हैं। दोनों विचारों की एकता होने का अवसरही नहीं आता और कभी ऐसा अवसर प्राप्त भो होगया तो वह मौका साधलेने को हम लोग तत्पर रहती हैं। इसी का यह उदाहरण है कि कांग्रेस में स्त्रियां डेलीगेट होकर गईं। बम्बई में "आर्य महिला" समाज कार्यालय, लेडीज़ सोशल क्लब, गुजराती स्त्री मंडल, सेवासदन, सूरत का वनिता विश्राम, पूना की सेवासदन शाखा, और पूना का लेडीज़ सोशल क्लब यह सब सभाएं स्त्री वर्ग से परिचालित की जाती हैं और स्त्रियां हीं उनकी व्यवस्था भी करती हैं। इनमें से हर एक संस्था में स्त्री शिक्षा की व्यवस्था की गई है। हर सप्ताह में किसी न किसी विषय में व्याख्यान भी हुआ करते हैं, सीने पिरोने का काम भी सिखलाया जाता है। जिन स्त्रियों को घर के काम काज के कारण शिक्षा प्राप्त करने का अवसर नहीं मिलता उनके लिए घर घर पुस्तकें पहुंचाने और घर बैठे उनको स्त्री मास्टर द्वारा शिक्षा दिलाने की व्यवस्था की गई है। सेवासदन की तरफ से अनाथ रोगियों को और छोटे बच्चों को दवा देने की भी व्यवस्था है अस्पताल में जाकर रोगियों को फल आदि-

बांटना, पुस्तक आदि पढ़ने को देना और उनसे मीठी बातें करके उनको सन्तोष करना ऐसेकाम अच्छे २ घराने की स्त्रियां भी करती हैं। पूना के सेवासदन की तरफ से अन्य संस्थाओं की तरह विद्यार्थी स्त्रियों को शिक्षा देने का काम तो होताही है किन्तु साथ ही उसके विशेषता यह है कि सेवासदन अपने खर्च से परोपकारार्थ हर साल छे सात लड़कियों का समूह अस्पताल में (सिकनरसेस) रोगियों की शुश्रूषा करने का काम सीखने के लिए भेजता है। सालुम्ब्रा के प्रलय के समय सेवासदन की कुछ स्त्रियां वहाँ के दुखियों को सहायता देने के लिए गई थीं। कठियावाड़ में अकाल के समय सरवेन्टस आफ़ इण्डिया सुसायटी की तरफ से स्त्रियों और बच्चों को वस्त्र बांटने के लिए द्रव्य लेकर स्त्रियां गई थीं और ये सब स्त्रियां बड़े घराने की थीं। इसी प्रकार पारसाल भी अहमदनगर में अकाल के समय परदे में रहनेवाली और प्रतिष्ठित घराने की स्त्रियां भी पीड़ितों को सहायता पहुंचाने के लिए गई थीं। यह सब काम स्त्रियों ने स्वयम किये। पूना के अनाथ बालिकाश्रम, महिला विद्यालय इन दोनों संस्थाओं का अधिकांश भार स्त्रियों ही के ऊपर है।

सन् १९०८ ई० में बम्बई में प्रदर्शिनी हुई थी। उसमें सब चीज़ों को सजाकर रखने का काम बड़े बड़े घरानों की सुशिक्षित स्त्रियों ने अपने ज़िम्मे लिया और उन्होंने इस काम को अच्छी तरह किया था। जब कि थोड़ी सी शिक्षा पाई हुई स्त्रियां ऐसे ऐसे काम कर सकती हैं तब अच्छी शिक्षा तथा स्वतन्त्रता प्रदान करने से वे अवश्यही पुरुषों की बराबर सहायता करने के योग्य होजायंगी इसमें कोई सन्देह नहीं। जगदीश्वर ने स्त्री और पुरुष दो प्रकार के प्राणी उत्पन्न किये हैं इनमें उसने किसी में विशेषता या न्यूनता नहीं रक्खी है। दोनों बराबर हैं और दोनोंही के परिश्रम और विचारों से जगत की उन्नति होनी चाहिये ऐसाही परमेश्वर का उद्देश्य जान पड़ता है।

'गुजराती हिन्दू स्त्रियों की स्थिति और उनकी उन्नति के उपाय'

[लेखिका—एक गुजराती महिला ।]

बम्बई प्रदेश में रहनेवाली हिन्दू स्त्रियों में गुजराती हिन्दू स्त्रियों की स्थिति शिक्षा के न होने के कारण अत्यन्त शोचनीय है। इनमें से अधिकतर स्त्रियां ऐसी हैं जिनकी शारीरिक तथा मानसिक स्थिति को देख कर खेद होता है। सैकड़ों पीछे भाग्य ही से पांच या सात ऐसी स्त्रियां होंगी जो पढ़-लिख तथा समझ सकती हों। लड़के तथा लड़कियों के विवाह उनके अज्ञान माता पिता छोटी ही अवस्था में कर डालते हैं। वे बाजा बजवाने तथा ज्योनार करने में अपनी प्रभुता समझते हैं। वाल्य अवस्था में ही नाना प्रकार के आभूषण पहना तथा घोड़े पर चढ़ा कर विवाह कर देने में ही वे अपने जन्म को सफल हुआ समझते हैं। ऐसे अज्ञानी मनुष्य इस देश में बहुत मिलते हैं जो यद्यपि कुलवान और धनी भी हैं तो भी अपने बालकों का छोटी ही अवस्था में विवाह कर देते हैं। इस देश के युवा पुरुष तथा स्त्रियां शारीरिक निर्बलता के कारण बहुत से भयङ्कर रोगों से ग्रसित रहती हैं। चौदह वर्ष की अवस्था में विवाहित कन्या दो वर्ष में एक बालक को उत्पन्न कर देती है और वह हर दूसरे वष एक २ बालक

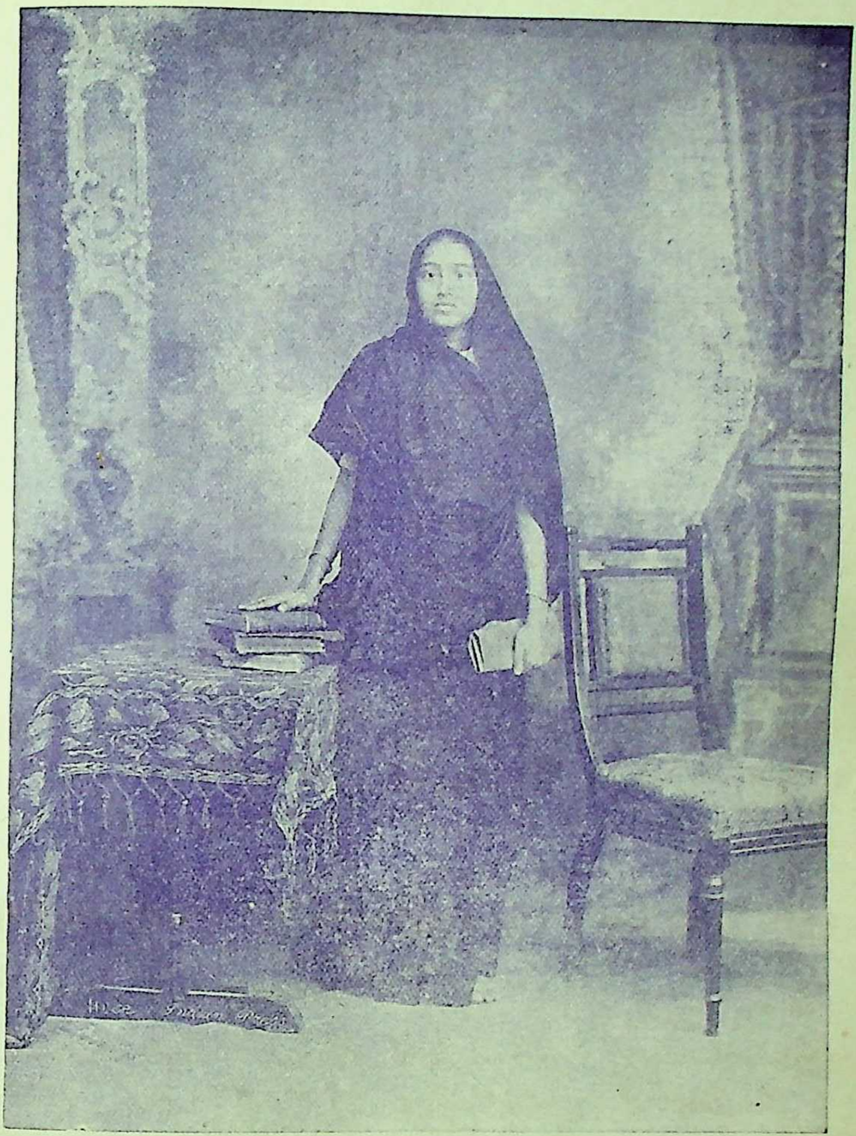

श्रीमती मगन बाई जी।

PRINTERS: ALLAHABAD LAW JOURNAL.

पुस्तकालय गुरुकुल कांगड़ी

को पैदा करती जाती है। इस तरह के जन्म पाये हुए बालक सर्वदा निर्बल होते हैं, वे बहुधा छोटी ही अवस्था में मृत्यु के शिकार हो जाते हैं और उनकी माताएं भी सन्तान का मुख देखने ही से क्षय, संग्रहणी और जीर्ण-ज्वर आदि भयङ्कर रोगों की शिकार हो जाती हैं। इस तरह पर हिन्दू स्त्रियों की अवस्था वास्तविक में शोचनीय है। बम्बई में स्त्रियों के समाज स्थापित हुए हैं। गुजराती हिन्दू स्त्री-मण्डप की संस्था ने स्त्रियों में जागृति की है। इस मंडप में अब तक लगभग चारसौ सभासद हैं और यह संख्या दिन पर दिन बढ़ती जाती है। मण्डप का उद्देश स्त्रियों की शारीरिक, मानसिक तथा सांसारिक स्थिति को धीरे २ शिक्षा देकर के सुधारना और हिन्दू जाति की स्त्रियों में आपस में स्नेह, मेल और ऐक्य का बढ़ाना है जिससे वे गृह तथा सांसारिक कार्य्य करने में दक्ष बनें। इस मंडप को स्थापित हुए लग भग दस वर्ष हुए। प्रत्येक मास में यह सभा तीन बार होती है। इसमें लगभग सौ स्त्रियां इकट्ठी होती हैं। इन सभाओं में स्त्रियां उपयोगी विषयों पर व्याख्यान देती हैं! गुजरात तथा काठियावाड़ में जब अकाल पड़ा था उस समय इस मण्डप ने दस हजार रुपया इकट्ठा करके दुष्काल में सहायता के के लिए भेजा था। मण्डप के प्रमुख (मंत्री) मिस्टर न्हानाभाई रुकई ने तीन मास यात्रा करके रुपयों को अकाल पीड़ित प्रदेशों में जा जाकर के गरीब मनुष्यों तथा भूखे बालकों को दिया था। ट्रान्सवाल की प्रदर्शनी में स्त्रियों की कारीगरी के उत्कर्ष के हेतु कितनी ही छोटी बड़ी रुपयों की रकम दी गई थीं। बाहर के नगरों की स्त्री-संस्थाओं को यह मंडप सहायता देता और स्त्री उपयोगी विषयों पर पुस्तकें तथा पत्र छपवाकर स्त्रियों में मुफ़ बांटता और दूसरे नगरों में भेजता है। बाल्यावस्था में विवाह होजाने के अनन्तर जो स्त्रियां पाठशाला में नहीं जाने पातीं उनकी शिक्षा के लिए इस मंडप ने होम क्लासेस अर्थात् घर घर जाकर फ़ुरसत के वख्त शिक्षा देने का प्रबन्ध जारी किया है। बम्बई नगर के सब जाति की स्त्रियां दूसरे २ देशों के समाचार पत्र पढ़ कर लाभ उठावें इस हेतु मंडप की तरफ से जगह २ पर धर्मार्थ पुस्तकालय खोलने का उद्योग होरहा है। स्त्रियों की उन्नति के लिए यह मंडप सर्वदा तत्पर रहता है किन्तु इस मंडप को अपने काम काज पूरा करने के लिए द्रव्य की तङ्गी रहती है। इसलिए स्त्रियों की उन्नति के काम करने के लिए जैसे २ मनुष्यों के विचार बढ़ते जांयगे वैसे २ मंडप को मदद मिलने की संभावना है। हर एक नगर में स्त्रियों की उन्नति के लिए उद्योग किये जांय और भारतवर्ष की सांसारिक स्थिति में सुधार हो ऐसे काम काज करने के लिये यह गुजराती हिन्दू स्त्री मंडप सर्वदा प्रस्तुत है। यह उपरोक्त स्थिति संक्षेप में लिखी गई है यदि कोई अधिक जानने का इच्छुक होतो वह मंडप के मन्त्री से पत्र व्यवहार कर जान सकता है।

लाल।

[लेखिका—श्रीमती राजदेवी कुंवरि।]

सुकुमारे हे लाल अधिक प्राणहुं से प्यारे।
सरल हृदय के हार नयन के मेरे तारे॥
हे हे भारत आर्य मातु के हे प्रिय वारे।
मम जीवन के एक मात्र हो तुम्हीं सहारे॥

माता तुम पर रहे प्राण तन धन सब वारे।
सेवा करे तुम्हार भूल गृह कारिज सारे॥
लखि मुखमलिन तुम्हार सूखसब प्रियजन जाते।
होवें मलिनता दूर यतन सब करि अकुलाते॥

करते सोई उपाय होय सूरत चटकीली ।
मृदुल बदन की होय दूर यह रंगत पीली ।।
लखिबिहसन मृदुबदन कलीसी सब खिल जाते
भोरी सूरत बचन तोतरे सब को भाते ।।
खेल खिलौने तुम्हें प्राण से लगते प्यारे ।
खेल खिलौने कभी न दिल से होते न्यारे ।।
ईर्षा बस कोइ बाल खिलौने यदि ले लेते ।
रो रो कर तुम प्राण हेत उसके हो देते ।।
लखि कर कोई वस्तु हेत बिन उसके जाने ।
हे मनुहारे लाल रहत तुम हो अकुलाने ।।
निज प्रिय जन दिग जात देख तुम आतुर धारे ।
वे देते हैं शान्ति विषय समझा कर सारे ।।
औरों की अनुकरण तुम्हें होती है प्यारी ।
देश काल व्यवहार केर बनते अधिकारी ।।
जैसा होत समाज प्रभाव वैसही पड़ता ।
जाकर बाल समाज उसी मत पर है अड़ता ।।
जैसी कौम समाज मध्य में लालन पोषन ।
करते हैं उस भांति आचरण की संशोधन ।।
यदि बिचलित पथ हुये नहीं सुत दोष तिहारे ।
करते हैं परभाव सकल आचरण हमारे ।।
शुद्धाचरण हमार सर्वदा होना चहिए ।
पथ दर्शक आदर्श सामने रखना चहिए ।।
शिक्षा का परचार अवश सब होना चहिए ।
विद्या का नव बीज अवश अब बोना चहिए ।।
विद्या बिनु नहिं कभी सुधरि हैं दशा हमारी ।
कहती है दै जोर लेखनी बात हमारी ।।

'बालक के प्रति माता का कर्तव्य'

[लेखिका—श्रीमती आनन्दीबाई सिर्के ।]

एक विद्वान का बचन है कि उपदेश के सौ सरोवरों से अनुभव की एक विन्दु श्रेष्ठ है, और यह कथन वास्तविक में ठीक भी है। बहुत सी बातें कहने में तो सहज होती हैं परन्तु उनका करना कठिन होता है। ऐसेही 'बालक के प्रति माता का कर्त्तव्य' यह एक अति कठिन और महत्व की बात है। गृहस्थी तथा सांसारिक कामों के करने में स्त्रियों के बहुत से कर्तव्य हैं और उन कर्त्तव्यों में से 'बालक के प्रति माता का कर्त्तव्य' अति कठिन है क्योंकि उसपर देश का भविष्य निर्भर है। अतएव माता का कर्तव्य क्या है यह जानने के पहले ही मातृपद प्राप्त करना माता के लिए लाभदायक नहीं है, और साथ ही साथ माता की अज्ञानता बालक का भविष्य बिगाड़ने वाली और देश के लिए हानिकारक है। स्त्रियों को माता होने के पूर्व ही माता का कर्तव्य जान लेना चाहिये। पुरुषों को भी जिस विभाग में नौकरी करनी होती हैं उसके लिए उनको उसी विषय पर ज्ञान उपार्जन करना पड़ता है। ऐसा करने पर ही उन्हें नौकरी मिलती है। उसके बिना उनको वह जगह नहीं मिलती क्योंकि मूर्ख मनुष्य से कार्य होना असम्भव होता है। आजकल के अधिकारी जिस तरह अज्ञान मनुष्य को नौकरी नहीं देते उसी तरह ईश्वर भी अज्ञान स्त्रियों को यदि माता के पद पर योजना न करे तो अच्छा है किन्तु यह होना असम्भव है। बहुतसी स्त्रियां अज्ञानताकी अवस्था में मातृपद पाती हैं। बहुत से मनुष्य कहते हैं कि "अब स्त्रियां छोटी और अपढ़ अवस्था में मातृपद नहीं प्राप्त करतीं किन्तु अच्छी तरह शिक्षा पाकर युवा अवस्था में मातृपद पर पहुंचती हैं"। उनका कथन बहुत कुछ सत्य होने के कारण मुझको मान्य है तथापि अनेक समय में अच्छी तरह से शिक्षा प्राप्त की हुई और बड़ी उम्र की स्त्रियां भी माता का कर्तव्य पालन करने में असमर्थ होती है। बड़ी २ परीक्षायें पास की हुई प्रोढ़ा माताओं को अपने बालकों को किस भांति शिक्षा देनी चाहिये

इस विषय पर अज्ञान देखकर किस को खेद नहीं होगा? शिक्षा की ओर से बहुतों के मुह मोड़ने का यह भी एक कारण है। बाल्यावस्था में बालक के शिक्षा का प्रबन्ध न होने से उसका परिणाम माता तथा बालक को ही भोगना पड़ेगा ऐसा नहीं है। उस परिणाम का फल कुटुम्ब तथा समाज भी भोगते हैं कारण यह है की हर एक बालक समाज का एक अङ्ग है। राई के बराबर छोटे से बीज में जिस तरह बट वृक्ष भरा रहता है उसी तरह स्त्रियों के हाथ में खेलता हुआ बालक भावी नागरिक होता है। उस गोदी में खेलते हुए बालक को माता अच्छा नागरिक, विद्वान या उसी भांति उससे उलटा भी कर सकती है। क्योंकि बालक जन्म से किशोर अवस्था प्राप्त करने तक माता के निकट अधिक समय व्यतीत करता है और उस अवस्था में बालक अपने माता के गुणों या अवगुणों का अनुकरण करना सीखता है। जगत में जन्म लेने पर बालक को पहला पाठ अपनी माता से मिलता है! हम लोग सर्वदा देखते हैं कि बालक जो प्रथम बोलता है वह शब्द 'मा' 'वा' अर्थात् माता को संबोधन करने ही के लिए होता है। बालक की आंखों में माता की मूर्ति सर्वदा विराजमान रहती है। इतनाही नहीं किन्तु बालक का शरीर भी माता का स्पर्श जान लेता है क्योंकि जिस समय बालक निद्रा करता है उस समय यदि माता के अतिरिक्त और कोई उसको ले लेवे तो वह तुरन्त रोने लगता है। इस तरह माता से तन मन से सम्बन्ध रखता हुआ बालक यदि माता के गुण दोष का अनुकरण करे तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? बालक की ग्रहण शक्ति अति तीव्र होती है।

एक माता ने अपने धर्मोपदेशक से पूंछा कि वह अपने पांच वर्ष के लड़के को कब से पढ़ाना आरम्भ करे? उस प्रश्न को सुनकर धर्मोपदेशक हंस कर बोले "तुम्हारी जैसी अज्ञान हम ने कहीं नहीं देखी। क्या अभी तक तुमने अपने बालक को कुछ शिक्षा नहीं दी?" वह बोली "नहीं वह तो अभी बिलकुल छोटा बच्चा है और वह अभी क्या सीख सकता है"। धर्मोपदेशक बोले "तुम्हारे मन से तुम्हारा बालक छोटा है किन्तु वह इस समय भी सीखता और सीख सकता है। वह तुझको और दूसरी स्त्रियों को पहचान लेता है तुम्हारे स्पर्श को जान लेता है, गुस्सा तथा आनन्द को जान लेता है, अपनी भूख तथा प्यास की याद दिला देता है इस पर भी तुम कहती हो कि तुम्हारा बालक अज्ञान है। बालक पहले मुसकुराने के समय से ही शिक्षा ग्रहण करने लगता है। खेद है कि तुमने उसके जीवन के ५ वर्ष योंही व्यतीत किये"। धर्मोपदेशक का उपदेश हमें सदा ध्यान में रखना चाहिये। बालक अज्ञान है ऐसा समझ कर बालक के सामने बहुतसी अयोग्य बातें की जाती हैं। ऐसा करना बड़ा खराब है क्योंकि बालक की ग्रहण करने की शक्ति बड़ों की कल्पना शक्ति से अधिक प्रबल होती है। बालक जो देखता है उसको अपने हृदय में अङ्कित कर लेता है अतएव अयोग्य कार्यों के होने के समय बालक को पास न रखना चाहिये। 'यह बच्चा है क्या समझेगा' यह बात कदापि योग्य नहीं है। बालक की अनुकरण शक्ति और ग्रहण शक्ति के आगे विद्युत शक्ति मंद है ऐसा कहना अत्युक्ति नहीं है। यह देश का दुर्भाग्य है कि बालक की वह शक्ति बढ़ाई जाने के बदले में घटाई जाती है। बचपन में बड़ा चपल अर्थात् तेज बालक जो बड़ी उम्र में मन्द बुद्धिवाला हो जाता है इसका कारण अधिकतर माता की अज्ञानता है! ऊपर कहा जा चुका है कि बालक बचपन ही से अपनी माता के स्वभाव का अनुकरण करता है सो माता के स्वभाव को पहचानने के उपरान्त वह उसी तरह से काम करना आरम्भ करता है। बालक के [illegible] शिक्षित व अशिक्षित माता अधिक प्रेम

रखती है यह स्वाभाविक ही है किन्तु वह प्यार जो कर्तव्य पूरा करने से रोकता है वह पवित्र प्रेम नहीं कहा जा सकता क्योंकि ऐसे अंध प्रेम से बालक का भविष्य बिगड़ जाता है। माता अथवा अन्य मनुष्यों की बात को मान लेना बालक का प्रधान स्वभाव है। कैसा ही छोटा बालक क्यों न हो पर वह अच्छी तरह जान लेता है कि किस समय उसकी इच्छा पूरी की जायगी! माता को बात चीत करते तथा आज्ञा करते समय ऐसा शब्द कदापि न व्यवहार करना चाहिए जिसको वह स्वयं न करसकती हो। माता का विश्वास बालक उसकी प्रतिज्ञा पर करता है।

हमारी जान पहिचान की एक स्त्री अपने लड़के से सर्वदा कहा करती थी कि "यदि तुम धूम मचाओगे तो मैं तुमको मार डालूंगी" इस वाक्य को सर्वदा सुनने की बालक को आदत पड़ गई थी और उससे वह बिलकुल न डरता था। एक समय वह बालक हम से कहने लगा कि "मेरी माता के ऊपर विश्वास मत रखना, वह बड़ी झूंठी है"। वह मुझ से सर्वदा कहती रहती है कि "मैं तुझको मार डालूंगी, पर अभी तक उसने मुझको नहीं मार डाला है"। इससे यह सिद्ध होता है कि बालक का सरल हृदय सर्वदा शिक्षा ग्रहण करने के लिए तत्पर रहता है। उसके सरल मन में कहना कुछ और करना कुछ यह सांसारिक कपटता नहीं भरी रहती। हर एक शब्द को बालक के सामने सावधानी से कहना चाहिए। जिसका कुछ अर्थ न निकलता हो ऐसी निरर्थक बातें बालक के सामने न करनी चाहिए। जो माता अपनी दी हुई आज्ञा का स्वयं नहीं पालन कर सकती उसको बालक पालन करेगा यह आशा कदापि न रखनी चाहिए। इस संसार में सांसारिक मनुष्यों को सत्यासत्य बहुत बोलना पड़ता है और यह सांसारिक प्रथा ही पड़ गई है किन्तु उसका परिणाम बालक के कोमल और निर्मल हृदय पर कुछ और ही होता है और वह फिर कभी अमिट होजाता है। प्रायः जब हमलो किसी से मिलना नहीं चाहतीं तो उस समय बालक से कह देता हैं कि "कोई आवे तो कह देना कि मैं घर में नहीं हूं"। प्रायः किसी मनुष्य के आने पर वह निर्दोष बच्चा बोल उठता है कि "हमारी मा ने तुमको कह देने को कहा है कि "मैं घर में नहीं हूं" यह सुन कर आनेवाले मनुष्य को कितना बुरा लगता है? अपनी बात को झूंठी पड़ी जान कर असत्य सिखानेवाली बालक को मारने लगती है और वह बच्चा यह नहीं समझता कि किस कारण उसको यह ताड़ना दी गई है और बिना अपराध के सजा देने वाले पर वह क्रुद्ध रहता है। कुछ ही काल के अनन्तर वह अपने मारे जाने का कारण समझ जाता है और जब उसको मालूम होता है कि सत्य बोलने के लिए उसको दण्ड दिया गया था तब वह झूंठ बोलने लगता है। सच से झूंठ बोलना बालक इस तरह से प्रकृति ही से सीख जाता है। धनवान मनुष्यों की सभा में जहां हास्य विनोद तथा सच्ची झूंठी बातें हुआ करती है बालक को कभी नहीं लेजाना चाहिए। बालकों की अलग निर्दोष सभाएं होनी चाहिए। बालक के निर्दोष कोमल हृदय पर जो बात एक बार अङ्कित हो जाती है वह जल्दी नहीं मिटती। बिना मतलब का बहुत बोलना हमारी हिन्दू स्त्रियों का एक बड़ा भारी ऐब है। अपने समय का मूल्य उनके समझ में थोड़ा है। उसका असर बालकों पर पड़ता है। अपने बड़ों के बोलने के महत्व के समय भी वह वैसा ही समझता है। माताओं के इच्छानुसार जब बालक नहीं चलते और अपने मन की करने लगते हैं तो माताएं अधिक क्रुद्ध होती हैं और उन्हें निष्प्रयोजन दण्ड देती हैं। हितेच्छु कहलाती हुई अन्धप्रेमी माता अपने कामों से बालक का मन तो बिगाड़ती है ही साथ ही साथ वह उनके तन को भी ताड़ना दे कर बिगाड़ती

है। बालक के मन को शिथिल और तन को निर्बल कर देनेवाली स्त्री, 'माता' यह पवित्र नाम धारण करने योग्य नहीं है। बालक का मन देख कर काम करे इसी में माता की बड़ाई है। बालक की आयु बढ़ने के साथ ही साथ उसके तन और मन को बढ़ाना माता का कर्तव्य है! अपने काम से बालक को शिक्षा देनी चाहिए। अपने प्राण से प्रिय बालक को 'चपल बालक' 'मेधावी विद्यार्थी,' 'सुशील युवक' और उत्तम 'नागरिक' बनाना किस माता को अभीष्ट नहीं है? सबको यह इच्छा होनी स्वाभविक है परन्तु बहुत ही थोड़ी माताएं अपनी यह इच्छा पूरी करती हैं। इसका एकमात्र कारण बालक की बाल्यावस्था में अच्छी शिक्षा का अभाव है।

देखो! बालक के प्रति माता का कर्तव्य कैसा कठिन होता है। भाई बन्धुओं के साथ, मित्रवर्गों के साथ, पड़ोसियों के साथ बर्ताव करना यह माता की अच्छी शिक्षा पर निर्भर है। इतना ही नहीं किन्तु जब माता पिता वृद्ध हो जाते हैं और अपने पुत्र ही पर अपने पालन पोषण का भरोसा करते हैं उस समय उचित और अनुचित बर्ताव जो पुत्र करता है वह उसके बालकपन की शिक्षा के आधार पर होता है। जो माता पिता अपने पुत्र की बाल्यावस्था में अच्छे कार्यों से बालक के निर्मल हृदय पर प्रभाव नहीं डाल सकते वे अपनी वृद्धावस्था में बालक से अच्छी आशा नहीं कर सकते। सौ शिक्षक से अधिक एक सुशिक्षिता माता श्रेष्ठ है कारण कि उसी के हाथ में देश का भविष्य उपस्थित है। बड़े २ देशों को दहलानेवाला महान नेपोलियन बोनापार्ट एक समय अपनी माता की गोद में खेलता हुआ छोटा बालक था। 'हिन्दू के दादा' दादाभाई नवरोजी और दूसरे महान नर नारियां एक समय माता की गोद में खेलते छोटे बालक बालिकाएं थीं। परन्तु उनके बचपनों में उनको माता पिताओं ने अच्छी शिक्षा दी इसी से आजकल उन लोगों ने इतने गौरव को प्राप्त किया है। नेपोलियन देश के सुधार के मार्ग को बतलाता है :—

'यदि चाहहु निजदेश को पूरित सदा सुजान
सरल रीति तो यही है, दो माता को ज्ञान'

नेपोलियन के इस उपदेश को सब पढ़े लिखे मनुष्य जानते हैं। माताओं का कर्तव्य कैसा कठिन है, देश का हिताहित उनपर किस तरह निर्भर है यह सब स्पष्ट है। स्त्रियों को यह अधिकार प्रकृति ही से मिला है किन्तु बहुधा १०० में ९७ स्त्रियां कहती हैं कि "हम स्त्रियों को यह सब बात जानने की बुद्धि ही कहां?" हम लोग अपनी योग्यता स्वयंहीं हलकी कर डालती हैं और जिसमें कुछ तत्व नहीं होता ऐसी बातें करने में हम लोग बड़ी चतुर हैं किन्तु समझने तथा सीखने के बातों में बिलकुल अज्ञान हैं। कम से कम बालकों को अच्छी शिक्षा देने योग्य ज्ञान तो हर एक माता को उपार्जन करलेना चाहिये! बहुधा बालकों का प्रश्न ऐसा विचित्र और गूढ़ होता है कि यदि माता से उसका उचित उत्तर नहीं मिलता तो उनके मन में दूसराही भाव पैदा होजाता है। माता "यह क्या?" अथवा "इसका क्या अर्थ है?" ऐसे बालक के किये हुए प्रश्न पर "मुझको क्या मालूम, हम स्त्रियों को इतनी बुद्धि कहां" ऐसे माता के उत्तर को पाकर बालक मन में समझ लेता है कि माता की बुद्धि रसोईं करने के अतिरिक्त और किसी विषय में नहीं चलती और यह बात मन में जम जाने पर माता का उपदेश चाहे कितनाही ज्ञान से भरा हुआ क्यों न हो बालक के लिए निष्फल होता है। माता को चाहिये कि प्रथम कर्तव्य और फिर प्रेम को करें और यह यद्यपि जितना कहने में सरल है उतना करने में नहीं है तथापि यदि इसका उपयोग प्रत्येक समय किया गया होगा

तो माता को कभी क्रूर नहीं होना पड़ेगा। पर बहुत सी माताएं पहले तो अपने बच्चे को लाड़ प्यार में बिगाड़ डालती हैं और बुरी आदत बालक में पैदा होजाने देती हैं फिर इसको अपना दोष न समझ कर बालक को दण्ड देतीं हैं। लाड़ प्यार करनेवाली माताएं अपने पुत्रों को पैसा देदेती हैं और बच्चों के हाथ में पैसा आते ही वे खाने के चीजों की तरफ दौड़ते हैं। हलवाइयों की दूकान के नीचे नालियां बहती रहती हैं और उन पर की मक्खियां उड़कर के मिठाई के थाल पर बैठती हैं और रोग फैलाती हैं उन मिठाइयों को बच्चे खाते हैं और बीमार पड़ते है यह किसी को विदित नहीं हैं। इसतरह पर अज्ञान माता अपने प्राण से प्रिय बालक को दो एक पैसे देकर रोगों को खरिदवाती है और उसके परिणाम से बालक को शय्यावास करना पड़ता है। उसके दवाई तथा डाक्टर की फीस में रुपया भी खर्च होता है और इतनाही नहीं बहुत से बालक को मृत्यु प्राप्त होती है। ऐसे प्रसङ्ग बड़े २ शहरों में अधिक देखने में आते हैं क्योंकि वहां शरीर को हानिकारक वस्तुयें बहुत मिलती हैं, और इस पर अज्ञान माता से बालक को पैसे मिलना मानो रोग तथा मृत्यु का निमन्त्रण देना होता है। बहुतसी माताएं बालक के वियोग से दुखी रहती हैं और कहती हैं कि "मेरा बालक जब बीमार था दस रुपये फीस वाला डाक्टर बुलाया था परन्तु उससे कुछ लाभ नहीं हुआ। अङ्गरेज़ी पढ़े हुए डाक्टरों का नाश हो वे निरुपयोगी दवाई देते हैं" मृत्यु के निकट आजाने पर विचारे डाक्टर और वैद्य क्या कर सकते हैं? एक या दो पैसा बालक को प्यार से दे देने पर १०—२० रुपया औषधि में खर्च हो जाता है और बहुधा प्राण प्रिय बालक से हाथ भी धोना पड़ता है।" हमारी प्यारी हिन्दू बहिनें अपने कर्तव्य को समझ कर कब काम करेंगी? देश के सौभाग्य से ऐसे समय का आना दूर नहीं है। शिक्षा के प्रभाव से हमारी अज्ञान आर्य बहिनों की अज्ञानता शीघ्र ही नाश हो यही ईश्वर से मेरी प्रार्थना है।

हिन्दू स्त्रियों की जीवन दशा।

[लेखिका—श्रीमंती जमुना बाई।]

भारतवर्ष में स्त्रियों की दशा कैसी है इस विषय पर आज मुझको प्रकट करना है। स्त्रियों के जीवन का मूल्य नियत करने में भारतवर्ष के पुरुषवर्ग बहुत ही पीछे हैं। स्त्रियों की विकास शक्ति को रोक रखनेवाले पुरुष यहां बहुतायत से मिलते हैं। सांसारिक कार्यों में भारतवर्ष की स्त्रियों की जीवन दशा भयङ्कर रूप में परिणत है। संसार के पद को सजीव रखनेवाली स्त्री जाति के प्रति जितनी असावधानता देखने में आती है वह असावधानता भविष्य में देश को हानिकारक है। दुखदायी रीतियों के आधीन स्त्रियां ऐसी जकड़ी पड़ी हैं मानो वे लोहे की जंजीर से बँधी हुई हैं। पांच सौ वा सात सौ वर्ष पूर्व भयङ्कर अत्याचारों से स्त्रियों की रक्षा करने के लिए जो नियम बनाये गये थे वे आज भी वैसेही वर्तमान हैं। बम्बई प्रान्त तथा और २ प्रान्तों में कन्याओं का बिवाह दस या ग्यारह वर्ष की अवस्था में ही कर दिया जाता है। ऐसी अज्ञान बालिकाओं के साथ छोटे २ बालक सांसारिक कार्य करते हैं। ऐसी स्थिति में चौदह, पन्द्रह अथवा सोलह वर्ष की अवस्था में स्त्रियां बालकों को जनने लगती हैं और छोटी ही उम्र में बालकों को पैदा करने से लाखों निर्दोष आर्य ललनाएं दुःख भोगती

हैं, अथवा ज्वर, संग्रहणी और क्षय आदि भयङ्कर रोगों से उनका शरीर गल जाता है और शरीर में बल विलकुल नहीं रह जाता। छोटी ही अवस्था में बिवाह कर देने के कुछ वर्ष बाद वे ससुराल को भेज दी जाती हैं, और छोटी ही अवस्था में भारतवर्ष के बालक तथा बालिकाएं सांसारिक सहबास में जोड़ दिये जाते हैं। इससे देश में भिन्न २ प्रकार के रोगों से भयङ्कर परिणाम होता है और तन्दुरुस्ती बिगड़ जाने से बालक तथा बालिकाएं पढ़ने लिखने में आगे नहीं बढ़ सकती। सांसारिक तथा व्यावहारिक ज्ञान, अभ्यास और अनुभव के विना ही बालकगण गृहस्थाश्रम के भारी बोझे को बिना शक्ति ही के उठाने लग जाते हैं। बालकों का विबाह करके, माता पिता, शीघ्र ही सन्तान उत्पन्न होने पर अपने को भाग्यशाली समझते हैं। खेद है कि भारतवर्ष की प्रजा की शारीरिक स्थिति के नाश होने के प्रधान कारण ये ही माता पिता हैं। जहां तहां नगर और ग्रामों में झुण्ड के झुण्ड बाल-विधवाओं के देखने में आते हैं। ऐसी निराधार स्त्रियां गृहस्थों के घरों में कामकाज करके अपना निर्बाह करती हैं और बहुत सी स्वतंत्र हो के दुराचार जिन्दगी बिताती हैं। बम्बई प्रान्त में गुजरात, काठियावाड़ आदि प्रदेशों में दुष्काल पड़ा था। उस समय मैंने वहां के नगरों तथा गाँवों में दुखियों के सहायता करने के लिए यात्रा की थी। उस समय स्त्रियों की भयङ्कर स्थिति देख कर मेरा हृदय रोमाञ्चित हो गया था। गरीब नीची जाति की लक्षों निराधार स्त्रियों, बालकों और पुरुषों को काम धन्धे में मिशनरी लोग लगा कर इसाई बना डालते थे। न जाने इतना होने पर भी भारतवासी क्यों कान में तेल डाले बैठे हैं। खेद की बात है कि हिन्दुओं की संख्या अनुचित और उलटे काम कर रही है और दूसरे देशवासी कितने अच्छे २ काम कर रहे हैं। क्या यह भारतवासियों के लिये खेद की बात नहीं है? यह सब समझ बूझ कर भी झूठे आडम्बर दिखला कर लक्षों मनुष्यों को छलनेवाले और जुदे २ धार्मिक मत चला कर मतभेद से झगड़ा खड़ा कर देने वाले महन्तों को हम लोग क्यों आश्रय देते हैं? ऐसे ठग लोग देश के लिए कुछ भी उपयोगी नहीं होते। हिन्दुस्तान में बहुत से मनुष्य भूत प्रेत आदि पर विश्वास करते हैं विशेष कर भोली भाली अज्ञान स्त्री जाति ऐसे जंतर मंतर और धूर्त विद्या में बहुत विश्वास करती है। शिक्षा के न होने से ऐसे विचार प्रजा में से हटाना अति कठिन है।

देश के उद्धार के लिए शिक्षा ही मुख्य है। यह कहना कि विद्या ही देश का जीवन है अत्युक्ति नहीं हैं। विद्या के अभाव से देश पंगुल की भांति दुर्दशा से जीवन भोगता है। यह महान आर्यावर्त विद्या में एक निर्जीव विन्दु सदृश है। यदि हम भारतवर्ष की बराबरी, इङ्गलैंड, फ्रांस, जर्मनी, जापान और अमरीका से करें तो यह हमारी अज्ञानता है। देखते २ उपर्युक्त देश, विज्ञान, कला, उद्योग और विद्या में बढ़ गये हैं और इसका कारण प्रजा की शिक्षा पर स्थिति है। शिक्षा के बिना देश का उद्धार कैसे हो सकता है? शिक्षा एक मात्र देश की सर्व अङ्ग रूप है और उसमें 'स्त्री-शिक्षा' मुख्य वस्तु है। बहुत ध्यान पूर्वक देखने पर स्त्रियों के बिना प्रजा नहीं है और प्रजा बिना देश की स्थिति नहीं हैं यह यथार्थ मालूम पड़ता है। यदि स्त्रियां अशिक्षित रक्खी जांय तो देश के उदय होने की आशा कब फलीभूत हो सकती है? अज्ञान और वहमी स्त्रियों से और अशिक्षित मूढ़ पतियों से क्या गृहस्थाश्रम सुधर सकता है? हिन्दुओं की अधोगति का कारण स्त्रियों की अशिक्षिता और अज्ञानता के अतिरिक्त और

कुछ नहीं देखने में आता। सौभाग्यवश हमारी दयालु अङ्गरेज़ी सरकार के तरफ़ से स्त्रियों की शिक्षा के लिए उचित प्रबन्ध किया जा रहा है। बहुत सी कन्याएं अब कन्यापाठशालाओं में पढ़ने लगी हैं। माता पिताओं का साहस बहुत ही कम है। एक दूसरे की देखादेखी वे कन्याओं को पाठशाले भेजते हैं और थोड़े ही समय में कुछ लिखने पढ़ने का ज्ञान हुआ नहीं कि उनके विवाह करदेने के लिए वे पाठशाला से उन्हें उठा लेते हैं और इस प्रकार कन्याओं को उचित शिक्षा मिलने में त्रुटि रह जाती है। छोटी ही अवस्था में इस भांति वे अपढ़, अज्ञान सास के अधीन हो जाती हैं। घर में रोज २ लड़ाई झगड़ा आदि उपद्रव मचने लगते हैं। ऐसी संगत में पुरुष भी सम्मिलित होते हैं और यों एक दूसरे का भविष्य बिगड़ जाता है। हिन्दू जाति में बालक बालिकाओं की सगाई का काम मुख्य करके स्त्रियांही करती हैं। कितने ही लोभी माता पिता अपनी शिक्षित युवती कन्या का विवाह द्रव्य लेकर किसी वृद्धपुरुष के साथ कर देते हैं, ऐसी स्थिति में माता पिताओं को श्राप देती हुई कन्या का रोदन वर्णन नहीं किया जा सकता। यह सब स्थिति कुछ हमारे ही देश में देखने में आता है। इसके सुधारनेका एकही उपाय है और वह हिन्दू स्त्रियों को योग्य शिक्षा देना है। देश का वास्तविक में सुखी जीवन तभी है जब नर नारियां दोनों शिक्षित हों। भारतवर्ष में अब स्त्रीशिक्षा की धूम मचने लगी है और यही बड़े भाग्य की बात है। धनी हिन्दू कुटुम्ब अपने लड़कों के लिए पढ़ी लिखी चतुर कन्यायें ढूढ़ते हैं और जिस तरह हो शिक्षित कन्याओं के माता पिता अपनी कन्याओं के लिए शिक्षित वर को ढूढ़ने की चेष्टा करते हैं। शिक्षा प्राप्त धनवानों की कन्यायें अब फैशनेवल बनकर संसार के सुख का अनुभव करने लगी हैं। हम लोग देखते हैं कि इङ्गलैण्ड अमेरिका आदि देशों में पढ़ी लखपती मनुष्यों की बहू बेटियां दयालु होकर गरीबों की कितनी मदद करती हैं पर भारतवर्ष में ऐसे परमार्थ के काम करने में धनवानों की स्त्रियों तथा पुत्रियों को अपने बड़प्पन का ध्यान आजाता है। ऐसी धनवान स्त्रियां अपने बहिनों के लाभार्थ, द्रव्य, और विद्या से सहायता करें तो बहुत लाभ हो सकता है। अभी स्त्रियों की उन्नति और उनकी वर्तमान स्थिति के विषय में बहुत कुछ लिखा जा सकता है किन्तु आज इतनाही लिखकर लेख समाप्त करती हूं आवश्यकता हुई तो कभी फिर बिस्तार से लिखूंगी।

बनिता विश्राम।

[लेखिका—एक महाराष्ट्र महिला।]

हिन्दू स्त्रियों को उनके पति के मरणोत्तर प्राप्त होनेवाली असहाय स्थिति को ध्यान में लाकर उनको निराले २ प्रकार के शिक्षण देने के लिए उनको समाज के उपर्युक्त बनाने के लिए जीवनसार्थता के उच्चध्येय की ओर उनको प्रवृत्त करने के लिए और अन्धकारमय बने हुए उनके जीवन मार्ग को ज्ञान और परोपकार से सुप्रकाशित करने के लिए कितने ही उदार दयालु अन्तःकरण वाले समाज सुधारकों को हिन्दू बिधवाओं के लिए आश्रम स्थापित करने की आवश्यकता मालूम पड़ी और इस विषय में केवल मौखिक अथवा लिखा पढ़ी के द्वारा आन्दोलन मात्र करके विराम न होते हुए उस ओर से प्रत्यक्ष प्रयत्न करने का उपक्रम भी

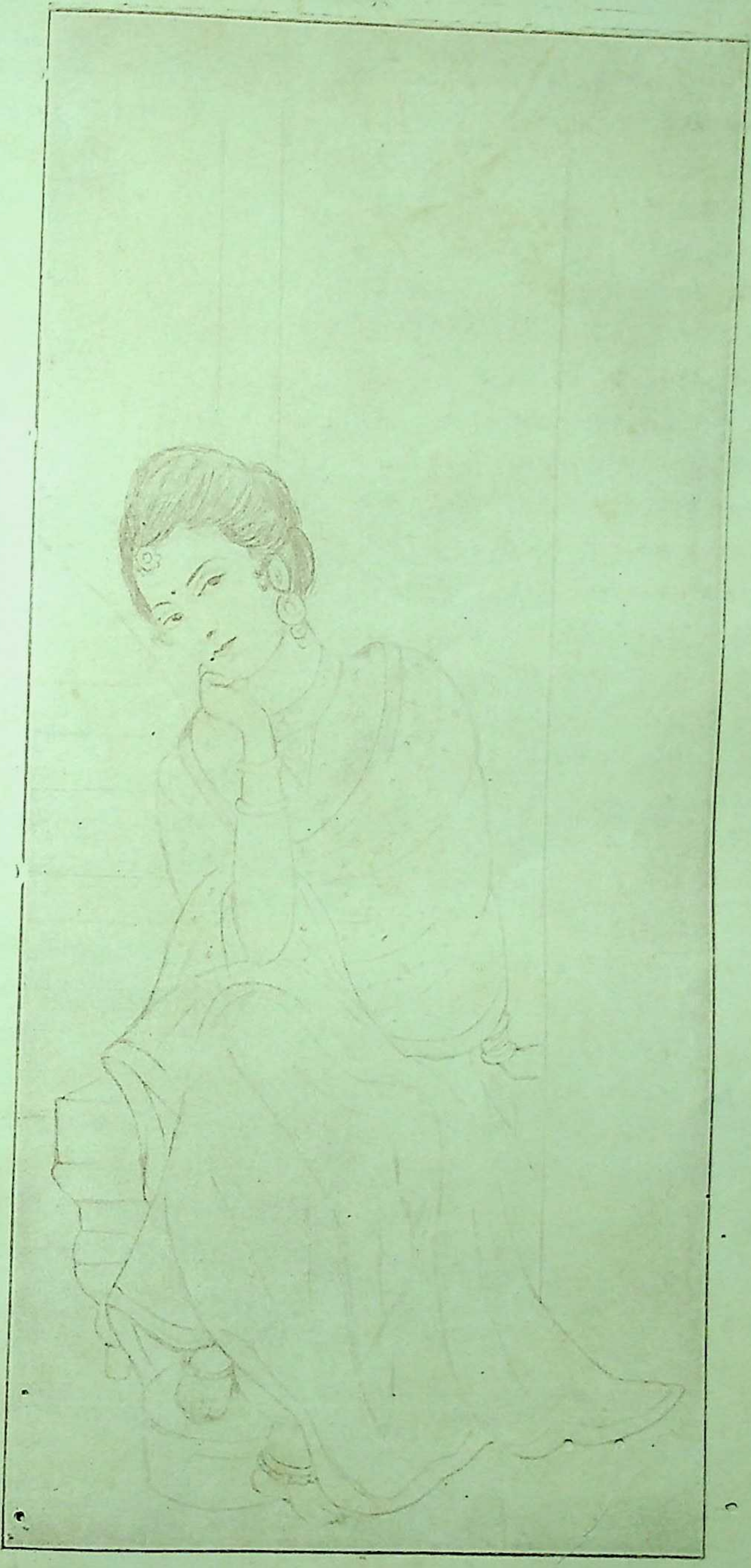

[illegible]

श्रीमती सुनयनी देवी द्वारा अङ्कित चित्र से

हुआ। बङ्गाल में परलोकवासी श्रीयुत शशिपाद बनर्जी, मदरास में श्रीयुत वीरेश लिङ्गमू पन्तुल और महाराष्ट्र देश में श्रीयुत प्रोफेसर धोंडो केशव कर्वे, इन उदारमनस्क स्वार्थत्यागशील अथवा दीर्घ उद्यमशाली समाजसुधारकों ने अनाथ बालिकाओं के दुःखाश्रु पोंछकर उनके जीवन को विशेष सुखावह बनाने अथवा उच्चतर ध्येय की कल्पना से प्रेरित करने के लिए जो प्रयत्न किये वे निःसंशय चिरस्मरणीय हैं। इन महापुरुषों द्वारा कराये हुए दिग्दर्शन से अधिकाधिक प्रयत्न होते रहेंगे और सारे देश भर को हिन्दू विधवाओं की कष्टप्रद स्थिति का नाश होगा, ऐसे चिन्ह प्रत्यक्ष दिखाई पड़ते हैं। गुजरात में इस तरह के प्रयत्नों का उपक्रम स्वयं स्त्री जाति की ही दो व्यक्तियों द्वारा हुआ यह प्रशंसा की बात है।

महाराष्ट्र प्रान्त में जैसा प्रोफेसर कर्वे का अनाथ "बालिकाश्रम" है वैसाही गुजरात में "वनिता विश्राम" है। इस संस्था का कार्यक्रम आज छः वर्षों से यथार्थ रीति से चलता हुआ बराबर बढ़ताही जा रहा है। इस संस्था का परिचय मर्यादा के पाठकों को उपयुक्त और बोधप्रद मालूम होगा यह सोचकर यहां पर वनिता विश्राम का संक्षिप्त परिचय देने का प्रयत्न किया जाता है।

(कल्पना अथवा कार्यारम्भ)

श्रीमती शिवगौरी उर्फ न्हानी बेन कल्याण भाई गज्जर, और श्रीमती बाजीगौरी दौलतराय मुनशी इन दोनों स्त्रियों को "वनिता-विश्राम" स्थापित करने की कल्पना सूझी और वही इस संस्था की मुख्य व्यवस्थापिकाएं हैं। श्रीमती शिवगौरी और श्रीमती बाजीगौरी इन दोनों ही को थोड़ी उम्र में वैधव्यदशा प्राप्त होने के कारण हो सम्भव है उनके मन में जीवित सार्थक्य के परमार्थ विषयक विचार उत्पन्न हुए होंगे। दोनों ही का परस्पर सगी बहनों की भांति प्रेम होने और विचार की दशा भी एकही होने के कारण उन विचारों को मूर्तिमान स्वरूप देने के विषय में उनको परस्पर में एक को दूसरी से अच्छी सहायता मिली। अपनी भांति जो अपनी दूसरी बहनें वैधव्य दुःख भोग रहीं हों उनका आयुष्यक्रम विशेष सुखावह, समाजोपयोगी और ज्ञानसम्पन्न बनाने के लिए कुछ उपाय अवश्य करना चाहिये, यह बात श्रीमती शिवगौरी और श्रीमती बाजीगौरी इन दोनों ही के मन में जम गई। विधवा स्त्रियां धर्मज्ञान और अध्यात्मज्ञान के प्रभाव से परमार्थ की ओर आकर्षित हों, यही उनका मुख्य उद्देश्य था। इस प्रकार कुछ थोड़ा बहुत प्रत्यक्ष रूप से काम करने के लिए उन लोगों ने कुछ विशेष योजना भी पहले अपने मन में की थी; परन्तु उस समय अनुकूल परिस्थिति के अभाव में वह अमल में न आ सकी। उसके बाद संवत १९५८ में उन्होंने प्रति रविवार और बुधवार को दोपहर के समय सूरत के शहर में नागर फलिया महाल के लक्ष्मीनारायण के मंदिर में स्त्रियों को एकत्र करना और वहां दो घंटे तक हरि कीर्तन अथवा धर्म चर्चा चलाने का उपक्रम किया; परन्तु शीघ्रही सूरत में प्लेग का उपद्रव आरम्भ होने के कारण श्रीमती बाजीगौरी के पिता राय बहादुर दौलतराय मुनशी डुमस में रहने के लिए चले गये और उनके साथही श्रीमती बाजीगौरी और श्रीमती शिवगौरी भी गईं। वहां जाने पर फिर उपर्युक्त विषय की ही बातचीत शुरू हुई और उस त्रिवर्ग ने विधवा स्त्रियों के लिए एक आश्रम स्थापित करने का निश्चय किया। आश्रम का प्रथम उद्देश्य था कि विधवा स्त्रियों को धर्म और नीति की शिक्षा दी जाय; परन्तु बाल्यावस्था में हा कन्याओं को योग्य शिक्षण दिया जाय तो वे पत्नी अथवा माता के नाते अपने कर्तव्य पालन में विशेष समर्थ होंगी, और उसके द्वारा भावी

सन्तान भी सुसंस्कार सम्पन्न होगी। ऐसा विचार उत्पन्न होने पर यह तय हुआ कि आश्रम को इस रीति पर चलाना चाहिये जो सधवा, विधवा और कुमारी सब स्त्रियों को उपयोगी हो। तदनुरूप श्रीमती शिवगौरी और श्रीमती बाजीगौरी इस आश्रम की स्थापना के प्रबन्ध में लगीं। इस कार्य में पहले द्रव्य साहाय्य का प्रश्न उठा था, तथापि आरम्भ में ही लोगों की सहायता का आश्रय न करके दोनों बहनों ने अपने निज के स्त्री धन में से ६ हज़ार रुपये निकाले, अनन्तर श्रीमती शिवगौरी के पिता और श्रीमती बाजीगौरी के पिता ने भी इस रकम में कुछ अपने पास के रुपये मिलाये इस प्रकार धन संग्रह होने पर ईस्वी सन् १६०७ में सूरत में कल्याण भाई गज्जर की हवेली में "वनिताविश्राम" नामक संस्था स्थापित हुई और वहीं पर आज भी आश्रम और आश्रम के साथ सम्मिलित विद्यालय भी है।

आश्रम और विद्यालय के लिए एक स्वतंत्र इमारत होनी चाहिये, ऐसा विचार आश्रम के मेनेजिङ्ग कमेटी ने स्थिर किया और उसके लिए एक जगह भी खरीदी गई, जिसमें दो सौ विद्यार्थिनियों के रहने और खाने पीने की व्यवस्था हो और इसके अतिरिक्त विद्यालय के लिए प्रशस्त और स्वच्छ स्थान बच सके ऐसी इमारत बनाने का विचार है। लगभग ७५,०००) रुपये खर्च होंगे, ऐसा अन्दाज़ किया जाता है।

प्रत्येक पृथक जाति और पृथक संप्रदाय की गुजराती हिन्दू स्त्रियों को इस आश्रम से लाभ प्राप्त होसके इस प्रकार की समुचित व्यवस्था करने का प्रबन्ध किया गया है। आश्रम के नियम, तथा 'कार्य' की व्यवस्था और विद्यालयों के अभ्यास क्रम निश्चित करने के काम में सुविख्यात भौतिक शास्त्रज्ञ एवं विद्यानिधि पंडित श्रीयुत प्रोफेसर टा० के० गज्जर ने अपनी प्रियपत्नी श्रीमती [illegible] गौरी को हर प्रकार की सहायता की। दोनों साध्वियों को उनके घरवालों से इस अंगीकृत पवित्र कार्य में सहानुभूति और सहायता प्राप्त हुई। उन दोनों देवियों द्वारा निज के स्त्री धन में से रकम निकालकर आश्रम के स्थापित करने के लिए द्रव्य एकत्र करना आरम्भ करने पर इतर लोगों से भी उनको आर्थिक सहायता मिलने लगी और सब मिला कर कुल रकम ३०,०००) रुपये इकट्ठे होजाने पर सन् १६११ के साल में आश्रम की संस्था को ट्रस्ट का स्वरूप दिया गया अर्थात् ट्रस्टियों के द्वारा आश्रम की संस्था का कार्यक्रम परिचालित होने लगा। उपर्युक्त दोनों स्त्रियां श्रीयुत गोकुलदास कहानदास पारख, श्रीयुत त्रिभुवनदास नरोत्तमदास सोलिसिटर और सेठ रतनसी मूल जी आदि इस संस्था के ट्रस्टी हैं। ट्रस्ट के द्वारा चार स्त्रियां और चार सभ्य गृहस्थों की एक कार्यकारिणी कमेटी बनाई गई।

आश्रम की जब से संस्थापना हुई तब से गुजरात प्रान्त के हर एक भाग से विधवा और निज का खर्च देकर रहनेवाली स्त्रियां बराबर आश्रम में आने लगीं। पहले तीन वर्ष पर्यन्त आश्रम की विद्यार्थिनियों की संख्या जैसी चाहिये वैसी नहीं बढ़ी। सन् १६१० ई० में १० विधवा और ८ निज का खर्च देकर रहनेवाली स्त्रियां आश्रम में थीं, और प्रारंभिक शिक्षा विद्यालय (प्राइमरी स्कूल) में ७५ बालिकाएं शिक्षा पाती थीं। तब से बराबर हर साल यह संख्या बढ़ती ही जा रही है। सन् १६१२ के अप्रेल के अन्त में विद्यालय में २१० विद्यार्थिनी बालिकाएं और आश्रम में ३२ विधवा एवं १३ विवाहिता स्त्रियां तथा ३४ अविवाहिता कन्याएं थीं। यह उस वर्ष की रिपोर्ट से मालूम पड़ता हैं। विशेष ध्यान में रखने योग्य बात यह है कि विद्यार्थिनियों में ७ से ४५ वर्ष पर्यन्त हर अवस्था की स्त्रियां हैं। कितनी ही प्रौढ़-वयस्क स्त्रियों ने यहां

ककहरा से पढ़ना आरम्भ कर अपनी उत्कट ज्ञान लालसा प्रकट की है ।

आश्रम की व्यवस्था और कार्यक्रम ।

आश्रम के रहनेवाली स्त्रियों को अपनी रहन-सहन बिलकुल सीधी सादी रखनी पड़ती है । नियत समय से उनके भोजन की व्यवस्था की जाती है । भोजन में दाल भात रोटी तरकारी और दूध ये पदार्थ रहते हैं । लाल मिर्चा प्याज लहसुन इत्यादि कुत्सित पदार्थ कभी उपयोग में नहीं लाये जाते । तीज तेवहार के दिन कुछ पकवान अथवा मिठाई भी भोजन के साथ रहती है । सब का पहरावा सादा और स्वच्छ रहता है । प्रातःकाल साढ़े पांच बजे उठकर स्नान पूजन आदि विधि समाप्त करना और फिर डेढ़ दो घंटे विद्या अभ्यास करना पड़ता है । कितनी ही स्त्रियां तब तक पारी पारी से रसोई बनाने का काम करती हैं । भोजन हो चुकने पर साढ़े ग्यारह बजे सब विद्यालय में उपस्थित होती हैं । पांच बजे विद्यालय का काम बन्द होता है । अनन्तर आध घंटे तक आश्रम के हाते में सब को घूमने फिरने की स्वतन्त्रता रहती है । सन्ध्या के समय के बाद सब को अपना २ पाठ याद करना पड़ता है । अनन्तर रात को ९ बजे सब लोग आश्रम के दीवानखाने में एकत्रित होकर ईश्वर स्तुति, भजन, जप और मनन करती हैं । इतना होने पर निद्रा करने का समय होता है ।

विद्यालय के अभ्यास क्रम में पृथक् पृथक् उपर्युक्त विषयों का समावेश किया गया है । इतिहास प्रसिद्ध अच्छी २ स्त्रियों के चरित्र समझा दिये जाते हैं । आरोग्य शास्त्र और गृह व्यवस्था की शिक्षा देने की खास तौर पर व्यवस्था की गई है । धर्मशास्त्र और नीति शिक्षा की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया जाता है । बारम्बार अच्छे २ उपदेश दिये जाते हैं । संस्कृत और अङ्गरेज़ी भाषा का भी कुछ ज्ञान आश्रमवासिनी स्त्रियों को प्राप्त हो सके इस विषय की भी अभ्यास क्रम में योजना की गई है । चित्रकला और भक्तिरसपूर्ण एवं बोध पर गीतों के द्वारा संगीत विद्या भी सिखलाई जाती है ।

स्त्रियों के लिए उपयुक्त एक पुस्तकालय और वाचनालय आश्रम में होते हुए भी प्रौढ़-वयस्क स्त्रियों के लिए "वनिता मण्डल," और बालिकाओं के लिए "बालामण्डल," नामक संस्थाएं हैं । इन संस्थाओं में निबन्धवाचन, सहोपासना आदि कार्य होते रहते हैं । "वनिता कार्यशाला" यह संस्था स्त्रियों की उद्योगशाला होते हुए भी इसमें बुनने का काम, सीने का काम, और हाथ पैर के मोजे वगैरह बनाना सिखलाया जाता है । गरीब स्त्रियों का निर्वाह सदाचरण के साथ हो सके यही इस शिक्षण का उद्देश्य है । "वनिता भण्डार" विभाग में कार्यशाला की स्त्रियों के द्वारा तैयार की हुई वस्तुएं रक्खी रहती हैं । आश्रम देखने को जो लोग आते हैं वे यहां की वस्तुएं खरीद कर स्त्रियों के इस प्रशंसनीय उद्योग को उत्तेजित करते हैं । "वनिता विज्ञान" नाम की एक मासिक पत्रिका आश्रम से प्रकाशित होती है । उसमें स्त्रियों के लिखे हुए लेखही प्रकाशित होते हैं । उसमें पुरुषों के लेख नहीं स्वीकार किये जाते । यह मासिक पत्र अभी दो वर्षों से प्रकाशित होने लगा है । आश्रम की विधवाओं के लिए ट्रेनिङ्ग का एक वर्ग स्थापित किया गया है । शिक्षण का काम योग्य रीति से करनेवाली स्त्रियां अधिक उपलब्ध हों यही ट्रेनिङ्ग वर्ग की स्थापना का उद्देश्य है ।

बम्बई का वनिता विश्राम ।

बम्बई में हिन्दू विधवाओं के लिए एक आश्रम स्थापित किया जाय इस उद्देश्य से सन्

१९०९ में नामदार न्यायाधीश सर नारायणचन्दावरकर की अध्यक्षता में एक सार्वजनिक सभा एकत्र हुई। इस सभा में कुछ प्रतिष्ठित लोगों की एक कमेटी बनाई गई। इस कमेटी से यद्यपि कोई उल्लेखयोग्य काम न हो सका तथापि श्रीमती शिवगौरी ने नामदार पारख श्रीयुत मालवी सालिसिटर, आदि की सहायता से प्राचीन गृह संस्थाओं द्वारा उद्योग आरम्भ किया। उस समय उन्होंने जिन २ मनुष्यों से मुलाकात की उनमें य० वा० सेठ भगवानदास नरोत्तमदास की स्त्री जवाहिर बाई से भी मुलाकात की। इन उदार बाई साहब को वनिता विश्राम का कार्य क्रम देख कर बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने इस संस्था को ५०,०००) रुपये देने का वचन दिया। य० वा० सेठ भगवान दास ने अपने मृत्युपत्र में विवक्षित धर्मकार्य के लिए २,५२,०००) रुपये की रक़म लिख दी थी उसका विनियोग कपोल जाति के बनियों के कुटुम्बों को रहने के लिए सस्ते भाड़े की हवादार चाली (हवेली) बनवाने में किया जाय यह जवाहिर बाई ने तै किया और उसके लिए सिटी इंप्रूवमेंट ट्रस्ट से कुछ ज़मीन खरीदी गई। इस ज़मीन का कुछ हिस्सा बम्बई के वनिता विश्राम को दिया जाय ऐसी इच्छा भी जवाहिर बाई ने प्रकट की और यह बात संस्था के ट्रस्टियों ने आदरपूर्वक स्वीकार की। ज़मीन और इमारत के लिए ५०,०००) रुपयों की सहायता मिलने पर बम्बई में वनिताविश्राम के लिए स्वतन्त्र इमारत बनवाना निश्चित हुआ। तलमजला और उसके ऊपर तीन मंजलो इमारत बनवाने में ८०,०००) खर्च होता परन्तु उतने रुपये न होने के कारण ५०,०००) रुपये में एक मंजली इमारत बनवाने का विचार तुरन्त ही निश्चित हुआ। इस जगह में विद्यालय के वर्ग, सुपरिन्टेन्डेन्ट का आफ़िस, विद्यार्थिनियों की कोठरियां, रसोई घर, भोजन गृह आदि पृथक् पृथक् भाग और तलमजले पर एक प्रशस्त दीवानखाना बनाया जायगा। यह जगह इसी संस्था के लिए उपयोगी हो ऐसा नहीं। हिन्दू स्त्रियों की उन्नति के लिए होनेवाली सब सभाओं को यह जगह मिल सकेगी। इस हाल का नाम जवाहिरबाई भगवानदास नरोत्तमदास होगा। श्रीमती जवाहिरबाई ने जिन कई शर्तों पर इमारत बनवाने के लिए उपर्युक्त ५०,०००) रुपये का दान वनिताविश्राम को दिया है उनमें से एक शर्त यह भी है कि आश्रमवासिनी स्त्रियों की चौथाई संख्या पर्यन्त कपोल बनिये और कंडोलिया ब्राह्मणों की स्त्रियां अवश्य आश्रम में भरती की जांय।

(लेडी सीडनहम का भाषण)

सोमवार ता० १५ फरवरी को बम्बई के वनिताविश्राम की कोण शिला स्थापन विधि बड़े समारोह के साथ प्रसिद्ध लेडी सीडन्हम के हाथों हुई। लेडी सीडन्हम ने उस समय थोड़े में अपने सुन्दर भाषण द्वारा स्त्रियों की उन्नति के विषय में हिन्दू समाज में दिखाई देनेवाली जागृति का सन्तोषपूर्वक उल्लेख किया और श्रीमती शिवगौरी तथा श्रीमती जवाहिरबाई के परोपकारिता की प्रशंसा की। १९११ ईस्वी में लार्ड सीडन्हम और उनके साथही साथ लेडी सीडन्हम दोनों सूरत के वनिताविश्राम को देखने गये थे और उस समय वहां की व्यवस्था देखकर इनको जो समाधान हुआ सो इन लोगों ने अपने "विजिटसबुक" में टांक रक्खा था, इसी से लेडी सीडन्हम बम्बई में भी वनिताविश्राम की स्थापना होते देखकर और भी अधिक प्रसन्न हुई। उन्होंने अपने भाषण में प्रोफेसर कर्वे द्वारा स्थापित अनाथ बालिकाश्रम की भी हृदय से प्रशंसा की। वहां की बालिकाओं को प्रसन्न मुख देखकर, और यह विचार कर कि कोने अँतरे में दुःख झेलती हुई पड़ी रहनेवाली इन मानव प्राणियों का जीवन आश्रम में निवास

करने से कैसा सुख मिला, उनको जो सन्तोष प्राप्त हुआ सो लेडी सीडनहेम् ने अपने भाषण में सर्वसाधारण को प्रकट किया। दुःख प्रसंग भी सत्व की कसौटी है। इस कसौटी पर ठहरनेवाले अर्थात् अपने दुःख प्रसङ्ग से दूसरों के दुःख प्रसङ्ग का अनुभव करनेवाले और दुःखितों की सहायता करनेवाले मनुष्य भी श्रेष्ठ कोटि के होते हैं, और इसी कोटि के मनुष्यों में वनिता विश्राम की संस्थापक साध्वियों की गणना होसकती है। यों कहकर लेडी सीडनहम ने उन साध्वियों के मार्ग का अनुकरण करने के विषय में इतर स्त्रियों को जो उपदेश दिया सो अवश्यही सब को ध्यान देने योग्य है।

वनिताविश्राम की संस्थापक स्त्रियों ने अपनी बहनों के लिए जो मार्ग दिखलाया है वह सर्वथा प्रशंसनीय है। उनके दीर्घ उद्योग, निश्चय और स्वार्थत्याग की जितनी प्रशंसा की जाय उतनी थोड़ी है। ऐसी २ हज़ारों स्त्री रत्न इस देश में पैदा हों, और हम स्त्रियों की सब प्रकार से उन्नति हो, यह हम अन्तःकरण से चाहती हैं, परमात्मा हमारा मनोर्थ पूरा करे।

इन्दुमती ।

[लेखिका—श्रीमती शारदा कुमारी ।]

कृष्ण बाबू बड़े दिन की तातील में घर पर आए हुये हैं। आप बी० ए० में पढ़ते हैं। स्वभाव आप का नये फैशन का है। कुछ दिन से आप आर्यसमाजियों के संगत में रहते हैं। इससे राम तथा कृष्ण को ईश्वर का अवतार नहीं मानते, पर पिता आपके कट्टर हिन्दू हैं।

ईश्वरेच्छा से इस साल माता पिता का विचार है कि विवाह हो जावे! पर कृष्ण बाबू अपनी प्रसन्नता से विवाह होना ठीक समझते हैं। अस्तु उनके माता पिता वर्तमान नियम के अनुसार यह होना महा पाप एवं मानहानि समझते हैं।

आपके विवाह की बातचीत ठीक हो चुकी है। लोगों का पूर्ण विश्वास है कि लड़की सुन्दरी एवं सुशिक्षिता है। उनके माता पिता विवाह का दिन दूसरी अप्रैल को ठीक कर तैयारियां कर रहे हैं।

कृष्ण बाबू यह सब हाल चुपचाप देखते रहे, और सोचने लगे "क्याही मूर्खता है। ये लोग अपने कायदे को तोड़ना नहीं चाहते, और हम बिना देखे विवाह करना पसन्द नहीं करते" अस्तु जो होगा सो देखा जायगा।

छुट्टी पूरी हुई, कृष्ण बाबू कलकत्ते रवाना हुए। पर इस दफे आपका चित्त घोर चिन्ता में है। पढ़ने लिखने में आप इस बार तेजी नहीं दिखाते। परीक्षा निकट है पर कुछ ध्यान नहीं। आपके मित्र लोग तरह २ की हास्यास्पद दिल्लगी करते हैं। परन्तु आप उत्तर नहीं देते। हां मित्रता ढङ्ग पर कुछ मुस्करा कर चुप रह जाते हैं। आप जब से आये हैं घर पर कुशल पत्र नहीं लिखते।

एक दिन आप ५ बजने के क़रीब भवानीपूर रोड की तरफ कुछ सोचते हुए जारहे थे। रास्ते में एक मित्र से मुलाकात हुई। दोनों मित्र एक दूसरे को देख बड़े प्रसन्न हुए। आप के मित्र का नाम माधव बाबू था। माधव बाबू ने इधर उधर की वार्तालाप करके पूछा "परीक्षा निकट है, मेहनत कैसी करते हैं? जिसमें इस साल पास हो जाव वही करो"। कृष्ण बाबू कुछ मन मलीन हो बोले "इस साल पास करने की आशा नहीं है, पर देख ?"

सो क्यों ?

कृष्ण बाबू फिर वैसेही स्वर से बोले। न मालूम क्यों इस दफे पढ़ने में चित्त नहीं लगता।

माधव बाबू ने दिल्लगी से हँसकर कहा! हां हां जानते हैं। इस साल विवाह होना है इसी से, परन्तु यह तो कहो कि जब नव-बधू से मिलोगे तब और क्या करोगे। तुम्हारे भावी साले से हमारी जान पहचान है, उन्होंने लिखा है कि "इन्दुमती की शादी होगी"। कृष्ण बाबू ने सोचा कि शायद इससे कुछ पता मिले इससे दबी जुबान से बोले लड़की कैसी है ?

अच्छी है सुशिक्षिता है। चिन्ता मत करो तुम उसकी हस्तलिपि भी देख सकते हो। ऐसा कहकर उन्होंने जेब से एक पत्र हिन्दी में लिखा हुआ निकाल कर दिखाया।

कृष्ण बाबू पत्र देखकर हास्यास्पद बातें कर कालेज आये और व्यर्थ की चिन्ता हटी।

दूसरा बयान।

कृष्ण बाबू अबकी बार परीक्षा देकर जब से घर पर आए हैं तब से बड़े प्रसन्न देख पड़ते हैं। उन्हें कोई मानसिक चिन्ता नहीं है। मित्रों से भी खूब बातचीत करते हैं।

आप अपने माता पिता की एक ही सन्तान हैं। इससे इनके विवाह में बड़ी तैयारियां हो रही हैं। मेहमानों की भीड़ रहती है। पिता भी धनाढ्य हैं।

खुशी २ विवाह समाप्त हो गया। ससुराल भी अमीर के यहाँ है इससे नक़द रकम भी खूब मिली। आपने अपनी पत्नी को साथ ले आना उचित समझा।

स्त्री को साथ ले कृष्ण बाबू और अन्य बहुत से लोग घर पर आये। आज वर के यहां स्त्रियां मङ्गल गान कर रही हैं। सब लोग वर बधू के आने का रास्ता देखते हैं। इतने में बारात आई और माता पिता ने बड़े प्यार से दम्पती को घर में प्रवेश कराया। सास ने बधू को देखकर अपने जीवन को धन्य माना और लोगों ने भी उसके रूप की प्रशंसा की।

बधू का नाम इन्दुमती है। वो अपने स्वामी को बहुत चाहती है। उसको इस बात का सब से अधिक ध्यान है कि पति को कोई कष्ट न हो।

कृष्ण बाबू की माता ने शुभ मुहूर्त दिखला कर कृष्ण बाबू से मधुर शब्दों में कहा "किशुन आज कोठे पर के कमरे में तुम्हारी सेज बिछी है वहीं सोने जाना"। कृष्ण बाबू को उनके माता पिता किशुन कहते थे। माता को आप से कहना विशेष प्रयोजनीय था क्योंकि लोग जानते थे कि शायद कृष्ण बाबू रंज से वहां न जायंगे। पर वहां तो दूसरी ही बात थी। कृष्ण बाबू माता की बातें सुन चुपचाप पत्नी के कमरे की ओर चले। वहां जाने के पूर्व आपके दिल में तरह २ के विचार उत्पन्न होने लगे जिससे आप घबरा गये। पर बहुत कुछ सोच विचार कर आपने स्त्री के घर में प्रवेश किया।

आप वहां जाकर देखते हैं कि कमरा सजा हुआ है। बिजली की रोशनी हो रही है और एक तरफ सजे हुए पलंग पर इन्दुमती चादर से बदन ढाके निद्रा देवी के गोद में शयन कर रही है। आप ने सोचा कि रात्रि अधिक जाने के कारण सो गई है। इससे जगाना उचित न जानकर पहले सेज के पास ही खड़े होकर इन्दुमती की अनुपम छबि को देखकर प्रसन्न हो सोचने लगे। परमात्मा क्या मेरे नयन में तो कोई रोग नहीं है या मैं स्वप्नावस्था में हूं। हा! हा! जिसे मैं एक तुच्छ स्त्री जान अपनी पत्नी नहीं बनाना चाहता था उसी को मैं आज नेत्रों के निकट देखता हूं यह कैसी विचित्र बात है। ऐसी सुशिक्षिता सुन्दरी के पाने से मेरा जीवन बड़ेही सुखपूर्वक बीतेगा।

किन्तु सब से पहले इसके स्वभाव का परिचय पाना आवश्यक है। ऐसा कहते हुए आप स्त्री के दाहिने तरफ अलग ही सो रहे पर आप को निद्रा कहां? आप तो इन्दुमती से वार्तालाप करने और उसके विद्या गुण चातुरी का परिचय पाने के लिए व्यग्र थे। पलङ्ग पर लेटे करवटें बदलते २ आपको दो घंटे बीत गए पर तब भी इन्दुमती की निद्रा न खुली। इससे आप जगाना उचित जान उठ बैठे और धीरे से उसके हाथ से दबी हुई चादर को खींचा। इस समय आपका दिल धड़क रहा था।

अभाग्यवश इतने पर भी इन्दुमती न जागी। तब आपने उसके हाथ को अपने हाथ में ले धीरे से पुकारा "इन्दुमती", इस बार आप सफल मनोरथ हुए। इन्दुमती जागी पर स्वामी के हाथ में हाथ देखकर शीघ्र उठ बैठी और अपने चेहरे को घूंघट से छिपा लिया। अब कृष्ण बाबू जरा दूर हट गये और बोले "इन्दुमती यह क्या"। इन्दु ने कुछ उत्तर न दिया तब आपने ज़रा ऊंचे स्वर में कहा इन्दुमती! हमने तुम्हें सुशिक्षिता समझकर प्रसन्न चित्त से व्याहा था पर यहाँ तो इसके विरुद्ध पारहे हैं सो क्यों"? इन्दुमती फिर न बोली तब आपने ज़रा मधुर स्वर में कहा "बोलो हम से लाज क्यों करती हो ?"

इस बार इन्दुमती ने घूंघट को जरा ऊँचा कर धीमे स्वर से कहा। "आपने हमसे विवाह करके अपने सुखमय जीवन को घोर अन्धकार में डाल दिया क्योंकि जिस घर में अच्छी स्त्री नहीं वहां सुख नहीं।"

कृष्ण बाबू इस उत्तर से चित्त में बहुत प्रसन्न हुए। तब दूसरी बार उन्होंने जिज्ञासा का—"इन्दुमती क्या तुम्हें मेरा संसर्ग अच्छा मालूम होता है।" इन्दुमती ने फिर उसी प्रकार कहा—स्त्री को स्वामी का संसर्ग छोड़ कौन संसर्ग अच्छा मालूम होगा? पर आप की इस जिज्ञासा का आशय क्या है?

कृष्ण बाबू ने साफ २ कहना उचित जान फिर कहा। "इन्दुमती इस साल पास करने की आशा नहीं है इससे थोड़े दिन के लिए तुम से अलग होना पड़ेगा।"

"आपके पास न होने का कारण क्या है? क्या मेहनत पूरी नहीं हुई"? मुझसे अलग होने और पास न होनेवाली बात से क्या सम्बन्ध?"

कृष्ण बाबूने जरा मुस्कुराकर कहा "इस साल न मालूम क्यों पढ़ने में जी नहीं लगता था इससे पास करने की आशा नहीं है। अतः मालूम पड़ता है कि विलायत जाना होगा"।

इन्दुमती यह सुन घबड़ा गई। वह स्वामी के स्वभाव का परिचय पा चुकी थी। इससे उसने ज़रा ऊँचे स्वर में कहा "क्या आप विलायत न जाकर यहां नहीं पढ़ सकते हैं। यदि भाग्यवश पास हो जांय तब"।

"इन्दुमती, पास हों या न हों बिना विलायत गये काम न चलेगा। वहां जाने से तुरंत नौकरी मिल जायगी, फिर वहाँ अङ्गरेज़ों का हाल देखने में आवेगा।" इन्दुमती ने कहा। "क्या आप के माता पिता वहां जाने की सम्मति देंगे"?

"सम्मति न देंगे तो न दें हमें कुछ परवाह नहीं है। वे लोग नाराज़ ही क्यों न हो जांय पर इसके लिए हम अपनी यात्रा नहीं रोकेंगे"।

इन्दु०—"मैं कहां रहूंगी?"

"यहां रहना नहीं तो पिता के घर जाना। इन्दुमती ने ज़रा आग्रह से कहा "नहीं मैं आपको छोड़ पिता ही का घर क्यों न हो मैं नहीं जा सकती।"

तीसरा बयान।

आज रिज़ल्ट निकलनेवाला है। इससे

कृष्ण बाबू उत्सुक हो रहे हैं। इन्दुमती के लिए तो आज का दिन भयानक भी है और सुखमय भी। यदि स्वामी पास हो गये तब तो कोई बात ही नहीं रही यदि नहीं तो इन्दु के लिए आज सा दुःखदायी दूसरा दिन न होगा। रिज़ल्ट देखा गया सब लड़कों का नाम था पर कृष्ण बाबू का नहीं। एक बार शायद न मिला हो इससे बारम्बार उलट पुलट कर कृष्णबाबू खूब देख चुके पर कहीं नहीं। अब तो आप कुछ उदास हुए पर विलायत जाने की प्रबल आशा ने आपकी उदासी को स्थायी रूप ग्रहण करने न दिया। रिज़ल्ट में कृष्ण बाबू का नाम नहीं, यह हाल माता पिता के अतिरिक्त जिस समय इन्दुमती ने सुना उस समय उसके ऊपर मानो बज्र गिरा। उसके लिए वह दिन जनशून्य बन दिखाई देने लगा। वह दिनभर उदास रही। आज दिनभर उसके पास कोई नहीं आया। इन्दुमती सोचने लगी कि "आज का यह दिन ऐसा दुःखदायी है तो जब मेरे पति विदेश जांयगे तब क्या होगा?" अस्तु इसी प्रकार वह दिन व्यतीत हुआ। सायङ्काल के समय वह दालान में बैठी थी इतने में कृष्ण बाबू आये और इन्दुमती से बोले "इन्दुमती अब क्या सोचती हो परमात्मा को जो करना था वह कर चुके। अब आगे की बात देखो। और हमसे जो कहना हो वह कह लो क्योंकि हम आज ही रात को जानेवाले हैं।"

इन्दुमती कृष्ण बाबू की बात सुन कर रोने लगी। कृष्ण बाबू ने अपने बातों का प्रत्युत्तर न पाकर दूसरी बार जिज्ञासा की:—हमने तुम्हारे यहां रहने का सब बन्दोबस्त करदिया है क्योंकि हम पहले से जानते थे कि जाना होगा। खैर! तुम्हारा जब तक यहाँ रहने का जी चाहे तब तक यहां रहना नहीं तो पिता के घर जाना। इस पर भी इन्दुमती कुछ न बोली। तब आप हाथ पकड़ कर उसके पास ही बैठ गये और फिर कहने लगे।

"इन्दुमती देखो तुम न बोलोगी और हम चले जांयगे तब फिर हम लोगों का क्या हाल होगा यह तुम स्वयं जान सकती हो। हमने तो तुम्हें कह ही दिया था कि पास हुआ तो भी जाना होगा और नहीं हुआ तब तो ज़रूरी है। तुम्हीं सोचो वहां जाने पर कितनी शीघ्र नौकरी मिलेगी और यहां तो मेहनत भी करो और नौकरी भी देर से।"

इन्दुमती ने करुणा स्वर में कहा:—यदि आप मेरी बातों पर ध्यान दें तो मैं यही कहती हूं कि इस साल और मेहनत कीजिये। यदि इस साल पास न हुए तो जाइयेगा। कृष्ण बाबू ने कहा: -इन्दुमती तुम इस समय बिलकुल नहीं समझती हो। ज़रा सोचो तो कि यदि फिर भी पास न हुआ और जाना ही पड़ा तब उतना ही दिन लगेगा और इस समय जांयगे तब भी।

इन्दुमती ने फिर कहा। "यदि आप न मानेंगे तब तो मैं क्या कोई भी नहीं रोक सकता। पर माता पिता की सम्मति लेकर जाते तो अच्छा होता"।

"अच्छा ईश्वर आपकी रक्षा करे। आप अपने धर्म पर स्थित रहियेगा और क्या कहूँ। कृष्ण बाबू इसी प्रकार इन्दुमती को धैर्य्य दे माता पिता से कलकत्ते का बहाना कर इङ्गलैंड गये।

चौथा बयान।

जिस समय माता पिता ने सुना कि लड़का कलकत्ते न जाकर विलायत चला गया उस समय उनके दिल पर दुःख और क्रोध दोनों ने अपना पूरा अधिकार जमाया। दुःख तो कृष्ण बाबू के जाने का और क्रोध इन्दुमती के ऊपर। सब कोई उसे बुरा भला कहने लगे। माता दो चार रोज़ ही सुनावे। पिता भी बराबर कहें कि इसने मेरे कुल में कलङ्क लगाया क्योंकि अब तक [illegible] नहीं विलायत गया? इससे सब इसी

श्रीमती यमुना बाई जी।

की करतूत है। अब हम मुह दिखाने लायक नहीं रहे। सब से सर झुकाना पड़ा। सम्बन्ध भी इसी से छूटा। इन्दुमती किसी के बातों का उत्तर न दे चुपके से सब सहन कर लेती थी। वह बुद्धिमती थी इस से मन ही मन ईश्वर से प्रार्थना करती थी। वह जानती थी कि "जब स्वामी विदेश गये और ईश्वर रुष्ट हुआ तब यह दिन भी देखना पड़ा"। वह अपने मन को धैर्य देती थी। जब कृष्ण बाबू पत्र लिखते तब इन्दुमती के दिल में आनन्द का श्रोत उमड़ आता था। एक दिन उसके सास स्वसुर ने इन्दुमती को उसके पिता के घर भेजना चाहा पर इन्दुमती ने साफ अस्वीकार कर दिया। उसका खाना पीना सब छूट गया वह सूख गई और उसकी सुन्दरता जाती रही। उससे कोई बात भी नहीं करता था। पर उसने इन बातों की निन्दा पनि के पत्र में नहीं की। जब कृष्ण बाबू उसका हाल पूछते थे तब वह "मैं अच्छी हूं और खुश हूं" यही लिखा करती थी।

उधर कृष्ण बाबू विलायत जा स्त्री को न भूले। देखते २ तीन वर्ष गुज़रा। अब वह वर्ष आया जिसमें कृष्ण बाबू आनेवाले थे। अब इन्दुमती के आनन्द की सीमा न रही। अब ईश्वर ने उस पर कृपा किया कि उसके स्वामी दूर देश की यात्रा कर प्रसन्नतापूर्वक लौट रहे हैं।

आज कृष्ण बाबू सकुशल लौट आये। आपके यहां आनन्द मच रहा है। इन्दुमती अपनी प्रसन्नता को छिपाना चाहती थी पर वह कब छिपनेवाली है। माता पिता पुत्र का मुख प्यार से देख रहे हैं। पर पुत्र का स्वभाव याद आते चुप रह जाते हैं। फिर उन्होंने कहा कि किशुन यहां लोग कहते हैं कि जब तक प्रायश्चित्त नहीं होगा तब तक जाति में नहीं लेंगे।

कृष्ण बाबू यह सुन प्रायश्चित्त कर रात्रि के गाड़ी से अपनी बिवाहिता स्त्री को ले कलकत्ते चले गये।

हिन्दू बिधवा।

[लेखिका—श्रीमती रामेश्वरी नेहरू-सम्पादिका स्त्री दर्पण।]

बिधवा! आह! इस तीन अक्षर के छोटे से शब्द में कितना दर्द भरा है। स्त्रियां इस शब्द की आवाज़ ही से कितना भय खाती हैं। इसके कर्णगोचर होतेही उनका कलेजा कांप उठता है। भारत ललनाओं के लिए बिधवा होने से बढ़कर कोई दूसरा दुःख नहीं। धनहीन होना, रोगग्रस्त होना, बन्धुहीन होना यहां तक कि सन्तानहीन होना भी उतना भयङ्कर और दुःखदाई नहीं है जितना कि बिधवा होना। माता पिता अपनी पुत्री के लिए, भाई बहिन अपनी भगिनी के लिए, सहेलियां अपनी सखियों के लिए रात दिन यही प्रार्थना करती हैं कि "हे ईश्वर यदि इनको विधवा होना है तो ऐसे अशुभ दिन के पूर्व ही तू इनको इस धर्ती से उठा ले।" यही नहीं जो अभागी बिधवा होजाती हैं उनके लिए भी उनके निकट से निकट के नातेदार, उनके माता पिता, भाई बहिन, तक इसी बात के इच्छुक रहते हैं कि यदि यह भाग्यहीना बिधवा अपने बोझे से इस धरती को हलका करदे तो अच्छा हो। सुकुमारी बालिका के परम मित्र, जो उसे जान से भी अधिक चाहते थे, जो उसके चिरजीवी होने के रात दिन उपाय किया करते थे क्यों उसके बिधवा होजाने पर एकदम उसकी मृत्यु के अभिलाषा होजाते हैं? इस प्रश्न का उत्तर देने में हमें अधिक सोचना नहीं है। हमारे देश में बेचारी विधवा से जो बर्ताव

किया जाता है उसको देखते हुए यही कहना पड़ता है कि बिधवा रहकर जीवन व्यतीत करने से कहीं अच्छा है कि उस दुःखदाई जीवन का अन्त होजाय। भारत के परम मित्र श्रीयुत रैमज़े मेकडानेल ने "Awakening of India" के नाम से जो पुस्तक लिखी है उसमें भारत की बिधवाओं की बात लिखते हुए उन्होंने लिखा है कि यद्यपि "सती" की रीति इस देश से उठगई है तथापि "जीवित सती" का दस्तूर अभी तक प्रचलित है। आपका यह कहना अक्षरशः ठीक है। निस्सन्देह हिन्दू ललनाओं को बिधवा अवस्था में जो यातनाएं और कष्ट सहन करने पड़ते हैं वे अग्नि में भस्म होकर जीवन त्याग देने से कहीं भयङ्कर और दुःखदाई हैं। मनुष्य के अत्याचारों का सिलसिला पति के मरते ही बिधवा के बाल काटने से आरम्भ होता है। यह रीति बङ्गाल और महाराष्ट्र देश में अधिक प्रचलित है। बाल कटाने के अतिरिक्त और जो अन्याय और अत्याचार बिधवाओं के साथ होते हैं वे समस्त देश में थोड़े बहुत अन्तर के साथ प्रचलित हैं। बिधवा की अवस्था का ध्यान न करके उसे अच्छे कपड़े, अच्छे गहने पहिरने से वञ्चित रक्खा जाता है। किसी शुभ कार्य के होते हुए बिधवा का सन्मुख आजाना बुरा समझा जाता है। शादी, व्याह और अन्य शुभ कार्यों के समय बिधवा को दूर रखने का ही उद्योग किया जाता है। बिधवा का स्थान चूल्हा चौका समझा जाता है, उसको अपना जीवन दूसरों की सेवा में व्यतीत करना होता है, उसके लिए संसार में कहीं भी सुख का स्थान नहीं रह जाता। दूसरों का मुंह ताक कर उनकी सेवा सुश्रूषा करके उसे एक रोटी का टुकड़ा नसीब होता है। विशेष करके उन बालबिधवाओं की दशा अत्यन्त शोचनीय है जिनके कोई सन्तान नहीं होती। किसी ऐसी कन्या की, जिसको माता पिता ने लाड़ दुलार से बालपन में व्याह दिया हो और दुर्भाग्यवश इससे पूर्व कि उसे कुछ बुद्धि आवे उसे रँड़ापे की दहकती हुई अग्नि में जलना पड़ा हो, दशा को याद कर कलेजा कांप उठता है। बेचारी निर्दोष बालिका को जब तक बुद्धि नहीं आती है तब तक तो वह अपनी सखी सहेलियों, बहिन भौजाइयों को अच्छा खाते अच्छा, पहिनते देखती है और नहीं समझती कि क्यों उसके भाग्य में यह सब नहीं है। वह अपने घर की बड़ी बूढ़ियों को देखती है कि वे उसे देख २ कर ठंढी सांसें भरती हैं, आंसुओं की धाराएं बहाती हैं और उसे भाग्यहीना, दुखियारी और अभागी शब्दों से सम्बोधित करती हैं। इससे पूर्व कि अबोध कन्या अपने दुःख को अनुभव कर सके यह सब बातें उसे बाल्यावस्था में ही दुखियारी बना देती हैं। हलके २ बड़े होने पर जब सांसारिक सुखों के भोग करने का समय आता है तब उसके दुःख का समुद्र भर जाता है। किसी को अपने भाई भौजाई के आश्रय में रहकर, किसी को देवर ज्येष्ठ के सहारे, किसी को इससे भी दूर के नातेदारों के भरोसे, जीवन काटना पड़ता है। रोटी बनाकर, पराए बालकों को पालकर, उनका धन्धा करके, कठोर शब्द सुनकर, मोटा झोटा पहिरकर, रूखा सूखा खाकर, रात दिन अश्रुधारा बहाकर उस बेचारी के दिन पूरे होते हैं। भारतीय स्त्रियां पति और सन्तान के प्रेम की भूखी होती हैं यही उनके जीवन का एक मात्र सहारा होते हैं। बेचारी बिधवा बुझे हुए दिल से, सूखे हुए नेत्रों से अपने चारों ओर उस प्रेम को ढूंढती है और उसे कहीं न पाकर निराशा के समुद्र में डूब जाती है। वह दूसरों के बालकों से माता की नाईं स्नेह करती है परन्तु कभी अपने स्नेह का बदला वैसेही गाढ़े प्रेम से नहीं पाती। मैं यह नहीं कहती कि हर एक बिधवा की ऐसीही दशा होती है और कोई बिधवा दिलासे से नहीं रक्खी जाती परन्तु अधिकतर बिधवाओं की यही दशा

होती है इसमें भी कुछ सन्देह नहीं है। बिधवाओं की यह बुरी दशा भारत के नाम और मान पर ऐसा काला धब्बा है जिसको मिटाए बिना भारत सभ्य संसार में मुंह दिखाने योग्य नहीं।

बिधवाओं की दशा दो रीतियों से सुधारी जा सकती है एक उनका पुनर्विवाह कर देने से और दूसरे उन्हें पढ़ा लिखा कर सार्वजनिक कार्यों में लगा देने से। पहिले मैं पुनर्विवाह के सम्बन्ध में कुछ लिखती हूं।

पुनर्विवाह।

भारत एक धर्मप्रधान देश है जहां का हर कर्म धर्म के बन्धनों में जकड़ा हुआ है। प्रत्येक रीति रस्म, और रूढ़ि ने धार्मिक रूप धारण करलिया है। नित्त के नहाने धोने खाने पीने का सम्बन्ध भी धर्म से है। शादी, व्याह, सैर सफर सबही कुछ धर्म के निमित्त होता है। सारांश यह कि एक पक्का हिन्दू धर्म ही के लिए जीवित रहता है। यही कारण है कि यद्यपि यह हिन्दू जाति नई बातों के ग्रहण करने में देर लगाती है तथापि जब एक बार यह उनको ग्रहण कर लेती है तो चाहे वे हानिकारक हों चाहे लाभकारक फिर उनको त्याग नहीं करती। इसी से सामाजिक सुधारकों को अपनी जाति की कुरीतियां दूर करने में इतनी कठिनाई उठानी पड़ी है और इतनी कम सफलता प्राप्त हुई है। बिधवाओं की दशा सुधार में क्यों इतनी उदासीनता दिखलाई जा रही है? इसलिए नहीं कि हिन्दू लोग कठोर हृदय हैं, इसलिए नहीं कि अपनी कन्याओं, अपनी भगिनियों के दुःखों को वे अनुभव नहीं करते, इसलिए नहीं कि वे आलसी या स्वार्थी हैं वरन् इसलिए कि वें धर्म के नाम पर मरते हैं, वे हज़ार दुःख सहन कर सकते हैं, हज़ार वार मृत्यु का सामना कर सकते हैं किन्तु वे कोई बात ऐसी नहीं कर सकते जो धर्म के विरुद्ध हो। उनको यह समझा दिया गया है कि ईश्वर की आज्ञा है कि कन्या का व्याह छोटी अवस्था में करना चाहिये सो इस व्याह में अनेक दोष होने पर भी वह छोटी ही अवस्था में कन्या को व्याहते हैं। उनको यह भी विश्वास है कि बिधवा होने पर कन्या का पुनर्विवाह करना चाहे वह कितनी ही अवोध और अज्ञान क्यों न हो महापाप है अतएव कन्या के दुःख में वह अपना जीवन तक त्याग देने को प्रस्तुत हैं पर उसके पुनर्विवाह की बात को वे नहीं सुन सकते। ऐसी अवस्था में बिधवा विवाह के प्रचार का उद्योग कैसे सफल हो सकता था? बिधवा विवाह के प्रचार में भी अधिकतर सफलता वहीं प्राप्त हुई है जहां इसको धर्म के चक्र में ले लिया गया है। आर्यसमाज और ब्रह्मसमाज में बिधवा विवाह का प्रचार बहुत कुछ होगया है। सनातनधर्मावलम्बी इसे अपने धर्म के विरुद्ध समझते हैं इसलिए इनमें अभी तक बिधवा विवाह की बात धर्म से विमुख करने की बात समझी जाती है।

बिधवा बिवाह हिन्दुओं के प्राचीन धर्म के प्रतिकूल है या अनुकूल इस गूढ़ वादविवाद में पड़ना मैं उचित नहीं समझती। यदि मैं ऐसा करूं भी तो मुझे इसमें गत शताब्दी के उन दिलेर विद्वानों का आश्रय लेना होगा जिन्होंने बङ्गाल और महाराष्ट्र देश में बिधवा विवाह के लिए उस ज़माने में अपनी आवाज़ उठाई थी जब कि ऐसे शब्दों का मुंह से निकालना भी अधर्म समझा जाता था। मेरा अभिप्राय श्रीमान ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और पण्डित विष्णु शास्त्री जी से है। श्रीमान् ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने १८५४ में बिधवा बिवाह पर जो लेख लिखा था वह सर्वप्रसिद्ध है। पण्डित विष्णु शास्त्री ने १८७० में पूना में बड़े बड़े पण्डितों से ८ दिन तक जो शास्त्रार्थ किया था वह समाज सुधार का आन्दोलन इति-

हास जाननेवालों से कुछ छिपा नहीं है। काशी के बड़े २ पण्डित भी कई कई बार बालविधवाओं के पुनर्विवाह करने की आज्ञा दे चुके हैं। इन बड़े २ विद्वानों के सन्मुख मैं क्या कह सकती हूं किन्तु मैं इतना ही कह देना पर्याप्त समझती हूं कि मेरे पक्ष की पुष्टि में बड़े २ विद्वानों की सम्मतियां मौजूद हैं।

महाभारत में कई दृष्टान्त ऐसे मिलते हैं जिनसे पाया जाता है कि पूर्वकाल में भारतवर्ष में विधवा विवाह की रीति प्रचलित थी। नल दमयन्ती की प्रसिद्ध कथा में लिखा है कि दमयन्ती को जब नल का किसी भांति पता न लगा तो उसने उनको ढूंढ़ निकालने के लिए दूसरा स्वयम्वर रचने की सूचना दे दी। इस उपाय से जब नल सारथी के रूप में अपने राजा के साथ वहां पहुंचा तो दमयन्ती को उससे मिलने का अवसर मिला। यद्यपि दमयन्ती ने ऐसा अपने पहले पति को ही खोज निकालने के लिए किया था तथापि यदि पुनर्विवाह की रीति पहले से प्रचलित न होती तो उसका ऐसा करना असम्भव हो जाता। इससे यह तो स्पष्ट ही है कि महाभारत के लिखे जाने के समय यह प्रथा प्रचलित थी नहीं तो लोक विरुद्ध ऐसी बात लिखने का साहस व्यास मुनि को कदापि न होता।

दशा सुधार का दूसरा उपाय।

विधवा विवाह के सम्बन्ध में इतना ही कहकर अब मैं विधवा दशा सुधार के दूसरे ढङ्ग पर भी कुछ कहना चाहती हूं। विधवाओं का दुःख घर की चारदीवारी में बन्द रहने और घर गृहस्थी ही को सारी दुनिया समझ बैठने के कारण अधिक बढ़ जाता है। यदि स्त्रियों को उच्च शिक्षा मिली हो, यदि उनको घर के बाहर की बातों का कुछ ज्ञान हो, यदि वे अपने देश परदेश की सब बातों से जानकारी रक्खें तो उनका सारा समय अपने ही दुःख के चिन्तन में न व्यतीत हो। आजकल भारत को काम करनेवालों की अत्यन्त आवश्यकता है। जिस ओर देखिए काम करनेवालों के अभाव से बहुतेरे कार्य अधूरे पड़े हुए हैं। कन्या पाठशालाओं में अध्यापिकाओं की आवश्यकता है, समाज को स्त्री डाक्टरों की आवश्यकता है, अस्पतालों में नर्सों धायों की आवश्यकता है, अनाथालयों में प्रबन्धकर्ताओं की आवश्यकता है। कहां तक कहा जाय आवश्यकताएं इतनी बढ़ी हुई हैं कि हज़ारों स्त्रियां भी पढ़ लिखकर कार्य करने को कटिबद्ध हो जायें तो भी वे उनको पूरा नहीं कर सकतीं। हज़ारों विधवाएं जो रात दिन रो रो कर अपना जीवन नष्ट करती हैं यदि इन कामों में लग जावें तो न केवल उनका ही जीवन सुख से कटे वरन् देश की उन्नति की नींव पड़ जाय और साथ ही साथ हिन्दू विधवा का आत्मत्याग का जो आदर्श है वह भी ऐसा करने से पूरा हो जाय और अन्तर केवल इतना रहे कि उसका स्वरूप बदल जाय। अब तक विधवाएं अच्छा खाना पहिरना त्याग कर अपने दो चार नाते रिश्तेदारों का काम धन्धा करके उस आत्मत्याग के आदर्श को पूरा करती हैं। पूर्ण शिक्षा पाकर सार्वजनिक कार्यों में निस्वार्थ भाव से भाग लेकर स्त्रियां इसी आदर्श को कहीं अधिक योग्यता से पूरा कर सकती हैं। बम्बई और मदरास में कई विधवा-आश्रम इसीलिए खोले गए हैं। वहां विधवाओं को घरों के जंजाल से छुड़ा कर शिक्षा दीजाती है और वे सार्वजनिक कार्यों में भाग लेने के योग्य बनाई जाती हैं। पंजाब में विधवा-आश्रम नाम से विशेष करके विधवाओं को शिक्षा देने के अभिप्राय से कोई आश्रम नहीं है तथापि वहां यही कार्य कन्या पाठशालाओं से लिया जाता है। जालंधर महाविद्यालय में बहुतेरी सुयोग्य विधवाएं आज दिन कार्य कर रही हैं। और भी कई आर्य्यसमाजी छोटे २ स्कूलों में विधवाओं ने अध्ययन और अध्यापन

कार्य का भार अपने सर उठा लिया है। पंजाब में विधवाआश्रमों के अभाव का कारण यह जान पड़ता है कि आर्यसमाज के प्रभाव से वहां विधवाओं की दशा में बहुत कुछ सुधार हो गया है। पर्दे की भी वहां इतनी सख़्ती नहीं है जितनी कि और प्रान्तों में। वहां विधवा विवाह भी अधिक प्रचलित है और कन्याओं और विधवाओं को शिक्षा देने की रीति दिन २ बढ़ती जाती है। इसी से आर्यसमाज जिसने अनाथालय और कन्या पाठशालाएं खोलने में इतना उत्साह दिखलाया है विधवाआश्रम खोलने में उदासीन सा दिखाई देता है।

विधवाआश्रमों की रिपोर्टें पढ़ने से ज्ञात होता है कि इनसे आजकल देश को कितना लाभ पहुंच रहा है और कितने विधवाश्रमों की देश को अभी आवश्यकता है। बम्बई में एक विधवाश्रम का विवरण पढ़ते हुए मुझे याद है कि एक बार मैंने पढ़ा था कि वहां एक १४, १५ वर्ष की विधवा ऐसी आई थी जो दुःख के मारे पागल सी हो रही थी। शुरू शुरू में जब वह विधवाआश्रम में भरती हुई थी तो दुःख से उसकी यह दशा थी कि किसी की बात तक उसके समझ में नहीं आती थी। आश्रम में आकर घर के जंजाल से छूट कर, धीरे २ जब उसका ध्यान अपने दुःख से हटा कर पढ़ने लिखने की ओर लगाया गया तब वह अपने दुःख को बिलकुल भूल गई और आश्रम भर में पढ़ने लिखने में सब से आगे रहने लगा। इसी आश्रम में एक और छोटी कन्या भी आई थी जिसका कहना था कि विधवा होने के दिन से आश्रम में आने के दिन तक वह कभी हँसी नहीं थी। रात दिन अपने घर में अपनी माता और अन्य बड़ी बूढ़ियों को रोते देख कर बेचारी कन्या का जीना कठिन हो रहा था। आश्रम में आने पर उसके दुःखों का अन्त हुआ और मन लगाकर उसने पढ़ना लिखना आरंभ किया।

हमारे प्रान्त में भी विधवाआश्रमों से बहुत लाभ पहुंच सकता है क्योंकि इस प्रान्त में भी विधवाओं की दशा बहुत बिगड़ रही है। किन्तु यहां सार्वजनिक कार्य करनेवालों का इतना अभाव है कि ऐसे कार्यों का होना कठिन हो जाता है। इसके अतिरिक्त यहां ऐसे पुराने विचार के लोगों का वास है कि यदि ऐसे आश्रम खोले भी जांय तो उनमें भले घरों की स्त्रियों के आने में भी सन्देह है।

हमारे देश का कल्याण तब ही हो सकता है जब रीति रिवाज़ के बन्धनों को तोड़ कर हम उन बातों को ग्रहण करने को तत्पर हो जांय जो हमारे और हमारे देश के लिए लाभकारी हैं। इसलिए मैं अपने प्रान्त के निवासियों का ध्यान इस ओर आकर्षित करने का साहस करती हूं कि वे अपने घरों की विधवाओं की दशा पर तरस खाकर और अपने देश की बुरी दशा का ध्यान कर यहाँ भी ऐसे आश्रमों के खोलने का प्रयत्न करें और उनमें विधवाओं को भेजने के लिए लोकमत बढ़ावें। प्राचीन हिन्दू मत के विरुद्ध और चाहे जो कुछ हो यह आज तक किसी ने नहीं कहा कि स्त्रियों को उच्च शिक्षा देनी भी हिन्दू धर्म के विरुद्ध है। लीलावती, गार्गी, सीता, सावित्री की जीवन कथाएं साफ़ साफ़ यह कहरही हैं कि स्त्रियों को उच्च शिक्षा देना हिन्दू मत के ठीक अनुकूल है। ऐसी दशा में जो लोग विधवाओं को शिक्षा देने का प्रबन्ध करेंगे वे एक धार्मिक कर्म का पुण्य कमावेंगे। हमारे प्रान्त के बड़े आदमियों के इस ओर ध्यान देने से कार्य में बहुत कुछ सफलता प्राप्त हो सकती है। साधारण आय के गृहस्थ बहुधा इस प्रकार का नया कार्य करते हुए संकोच करते हैं और उनके अनुकरण करनेवाले भी बहुत नहीं निकलते। बड़े घरानों की विधवाएं जब ऐसे आश्रमों में भेजी जाने लगेंगी तो सर्वसाधारण की दृष्टि में उनकी प्रतिष्ठा बढ़ जायगी और बहुत लोग अपने घरानों की विधवाओं को वहां

भेजनने में कोई हानि न समझेंगे। इस प्रकार वे बिधवाएं जो आज दिन अपने नातेदारों पर भार स्वरूप हैं शिक्षा ग्रहण करके भारत की उन्नति की साधक बन जावेंगी। आजकल हिन्दू विश्वविद्यालय के खोले जाने की धूम है। देश से प्रेम करनेवालों तथा जाति का हित चाहनेवालों के हृदयों में क्या अपनी जाति की स्त्री समाज के लिए भी कोई स्थान है? यदि है तो विश्वविद्यालय के सञ्चालकों से इस बात की आशा रखना कि काशी के पवित्र स्थान में हिन्दू नवयुवकों की शिक्षा का प्रबन्ध करते समय वे हिन्दू बिधवाओं को भी स्मरण रक्खेंगे, अनुचित न होगा। विधवाओं के पढ़ने लिखने की आवश्यकता सधवाओं से कहीं बढ़कर है। मैं तो यहां तक कहती हूं कि बिधवाओं का शिक्षा पाना भारत के नवयुवकों के शिक्षा पाने से अधिक लाभकारी होगा। क्योंकि नवयुवकों को पढ़ लिखकर अपने और अपने परिवार के पालन पोषण में लगजाना होता है और हिन्दू बिधवाएं अपने पुराने आत्मत्याग के आदर्श को सामने रखकर देश के उपकार में लग सकती हैं। मुझे आशा है कि हिन्दू विश्वविद्यालय के संचालक अवश्य ही इधर ध्यान देंगे। जब तक किसी ऐसी संस्था की नींव पड़े जहां बिधवाओं को उच्च शिक्षा मिल सके उचित है कि लोगों की सम्मति इस विषय में लीजावे और सर्वसाधारण को इसके लाभ समझाये जावें।

नवीन वर्ष का स्वागत।

[लेखिका-श्रीमती तोरन देवी जी (लली) ।]

भागन वा उत्साहन सों,
अब आज की ऐसी घड़ी शुभ आई।
वर्ष नवीन को स्वागत है,
चित में नित चौगुनो चाव बढ़ाई ॥

आइये आइये मोद भरे,
करती हम आदर हैं हरषाई।
धन्य प्रभो की अनन्त कृपा,
नव संवत कोटि तुम्हारी बधाई ॥१॥

बड़ भागन सों यदि आप मिले,
तब ऊंची सी भाग सदा रखियेगा।
उत्साह भरे तव स्वागत हैं,
उत्साह का मान सदा करियेगा ॥

गत वर्ष में जैसी हुई घटना,
नव संवत आप उन्हें हरियेगा।
अब भारत भूमि अनन्दित हो,
कुछ ऐसिहि प्यारी कृपा करियेगा ॥२॥

इस फूट का टूटेगा मान यहां,
सब से सब निश्छल प्रेम करेंगे।
शुभ काल सदैव बनाही रहै,
अब दीन दुखी सब मोद भरेंगे ॥

प्रिय विद्या कला क प्रकाश बढ़े,
सब देश दशा पर ध्यान धरेंगे।
यह आश लगी शुभ हो चहुं ओर,
तुम्हारे अहा! पग ऐसे परेंगे ॥३॥

भारत बाल सुखी अब हों,
दुखदाई कुरीतिन त्याग करें।
कर्तव्यपरायण भी अब हों,
हिय शारद मात निवास करें ॥

निज देविन की हम पुत्रि अहैं,
उनका अब सत्य प्रकाश करें।
इन प्राणों से प्यारी भारत मां,
उसका भी उदय फिर भाग कर ॥४॥

शील व लाज विनय हिय राखि,
पतिव्रत धर्म का मान करेंगी ।
योग्य सुता सहधर्मिणि हो,
पुनि वैसेहि मात धरा में बनेंगी ॥
आनहिंगी कर्तव्यन को,
निज सत्य व ज्ञान से नाहिं टरेंगी ।
संबत प्यारे तुम्हारी बधाई में,
आज परस्पर अंक भरेंगी ॥५॥

सत ज्ञान को आदर दे चित में,
प्रभु का गुणगान कियाही करें ।
नव उन्नति लाभ करें जग में,
शुभ प्रेम पियूष पियाही करें ॥
बिजयी हम होंय सदाही (लली),
उत्साह का मान कियाही करें ।
नव वर्ष तुम्हारी बधाई फले,
हम नित्य बधाई दियाही करें ॥ ६ ॥

सद्व्यवहार ।

[लेखिका—एक जैन महिला ।]

सद्व्यवहार याने अच्छा बर्ताव मनुष्यमात्र के जीवन की जड़ है । यही धन पैदा करने में अद्भुत सहायता देनेवाला साथी है । यही बाल्यावस्था, जवानी और बुढ़ापे में निरन्तर सेवा करनेवाला मित्र है। यही मनुष्य को उच्च गौरव दे सकता है और यही विद्या-प्राप्त करने में मुख्य सहकारी कारण है ।

बिना सद्व्यवहार सीखे कोई मनुष्य उन्नति नहीं कर सकता । अपने यहां पूर्वकाल में स्त्री, पुरुष, बालक सब अपने २ कर्तव्य पर चलना जानते थे । चाहे विद्या शिक्षा उस समय में आजकल की अपेक्षा और तरह की हीनाधिक रही हो परन्तु स्वच्छ व्यवहार भारत भूमि पर अब से कहीं अधिक था ।

वर्तमान समय में इससे उलटा दिखता है । हमारी स्त्री समाज तो इससे बिलकुल अनजान सी होती जाती है । घर घर में फूट, रंज, दुश्मनी, ईर्षा फैल रही है । इससे न हमारा ही किन्तु बहिनो ! हमारी सन्तान का भी नाश होरहा है । जिस देश में जिस जाति में बालकों को सद्व्यवहार की शिक्षा अच्छी तरह दी जाती है उस देश और उस जाति के बालक जीवन का मनोहर रास्ता अपने आप ढूंढ़ लेते हैं । अच्छे बर्ताव से उन्हें सब जगह सुविधा होती है। देश विदेश में पढ़ने में और व्यौपार में सब जगह उनका मान होता है ।

सद्व्यवहार की शिक्षा कोई चाहे कि रास्ता चलते मिल जाय, देश विदेशों में दौड़ने से प्राप्त होजाय सो नहीं हो सकता । इसके लिए योग्य माता, योग्य पिता और गुरू की ज़रूरत है । जैसे विज्ञान सीखने में केवल भाषण सुनने से ही काम नहीं चलता वरन् कुछ कामक्रिया पर भी निर्भर है उसी तरह सद्व्यवहार भी केवल देखने से नहीं आता वरन् इसके लिए पवित्र क्रिया सीखने की ज़रूरत है । यह सद्व्यवहार की क्रिया बचपन से याने माता के गोद में से ही प्राप्त होने पर तरुणावस्था में पूरा २ फल दे सकती है अन्यथा नहीं । अतः भारतीय बहिनों को चाहिये कि पहले वे स्वयं सद्व्यवहार का पूरा २ ज्ञान प्राप्त करें और फिर अपनी सन्तान को उसी रास्ते पर चलाने का उपाय करें । आजकल नवयुवक आठ दस वर्ष परिश्रम करके बी० ए० की डिग्री प्राप्त कर लेते हैं और दुनियां के सब कामों में चतुर बनने का दावा करते हैं । परन्तु इनमें से सद्व्यवहारी होना कोई बिरले के ही भाग्य में

होता है । इसका उदाहरण देखा जाय तो प्रत्यक्ष सब जगह मौजूद है। एक विद्यालय में देखिये जितने ग्रेजुएट से लेकर छोटी छोटी कक्षाओं के अध्यापकों तक प्रायः सभी आपस की फूट से भरे रहते हैं। इसी तरह विद्यार्थीगण भी मनमाने आचरण में मस्त रहते हैं। एक घर में देखिये पढ़ा लिखा पुत्र भी माता से असभ्य बर्ताव करता दीखता है। पति पत्नियों में मन मोटाव नज़र आता है। बच्चों के शरीर महा मलीन दीखते हैं। इन सब का कारण सद्व्यवहार की हीनता है। अतएव प्रत्येक बहिन व बन्धु को चाहिये कि वे बालकों की रुचि अच्छे बर्ताव में बढ़ावें। जन्म से बच्चे को उठने में, बैठने में, हँसने में अच्छे २ ढङ्ग सिखावें, एक दूसरे के साथ सहानुभूति करने की आदत डालें, और उनको उदारता के साथ काम करने की शिक्षा देवें। योरोप आदि देशों में बहुतही छोटे २ बच्चों के लिए शालाएं बनी हैं, उनमें बालकों को अनुभवी अध्यापक केवल बर्ताव करना ही सिखाते हैं, उन देशों में पढ़ने से अच्छे बर्ताव का अधिक मान है, भारत में अभी ऐसी शालाएं नहीं हैं, यहाँ प्रत्येक माता की गोदही शिक्षालय होना चाहिये। यह तभी हो सकता है जब हमारी बहिनें स्वयं विदुषी बनें और पढ़ना लिखना अपना काम समझें। बहिनो! हमको पुरुषों से भी विशेष विद्या लाभ के साथ २ सद्व्यवहार सीखना चाहिये। राष्ट्र की डोर वास्तव में हम लोगों के हाथों में है, बड़े २ राष्ट्रों के निर्माता हमारी ही गोदों में बनते और बिगड़ते हैं। भारत के कल्याण के लिए यह परम आवश्यक है कि हम सब शिक्षा प्राप्त करें और भारत के मुख उज्वल करनेवाले पुत्ररत्नों को पैदा करें।

श्रीमती रामेश्वरी देवी नेहरू ।

आपका जन्म नवंबर १८८६ में पञ्जाब के एक बहुत प्रतिष्ठित और पुराने काश्मीरी घराने में हुआ है। आपके पिता दीवान नरेंद्रनाथ पञ्जाब के प्रसिद्ध स्टैट्यूटरी सिविलियन और पुराने रईस हैं। आजकल आप मुलतान के डिप्टी कमिश्नर हैं। कुछ दिन पहले आप लाहौर के स्थानापन्न कमिश्नर रह चुके हैं। दीवान नरेन्द्रनाथ की चार कन्याएँ हैं। श्रीमती रामेश्वरी देवी आपकी दूसरी कन्या हैं। यद्यपि आपके पिता का अपनी कन्याओं के पढ़ाने लिखाने की ओर विशेष ध्यान नहीं था तथापि आपकी पूजनीया माताजी की बड़ी प्रबल इच्छा थी कि हमारी कन्याएँ पढ़ें लिखें और अच्छी विदुषी बनें। अस्तु इन्होंने लड़कपनसे ही अपनी बालिकाओं को सरल तथा साधारण उपदेश देने आरम्भ कर दिये और ७ वर्ष की होने पर बालिका रामेश्वरी देवी के पढ़ाने के लिए एक मौलवी और एक पण्डित नियत हुए। कुछ वर्षों तक इन्हें साधारण हिन्दी, उर्दू और हिसाबकिताब की शिक्षा मिलती रही। जब इनकी अवस्था १३ वर्ष की हुई तो इनके पिता ने एक ईसाई गुरुवानी रखकर इन्हें अङ्गरेज़ी की शिक्षा दिलानी आरम्भ की। परन्तु यह शिक्षाक्रम बहुत दिनों तक न चल सका। आपके भावी पति अपनी शिक्षा के लिए विलायत जाने को थे। इससे १९०२ में आपका विवाह प्रयाग के सुप्रसिद्ध एडवोकेट माननीय पण्डित मोतीलाल नेहरू के भतीजे पण्डित ब्रजलाल नेहरू के साथ हुआ। तब से श्रीमती के शिक्षाक्रम में विघ्न पड़ने लगा। आपके पति १७ वर्ष की अवस्था में प्रयाग विश्वविद्यालय के ग्रेजुएट

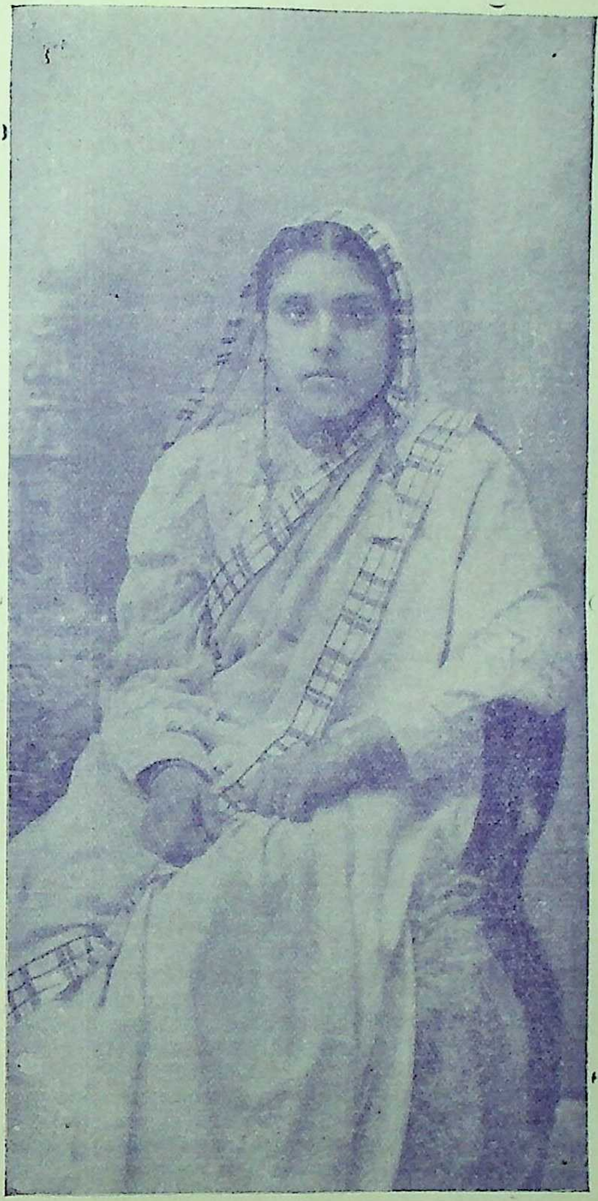

PHOTO BY MR. S. NEHRU.

MRS. SHAMLAL NEHRU, THE EDITORESS OF THIS NUMBER.

मिसेज़ शामलाल नेहरू विशेष संख्या की सम्पादिका .

PRINTERS: ALLAHABAD LAW JOURNAL.

हुए थे। विवाह के दो ही तीन महीने पीछे वे सिविल सर्विस की परीक्षा देनेके लिए विलायत चले गये। यहाँ उन्होंने ६ वर्ष तक विद्याध्ययन किया। पहले उन्होंने आक्सफ़ोर्ड विश्वविद्यालय की बी० ए० परीक्षा पास की, तदनन्तर वहीं से एम० ए० की डिग्री प्राप्त करके वे सिविल सर्विस परीक्षा में सम्मिलित हुए। इसमें भी उनको सफलता प्राप्त हुई और लङ्काद्वीप की सिविल सर्विस में उन्हें एक पद मिला। किन्तु उन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया और भारत गवर्नमेंट के अर्थ-विभाग में एक ऊँचे पद पर नियुक्त होकर सन् १९०८ में वे घर लौट आए। इस बीच में श्रीमती रामेश्वरी देवी के पढ़ने में यद्यपि बहुत विघ्न पड़ता गया पर सब विघ्नों को दूरकर वे पढ़ती ही गईं। आपके पिता ने भी एक सुयोग्य गुरुवानी आपकी शिक्षा के लिए रख दी। इस प्रबन्ध का बहुत ही उत्तम परिणाम हुआ। आपने थोड़े ही दिनों में अँगरेज़ी में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। इस समय आप अंगरेज़ी बहुत अच्छी तरह लिख, पढ़ और बोल सकती हैं।

लड़कपन से ही आपकी इच्छा थी कि अपनी जाति की स्त्रियों के लिए कोई अच्छा पत्र निकालें। इसी उद्देश्य से आपने अपने पिता के एक मित्र से लिखापढ़ी भी की, पर कई कारणों से उस समय आपका मनोरथ सफल न हो सका। आप इस समय मुहम्मदी बेगम द्वारा संपादित उर्दू के साप्ताहिक पत्र "तहज़ीब-निस्वां" में लेख लिखने लगीं। ये लेख पाठकों को बहुत ही पसन्द आए, इससे आपका उत्साह और भी बढ़ गया। इस समय काश्मीरियों का एकमात्र पत्र "काश्मीर दर्पण" टूट गया था। आपके पति के ज्येष्ठ भाई पण्डित मोहनलाल नेहरू ने आपसे कहा कि अब आप चाहें तो अपनी इच्छा को पूरा करें। पहले तो "काश्मीर दर्पण" को चलाने की सलाह ठहरी पर अंत में यह निश्चय हुआ कि केवल स्त्रियों ही के लिए एक मासिक पत्र निकाला जाय। इस प्रकार जून १९०९ में "स्त्री-दर्पण" का जन्म हुआ। पहले तो यह हिंदी और उर्दू दोनों में साथ ही साथ निकलता था, क्योंकि काश्मीरियों में उर्दू ही का अधिक प्रचार है, पर चारों ओर से यह सम्मति दी जाने लगी कि यह पत्र सब जाति की स्त्रियों के लिए होना चाहिये और इसलिए इसका हिन्दी ही में प्रकाशित होना आवश्यक है। निदान सब बातों पर विचार कर दो ही अङ्क के अनन्तर पत्र केवल हिन्दी में निकलने लगा और वह अब तक बराबर चला जाता है। सम्पादिका महाशया का उद्देश्य इसके द्वारा धन कमाने का नहीं है। आपका उद्देश्य देश-सेवा और अपनी बहिनों का उपकार है इसलिए घाटा सहकर भी आप इसे प्रकाशित किये जाती हैं। इस पत्र से एक बड़ा लाभ यह हुआ है कि कश्मीरी महिलाओं में भी हिन्दी का प्रचार हो गया है।

"स्त्री-दर्पण" निकालने के थोड़े ही दिनों पीछे आपने अपने पति की सलाह से प्रयाग महिला-समिति नाम की एक सभा स्थापित की। यह इसलिए स्थापित हुई है कि इसके द्वारा स्त्रियां परस्पर मिलजुल कर एक दूसरी पर अपने विचार प्रकट करें, अपनी जाति के सुधार का यत्न करें, तथा भिन्न भिन्न विषयों पर वादविवाद करके अपने ज्ञान की वृद्धि करें। इस कार्य में प्रयाग के सुप्रसिद्ध एडवोकेट डाक्टर तेजबहादुरजी की गत साध्वी सुशीला पत्नी श्रीमती धनराज रानी सप्रूजी ने आपकी सहायता की और समिति का पहिला अधिवेशन आपही के बंगले पर हुआ। इस समिति ने प्रयाग की महिलाओं में सभा समितियों में आने जाने का शौक़ पैदा कर दिया है। इस समितिके अधिवेशनों में वे बड़े उत्साह से आया करती हैं और अनेक विषयों पर व्याख्यान देती हैं। इसका अधिवेशन प्रतिमास होता है और लगभग चार वर्ष से यह प्रयाग में स्थापित है।

जितना लाभ इससे पहुंच चुका है उससे आशा है कि आगे को इससे और भी अधिक लाभ पहुंचेगा । इस भांति श्रीमती रामेश्वरी देवी ने हिन्दी भाषा तथा स्त्रीसमाज का बहुत कुछ उपकार किया है। आशा है कि आपके हाथों अभी और बहुतेरे लाभ हम लोगों को पहुँचेंगे।

युक्तप्रान्त में स्त्रियों की दशा ।

[लेखिका—श्रीमती सावित्री देवी मालवीय ।]

वर्त्तमान समय में स्त्रियों की दशा पर प्रायः अब बहुत लोगों की दृष्टि जा लगी है और सभी लोगों का ध्यान उनकी तरक्की पर है। इसके लिए अब बहुत से पत्र तथा सभा सुसाइटियां भी खुल गई हैं और लोगों के चित्त में यह जम गया है कि वास्तव में स्त्री जाति की उन्नति के बिना देश की उन्नति होना कदापि सम्भव नहीं। चारो तरफ दृष्टि डालने से प्रतीत होता है कि हिन्दुस्तान में एक यू० पी० को छोड़कर हर एक प्रान्तों में स्त्री जाति में जागृति दिखलाई पड़ती है ॥

वर्त्तमान समय में स्त्री जाति की क्या दशा है पूर्व समय में वह कैसी थी और अब आगे कैसी दशा प्राप्त होने पर वे अपनी उन्नति कर सकेंगी ? इत्यादि विषयों की चर्चा प्रायः सभी सभा सुसाइटियों में हुआ करती हैं, परन्तु अभी तक कुछ विशेष उन्नति होती दिखलाई नहीं पड़ती। अभी तक हमारे युक्त प्रान्त की स्त्रियों का वही हाल है जो बीस वर्ष पहिले था। आज भी उनमें से बहुतों को पढ़ने तथा सभा सुसाइटियों से वैसी ही घृणा है जैसी पहिले थी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि पश्चिमीय शिक्षा की रोशनी से बहुत कुछ विद्या का चाव लोगों के हृदय में उदय होने लगा है परन्तु वह भी उतने ही लोगों में है जिनकी संख्या नहीं के बराबर समझनी चाहिये। आज कल जब कभी हमारी कुछ योग्य बहिनें किसी विशेष कार्य्य के लिए अथवा यों ही कुछ योग्य उपदेशिकाओं के आजाने पर स्त्रियों की सभा करती हैं तो उनके उस कार्य की सहायता या उससे उपदेश ग्रहण करना तो दूर रहा आज कल की ललनायें उलटा उनकी ज़ीट उड़ाती तथा उनके उस कार्य की निन्दा बड़ी सरगरमी से करती हैं। उदाहरणार्थ इसी प्रयाग में एक सभा "महिला समिति" के नाम से कुछ हमारी योग्य बहिनों ने खोल रक्खी है। इसका उद्देश्य स्त्रियों की हर प्रकार की उन्नति करना है। परन्तु शोक से कहना पड़ता है कि उस समिति की दशा बहुत ही शोचनीय है उसमें सिवाय कुछ शिक्षित बहिनों के और कोई भी स्त्रियां न जाती हैं और न उसमें भाग लेती हैं। जाना तथा उनके कामों में हाथ बटाना तो दूर रहा स्त्रियां समिति में जानेवाली स्त्रियों की तरह २ की हँसी उड़ाती हैं और बहुत सी ऐसी भी हैं जिनको यह भी ज्ञात नहीं है कि उक्त सभा शहर के किस कोने में हुआ करती है और उसका क्या उद्देश्य है। इनके सिवा कुछ ऐसी भी हैं जो इच्छा रहने पर भी अपने घर के पुरुष तथा वृद्ध स्त्रियों की डर से नहीं जा सकतीं। इसी भारत भूमि में सहस्रों ऐसी स्त्रियां थीं जिनकी बिमल कीर्ति का झंडा केवल भारत वर्ष ही में नहीं वरन् सात समुद्र पार भी आजतक फहरा रहा है। कौन सा ऐसा कठिन काम था जिसको भारत ललनाओं ने पूरा न किया हो। ब्रह्मवादिनी, तपस्विनी, राजनीति में निपुण, पतिव्रता, आदि कितनी ही स्त्रियां थीं जो कठिन से कठिन काम को भी सहज में पूरा करती थीं। आज कल की स्त्रियों की तुलना उन वीर देशहितैषिणी ललनाओं के पवित्र चरित्र से करने से हृदय में

बड़ा क्षोभ उत्पन्न होता है। यह वही देश है जहां सीता ऐसी स्त्रियां हो गई हैं, यह वही देश है जहाँ कि स्त्रियां अपने प्राण से भी प्यारे पति, पुत्रों से युद्ध में जाने का अनुरोध करतीं तथा उनका उत्साह बढ़ाने के लिए उत्साहवर्द्धक वचन कहकर अपने उदार हृदय का परिचय देती थीं। आज उसी वीर प्रसविनी भूमि में अकर्मण्य स्त्रियाँ पैदा हो होकर अपने पूर्वजों का भी नाम अपने नाम के साथ डुबो रही हैं। वर्त्तमान समय की स्त्रियां अपने बच्चों को ऐसी शिक्षा देती हैं कि वे आदि से ही कादर, भीरु द्वेषी तथा लंपट बन जाते हैं। आज यहां की मातायें अपने बच्चों के अच्छे ख्याल पैदा करने तथा विद्या के अपूर्व गुणों को उनके कोमल हृदय में अंकुरित करने की जगह में भीरुता आदि के ऐसे ख्याल भर देती हैं कि शुरू ही से उनका जीवन कर्तव्यहीन हो जाता है। आज उनके न पढ़ने पर उनको नोन रोटी खाकर जीवन बिताने की शिक्षा दी जाती है और वास्तव में उनकी यह शिक्षा ऐसी फलवती हो जाती है कि भारतवासी अपना जीवन सत्य ही नोन रोटी खाकर बिता देते हैं। हा शोक! लिखते हृदय विदीर्ण होता है कि यहां अच्छे २ घरों की भी, जहाँ के पुरुष अपने शिर पर भारतोद्धार का बोझा उठाये हुये हैं, स्त्रियां अपने बच्चों की रक्षा के लिए नीचाति नीच कर्म करने में भी नहीं हिचकतीं। कितने ही घर ऐसे हैं जहाँ खाने के लिए मुट्ठी भर अन्न नहीं है परन्तु सन्तान पैदा करने की इच्छा से निन्दनीय से निन्दनीय प्रथा का अवलम्बन किया जाता है जैसे मसजिदों में बच्चों को ले जाकर फूंक डलवाना, जंत्र, मंत्र इत्यादि। उनको इस बात का बिलकुल भी ध्यान नहीं रहता कि जो सन्तान पैदा होगी उसके खाने पहिनने तथा भरण पोषण का क्या प्रबन्ध होगा, उनकी शिक्षा का भार कौन लेगा। यहाँ इन सब बातों को कौन ध्यान देनेवाला है यहाँ तो केवल पिंडापानी देने के लिए वंश को बढ़ाना पुरुष तथा स्त्रियों का पहिला कर्तव्य रह गया है। चौदह वर्ष में यदि दो सन्तान न हुई तो स्त्री बन्ध्या की पदवी से विभूषित हो जाती है। वर्त्तमान समय में यहां स्त्री पुरुषों का पहिला काम सन्तान पैदा करना और दूसरा उनको आठ दश वर्ष की अवस्था में ब्याह कर आंख का सुख देखना है। भारतीय ललनाओ! अब व्यर्थ निकम्मे आश्रयगीर सन्तान पैदा कर भारत को काल कोठरी बनाने का समय नहीं है और न अब उनको नोनरोटी की शिक्षा देने का ही समय है अब वह समय है कि चाहे एक ही सन्तान हो परन्तु सिंह ही हो। हम आज भी माता विदुला, कुन्ती, पद्मिनी आदि की सन्तान हैं, आज भी हमारे रगों में उनके खून का स्रोत बह रहा है आज भी शिक्षित समाजों की आशा रूपी दृष्टि उन्नति की ओर लगी हुई है, देखें वह शुभ समय कब इस देश में फेरा करता है? उस समय का स्मरण करो जब कि चित्तौर की रक्षा का कोई उपाय बाकी न था। अगणित राजपूत बाला बाल खोले हुई हृदयविदारक शोक संगीत से चित्तौरपुरी को गुंजारती हुई अपने सतीत्व रक्षा के लिए जीते ही जल मरने चली थीं। एक से एक सुन्दर क्षत्राणियां जिनको देखकर दुराचारी मुसलमानों के हृदय में पाशवी वृत्ति का उदय होना सम्भव था, वे सब ललनागण उस समय प्राण देने को तैयार हुई। उन सब के पीछे सुर मनमोहिनी महाराणी पद्मिनी भी चलीं। चित्तौर की वीरमंडली चुपचाप है। अपने हृदय को वज्र से भी कड़ा करके वह भयंकर कार्य को देख रही है। स्नेह की आधार माता, हृदय को प्रसन्न करनेवाली माता, आनन्दमयी बहिन, भानजी और कन्यागण सदा के लिए उनके सामने—उनकी आँखों के सामने प्रबल अग्नि में गिरने को जा रही हैं तथापि उनके नेत्रों से आँसू की एक बूँद भी नहीं गिरती आज वह नेत्र सूख गये हैं, आज उन में ललाई छागई है

आज मानो उनसे संसार को दग्ध करनेवाली आग की लपट निकल रही है। एक समय जो हृदय प्रेम का स्रोत था आज वही मरुमय स्मशान हो गया। धीरे २ समस्त स्त्रियां उस सुरंग के द्वार पर आ पहुँची। सामने ही सीढ़ियां बनी हुई हैं। धीरे २ एक २ करके वे सब नीचे उतरीं। तत्काल ऊपर से भयंकर शब्द के साथ सुरंग का बड़ा और भयंकर लोह कपाट बंद हो गया। एक पल भर के बीच में अगणित वीर ललनाओं का करुणा शोकनाद लीन हो गया और कुछ भी न सुना गया। हाय आज समस्त की समाप्ति हो गई। रूप, लावण्य, गौरव, वीरता, आत्माभिमान, सतीत्व सब को ही सर्वसंहारकारी अग्नि ने भस्म कर दिया।

बहिनों ! अब भी समय है, उठो और चेतो ! तुम्हारे यों पड़े रहने से देश की कैसी बुरी दशा हो रही है सो कहते नहीं बनती। अब वह समय नहीं है कि हम सब इसी अज्ञानान्धकार में पड़ी हुई अपने भावी संतानों के जीवन को, जिनके ऊपर देश का उठना या गिरना निर्भर है, नोन रोटी की शिक्षा दे कर मिट्टी में मिला दें। आजकल हम लोगों का पहिला कर्त्तव्य यह होना चाहिये कि अपने बच्चों को उच्च शिक्षा दें जिसमें वे गांधी सरीखे वीरों का अनुकरण करें। बड़े लोगों का वचन है किः—

वरमेको गुणी पुत्रो नच मूर्ख शतैरपि।
एकश्चन्द्रस्तमोहन्ति नच तारागणैरपि॥

मूर्ख सौ पुत्रों से एक गुणवान पुत्र अच्छा। वह उच्च शिक्षा पाकर वैसा ही प्रकाशमान होगा जैसा सैकड़ों तारागणों में एक चन्द्रमा प्रकाशमान होता है।

भारतीय ललनाओ ! आओ अब हम सब मिलकर सोचें कि क्या करने से हमारे देश का कष्ट दूर होगा ? हम सब को अपने पूर्वजों का अनुकरण करने के साथ ही साथ दक्षिण अफ्रिका प्रवासी भारतवासी स्त्री पुरुषों का भी अनुकरण करना चाहिये। हमारे देश की दशा तभी सुधरेगी जब कि हम लोग अपने धन से दुःखियों, कंगालों, अनाथों तथा रोगियों की सेवा और सहायता करेंगीं, अपने मन को देश की दशा सुधारने तथा विद्या लाभ की तरफ झुकावेंगी, अपनी सन्तानों को ऐसी शिक्षा देने का प्रयत्न करेंगी कि वे भविष्य में भारत के सच्चे पुत्र बनने के योग्य हों। याद रहे जब तक हम लोग उपर्युक्त कामों के करने में कटिबद्ध न होंगी तब तक देश की दशा में परिवर्तन होना सम्भव नहीं। साथ ही हमारे भारतवासी पुरुषों को भी चाहिये कि वे अपनी माताओं, पत्नियों, पुत्रियों को उपर्युक्त कामों के करने का अवसर दें उनको काम करने योग्य शिक्षा दें, उनका भली प्रकार आदर सत्कार करना सीखें और उनको देश के प्रत्येक महान कामों में भाग लेना तथा हाथ बटवाना सिखलावें।

इङ्गलिस्तान की औरतें।

[लेखिका—श्रीमती मनमोहिनी चटर्जी ।]

अक्सर सुनने में आया है कि जो लोग विलायत जाते हैं उनको वहां की खानगी ज़िन्दगी इस क़दर मज़ेदार व खुशनुमा मालुम होती है कि वे वहां से लौटना पसन्द नहीं करते और अगर लौटते भी हैं तो उनके दिल में एक हसरत (पछतावा) बाक़ी रह जाती है और वे अपनी हिन्दुस्तान की ख़ानगी ज़िन्दगी में फरक पाकर रंजीदा होते हैं। हिन्दुस्तानी औरतें मिस्ल पुराने ज़माने के इस समय में भी साबित कर सकती हैं कि उनकी खानगी ज़िन्दगी में जो सादगी, पाकीज़गी, खूबसूरती, शाइस्तगी, शीरीनी पाई जा सकती है वह किसी और मुल्क से कम नहीं है। अगर हम इङ्गलिस्तान की औरतों को अच्छी तरह समझना चाहें तो इसका एक यही उपाय है कि हम उनके साथ ख़ास उनके लन्दन के घरों में रहें क्योंकि वहां उनको असली रूप का दर्शन हो सकता है। हिन्द में वे अफ़सरों की बीबियां होने के कारण हमारी अफ़सर होकर आती हैं और अफ़सरी का ठप्पा उनके काम, कलाम, ख़याल, तमाम ताल्लुकात पर नक़्श रहता है। यह मुहर ऐसी सख़्त होती है कि मानो सरकारी (official) ताले पर लगी हो। हम हिन्दुस्तानी इस छाप मुहर को फ़िलहाल तोड़ नहीं सकते इसलिए आवश्यक है कि हम अपने ख़याल को खुद ही लन्दन तक दौड़ावें और वहां अपनी अङ्गरेज़ बहिनों की असली हालत पर नज़र डालें और जो बातें उनकी वहां क़ाबिल तारीफ़ हैं उनको इन्साफ़ की आंख से देखें और इस बात को ज़ाहिर करें कि हम हिन्दुस्तानी औरतें बदी देखनेवाली नहीं हैं बल्कि अपनी तबीअत में खुद भी नेकी की असलीयत रख कर दूसरों में भी नेकी पहचानने की ताक़त रखती हैं।

लदन

इङ्गलिस्तान के लोगों के समझने के लिए इसकी भी थोड़ी ज़रूरत है कि हम शहर लन्दन पर कुछ गौर करें क्योंकि यह शहर इङ्गलिस्तान के दूसरे तमाम शहरों का एक मुख़्तसर (संक्षेप) मजमूआ है। शुरू में लन्दन एक निहायत भद्दा शहर था। उसकी ज़मीन गन्दी, गीली, सीली और दलदली थी जहां बजुज़ मच्छर और पिस्सू के कोई आराम से नहीं रह सकता था। अगले अङ्गरेज़ों की अक्ल ने इस जगह की छिपी हुई खूबी को पहचाना और उसको ऐसा बदल दिया कि आज वह बड़े बड़े शहरों का ताज हो रहा है और वहां से बड़ी २ कौमों और बड़े २ मुल्कों पर हुकूमत का झण्डा हिलाया जा रहा है। लन्दन की खूबियां उसकी ऊंची इमारतों, आली दरजे की दूकानों और अजीब २ कारख़ानों से अच्छी तरह ज़ाहिर हैं। जिस इमारत दूकान और कारख़ाने को देखिये उसी से वहां के लोगों की असली क़ाबिलियत और संगठन शक्ति (Organising power) की माप ठीक २ हो सकती है। यह लोग अपनी तमाम दिमाग़ी ताक़त को रसात्मक या जीव और ब्रह्म के ख़यालों Poetic contemptation and spiritual meditation) में नहीं बल्कि सांसारिक लाभदायक कारबार में जिससे ज़िन्दगी के तमाम आराम के सामान हासिल होते हैं सर्फ़ करते हैं और जिससे तिजारत, दौलत और फ़ौजी कूवतें तरक्की पाती हैं। इस तरह की मुल्की, अपनी तबीअत और समझ (common sense) इनमें क्योंकर पाई जाती है ? इस

अक्ल, कुदरत का सोता उनके घरों ही में से जारी है। वहां की औरतें भी ऐसी हैं कि वे इस तरह से क़ौम की कल (machinery) को चला रही हैं। इन औरतों के तमाम काम की बुनियाद विज्ञान के ज्ञान पर खड़ी है। बग़ैर तर्तीब, क़ायदे के वे किसी काम में हाथ नहीं लगातीं। अब देखना चाहिये कि ये औरतें अपने घरों में क्या किया करती हैं! ये सफाई से तो एक तरह का जुनूनी इश्क़ रखती हैं। इनके मकान ऊपर से नीचे तक सफ़ाई के जादूघर हैं। न कि सिर्फ बाहरी सफ़ाई रहती है बल्कि फ़रशों के नीचे तक कहीं गरद, गुबार का नाम तक नहीं रहता। इसका सबब यह है कि औरतें नितप्रति अपने दिन का एक ख़ास हिस्सा खुद भी सफ़ाई करने में सर्फ़ करती हैं। सर्दी के कारण उनके कपड़े जिनको वे अपने और अपने घर के लोगों के लिए निहायत खूबसूरती और बारीकी से तैयार करती हैं। खाना भी वैज्ञानिक रीति से वे तैयार करती हैं। उनके खाने के तीन वक्त होते हैं। मेज़ पर घर के सब लोग और आयेगये एक साथ जमा होते हैं। यह मौका उनके लिए निहायत ही आराम का होता है। सब इकट्ठे होकर तरह २ की दिलचस्प बातों पर गुफ़्तगू करते हैं। गुफ़्तगू में इसका सख़्त ख्याल रखते हैं कि कोई ऐसे लफ़्ज मुंह से न निकाले कि जिससे किसी की तबिअत में गुस्सा, कराहियत या रंज पैदा हो। हिन्द के आफ़ताब की गर्मी व रोशनी से वे लोग महरूम रहते हैं। वहां सख़्त कुहरा पड़ता है जिससे आसमान धुंधला रहता है। दिन रात व सुबह सब एक रङ्ग दिखाई देते हैं इससे तो ज़रूर तबियत घबरा जाय लेकिन यहां की औरतें हर वक्त हर मिनट अपने को किसी न किसी काम में ऐसा मसगूल रखती हैं कि उनकी तबियत उनके शरीर अफ़सुरदा, पज़मुरदा होने के बजाय चुश्त, चालाक, फुर्तीले रहते हैं। वे मैदानों में तरह २ के दौड़ धूप के खेल करके भी अपनी तबियत, और शरीर को फुर्तीला रखती हैं। अङ्गरेज़ औरतों को बाग़बानी के काम से भी बहुत शौक़ है। लंदन में सार्वजनिक मकानात (Public buildings) और कारखाने (Factories) इस क़दर कसरत से हैं कि दौलतमंद घरों के सिवा और किसी मकान के इर्द गिर्द दरख़्त लगाने की जगह नहीं रहती। फिर भी औरतें बग़ैर पौधे, फूल के अपने मकान को देख नहीं सकती हैं। वे लकड़ी और टीन के बक्सों ही में जिनको हम रद्दी कर देते हैं पौधे लगाती हैं। वे बक्सों को खूबसूरत रङ्गों से रङ्गकर और उनको बूटेदार कागज़ कपड़ों से मढ़कर अपने कमरों के आगे रख देती हैं या खिड़कियों के आगे लगा देती हैं। इनसे मकान बहुत खूबसूरत मालूम होता है। अङ्गरेज़ औरतें जिस चीज़ पर अपना हाथ रखती हैं चाहे वह कैसी ही छोटी से छोटी रद्दी चीज़ क्यों न हो उसी को एक पैदा करनेवाली चीज़ बना लेती हैं। यह हुनर (Industry) उनके मुल्क की दौलत की जड़ है। यह और सब काम करने की न सिर्फ़ लियाक़त ही रखती हैं बल्कि उनके करने का तरीक़ा और क़ायदा ये भी खूब जानती हैं। ये वक्त की पाबन्दी तो बहुत ज़्यादा करती हैं। आम तौर से हमारी हिन्दुस्तानी औरतों में जल्द सीख जाने की क़ाबलियत कुदरती तौर से नहीं है। हम आम तौर से इसमें कुसूरवार हैं कि हम वक्त की पूरी तौर से पाबन्दी नहीं करतीं और जब तक हम वक्त को ग़नीमत न जानना सीखेंगी हम अपने मुल्क को पूरा फ़ायदा जल्द नहीं पहुंचा सकेंगी। अङ्गरेज़ औरतों के सब काम नियत समय पर शुरू होते हैं और नियत समय पर खतम होते हैं। घड़ी की सूई चूक जाय लेकिन उनके नियत समय में किञ्चित मात्र अंतर नहीं पड़ सकता। उनके मिलने का समय भी नियत होता है। अगर कोई मिलना चाहे तो उसी नियत समय पर जाय और अपना कार्ड भेजदे। अगर यह कायदा न हो तो मिलनेवाले दिन

भर आया जाया करें और सारा दिन उन्हीं की आवभगत और बातचीत में बीत जाय और उनके तमाम घर के काम पड़े रह जांय या अच्छी तरह से न होने पावें। अङ्गरेज़ औरतें आम तौर से नौकर नहीं रखतीं क्योंकि विलायत में नौकरों की तनख़्वाहें करीब २ यहां के हिन्दुस्तानी ओहदेदारों के बराबर होती हैं। धनवान घरों में लड़कियां नौकर रख ली जाती हैं। यह सेवा करनेवाली लड़कियां पढ़ी लिखी होशियार होती हैं। उनको इस बात की बड़ी फ़िक्र रहती है कि उनका सब काम बिलकुल ठीक हो और उसमें कोई तनिक भी दोष न निकाल सके। अगर लड़की पहले २ घर का काम ठीक नहीं जानती तो बीबियां सब्र के साथ बहुत जल्द इसको सब काम पकाने का, मेज़ सजाने का, मकान साफ करने का, कपड़ा धोने का, स्त्री कलफ करने का और आये गये की ख़ातिर करने को बहुत जल्द सिखा लेती हैं। अङ्गरेज़ औरतों में यह बड़ी सिफ़त होती है कि अगर कोई लड़की मुहताज, बेकार दिखाई दे तो वे उसको फ़ौरन कोशिश करके कहीं न कहीं काम दिलवा देंगी। अगर लड़की काबलियत न रखती हो तो वे उसे काम सिखाकर बहुत जल्द काबिल करके कहीं काम दिलवा देती हैं ताकि उसकी ज़िन्दगी बर्बाद न हो जावे। अङ्गरेज़ औरतें अपने मेहमानों की ऐसी ख़ातिर करती हैं कि कभी किसी को किसी तरह की शिकायत की जगह बाकी नहीं रह सकती। वे फ़कत तरह २ की खाने की चीज़ें आगे रख देने का ख़याल नहीं करतीं बल्कि इस बात का भी ख़याल रखती हैं कि कौनसी चीज़ें उनके मेहमान के मिजाज़ व ज़रूरत के मुताबिक़ होंगी। वे उनके लिए एक ख़ास कमरा तैयार करती हैं यह बहुत साफ रहता है और इसमें सभी आवश्यक चीज़ें सीने की सूई सूत तक मौजूद रहती हैं। लिखने के लिए स्याही कागज़ कलम वगैरह तक रक्खी रहता है कि मेहमान को सख़्त ज़रूरत के वक्त मुंह खोल कर मांगने की ज़रूरत न हो। बिस्तर अगर मेहमान अपने साथ ले जावे तो बड़ी शर्म की बात समझी जाती है क्योंकि जहां वह जाता है वहां बिस्तर के कुल सामान और नहाने धोने के कुल सामान मौजूद रहते हैं। अङ्गरेज़ औरतों को फूल पत्तों से खाने की मेज सजाने का गोया एक मर्ज़ होता है। इस गुण में बढ़ जाने की गरज़ से औरतें आपस में एक दूसरे से बढ़ जाने की कोशिश करती हैं। उसके सीखने में और कमाल हासिल करने में वे बहुत कुछ ख़र्च करती हैं और सजाने के तरह २ के नमूने ईजाद करती हैं। मेहमान सजी हुई खाने की मेज़ देख कर खुश होते हैं और अपने को वहां स्वागत (Welcome) समझते हैं। घर की बीबी मेहमान के कमरे की हर एक छोटी बड़ी चीज़ को खुद झाड़ती पोंछती रहती है बल्कि उनकी जूती तक झाड़ कर रखती है। तमाम दिन भर के कामों से फ़रागत होकर ये औरतें अपने मेहमानों और ख़ान्दान के लोगों के साथ बैठक के कमरे में शाम को जमा होती हैं। कुहरे और सर्दी की वजह से दरवाज़े सब बन्द हो जाते हैं और कमरों के आतशखानों में आग जलती रहती है। उसी के इर्द गिर्द मा, बाप, बच्चे और आये गये सब जमा होकर बैठते हैं और दिल लोभानेवाली उमदा बातचीत करते हैं। किताबें और अख़बार के कागज़ात पढ़ कर सुनाते हैं। गीत गाना व बाजा बजाना और खेल तमाशा भी होता है। औरतें बजाती और गाती हैं और मर्द भी अक़्सर उनके साथ गाने में शरीक हो जाते हैं। बच्चे तो उस वक्त बड़ी मौज में रहते हैं। उनकी खुशी, शीरीं आवाज़ों, क़हक़हों और कूद फांद में देखाई देती है। मा बाप मुहब्बत और अभिमान के साथ अपने तन्दुरुस्त लहलहाते, खिलते गुलाब से बच्चों की तरफ़ मुसकरा कर देखते हैं और उनके खेल तमाशों में खुद भी शरीक

हो जाते हैं। बाद ऐसी ऐसी दिलचस्पियों के (Family Bible) बाईबिल के किसी अंश का पाठ पढ़ा जाता है और सब लोग मिलकर दुआ करते हैं। दुआ के बाद आपस में सब निहायत शफ़कत व मुहब्बत के साथ रुख़सत होकर अपने २ घर व सोने के कमरों में ख़ामोशी के साथ चले जाते हैं। अङ्गरेज़ों के ख़ान्दान की खुशी का चश्मा उनकी औरतों के तालीमयाफ़्ता दिलों से जारी रहता है। उनके हर एक नेक काम में औरतों ही की कूवत नज़र आती है। घर गृहस्थी का काम कोई ऐसा नहीं है जो औरतें वहां खुद न करती हों। जब वे हिन्दुस्तान में पहले पहल आती हैं उनको बड़ा अचम्भा मालूम होता है कि पकाने का काम और खिलाई के लिए मर्द बावरची और मर्द दर्ज़ी अपनी खिदमत पेश करते हैं क्योंकि ये दो काम विलायत में सिर्फ़ औरतों के ज़िम्मे है। अजब तो यह है कि बावजूद इतनी खानादारी के काम के वे और भी तरह २ के काम दिलोजान से करती हैं। वहां की अमीर से अमीर व ग़रीब से ग़रीब औरत रोज़ाना अखबार के काग़ज़ात और उमदा किताबों के पढ़ने के ख़ास २ वक़्त चुन लेती हैं और दुनियां के तमाम वाक़यात से अपने को वाक़िफ़ रखती हैं। बच्चों की शिक्षा पर वे विशेष ध्यान रखती हैं, फ़क़त स्कूली तालीम पर वे उनको छोड़ नहीं देतीं। बाप चाहे कोई भी पेशा करता हो लेकिन मा की यही कोशिश रहती है कि मेरे बच्चे ऐसी तालीम, तरबियत व उठान पावे जिससे वे आला दरजे की जमात (Society) में जगह पावें और अच्छे २ उहदों के हक़दार हो सकें। उनकी तालीम में अपनी जाती कोशिशें और रुपयों को ख़र्च कर वे कोई दक़ीका बाक़ी नहीं रखती हैं। दौलतमंद घरों में माताएं अपनी मदद के लिए शरीफ़ क़िस्म की पढ़ी लिखी औरतें (Ladies) नियत करती हैं और अपने बच्चों की तालीम तरबीयत अपनी ख़ास निगरानी के अन्दर उनके ज़िम्मे पर करती हैं। लेकिन (Governors) ऐसी गुरुवानियों के होने पर भी माताएं ज़्यादातर बच्चों की मजहबी, इखलाकी (Religious and Moral) तालीम अपनेही ज़िम्मे रखती हैं जिससे उनके दिलों पर मा के असर का नक़्श पड़ जाय। बच्चों के लिए माताएं एक खास कमरा, नरसरी, अलग कर देती हैं। इनमें मुनासिब निगरानी के अन्दर बच्चों को पूरी आज़ादी दी जाती है। यह कमरा तरह २ के खिलौने, दिल बहलानेवाली चीज़ों से सजा रहता है जिसमें लड़के, लड़कियां खेल २ में मुफ़ीद तालीम पाती हैं और दुनियां के कामों को लड़काईं से आसानी से समझने लगती हैं। बच्चों की जिस्मानी कसरत (Physical exercise) की चीजें भी नरसरी में मौजूद रहती हैं। इसी नरसरी में बच्चे अपनी रुचि (Natural inclination) व ख़्वाहिशों को आज़ादी से अमल में लाकर खेल २ की सूरत में अपनी ज़िन्दगी की खास मक़सदों के पूरा करने की कूवत व हिकमत हासिल करते हैं। अङ्गरेज़ औरतें नकि फ़क़त खानादारी के कामों में इन्तिहा दर्जे की ख़ूबी रखती हैं बल्कि उन कामों में भी वे कमाल रखती हैं जिनकी हैसीयत से वे आला दर्जे के मर्दों के बराबर करार दी जाती हैं। देशप्रेम (Patriotism) और सार्वजनिक कार्यों (Philantheophy) में तो वह मर्दों से भी बढ़ जाती हैं। दुनियां के किसी कोने से मुसीबत की खबर उनके कान में पड़ी नहीं कि उसकी गूंज उनके दिल में भर उठी और फौरन उन्होंने कमेटी इकट्ठी की, उदारता की थैली खुली, तरह २ की तदबीरें होने लगीं और कितनी खुद भी उठ खड़ी होती हैं कि मुसीबत की जगह जाकर बुराई को जड़ से दूर करदें। यह तबिअत सिर्फ़ अमीर औरतों ही में नहीं बल्कि गरीब से गरीब औरतों में भी पाई जाती है। छोटी झोपड़ी की औरत पैसों को ख़ास थैली या

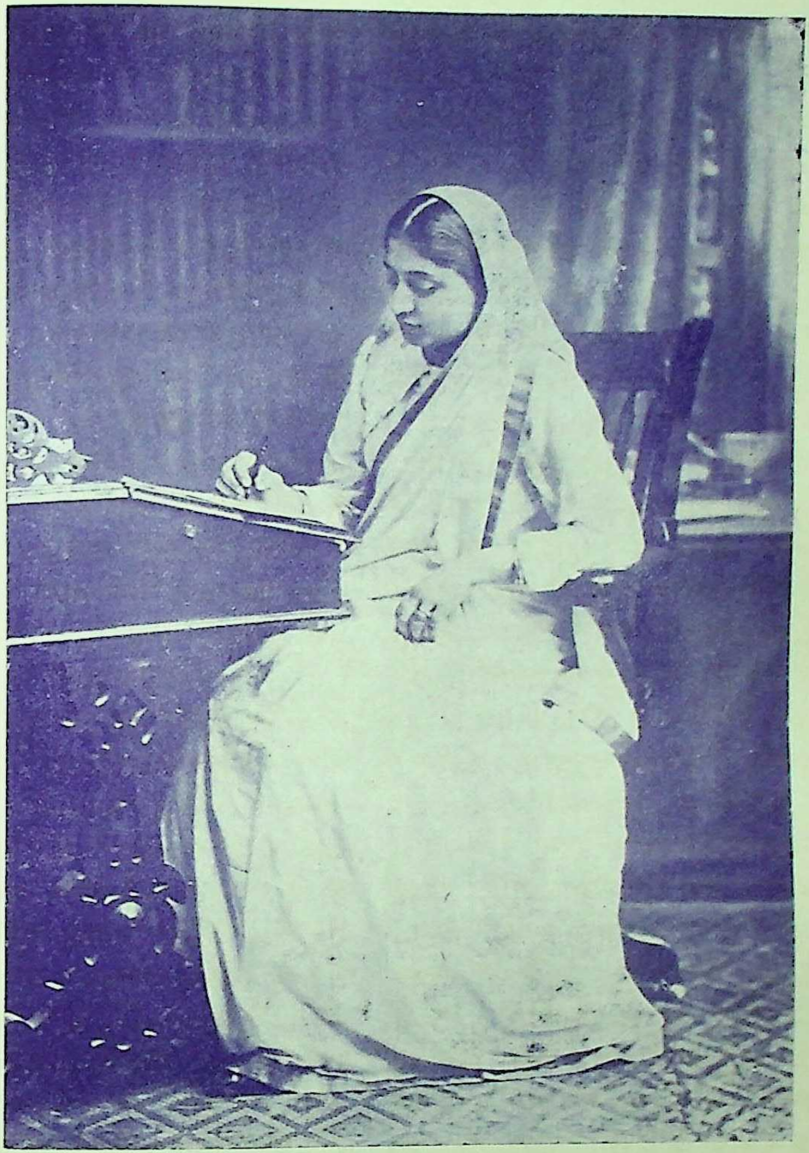

MRS. BRAJLAL NEHRU.

मिसेज़ बृजलाल नेहरु

PRINTERS: ALLAHABAD LAW JOURNAL.

सन्दूकची रखती हैं जिसको वह अपने ज़्यादा मुहताज की मदद के लिए खुशी से खोलती हैं। अक्सर ऐसा होता है कि औरतें छोटे २ क्लब बनाती हैं जिसमें अपनी कमाई की बचत में से वे कुछ जमा करती हैं। इस चन्दे को गरीबों को सख़्त सरदी से बचाने की ग़रज़ से गर्म कपड़े और आग तापने के लिए लकड़ी या कोयलों के ख़रीदने में वे सर्फ़ करती हैं। नकि सिर्फ कारख़ैर में—बल्कि आम तालीम में भी मर्द के बराबर औरत शिक्षा के हर एक विभाग (Department) में पूरा दख़ल रखती हैं। आयुर्वेद, दर्शनशास्त्र, न्याय, साहित्य, वग़ैरह इल्म के हर एक शाख़ में मर्दों के बराबर कालेज में वे पूरी निपुणता (Perfection) हासिल करती हैं। यही वजह है कि विलायत में औरत मर्द के मातहत नहीं बल्कि हर हालत में उसके बराबर समझी जाती है। मर्द उनके स्वत्वों और ख़्वाहिशों की पूरी ताज़ीम करते हैं और औरत उसके बदले में मर्द की पूरी हमदर्द और सुखदुख की सङ्गिनी होती हैं। फ़ौज में औरतें खुद लड़ने नहीं जातीं लेकिन घरही में रहकर वे तरह २ की कमेटियां बनाकर फ़ौज की मदद के लिए रसद भेजती रहती हैं। लेडी डाक्टर और नरसेज़ खुद भी फ़ौज के साथ लड़ाई के मैदानों में खड़ी रहती हैं ताकि ज़ख़मियों का इलाज करें और भूख प्यास से मरते सिपाहियों के मुंह में दाना पानी डाल कर ज़िन्दगी की सांस फेरें। ऐसे मौके पर कहा गया है कि क़ूवत जो तोप के पीछे पोशीदा खड़ा होकर लड़ रहा है वह औरत की मुहब्बत है। क़ैदखानों और निहायत ज़लील कूचों में निहायत शरीफ़ घरों की औरतें अक्सर जाती हैं कि अपने कोशिशों से वे उनकी गिरी हुई हालत को सुधारें। अक्सर बहुत बड़े घर की औरतें भेष बदल कर ऐसी जगहों में गई हैं जिसमें कि उनकी हालत को खुद देखकर वे उनकी बेहतरी की तदबीर करें और अपनी तजवीजें सरकार में पेश करें।

यूरप के सब से बड़े ज़बरदस्त जङ्गी आदमी नेपोलियन बोनापार्ट ने, जिसने तमाम यूरप की बादशाहतों को हिला दिया था नरसरीही में खेल २ कर तोप के गोले छुड़ाने की हिकमत सीखी। रेलगाड़ी, तारवर्की के ईजाद की भी बुनियाद नरसरी के खेल में पाई जाती है। अङ्गरेज़ औरतें नरसरी को अभिमान की वस्तु समझती हैं और उसकी तरक्की में दौलत की दौलत सर्फ़ करदेती हैं। विलायत में औरतें मर्दों से आज़ादी से मिलती जुलती हैं फिर भी कोई तरह की ख़राबी नहीं होती। उसका सबब यह है कि बचपनही से लड़के और लड़कियां एक दूसरे के साथ नेक बर्ताव करना सीखते हैं। बचपन ही से लड़का इस बात का क़ायल होता है कि मुझे लड़की ज़ात की पूरी २ ताज़ीम करनी है और उसके हक़ मेरे हक़ से बढ़कर हैं। इसी तरह लड़की बचपनही से समझती है कि मेरा यह दावा, हक़ है कि लड़का मेरी पूरी ताज़ीम करे और मेरे साथ किसी तरह की गुस्ताख़ी न करे, और यह कि मुझे भी ऐसी चाल चलनी है कि लड़के को कभी मौका तक न मिले कि मेरे इस हक़ के अदा करने में वह किसी तरह की कोताही करे। यही बचपन की आदत उनके आइन्दा ताल्लुक़ात में क़ायम रहती है और यही वजह है कि इस आज़ादी से ख़राबी नहीं पैदा होती। अलावा इसके लड़कियां भी लड़कों के बराबर ही बराबर तालीम पाती हैं जिसके ज़ोर पर वह खड़ी हो सकतीं हैं और जिसकी रोशनी से वह खुद अपना भला पहचानने लगती हैं। बच्चों की इख़लाकी तरबीयत (Moral training) में माताएं सच बोलने की तालीम पर ख़ास ज़ोर देती हैं क्योंकि वह इस बात की कायल होगई हैं कि क़ौमी बुज़दिली (national cowardice) और

बरबादी की बिना झूठ पर है और यह कि सञ्चाई से दिल में दिलेरी और आज़ादी पैदा होतीहै। अन्य कारणों के साथ साथ सच्चाई की आदत भी अङ्गरेज़ कौम की आज़ादी, बहादुरी का एक सबब है। बावजूद इस आज़ादगी (Independence) के जो इनके मिज़ाज में पाई जाती है यह भी मशहूर है कि अङ्गरेज़ क़ायदों की सख़्त पाबन्दी करते हैं। इसका सबब यह है कि माताएं बचपन ही से अपने बच्चों को सब बातों में क़ायदे की पाबन्दी करना सिखाती हैं। बावजूद आज़ाद तबिअत के वे कोई भी ऐसी बात नहीं कहतीं जिससे किसी के दिल में चोट पहुंचे। कारण यह है कि माताएं बच्चों की तालीम में इसबात पर ज़ोर डालती हैं कि वे हर बात में दूसरों की भावनाओं का ख्याल रक्खें। यही वजह है कि अङ्गरेज़ औरतों की मुलायम आवाज़, हमदर्द सुहवत व मीठी बातचीत हमारे हिन्दुस्तान के मरदों को इस क़दर जादूभरी मालूम होती हैं। खानादारी के कामों में औरतें खतों को लिखने और जवाब देने के काम को ज़रूरी समझती हैं और इस काम को वे अपने ही ज़िम्मे लेती हैं। मर्द अपने दफ़्तरी ख़त लिखते हैं लेकिन रिश्तेदारों और दोस्तों को पत्र औरतें अपने व अपने शौहर की तरफ़ से लिखती हैं। इन ख़तों में वे ज्यादःतर अपने बच्चों की अमली तरक्की और उनकी दिलचस्पियों की खबर देती रहती हैं। खत लिखना भी एक हुनर है। बराबर ख़त लिखने से अङ्गरेज़ औरतें अपनी उस दोस्ती के पुराने सिलसिले को उमर भर कायम रखती हैं जो हम हिन्दुस्तानी औरतें दिन रात की सेवा करके और दुनियां की नज़रें, तोहफ़ा भी देकर कायम नहीं रख सकतीं। अङ्गरेज़ औरतों की खानगी ज़िन्दगी (Domestic life) के सम्बन्ध में जो बातें मैंने कहीं वह गो सुनने में अदना मालूम हों लेकिन उन्हीं के करने और न करने पर भावी सुख दुःख निर्भर है। राजनैतिक या शासन सम्बन्धी स्वत्व अभी तक अङ्गरेज़ औरतों को मर्दों के बराबर नहीं दिये गये लेकिन इस महकमें में भी औरतें बहादुरी से अपने दावे पेश कर रही हैं और अपनी इल्मी और प्रबन्ध करने की योग्यता से अपने हक़ साबित कर रही हैं। ये औरतें सफ़रगेट कहलाती हैं। मिस पेंकहर्स्ट सख़्त ज़िल्लतें व जहमतें और क़ैद की मुसीबतें सहकर अपने हक़ को हासिल करने में इन्तिहा दरजे की कोशिश कर रही हैं। इन्साफ़ पसन्द मर्द भी इस काम में इनका साथ दे रहे हैं क्योंकि वे जानते हैं कि उनके क़ौम की कामिल बेहतरी इसी में है कि ज़माने के दौर में औरतें भी मर्दों के साथही साथ चलती और बढ़ती रहें। खानगी और क़ौमी बहुत से ऐसे मामलात हैं जिनकी ज़रूरतें औरतें स्वाभाविक रीति से मर्द से ज़्यादा अच्छी तरह समझती हैं और जिनके होने व न होने की निस्बत उनका फ़ैसला ज्यादा फायदामंद होसकता है। इसलिए इङ्गलैंड की औरतें गवर्नमेंट से राजनैतिक कामों में भी अपनी सुनवाई और अधिकार चाहती हैं। वह ज़माना दूर नहीं है कि यह भी हक़ इनको रफ़्ता २ मिल ही जायगा क्योंकि वे पूरी क़ाबलियत रखती हैं। मज़हबी मामलात में वे इस क़दर शौक़, सरगर्मी रखती हैं कि दूसरे मुल्क के लोगों को भी अपने मज़हब में लाने की ग़रज़ से वे न कि सिर्फ़ हज़ारों तरह की सभाएं कायम करती औरआत्मा को हिला देनेवाली स्पीचें देती हैं बल्कि खुद भी जान निछावर कर अपने बच्चों तक से भी जुदा होकर वे ग़ैर २ मुल्कों में अपने मजहब के फैलाने की ग़रज़ से चली जाती हैं। अङ्गरेज़ औरतों की तबीयत में एक दिलेरी है, जोकि उनसे बड़े से बड़े काम कराती है, हिन्द ने भी सदियों बादशाहत की हैं पस हिन्द की औरतों में से मरदाना दिलेरी का माद्दा मौजूद होना

ज़रूरी बात है लेकिन सदियों से दबे रहने से दिल मर सा गया है। अगर देशप्रेम की मशालें घर २ जल जाएं तो बहुत जल्द बल्कि आनन फानन में हिन्दुस्तानी औरतों की खूबी और उम्दगी की रोशनी तमाम जहान को रोशन करदे। क्योंकि हिन्द की औरतों में स्वाभाविक कोमलता, उदारता, आत्म-गौरव और आत्म-त्याग मौजूद हैं। हमारी पुरानी तवारीखें मेरे इस दिलेराना बयान को साबित कर चुकी हैं और जगह बजगह इस बिगड़े हुए लेकिन सुधरते हुए ज़माने में भी ऐसी औरतें पाई जाती हैं जोकि किसी जाति के लिए अभिमान की वस्तु होसकती हैं। अगर हम औरतों को अपने मुल्क से सच्ची मुहब्बत है तो उचित है कि हम सब से पहले अपने मुल्क की औरतों को जहालत की तारीकी में से निकालें। सच्चे देश प्रेम के यह मानी नहीं है कि हम दूसरों के गुणों की अवमानना करें और अपनी बुराइयों को भी अच्छा समझें और इसी एक बात पर लड़ते झगड़ते खून की नदियां बहावें। इस वक्त हिन्द में इसी की बड़ी ज़रूरत है कि हम अपने लोगों की हालत सुधारें और इस नेक काम में बेशक अपने खून तक को बहावें और तन मन धन से इस कार्य में प्रयत्न करें।

हतभाग्य।

[लेखिका—श्रीमती राजदेवी कुँअरि।]

जिमि हरित पल्लव से सुसज्जित
वृक्ष शोभा को लहै।
जिमि पुष्प भारन से लची
शाखा अधिक छबि को लहै॥
तिमि है बढ़ाता छबि अधिक
सिन्दूर इसके भाल में।
यद्यपि भयंकर शोक से
यह है ग्रसी इस काल में॥
है बाम कर से चिबुक टेके
पत्र दहिने हाथ में।
चंचल नैन नीचे किये
बैठी है दुख के साथ में॥
इस पत्र में कैसी लिखी है
हे दैव दुःखन्मय कथा।
बांचि के क्षण क्षण में जिसको
शूल सम उपजै व्यथा॥
यह पत्र भी तो है लिखा
नहिं प्राणपति के हाथ का।
परतात होता मित्र कोई ने
लिखा है साथ का॥
हे ईश वे एक साथ ही
बलहीन इतना हो गये।
नहिं शक्ति लिखने की रही
तन छीन इतना हो गये॥
चैतन्य हालत में कभी
मो नाम के इस पत्र को।
लिखने न देते भूल के
इस पत्र को अन्यत्र को॥
तूं ने विधाता क्या लिखा
है हाय मेरे माथ में।
पछता रही इस ठौर मैं
क्यों न गई पति साथ में॥
यदि पंख देता ईश तो
जाती अभी उस देश में।
जाकर अभी मैं देखती
जिवतेश हैं किस वेष में॥
जिसके सहारे इस जगत में
हे हरे मैं चल रही।
मैं मग्न जिसके प्रेम में
हो रूर कली सी खिल रही॥

जो शीश की पीड़ा तनिक भी
मैं न सह सकती कभी ।
जिसको दुखी मैं एक पल
भर भी न लख सकती कभी ॥
उसके कठिन दुख की कथा
मुझको अचानक सुन पड़ी ।
होती नहीं हो टूक क्यों तूं
हाय री छाती कड़ी ॥
अति शोक से अब इस समय
होता कलेजा चूर है ।
किस भांति जाऊं मैं वहां
वह देश भी अति दूर है ॥
वह देश इतनी दूर है
जाना अकेली है कठिन ।
मुझ को अकेली पार करना
पंथ अति होगा कठिन ॥
हे ईश हो तुम ही सहायक
अब मुझे इस काल में ।
हे ईश हो रक्षक हमारे
अब तुम्हीं इस हाल में ॥
किससे कहूं निज कल्पना
किसकी शरण में जायकर ।
मैं अड़ गई हूं नाथ अब
तेरी शरण में आय कर ॥
जिमि जागता है मृतक तन
प्याला सुधा का पायकर ।
होता पपीहा है सुखी ज्यों
स्वाति का जल पायकर ॥
जिमि रंक होता है अनन्दित
विपुल धन को पाय कर ।
उस भांति मैं हूंगी सुखी
मन कामना को पाय कर ॥
हे नाथ यह वरदान देवो
झूंठ होवै हाल यह ।
शुभ सूचना जल्दी मिलै
हो दूर काल कराल यह ॥

हिन्दुओं की सामाजिक अवस्था ।

[लेखिका—श्रीमती कुन्ती देवी ।]

प्रत्येक देश या जाति की उन्नति का रहस्य उसके सामाजिक अवस्था से प्रगट होता है । यदि हम किसी देश या जाति की उन्नति तथा गौरव की परीक्षा करना चाहें तो सबके पहिले हमें यह देखना होगा कि उसका सामाजिक जीवन कैसा है ? उनके परस्पर व्यवहार कैसे होते हैं ? उन लोगों ने विद्या तथा सुशिक्षा में कहाँ तक उन्नति की है ? उनका साहित्य, उनकी राजनीति, तथा सदाचार कैसा है ? यह कसौटियां हैं जिनके द्वारा हम प्रत्येक जाति की उन्नति की परीक्षा कर सकते हैं ।

हिन्दू जाति की परीक्षा ।

अब यदि हम हिन्दू जाति के उन्नति की परीक्षा इन कसौटियों द्वारा करती हैं तो इस बात के साबित होने में तनिक भी शंका नहीं रह जाती कि हिन्दू जाति जिसे प्राचीन समय में आर्य्य जाति कहते थे एक सभ्य और उन्नतिशील जाति थी। उसकी सामाजिक अवस्था, उसकी रीति नीति, उसका रहन सहन, उसका सदाचार, उसका पारस्परिक प्रेम, उसका त्यागाचरण, उसकी सङ्घशक्ति सम्पूर्ण उन्नति को प्राप्त थी ।

हिन्दू सोसाइटी

चार भागों में विभक्त थी। उसका प्रत्येक भाग अपने आप में पूर्ण था और इनके द्वारा सोसाइटी के समस्त कार्य्य उत्तमता पूर्वक सम्पादन होते रहते थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र इन भागों का नाम था। इनमें परस्पर समता के व्यवहार थे और प्रत्येक भाग सोसाइटी का माननीय और अति आवश्यकीय अङ्ग समझा जाता था। उस समय सोसाइटी में कोई ऐसी पाबन्दी और रोक टोक न थी जिससे समाज की उन्नति में किसी प्रकार की बाधा पड़े अथवा नीच ऊंच का घृणित भाव उत्पन्न होने का भय हो। आर्य्य जाति एक विजयी जाति थी। भारतवर्ष में उसका इसी हैसियत से आगमन हुआ। उसने बहुत जल्द यहाँ के असली बाशिन्दों को अपने कब्ज़े में कर लिया और उनमें किसी प्रकार का अन्तर न रह गया। इस बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि वर्तमान सभ्यता बहुत कुछ विजय प्राप्त कर चुकी है और उत्तरोत्तर उन्नति करती जाती है। परन्तु इस समय में भी उसकी वह उन्नत अवस्था नहीं है जो किसी समय हिन्दू सोसाइटी को प्राप्त थी।

उन्नति का रहस्य क्या है?

विचार करने से ज्ञात होगा कि व्यक्तियों और जातियों की उन्नति का एक मात्र कारण परस्पर की समानता है। जिस देश में एक भाषा नहीं, जहाँ के लोगों के आचार व्यवहार समान नहीं, जहां के मनुष्यों ने एक प्रकार के उद्देश्य सामने नहीं रक्खे उन पुरुषों या जातियों के साधन समान नहीं हो सकते। हिन्दू जाति ने जब तक सामाजिक समता के नियम की पाबन्दी की और अपने लक्ष्य को सामने से नहीं हटाया वह उन्नति के शिखर पर आरूढ़ रही परन्तु ज्यों ही उसने इन नियमों का उल्लंघन किया और उसके सामाजिक जीवन से समानता के भाव कम हो चले वह दिन प्रति दिन उन्नति के मार्ग से गिरती गई और यहां तक नीचे गिरी कि आज वह जाति आर्य्य जाति नहीं रही बल्कि कुछ और हो गई है। अब हम उसकी पूर्व की अवस्था की तुलना उसकी वर्तमान दशा से करते हुए भी लजाती और संकोच करती हैं।

जातीय भेद।

क्या पहिले किसी प्रकार का जातीय भेद नहीं था? विदेशियों के आक्रमण यों तो इस भारतवर्ष में १३०० वर्ष से हो रहे हैं मगर पांचवी छठी सदी तक इस देश के लोग न केवल परस्पर मिल कर खाना खाते थे किन्तु विवाहादि भी करते थे। भारतवर्ष से बाहर कहीं भी वर्णव्यवस्था नहीं थी। महाभारत तक में यह देखा जाता है कि भगवान् व्यास के पुत्र शुकदेवजी पाताल देश को गये थे। शुक्राचार्य जिस मार्ग से आये थे उसका वर्णन महाभारत के शान्ति पर्व अ० ३२७ में दिया हुआ है।

हरिवर्ष यूरोप को और पाताल देश अमेरिका को कहते हैं। महाराजा युधिष्ठिर के यज्ञ में कई देशों के लोग आये थे। श्रीकृष्ण तथा अर्जुन अश्वतरी (जहाज़) पर बैठ कर पाताल गये और उद्दालक ऋषि को लाये थे। धृतराष्ट्र का विवाह गान्धारी (क़न्धार के राजा की पुत्री) से हुआ था। अर्जुन का विवाह पाताल देश के राजा की कन्या उलोपी से हुआ था। आठवीं सदी में जब महमूद गज़नवी आया और उसने अत्याचार करना आरम्भ किया उस समय भी हिन्दू सोसाइटी में लाहौर के राजा अजयपाल को प्रायश्चित्त करा कर वापस कर लिया गया था। अपनी जाति की रक्षा के लिए जो २ नीतियां हिन्दू धर्म के नेताओं ने चलाईं वह विचित्र हैं। जहां उनसे कुछ लाभ पहुंचा वहां हानि भी कम नहीं हुई और यह

वही समय था जब हिन्दू समाज में सामाजिक निर्बलता के कारण जातीय भेद का दौरा शुरू हो गया था और

सामाजिक अत्याचार

का बाज़ार गर्म हो चला था। इसी दरमियान में नवीन से नवीन सम्प्रदाय चले। जहां शमसी मत अनुयायियों ने छूत छात को तोड़ना चाहा वहां वैष्णव सम्प्रदाय ने

छूतछात को बढ़ाया।

बंगाल में चैतन सम्प्रदाय, बम्बई में पुष्टिमार्ग, और संयुक्त प्रान्त में वैष्णव ने यही काम किया। यहां तक छूतछात बढ़ी कि स्त्रियां रेशमी कपड़ा पहिनकर खाना बनाने और खाने लगीं। कहीं २ तो निर्लज्जता सीमा पर पहुंच गई। स्त्रियाँ चौके में घुसकर वस्त्रविहीना हो खाना पकाने लगीं। नखरी, सखरी, कच्ची, पक्की का झगड़ा तभी से चल निकला और तभी से

हिन्दू धर्म कच्चा धागा बन गया।

छू दिया, जल स्पर्श कर दिया व चौका छू दिया, बस वही धर्म उड़ गया। दक्षिण का दृष्टि दोष इसी का परिणाम है। चौका तो यहां तक बढ़ा कि 'आठ कनौजिये नौ चूल्हे' की कहावत प्रसिद्ध होगई। महर्षि दयानन्द जी अपने सत्यार्थ प्रकाश में एक जगह लिखते हैं कि इसी मूढ़ता से इन लोगों ने चौका लगाते २ विरोध करते कराते सब स्वातन्त्र्य, आनन्द, धन, राज, विद्या, पुरुषार्थ और समस्त आर्यावर्त देश भर में चौका लगाकर सर्वथा नष्ट कर दिया।

आज इसी छूतछात के झगड़े में छः करोड़ या भारतवर्ष की आबादी का पाँचवा भाग ऐसे मनुष्यों का है जिन्हें

अछूत जातियों

के नाम से पुकारा जाता है। इनको हम पतित कहती हैं। नहीं २ हमने इन जातियों को केवल पतित ही नहीं बनाया है, बल्कि इनके लिए हम लोगों ने शिक्षा का द्वार ही सर्वदा के लिए बन्द कर दिया है। उनके साथ न तो सामाजिक प्रेम प्रकट किया जाता है न दस्तकारी के सम्बन्ध में उन्हें सहायता दी जाती है। वह परस्पर मिल भी नहीं सकते और इस तरह वे मिलने के लाभों से भी वंचित रहते हैं। सरकारी नौकरी का रास्ता भी उनके लिए हम ने बन्द करवा दिया है। हम उन्हें अस्पतालों, सराओं, रेल गाड़ियों, कुओं और मन्दिरों तक पर नहीं जाने देते। इनसे जहां उन्हें हानि पहुंची है वहीं हमारी जाति भी उन्नति करने से रुक गई है।

इस समय देश में राजनैतिक अधिकार प्राप्त होने लगे हैं। जिन नियमों के मूल पर हम गवर्नमेंट से अपने अधिकार मांगती है उन्हीं सद्विचारों से प्रेरित होकर हमें इन जातियों को सामाजिक न्याय की दृष्टि से देखना चाहिये।

भारतवर्ष के बाहर अन्य देशों में छूत का भाव नहीं है। कुछ २ यह जापानियों में था परन्तु उनकी आंखें खुली और उन्होंने एक दम इसे दूर कर दिया।

हम ईसाइयों और मुसलमान भाइयों से मिलने में संकोच नहीं करतीं। संकोच ही नहीं प्रायः उनसे हाथ मिलाने में हम अपना सौभाग्य समझती हैं। साथ ही साथ अपने सजातियों के साथ ऐसा वर्ताव करने से हम पतित हो जाती हैं। विचित्रता तो यह है कि इन शूद्रों को हिन्दुओं की ऊँची जातियाँ उस समय तक घृणा की दृष्टि से देखती हैं जब तक वह हिन्दू रहते हैं परन्तु ज्योंहीं वे अपना धर्म त्याग कर मुसलमान या ईसाई हो जाते हैं हम उन्हीं शूद्रों से अच्छा वर्ताव करने लग जाती हैं।

क्या यह अन्याय नहीं है ? क्या इसका यह प्रत्यक्ष अभिप्राय नहीं हो सकता कि मुसलमान या ईसाई हुआ २ शूद्र हिन्दू शूद्र की अपेक्षा अच्छे व्यवहार का पात्र है ।

जिस जाति के भिन्न २ विभागों में ऐसा वर्ताव हो और ऐसे २ अत्याचार ठीक समझे जाते हों उस जाति में तब तक एकता होना असम्भव है जब तक इन अत्याचारों की इति श्री न हो जाय

धर्म व्यवस्था

क्या हिन्दू धर्म हमें इन शूद्रों के साथ अत्याचार करने का उपदेश देता है ? क्या हमारा धर्म उच्चवर्णों के लोगों को नीच जातियों के अधिकार कुचलने और उनके साथ घृणा करने की शिक्षा देता है ? क्या हमारे धर्मानुकूल इन लोगों को उठने और अपने से उच्चवर्णों में शामिल होने का अधिकार नहीं है ? अवश्य है । भगवद्गीता में लिखा है कि वर्ण व्यवस्था गुण, कर्म, स्वाभावनुसार है । अतएव हमारा धर्म भी छुआ छूत का पक्षपाती नहीं वरन् विरोधी है । जिस धर्म में कोटिशः मनुष्यों को पादाक्रान्त करने और अविद्या, राग, तथा अपमान का पात्र बनाने की आज्ञा हो हम उस

धर्म को धर्म नहीं मान सकतीं ।

जिस धर्म व्यवस्था में स्वकीय बुद्धिमत्ता, सुजनता तथा गुण सम्पन्नता को कोई स्थान न हो, जिस व्यवस्था में जन्म से एक नीच श्रेणी के मनुष्य को अपनी स्वकीय गुण सम्पन्नता से उच्चपद पाने का अवसर न मिल सकता हो वह व्यवस्था सर्वथा प्रकृति के नियमों के विरुद्ध और अस्वाभाविक है । हमारा धर्म

वैदिक धर्म

है । वैदिक धर्म किसी विशेष जाति या देश का धर्म नहीं है, किसी एक व्यक्ति या समुदाय का दायभागी नहीं है । कुछ धार्मिक संस्कार चाहे किसी मनुष्य को दायभाग मिल जावें, परन्तु बहुत करके धर्म प्रत्येक मनुष्य की अपनी कमाई है । इसलिए उसका अधिकार है कि वह जितना धर्म धन चाहे कमावे किसी को कोई हक़ नहीं है कि वह धर्म का द्वार किसी दूसरे के लिए बन्द कर दे ।

जिस धर्म के प्रचारक केवल इस कारण से धर्म का द्वार किसी के लिए बन्द कर देते हैं कि वह एक ऐसे परिवार में उत्पन्न हुआ है जो उनके दृष्टि से नीच और शुद्र है वे अपने धर्म को धर्म के उच्च सिंहासन से गिराते हैं और उसका अपमान और उसकी हानि करते हैं ।

धर्म का द्वार सब के लिए खुला होना चाहिये

जिस प्रकार परमात्मा का द्वार सारी सृष्टि के लिए खुला हुआ है और प्रत्येक मनुष्य अपने मन को उनके चरणों में समर्पण कर जात पात रंग रूप की विवेचना के बिना ही उनके पास पहुंच सकता है उसी प्रकार धर्म से जो परमात्मा का स्वरूप है या परमात्मा के स्वरूप के जानने का साधन है, सबके लिए खुला होना चाहिये ।

समय आगया है कि हम अपने कर्तव्य को समझें, और उन्हें उनके अधिकार देकर भ्रातृभाव और प्रेम की लहर को फिर से जीवित करें और प्रेम के फल से लाभ उठावें ।

'मनुष्य का धर्म'

स्वभाव से ही संयोग की शक्तियों से लाभ उठाने का है । उसका शरीर परमाणुओं के संयोग से बना है उसके दिमाग में अनेक शक्तियों के कारण ही से विचार और विवेक बुद्धि उत्पन्न होती है । कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों के संयोग से ही जीवन चलता है । शुद्ध

दृष्टि से देखा जाय तो परमाणुओं तथा मानसिक विचारों के संयोग पर मनुष्य की स्थिति है। संयोग मनुष्य का एक धर्म है। संयोग प्रकृति का धर्म है। ईंट ईंट के मिलने से दीवार बनती है। मनुष्य मनुष्य के मेल से समाज में बल बढ़ता है। अतः यदि हमें अपनी जीवन रक्षा की आवश्यकता है, यदि हमको अपना हिन्दू जीवन रखना है, यदि हम जाति हत्या के घोर पाप से बचना चाहतीं हैं तो हमें अपने इन भाइयों के साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार करने, उनकी हालत को बेहतर बनाने के लिए तन मन धन से उठ खड़ो होना चाहिये। जब अन्य धर्मावलम्बी उन्हें अपनी ओर खींचने, अपने धर्म में मिलाने की सर तोड़ कोशिश कर रहे हैं तो हमें कम से कम अपने सब भाइयों के साथ प्रीति और सहानुभूति करने में तो संकोच न करना चाहिये।

दुःख की बात है कि जिन धर्मों में केवल 'मोमिनो' तथा 'पड़ोसियों' के साथ दया दृष्टि की आज्ञा हो, वे तो इतने हाथ पैर निकालें और जिस धर्म में 'अहिंसा परम धर्म' हो, दया की कोई सीमा न हो; जिसमें प्राणीमात्र ही नहीं, किन्तु सारे संसार की भलाई चाहने की हिदायत की गई हो, चंद्र लोक सूर्य्य लोक इत्यादि २ जितने भी लोक लोकान्तर हैं उन सब का भला मनाने का उपदेश हो वह इतना संकुचित हो जाय। हमारे बेपरवाही से बहुत कुछ हानि हो चुकी है। यदि अब भी हम अपनी सामाजिक अवस्था सुधारने और समाज में बल बढ़ाने तथा प्रेम, भ्रातृभाव, दया, उपकारादि गुणों द्वारा सामाजिक शक्ति को दृढ़ करने का प्रयत्न नहीं करतीं तो फिर कहीं को भी न रह जायगी।

अछूत जातियों की दशा।

[लेखिका—श्रीमती उमा नेहरू।]

हमारी हिन्दू जाति में बहुत सी बातें ऐसी पैदा हो गई हैं जिनके सुधार की बहुत ज़रूरत है। हम जिधर देखती हैं हमको सैंकड़ों ऐसी ही बात दिखाई देती हैं यथाः—बाल विधवा, बाल विवाह, छूआछूत, बिरादरियों के झगड़े इत्यादि। इन सभी बातों ने हमारी हिन्दू जाति को कमज़ोर करके मौत के समीप पहुंचा दिया है मगर ये सब बातें हमको मनुष्यत्व से इतना नहीं गिरातीं जितना कि हममें अछूत जातियों का होना और हमारा उनके साथ वर्ताव हमें नीचे गिराता है।

दुनिया की किसी क़ौम में कोई ऐसी जाति न है और न कभी थी जिसके आदमियों से मिलना, बोलना, या किसी तरह का वर्त्ताव रखना, केवल नीच कर्म ही नहीं बल्कि सामाजिक पाप समझा जाता हो। खेद से कहना पड़ता है कि यह फ़ख़ हमारे हिन्दोस्तान ही को हासिल है।

हमारा धर्म दूसरे धर्म्मों से कहीं बढ़कर हमको यह सिखाता है कि जितने मनुष्य हैं सब में एक ही जीव विराजमान है, हमारे वेदान्त और हमारी फ़िलासफ़ी में यह कूट २ कर भरा है कि संसार की वस्तुओं में जितने भेद पाये जाते हैं वे सब आदमियों के बनाये हुए हैं—और वे केवल उन मनुष्यों के किये हुए हैं जो संसार की और उसकी चीज़ों की असली बात से अभिज्ञ नहीं हैं। ऐसा धर्म्म और ऐसी फ़िलासफ़ी रखते हुये भी हमको शर्म से कहना पड़ता है कि हम इतनी गिर गई हैं कि [illegible] हमारी ही जाति में ऐसी बात

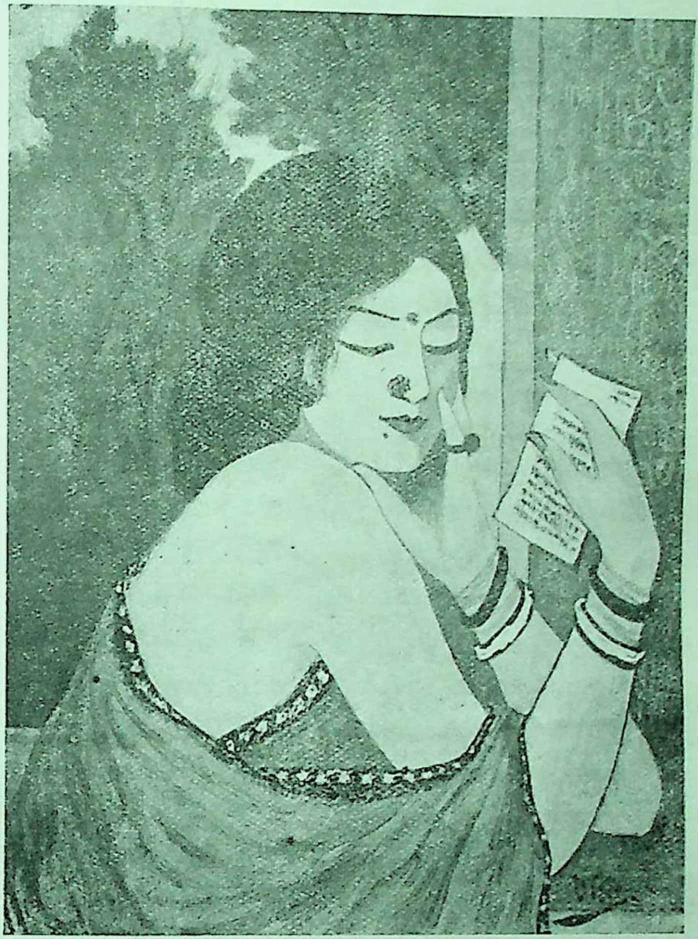

धन्य भाग !

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग।

पाई जाती हैं, जिनको संसार देख देखकर हंसता है।

सबसे भद्दा धब्बा हमारी जाति पर अछूत जातियों का है। अगर हम अपनी पुरानी किताबों को देखते हैं, तो हमको मालूम होता है कि पुराने ज़माने में कोई जाति ऐसी न थी जो हमारी वर्तमान अछूत जातियों से समता रखती रही हो। पहले का हाल तो मालूम नहीं, मगर मनुजी के ज़माने में एक समुदाय मनुष्यों का ऐसा पाया जाता है, जिसको छूना, जिससे कोई संबन्ध रखना या जिसको अपने पास आने देना, एक बुरी और अपवित्र करनेवाली बात समझी जाती है और जिससे हर ऊंची जातिवालों को बचना ज़रूरी है। मगर यहां भी हम यह पाते हैं कि वह समुदाय जो सामाजिक केन्द्र से निकाल कर इस तरह बाहर फेंक दिया जाता है वह कोई खास जाति नहीं है। इस समुदाय के व्यक्तियों को मनुजी चाण्डाल के नाम से पुकारते हैं। हमारी सारी धर्म्म की किताबें यह पुकार पुकार कर कहती हैं कि कोई मनुष्य चाण्डाल पैदा नहीं होता, बल्कि उसको उसके कुकर्म चाण्डाल बनाते हैं।

जो मनुष्य मनुजी के समय में इतना खराब होता था कि उसका सुधार असम्भव होता था, और अलावा अपनी व्यक्तिगत ख़राबियों के जिसकी ग़लाज़त इतनी बढ़ी हुई होती थी कि उसको कुत्ते का मांस खाने और मुर्दों के कपड़े लेने तक में, किसी तरह की घृणा नहीं होती थी, वह मनुष्यों के सामाजिक केन्द्र से खारिज कर चाण्डालों में शामिल करदिया जाता था।

मनुजी के बाद के लोगों की लिखी हुई किताबें देखने से, यह मालूम होता है कि आहिस्ता २ होते होते चाण्डालों का एक फ़िर्क़ा बन गया है और ऊंच जातियों की घृणा उस फ़िर्क़े के साथ पहिले के मुक़ाबिले, बहुत गहरी और ज़्यादा हो गई है।

अब हम अपनी दशा को देखते हुए पाते हैं कि हममें ऐसी नीच जातियों की कोई इन्तिहा ही नहीं है, जिनसे मनुष्यत्व का बर्ताव करना हमारे धर्म्म के खिलाफ़ न हो। पासी, चमार, भंगी, पारिया, पनचामा इत्यादि सब उन बेक़ुसूर जातियों के नाम हैं जो बिला किसी अपने कुसूर के हज़ारों वर्ष से हमारे जुल्म सहती चली आती हैं, शक्ल, सूरत, बदन, ताक़त, नहीं बल्कि अक़ल में भी, इन फिर्क़ों के आदमी किसी हालत में हमसे कम नहीं होते। मगर फिर भी उनके साथ, जानवरों से भी ख़राब व्यवहार करते हुये हमको शरम नहीं आती। अगर कोई कुत्ता या गदहा या दुनिया का कोई जानवर हमारे कपड़े या हमारे बरतन छू लेता है, तो हम उनको मांज कर इस्तेमाल में लेआते हैं, मगर इन जातियों के इन्सान अगर हमारे बर्तन छू लें तो बिला आग में डाले हुए वे हमारे काम नहीं आ सकते। यहां तक तो ख़ैर गनीमत है मगर हमारे मदरासी भाइयों ने तो कमाल ही कर दिया है। वे अपनी पारिया जाति के लोगों के साथ जो बर्ताव करते हैं, उसका विश्वास किसी पढ़े लिखे आदमी को मुशकिल से आवेगा। वहां के ब्राह्मणों पर अगर किसी पारिया का साथ पड़ जाता है, तो वह फ़ौरन अपवित्र हो जाता है। वहां की सड़कों पर पारियों को, अधिकार नहीं है कि वे आज़ादी के साथ गुज़र सकें। वहां के कुछ मोहल्लों में पारियों के घुसने की क़तई मनाई है। उनसे किसी तरह का सरोकार रखना तो दरकिनार, उनसे बोलना उनकी तरफ़ देखना एक बहुत बड़ा कुसूर समझा जाता है। अगर किसी ग़रीब पारिया से कोई भूल हो जाती है, उदाहरण के लिए यह कि अगर उसका साया, धोके में किसी नहाये हुए ब्राह्मण पर पड़ जावे, तो वह ब्राह्मण देवता गुस्से में आकर, उस ग़रीब को खुद तो लकड़ी तक से पीट नहीं सकते, किन्तु दूसरे राह चलनेवालों से पिटवाते हैं।

इतनाही नहीं दक्षिण में एक और ज़ात है जो पुलीया के नाम से प्रसिद्ध है। इस जाति के लोगों को वहां के सभ्य लोग यह इजाज़त नहीं देते कि वे ज़मीन पर अपने मकान बना सकें। गावों के अन्दर आना दरकिनार गांव के आसपास आने तक की उनको मुमानियत होती है। वे बेचारे इनसानी दुनियां से यों खारिज होकर दरख़्तों पर पक्षियों की तरह घोसले बनाते हैं और शाखों पर बैठकर अपनी कमबख़्त ज़िन्दगी के दिन गुज़ारते हैं। किसी समय जब वे देखते हैं कि सड़क पर कोई नहीं है तब वे सड़क पर चलने की हिम्मत करते हैं, मगर जहां उन्होंने दूर से देखा कि कोई इन्सान आरहा है, वहीं उनका फ़र्ज़ है कि वे चीखकर फ़ौरन रास्ते से भाग जावें। चीखना इसलिए ज़रूरी है कि गुज़रनेवाले को मालूम हो जावे कि कोई पुलीया आस पास है और वह मन्तर जपजप कर उसकी हवा लग जाने की अशुद्धता को दूर करता रहे।

कौमों के इतिहास में इससे ज़्यादा भयंकर मिसाल मिलना कठिन है और मेरे ख्याल में कोई क़ौम किसी हालत में इससे बड़े पाप की भागी नहीं हो सकती। धर्म-शिक्षा और मनुष्यत्व ने अगर हमें कुछ सिखाया है तो वह यह है कि हम अपने से गिरे हुए लोगों की, अपने से कमज़ोरों की दशा सुधारें न कि इन्हें महेज़ अपने ज़ुल्म और ज़्यादती से जानवरों से बदतर ज़िन्दगियां बसर करने पर लाचार करें, यह नहीं है कि वे इन्सान तरक्की करने के योग्य न हों, पुराने ज़माने में वालमीक ऐसे महापुरुष जिनका नाम हमारे मुल्क के लिए अभिमान की वस्तु है इन्हीं बेबस सताए हुए जातियों में उत्पन्न हुए थे, दूर क्यों जावें आज दिन अब हम खुद अपनी आंखों से देखते हैं कि इन्हीं अछूत जातियों के वह बालक जो ईसाइयों के हाथ पड़कर उनके जाति में मिल जाते हैं और उनकी तालीम पाते हैं, चन्द ही साल के भीतर यूरोप के अंगरेज़ों की तरह हम को ठोकरें लगाने को तैयार हो जाते हैं।

अछूतजातियों की संख्या कुछ कम नहीं है। अगर तमाम हिन्दुस्तान का हिसाब लगाया जावे तो उनकी तादाद एक करोड़ से कम न होगी। अपनी कौम के एक इतने बड़े हिस्से पर यों ज़ुल्म करना हमारे दीन या दुनिया किसी को नहीं सुधार सकता। ज़ुल्म करने और ज़ुल्म सहने की आदत दोनों पक्ष को बरबाद कर देती है। हमारे उन ज़ुल्मों ही का यह नतीजा है कि हम हज़ारों साल से गुलामी में पड़े हैं। अछूतजातियों से घृणा करते करते हम में नफ़रत का माद्दा इतना पैदा होगया कि हम एक दूसरे से नफ़रत करने लगे हैं। अछूतजातियों से छुआछूत का ख्याल मुद्दतों तक रहने का अब यह नतीजा है कि अब एक ब्राह्मण दूसरे ब्राह्मण को कुत्ते से ज्यादा नीच समझता है। मगर अभी तक हम को शायद काफ़ी सज़ा अपने पापों की नहीं मिल चुकी क्योंकि अब भी हमारी आंखें बन्द हैं और हम असलीयत को नहीं देख सकती हैं। अब वह ज़माना आनेवाला है कि जब वही अछूतजातियां दूसरे मज़हब में जाकर हमारे मुक़ाबिले में आवेंगी और उस समय उनको वह हक़ हासिल होगा कि हमारे हज़ारहा साल के ज़ुल्म और ज़ियादतियों का बदला हम से लें और इस बदले में ईश्वर उनकी सहायता करेगा।

यह दिन कुछ बहुत दूर नहीं है। आजकल भी हज़ारों अछूतजाति के लोग ईसाई हो रहे हैं। ईसाई मज़हब अंगरेज़ों का मज़हब है। जिस तरह से मुसलमानों के ज़माने में मुसलमान रियाया को बहुत से हक़ हासिल थे उसी तरह से आजकल भी ईसाईयों पर हमारी सरकार की खास इनायत रहती है। इनका हर बात में पक्षपात किया जाता है और यह ईसाई जाति अच्छी तरह से जानती है कि अगर हिन्दुस्तान की सरकार में हिन्दुस्तानियों को हस्तक्षेप करने

का हक़ हासिल होगया तो फिर वे झूठे हक़ जो आजकल वे भोग करते हैं उनके हाथ से निकल जावेंगे। यह जानते हुये ईसाई लोग हिन्दुस्तानियों की सरकारी तरक्की के खिलाफ़ अपनी जान तक देने पर आमादा रहेंगे। हमारी अछूत जातियों के लोग हम से तंग आ आकर और ईसाईयों की इनसानियत का बर्ताव अपने साथ देख २ कर उनकी संख्या को दिन दूना रात चौगुना करते रहेंगे, इस तरह हम अपनी कमअक़ली से खुद अपने ही हाथ एक ऐसा समूह अपने मुल्क में पैदा कर रही हैं जो मुमकिन है हमेशा के वास्ते हमारी मुल्की और राजनैतिक उम्मीदों का नाश कर दे क्योंकि हमारा मज़हब सिखाता है कि हमारे बुरे काम हमारे दुश्मनों की शक़ल में हमारे सामने आते हैं और हमसे अपना पूरा पूरा बदला लेते हैं।

अभी कुछ नहीं बिगड़ा है, अछूत जातियों के एक बहुत थोड़े हिस्से पर ग़ैर मज़हबों का असर हुआ, अब भी अगर हम अपने इस दुराचार से बाज़ आकर इस बात के लिए तैयार हो जावें कि हम अपने इन गिरे हुये भाइयों को इन्सान समझकर इन्सानियत का बर्ताव करेंगे तो यह असंभव है कि वे हमारे विरुद्ध दूसरों से जा मिलें यद्यपि हमने उनपर ऐसे ज़ुल्म किये हैं कि जबतक इतिहास बाक़ी रहेंगे हम पर से उनका कलंक का टीका नहीं छूटेगा।

क्या तमाशा है कि एक तरफ़ तो हम राजनैतिक अधिकार मांगने में लगी हैं और यह चाहती हैं कि हमारे साथ भी वैसाही बर्ताव किया जावे जैसा कि सरकार अंगरेज़ों के साथ करती है। एक तरफ तो हम दक्षिण-एफ्रिका में अपने देश-भाइयों पर ज़ुल्म होते देखकर बेचैन होते और गुल मचाते हैं लेकिन कभी हमारा ध्यान इस तरफ़ नहीं जाता कि हमारा बर्ताव अपने ही भाइयों के साथ कैसा है? सच तो यह है कि जैसा ज़ुल्म हम अपने भाइयों को गुलामी में रखकर उनके साथ करती हैं वैसा शायद कोई जाति किसी अन्यजाति के साथ न करती होगी। जैसा करोगे वैसा पाओगे, यह संसार का क्रम है। हमको हज़ारहां साल गुज़र चुके हैं और अगर अब भी हम अपने को न सुधारेंगी तो भविष्य में भी हम गुलामी, आपत्ति और मुसीबत में पड़ी रहेंगी इसमें सन्देह नहीं।

धन्य भाग।

[लेखिका—श्रीमती रमादेवी।]

बड़भागिन आज सुहागिन हांथ,
अचानक आय परी पतिया॥
तेहि चूम के भाल चढ़ाय लई,
निज भाग सराय लगाय हिया॥
जिमि जागि परी अनुराग भरी,
निवछावर नैन नवाय किया॥
यह जानि बिरोग गवाय दई,
मोहिं प्राण पिया अपनाय लिया॥
लखि आंकिन प्रेम कथा कर में,
दृग टारि ठगी सी लजाय रही।
बिखरे कच भाल बिहाल महा,
अपनी सुधि आप भुलाय रही॥
खसि अम्बर अंगन ते उरझो,
मन प्रेम उमङ्गन जात बही॥
कर कम्पित कंज कपोलन पै,
धरि के मन को बहलाय रही॥
मनहीं मन में मुसकाय रही,
चित चंचल चाह बढ़ाय महां॥
पट भूषण की सुधि भूलि गई,
कर पत्र कहां चितवान कहां।
मनही मन सोचि सकोच भरी,
पर होत तो मैं उड़ जात वहां॥
कुल कानि की लाज बचाय सबै,
बलती चाले चित्त को चोर जहां।

शिक्षा की व्यावहारिक आवश्यकता ।

[लेखिका—मिसेज़ रामाबाई रानाडे ।]

विचार करने से मालूम होता है कि शिक्षा का आरम्भ ज्ञान से है और शिक्षा देशोन्नति की जड़ है। इसलिए अब देखना चाहिये कि ज्ञान की कितनी आवश्यकता है। शरीरपोषण के लिए रक्त की इतनी आवश्यकता है कि यदि रक्त बनने की क्रिया कम हो जाय तो भोजन और शरीरपोषण के बाहरी सब साधन यथोचित रहने पर भी शरीर तेजस्वी और प्रफुल्लित कभी नहीं देख पड़ता, क्योंकि शरीर का मुख्य जीवन रक्त है और यही रक्त जितना बनना आवश्यक है उतना जब नहीं बन सकेगा तब अन्य बाह्य उपचारों का परिणाम अच्छा न होकर शरीर प्रतिदिन सूखने लगेगा। उसमें शक्ति या पराक्रम शेष न रहेगा अर्थात् वह निरुपयोगी हो जायगा। ठीक यही हाल व्यवहार में उस अज्ञानवर्ग का होता है जिसने शिक्षा नहीं प्राप्त की है और इस बात का हम लोगों को सदा प्रमाण व्यवहार में मिलता है। ज्ञान एक ऐसा दीप है जिसके प्रकाश से हम लोग व्यवहार में और परमार्थ में सब चीज़ों को देख सकते हैं। इस ज्ञान की सहायता से हम लोग भला और बुरा, सच और झूठ, उपयोग और दुरुपयोग, कर्तव्य और अकर्त्तव्य सब जान सकते हैं परन्तु जब यह ज्ञानदीप बुझ जाता है तो अँधेरे में टटोलते हुए और ठोकर खाते हुए जानेवाले मनुष्य के समान अशिक्षित जन की अवस्था हो जाती है और उसको अपनी जीवन यात्रा बड़े क्लेश से किसी तरह समाप्त करनी पड़ती है। क्या ऐसे जीवन का भी कुछ मूल्य हो सकता है? मनुष्य की प्रतिष्ठा तभी हो सकती है जब उसमें कुछ तेज और पराक्रम हो नहीं तो उसका जीवन 'निर्माल्यवत्' के सिवा और क्या कहा जा सकता है? इसपर कुछ लोगों का यह आक्षेप है कि जबसे अंगरेज़ों का राज्य हुआ है तभी से लोग शिक्षा के इतने पक्षपाती हुए हैं और इसके पहले की पीढ़ी में शिक्षा के बिना जीवन व्यतीत करना क्या असम्भव था? उस समय पुरुष वर्ग भी साधारण लिखना पढ़ना और थोड़े से हिसाब के सिवा कुछ नहीं जानते थे तो भी उनको किसी बात में कोई रुकावट नहीं होती थी, तो फिर अब क्यों लोग 'शिक्षा' की पुकार कर रहे हैं? किन्तु विचार करिये कि जब तक दूध का स्वाद नहीं मालूम था तब तक अश्वत्थामा की माता चावल पीसकर पानी में मिलाकर उसे पीने को देती थी और वह पी जाता था परन्तु जब उसको दूध का स्वाद एक बार मिल गया तब सदा की तरह माता के बनाये हुए दूध को उसने नहीं पिया। यही कारण आजकल की शिक्षा-संबन्धी पुकार का है। दीप अथवा सूर्य के प्रकाश में काम करनेवाला जिस प्रकार एक के बाद एक काम जल्दी २ करता जाता है क्या उसी प्रकार अंधेरे में काम करनेवाला भी कर सकेगा? कभी नहीं। पहले सभी लोग कम शिक्षा प्राप्त किये हुए थे इसी कारण उस समय आजकल की तरह शिक्षा और ज्ञान प्राप्त करने की चाट लोगों को नहीं लगी थी। यही हमारे देश की अवनति का सच्चा कारण है। स्वयम् कुछ पराक्रम न करके केवल 'पराक्रमी पूर्वजों की सन्तति' कहलाने में ही वे लोग प्रसन्न थे। यही दुर्दैव है परन्तु अब वह स्थिति नहीं रही है, अब तो शिक्षा और उससे प्राप्त होनेवाले अनेक प्रकार ज्ञान की आवश्यकता सर्वसाधारण को मालूम होने लगी है और इस उद्योग में भिन्न २ देशों, प्रान्तों और शहरों में लोग एक दूसरे से बढ़ चढ़कर कार्य कर दिखाने को सदा तत्पर देख पड़ते हैं। अब केवल धन ही से लोग प्रतिष्ठित नहीं समझे जाते

With the courtesy of
MANORANJAN--Bombay.

"क्या लिखूं ?"

Photographers:–*Guroodas & Co.,*
Princess street, Bombay.

और बड़े २ धनिक भी इस बात को समझने लगे हैं कि स्वच्छंद विहार और उपभोग ही में जीवन व्यतीत करना इस समय मनुष्य का कर्त्तव्य नहीं है किन्तु अब ज्ञान प्राप्त करने की उनकी इच्छा इतनी प्रबल हुई है कि सदैव वही लालसा बनी रहती है।

ऐसी स्थिति में यह बात अवश्य ही विचारणीय है कि देशोन्नति के कार्य में हमारे स्त्रीवर्ग से कितनी और कैसी सहायता मिल सकती है। जब कि देश की अवनति का कारण, जैसा मैंने अभी ऊपर कहा है, अज्ञान और आलस्य है तो यह भी स्पष्ट है कि देशोन्नति ज्ञान और उद्योग से ही हो सकती है। केवल पुरुषवर्ग ही के सुशिक्षित होने से देश को उन्नत अवस्था प्राप्त नहीं हो सकती। सम्पूर्ण जनसंख्या का आधा भाग जो स्त्रीवर्ग है वह जबतक सुशिक्षित न होगा तबतक जैसा चाहिये वैसा कार्य नहीं हो सकेगा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि देशोन्नति का काम आधे से अधिक स्त्रियों का है।

बाल्यावस्था में बुद्धि कोमल और शुद्ध होने के कारण जो आदत पड़ जाती है वह फिर जन्म भर नहीं छूटती। लड़कपन में सुनी हुई कहानियां और याद किये हुए गीत कभी नहीं भूलते यह बात सब को मालूम है। तब इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि लड़कपन में बालकों को अत्यन्त प्रेम से जो उपदेश समझने योग्य सरल भाषा में अत्यन्त विचारपूर्वक किया जायगा उसका परिणाम बालकों के मन पर उत्तम होगा और सदैव स्थिर रहेगा। क्या यह कार्य बिलकुल नाज़ुक और महत्वपूर्ण नहीं है? भला यह काम इस संसार में एक माता के सिवाय दूसरा कौन कर सकता है? लड़के जन्म से लेकर जब तक समझदार नहीं होते हैं तब तक माता के ही सहवास में रहते हैं बड़े होने पर उनको स्त्रियों का सहवास होता है अर्थात् बहुत दिन तक उनको स्त्रियों का साथ करना पड़ता है। दोनों के सङ्ग का भला या बुरा परिणाम दोनों के आचरण पर अवश्यही होता है क्योंकि सङ्ग का यह स्वाभाविक गुण है। कौन समझदार मनुष्य ऐसी इच्छा न रखता होगा कि जिस स्त्री से अपना संबन्ध होनेवाला है अर्थात् अपनी पत्नी और प्राण से भी अधिक प्रिय अपने बालक की माता सुशिक्षिता हो? इससे यह बात सिद्ध होती है कि पुरुषों के समान स्त्रियों को भी शिक्षा और ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। देशोन्नति का आधा काम स्त्रियों पर अवलम्बित है। अपना कर्तव्य पहिचानने में शिक्षा से सहायता मिलती है और कर्तव्य की मर्यादा ज्ञान से मालूम होती है। क्या आपकी कभी ऐसी इच्छा नहीं होती कि जो सद्गुण शिक्षा और ज्ञान से पुरुषों में आजाते हैं उन सद्गुणों को स्त्रियां भी शिक्षा द्वारा प्राप्त करलें? अवश्यही आपकी ऐसीही इच्छा होगी आपको जानलेना चाहिये कि सुधार और देशोन्नति के कार्य में प्रायः सब काम अब स्त्री शिक्षा के प्रसारही पर निर्भर है। सामाजिक, धार्मिक और राष्ट्रीय सुधार में जैसी जान होनी चाहिये वैसी नहीं है और उसमें तेजस्विता भी कम है इसका कारण यही है कि अधिकांश जनसमूह अज्ञान रूपी अन्धकार में बहुत दिनों से अब तक घोर निद्रा में पड़ा हुआ था।

परन्तु अब उद्योग रूपी सुप्रभात होजाने से आशा होने लगी है कि बहुत दिन से घोर निद्रा में पड़े हुए इस जनसमूह में कर्त्तव्य जागृति उत्पन्न होगी। यह बहुत अच्छा लक्षण है। अस्तु दूसरों के गुण दोषों का विवेचन करने के बदले इस बात का थोड़ा सा विचार करना चाहिये कि अपने बच्चों के और देश के लिए हम स्त्रियां किन २ उपायों से उपयोगी हो सकती हैं।

यदि स्त्री भली प्रकार सुशिक्षिता हो तो जो कोई उसके सत्सङ्ग में रहेगा उसके मन पर उस स्त्री के सुशिक्षा का अवश्यही अच्छा परि-

याम होना चाहिये। इसीलिए स्त्रियों को उत्तम शिक्षा प्राप्त करना अत्यावश्यक है, इस उद्देश को सफल करने के उपाय ये हैं,

१–लेख, सभा, व्याख्यान आदि के द्वारा लोकमत में जागृति उत्पन्न करना।

२–स्त्रियों की पाठशालाएं स्थापित करना।

लड़कियों और अल्पवयस्क विधवाओं के लिए बहुत कुछ प्रबन्ध हो रहा है लेकिन अधिक वय की विधवाओं और सदा गृह कार्य में फँसी हुई सन्तानवाली विवाहिता स्त्रियों की शिक्षा का कोई प्रबन्ध अब तक नहीं था ऐसा कहना अत्युक्ति न होगा। पन्द्रह सोलह वर्ष हुए होंगे कि पूना में विवाहिता स्त्रियों को शिक्षादान करने के हेतु से राव बहादुर चिन्तामणि नारायण भट्ट के मकान पर उन्हीं के उद्योग से ‘गृह शिक्षण वर्ग’ स्थापित हुए थे। इनमें दोपहर के समय लिखना पढ़ना सिखाया जाता था। किन्तु ये शिक्षण वर्ग तीन ही चार वर्ष में बन्द हो गये। पूना में प्लेग का प्रादुर्भाव हुआ और पहले ही वर्ष राव बहादुर भट्ट प्लेग के बलि हो गये और उनकी चलाई हुई उपर्युक्त संस्था टूट गई। तब से विवाहिता स्त्रियों के लिए गत वर्ष तक कोई शिक्षादान करने की संस्था नहीं थी। गत वर्ष से यहां के ‘सेवा सदन’ और ‘स्त्रियों के क्लब’ ने विवाहिता स्त्रियों पर उपकार करने के उद्देश्य से बड़ा भारी काम अपने ऊपर लिया है। स्त्री शिक्षा के वर्ग अब खोले गये हैं। इन वर्गों का संपूर्ण वृत्त क्लब की रिपोर्ट में है। किन्तु इतने बड़े शहर में इस प्रकार के शिक्षणवर्ग कम से कम पांच या छः स्थानों में स्थापित होने चाहियें। बड़े खेद के साथ कहना पड़ता है कि अभी तक नागरिक लोगों की इस विषय में बहुत अनास्था और अरुचि है और अभी तक उनके समझ में यह नहीं आया है कि इस बात की कितनी आवश्यकता है।

हमारी समझ में भारत के लिए वह दिन बड़े भाग्य का समझना चाहिये जब कि स्त्री शिक्षा के विषय में लोगों की अनास्था और उदासीनता जाती रहे। यद्यपि एक कुटुम्ब के सब पुरुष लोग सुशिक्षित हों तो भी बच्चों के छोटेपन से पालन करने का काम जिन पर निर्भर है उनकी शिक्षा के विषय में आलस्य करना अथवा उदासीन रहना कभी उचित नहीं है। पुराने समय में स्त्रियां यद्यपि पाठशालाओं में नहीं पढ़ती थीं तो भी उनको नैतिक शिक्षा प्राप्त करने को सदैव अच्छा अवसर मिलता था। वृद्धा स्त्रियां तथा पुरुषों के सहवास में रहने से और उनकी बातों के सुनने से उनका चरित्र अच्छा बना रहता था और बच्चों को पालन पोषण करने की रीति भी वे वृद्धा स्त्रियों से सीखती थीं। छोटे बड़े सभी अपने सब कार्य में नियमित और व्यवस्थित रीति से लगे रहते थे। इसका परिणाम यह होता था कि सब लोग बलवान होते थे। उस काल में आजकल की तरह थोड़ी ही उम्र में मातृपद नहीं प्राप्त होता था। कम से कम तब १८ या २० वर्ष के वय (उम्र) में यह पद प्राप्त होता था।

इस प्रकार से जीवन व्यतीत करनेवाली माताएं और वृद्धा स्त्रियां अवकाश होने पर बच्चों को पास बैठाकर कहानियां, आख्यायिका, पुरानों में से अच्छी २ कथाएं आदि सुनाती थीं और ऐसे २ साधनों द्वारा बच्चों को सुचरित्र बना रखने के लिए ऐसा उपदेश करती थीं कि तुम्हारे पूर्वज जिस प्रकार शूर, वीर, पराक्रमी, सत्यनिष्ठ, धार्मिक और उदार होते थे उसी प्रकार गुणी होने के लिए तुमको सर्वदा प्रयत्न करते रहना चाहिये और यही तुम्हारा जन्म भर कर्तव्य रहेगा। बालकों के कोमल हृदयों पर इन बातों का बहुत अच्छा परिणाम होता था और बचपन में ही इन उपदेशों का स्वाद लग जाने से ऐसी बातें उन्हें अच्छी लगती थीं और वे सुचरित्र निकलते थे।

इस बात की सत्यता के उदाहरण स्वरूप वृद्ध स्त्रियां विद्यमान हैं जिनका वय सत्तर अस्सी वर्ष से अधिक हो चुका है । ये स्त्रियां लिखी पढ़ी न होने पर भी इतनी बहुश्रुत, निरलस और उत्साही होती हैं कि उनकी बराबरी, ज्ञान, पराक्रम अथवा उत्साह में चालीस वर्ष वा इससे कम वय की हम लिखी पढ़ी स्त्रियां नहीं कर सकतीं ।

अन्य देशों में स्त्रियों के ही द्वारा स्त्रीशिक्षा का काम भली प्रकार और निरपेक्ष बुद्धि से चलाया जाता है । जिन स्त्रियों को क्लास में जाकर सीखने का अवकाश नहीं मिलता उनको उनके देश में घरों पर जाकर शिक्षा दी जाती है । परन्तु इस स्त्रीशिक्षा के सम्बन्ध में इतनी आस्था अभी तक नहीं है कि आज ही इस तरह के काम होने लगें । अभी तक शिक्षा देनेवाली योग्य स्त्रियों की संख्या इतनी नहीं है जितनी अभीष्ट है । स्त्रियों और पुरुषों का ध्यान इस प्रश्न की ओर अब आकर्षित होने लगा है । बहुत सी सुशिक्षिता स्त्रियां इस काम को पुरुषों से बहुत कम सहायता लेकर भी कर सकती हैं । जब तक स्त्रियां अपने इस काम को व्यवस्थित रीति से न कर सकेंगी तब तक वे अन्य स्त्रियों को शिक्षा देने योग्य नहीं हो सकतीं । पूना में इस काम का आरम्भ बहुत अल्प परिमाण में हुआ है । समझदार स्त्रियों के लिए पहले २ इतिहास और इन दो विषयों पर व्याख्यान दिया जाता था । उसी प्रकार अब जो कोई किसी विषय में पारंगत विद्वान् होता है उसके द्वारा उसी विषय में व्याख्यान दिलाया जाता है । ऐसे व्याख्यान हर शनिवार को हुआ करते हैं । वैसे ही सीने का काम तथा नित्य व्यवहारोपयोगी हर एक काम सिखाने की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है । बम्बई प्रान्त, नागपूर, अमरावती, यवतमाल, सतारा आदि स्थानों में इस प्रकार के कुछ प्रयत्न किये गये थे परन्तु जान पड़ता है कि इन कार्यों में जैसी होनी चाहिये वैसी सफलता अब तक प्राप्त नहीं हुई है । कहते हैं कि 'नगर' की म्युनिसिपेलिटी ने वयस्क स्त्रियों के लिए दो तीन गृह शिक्षावर्ग (क्लास) खोले हैं जिनमें पाठशाला की शिक्षिकाएं पढ़ाया करती हैं । यदि ऐसी ही व्यवस्था यहां भी होगी तो प्रस्तुत जो शिक्षिकाओं का अभाव है उसके दूर होने में देर नहीं लगेगी ।

क्या लिखूं ।

[लेखिका—श्रीमती रमादेवी ।]

चाह चौगुनो बढ़ाय के पाई बियोगता कि,
सुधि देन को बिदाई आज लेखनी उठाई है ॥१॥
छाई पियराई मुख लालिमा गवाई,
गयो ज्ञानहूं हेराई मानो बौर बाय छाई है ॥ २ ॥
त्याग दई भूषण सब दूषण से केश भेष,
योगिनी को धारि कै बियोगिन बनिआई है ॥३॥
लालिमा लतान में पतान की लखान लाल,
लोचन बिलोकि भये पीर दोहराई है ॥ ४ ॥
राई है फुलाई चन्दं बार बार आई रन,
चांदनी भुलाय दई चित्त चञ्चलाई को ॥ ५ ॥
खिलैंगी कली मलिन्द भेटहिंगे फेर फेर,
मेटहिं न नैन नव पतान की ललाई को ॥ ६ ॥
लूह की लुआरें सी उड़ैंगी धूल धुंधर धरा,
मेटहिं धौं कबै अङ्ग मारुत मन भाई को ॥ ७ ॥
मन को भुलावें धौं कबें नद नारे लहर,
दुपहर भुलावें तृषित मृग की चतुराई को ॥ ८ ॥
श्री महाराज ऋतुराज की बिदाई देख,
ग्रीषम चढ़ि आयो जौन अतिही दुःखदाई है ॥९॥
लोचन जल छायगो हेराय गो उछाह सबै,
सोचि महराज ऋतुराज की बिदाई है ॥ १० ॥
कम्पित कर कोटि कै चलाये चलै लेखनि न,
बावली बलाय जनु बज्र बनियाई है ॥ ११ ॥
प्रार्थना हमारी यहि भेजियेगा आय फेर,
काह लिखूं आस यही मन में लगाई है ॥ १२ ॥

साहित्य-समालोचन।

मराठी।

मनोरंजन :—महाराष्ट्र भाषा के मासिक पत्रों में एक उच्च श्रेणी का पत्र है। मासिकपत्रों में जिन बातों की अधिक आवश्यकता हुआ करती है इसमें उन बातों पर विशेष ध्यान दिया जाता है सम्पादक काशीनाथ, रघुनाथ मित्र। मिलने का पता—मनोरंजन कार्यालय मुम्बई गिरगांव चर्नी रोड नं० २ ए, वार्षिक मूल्य ४)

यद्यपि इसके नाम से यही मालूम होता है कि इसमें बालकों के मनोरंजन करनेवाले केवल मनोरञ्जक विषयों का ही समावेश होगा। किन्तु इसमें आज पर्यन्त जो लेख छप चुके हैं उनके देखने से स्पष्टतया ज्ञात होता है कि मनोरंजन के सम्पादकों का उद्देश्य ऐसा संकुचित नहीं है। यद्यपि इसके लेखों में इस बात पर अधिक ज़ोर दिया गया है कि वे स्त्रियों को रुचिकर हों तथापि बहुधा देखने में आया है कि वे अति सरल भाषा में होने के कारण सुबोध तथा आबालवृद्ध मनुष्यों के लिए भी अत्यन्त लाभदायक और उपयुक्त होते हैं।

इसमें कृषि, शिल्प और वाणिज्य विषयक तथा महाराष्ट्र भाषा के प्रेमियों के मनोरंजन करनेवाले लेख छपते हैं तथा समय २ पर नीति, धर्म, ज्ञान और वैराग्य आदि विषयों पर भी लेख प्रकाशित होते रहते हैं। कागज और छपाई का काम भी बड़ी सफ़ाई के साथ और बहुत अच्छा होता है। चित्र भी बहुत बढ़िया, दर्शनीय और मनोरंजक होते हैं। साथही इसमें सब से बड़ा गुण यह है कि अशुद्धि की मात्रा मात्रशब्द की मर्यादा के बाहर नहीं जाने पाती। बल्कि यों कहना चाहिये कि अशुद्धि रहती ही नहीं।

परमात्मा इस पत्र को चिरजीवी करे कि जिसमें पाश्चात्य देश में जो जो उच्च श्रेणी के पत्र हैं उनकी बराबरी करने की इसकी जो आन्तरिक अभिलाषा है पूरी हो। "यह मासिक-पत्र मराठी भाषा के जाननेवालों के लिए परमोपयोगी है" यह कहना कदापि अत्युक्ति नहीं हो सकता।

मराठी भाषा के लेखकों, कवियों, चित्रकारों और फ़ोटोग्राफरों को उचित है कि वे इसको अपने प्रभावशाली लेख उत्कृष्ट कविता सुन्दर चित्र और मनोहर फोटो आदि के द्वारा (चाहे चिरकाल में क्यों न हो) इसको सर्वाङ्ग सुन्दर बनावें। यह उनलोगों का परम पवित्र कर्तव्य है।

मराठामित्र—सम्पादक श्रीयुत गोपाल दाया जी दलवी बम्बई।

यह सचित्र और समयोपयोगी वार्ताओं से पूर्ण एक प्रकार का अनोखा मासिक पत्र है। इसके सम्पादक का उद्देश्य उच्च और प्रशंसनीय है। इसके चित्र और लेख तथा कागज़, छपाई आदि बहुत उत्तम है। महाराष्ट्र भाषा भाषी इस पत्र से बहुत लाभ उठा सकते हैं।

संस्कृत।

संस्कृत रत्नाकर—इसके सम्पादक व्याकरणाचार्य न्यायशास्त्री श्री गिरिधर शर्मा जी चतुर्वेदी और साहित्याचार्य-व्याकरण शास्त्री भट्ट श्री मथुरानाथ शर्मा जी हैं। यह मासिकपत्र जयपुर से प्रकाशित होता है वार्षिक मूल्य १॥)

वर्तमान समय के अनुसार जहां संस्कृत विद्या निरी मृतक अवस्था में है वहां संस्कृत साहित्य सेवियों के लिए यह एक सर्वोत्तम पत्र है। इसमें संस्कृत भाषा में प्रत्येक विषयों पर सामयिक लेख प्रकाशित होते हैं। सम्पादन शैली बहुत ही अच्छी है। संस्कृत भाषा के विद्वानों को अवश्य इससे लाभ उठाना चाहिये।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग, में बद्रीप्रसाद पाण्डेय के प्रबन्ध से छपकर प्रकाशित हुई।

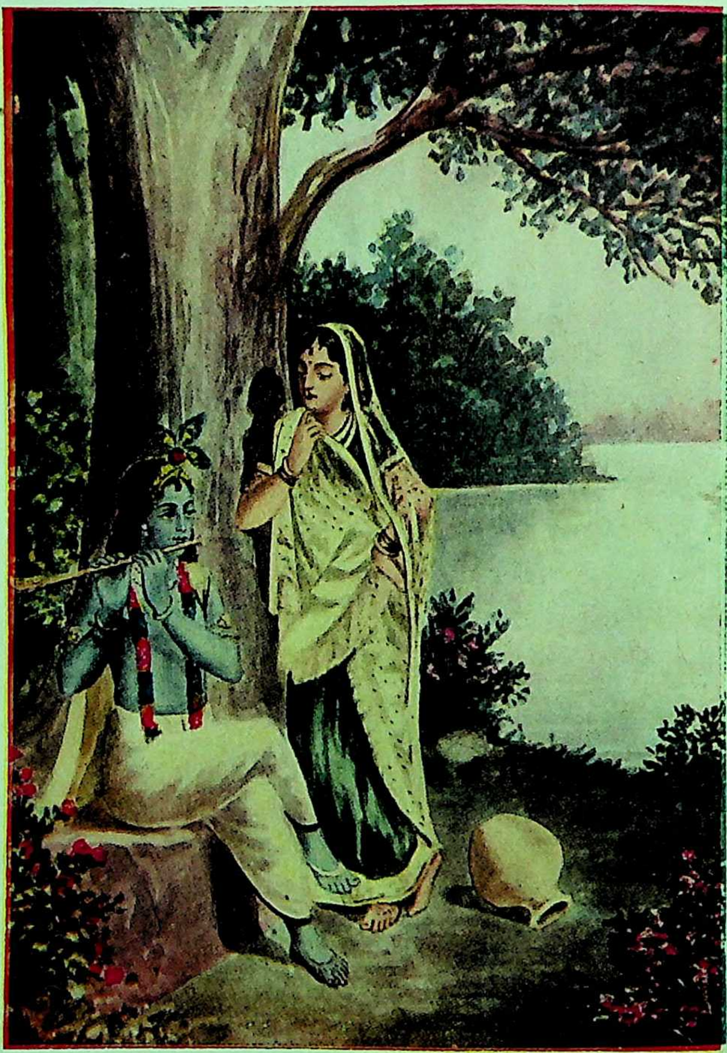

राधाकृष्ण ।

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

मर्यादा।

सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग ७] मार्च सन् १९१४—चैत्र। [संख्या ५

केम्ब्रिज विश्वविद्यालय।

[लेखक—श्रीयुत लक्ष्मीशंकर मिश्र।]

इतवार का दिन है। ख़ाली बैठा हुआ जगद्विख्यात केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी के नियम देख रहा था कि इतने में ध्यान में आया कि यदि देशवालों को भी यहां का कुछ हाल बतावें तो कदाचित् भविष्य में यहां आनेवाले लोगों को कुछ लाभ हो। आशा है यह छोटासा लेख देशवासियों को कुछ लाभदायक होगा।

केम्ब्रिज का विश्वविद्यालय लन्दन से लगभग ५५ मील की दूरी पर है। यह केम नदी पर बसा है। इस छोटे से शहर में माना एक दूसरी ही दुनिया बसी है। यहां पर बहुतसी दूकान, होटल, थियेटर, बाइसकोप इत्यादि भी हैं। इस विश्वविद्यालय के यहां स्थापित होने के पहिले, वरन् कहना चाहिये कि रोमन लोगों के समय में, यहां पर कई गांव थे। इनमें से मुख्य एक का नाम गन्टर था। यह नाम बिगड़ते बिगड़ते केवल "गन्ट" रह गया। फिर और उसकी बरबादी होनेपर वह गन्ट से कन्ट बन गया। अतः उसीसे कैन्टब तथा केम्ब्रिज नाम का प्रादुर्भाव हुआ। कुछ सदियों के पश्चात् सभ्यता के ज़ोर भरने पर यहां पर पहिला "सैंट पीटर" या पैटर्सन कालेज खोला गया। तत्पश्चात् यहां पर और भी कालेज खुले। इनकी संख्या अब १८ के लगभग है। प्रत्येक कालेज अपनी सब वस्तुओं का स्वतन्त्र मालिक है। वे अपने मामलों का स्वयं इन्तिज़ाम करते हैं। विश्वविद्यालय क़रीब १२वीं सदी में खुला था, अतएव कालेजों के स्थापित होने से पहिले यह अपने ही बल पर चलता था, परन्तु कालेजों के खुलने पर बहुत दिनों के बाद कालेज और यूनिवर्सिटी कुछ

ऐसे मिल गये हैं कि एक दूसरे से पृथक समझने पर उनके स्वरूप का ज्ञान नहीं हो सकता। दोनों एक दूसरे के नियम इत्यादिक मानने में संकोच नहीं करते, अतएव इनमें से किसी भी कालेज के समस्त विद्यार्थी यूनिवर्सिटी के मेम्बर हैं। कालेजों का पूरा भार उसके हेड् (प्रधान) पर रहता है। उसके नीचे बहुत से और कर्मचारी होते हैं, जिनके सिपुर्द ख़ास ख़ास काम हुआ करते हैं। इतना बड़ा भार मुख्य अध्यापक के सिर पर रखकर वे सन्तुष्ट न हो फ़ेलो लोगों की एक कमेटी रखते हैं, जो कालेज का सब काम चतुरता से चलाती हैं। मास्टर के बाद अध्यापक अधिक से अधिक ४ होते हैं, जिनका काम विद्यार्थियों को पिता के स्थान पर सलाह देना तथा उनकी हरकता, अध्ययन, खर्च इत्यादि को देखना है। हर एक अध्यापक के निरीक्षण में थोड़े से लड़के दे दिये जाते हैं, जिनको हर एक प्रकार से देखते रहना उनका मुख्य कर्तव्य है। इसके बाद हर एक विद्यालय में एक या अधिक डीन (Dean) होते हैं, जिनका कार्य कालेज के गिर्जाघर तथा अदब लिहाज़ को देखना है। फिर हर एक कालेज में थोड़े व्याख्यानदाता होते हैं। इनपर कालेज की शिक्षा का पूरा भार होता है! कालेज के माल-असबाब की निगहबानी के लिए एक वा दो (Bursors) होते हैं। हर एक कालेज में एक रसोईखाना होता है, जिसका प्रधान एक मुख्य सेवक होता है। तत्पश्चात् एक कालेज पिता Praelector डिगरी के वास्ते लड़कों को सेनेट में पेश करता है। कालेज के पुस्तकालय का भार व्याख्यानदाता पर रहता है।

विश्वविद्यालय में हमारे यहां की तरह चैंसलर, वाइस-चैंसलर तथा सेनेट हुआ करते हैं; पूरे विश्वविद्यालय को चलाने का भार ख़ास करके वाइस-चैंसलर तथा सेनेट पर होता है। विशेष कर्मचारियों में दो प्राक्टर, रेजिस्ट्रार और और पुस्तकाध्यक्ष हुआ करते हैं।

प्राक्टर (Proctors) का काम दिन रात शहरभर में गश्त लगाने का है। यह हर लड़के की चालचलन तथा विश्वविद्यालय के नियमों का पालन देखने का काम करते हैं। यह हर एक गली कूंचे में घूमकर लड़कों की निगहबानी करते हैं और देखते हैं कि सब लड़के अच्छी चालचलन और भलमंसी से रहते हैं या नहीं।

बाज़ारू लड़कियों के साथ गलियों में घूमना और उनसे मिलना जुलना, शराब अधिक पीना, मकानों में शोर गुल मचाना और विश्वविद्यालय के नियमों का उल्लङ्घन करना, इत्यादि मना है। अतएव प्राक्टरों का कर्तव्य यही है कि वे देखें कि लड़के नियम से रहते हैं? इनके साथ दो ज़बर्दस्त मनुष्य रहते हैं, जो लड़के के प्राक्टर को देखकर भागने या दङ्गा करने के समय काम देते हैं। यदि आप भागिये तो आपका पीछा करते हैं। सज़ा नियमों के विरुद्ध कार्रवाई करने के अपराधकी अधिकता पर निर्भर है। मामूली तौर से ये ५) से १०॥) रुपये तक जुर्माना कर दिया करते हैं। विशेष अवसरों पर इनको सेनेट के सामने आपको पेश करके डिगरी से वञ्चित करने तथा युनीवर्सिटी से निकालने तक का अधिकार है। करीब ४ छोटे प्राक्टर भी इनके नीचे हैं। रेजिस्ट्रार और पुस्तकाध्यक्ष का काम यूनिवर्सिटी की मालियत को देखना और पुस्तकालय का इन्तिज़ाम करना है।

हर एक विद्यार्थी को एक टोपी और अपने कालेज का गाउन पहिनना होता है। पृथक् २ कालेजों के पृथक् २ गाउन हैं। ये सदैव कालेज की विशेष पद्धति के अनुसार होते हैं, परन्तु पहिचान के वास्ते उनकी बनावट में थोड़ा २ भेद होता है। ये बी० ए० के गाउनों से कुछ

छोटे होते हैं। विश्वविद्यालय के नियमों के अनुसार हर एक लड़के को अपनी टोपी और गाउन किसी विश्वविद्यालय के पाठ में जाने पर, किसी कालेज या विश्वविद्यालय के कर्मचारियों से सरकारी मुलाक़ात करने पर, कालेज के गिरजाघर को जाने पर, एतवार के रोज़ हर समय शाम होने के बाद समस्त रात भर जबतक घर के बाहर रहें पहिनना चाहिये, इससे विश्वविद्यालय के लड़कों को शहर के और लोगों से पहिचानने में प्राकूर को आसानी होती है। टोपी और गाउन पहिनने पर सिगरेट पीना तथा उन्हें पहिन कर बाइसिकिल पर सवार होना मना है।

किसी कालेज में दाखिल होने के वास्ते लड़के को करीब डेढ़ या दो साल पहिले से अरज़ी देनी चाहिये। कभी २ यहां लोग ५ या ६ बरस पहिले से प्रार्थनापत्र दे रखते हैं। प्रत्येक कालेज अपनी एक प्रवेशिका परीक्षा रखता है, जिसके नतीजे से वह थोड़े से अच्छे लड़के चुन लेते हैं। यदि वह इस चुने मेम्बर में आगया तो फ़ौरन कालेज में भरती करलिया जाता है और किसी अध्यापक के सिपुर्द कर दिया जाता है। उस लड़के को उसी वक्त से कालेज के नियमों को पालन करना पड़ता है। इस इम्तिहान के पास करने से और कालेज में भरती होने से लड़का विश्वविद्यालय का पूरा पूरा मेम्बर नहीं होता किन्तु उसे विश्वविद्यालय का पूरा पूरा मेम्बर होने के लिए केम्ब्रिज की प्रथमा परीक्षा पास करनी होती है। बग़ैर इसके पास किये किसी को डिगरी नहीं मिलती है। हिन्दुस्तानियों को इसमें केवल लैटिन में कठिनता पड़ती है, परन्तु लैटिन के बजाय वे अगर चाहें तो (सिर्फ़) दिसम्बर के इम्तिहान में संस्कृत या फ़ार्सी में भी बैठ सकते हैं। यहां आने के पहिले लड़कों के लिए नीचे लिखी हुई बातें आवश्यक हैं:—

१—डेढ़ या दो वर्ष प्रथम किसी एक कालेज में अर्ज़ी दे देनी।

२—लैटिन अथवा संस्कृत या फ़ारसी जानना।

३—घर से बी० ए० (B. Sc. नहीं) पास कर लेना या एफ़० ए० संस्कृत फ़ारसी आदि लेकर औवल दर्जे में पास करना।

४—कम से कम १८ वर्ष की उमर का होना।

५—अपने धर्म की कुछ मुख्य बातों को जान लेना।

६—अपने दृढ़ चालचलन की पहिले से परीक्षा कर लेनी।

७—अङ्गरेज़ी में अच्छी तरह से बात कर सकना।

८—अङ्गरेज़ी खाने का पहिले से कुछ अभ्यास करना।

९—अङ्गरेज़ी बर्ताव को थोड़ा बहुत जानना।

यहां पर ४ या ५ बातें कदाचित् हमारे पाठकों के समझ में अच्छी तरह से न आई होंगी अतएव उन आवश्यकताओं पर कुछ विचार करना हमारा कर्तव्य है। मैं इस लेख के कलेवर को न बढ़ाने के वास्ते उनकी आवश्यकताओं को संक्षेपतया ही दिखाना काफ़ी समझता हूं।

५—इसके पढ़ने पर हमारे पूज्य चतुर पाठक कह सकते हैं कि लड़कों को धर्म के बताने की क्या आवश्यकता है? वह समय केवल बरबाद हो जावेगा क्योंकि लड़का विलायत धर्म्मी पण्डित होने को नहीं वरन् संसारी होने को आता है। उसे धर्म के बखेड़ों में पड़ने से क्या लाभ? इसके उत्तर में केवल इतना ही कहना आवश्यक है कि लड़कों को एक भव्य ईसाई देश में बिना अपना धर्म बताये

हुये और उसको पक्का किये हुए भेजने से उसको एक बड़ी भारी नदी के भँवर में बिना तैरना सिखाये हुए छोड़ देना है। उस नदी में उसे डूब जाने का अवसर बहुत है। ऐसे लड़कों के अक्सर नौजवान और निज धर्म से अशिक्षित दिमाग़ नये धर्म की बातों को सुन उसके अवगुणों को छोड़ गुणों ही को सुन अपने धर्म को (जिसको वह कुछ जानते ही नहीं) छोड़ कर पराये धर्म में जा अपने पिता माताओं की मूर्खता के कारण चारों ओर धिक्कार ही धिक्कार के भागी होते हैं। (इस विषय पर फिर विशेष लिखा जावेगा)।

६—लन्दन में अङ्गरेज़ी रण्डियों की धूम है। शाम हुई कि चारों ओर परकटे गीदड़ की तरह वे मँड़राने लगती हैं, फिर ऐसी अवस्था में हमारे अह्ढ़ भाई क्या करेंगे? वह पाठकों ही को समझना चाहिये। हमें इसे लिखने की आवश्यकता नहीं, बस इतना कहना काफ़ी होगा कि कुछ लोग अपना चालचलन नष्ट कर घृणित बीमारियों के रोगी हो अपने जीवन को बरबाद और अपने घर का नाम भ्रष्ट करते हैं–अस्तु।

७—मैंने बहुत से भाइयों को देखा है कि जहां किसी अङ्गरेज़ से बोलना हुआ कि देवता कूच कर गये। डेढ़ घंटा हकलाने पर मुंह से कहीं एक बात निकली तो वह भी मूर्खता की, अतः वह अच्छे अङ्गरेज़ी समाज के लाभों से बंचित रहते हैं और चारों ओर हिन्दुस्तानियों को अंगरेज़ों की दृष्टि में घृणित कराते हैं।

८—अगर अङ्गरेज़ी खाने का अभ्यास न हो तो जहाज़ पर तथा यहां कुछ दिनों तक तो लंघन करना पड़ता है। पहले कुछ पसन्द ही नहीं आता और हर एक चीज़ घृणायुक्त और सड़ी जान पड़ती है।

९—इसके न जानने से अङ्गरेज़ों के बीच में हमारे भाई नीची निगाह से देखे जाते हैं और हमेशा अपने को हँसाते हैं। यहां पर हर साल में क़रीब ६ महीने की पढ़ाई और ६ महीने की छुट्टी होती है। एक साल में तीन पढ़ाइयां होती हैं। एक (term) पढ़ाई क़रीब २ महीने की होती है। इसके बाद क़रीब महीने भर की छुट्टी होती है। इस छुट्टी में लोगों को केम्ब्रिज के बाहर सैर के वास्ते जाना होता है। यहां की आबहवा अच्छी नहीं समझी जाती, अतएव अध्यापक लड़कों का छुट्टियों में सैर करने को जाना पसन्द करते हैं। इन छुट्टियों में पढ़ाई के महीनों का बचा खुचा द्रव्य सब निकल जाता है। गर्मियों में यहां ४ महीने की छुट्टी होती है जिसमें कि अक्सर लोग रुपया पास होने पर योरोपीय देशों का गश्त लगाते हैं। बहुत से (करीब २ सब ही) अध्यापक, गुरू भी सैर को जाया करते हैं। इन दिनों यहां की तड़क भड़क सब गायब हो जाती है। सड़कों पर किसी लड़के का चेहरा नज़र नहीं आता और कालेज सुनसान सा दिखाई देता है।

कालेजों में लड़कों की भरती अक्टूबर में की जाती है।

खेलकूद के वास्ते यहां पर बहुत से क्लब हैं और हर एक लड़का किसी न किसी खेल को पसन्द कर लेता है। हां, कुछ ऐसे भी हैं जो दिन रात अपने कमरों ही में पड़े सड़ा करते हैं, परन्तु ऐसे लोग कदाचित् बहुत ही कम हैं। ऐसे किताबों के कीड़े शायद कभी ही अपनी परीक्षाओं में सफलतापूर्वक उत्तीर्ण होते हैं। दिन रात घोटनेवाले का दिमाग़ हमेशा गन्दा और थकित रहता है, अतएव वह उतना काम ऐसी घोटन्त पर भी नहीं कर सकता, जितना कि एक साधारणतया खेलने कूदनेवाला मनुष्य। हां अधिकता हर एक चीज़ की हानिकारक होती है। ऐसे महापुरुषों को लोग घृणा की दृष्टि से देखते हैं। और

"Swot" कह कर पुकारते हैं। यहां पर बहुत सी सोसाइटी इत्यादिक भी हैं। दूकानदारों का हिसाब किताब यहां सब term वार होता है महीनों के हिसाब से नहीं। यहां पर एक मामूली डिगरी इम्तिहान और एक आनर्स इम्तिहान या ट्रिपास होता है। अक्सर लोग ट्रिपास ही पास करते हैं। हर एक ट्रिपास के दो भाग होते हैं और प्रत्येक के पृथक् २ नियम होते हैं। इनके जानने के वास्ते (Students hand book to Cambridge" देखना चाहिये। मामूली तौर से इनमें तीन साल लगते हैं। डिगरी का इम्तिहान देनेवाला फेल होने पर फिर इम्तिहान में जा सकता है, परन्तु ट्रिपास का इम्तिहान देनेवाला फिर ट्रिपास ही के वास्ते फेल होने पर नहीं बैठ सकता, परन्तु यदि वह चाहे तो साधारण परीक्षा में बैठ सकता है। एम० ए० की डिगरी यहां पर बिना परीक्षा के मिलती है।

लड़कों को रहने के वास्ते कालेज में कमरे हैं। यह छोटे बड़े सभी तरह के होते हैं। हर एक लड़के को दो कमरे दिये जाते हैं (१) बैठने और पढ़ने तथा (२) दूसरा सोने को। कालेज के कमरे लड़कों को बिलकुल खाली दिये जाते हैं, यहां तक कि उनकी दीवारों पर कागज़ भी नहीं होता । यहां पर दीवारों को रँगने वगैरह के बजाय सफाई के वास्ते उन पर रंग बिरंगे कागज़ तर्कीब से चिपकाये जाते हैं। यह तरीक़ा 'कम ख़र्च और बालानशीन अवश्य है। लड़कों को स्वयं सब चीज़ें मोल लेनी होती हैं, यहां तक कि फ़र्श पर बिछानेवाला कालीन, मेज़, कुर्सी, पलँग, बिछौना, आलमारी सब ही लेनी पड़ती हैं। कभी २ कमरों में कागज़ लगवाना पड़ता है। छोटे २ कमरों में अच्छा कागज़ लगवाने में दाम करीब १००) के पड़ता है। यह सब दुर्भाग्य से नया लेना पड़ता है। इसमें करीब ८००) के लग जाते हैं, परन्तु कभी २ उस कमरे के जानेवाले अपना असबाब, नये आनेवाले लड़के के हाथ करीब २ आधे दाम पर बेंच देते हैं। कालेज के कमरों में हर दो कमरों के वास्ते १ बुड्ढी (Bed-maker) होती है जो सब चीज़ें इन्तिज़ाम से रखती है और मामूली नौकरों का काम करती है। बिजली की रोशनी वग़ैरह के दाम लड़कों ही को देने पड़ते हैं। कालेज में काफ़ी कमरे न होने के कारण यहां पर थोड़े ही लड़कों को जगह मिल सकती है। यहां पर कुछ मकान ऐसे हैं, जिन्हें कि यूनीवर्सिटी ने लड़के रखने का पत्र (Lodging licence) दे रक्खा है। यह रहन घर कहलाते हैं। ऐसे मकान यहां पर बहुत हैं। छोटे बड़े हर एक तरह के कमरे मिल सकते हैं। दाम वाजिब हैं। यहां पर मेज़ कुर्सी तो यह सब देते हैं, परन्तु बिस्तर, चद्दर, कम्मल, तौलिया, छूरी, कांटा, कोयला, रोशनी वगैरह का इन्तिज़ाम सब लड़कों ही को करना पड़ता है। इन भठियारिनों (Lodging House-keepers) को विश्वविद्यालय के नियमों का पालन करना होता है। यह भठियारिनें आपको हमेशा देखे रहती हैं और यदि कुछ गड़बड़ हुआ तो कालेज को रिपोर्ट करती हैं। मकानों या कालेजों में कभी किसी औरत को कोई बिना अपने शिक्षक और प्राक्टर की इजाज़त के नहीं ला सकता। अगर आप किसी को ख़ास तौर से जानते हों और वह अच्छे और माननीय खान्दान की हो, तो आप शिक्षक और प्राक्टर से इजाज़त ले उसके साथ घूम सकते हैं। शिक्षक को औरत का नाम बताना होता है और वह आपको एक पास दे देता है। यह पास अगर ज़रूरत पड़े तो दिखाना पड़ता है। अगर (उस औरत को आप अपने घर में खाने के वास्ते निमंत्रण देना चाहें और उसे घर पर बुलाना चाहें तो भठियारिन को यह पास दिखाना होता है।

मामूली तौर से कालेजों में ३-४ फाटक हुआ करते हैं। सब फाटक ६ बजे सुबह खोल दिये जाते हैं। हर एक फाटक पर ४-५ दरबान होते हैं और मुख्य फाटक पर एक दरबानघर (Porters lodge) होता है। इन पोर्टर्स का काम लड़कों के पास उनकी चिट्ठियां पहुंचाना, लड़कों के दोस्तों वगैरह को उनके कमरे बताना, लड़कों के असबाबों को उनके कमरे तक पहुंचाना इत्यादिक हैं। हर एक लड़के का पता इनके पास लिखा रहता है। कालेज के बाहर के घरों (Lodging House) में भी रहनेवालों का वह यही काम करते हैं। वह हर एक कालेज में २५-३० के करीब होते हैं। इनकी खासियत यह होती है कि यह अपने कालेज के हर एक लड़के को पहिचानते और उसका नाम याद रखते हैं। कालेज के सब फाटक ६ बजे सुबह से ६ बजे शाम तक खुले रहते हैं। शाम के बाद सिवाय मुख्य फाटक के और सब बन्द कर दिये जाते हैं।

हर एक लड़के को अपने कालेज में १० बजे रात को आजाना चाहिये। इसके बाद आनेवालों को कुछ जुर्माना देना पड़ता है। यह जुर्माना प्रत्येक कालेज के नियमों के मुताबिक जुदा २ है। यह =) आने से ।=) तक होता है। कोई कोई कालेज में १० से ११ तक आनेवाले को =) और उसके बाद १२ बजे तक आनेवाले को ।=) देना पड़ता है। कालेज का बड़ा फाटक भी १० बजे रात को बन्द कर दिया जाता है। १० बजे के बाद आनेवाले के फाटक की छोटी खिड़की खटखटाने पर दरबान उसे खोल देते हैं और लड़के का नाम और आने का समय लिख लेते हैं। १० बजे के बाद कालेज का कोई लड़का अपने यहां से फाटक के बाहिर नहीं जा सकता। यही सब क़ायदे घरों (Lodging House) में भी जारी हैं। १२ बजे रात के बाद कालेज या मकान में लौट कर आना बड़ा भारी ऐब है और मालूम नहीं रहता कि उसकी सज़ा क्या होजाय। उसकी सज़ा शिक्षक के अख़्तियार में है। वह चाहे जो करें। दरबान (Porters) १० बजे के बाद आनेवालों के नाम शिक्षक के पास दूसरे दिन भेजते हैं। अगर कोई लड़का एक पढ़ाई (term) में बराबर ७-८ रोज़ देर करके आवे तो उससे वे लोग सबब (Explanation) पूंछते हैं और दरियाफ़्त करते हैं कि वह पढ़ाई में उस बार (term) कैसा रहा। (Lodging House keepers) भठियारिनें भी ऐसी रपट (Report) रोज़ भेजती हैं। अगर कोई लड़का १० बजे के बाद अपने कालेज से अपने (Lodging House) घर में जाना चाहे तो उसका नाम और जाने का समय दरबान लिख लेते हैं और यदि भठियारिन ने बेईमानी से ग़लत समय की रिपोर्ट दी तो उससे (Lodging Licence) आज्ञापत्र छीन लिया जाता है। यदि कोई साहेब बहुत चतुर हुए और दिन ही से उड़ गये और रात भर किसी मकान में रह दूसरे रोज़ तशरीफ़ लाये, तो उनके वास्ते नौकरानी बुढ़िया काफ़ी है। वह सुबह आप जगाने आने पर देखगी कि आप ग़ायब हैं और आपका बिस्तर ज्यों का त्यों पड़ा है। बस वह फ़ौरन शिक्षक से रपट करेगी।

यहां के कालेजों में हमारे यहां की ऐसी हाज़िरी नहीं होती। कालेज में एक बड़ा रसोईघर होता है जहां से आप चाहे जो खाना अपने कमरे में या घर में मँगा सकते हैं। परन्तु कम से कम हफ़्ते में ५ रोज़ शाम को खाना (Dinner) (College Hall) कालेज के कमरे में ही खाना होता है। यहां दो मार्कर (Marker) होते हैं, जिनके पास एक बड़े काग़ज़ पर लड़कों के नाम लिखे रहते हैं। ये हर एक लड़के को पहिचानते हैं और उसे हाल में आने पर उसे हाज़िर लिख लेते हैं।

कालेज में डिनर को हाल कहते हैं। बड़े कालेजों में दो हाल होते हैं। एक बार नीचे दर्जों के लड़के (Juniors) आते हैं और दूसरी वार (Seniors & college fellow) ऊंचे दर्जों के लड़के, फेलो, इत्यादि । हर एक हाल में एक वक्त क़रीब (बड़े कालेजों में ३५०) या ४०० लड़के खाते हैं। यहां पर हर एक को आना होता है और यही हाज़िरी है। नाम नहीं पुकारे जाते हैं परन्तु मार्कर पहिचान कर हाज़िरी दर्ज कर लेते हैं। सनीचर और कोई २ रोज़ इतवार को छोड़ आप शाम का खाना चाहे जहां खा सकते हैं, परन्तु बाकी दिनों को आप को कालेजही में खाना पड़ता है। हर एक हाल में बहुत से नौकर (Waiters) होते हैं। हर एक नौकर करीब ४ या ५ आदमियों को खिलाता है (यानी चीज़ें ला ला कर देता है) आप कुल चीज़ों (Menu) में से कोई ३ तश्तरी मँगा सकते हैं । विशेष मंगाने पर अधिक देना पड़ता है। तश्तरी छूरी कांटा वग़ैरह सब कालेज का होता है। इसके दाम कालेज में १॥) फ़ी खाना के हिसाब से लेलिया जाता है।

यहां के कालेजों की पढ़ाई अद्भुत है। हमें इसे कालेज की पढ़ाई छोड़ विश्वविद्यालय की पढ़ाई कहना चाहिये। हर एक कालेज में कुछ लायक २ लोग व्याख्यानदाता हैं, ऐसे सब व्याख्यानदाताओं के मिलाकर हर एक विषय पर सब मिलाकर यहां करीब २५-३० व्याख्यानों के होते हैं। हर एक लड़के को अपना विषय चुन लेने पर उस विषय के अपने कालेज के (Director of studies) अध्यक्ष के पास जाना होता है। यह आपकी लियाक़त देखकर उसके मुताबिक़ आपको सलाह दे देते हैं कि किन लेक्चरों में आपको जाना वाजिब है। कोई लड़का चाहे जिस कालेज का है यूनिवर्सिटी भर में चाहे जिस एक लेक्चर में टर्म के वास्ते जासकता है। दूसरे टर्म पढ़ाई में फिर अध्यक्ष की सलाह पर कार्रवाई करनी होती है। फ़ी व्याख्यान की फ़ीस हर एक लड़के से एक गिन्नी फ़ी टर्म के हिसाब से होती है। यह बिल आपका अध्यापक चुकाता है और यह कालेज बिल में दर्ज कर दिया जाता है। यदि आप यूनिवर्सिटी के लेक्चरों में से किसी ख़ास लेक्चर में केवल एक ही दो रोज़ के वास्ते जाना चाहें तो आप को अपने अध्यापक से एक पास उसके वास्ते लेना होगा, जिसके दिखाने पर आप बिला रोकटोक उसमें जा सकते हैं। अतएव किसी छोटे कालेज में होने से कोई लड़का किसी और बड़े कालेज की पढ़ाइयों के लाभों से वञ्चित नहीं रहता।

हर एक कालेज में थोड़े व्याख्यानालय हुआ करते हैं, जहां पर कि व्याख्यानदाता व्याख्यान देते हैं।

इस तरह से एक लड़का अगर चाहे तो अपने विषय की एक शाखा के लिए एक कालेज में जाय और दूसरे के लिए दूसरे में जहां पर कि अच्छा लेक्चरर मिले। इस तरह से पूरी यूनिवर्सिटी एक पढ़ानेवाली मंडली की तरह पर है, जोकि कालेजों के व्याख्यानदाता पर थमी है। हर एक कालेज में सालाना इम्तिहान भी होता है, जिसे पास करके ऊंचे दर्जे में जाना होता है। प्रत्येक कालेज अपने २ (Scholorship and studentships) वज़ीफ़े भी देता है। इनके पाने के वास्ते ख़ास २ इम्तिहान पास करना होता है।

ख़र्च के विषय में यह कहा जा सकता है कि यह प्रत्येक मनुष्य तथा कालेज पर निर्भर है। बड़े कालेजों में ४५००) सालाना से लेकर २०,०००) सालाना तक ख़र्च करनेवाले लड़के हैं, परन्तु मामूली तौर से ३५० या ३०० पाउण्ड में एक लड़का अच्छी तौर से और भूलमनसाहत से रह सकता है। छोटे कालेजों में शायद २५० ही पर काम चल सकता है। एक पाउण्ड १५) का होता है। ध्यान रहे कि यहां छुट्टिया में घूमने

में बहुत ख़र्च होजाता है; इसीसे इतने रुपयें की आवश्यकता पड़ती है। यहां पर यह कह देना ठीक होगा कि पहिले साल में शायद कुछ ४५००) से अधिक ख़र्च होता है। इसका कारण यह है कि लड़के को बहुतसी नई वस्तुएँ लेनी पड़ती हैं। अतएव पहिले साल में क़रीब ६०००) के ख़र्च हो जाया करता है। यह ख़र्चा शौक़ीनों के वास्ते नहीं, वरन् मामूली चाल ढाल से रहनेवालों के लिए है।

यहां पर रहने का फ़ायदा केवल पढ़ना ही नहीं है, क्योंकि यों तो सब कालेज एकही काम करते हैं और कोई अच्छा बुरा नहीं, परन्तु यहां का मुख्य लाभ समाज है।

यह विश्वविद्यालय आप को केवल पिंजड़े के तोते की तरह राम राम ही नहीं रटाता, वरन् आपको दुनियाबी चाल ढाल को सिखाकर उसमें स्वयं स्वतन्त्रता तथा प्रसन्नतापूर्वक रहना सिखाता और लड़कपन को छुड़ाकर एक माननीय और योग्य पुरुष बना देता है।

अब शाम होआई है, इसलिए यहीं पर लेख समाप्त करता हूं। यदि यह हमारा छोटा वक्तव्य देशवासियों को कुछ भी लाभदायक हुआ, तो फिर कभी कुछ और भी लिखूंगा।

महाराज दशरथ।

[लेखक—श्रीयुत साहित्योपाध्याय पं० बदरीनाथजी वैद्य !]

महर्षि वाल्मीकि ने लिखा है महाराज दशरथ जगत्प्रसिद्ध महर्षि सदृश अत्यन्त चरित्रवान थे:—

"न द्वेष्टा विद्यते तस्य सत्तु द्वेष्टि न कञ्चन्"

"इस संसार में उनका कोई शत्रु न था, वे भी किसी के शत्रु न थे।" वे ऐसे महापराक्रमी थे कि असुरगणों के साथ युद्ध छिड़ने पर इन्द्र उनसे सहायता लेते थे। वे जितेन्द्रिय और प्रजावत्सल थे। उनका सारी प्रजा साक्षात् "पितामह इवापरः"—दूसरे प्रजापति की भांति सम्मान करती थी।

अयोध्याकाण्ड के १०७वें सर्ग में श्रीरामचन्द्र ने भरत से कहा था:—

"जातः पुत्रो दशरथात् कैकेय्यां राजसत्तमात्।
पुरा भ्रातः पिता नः स मातरं ते समुद्वहन्।
मातामहे समाश्रौषीद् राज्यशुल्क मनुत्तमम्।"

राजा दशरथ ने कैकेयी से विवाह करने के समय कैकेयी के पिता अश्वपति के सामने प्रतिज्ञा की थी कि वे कैकेयी से उत्पन्न हुए पुत्र को राज्य प्रदान करेंगे। इसका अर्थ यह नहीं है कि इस प्रतिज्ञा के अनुसार भरत ही को राज्य मिलता। कौशल्या महारानी थीं, इनके पुत्र ही राज्य के एकमात्र उत्तराधिकारी थे। कैकेयी रानी थीं, तो भी उक्त प्रतिज्ञा के अनुसार कैकेयी के पुत्रों को भी राज्य पाने का अधिकार मिला। अन्यान्य रानियों के सन्तानों का राज्य सिंहासन पर कुछ भी दावा नहीं था। कैकेयी के पुत्रों का उस तरह का अधिकार मान्य होगा, ऐसी ही प्रतिज्ञा करके दशरथ ने कैकेयी का पाणिग्रहण किया था, किन्तु महारानी कौशल्या के ज्येष्ठ पुत्र के राज्यसिंहासनाधिकार को अग्राह्य कर कैकेयी के पुत्र को राज्याधिकार दिया जाता—इस प्रतिज्ञा का यह अर्थ नहीं था। कौशल्या के पुत्र न होने पर या कैकेयी के पुत्र

---

* रामायणी कथा से अनुवादित। रामायणी कथा छप रही है शीघ्रही प्रकाशित होगी।

के ज्येष्ठ होने पर उसका राज्यासन का अभियोग अमान्य न होगा—इसका यही अर्थ था ।

दशरथ ने ऐसी प्रतिज्ञा क्यों की ? कैकेयी रूपवती और नवयुवती थी, सुतराम् सौन्दर्य के मोह में पड़कर ही क्या दशरथ प्रतिज्ञाबद्ध हुए थे ? वाल्मीकि ने लिखा है, दशरथ "जितेन्द्रिय" थे, यह अत्युक्ति या व्यङ्गोक्ति नहीं है । जान पड़ता है निःसन्तान होने के कारण ही दशरथ ने ऐसी प्रतिज्ञा की थी । उन्होंने उस समय की राजपद्धति के अनुकूल ही अनेक विवाह किए थे, किन्तु अनेक विवाह पुत्र लाभ के ऐकान्तिक इच्छावश हो किए थे, यही अधिक सम्भव जान पड़ता है । उन्होंने पुत्र प्राप्ति के लिए ही "अग्निष्टोम" "अश्वमेध" आदि अनेक यज्ञों को किया था, यह सत्य है किन्तु कैकेयी उनकी प्रियतमा महिषी होगई थी इसमें भी सन्देह नहीं है । भरत ने कहा था :—

"राजा भवति भूयिष्ठ मिहाम्बाया निवेशने"

राजा अधिकतर माता कैकेयी के महल में रहते हैं ।

वाल्मीकि मुनि ने—

"स वृद्धस्तरुणीं भार्यां प्राणेभ्योऽपि गरीयसीम्"

यह उक्ति भी दशरथ के प्रति प्रयोग की है । वृद्ध दशरथ गुणवती, रूपवती कैकेयी पर कुछ अधिक आसक्त होगए थे इसमें सन्देह नहीं है । कैकेयी अत्यन्त स्वामि-सेवा-परायणा थी इस बात को हम लोग जानते हैं । "देवासुर संग्राम" में कैकेयी ने वाणों से जर्जरित और मूर्च्छित दशरथ की अत्यन्त सेवा की थी, उन्होंने उस समय प्रसन्न हो दो बरदान दिए थे । कैकेयी ने उन्हें सञ्चित कर रक्खा था । वह किसी पुरस्कारकी प्रत्याशा से स्वामि-सेवा नहीं करती थी । वह उन दोनों बरदानों की बात तक भूल गई थी । कुब्जा की अभिसन्धि के न होने पर और उसके द्वारा खूब न सोचाए जाने पर कैकेयी इस बरदान की कथा कभी मन में सोचती था नहीं ? इसमें सन्देह है । ऐसी पतिभक्ति-परायण रमणी पर प्रेम होना कितना स्वाभाविक है और इस प्रेम के लिए जो लोग दशरथ पर अभियोग लगाते हैं वह कहां तक न्यायसङ्गत है, यह भी विचारणीय है ।

इस हार्दिक प्रेम के कारण दशरथ ने कौशल्या के मान और मर्यादा की रक्षा के लिए कुछ भी त्रुटि की हो यह विदित नहीं होता । अनेक स्त्रियों के रहने पर किसी एक स्त्री पर अधिक प्रेम होना स्वाभाविक है, किन्तु प्रेमवश हो दशरथ ने महारानी कौशल्या का अपमान कभी नहीं किया था । उन्होंने यज्ञ के "चरु" (खीर) के भाग करने के समय कौशल्या को "चरु" का आधा भाग दिया था और आधा भाग कैकेयी और सुमित्रा को दिया था । बड़ी रानी को अधिक अंश मिलना चाहिये इसे वे नहीं भूले । राम ने बन यात्रा के समय लक्ष्मण से कौशल्या के भरणपोषण और देखरेख के लिए प्रबन्ध कर जाने के लिए कहा था, इस पर लक्ष्मण ने उत्तर दिया था—"कौशल्या ने अपने सेवकों को हज़ारों गाँव दिये हैं, वे हम लोगों की तरह हज़ारों मनुष्यों के भरणपोषण का भार स्वयं ले सकती हैं, वे अपने या माता सुमित्रा के उदरान्न के लिए दूसरे से प्रार्थना न करेंगी । इन दोनों के भरणपोषण की चिन्ता हम लोगों को कुछ भी न करनी होगी ।" इससे सिद्ध होता है कि कौशल्या पति के चित्त पर एकाधिपत्य स्थापित न कर सकने पर भी महारानियों के उचित धन-सम्पत्ति और सम्मान आदि से युक्त थीं ।

दशरथ कैकेयी पर अनुरक्त थे और कैकेयी ने भी अभी तक पारिवारिक शान्ति के नष्ट करने की प्रकाश में कोई चेष्टा नहीं की थी । कैकेयी कौशल्या से कुछ कुव्यवहार करती भी तो धर्म-परायण देवभावापन्न कौशल्या उस बात को स्वामी से नहीं कहती थी, इसीसे कैकेयी पर

दशरथ का प्रेम बढ़ता ही गया, और प्रेममार्ग में विघ्न न पड़ा। दशरथ का कैकेयी पर जैसा अनिर्वचनीय प्रेम था, चारो पुत्रों में श्रीरामचन्द्र पर भी उनका उसी तरह अत्यन्त स्नेह था।

"तेषामपि महातेजा रामो रतिकरः पितुः"

पुत्रों में तेजश्री रामचन्द्र ही राजा के विशेष प्रेमभाजन थे। जिस समय विश्वामित्र रामचन्द्र को ताड़का के मारने के लिए लेजाना चाहते थे, उस समय—

"ऊनषोड़शवर्षो मे रामो राजीवलोचनः"

कह कर महाराज अत्यन्त दुःखित तथा राम के भेजने में असम्मत हुए थे, और उन्होंने स्वयम् राक्षसों के नाश के लिए चलने की आज्ञा माँगी थी, किन्तु वे विश्वामित्र से सत्यवद्ध होचुके थे। प्रतिज्ञा का स्मरण कर उन्होंने फिर कुछ आपत्ति नहीं की। सत्य-प्रतिज्ञ महाराज दशरथ ने प्राणप्रिय बालक, राम और लक्ष्मण को भयङ्कर राक्षस-युद्ध में भेजना स्वीकार किया। इसी सत्य की रक्षा के लिए ही उन्होंने अपने प्राण तक का विसर्जन किया था, इस बात को सभी लोग जानते हैं।

राम के राज्याभिषेक के विषय में महाराज दशरथ का अत्यन्त-आग्रह बड़ा ही विस्मय-जनक है। अभिषेक के पहले ही उन्हें अपनी समीपवर्ती मृत्यु का आभास मिल गया था, उनका शरीर जीर्ण शीर्ण होगया था, और अनेक प्राकृतिक दुर्लक्षणों ने उनके वीर हृदय में भय उत्पन्न कर दिया था। यही कारण है कि वे ज्येष्ठ पुत्र प्रिय राम को राजसिंहासन पर बैठाने के लिए अधिक आग्रह करने लगे थे।

"विप्रोषितश्च भरतो यावदेव पुरादितः।
तावदेवाभिषेकस्ते प्राप्तकालो मतोमम॥"

भरत के अयोध्या से दूर रहते ही रहते अभिषेक सम्पन्न होजाय यही मेरा अभिप्राय है।

इस बात के समर्थन में राजा ने कहा था—"यद्यपि भरत धर्मशील हैं, जितेन्द्रिय हैं और राम के आज्ञाकारी भी हैं, किन्तु धर्मप्रेमी साधु व्यक्ति का भी चित्त विचलित हो सकता है।" दशरथ को ऐसी आशङ्का क्यों हुई थी, इसका कारण नहीं मालूम होता। भरत और शत्रुघ्न मामा के यहां रहते थे। मामा से पुत्र की भांति प्रेमपूर्वक लालित पालित होते हुए भी वे भाइयों को और वृद्ध राजा दशरथ को स्मरण किया करते थे :—

"तत्रापि निवसन्तौ तौ तर्प्यमानौ च कामतः।
भ्रातरौ स्मरतां वीरौ वृद्धं दशरथं नृपम्॥"

ऐसे पितृभक्त और भ्रातृभक्त भरत पर राजा की आशङ्का का कोई भी कारण नहीं दिखाई पड़ता।

इधर महाराज दशरथ ने जनक राजा और अश्वपति के पास अभिषेकोत्सव का निमन्त्रण नहीं भेजा। इस शुभ कार्य के होने पर वे लोग सुनकर सुखी होंगे, यही राजा ने कहा। इस तरह शङ्कित राजा दशरथ चटपट राज्याभिषेक के उद्योग में लग गये। जैसे किसी अमङ्गल की छाया उनके सामने आकर पड़ी हो, जैसे भावी अनर्थ का पूर्वाभास अलक्षित भाव से उनके मन पर अपनी क्रिया करता हो, या किसी अशुभग्रह के कारण रामाभिषेक के अचिन्तित विघ्नसमूहों को वे स्वयं आशङ्का द्वारा खींच लाए हों। भरत को बुलाकर और सम्बन्धियों को निमन्त्रित कर यदि दशरथ रामाभिषेक के उत्सव को करते तो ऐसे महाअनर्थ के होने की सम्भावना न रहती, भरत के उपस्थित रहने पर कैकेयी का षड्यन्त्र व्यर्थ होता।

कैकेयी ऐसा अनर्थ करेगी, दशरथ ने इसका कभी स्वप्न में भी विचार नहीं किया था। कैकेयी ने दशरथ से अनेकबार कहा था कि मुझे भरत और राम समान प्रिय हैं * राजा के सामने उसने राम के धर्मस्वभाव की अनेकबार अत्यन्त प्रशंसा की थी। † मन्थरा ने उत्तेजित करने के लिए

---

* अयोध्याकाण्ड १२ अध्याय १७वां श्लोक।

† अयोध्याकाण्ड १२ अध्याय २१वां श्लोक।

क्रुद्ध स्वर में जिस समय उससे रामचन्द्र के अभिषेक का सम्वाद कहा था, उस समय भी प्रसन्न होकर कैकेयी ने अपने गले के बहुमूल्य हार का उपहार मन्थरा को दिया और मन्थरा के क्रोध और आशङ्का का कुछ भी कारण न जानती हुई उसने कहाः—

"रामे वा भरते वाहं विशेषं नोपलक्षये।
यथा वै भरतो मान्यस्तथा भूयोऽपि राघवः॥
कौशल्यातोऽतिरिक्तञ्च मम शुश्रूषते बहु।
राज्यं यदि हि रामस्य भरतस्यापि तत्तदा॥"

मैं राम में और भरत में कुछ भी भेद नहीं देखती, राम और भरत मेरे निकट बराबर हैं, राम मुझ पर कौशल्या से भी अधिक श्रद्धा रखते हैं, यदि राम को राज्य मिला तो वह भरत का भी हुआ।

जो राजा के सामने और राजा की ओट में राम पर ऐसा सरलस्नेह भाव रखती है उससे दशरथ क्यों वैसी आशङ्का करते? उस देवभाव सम्पन्न सुख शान्तिमय परिवार में विकृताङ्गी दासी मन्थरा के कुटिल हृदय के विष ने प्रवेश कर सभी अनर्थों की उत्पत्ति की, इसे रामायण के पढ़नेवाले अच्छी तरह जानते हैं।

महाराज दशरथ राम के राज्याभिषेक की सब तयारी कर हर्षित चित्त हो, कैकेयी के महल में गए। उस समय सन्ध्या हो रही थी, कैकेयी के महल के बगल के फूले हुए विचित्र-लतागृह और चित्रशाला पर अस्तोन्मुख-भगवान-भास्कर की किरणें पड़ रही थीं। कैकेयी "प्रिया ही" प्रिय कथा के योग्य है, इसलिए राजा "प्रियमाख्यातुम्" रामाभिषेक के प्रिय सम्वाद को सुनाने के लिए उसके महल में गए।

कैकेयी कोपभवन में पड़ी थी, राजा उसे महल में न पाकर और उसके क्रोध का हाल सुनकर उत्कण्ठित हुए। कोपभवन में जाकर दशरथ ने जो दृश्य देखा उससे उनका हृदय काँप उठा। कैकेयी ने अपने सब गहने उतार कर फेंक दिये थे, चित्र इधर उधर पड़े थे, सुगन्धित पुष्पमालायें हाथीदांत के बने पलँग के पास टूटी पड़ी थीं, उसके काले बाल बिखरे हुए थे और वह मानिनी छिन्नलता की भाँति पृथ्वी पर पड़ी थी। राजा ने आदर के साथ उसके बिखरे हुए बालों को सँवारते २ कहा "क्या किसी ने तुम्हारा अपमान किया है? या तुम्हारा शरीर अस्वस्थ है? शरीर अस्वस्थ हो तो अभी राजवैद्यों को बुलवाऊँ? अथवा किसी दरिद्र को धनी करना है?

"अहञ्च हि मदीयाश्च सर्वे तव वशानुगाः"

मैं और मेरा जो कुछ है सभी तुम्हारे आधीन है, तुम जो चाहती हो कहो, मैं इसी समय तुम्हारे मनोरथ को पूर्ण कर तुम्हें प्रसन्न करूं।

"यावदावर्तते चक्रं तावती मे वसुन्धरा"

जहाँ तक सूर्य पृथ्वी को प्रकाशित करते हैं वे सभी देश मेरे राज्य के अधिकार में हैं। इसलिए संसार में कोई भी वस्तु तुम्हें अप्राप्य नहीं है।

तब सुयोग पाकर कैकेयी ने दो वर माँगे। राजा ने देने की प्रतिज्ञा की। "मैं संसार में राम की अपेक्षा किसी को भी अधिक नहीं चाहता, उसी राम की शपथ है, मैं प्रतिज्ञा करता हूं, तुम जो मांगोगी दूंगा।"

कैकेयी क्या मांगेगी? यह तो बहुमूल्य मानिक का सुन्दर हार अथवा दूसरा कोई मूल्यवान् अलङ्कार मांगेगी, क्योंकि स्त्रियों को ऐसी ही वस्तु अधिक प्रिय होती हैं, आज इस आनन्दमय समय में वह अदेय न होगा। राजा ने इसी तरह का विश्वास कर निर्भय हो प्रतिज्ञा की।

तब कैकेयी ने बड़ी धीरता के साथ धीरे २ राजा को अत्यन्त अप्रिय और मर्मभेदी बातें सुनाई:—

"राम को चौदह वर्ष के लिए बनवास हो और भरत का राज्याभिषेक हो।" निष्ठुर कैकेयी ने राजा से यही दो वरदान माँगे।

कुछ देर तक तो राजा ने उसकी बात ही न समझी, उन्होंने सोचा यह दिवा स्वप्न है या चित्तमोह है ? उनका सब शरीर काँप उठा। जिस सुन्दरीका केश पाश सादर पकड़ कर उन्होंने इतनी स्नेह-मधुर बातें कही थी, उसकी वही कुञ्चित केशराजि उन्हें मृत्यु की फांस मालुम होने लगी। रूपवती कैकेयी राक्षसी सी जान पड़ने लगी। व्यथित और विकल दृष्टि से कैकेयी की ओर देखकर राजा भयभीत हुए—"व्याघ्री दृष्ट्वा यथा मृगः" जैसे मृग बाघिन को देख कर भीत होता है वैसे ही राजा कैकेयी को देखकर भयभीत हुए।

"नृशंसे, राम तुझे सदा माता की भांति मानता और तेरी सेवा करता है, उसका यह घोर अनिष्ट तू किस कामना से करती है ? मैं कौशल्या और सुमित्रा, यही क्यों ? अयोध्या की अधिष्ठित राजलक्ष्मी का भी परित्याग कर सकता हूं, किन्तु राम के बिना मैं जी नहीं सकता।

"तिष्ठेल्लोको विना सूर्यं शस्यं वा सलिलं विना।"

सूर्य के बिना संसार और जल के बिना तृण रह सकता है, किन्तु राम के बिना मैं कभी नहीं जी सकता। यही सब बातें कहकर राजा कभी क्रुद्धस्वर से कैकेयी को डांटते थे, कभी हाथ जोड़कर उसके पैरों पर गिरकर उसे समझाते थे, किन्तु कैकेयी का पाषाण हृदय न पिघला। उसने डांट कर कहा—"महाराज शैव्य ने सत्य की रक्षा के लिए अपना मांस बाज पक्षी को खिला दिया था, सत्यबद्ध अलर्क ने अपने नेत्रों को निकाल फेंका था, सत्य से बँधा समुद्र अपनी मर्यादा को नहीं लांघता, यदि आप अपनी प्रतिज्ञा को सत्य न करेंगे तो मैं विष खाकर मर जाऊँगी।"

क्रमशः दशरथ अत्यन्त विकल होगए। अभिषेकोत्सव में निमन्त्रित होकर अनेक देशों से अनेक राजा आये हैं, दूर २ देशों से अनेक ज्ञानी, गुणी, विद्वान्, साधु, ऋषि मुनि आदि आए हैं, कल प्रातःकाल जिस राजकीय महासभा के अधिवेशन में वे लोग सम्मिलित होंगे, वे उस सभा में कैसे उपस्थित होंगे ? अब वे संसार में कैसे अपना मुख दिखा सकेंगे ? "मानी पुरुष का अपमान मौत के बराबर है।" लोकमान्य महातेजस्वी महाराज दशरथ का जो सम्मान पर्वत की तरह उच्च और अटूट था, आज वह भू-लुण्ठित होगया ! सम्मान-शिखर टूट कर गिर गया !! एक ओर यह घोर लज्जा ! दूसरी ओर अत्यन्त-प्रेममय, वशंवद-सेवक की भांति आज्ञाकारी, प्राणप्रिय-पुत्र राम के नीलकमल से सुन्दर मुख के स्मरण से दशरथ का हृदय विदीर्ण होने लगा। नक्षत्र-मालाधारिणी रात्रि चन्द्र-चन्द्रिका से चर्चित हो शोभित हो रही थी। राजा ने आंसू भरे नेत्रों से आकाश की ओर देख हाथ जोड़ कहा।

"न प्रभातं त्वयेच्छामि निशे नक्षत्रभूषिते"

हे नक्षत्रमयी रात्रि ! मैं तेरा प्रातःकाल नहीं देखना चाहता। जिससे प्रातःकाल इस लज्जा और शोक के दृश्य का संसार के सामने न खोले, सजलनेत्र वृद्ध दशरथ ने दुखित हो यही प्रार्थना की। कभी वे स्वर्ग-पतित ययाति की भांति कैकेयी के पैरों पर गिरते थे।

वृद्ध दशरथ गान लुब्ध मृग के समान मृत्यु के मुख में जाने लगे। "सुचतुर सूपकारगण (रसोईदार) उत्तमोत्तम स्वादिष्ट पदार्थों को बनाकर जिसे प्रतिदिन खिलाते हैं, वह कैसे बन के कटुतिक्त फलों को खाकर बन में रहेगा ? राजकुमार की अभिषेकोज्ज्वल सुन्दरमूर्ति को (कल्पना से) भिखारी सी सजकर राजा दशरथ मोहित होगए ! उनके सिर पर वज्रपात हुआ !

प्रलाप और बिलाप करते २ रात बीत गई। प्रातःकाल हुआ। बन्दीगण गान करने लगे। जैसे मरते हुए मनुष्य के कान में मधुर-सङ्गीत पहुंच कर भी नहीं पहुंचता, हतभाग्य दशरथ की आज वही अवस्था है!

वशिष्ठ मुनि अभिषेक की समस्त सामग्री प्रस्तुत कर द्वार पर खड़े हैं। रामाभिषेक के आनन्द में नगरवासियों की नींद खुल गई है, और राजमहल में भी बड़ा-कलरव हो रहा है। सङ्गीत भी प्रारम्भ होगया है। वशिष्ठ की आज्ञा से सुमन्त्र, राजा को सभा में लाने के लिए कैकेयी के महल में पहुंचे। उस समय रोते हुए दशरथ कैकेयी से कह रहे थे।

"धर्मबन्धेन बद्धोऽस्मि नष्टा च मम चेतना।
ज्येष्ठं पुत्रं प्रियं रामं द्रष्टुमिच्छामि धार्मिकम्"॥

मैं धर्मबन्धन से बँधा हूं, मेरी चेतना नष्ट होगई है, अपने ज्येष्ठ पुत्र प्रिय राम को देखना चाहता हूं!

इसी समय सुमन्त्र ने आकर कहा, भगवान् वशिष्ठ, सुयज्ञ, वामदेव, जाबालि प्रभृति ब्राह्मणों के साथ उपस्थित हैं, महाराज! राम के अभिषेक की आज्ञा दीजिये। मलिन मुख राजा दीन नेत्रों से सुमन्त्र की ओर देखते रह गये। सुमन्त्र राजा की करुणमूर्ति को देखकर दुःखित हुए और उनकी आज्ञा की प्रतीक्षा करते हाथ जोड़ खड़े रह गये। तब कैकेयी ने कहा—

"सुमन्त्र राजा रजनीं रामहर्षसमुत्सुकः।
प्रजागरपरिश्रान्तो निद्रावशमुपागतः॥"

सुमन्त्र, राजा, रामाभिषेक के आनन्द में रात भर नहीं सोये, इससे अत्यन्त निद्रातुर और परिश्रान्त हो गये हैं। तुम राम को शीघ्र बुला लाओ। तब हाथ जोड़ कर सुमन्त्र ने, कहा—

"अश्रुत्वा राजवचनं कथं गच्छामि भामिनी।"

महारानी, राजाज्ञा को बिना सुने मैं कैसे जाऊं? तब दीन दशरथ ने कहा—सुमन्त्र, मैं राम को देखना चाहता हूं, तुम उन्हें शीघ्र बुला लाओ।

इसी समय से शोक विकल महाराज दशरथ फिर न बोले। चुपचाप आंखों में आंसू भर कर वे कभी मूर्च्छित हो जाते थे, और कभी दुःखित हो अन्धों की तरह चारों ओर देखने लगते थे। जब रामचन्द्र ने आकर प्रणाम किया, तब वे "राम" कह कर रोने लगे और राम के मुख की ओर देख न सके। जब राम बनवास की प्रतिज्ञा स्वीकार कर कैकेयी को समझा रहे थे, तब किङ्कर्तव्य विमूढ़ दशरथ चुपचाप सब सुन रहे थे। राम ने दशरथ की ओर देखकर कैकेयी से कहा—"देवि! तुम इन्हें समझाओ, ये क्यों नीचा मुंह किये रो रहे हैं?" फिर कहा—"पिता प्रत्यक्ष देवता हैं, मैं इनकी आज्ञा से विष खा सकता हूं, समुद्र में डूब कर प्राण दे सकता हूं।" इस विषमिश्रित अमृत तुल्य, स्नेह मधुर और मर्मच्छेदी वचन को सुनकर राजा मूर्च्छित हो गये। राम से शीघ्रता करती हुई कैकेयी ने कहा—"राम, तुम इनसे बिदा होकर जब तक वन न जाओगे तब तक ये स्नान भोजन न करेंगे।" यह सुनकर रोते चिल्लाते दशरथ पलँग पर से ज़मीन में गिर पड़े और बेहोश हो गये! रानियों का आर्तनाद वे सुन रहे थे। वे रो रोकर कह रही थीं—

"अनाथस्य जनस्यास्य दुर्बलस्य तपस्विनः।
यो गति शरणं चासीत् स नाथ क्वनुगच्छति॥"

अनाथ और दुर्बल के एक मात्र आधार और गति रामचन्द्र आज कहां जाते हैं? तब उस "क्वगच्छति" की प्रतिध्वनि राजा की हृदय-तन्त्री से उठ रही थी। राजा विवेक खो बैठे हैं, यह कहती रानियां जब रो रही थीं, तब उनका मुख मण्डल अश्रुधारा से भीज रहा था।

राम ने माता से विदा ली, सीता और [illegible] उनके संग हुए। वे बिदा होने के लिए

पिता के पास आए। सुमन्त्र ने राजा से राम के आने का समाचार कहा—

"स सत्यवाक्यो धर्मात्मा
गाम्भीर्यात सागरोपमः।
आकाश इव निष्पङ्को,
नरेन्द्रः प्रत्युवाचतम्॥"

सत्यप्रतिज्ञ, धर्मशील, समुद्र के समान गम्भीर और आकाश की तरह निष्कलङ्क, राजा दशरथ ने सुमन्त्र से कहा—"मेरी सब रानियों को बुला लाओ, मैं उनके सङ्ग राम का दर्शन करूंगा।" सब रानियां आईं। रामचन्द्र भीतर आए। राजा हाथ जोड़े राम को आते देख विकल हो पलँग से उठे और उनके आलिङ्गन करने के लिए दौड़े, पर बीच ही में मूर्च्छित हो गिर पड़े। यह देख रानियां रोने लगीं। राम, लक्ष्मण और सीता को बन जाने केलिए उद्यत देखकर वे विलाप करने लगीं। भूषण ध्वनिमिश्रित "हा राम! हा राम!" की आर्तध्वनि से राजप्रासाद गूंज उठा। रानियां राम लक्ष्मण और सीता को आलिङ्गन कर शोक से रोने और विकल होने लगीं। मूर्च्छित राजा के चैतन्य होनेपर राम ने सीता और लक्ष्मण के साथ बन जाने की आज्ञा मांगी। राजा ने राम से रोते २ कहा—मैं वरदान देकर मोहित होगया हूं। तुम मुझे बांध कर राज पर अधिकार करो।" इस पर राम ने बन गमन का दृढ़ सङ्कल्प कहा! सुनकर राजा ने फिर कहा—

"तात! तुम वन जाओ, शीघ्र लौट आना। मैं तुम्हें सत्यभ्रष्ट नहीं करना चाहता, तुम्हारा मार्ग भयशून्य हो। मेरी एक प्रार्थना है, तुम आज भर अयोध्या में रह जावो, मैं तुम्हारे चन्द्रमुख को अच्छी तरह देखलूं, और तुम्हारी माता भी देखले तब तुम मेरे साथ भोजनकर वन में जाना।"

श्रीरामचन्द्र ने "आजही वन जाऊंगा" ऐसी प्रतिज्ञा की थी, इससे वे राजा के अनुरोध की रक्षा नहीं कर सके! कैकेयी ने जो उनसे कहा था कि राम! तुम्हारे बन जाने पर ही राजा स्नान भोजन करेंगे सम्भवतः उसी मर्मच्छेदी वचन को स्मरण कर राजा ने राम के संग भोजन करने की व्यग्रता दिखाई थी, किन्तु राम ने राजा का अनुरोध नहीं माना। वृद्ध महाराज दशरथ केवल सात दिन और जीवित रहे, इस बीच उन्होंने आहार किया इसका प्रमाण नहीं मिलता।

अनन्तर राम कैकेयी के दिये वल्कल (छाल का कपड़ा) को पहन कर भिखारी बने। राजा भिखारी पुत्र को गले से लगाकर रोते २ मूर्च्छित होगए। वृद्ध मन्त्री लोग और सहन न कर सके। वे कटु शब्दों में कैकेयी को डाटने लगे। सुमन्त्र ने हाथ से हाथ मल कर और दांतों को पीस कर कैकेयी को पतिघ्नी और कुलघ्नी कह गाली दी और कहा—"जो पर्वत के समान अटल थे, वे आज बालक की भांति आर्त होरहे हैं, देवि! आप क्या यह देखकर भी सन्तप्त नहीं होतीं।"

"भर्तुरिच्छा हि नारीणां पुत्र कोट्या विशिष्यते"

स्त्रियों के निकट पति की इच्छा करोड़ पुत्रों की अपेक्षा भी अधिकतर मान्य है। क्या आप देव तुल्य स्वामी को मारना चाहती हैं,

वशिष्ठ मुनि ने कहा—

"नह्यदत्तां महीं पित्रा भरतः शास्तुमिच्छति।
त्वयि वा पुत्रवद्वस्तु यदि यातो महीपते॥
यद्यपि त्वं क्षितितलाद् गगनं चोत्पतिष्यति।
पितृवंश चरित्रज्ञः सोऽन्यथा न करिष्यति॥"

भरत इस राज्य का शासन भार कभी न लेंगे। वे यदि दशरथ से उत्पन्न हुए हैं तो तुम्हारे पृथ्वी से आकाश में उठने पर भी पितृवंश चरित्रज्ञ भरत अन्यथा व्यवहार न करेंगे। कैकेयी ने असमञ्ज का उदाहरण देकर राजा का तिरस्कार किया, इससे राजा दुःखित हो अश्रुपात करने लगे। महाराज की इस

अवस्था को देखकर दुःखित महा मन्त्री सिद्धार्थ ने कैकेयी के असमञ्ज सम्बन्धी भ्रम को दिखलाया। इस वितण्डावाद से राजगृह विकल हो उठा, किन्तु रामचन्द्र अपने पूज्य और आत्मीय वर्ग की दुरवस्था को देखकर भी कुछ विचलित न हुए। प्रतिज्ञा का स्मरण कर हाथ जोड़ उन्होंने पूज्य पिता से वन जाने की आज्ञा माँगी। भाई और स्त्री के साथ रथ पर चढ़कर वे वन को चले। इस समय दुःखित अयोध्यावासीगण रोते हुए राम के आगे पीछे दौड़ने लगे और रोते चिल्लाते रथ के साथ २ जाने लगे। इस शोकसन्तप्त जनसमुदाय के बीच पागल महाराज भी नँगे पांव आपड़े, उनके संग कौशल्या भी छाती पीटती रोती चिल्लाती चली आईं। राजमार्ग में जिनके आने के लिए पालकी, रथ, घोड़े, हाथी और सैन्यसमूह का समारोह होता था, आज उन्हीं राजराजेश्वर को राजमार्ग में उन्मत्त की भांति दौड़ते हुए देखकर प्रजा और भी दुःखित हुई और उन्हें घेरकर खड़ी हो गई, पर उन्हें समझाने का साहस न कर सकी। जैसे बछड़े के पीछे गौ दौड़ती है वैसेही राजा और रानी भी राम के पीछे २ दौड़ने लगीं। रोते हुए राजा ने राम के आलिङ्गन के लिए हाथों को फैला फैलाकर "रथ रोको रथ रोको" कहा। राम ने यह देखकर सुमन्त्र से कहा। "मैं इस दृश्य को देख नहीं सकता, तुम शीघ्र रथ लेचलो।

रथ आंख की ओट में होगया। राजा मूर्च्छित हो सड़क पर गिर पड़े। प्रजा हाहाकार करने लगी। होश आने पर दशरथ ने देखा उनके दहिनी ओर कौशल्या और बाईं ओर कैकेयी है। कैकेयी की ओर देखकर राजा ने कहा मैंने अग्नि की साक्षी दे तेरा पाणिग्रहण किया था, आज तेरा त्याग किया, आज से तू मेरी स्त्री नहीं है।" अनन्तर करुण स्वर से उन्होंने द्वारपालों को आज्ञा दी कि मुझे शीघ्र राम माता कौशल्या के महल में ले चलो। मैं दूसरी जगह शान्ति न पाऊंगा। राम लक्ष्मण और सीता से रहित श्मशान तुल्य घर में जाकर वे बालकों की तरह फिर ज़ोर २ से रोने लगे। रात में राजा की आंख लगी किन्तु आधी रात में जागकर वे कौशल्या से कहने लगे--"मैं तुमको देख नहीं सकता। राम के रथ के साथ २ मेरी दृष्टि भी चली गई। वह फिर नहीं लौटी। तुम मुझे हाथ से पकड़ो।"

६ दिन के बाद सुमन्त्र खाली रथलेकर लौट आया। रथ पर चढ़कर राम वन में गए थे, रामशून्य रथ को देखकर पुरवासियों का हृदय विदीर्ण होगया। सुमन्त्र ने देखा, हरित श्यामल वृक्ष मानों म्लान होगए हैं। फूल गुच्छों में सूख गये हैं। अङ्कुर और कलियां मुरझा गईं हैं। पक्षीगण मौन साधन किये पंखों को सिकोड़े खोतों में बैठे हैं। वृक्ष अचल थे, इसी से राम के पीछे २ जा न सके, किन्तु उनकी शाखाएं और पत्तियां मानों उसी ओर उन्मुख होरही हैं। मकानों के छत और खिड़कियों पर बैठे हुए अयोध्यावासियों के सुन्दर नेत्र शून्य रथ देखकर बार २ अश्रु जल से भर उठते हैं। रोती हुई प्रजा "राम को कहां छोड़ आये?" यही सुमन्त्र से पूछती थी। उत्तर न देकर रोते हुए सुमन्त्र राजा के पास पहुंचे। सुमन्त्र के स्वर को सुनतेही राजा मूर्च्छित होगए! रानियां रोती २ कहने लगीं "आपके प्राणाधिक्य-प्रिय-पुत्र राम का सम्वाद लेकर सुमन्त्र आए हैं उनसे उन राम का समाचार आप क्यों नहीं पूंछते?"

कुछ स्वस्थ होकर दशरथ ने सुमन्त्र से राम का समस्त समाचार सुना। सुनकर राजा रोते हुए कहने लगे--"राम किसी झरने के पास करिशावक के समान धूलि धूसरित हो कहीं पड़ रहेंगे, काठ या पत्थर के टुकड़े पर सिर रखकर रात बिताएँगे, प्रातःकाल उठकर

कटु बन फलों के लिए निकलेंगे।" फिर विलाप करते हुए राजा ने सुमन्त्र से कहा—मुझे शीघ्र राम के पास ले चलो, मैं राम के बिना पल भर भी जी नहीं सकता, मेरी मृत्यु निकट है इससे अधिक दुःख का और क्या विषय होगा कि इस अपने अन्तिम समय में भी मैं राम के मुख कमल को न देख सका!"

कौशल्या ने राम के लिए बहुत विलाप किया। दुःखिता ने रात में असह्य कष्ट के कारण राजा से दो एक कटुवाक्य कहे। दशरथ अपना अपराध जितना स्वयं समझा था, उतना और किसी ने नहीं समझा था। कौशल्या के कटु-वचनों को सुनकर वे निःसहाय की तरह चारों ओर देखने लगे और फिर हाथ जोड़कर कौशल्या से क्षमा मांगने लगे। तब धर्मप्राण पतिपरायण, सती साध्वी कौशल्या ने उनके पैरों पर गिर २ कर अपने अपराध की क्षमा माँगी। आश्वस्त हो राजा दशरथ निद्रित हो गये।

कुछ देर के बाद दशरथ की तन्द्रा टूटी। अत्यन्त दुःख के समय में ही मनुष्य को तत्वज्ञान होता है। हृदय में अमावस्या की रात्रि के भांति शोक है, नैराश्य या पश्चात्ताप रूपी घोर अन्धकार के घनीभूत न होने से ज्ञान का उदय नहीं होता। शोक विकल दशरथ आज ७ दिन से उत्कट-मृत्युयातना सहन कर रहे हैं, आज उनका ज्ञानचक्षु खुला। उन्होंने आपका कर्मफल प्रत्यक्ष देखा। इस घोर कष्ट के वे स्वयं मूल कारण हैं, यह बात किसी ने उन्हें चुपचाप समझा दी। इसके बाद उन्होंने कौशल्या से कहा—"मूर्ख लोग आम्रवृक्ष को काटकर पलासवृक्ष को सींचते हैं, अन्त में फल न पाकर विस्मित होते हैं, पलास के फूल से आम का फल कभी नहीं उत्पन्न होता।" मैंने भी अपने कर्मों के द्वारा ही इस विपत्ति को मोल लिया है और आज प्रत्यक्ष देखता हूँ कि मैंने जिस वृक्ष को लगाया था, उसी से यह विषमय फल उत्पन्न हुआ है। अनन्तर शोकपीड़ित राजा रोते २ उस पूर्व कथा को धीरे २ वर्णन करने लगे।

उस समय वर्षाऋतु थी, नदी और झरनों से जल उमड़ २ कर बह रहा था, पक्षी लोग चुपचाप बैठे थे, सायङ्काल में झिल्लियों की झनकार, पपीहों की पुकार और जलबिन्दु के पतन के मृदु शब्द से वनस्थली गूंज रही थी, पर्वत से निकला हुआ झरनों का जल गैरिकरेणु के संयोग से विचित्र वर्ण धारण किए सर्प की तरह वक्रगति से प्रवाहित हो रहा था। सुन्दर मेघमाला आकाश में चारों ओर फैली शोभा दे रही थी, ऐसे सुखद मनमुग्धकर वर्षा ऋतु के सायङ्काल में अविवाहित युवक मैं धनुष बाण हाथ में लिए सरयू नदी के किनारे के वन में शिकार खेल रहा था। एक ऋषिपुत्र झरने से घड़े को भर रहा था। हाथी का शब्द समझ कर मैंने उसी शब्द की ओर लक्ष्य कर बाण मारा। दुःखित मनुष्य के कण्ठ का शब्द सुनकर मैं भयभीत हो वहां गया। जाकर जिस मर्मविदारक दृश्य को मैंने देखा, उससे अब भी हृदय काँप उठता है। देखा, घड़े का जल गिर गया है, खून और मट्टी में लथपथ बाणविद्ध एक दीन बालक जल में पड़ा है।

"पांशुशोणितदिग्धाङ्गं शयानं शल्यवेधितम्।
जटाजिनधरं बालं दीनं पतितमम्भसि॥"

यह बालक अन्धऋषि और अन्धऋषि पत्नी का जीवनोपाय था। वे दोनों सूखे पत्तों का मर्मरशब्द और आर्तस्वर सुनकर चमक उठे थे, क्योंकि यह बालक उन्हीं के लिए जल लेने आया था। मैं जब उन ऋषि के पास गया, तब अति मृदुस्वर से ऋषि ने कहा—हम लोग तेरे लिए व्यग्र थे, तू क्या जलक्रीड़ा कर रहा था?

"त्वं गतिस्त्वगतीनाञ्च चक्षुस्त्वं हीनचक्षुषाम्"

तू गतिहीनों की गति और अन्धों का नेत्र है। तब भयभीत हो मैंने कहाः—

“क्षत्रियोऽहं दशरथो नाहं पुत्रो महात्मनः” ।

मैं दशरथ नामक क्षत्रिय हूं, हे महात्मन्! मैं आपका पुत्र नहीं हूं। इसके बाद मैंने उनसे उस बालक की हत्या का विशद वृत्तान्त कहा और हाथ जोड़ मैं खड़ा रहा।

जब मैं उन ऋषि और ऋषिपत्नी के आज्ञानुसार उन्हें मृत बालक के पास ले आया तब वे फूट २ कर रोने लगे। उनका करुण विलाप आज भो मेरे मर्मों से प्रतिध्वनित हो रहा है! अन्ध ऋषि ने रोकर पुत्र का स्पर्श किया और रोते २ कहा—“पुत्र! आज तू हम लोगों को क्यों नहीं प्रणाम करता? तू ने क्यों क्रोध किया है? अब प्रातःकाल में किसके प्रिय कण्ठस्वर से पुनीत शास्त्र की आवृत्ति सुनकर हृदय शीतल करूंगा? अब कौन सन्ध्यावन्दन कर हम लोगों को गर्म जल से नहलाएगा? और कौन फूलमूल कन्दों से अतिथि की भाँति हम लोगों को प्रेमपूर्वक भोजन कराएगा? यदि तू मुझ से अप्रसन्न हो गया है तो अपनी इस धर्मशील माता की ओर तो एकबार देख।” अनन्तर ऋषि और ऋषिपत्नी ने पुत्र शोक से विकल हो पुत्र के साथ अग्नि में प्राण दे दिया। बहुत दिन हुए यह अनर्थ हुआ था। पुत्र शोक क्या है? आज उसी को समझाने के लिए उस पुरातन कर्म का फल मेरे सम्मुख उपस्थित हुआ।

कुछ देर के बाद दशरथ के हृदय की व्यथा बहुत बढ़ गई। वे रोते २ कौशल्या से बोले, तू मेरा स्पर्श कर, मैं अन्धा होगया हूं। अनन्तर वे प्रलाप करते २ राम की बात करने लगे। “राम आकर मुझे छू लें तो मैं अभो जी उठूं।” फिर उन्होंने कहा:—

“अतस्तु किं दुःखतरं यदहं जीवितक्षये।
नाहं पश्यामि धर्मज्ञं रामं सत्यपराक्रमम्॥”

इससे अधिक और क्या कष्ट होगा कि मैं मृत्यु समय में धर्मज्ञ और सत्यपराक्रमी राम को नहीं देखता। चौदह वर्ष के बाद राम वन से आवेंगे, उनके कमलनेत्रों को और मेरे राम के सुन्दर मुख कमल को जो देखेंगे वे देवता हैं। मैं अभागा देख न सका। इसी तरह विलाप करते २ आधीरात में “हा पुत्र! हा राम!!” कहकर दशरथ ने प्राणत्याग किया!

रात बीतने पर है। राजपुरी से वीणा आदि वाद्यों का मृदुस्वर सुनाई पड़ रहा है, इसीके साथ २ क्रन्दन ध्वनि भी सुनाई दे रही है। पक्षियों ने भी अपना कलरव आरम्भ कर दिया है। राजा के स्नान कराने के लिए सोने के कलश में चन्दन से सुगन्धित जल उचित स्थान में रक्खा गया है। वन्दीगणों ने राजा की स्तुति करनी आरम्भ कर दी है। पर राजा कहां हैं? वे अयोध्या को छोड़ कर चले गए। उनका सन्तप्त हृदय अनन्त-शान्ति-समुद्र में निमग्न हो गया।

वर देने से दशरथ पर “स्त्री आसक्ति” का कलङ्क नहीं लगाया जा सकता। वे सत्यप्रतिज्ञ थे। उन्होंने प्राणतक दे दिया किन्तु सत्य नहीं छोड़ा। कैकेयी के वर मांगने के साथ ही उनका सब प्रेम काफूर होगया था। यहां तक कि उन्होंने उसका परित्याग तक कर दिया था। वे सहज ही में कैकेयी को अलग कर राम का राज्याभिषेक कर सकते थे, किन्तु उन्होंने “स्त्री आसक्ति” “स्त्रैणता” का घोर अपवाद सिर पर लेकर वस्तुतः सब ही की रक्षा की थो। उन्होंने कैकेयी से “कुलनाशिनी” “नृशंसा” आदि दो एक न्यायसंगत कटुवाक्य कहे, किन्तु कहीं पर मर्यादा का लंघन नहीं किया, अनुचित और अश्लील वाक्य का प्रयोग नहीं किया। कैकेयी की माता ने अपने स्वामी अश्वपति के जीवननाश की चेष्टा की थी, यह बात सुमन्त्र ने प्रसङ्गवश राजा से कही थी, किन्तु उन्होंने कैकेयी

के मातृकुल या पितृकुल का उल्लेख कर असङ्गत भाषा में उस पर कटुवचनों की वर्षा नहीं की। दशरथ के चरित्र में राजोचित मर्य्यादा और तेजस्विता दिखाई पड़ती है। महर्षि वाल्मीकि कथित तत्सम्बन्धी ये कई एक विशेषण अति सत्य जान पड़ते हैं।

"स सत्यवाक्यो धर्मात्मा गाम्भीर्यात्सागरोपमः। आकाश इव निष्पङ्कः—"

आयरलैंड का स्वराज्य।

[लेखक—श्रीयुत सुपार्श्वदास गुप्त एम० ए०।]

जिस प्रश्न ने सौ वर्षों से भी अधिक विशेषकर सन् १८९२ ई० से यूनाइटेड किङ्गडम (United Kingdom) और आयरलैंड के दिग्गज राजनीतिज्ञों और जनता को चक्कर में डाल रक्खा है, जो उनके विचारों का केन्द्र हो रहा है और जिससे बृटिश राज्य के इतिहास में नया युग उत्पन्न होनेवाला है, यही नहीं बल्कि जिसने अन्य देशों को भी डावांडोल कर दिया है और जिसकी ओर अन्य देश भी उत्सुकता से ताक रहे हैं, उसी प्रश्न का संक्षिप्त वर्णन आज मैं पाठकों के सामने उपस्थित करने का साहस करता हूं। समाचारपत्रों के पाठकों को पूर्णतया मालूम है कि इस प्रश्न ने गत कई वर्षों से कैसा ज़ोर पकड़ा है और समस्त बृटिश राज्य में किस प्रकार खलबली पैदा कर दी है। रोज़ ही कुछ न कुछ ऐसी ख़बर कानों पर ठोकर मारती है, जिससे दिल दहल जाता है और भय होता है कि कहीं दोनो विपक्षी दलों में घमासान युद्ध न हो जाय, और पुनः संसार को सात समुद्र पार भारतीय महाभारत देखने का दुर्भाग्य न प्राप्त हो। क्योंकि दोनों दलों के बीच आजकल ऐसी खचातानी हो रही है कि रङ्ग वेढब दिखाई देता है। दोनों अपने २ सिद्धान्त पर डटे हैं। न इधर डिगते हैं, न उधर। अलस्टरवालों ने तो एक बड़ी सेना भी तैयार करली है, जिसका निरीक्षण प्रायः सर कार्सन (Sir Carson) किया करते हैं। ये लोग स्वराज के विरोधी हैं और अपने को, यदि आयरलैंड को बृटिश सरकार स्वराज दे दे तो, साम्राज्य सरकार के ही अधीन रखना चाहते हैं। उनके सहायक इङ्गलैंड के यूनियनिस्ट (Unionist) दल वाले हैं। यह दल १८८६ ई० में, जब ग्लैडस्टन ने "होमरूल" बिल कामन्स सभा में पेश किया था, लिबरल यूनियनिस्ट (Liberal Unionist) के नाम से सङ्गठित हुआ था। इसमें सब से प्रथम इङ्गलैंड के ९३ लिबरल और आयरलैंड के विरोधी प्रोटेस्टैंट (Protestant) थे। उसी समय से इङ्गलैंड में दो दल हुए, जो यूनियनिस्ट और होमरूलर्स या नैशनलिस्ट नाम से प्रसिद्ध हैं। आयरलैंड का जो दल स्वराज का पक्षपाती है और इसके प्राप्त्यर्थ आन्दोलन कर रहा है वह कैथेलिकों का है। ये संख्या में आयरलैंड की जनसंख्या की दो तिहाई से भी अधिक हैं। इन्हीं के साथ इङ्गलैंड का राष्ट्रीय दल मिल कर स्वराज के लिए चेष्टा कर रहा है। इस दल के नेता मि० रेडमंड, प्रधान मन्त्री मि० आस्किथ, लार्ड ग्रे, मि० लायड जार्ज आदि राजनीतिज्ञ और दूरदर्शी धुरन्धर विद्वान हैं। दूसरे दल के नेता सर कार्सन, मि० वाल्टर लांग आदि हैं।

२-इसकी वर्त्तमान स्थिति के विषय में कुछ निश्चय रूप से नहीं कहा जा सकता। नाना प्रकार के मतमतान्तर कर्ण कुहरों में प्रवेश करते हैं, पर इतना ज़रूर कहा जा सकता है कि इस समय बृटिश सरकार बड़े पेंच में पड़ी है। आयरलैंड को स्वराज देने का मन

होते हुए भी उसे बड़े भारी प्रतिवाद का सामना करना पड़ा है। सर कार्सन और उनके सहायकों की वक्तृताओं या लेखों को पढ़ने से यही मालूम होता है कि वे अपनी बात पूरी किये बिना चुप न होंगे। सरकार को या तो उन्हें होमरूल से अलग करना पड़ेगा या उनसे युद्ध की तैयारी करनी पड़ेगी। वे लोग दोनों पर डटे हैं। सरकार भी मुश्किल में पड़ी है। वह चाहती है कि किसी तरह इसका निपटारा होजाय और उसकी जान बचे।

३-होमरूल एक ऐतिहासिक विषय है, इस लिए इस पर ऐतिहासिक रीति से विचार करना सर्वोत्तम जान पड़ता है। इतिहास हमें बतलावेगा कि इस प्रश्न का जन्म कब और किन किन अवस्थाओं में हुआ, इसकी क्रम वृद्धि कैसे और किन २ महानुभावों के नेतृत्व में हुई और किन किन स्टेजों (अवस्थाओं) से गुज़रते हुए इस प्रश्न ने वर्त्तमान रूप धारण किया है।

४-इङ्गलैण्ड के राजा जार्ज तृतीय का शासनकाल अनेक महत्वपूर्ण घटनाओं से परिपूर्ण है। इसके राज्यकाल में अमेरिका ने अपनी चिरवाञ्छित स्वतन्त्रता प्राप्त की, वारन हेस्टिन्ग्ज़ ने हिन्दुस्तान में बृटिश आधिपत्य की नींव डाली, और रोडनी ने बृटिश नौसेना का सिर ऊंचा किया। इन सब हानि लाभों को प्राप्त करने में इङ्गलैण्ड को बड़ी दिक्कत उठानी पड़ी और अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इन सबों में सब से अधिक कष्टसाध्य आयरलैण्ड का आन्दोलन था। उस समय दोनोंही दलों की अवस्था बड़ी शोचनीय थी। आयरलैण्ड के कैथेलिक प्रायः किसान थे, जिनकी अवस्था भारी कर होते २ इतनी दीन हीन होगई थी, कि उनका जीवन निर्वाह दुःसाध्य सा होगया था। उन्हें राजनैतिक अधिकारों के सूखे टुकड़े भी न मिलते थे। प्रोटेस्टेन्ट भी, यद्यपि उनकी अवस्था कैथेलिकों से अच्छी थी सुख का स्वप्न मात्र देखा करते थे। यद्यपि उस समय की आइरिश पार्लामेन्ट एक प्रकार से प्रोटेस्टैन्ट मण्डली ही कही जा सकती है, तथापि गिरजा और स्टेट आदि के उच्चपद अङ्गरेज़ों कोही दिये जाते थे। सप्तम हेनरी के समय में, १४९५ ई० में जो पानिङ्गस ऐक्ट (Poyning's Act) पास हुआ उससे आइरिश पार्लामेण्ट की स्वतन्त्रता में अप्रत्यक्ष रूप से अनेक प्रकार की रुकावटें डाली गईं। इस आइरिश पार्लामेण्ट का जन्म, आयरलैण्ड के इङ्गलैण्ड के अधिकार में आजाने के एक शताब्दी बाद, १२९५ ई० में प्रथम एडवर्ड के शासनकाल में हुआ था। उस समय से पूरे दो शताब्दियों, अर्थात् १४९५ ई० तक यह पार्लामेण्ट इङ्गलिश पार्लामेण्ट से सर्वथा पृथक् और स्वतन्त्र थी। इसी वर्ष इसमें रद-बदल हुआ। उपर्युक्त पानिङ्गस ऐक्ट पास हुआ। इसके द्वारा निम्नलिखित चार रुकावटें इसकी स्वतन्त्रता के पथ में डाली गईं:—

(१) जितने ऐक्ट इङ्गलैण्ड में स्वीकृत होंगे, वे आयर्लैण्ड में भी मान्य होंगे।

(२) राजा की आज्ञा बिना वाइसराय पार्लामेण्ट की बैठक नहीं कर सकेगा।

(३) मुख्य मुख्य बिल, जो आइरिश पार्लामेण्ट में पेश किये जानेवाले हों, इङ्गलिश पार्लामेण्ट में भेजे जायं।

(४) और उसकी और राजा से स्वीकृति-प्राप्ति के बाद आइरिश पार्लामेण्ट में वे उपस्थित किये जायं।

(५) इन चार रुकावटों से साफ मालूम होता है कि यद्यपि पानिङ्गस ऐक्ट ने आयरलैण्ड के घरेलू कामों में हस्तक्षेप नहीं किया, तथापि उसने उसे इङ्गलैण्ड के आधीन करदिया। इस ऐक्ट का सच्चा (अर्थात् भयङ्कर) स्वरूप तो पहिले किसी पर प्रकट न हुआ, पर पीछे इसके जो हानिकर परिणाम हुए, उनसे आयरलैण्ड की प्रजा बड़ी दुःखित हुई।

६-तृतीय जार्ज के समय में, आयरलैण्ड की हालत और खराब होगई। उसने प्रोटेस्टेन्ट ज़मीन्दारों को नीचा दिखाना ठान लिया था। इससे उनमें विद्रोह की अग्नि भभक उठी और उन लोगों ने अमेरिका के दिखाए हुए मार्ग का अनुसरण करना निश्चय किया। इनके नेताओं में सब से प्रभावशाली इतिहास-प्रसिद्ध नेता हेनरी ग्रैटन था। इसकी आइरिश पार्लमिण्ट में बड़ी धाक थी। इसने एक बड़ी सेना भी कुछ समय के लिए तैयार करली थी। अन्त में जब इन लोगों से न रहा गया, तो सन् १७८२ ई० में डुङ्गमन् नगर में एक वृहत् सम्मेलन हुआ, जिसमें सर्व सम्मति से आयरलैण्ड में आइरिश-व्यवस्थापक स्वतन्त्रता की घोषणा करदी गई, और साथ ही साथ कैथेलिकों के लिए कैथेलिक रिलीफ़ ऐक्ट् (अर्थात् कैथेलिक क्लेश निवारक ऐक्ट्) भी पास करदिया गया।

७-इङ्गलैण्ड उस समय बड़े फेर में पड़ा। एक ओर से अमेरिका ने उसे असह्य दुःख में डाला, और दूसरी ओर से आयरलैण्ड ने गला दबाया। वह करता क्या! इङ्गलैण्ड को पानिङ्गस ऐक्ट् का सुधार करना पड़ा और आयरलैण्ड की व्यवस्थापक स्वतन्त्रता भी स्वीकार करनी पड़ी।

८-इतिहास में यह स्वतन्त्रता ग्रैटन की पार्लमिण्ट के नाम से विख्यात है। यह बीस वर्षों तक सन्तोषजनक रूप से देश का आन्तरिक प्रबन्ध करती रही। इन्हीं बीस वर्षों में आयरलैण्ड ने आश्चर्यजनक उन्नति की। इससे देश के व्यापार कृषि, और कारोबार में बड़ी वृद्धि हुई। इस बात का पता हमें उन शब्दों से लगता है जो आयरलैण्ड के घोर शत्रु लार्ड क्लेअर (Lord Clare) के मुंह से उस समय निकले थे। वे ये हैं:—

''There in not a nation on the face of the inhebited globe, which has advanced in' cultivation, in agriculture, in manufacture with the same rapidity as Ireland'.

अर्थात् संसार भर में ऐसी कोई जाति दिखाई नहीं देती, जिसने आयरलैण्ड की तरह तेज़ी से खेती, कृषि, और वस्तु निर्माण में उन्नति की हो, पर इतना सब कुछ होने पर भी इसमें दो बड़ी भूलें रह गई थीं और उन्हीं के कारण ग्रैटन पार्लमिण्ट का अन्त में नाश हुआ।

(१) पहिली भूल यह थी कि यद्यपि आयरलैण्ड को एक पृथक् पार्लमिण्ट मिलगई थी तथापि कार्यकारिणी और शासन प्रणाली के स्थापन का अधिकार आइरिश प्रिवी काउन्सिल या यों कहिये कि बृटिश सरकार के हाथों में ही रह गया था अर्थात् यह कि बृटिश सरकार को पार्लमिण्ट के क़ानून आदि के निर्माण में हस्तक्षेप करने का अधिकार अप्रत्यक्ष रूप से प्राप्त था। इतना होते भी जहां २ आयरलैण्ड को स्वतन्त्रता मिली, वहीं २ उसने अपनी उन्नति के मार्ग ढूंढ़ निकाले और उन्हें कार्यरूप में परिणत किया।

(२) दूसरी भूल यह थी कि अभी तक कैथेलिक प्रश्न का पूर्ण रूप से निपटारा नहीं हुआ था। जिस देश में साढ़े पांच भाग कैथेलिकों के होते हुए उनकी खबर न ली जाय, भला वह देश, शान्ति सुख कैसे भोग सकता है? फलड साहब (Flood) ने ठीक राय दी थी कि जबतक कैथेलिकों के प्रश्न का निर्णय न होजाय, तब तक स्वेच्छासेवकों को अपनी तलवारें नीचे न रखनी चाहिये। परन्तु ग्रैटन को अपने मित्रों और सहधर्म्मियों की समयानुकूल सहायता पर पूर्ण विश्वास था। इतना विश्वास था कि वे उनपर मूंड़ मुड़ाये हुए थे। इसलिए उन्होंने स्वेच्छासेवकों को इस कार्य में हाथ डालने के लिए उत्साहित नहीं किया। उनकी आंखें पीछे खुलीं पर तब क्या होसकता था? जब उन्होंने पार्लमिण्ट में कैथेलिकों को भी स्थान देने का प्रस्ताव किया, तो उन्हीं के सहधर्मी प्रोटेस्टेन्टों ने इसका घोर विरोध किया। विरोध क्यों न करते? इससे तो उनके अधि-

कार छीने जारहे थे। उन्हें यह याद न रहा कि कैथेलिकों के आन्दोलन का ही फल वे आइरिश पार्लमेण्ट के रूप में चख रहे थे। अब क्या था! बृटिश सरकार ने भी देखा कि सोने की चिड़िया खूब जाल में फँसी। फिर लगा षड्यन्त्र रचा जाने।

६-इधर कुछ लोगों की सहायता और सहानुभूति से, जिनमें अल्सटर के प्रेसबिटेरियन कम न थे, सन् १७६१ ई० में, थिओबाल्ड उल्फ-टोन (Theobald Wolfe Tone) नामक एक प्रोटेस्टेन्ट वकील ने यूनाइटेड आइरिशमैन (United Irishman) नामक एक संस्था स्थापित की। इसका उद्देश्य सब आयरलैण्डवासियों को बिना जाति भेद के एक में सम्मिलित कर, पार्लमेण्ट में सुधार और कैथेलिकों की गिरी हुई दशा के संस्कार के लिए आन्दोलन करना था। यही नहीं इनमें से कितनों का विचार इङ्गलैण्ड के आधिपत्य को जड़ से काट डालने का था। इसका विशेष कारण तत्कालिक फ्रेञ्च रिवोल्यूशन (French Revolution) से उभड़ा हुआ जोश था, पर इनके विरोधी प्रोटेस्टैन्ट भी सोये न रहे। उन लोगों ने भी इनके प्रतिकूल आरञ्ज लाज (Orange Lodge) नामक क्लब खोले। येही लोग जो पहिले पार्लमेण्ट के कर्ताधर्ता और स्वराज्य के लोलुप थे, इस समय उसका घोर विरोध करने लगे। क्यों नहीं! स्वार्थपरता ऐसी ही वस्तु है।

१०-पर उस समय गवर्नमेण्ट की पालिसी एक प्रकार की नहीं थी। १७६३ ई० में तो कैथेलिक क्लेश निवारक ऐक्ट (Great Catholic Relief Act) पिट साहब के ज़ोर से पास होगया। इससे प्रत्येक रोमन कैथेलिक को एक वोट देने का अधिकार प्राप्त हुआ, यद्यपि इससे उनमें से किसी को पार्लमेण्ट के मेम्बर होने का हक़ न मिला। महात्मा लार्ड फ्लेअर का महती अनुकम्पा से ग्रैटन का सुधार बिल (Reform Bill) भी पार्लमेण्ट में तिरस्कृत हुआ।

११-इनको परास्त होते देखकर, यूनाइटेड आइरिशमैन (Uited Iiishman) ने टोन के नेतृत्व में, इस काम का बीड़ा उठाया। उसने इस संस्था को माध्यम बनाकर उच्च कक्षा का आन्दोलन करना शुरू कर दिया। उन लोगों का मन्सूबा फ्रॉस से बड़ी २ नौसेनाएं मंगाकर, उन्हीं के द्वारा इङ्गलैण्ड के साथ युद्ध में प्रविष्ट होने का था; पर दुर्भाग्यवश जगद्विख्यात नेलसन की जय तलवार के सामने किसी की न चली। 'आइरिशमैन' को अपनेही देश की सामग्रियों पर निर्भर होना पड़ा। दूसरा विघ्न सफलता के मार्ग में यह भी था कि प्रायः सब ही प्रोटेस्टेन्ट इनके विरोधी थे। जो इनेगिने लोग उदार भावों के थे भी उन्हें गवर्नमेंट ने बल से दबा डाला तो भी लीन्स्टर में मुटभेड़ हो ही गई। लड़ाई में केवल दीन किसान ही काम आये। जेनरल लेक की तलवार ने उनके सिर उठने न दिये और उनकी सेना को तितरबितर कर डाला। विरोधी प्रोटेस्टेन्टों की भी खूब बन आई। उन लोगों ने विचारे कैथेलिकों से मनमानी कसर निकाली। अकथनीय अत्याचार और पाशविक व्यवहार किया गया, ख़ून की नदियां बहाई गईं! जो कुछ मन में आया किया गया!!

११-इसी समय लार्ड कार्नवालिस आयरलैंड के लार्ड लेफ्टिनेंट (Lord Lieutenant) बनाये गये। उनका विशेष कर्त्तव्य विरोधी दलों में शान्ति फैलाना और मित्रता स्थापन करना था। उन्होंने देखा कि इन झगड़ों का प्रधान कारण आइरिश पार्लमेंट के प्रोटेस्टेन्टों की अयोग्यता थी और इनका अन्त तब तक न होगा जबतक इङ्गलैंड और आयरलंड की पार्लमेंट एक में न मिला दी जाय। पिट साहब ने भी इस प्रस्ताव का समर्थन किया। ग्रैटन ने देखा कि अब तो आयरलैंड की स्वतन्त्रता चाहे किसी कारण

से हो, लुप्तप्राय हो रही है। निराशा देवी ने उनके मनोमन्दिर में अपना स्थान बना लिया। उसके जीवन का उद्देश्य स्वप्न सा दीखने लगा। अन्त में कोई सहारा न देखकर (क्योंकि कैथेलिक बड़े क्षुब्ध हो रहे थे) उन्होंने कट्टर प्रोटेस्टटों की सहायता से पार्लामेंट सम्मिलन (Parliamentary Union) के प्रस्ताव के विरुद्ध आवाज़ उठाई पर पिट ने इसके सफलता के लिए बहुत कोशिश की। उनके प्रयत्नों से यह प्रस्ताव वेस्टमिन्स्टर की पार्लामेंट में पास हो गया—पास क्यों न होता, बृटिश पार्लामेंट की तो यह करतूत ही थी। अब रहा इसे आइरिश पार्लामेंट से पास कराना यह टेढ़ी खीर थी; क्योंकि आइरिश पार्लामेंट के सब ही सदस्य प्रोटेस्टेन्ट थे। (यहां याद रखना चाहिये कि इनमें अधिक लोग ग्रैटन के, कैथेलिकों के सुधार के प्रस्ताव करने के कारण शत्रु स्वरूप थे) सफलता लाभ का उपाय न देख, पिट ने कुकर्म और वेईमानी की शरण ली। उपाधियों और घूँसों की लालच दिखाई गई। प्रोटेस्टैंटों से कहा गया कि उनकी शक्ति किसी प्रकार सम्मिलन होने पर कम न होगी। इसी प्रकार के लोभों और लालचों से सन् १८०० ई० में वह बिल आयरिश पार्लामेंट से भी पास होगया। जिन घृणित और निन्दनीय कर्मों से यह सफलता प्राप्त की गई थी उनसे उस समय की अवस्था का परिचय मिलता है। हैरल्ड स्पेंडर ने लिखा है :—

"The period of exhaustion and despair that followed in Ireland was seized upon by Castlereagh and Pitt for destroying the Irish Parliament. An immense machinary of Bribery and corruption, assisted by pledges that were broken and prophecies that failed, all working under the double shadow of rebellion and war, drove the Irish Parliament to reluctant suicide and passed into law both at Dublin and Westminister, the Union Act of 1800"

अर्थात् थकावट और निराशा के अन्धकार ने, जिससे आयरलैंड आच्छादित हो गया था, कैसलरी और पिट को आयरिश पार्लामेंट के नाश करने का मौक़ा दिया। घूंस और वेईमानी के विशाल यन्त्र ने उन प्रतिज्ञाओं और भावी कथनों की सहायता से जो पीछे कभी पूरे नहीं किये गये, विद्रोह और युद्ध की दोहरी छाया में काम करते हुए आइरिश पार्लामेंट को अनभिलषित आत्महत्या करने के लिए बाध्य किया और डबलिन और वेस्टमिन्स्टर दोनों पार्लामेंटों में १८०० ई० के यूनियन ऐक्ट को क़ानून में परिणत कर दिया।

आप दूसरी जगह और भी कड़े शब्दों में कहते हैं कि :—

"That great light of the Irish Parliament passed suddenly into darkness. The chamber which once resounded with the eloquence of Flood and Grattan passed over to the money changers, and ever since the clink of coin has taken the place of the silver voices of the Irish orators."

अर्थात् आइरिश पार्लामेंट की चमचमाती हुई वह रोशनी देखते देखते अन्धकार में विलीन होगई। जो भवन फ्लड और ग्रैटन की ओजस्विता से प्रतिध्वनित हुआ करता था वह सराफों के टाट बिछाने का स्थान होगया और उसी समय से रुपैयों की खनखनाहट ने आयरिश वक्ताओं के मधुर स्वर का पद छीन लिया है।

१२-इस यूनियन ऐक्ट से आइरिश पार्लामेंट उठा दी गई। उसके स्थान में चार आइरिश पादड़ियों (जिनका सम्बन्ध केवल धर्म और गिरजा से था) और अट्ठाइस २८

पीयरों* को यूनाइटेड किङ्गडम की लार्ड सभा में और १०० प्रतिनिधियों को कामन्स सभा में बैठने का अधिकार प्राप्त हुआ। इङ्गलैंड और आयरलैंड के बीच स्वतन्त्र व्यापार का द्वार खोल दिया गया। उनके गिरजा और सेनाएं मिला दी गईं; पर न्यायालय, लार्ड लेफ्टिनेन्ट का पद और कार्य्यकारिणी पृथक् ही रहीं।

१३-कितने पाठकों के हृदय में यह आशा होती होगी कि आयरलैंड के भाग जागने के दिन अब आगये; क्योंकि ऐसा ही साधारण दृष्टि से मालूम भी होता है। पर यदि वे इतिहास का मथन कर देखें तो उन्हें मोती के बदले मिट्टी मिलेगी। पहले तो सचमुच आयरलैंड की जनसंख्या बढ़ती हुई दीख पड़ी और उसकी कृषि और व्यापार भी उन्नत होते नज़र आये पर पीछे परिणाम कुछ और ही हुआ। आलू की खेती के प्रचार ने लोगों को थोड़े ही भोजन से सन्तुष्ट किया, जिसका भयङ्कर परिणाम १८४७ ई० का आइरिश अकाल हुआ। इसी घटना ने बृटिश सरकार की आइरिश पार्लमेंट तोड़ देने की न्यायपरता और दूरदर्शिता भलीभांति दिखला दी। यह बात न थी कि गवर्नमेंट ने उसके लिए कुछ किया नहीं। बात यह थी कि वह आयरलंड की स्थिति समझने में अयोग्य थी और समझने पर भी सहायता पहुंचने में देर हुई। २० वर्षों में बीस २ लाख आदमी करालकाल के ग्रास बन बैठे। साथ ही डेनिअल ओकांनेल के कैथेलिक क्लेशनिवारक ऐक्ट के पास हो जाने (जिसका वर्णन आगे किया जायगा) और किसानों के ज़मींदारों पर विजय लाभ करने से उनमें विरोधाग्नि भभक उठी। इसका परिणाम प्रजा के लिए अत्यन्त अहितकर हुआ। दूसरी बात यह भी थी कि ज़मीन्दारों को पशुओं और मवेशिओं के पालन करने का कार्य्य किसानों के कार्य्य से अधिक अच्छा जँचा। इसके कारण १८४० से १८७० तक के बीच बहुत से कैथेलिक आयरलैंड छोड़कर अमेरिका में जा बसे। हमेशा किसानों और ज़मीन्दारों में फूट बनी रही। अब पिट का ध्यान कैथेलिकों की अवस्था सुधारने की ओर गया। उन्होंने इस सम्बन्ध का बिल पास कराने की प्रतिज्ञा पहिले ही कर ली थी पर उनके साथियों में से किसी ने इसकी ख़बर गुप्त रीति से बादशाह जार्ज के कानों तक पहुंचा दी। जार्ज तो पहिले ही से क्रुद्ध था, उसने यह सुनते ही कहा कि जो इस प्रकार का प्रस्ताव सभा में उपस्थित करेगा उसे मैं अपना निज का शत्रु समझूंगा। पर पिट ने किसी की न सुनी और जार्ज से ही इसकी चर्चा की। साथ ही धमकी भी दी कि उसके प्रस्ताव की अस्वीकृति उसके पदत्याग का कारण होगी।

१४-उस समय इङ्गलैंड अपने में न था। उसका फ्रांस के अधिपति नैपोलियन के साथ घोर युद्ध हो रहा था। जार्ज पागल सा होगया था क्योंकि उस समय उसका स्वास्थ्य अच्छा न था। ऐसी अवस्था में पिट ने सोचा कि कैथेलिकों के उद्धार का रोना रोकर राजा को दुःखी और हतोत्साह करने के बदले उसमें साहस और बल देना ही अधिक उपयोगी और समयानुकूल होगा। १८०१ ई० में पिट के पदत्याग के बाद ही इङ्गलैंड का राज्यप्रबन्ध शिथिल पड़ गया। आइरिश यूनियन ने फलों की जगह कांटे बोये, प्रोटेस्टेन्टों का रोब ज्यों का त्यों बना रहा। बिचारे कैथेलिकों की दशा का सुधार कुछ भी न हुआ। फल यह हुआ कि सब कैथेलिक आइरिश यूनियन के पक्षपाती होने के बदले उसके कट्टर विरोधी होगये। सच बात तो यह है कि आइरिश यूनियन उनके लिए नरक होगया।

१५-२० वर्षों तक आयरलैंड में इसके संबन्ध में कोई महत्वपूर्ण घटना नहीं हुई। पर सभी

---

* ये लोग भारतवर्ष के बड़े बड़े ज़मीन्दारों, नवाबों और छोटे छोटे राजाओं के बराबर होते हैं।

उदारहृदय राजनीतिज्ञों का ध्यान इस ओर था। वे लोग रात दिन कैथेलिकों के उद्धार का स्वप्न देखा करते थे। १८२३ ई० में इस प्रश्न ने फिर ज़ोर पकड़ा। इस बार इसका नेता उपर्युक्त डेनियल ओकानेल (Daniel O' Connell) नामक एक कुलीन कैथेलिक था। यह एक प्रभावशाली वक्ता और आन्दोलनकर्ता था। उसकी वाक्शक्ति में विजली का असर था। इन गुणों से मुग्ध होकर सारा आयरलड इसकी उपासना करने लगा। उसने एक कैथेलिक सभा खोली, जो शीघ्र ही आयरलैंड में एक शक्ति होगई लेकिन इसके अपूर्व बल और गरम आन्दोलन को देखकर पार्लामेंट ने उसे १८२५ ई० में उन्मूल कर दिया। पर गरम दल वाले भी कानों में तेल डालकर नहीं बैठ गये। उन्होंने "बीती ताहि बिसार दे आगे की सुध ले" इस उपदेश को हृदयङ्गमकर, एक दूसरी समिति झट से खोल दी, जो सर्वदा अविश्रान्त स्वर से आन्दोलन करती रही। परिणाम यह हुआ कि कैथेलिक किसानों ने ज़मीन्दारों को वोट न देकर, अपने ख्याल के लोगों को वोट देना शुरू कर दिया। ओ कानेल भी सर्व्व सम्मति से एक बार पार्लामेंट के लिए प्रतिनिधि चुना गया; पर कैथेलिक होने के कारण वह उस पद पर ठहर न सका उसके चुनाव ने आयरलैंड में इतनी हलचल मचा दी कि ऐसा प्रतीत होने लगा कि प्रोटेस्टेन्टों और कैथेलिकों में लड़ाई हुए बिना न रहेगी।

१६-सन् १८२६ ई० का साल कैथेलिकों के लिए कुछ आनन्द का हुआ। इसी वर्ष पील और वेलिङ्गटन (Peel and Wellington) ने, जो पुरानी लकीर के फकीर होते हुए भी समझदार और उदारचेत्ता थे, पार्लामेंट में इस भाव का बिल पेश किया कि कैथेलिकों को पार्लामेंट में स्थान दिया जाय, पर बहुत ग़रीब कैथेलिकों को वोट देने का अधिकार न दिया जाय, जिसके कारण ओकानेल का चुनाव सम्भव हुआ था। इससे गरम दल के टोरियो (Tories) में बड़ी हलचल मच गई। साथ ही इनकी सहायता करने को प्रोटेस्टेन्टों ने भी ज़ोर बांधा। पर किसी का किया कुछ न हुआ। बिल दोनों सभाओं से पास हो गया और ओकानेल ने बड़े रोब दाब से नये चुनाव के बाद निर्विवाद रूप से पार्लामेंट में प्रतिनिधि का आसन ग्रहण किया। इस मांगी मुराद के पाते ही उसका साहस और बढ़ा और उसने इस बार यूनियन ऐक्ट के सुधार के लिए बड़ा ही ज़ोर और सजीव आन्दोलन आरम्भ कर दिया।

१७-इसके बाद ३० वर्षों तक होमरूल से सम्बन्ध रखनेवाली एक के सिवाय कोई दूसरी घटना नहीं हुई। यह घटना १८४७ ई० का वही अकाल था, जिसका ज़िक्र ऊपर किया जा चुका है। इस अकाल में लोग दाने दाने को तरसने लगे। यदि सरकार कुछ इन्तज़ाम भी करती तो व्यवसायी लोग उस पर चढ़ बैठते और उसके माथे कलङ्क का टीका लगाते कि वह अर्थशास्त्र के विरुद्ध आचरण कर उनकी आमदनी के मार्ग में कांटे बो रही है। इस भय से सरकार भी कुछ करने न पाती। दूसरे महत्व की बात यह है कि यदि वह चाहती भी तो कैसे करती? यह काम तो आयरलैंड का निज का राज्य ही उत्तम प्रकार से कर सकता था। दूर की सरकार कितना इन्तज़ाम और देख भाल रख सकती है? परिणाम यह हुआ कि जब गरीब आइरिशों से कुछ बन न पड़ा तब वे झुण्ड के झुण्ड अमेरिका रवाना हुए और वहीं जा बसे। कुछ इङ्गलैंड और स्काटलैंड में भी गये पर इनका और इनके सन्तानों का मन स्वाभाविक रीति से अंगरेज़ों से खट्टा हो गया, उनके हृदय कानन में प्रतिकार रूपी अग्नि की चिनगारी आ गिरी और धीरे २ सुलगने लगी। इसका परिणाम बड़ा विषम और भयङ्कर हुआ।

१८-१८६३ ई० में कुछ अमेरिकावासी आइरिशों ने आपस में मिलकर एक गुप्त समिति का सङ्गठन किया। इसके सदस्य "फ़िनियन्स" (Fenians) के नाम से पुकारे जाते थे। इस सभा का मुख्य उद्देश्य आयरलैण्ड में स्वराज्य स्थापित करना था। इसकी उन्नति दिन दूनी, रात चौगुनी, होती गई। कितने आइरिशों ने, जिन्होंने अमेरिका में रहकर युद्ध विद्या सीखी थी, और जो बन्दूक तलवार चलाने और तोपें दागने में नज़र रखते थे, अपने नाम उस समिति में लिखवाये। इन तैयारियों ने अपना जोश १८६७ साल में दिखलाया। चारों तरफ़ कोने कोने में सार्वजनिक विद्रोह की बाढ़ आगई। नाना प्रकार के अन्याय कर्म भी उन लोगों ने किये। बहुत से आइरिश बन्दियों को कारागार से भगा लेजाने के प्रबन्ध किये गये। कलर्कनवेल जेल (Clerkenwell Prison) की दीवालें, जिसमें फ़िनियन नेतृगण कैद थे, बारूद और डीनामाइट से उड़ा दी गईं और इसी प्रकार के अनेक उपाय इङ्गलैण्ड की नींद तोड़ने के लिए किये गये। अब आयरलैण्ड के अच्छे दिन आये। जगत्प्रसिद्ध ग्लैडस्टन १८३८ में सचिव पद से विभूषित किये गये। लिबरलों की ख़ूब बन आई। अब क्या था दनादन सुधार सम्बन्धी ऐक्ट पार्लामेण्ट से पास होने लगे। १८६९ ई० में आइरिश चर्च के उच्छेदन और आवृतिदान सम्बन्धी (The disestablishment and disendowment of the Irish Church) और १८७० ई० में भूमि और शिक्षा सम्बन्धी ऐक्ट पास किये गये। इनसे आयरलैण्ड के ग़रीब कैथेलिकों का बड़ा उपकार हुआ। पहिले ऐक्ट से बिचारे किसान ज़मीन्दार के चंगुलों से मुक्त किये गये और दूसरे से उन्हें अनिवार्य शिक्षा मिलने लगी (न मालूम भारत को यह सौभाग्य कब प्राप्त होगा) इससे लड़के और लड़कियां पाठशाला जाने के लिए बाध्य की गईं पर क्या इन सुधारों से आयरलैण्ड का पूर्ण कल्याण होनेवाला था? धीरे धीरे आन्दोलन की अग्नि सुलगती ही रही। अन्त में १८७६ ई० में यह इतने ज़ोर से भभकी कि सरकार के तो होश ठिकाने न रहे। "आयरलैण्ड को स्वराज मिले" इसी की सब जगह रट थी। इसका नेता चार्ल्स स्टुअर्ट पार्नल (Charles Stuart Parnall) नामक एक प्रोटेस्टैन्ट था। इसने अपने कई मित्रों की सहायता से एक राजनैतिक मण्डली खोली। इसका नाम "आइरिश राष्ट्र मण्डली" (Irish Nationalist party) पड़ा। इन लोगों ने मिलकर बड़े ज़ोर से आन्दोलन किया। ये पार्लामेण्ट को रुला रुला मारते। कभी २ पार्लामेण्ट को सारी रात बैठना पड़ता। पर इतने पर भी इस आन्दोलन का सारगर्भ परिणाम न हुआ। क्रमशः

कीर्ति-स्तवन ।

[लेखक—श्रीयुत पं० बद्रीनाथ भट्ट ।]

(राग-थियेट्रिकल)
सब जग है तेरी माया,
जड़ चैतन्य सभी में तूने,
अपना रूप दिखाया । सब जग०
जब अधर्म ने शीश उठाया,
क्षण में तूने गर्व मिटाया ।
दया दिखाकर दीन जनों पर,
दीन दयालु कहाया । सब जग०

हे जगपालक हमें शक्ति दे,
चरणों में अनुरक्ति भक्ति दे,
भारत हित हम अर्पण करदें,
अपनी नश्वर काया । सब जग०
हम सब उठें खड़े हों मिलकर,
बन्धु भाव में बँधें परस्पर,
प्रेम-सिन्धु में सभी डुबादे,
अपना और पराया । सब जग०

बोलपुर ब्रह्मविद्यालय ।

[लेखक—श्रीयुत रामनारायण मिश्र ।]

हवड़ा से ९९ और बर्द्वान से ३२ मील दूर ईस्ट इंडियन रेलवे की उस शाखा पर जो हवड़ा से मुकामा को जाती है, बोलपुर नामक एक अच्छा छोटा सा क़सबा है । वीरभूमि ज़िले में यह स्थान व्यापार के लिए प्रसिद्ध है । यहां एक थाना, एक मुन्सिफी कचेहरी और ईसाई पादरियों का एक मिशन है ।

रेल के स्टेशन से अनुमान दो मील पर पक्की सड़क के किनारे बंगाल के प्रसिद्ध ब्रह्मधर्मनेता स्वर्गवासी महर्षि देवेन्द्रनाथ टागोर का बनवाया हुआ शान्तिनिकेतन स्थान है। उन्हीं महर्षि के पुत्र श्रीयुत "रवीन्द्रनाथ टागोर" वर्तमानकाल में अपनी अनुपम और उत्कृष्ट कविता तथा अपने शुद्ध आचरण और सद्विचारों के कारण भारत के गौरव को सभ्य जगत में बढ़ा रहे हैं ।

शान्तिनिकेतन ।

शान्तिनिकेतन ४० वर्ष हुए स्थापित किया गया था । इसके बनवाने का उद्देश्य यह था कि धार्मिक लोग वृद्धावस्था में वहां रहकर ईश्वर की उपासना में अपना समय व्यतीत करें । यह स्थान बिलकुल ऊसर था । महर्षि ने यहां पेड़ लगवाए, मोर पाले और अनेक छोटे और बड़े भवन बनवाए । अब भी इसके चारों ओर ऊसर भूमि है । यहां से संथाल परगना की दुमका की पहाड़ियां दिखलाई देती हैं । निकटवर्ती ग्रामों में संथाल लोग रहते भी हैं ।

दुमका की पहाड़ियों की ओर निहारते हुए पेड़ों की सुन्दर वाटिका में एक अत्यन्त स्वच्छ स्थान में एक संगमर्मर का आसन है । यहां महर्षि बैठते थे । इस आसन के सामने संगमर्मर पर "शान्तं शिवमद्वैतम्" खुदा हुआ है । इस आसन के दूसरी तरफ दूसरे संगमर्मर पर बँगला भाषा में

तिनी
आमार प्रानेर आराम, मनेर आनंन्द,
आत्मार शान्ति

ये वाक्य खुदे हैं । इस स्थान को 'छतिम तला' कहते हैं । यहां लोग जूता उतार कर जाते हैं ।

शान्तिनिकेतन से सम्बन्ध रखनेवाले दो भवन हैं । एक निवास स्थान है । यहां ही अतिथि ठहराए जाते हैं । इसी में महर्षि भी रहते हैं । यहां रहनेवालों को नीचे लिखी शर्तों पर चलना पड़ता है ।

(१) परमेश्वर की उपासना करना ।

(२) किसी धर्म पर आक्षेप न करना ।

(३) मनोरंजन की कोई ऐसी बात न करना जो धर्म और सदाचार के विरुद्ध हो ।

(४) किसी प्रकार की मूर्ति पूजा न करना ।

बहुधा शिक्षित लोग अपना स्वास्थ्य सुधारने यहां आया करते हैं ।

दूसरा भवन ब्रह्म मंदिर है । यह बिलकुल शीशे का बना हुआ है । इसकी इमारत बड़ी सुन्दर और सादी है । यहां एक डाकख़ाना भी है ।

ब्रह्मविद्यालय ।

ऐसे रम्य रमणीक और सद्विचार-उत्तेजक स्थान में कवि-शिरोमणि श्रीरवीन्द्रनाथ टागोर ने जनवरी १९०१ में ब्रह्मविद्यालय स्थापित किया । इसके लिए उन्होंने किसी से धन नहीं मांगा और अब भी वे इसके लिए किसी प्रकार का चन्दा नहीं लेते । महर्षि की बची हुई सम्पत्ति का कुछ अंश इसके व्यय में काम आता है । रवीन्द्र बाबू ने जितनी पुस्तकें लिखी हैं उनकी कुल आय विद्यालय में लगती है । विद्यार्थी १८) मासिक शुल्क देते हैं । इस पर भी यदि व्यय कुछ अधिक हो जाता है तो रवीन्द्र बाबू अपने पास से उसका घाटा पूरा करते हैं । इसके प्रबन्ध के लिए एक कमेटी है परन्तु कार्य का कुल भार रवीन्द्र बाबू पर ही पड़ता है । कभी कभी उनका हाथ बटाने के लिए प्रवासी के परम श्रद्धास्पद सम्पादक श्रीयुत रामानन्द चट्टोपाध्याय कुछ दिनों के लिए बोलपुर चले आया करते हैं ।

वर्तमान समय की शिक्षाप्रणाली ।

भारत की वर्तमान समय की शिक्षाप्रणाली में अनेक दोष हैं । वह बालकों के स्वभाव को बिगाड़ कर अस्वाभाविक बनाती है । उनकी रहन सहन कृत्रिम हो जाती है । उनमें आवश्यक स्वातंत्र्य का लेश मात्र नहीं आने पाता । अध्यापक उनको मनुष्य जीवन के लिए तैयार नहीं करते, वे उन्हें केवल कुछ परीक्षाएं पास करा देते हैं । ये दोष मनुष्यों की सामाजिक और आर्थिक अवस्था में परिवर्तन का परिणाम हैं । नगरों में मनुष्य संख्या बढ़ती जाती है । सभ्य कहलानेवाले देशों में नगर भी बढ़ते जाते हैं । लोगों को थोड़ी ही ज़मीन में रहना पड़ता है । ऐसी ही तंग जगहों में स्कूल खोले जाते हैं । स्वस्थ अस्वस्थ, हृष्ट-पुष्ट और रोगी बालक सब एक ही जगह छोटी २ कोठरियों बैठकर पढ़ते हैं । सब काम टाइम-टेबुल के अनुसार होता है । यदि पहला घंटा ड्रिल या क़वायद का है तो उस घंटे में ड्रिल करना आवश्यक है चाहे पन्द्रह ही मिनिट पहले लड़के घर से भोजन करके क्यों न आए हों । बालकों से दंड की धमकी देकर काम लिया जाता है । वह अध्यापक जो लड़कों में मिल जुलकर रहे, उनसे दिल खोलकर बातचीत करे अच्छा नहीं समझा जाता । परीक्षाओं को पास किए बिना जीविका का सुगम प्रबन्ध होना कठिन होता जाता है । भारतवर्ष में इस शोचनीय अवस्था का अभी आरम्भ ही है । इंगलैंड, जर्मनी, अमेरिका में ये कठिनाइयां पराकाष्ठा को पहुंच चुकी हैं । इसलिए वहां अनेक उत्साही और अनुभवी विद्वान शिक्षा के सुधार की धुन में लगे हुए हैं । आजकल इटली के मान्टसोरी नामक रमणी के स्कूलों की चर्चा सारे योरप में फैली हुई है । स्पेन का फेरर नामक सुधारक इसी लिए मार डाला गया कि उसकी चलाई हुई शिक्षाप्रणाली सनातन प्रणाली के बिलकुल विरुद्ध थी ।

सुधार की ओर ध्यान ।

सौभाग्य की बात है कि भारतीय देशभक्तों का ध्यान शिक्षाप्रणाली के सुधार की ओर जा रहा है। गवर्नमेंट भी इस ओर ध्यान दे रही है। परन्तु अभी इस सम्बन्ध में लोगों में बहुत मतभेद हैं। किसी की सम्मति में सरकार के अनेक चलाई हुई प्रणाली में धार्मिक शिक्षा का जारी करना ही पर्याप्त है। इसी विचारवाले लोग मिशन, इसलामिया, हिन्दू आर्य इत्यादि स्कूल खोल रहे हैं। कुछ लोगों का मत है कि प्राचीन प्रणाली से शिक्षा देना अच्छा है। ऐसे लोग गुरुकुल, ऋषिकुल इत्यादि खोल रहे हैं। कुछ लोग व्यापार, कलाकौशल की शिक्षा प्रदान करने के लिए संस्थाएं खोल रहे हैं। इन सब के विचार आदर के योग्य हैं। सब अपने मत के अनुसार देश की अवस्था को सुधारने की चेष्टा कर रहे हैं।

ब्रह्मविद्यालय के उद्देश्य ।

पहली जुलाई १९१३ को मैं इस विद्यालय को देखने गया। यह विद्यालय इस उद्देश्य से खोला गया है कि बालक यहां प्रकृति देवी की गोद में शिक्षा पावें। उनके विचार उच्च हों और उनकी मानसिक शक्ति प्रबल हो। रवीन्द्र बाबू प्रकृति के उपासक हैं। उनको एकान्त सेवा प्रिय है। कोलाहल और मलीनता से वे दूर रहते हैं। इसी लिए उन्होंने अपने विद्यालय का स्थान ऐसा सुन्दर चुना है।

शिक्षाप्रणाली ।

इस विद्यालय में पढ़नेवाले लड़के और यहां के अध्यापक रात दिन यहीं रहते हैं। जब मैं वहां गया उस समय बालकों की संख्या १८० और अध्यापकों की १८ थी जिनमें ६ Graduates (M. A, B. A, और B. Sc.) थे और दो ने अमेरिका और इङ्गलैंड में शिक्षा पाई थी। ये सब महाशय बंगदेशीय हैं। बालकों में दो महाराष्ट्र एक नैपाली और अन्य बंगाली हैं। एक बर्मा निवासी छात्र यहां से पढ़ कर विद्यालय के व्यय से विलायत शिक्षा पाने गया है। वहां से आकर वह इसी विद्यालय की सेवा करेगा। यहां अन्त्यज जातियों के बालक भी भरती किये जाते हैं। बंगाल में 'साहा और 'नव शूद्र' बड़े साहसी और बुद्धिमान हैं परन्तु ये नीच समझे जाते हैं। यहां सब जाति के बालकों के साथ एक समान बर्ताव होता है। भोजनशाला में सब लोग एक साथ खाते हैं परन्तु भोजन बनानेवाले सब ब्राह्मण हैं। खाना सब लोग ज़मीन में पटरों पर बैठकर खाते हैं। विद्यार्थी भोजन के समय शरीर पर वस्त्रादि भी सूक्ष्म ही रखते हैं। सब बालक ब्रह्मचारी हैं। ब्याहा हुआ बालक यहां भरती नहीं हो सकता। बालक स्वतंत्रतापूर्वक पेड़ों पर चढ़ते हैं। झूला झूलते और गाते हैं। थोड़ी बहुत बागवानी भी करते हैं। कक्षाएं भी पेड़ों के नीचे लगती हैं। किसी सायेदार पेड़ के नीचे आसन पर अध्यापक महाशय और कम्बल पर लड़के बैठ जाते हैं। इसी प्रकार प्रायः सभी कक्षाओं में बाहर खुली हवा में शिक्षा दी जाती है। धूप कड़ी होने पर अथवा पानी बरसने पर पढ़ाई मकान के अन्दर होती है। प्रति बुधवार को अनध्याय मनाया जाता है। जब छुट्टियां बहुत दिनों के लिए होती हैं तब बालक पैदल ऐतिहासिक स्थानों पर जाते हैं। वीरभूमि के ज़िले में बंगाल के प्रसिद्ध कवि चन्डीदास का जन्म हुआ था। कभी कभी बालक उस स्थान को देखने जाते हैं। पढ़ाई सब बंगभाषा में होती है। दो वर्ष से कुछ छात्र यहां से प्राइवेट Matriculation की परीक्षा देते हैं और उनमें से अधिक पास भी हुए हैं। यहां की पाठ-विधि निराली है। कक्षाओं का विभाग विषय के अनुसार है। सम्भव है कि एक बालक गणित पढ़ने के लिए नीचे की कक्षा में जाता हो और बँगला साहित्य पढ़ने

के लिए ऊपर के दर्जे में। जो बालक किसी कक्षा में सर्वोत्तम होता है उसी के नाम से वह कक्षा प्रसिद्ध होती है। विषयों का निर्धारण करने और प्रत्येक विषय पर पुस्तकें चुनने के लिए ६ अध्यापक चुने जाते हैं। प्रधान अध्यापक हर साल नया चुना जाता है। अध्यापकगण आपस में किसी को बहुमत से प्रधान चुनते हैं। इस प्रकार कोई किसी को बड़ा छोटा नहीं समझता और हर एक को शासन इत्यादि का अनुभव प्राप्त करने का अवसर मिलता है। पक्ष में एक बेर आश्रम का एक सम्मेलन होता है। उसमें प्रायः सब अध्यापक उपस्थित रहते हैं परन्तु उसका सभापति बालकों ही में से चुना जाता है। इस सम्मेलन में राजनैतिक विषयों पर विचार नहीं किया जाता।

विद्यालय में यदि कोई बालक दंड के योग्य काम करता है तो उसका न्याय बालकगण ही करते हैं। लड़कों ही में से पंच चुने जाते हैं। अपराधी की ओर से कुछ लड़के वकालत करते हैं। पंच की आज्ञा मानना आवश्यक है। दंड का रूप यह होता है कि अपराधी को कुछ दिनों तक झाड़ू देना पड़ता है। यहां प्रत्येक बालक अपने स्थान को स्वयं झाड़ू से साफ़ करता है।

बालकों का स्वास्थ्य।

जहां की वायु शुद्ध हो, जहां ब्रह्मचारियों का निवास-स्थान हो, जहां पूर्ण स्वतन्त्रता हो और जहां पेड़ों के नीचे पढ़ाई हो सम्भव नहीं कि वहां के रहनेवालों का स्वास्थ्य ख़राब हो। ऊसर पर मैदान में लड़के फुटबाल खेलते हैं। यदि यहां दंड, मुग्दर, कुश्ती इत्यादि का भी प्रबन्ध होजाए तो बालकों की शारीरिक अवस्था और भी उन्नत हो। आश्रम के प्रबन्ध में एक गौशाला भी है। बालकों को प्रतिदिन गाय का ताज़ा दूध दिया जाता है। बाहर से बहुधा जो रोगी बालक आजाया करते हैं उनके हितार्थ यहां पर एक अस्पताल भी है।

धर्म और चरित्र सम्बन्धी शिक्षा।

इस विद्यालय के संचालक ब्रह्मधर्म के अनुयायी हैं। ब्रह्मधर्म वालों के सम्बन्ध में सर्वसाधारण का विश्वास यही है कि ये लोग विदेशीय रहन-सहन के अनुकरण करनेवाले, ईसाइयों को अपना पथप्रदर्शक समझनेवाले और जातीयता के भाव से शून्य होते हैं। परन्तु यहां की अवस्था इसके बिलकुलही विरुद्ध है। बङ्गदेशीय होने पर भी यहां के छात्र और अध्यापक मछली और मांस से परहेज़ करते हैं। सब मिलकर उपनिषदों के मन्त्र गाते हैं, नमस्कार, प्रणाम भी प्राचीन आर्य रीति से करते हैं। नंगे पैर धोती, कुर्ता अथवा दुपट्टा पहने फिरते हैं। प्रत्येक बालक के लिए स्नान सन्ध्या करना आवश्यक है। लड़के अपना आसन लेकर प्रातःकाल और सायङ्काल ऊसर के मैदान में चले जाते हैं और शान्त होकर ईश्वर उपासना करते हैं। यहां से २ मील के अन्दर संथालियों का एक ग्राम है। इसमें यहां के बालकों ने एक नाइट स्कूल खोल रक्खा है। इसमें पारी पारी से ऊपर की कक्षा के बालक पढ़ाने जाते हैं।

विद्यालय में एक सुन्दर पुस्तकालय है। इसमें संस्कृत ग्रन्थों का अच्छा संग्रह है। बालकों को अच्छी पुस्तक पढ़ने का उपदेश किया जाता है।

जहां रवीन्द्र बाबू का निवासस्थान हो वहां की वायु में काव्य की लहरें बहना आश्चर्य नहीं है। बालकों का यहां अपने आप गाने का मन चाहता है। यदि यहां सङ्गीत शास्त्र अथवा गान विद्या की शृङ्खलाबद्ध शिक्षा हो तो अति उत्तम हो। प्रति दिन प्रातःकाल और सायंकाल सम्मेलन के आदि और अन्त में रवीन्द्र बाबू की रचित कविताएं गाई जाती हैं। उनमें से दो नीचे उद्धृत की जाती हैं।

जन गण मन अधिनायक,
जय हे भारत-मान्य विधाता !
पञ्जाब सिन्धु गुजरात मराठा,
द्राविड़, उत्कल, वङ्ग,
विन्ध्य हिमाचल यमुना गङ्गा,
उच्छल जलधि-तरङ्ग;
तव शुभ नाम जागे, तव शुभ आशिष मांगे,
गाहे तव जय गाथा !

जनगण मङ्गलदायक,
जय हे भारत भाग्य विधाता ।
जय हे जय हे जय हे,
जय, जय, जय, जय, हे ।

अहरह तव आह्वान प्रचारित,
शुनि तव उदारवाणी;
हिन्दू बौद्ध शिख जैन,
पारसिक मुसलमान खृष्टानी;
पूरब पश्चिम आसे, तव सिंहासन पाशे,
प्रेमहार हय गाँथा !
जनगण ऐक्य विधायक,
जय हे भारत-भाग्य विधाता !

जय हे, जय हे, जय हे,
जय, जय, जय, जय हे ।
पतन अभ्युदय बन्धुर पन्था,
युग युग-धावित यात्री,
हे चिरसारथि तव रथ चक्रे,
मुखरित दिन रात्री ।
दारुण विप्लव माझे, तव शङ्खध्वनि बाजे ।
सङ्कट दुःख त्राता ।
जनगण पथपरिचायक,
जय हे भारत भाग्य विधाता !
जय हे, जय हे, जय हे,
जय, जय, जय, जय, हे ।

घोर तिमिरघन निविड़ निशीथे,
पीड़ित मूर्च्छित देशे,
जाग्रत छिल तव अविचल मङ्गल
नतनयने अनिमेषे ।
दुःस्वप्ने आतङ्के, रक्षा करिले अङ्के,
स्नेहमयी तुमि माता ।
जनगण दुःखत्रायक,
जय हे भारत-भाग्य विधाता !
जय हे जय हे, जय हे,
जय, जय, जय, जय हे ।
रात्रि प्रभातिल उदिल रविच्छवि,
पूर्व उदय गिरि भाले !
गाहे विहङ्गम, पुण्य समीरण,
नवजीवन रस ढाले ।
तव करुणारुण रागे, निद्रित भारत जागे,
तव चरणे नत माथा ।
जय जय जय हे जय राजेश्वर,
भारत-भाग्य विधाता !
जय हे, जय हे, जय हे,
जय, जय, जय, जय हे ।

शान्तिनिकेतन ।

आमादेर शान्तिनिकेतन,
आमादेर सबहते आपन ।
तार आकाश भरा कोले,
मोदेर दोले हृदय दोले;
मोरा बारे बारे देखितारे नित्यइ नूतन !
मोदेर तरुमूलेर मेला (Gathering),
मोदेर खोला माठेर खेला।
मोदेर नील गगनेर सोहाग,
माखा सकाल सन्ध्यावेला ।
मोदेर शालेर छाया बाँथि,
बाजाय बनेर कलगीति ।
सदाइ पातार नाचे मेते,
आछे आमलो की कानन ॥
आमरा येथाय मरि घुरे,
सेजे यायना कभु दूरे ।
मोदेर मनेर माझे प्रेमेर से,
तार बांधा सुरे ये तार ।
मोदेर मनेर सङ्गे प्राणे,
से ये मिलिरोछे एक ताने ।

मोदेर माइयेर सङ्गे भाइके,
सेजे करेछे एकमन ॥

इन कविताओं से इस बात का भलीभाँति परिचय मिल जायगा कि छात्रों में अपने विद्यालय के लिए प्रेम और सन्मान उत्पन्न किया जाता है और बालकों को भारतवर्षमात्र से स्नेह करने की शिक्षा दी जाती है।

इस सम्बन्ध में रवीन्द्र बाबू से हमारी एक प्रार्थना है। जब मैं विद्यालय में गया तो मुझे अध्यापकों और छात्रों से अङ्गरेज़ी भाषा में वार्तालाप करनी पड़ी। पर इनमें अनेक ऐसे थे जो अङ्गरेज़ी नहीं जानते थे इससे मैं वहां की पाठविधी की पूर्ण जाँच नहीं कर सका और न मैं उनको अपने भाव समझा सका। वे भी अपने भाव मुझे नहीं समझा सके। भारतवासी मात्र से प्रेम तभी उत्पन्न होसकता है जब कि एक प्रान्त के निवासी दूसरे प्रान्त के लोगों से मिलें और एक दूसरे को अपना भाव समझा सकें। रवीन्द्र बाबू ऐसे मननशील और अनुभवी देशभक्त को यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि भारतवर्ष में हिन्दी प्रायः सभी प्रान्तों में थोड़ी बहुत बोली जाती है। फिर यदि वे अपने विद्यालय में जिसके वेही स्वतन्त्र संचालक हैं थोड़ी हिन्दी भाषा की पढ़ाई आरम्भ करदें तो जो युवक ब्रह्मविद्यालय में पढ़ते हैं वे उनकी कविता में बतलाए हुए आदर्श को शीघ्र ग्रहण करलेंगे और सुगमता से उनको सारा भारतवर्ष एक देश और समस्त भारतवासी बन्धु मालूम होंगे। हिन्दी भाषा के पढ़ाने में बहुत समय नहीं लगेगा। विद्यालय की पढ़ाई ८ वर्ष में समाप्त होती है। यदि अन्तिम चार वर्षों में छात्रों को हिन्दी भाषा और हिन्दी साहित्य के ग्रन्थ भी पढ़ाए जायं तो वे हिन्दी के पण्डित होसकते हैं। परन्तु यदि हिन्दी साहित्य पढ़ाने की ओर रुचि न हो तो हिन्दी भाषा का ज्ञान तो ६ महीने में साधारणतः बहुत अच्छा होसकता है। हमारी परमेश्वर से प्रार्थना है कि इस विद्यालय के द्वारा देश की सच्ची सेवा हो।

अभ्यर्थना।

[लेखक—"कविकुमार" महेश्वर प्रसाद मिश्र, साहित्याचार्य।]

तुम में हम में कुछ भेद नहीं।
तुम और नहीं हम और नहीं॥
तुम हो न जहाँ वह ठौर नहीं।
तुमको तज के कुछ और नहीं॥ १॥

हममें तुम हो तुम में हम हैं।
हम क्या तुम से कुछ भी कम हैं॥
हम भी जब हैं तुम में मिलते।
कृतकृत्य बने सुख से खिलते॥ २॥

तुम हो यदि नीर-निधान हरे?
हम हैं जल-विन्दु-समान हरे?
तुम हो विधु दास चकोर बनै।
नव नारद हो मन मार बनै॥ ३॥

तुम से हम नाथ! नियुक्त हुये।
इससे दुख दारुण युक्त हुये।
यह निष्ठुर कष्ट हरे! हरिये।
करुणाकर हो करुणा करिये॥ ४॥

हम हन्त हरे! अब दीन हुए।
अवसन्न विपन्न विलीन हुए॥
सब गौरव वैभव छीन हुए।
सब साधन में हम हीन हुए॥ ५॥

यह जीव तुम्हें यदि भूल गया।
यह है अपराध न आज नया॥
पर नाथ! हमें तुम भूल गए।
[illegible] अपने बहु शूल नये॥ ६॥

अपराध न नाथ ! गनो जन के ।
हम दास सदा पद सेवन के ॥
तुम जो न दया करिहौ अब भी ।
फिर आश करैं किस भाँति कभी ?॥७॥

सब साधन दिव्य विनष्ट हुए ।
इससे सहसा सब कष्ट हुए ॥
तब से नव-नीरद-नील छटा ।
मन में प्रकटी न मुरारि-घटा ॥ ८ ॥

हमको तुम एक अनेक तुम्हें ।
हम ज्ञान विहीन विवेक तुम्हें ॥
तुम निर्जर हो हम जर्जर हैं ।
तुम शान्त सदा हम बर्बर हैं ॥ ६ ॥

पर हैं करते दृढ़ आश अभी ।
बनते न कदापि हताश कभी ॥
अब दिव्य दया वर दान करो ।
हम दीन जनों पर ध्यान करो ॥१०॥

सब हाय कठोर विपत्ति सही ।
सुख की न कहीं उपपत्ति रही ॥
यह जन्म-धरा प्रबला न रही ।
वह पूर्व-प्रभाव कला न रही ॥ ११ ॥

करके करुणा सब दैन्य हरो ।
यह देश सुशिक्षित दक्ष करो ॥
जिससे फिर भी यह दिव्य धरा ।
सुख युक्त रहै धन धान्य भरा ॥ १२ ॥

हम हो विनयानत हैं कहते ।
शुचि चित्त यही सुख हैं चहते ॥
यह जन्म-धरा अब उन्नत हो ।
इसमें सबका शुभ सम्मत हो ॥ १३ ॥

सदुपाय परायण धीर बनैं ।
जननी-हित में हम वीर बनैं ॥
सब कष्ट कठोर कुठार सहैं ।
जननी-हित में रत नित्य रहैं ॥ १४ ॥

मुख उज्ज्वल हो यह देश जगै ।
तमकूट घटै दुख भूरि भगै ॥
सब सौम्य सुयोग्य सुबुद्ध बनैं ।
शुचिशिक्षित दीक्षित शुद्ध बनैं ॥१५॥

तुमको तज के अवलम्ब नहीं ।
करिये अब देव ! विलम्ब नहीं ॥
तज के ममता समता-रत हो ।
सुख-पूर्ण हरे ! यह भारत हो ॥ १६ ॥

मैथिली और हिन्दी ।

[लेखक—श्रीयुत जीवनाथ राय काव्य-व्याकरण-तीर्थ ।]

जब से "मैथिल-कान्फरेंस" में यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ है कि विहार-प्रान्तीय शिक्षाविभाग से प्रार्थना की जाय कि वह प्रारम्भिक शिक्षा में हिन्दी के साथ मैथिली को भी स्थान दे, मिथिला में मैथिली तथा हिन्दी को लेकर बड़ी हलचल मच रही है। अतएव मैथिली भाषा का परिचय तथा उसका हिन्दी के साथ कैसा सम्बन्ध है, वह हिन्दी के अन्तर्गत हो सकती है या नहीं इत्यादि बातों का दिग्दर्शन करा के आज में "मर्यादा" के पाठकों का कुछ मनोरञ्जन करना चाहता हूं:—

मैथिली का परिचय ।

विहार का उत्तरीय प्रान्त मिथिला देश के नाम से प्रसिद्ध है; जिन्हें कभी रामायण पाठ करने का अवसर मिला होगा, वे मिथिला देश के नाम से परिचित होंगे। इसी देश की भाषा "मैथिली" कहलाती है।

मैथिली का स्वरूप ।

"मिथिला-देश प्राचीन-कालसँ कर्मठक हेतु प्रसिद्ध अछि। वैदिक-यज्ञक वर्णन जाहि वेद में अछि ताहि यजुर्वेदक उद्धार-कर्ता श्री याज्ञवल्क्य मुनि एही मिथिला देश में जन्म

लेने रहथि। औरक कोन कथा, स्वयं व्यास मुनि हुनकासँ पढ़वाक हेतु एतय आयल रहथि। पश्चात् शुकदेवकें सेहो ओ एतय ज्ञानोपार्जनक हेतु पठौने रहथिन्ह। महाभारत शान्तिपर्व में लिखल अछि—"एवमुक्तः स धर्मात्मा जगाम मिथिलां मुनिः। पद्भ्यामशक्तो ऽन्तरीक्षेण........" (मिथिला मिहिर)

मैथिली बोलनेवालों की संख्या।

भाषा परिच्छेदक माननीय श्रीयुत ग्रियर्सन साहब के हिसाब के अनुसार खास मिथिला में 'स्टैंडार्ड' तथा उसके कुछ विकृत रूप में, मैथिली बोलनेवालों की संख्या लगभग एक कोटि की है। बङ्गाल तथा आसाम प्रभृति बाहर के देशों में उसके बोलनेवालों की संख्या से उस संख्या को मिला देने पर १०,२६३,३५७ तक उसके पहुंचने का अनुमान किया गया है।

मैथिली के कुछ प्रसिद्ध कवि और उनके ग्रन्थों के नाम।

कवि	ग्रन्थ
पं० मनबोध झा	हरिवंश—काव्य
*" विद्यापति ठक्कुर	पारिजातहरण-नाटक
	रुक्मिणी परिणय-"
" कविलाल	गौरीपरिणय "
" हर्षनाथ	ऊषाहरण "
" भानुनाथ झा	प्रभावतीहरण "
" जीवन झा	सुन्दर संयोग "
" चन्द्र झा	रामायण
	पुरुषपरीक्षा का अनुवाद
मुं० लालदास	दुर्गा शप्तसती की टीका
	गणेशखण्ड-प्रभृति

मैथिली के समाचार-पत्र।

जीवित दशा में विद्यमान मैथिली के समाचार-पत्र अब दो ही हैं; एक "मिथिला-मिहिर" (साप्ताहिक), दूसरा "मिथिला-मोद" (मासिक)

भाषान्तर से मैथिली का सादृश्य।

मैथिली का सादृश्य यदि किसी प्रान्तीय भाषा से है तो बङ्गभाषा ही से है। जैसे संस्कृत-शब्दों का आधिक्य इसमें देख पड़ता है वैसे ही उसमें भी। जो भी संस्कृत के अपभ्रंश-शब्द हैं वे संस्कृतानुयायी बङ्गभाषा ही के सदृश हैं; यथा—(बङ्गभाषा) यखन, तखन, याइते छिल, जाना गेल, ये, से—इत्यादि। (मैथिली) यखन, तखन, याइत छल, जानल गेल, ये, से—इत्यादि। "है" के अर्थ की क्रिया में 'छ' अक्षर का होना भी दोनों में समान है।

मैथिली के ऊपर हिन्दी का प्रभाव।

जब से हिन्दी का प्रभाव मैथिली के ऊपर पड़ा है तब से इसमें पहले जैसा संस्कृत शब्दों का अत्यधिक बाहुल्य देख नहीं पड़ता; साथ ही साथ हिन्दी के भी बहुत शब्द इसमें घुस गये हैं। जो शब्द पहले संस्कृत तथा बँगला की तरह अन्तःस्थ 'य' से लिखे जाते थे, जैसे—'यखन' 'ये' 'यायब' इत्यादि, उनको अब हिन्दी के 'जब' 'जो' 'जाना' की तरह लोग वर्गीय 'ज' से लिखने लग गये हैं, किन्तु यह चाल भाषा के प्रामाणिक विद्वानों को पसन्द नहीं अतएव वे पहले ही की तरह लिखते हैं।

हिन्दी के साथ मैथिली की समता।

प्रायः बँगला-प्रभृति समस्त परिगणनीय प्रान्तीय भाषाओं की अपेक्षा हिन्दी की समता मैथिली ही के साथ अधिक है, क्योंकि लिङ्ग-विचार और संज्ञा-शब्दों का साम्य दोनों ही इसमें उपलब्ध होते हैं। इसी से कुछ हिन्दी-पक्षावलम्बी मैथिली को पूर्वी हिन्दी कहकर

---

* इन्हीं विद्यापति ठक्कुर के गीतों का संग्रह का "काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा" ने उन्हें "मैथिल-कोकिल-विद्यापति", नाम से [illegible] प्रकाशित किया है।

लेखक.

हिन्दी के अन्तर्गत कर देना चाहते हैं किन्तु जो हो, इन दोनों में परस्पर भेद इतने हैं कि वह समता उनके आगे नाममात्र की सी जान पड़ती है।

प्रकृति, प्रत्यय, लिङ्ग, वचन तथा पुरुष इन्हीं के भेद प्रायः भाषाओं के परस्पर-भेदक होते हैं। हिन्दी और मैथिली के बीच प्रायः ये सब प्रकार के भेद पाये जाते हैं। इनमें प्रकृति-भेद, यद्यपि यह भी बहुत है, उतना अखरनेवाला नहीं है जितना कि और भेद। प्रत्यय-भेद में धातु-प्रत्यय का भेद ही बहुत बढ़ा चढ़ा हुआ मालूम होता है। लिङ्ग-विचार यद्यपि मैथिली में है; किन्तु, वह केवल *प्राणि-वाचक संज्ञा और उनकी क्रियाओं में किया जाता है। क्रियाओं में भी लिङ्ग-विचार सब काल और उनके सब रूपों में नहीं किया जाता। जो किया भी जाता है वह कर्त्ता ही के अनुसार, कर्म के अनुसार कहीं नहं। अतएव लिङ्ग-भेद भी इन दोनां भाषाओं में है ही। वचन यद्यपि मैथिली में भी दो ही हैं—एकवचन और बहुवचन किन्तु इनमें बहु-वचन का विचार क्रिया रूप में वैकल्पित है और वहीं किया जाता है जहाँ क्रिया का कर्त्ता प्राणी रहता है। तीनों पुरुषों में मध्यम तथा प्रथम पुरुष (अन्य पुरुष) के 'आदर-सूचक' और 'सामान्य' ये दो प्रकार के ऐसे विलक्षण भेद मैथिली में हैं जो प्रायः अन्य किसी भाषा में नहीं पाये जाते और इन पुरुषों का विचार न केवल कर्त्ता ही के विषय में किया जाता है, अपितु, कर्म के विषय में भी; अतएव, कर्म के अनुसार भी क्रिया बदली जाती है। इससे सिद्ध हुआ कि पुरुष-भेद भी इन दोनां भाषाओं के बीच अच्छी तरह से है।

ऊपर कहे गये इन भेदों के उदाहरण नीचे दिये जाते हैं:—

मैथिली।	हिन्दी।
(प्रकृति-भेद)	
घेलक लग जनु वैसह	घड़े के नज़दीक मत बैठो।
(प्रत्यय-भेद)	
रामक कन्यासँ उमेशकें	राम की कन्या से उमेश को
पुस्तक दिया दिऔन्हि	पुस्तक दिला दीजिये।
देखै छिऐन्हि ये यय वे करताह	देखते हैं जो जायँगे ही।
(लिङ्ग-भेद)	
बहिनि वैसलि २ साँसे कथा सुना देलक	बहन ने बैठी २ सारी कथा सुना दी।
(वचन-भेद)	
हमारा लोकनि याइत याइछी वा याइछो	हम लोग जाते हैं।
घरवां सब घर सुन्दर अछि	घर सुन्दर है। सब घर सुन्दर हैं।

---

* अप्राणि-वाचक संज्ञाओं में भी लिङ्ग-विचार करके किसी किसी ने और भी भाषा को क्लिष्ट बना देने का बीड़ा उठाया है, पर वह सर्व-मान्य नहीं। लेखक।

(पुरुष-भेद)

प्रथम पुरुष।	ओ वा ओसब-लिखैत अछि, लिखैत छथु, लिखैत छौक, लिखैत छैन्हि, लिखैत छैक, ओ वा ओलोकनि-लिखैत छथि, लिखैत छथुन्ह; लिखैत छथिन्ह,	वह लिखता है वा लिखती है। वे लिखते हैं वा लिखती हैं।
	अपने वा अपने लोकनि-लिखल जाइत अछि, लिखल जाइत छैन्हि, लिखल जाइत छैक, अहाँ वा अहाँ लोकनि-लिखैत छी, लिखैत छिऐन्हि, लिखैत छिऐक,	आप लिखते हैं वा लिखती हैं।
मध्यम पुरुष।	तूँ वा तोरा लोकनि लिखैत छें, लिखैत छहुन्ह, लिखैत छहिक,	तू लिखता है वा लिखती है।
	तों वा तोरा लोकनि लिखैत छह, लिखैत छहुन्ह, लिखैत छहक,	तुम लिखते हो वा लिखती हो।
उत्तम पुरुष	हम वा हमरा लोकनि लिखैत छी, लिखैत छिअहु, लिखैत छिऔक, लिखैत छिऐन्हि;	मैं लिखता हूँ वा लिखती हूँ। हम लिखते हैं वा लिखती हैं।

ऊपर दिये हुए उदाहरणों से पाठकों की समझ में आगया होगा कि मैथिली को हिन्दी के अन्तर्गत कह देना साहस का काम है। तब उसको बङ्गला-प्रभृति भाषाओं की तरह सिवा प्रान्तीय भाषा के और कही क्या सकते हैं? अतएव, अपने पड़ोसी बङ्गवासी भाइयों की तरह अगर मैथिल भी अपनी प्रान्तीय भाषा की अलग उन्नति करना चाहते हैं तो, उचित ही है। तब प्रश्न यहां पर यह उठता है कि—

ये लोग इतने दिन कहां थे ?

प्रश्न युक्ति-सङ्गत है; क्योंकि, यह बात प्रायः बहुतों को विदित होगी कि बङ्गालियों ने जैसे पूर्व समय में मिथिला जाकर मैथिलों से न्यायादि दर्शन-शास्त्र सीखे और उनका अपने देश में आकर प्रचार किया उसी तरह ये लोग मैथिलों की लिपि भी, जो 'मिथिलाक्षर'* वा 'तिरहुता' के नाम से अब तक मिथिला में पूर्णतया प्रचलित है, वहां से ले आये, और कुछ ऐंठ मरोड़कर, उन्होंने उसे अपनी लिपि बनाई। एवं, उसके द्वारा उन लोगों ने अपनी बङ्ग-भाषा की ऐसी उन्नति की कि आज संसार उनकी कृति पर दङ्ग है। पाठक! और लोग तो मैथिलों की वस्तु से ऐसा लाभ उठावें और वे स्वयं चुपचाप पड़े रहें! बड़े आश्चर्य की बात है कि जैसी दशा में मैथिली भाषा कई सौ वर्ष पूर्व में थी करीब २ आज भी वह उसी दशा में है; यह क्यों?

---

* मिथिलाक्षर और बङ्गाक्षर में भेद 'नहीं' के बराबर है। अगर हो सका तो कभी उस लिपि का स्वरूप पाठकों को दिखायेंगे। लेखक.

इसका कारण यह है ।

मिथिला सदा से संस्कृत की केन्द्र रही। यजुर्वेदोद्धारक याज्ञवल्क्य मुनि तथा पूर्वमीमांसा बनानेवाले जैमिनि मुनि इन दोनों महात्माओं ने यहीं जन्म ग्रहण किया था। न्यायशास्त्र-निर्माता गौतम मुनि और सांख्य-शास्त्र रचयिता कपिल मुनि की भी जन्म-भूमि मिथिला ही है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण ऋग्वेद-वर्णित गौतम कुण्ड और कपिल मुनि के स्थापित महादेव का स्थान अब तक मिथिला में विद्यमान है। इधर आकर भी, वाचस्पति मिश्र, मण्डन मिश्र प्रभृति बड़े बड़े संस्कृत के दुर्धर्ष विद्वान होते गये। अतएव, मैथिल संस्कृतही के पठन पाठन में बराबर व्यस्त रहे; उन्हें अपनी भाषा की जैसी चाहिये सुध लेने का अवसर ही न मिला। अब, जब बङ्गालियों की तरह इन लोगों पर भी नवीन शिक्षा का प्रभाव पड़ा है, तब ये भी समझने लगे हैं कि हमारी लिपि भी कोई लिपि है और हमारी भाषा भी कोई भाषा है; अतएव आज अपनी भाषा को प्रारम्भिक शिक्षा में स्थान दिलाने के लिए वे सरकार से प्रार्थना कर रहे हैं। अब प्रश्न यह है कि यदि वह प्रार्थना स्वीकृत होगई और ये लोग अपने बालकों को मैथिली ही द्वारा शिक्षा देने लगे, तो

इनको इससे लाभ होगा या नहीं ?

ये तो कहते हैं–"हां होगा; क्योंकि, हमारे कोमलमति बालक जब हिन्दी द्वारा किसी विषय की शिक्षा पाते हैं तब उस विषय के अतिरिक्त उन्हें एक अपरिचित भाषा हिन्दी भी सीखनी पड़ती है; फल यह होता है कि हिन्दी ही रटते २ उन्हें नाकों दम होजाता है, और जिस विषय की शिक्षा दी जाती है उसमें वे कोरेही रह जाते हैं। 'यह असुविधा, एक भारी असुविधा, इस उपाय से दूर होजायगी।"

पाठक! आप ज़रूर मनमें कहते होंगे कि मैथिलों को यह क्या सूझी है? अहर लाभ के बदले वे भारी हानि कर रहे हैं। अब ज़माना दूसरा आया है। उन्हें चाहिये था कि सब मिलकर हिन्दी की सेवा करते, उसे राष्ट्रभाषा के सिंहासन पर बिठाते; सो न करके वे सब यह क्या कर रहे हैं? किन्तु पाठक! बात ऐसी नहीं है। प्यारी हिन्दी को जिस प्रेम-भरी दृष्टि से आप देखते हैं मैथिल भी उसी दृष्टि से उसे देखते हैं, जो आसन हिन्दी को आप देना चाहते हैं मैथिल भी वही आसन उसे देने को तत्पर हैं। इसी से तो उच्च-शिक्षा में उन्होंने भी उसी को रक्खा है। "मैथिलकान्फरेन्स" के गत अधिवेशन में उक्त प्रस्ताव के समर्थक ने यह बात साफ़ ही कह दी थी कि यह न कोई समझे कि मैथिल प्यारी हिन्दी को छोड़कर और किसी को राष्ट्र-भाषा का स्थान देंगे—मैथिलों की राष्ट्र भाषा हिन्दी है।

पाठक! तब इतना जो कुछ मैथिल कर रहे हैं उसका कुछ गूढ़ कारण अवश्य है; उसके ढूंढ़ने के समय कोमल हृदय से काम लेना होगा। देखिए, मिथिला सदा से प्रतिष्ठा के पद पर आरुढ़ रही है इसका महात्म्य शास्त्र-पुराणों में बड़ी खूबी से गाया गया है। यह सदा विद्वानों से भरपूर रही है। इसका सम्मान दूसरे २ देशों के लोगों ने भी किया है। इसी से तो हमारी सरकार ने भी इसी देश के धर्मशास्त्रानुसार इस देश के दाय-भाग की व्यवस्था (जो 'मिथिला ला' के नाम से प्रसिद्ध है और न्यायान्यालयों में काम में लाई जाती है) करके इसकी प्रतिष्ठा की है। ऐसी मिथिला की भाषा की तुलना लोग भोजपुरिया, मगहिया जैसी भाषाओं से करें, जिनकी अपेक्षा आज भी वह कहीं बढ़ी चढ़ी हुई है, मैथिलों को यह कैसे सह्य हो सकती है? यही कारण है कि मैथिल अपनी भाषा की ओर भी तन, मन से लग गये हैं।

तो क्या सचमुच वे अपनी इच्छा पूरी ही कर लेंगे? हिन्दी का स्थान क्या वे मैथिली को देही देंगे? "सम्मेलन" के प्रस्ताव का क्या कुछ भी फल न होगा?

नहीं! नहीं!! "हिन्दी-साहित्य सम्मेलन" ने जो गत अधिवेशन में यह प्रस्ताव पास किया है कि मैथिली को प्रारम्भिक शिक्षा में स्थान न दिया जाय, अवश्यही सफल होगा। मैथिल कभी अपनी इच्छा पूर्ण न कर सकेंगे। जननी जन्म-भूमि के ऐसे सच्चे सुपुत्र मिथिला में भी ऐसे विद्यमान हैं जो अपने अदूर-दर्शी भाइयों की दाल कभी न गलने देंगे, हिन्दी को अपनावेंगे, माता कहकर पुकारेंगे। धन्य! धन्य!! विज्ञो! हमारी अबला मातृ-भाषा को यदि किसीका भरोसा है तो तुम्हीं जैसे सुपुत्रों का।

सच्चा मित्र।

[लेखक—श्रीयुत केशव प्रसाद मिश्र—काव्यतीर्थ !]

ब्रह्म-विद्या का निधान विरक्त ब्राह्मण एक।
था सुदामा नाम का शुद्धाचरण सविवेक ॥ १ ॥

सकल उसकी इन्द्रियां थीं सर्वदा ही वश्य।
शान्ति में कोई न था उसके समान प्रशस्य ॥२॥

निःस्पृहों में अग्रगण्य विरागियों में धीर।
सत्यता में धर्मराज पवित्रता में नीर ॥ ३ ॥

गृहस्थाश्रम धर्म की उसने धरी थी राह।
पर अयाचित वस्तु से करता रहा निर्वाह ॥४॥

इसी कारण दम्पती का उदर-पूरण-कृत्य।
हा विधे! दारिद्र्य से होता नहीं था नित्य ॥५॥

एक दिन क्षुत्क्षाम हो भयभीत कम्पित गात्र।
ब्राह्मणी बोली, किये निज नयन जल के पात्र ॥६॥

आपके मुख से सुना है बहुत मैंने नाथ!
आपकी है मित्रता श्रीकृष्णजी के साथ ॥७॥

जाइये द्विजदेव! कृपया आप उनके पास।
हो अरुन्तुद दुःख की दुःसह दशा का हास ॥८॥

वे शरण्य दयानिकेतन मंत्र अपना जान।
आपको धन-दान देकर करेंगे सम्मान ॥ ९ ॥

ध्यान करने मात्र से जो सौंप दे निज देह।
तुच्छ धनका दान करते उसे क्या सन्देह ॥१०॥

इस तरहँ जब ब्राह्मणी ने कहा बारम्बार।
हुआ तब वह विप्र जाने के लिये लाचार ॥११॥

इसी मिस से साधु दर्शन सुलभ मन में मान।
द्वारका में गमन करना लिया द्विज ने ठान ॥१२॥

जीर्ण-शीर्ण फटे पुराने पहन अपने चीर।
कहा अपनी ब्राह्मणी से यों वचन हो धीर ॥१३॥

हे प्रिये! कुछ चाहिये उनके लिये उपहार।
यही कहते वह चली उसके नयन से धार ॥१४॥

ब्राह्मणी यह दशा पति की देखकर अति दीन।
विकल ऐसी हुई जैसी बिना जल के मीन ॥१५॥

वह तथापि पड़ोस में से माँगलाई भीख।
मिले चावल रत्न ऐसे पड़े उसको दीख ॥१६॥

एक चिथड़े में उन्हें तब बाँध पति के हाँथ।
दे दिया उसने झुकाए पतिचरण पर माँथ ॥१७॥

उसे लेकर चला गृह से विप्र हो सानन्द।
हो गया मानो विपद का द्वार तब से बन्द ॥१८॥

कृष्ण मेरे मित्र हैं मैं शीघ्र उनके पास।
चला जाऊंगा मिलूंगा, है नहीं कुछ त्रास ॥१९॥

इस तरहँ करता चला संकल्प और विकल्प।
मार्ग-शेष समाप्त होने में रहा अत्यल्प ॥२०॥

दूर से कर नयन-गोचर द्वारका का द्वार।
विप्र के जाते रहे सब भूतपूर्व विचार ॥२१॥

जगमगाती ज्योति जटित जवाहिरों की देख।
हकपकाकर गड़ गया जैसे मही में मेख ॥२२॥

धीरता से द्वार पर तब चला आया विप्र।
किन्तु उससे होसका न प्रवेश करना क्षिप्र ॥२३॥

अन्त में अनिवार्य होकर तीन चौको बांद।
ड्योढ़ियाँ को पारकर धर हर्ष का उन्मान ॥२४॥

रानियों के सौध सुन्दर देखकर वह रङ्क।
विस्मयाचित चक्र के भीतर चला निःशङ्क ॥२५॥
हरि हीरक भूमि में उसका पड़ा प्रतिबिम्ब।
देख पड़ता था कि जैसे प्रमदवन में निम्ब ॥२६॥
वहां श्रीपति प्रिया के पर्यङ्क पर आसीन।
हो रहे थे कण्ठतक आनन्द-सागर-लीन ॥२७॥
दूर ही से देखकर निज मित्र को आयात।
करदिया श्रीकृष्ण ने सब बातचीत समाप्त ॥२८॥
दौड़कर सहसा मिले निज बाहु युग्म पसार।
हुए शोभित मिलै जैसे कल्पवृक्ष मँदार ॥२९॥
प्रिय सुहृद के अङ्गसङ्गम से प्रफुल्लित गात्र।
कृष्ण ने लोचन किये शुचि प्रेम जल के पात्र ॥३०॥
विनय से पर्यङ्कपर कर विप्र को आसीन।
लगे पैर पखारने निज-हाँथ से ही श्रीन ॥३१॥
चरण-जल को कृष्ण ने अपने चढ़ाया शीश।
लोक-पावन स्वयं जोथे दयामय जगदीश ॥३२॥
अगर-चन्दन केसरादिक से किया उपचार।
हाँथ बाँधे खड़े होकर कहा वचन उदार ॥३३॥
हे सखे! हे हृदयवल्लभ! हे हमारे प्राण!
कुशल कहिए, श्रवण युग का हो महाकल्याण ३४
थे सुदामा संकुचित लज्जित चकित उस काल।
इसलिये मुख से न अपने कह सके कुछ हाल ॥३५
मुस्कुरा कर कृष्ण ने तब कहा मेरे यार!
भ्रातृजाया ने दिया है क्या मुझे उपहार ॥३६॥
पोटरी को काँख में दाबे हुए थे विप्र।
लाज के मारे छिपाने लगे उसको क्षिप्र ॥३७॥
किन्तु उसके छिद्र से चावल गिरे दो चार।
व्यग्र होकर हो रहे मानों स्वयं उपहार ॥३८॥
देखकर तब चावलों को कृष्ण बोले मित्र!
अभी तक छूटा नहीं वह आपका सुचरित्र ॥३९॥
भ्रातृजाया ने मुझे जो दिया है उपहार।
उसे देने में वृथा है अधिक सोच विचार ॥४०॥
जब सुदामा हुए लज्जित देख उपदा नीच।
उसे उनकी काँख से तब लिया हरि ने खींच ॥४१॥
प्रेम से श्रीकृष्ण ने खाया सराह सराह।
देखकर द्विज के हृदय में बहा मोद प्रवाह ॥४२॥
तभी से उसकी विपद सब गई उसको त्याग।
था नहीं सुख जगत में जो था न उसके भाग ॥४३
चतुर पाठक! इस कथा से लीजिए उपदेश।
धनी और दरिद्र में है नहीं अन्तर-लेश ॥४४॥
यह अलौकिक वस्तु है सौहार्द इसका नाम।
धनी और दरिद्र से है नहीं इसको काम ॥४५॥
क्लासफेलो (Classfellow) हों सुदामा कृष्ण ऐसे आज।
फिर समुन्नत होसके यह पतित लोक-समाज ॥४६

भगवान् बुद्धदेव का प्रादुर्भाव।

[लेखक—श्रीयुत कृष्णबलदेव वर्मा।]

यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥

धनुर्धर मोहाच्छादित पार्थ को प्रबोध करते समय भगवान् कृष्णचन्द्र ने यह गूढ़ रहस्य इङ्गित मात्र से संसार पर प्रगट कर दिया था और जब जब महान् आत्माओं को इस संसार में अवतरित होना पड़ा है उस २ समय इस वाक्य की सत्यता पूर्णरूप से देख पड़ी है। विज्ञवर पाठको! अनेक अवतारों के सम्बन्ध में अनेक कथाएं आप जानते होंगे। अतः हम अन्य अवतारों की कथा कहकर पिष्टपेषण नहीं करना चाहते और न पाठकों का समय हीनष्ट करना चाहते हैं। हम केवल चरित्रनायक भगवान् बुद्धदेव के जन्म संबन्ध की कथा सुनाया चाहते हैं कि उनका प्रादुर्भाव संसार में किस लिए हुआ, धर्म से क्या ग्लानि होरही थी, किस अधर्म से

लोग दुःखी थे और कौन सा धर्म संस्थापन करना उनको अभीष्ट था और किन दुष्कर्मों के विनाश और किन साधुओं की रक्षा की उस समय आवश्यकता थी ? हम अपने इस लेख को इसवार इसी सीमा में परिवद्ध रक्खेंगे और यदि हमारा लेख पाठकों को रुचिकर हुआ तो करुणामय बुद्ध भगवान का समस्त जीवनचरित्र उनके धर्मोपदेश तथा बौद्धकाल सम्बन्धी प्राचीन इतिहास को भी भक्ति भाव से पाठकों की भेंट करेंगे ।

विचारणीय विषय यह है कि भगवान् का जन्म किस समय में हुआ था । समय से हमारा अभिप्राय किसी विशेष वर्ष, दिन व मास के निश्चय करने का नहीं है किन्तु हम समय को किन्हीं विशेष घटनाओं के संबन्ध में सूचित करना चाहते हैं और यह बताया चाहते हैं कि उस समय देश की क्या अवस्था, व्यवस्था और दशा थी । प्यारे मित्रो ! यह तो आप जानतेही हैं कि कुरुक्षेत्र का भीषण युद्ध जो महाभारत के नाम से प्रसिद्ध है, भारत भाग्य के लिए पूर्ण संहारी युद्ध था । यह युद्ध किसी विदेशीय शत्रु के आक्रमण से नहीं हुआ था किन्तु गृह विग्रह का फल था । कौरव व पांडव दोनों ही सकुटुम्बी थे, एकही पुरखे की दोनों सन्तान थे, दोनों ही चन्द्रवंशी साम्राज्य के समानाधिकारी थे, बन्धु, बांधव, प्रजा, संधिबद्ध राज्यों पुरुजनों, आचार्यों स्नेही श्रीमानों के बीच में दोनोंही का पक्ष समान था । उस समय बहुधा हमारी भांति स्वार्थरत लोग न थे जो पक्षविपक्ष का कुछ विवेक न करके केवल अपना स्वार्थ देखते हों । किन्तु वह समय ऐसा था कि अधिकतर लोग अपने संबन्ध का पूर्ण निर्वाह सविवेक करना चाहते थे और यह इसी का फल था कि इस युद्ध में बन्धु बांट न हुआ । एक ओर भगवान कृष्णचन्द्र अर्जुन के सारथी बने हैं तो दूसरी ओर वे अपनी यदुवंशी सेना भेजे देते हैं । आदित्य ब्रह्मचारी पितामह भीष्म देवव्रतजी एक ओर से अस्त्र लेकर लड़ने को उद्यत होते हैं तो दूसरे पक्ष को युद्धकौशल और परामर्श देने को संनद्ध हैं और विशेषतः यह कि ऐसा होते हुए भी दोनों पक्षों का अटल विश्वास उन पर है और दोनों ही का कार्य वह पूरी तरह से करते हैं । सारांश यह कि आचार्य पुरोहित आदि सभी इसी प्रकार बंटे हुए हैं, विद्यालय के अध्यापक और उत्तीर्ण शिष्यवर्ग कार्यालयों के कार्यदक्ष पुरुष सभी इस अवसर पर कुरुक्षेत्र की ओर प्रधावित हैं । अब नगरों में इस समय या तो वे वृद्ध पुरुष शेष हैं जो जरा के ग्रास हो शय्यासीन होरहे हैं अथवा अबोध बालक और अपरिपक्व बुद्धिवाले विद्यार्थी । जो युद्ध समाज था उसे देख एक वार महाज्ञानी और विरागी का हृदय मोह से पूरित होजाता था और बड़े महर्षियों को भी मायावश कातरता आजाती थी । भगवान् कृष्ण, द्वैपायन, वेदव्यासजी ने इस युद्ध समाज का एक अपूर्व चित्र गीता में खींचा है, गीता का प्रथमाध्याय आद्योपांत इस चित्र के लिए अवलोकनीय ही है; विशेषकर चौबीसवें श्लोक से लेकर ४६ श्लोक तक जहां इस युद्ध का परिणाम व प्रतिफल अर्जुन ने सोचा था यथाः—

एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥

भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम् ।
उवाच पार्थ पश्यैतान्समवेतान्कुरूनिति ॥

तत्रा पश्यत्स्थितान्पार्थः पितॄनथ पितामहान् ।
आचार्यान्मातुलान्भ्रातॄन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा ॥

श्वशुरान्सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि ।
तान्समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान्बंधूनवस्थितान् ॥

कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत् ।
दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम् ॥

सीदंति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति ।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ॥

गांडीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते ।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ॥
निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव ।
नच श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ॥

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः ।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः ॥

उत्सन्न कुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन ।
नरके नियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ॥

अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम् ।
यद्राज्यसुखलोभेन हंतुं स्वजनमुद्यताः ॥

यदि मामप्रतीकारमशास्त्रं शस्त्रपाणयः ।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ॥

पाठकगण, इन श्लोकों से आपको प्रकट होगा कि विचारशील अर्जुन ने इस युद्ध का भयङ्कर परिणाम कहां तक समझा था, गृह विग्रह (Civil war) से देशीय कलाकौशल, धर्म स्थिति, विद्या, विभव, जातीयता, देशशासन की जो भविष्य दशा होती है वह अर्जुन भली भांति प्रकट कर चुके थे। देशहितैषी को कायर बनकर अपनी व्यक्तिगत हानि सहने को क्षमता थी परन्तु वह जातीयता व जातीय जीवन व जातीय धर्म का नाश होना नहीं सहन कर सकता था। भावी बलवान होती है; इतना जानकर भी अर्जुन को अपने हस्त से गिराये हुए गांडीव धनुष को कांपते हुए हाथों में फिर से उत्तेजनावश धारण कर, रोमाञ्चित शरीर को सम्हाल कर युद्ध में डट जाना पड़ा। दुराधर्ष संग्राम हुआ। रक्तपिपासु कुरुभूमि रक्त से सिंच गई और कदाचित यही कारण है कि कुरुक्षेत्र से इन्द्रप्रस्थ तक बहुधा लाल रङ्ग की मुरम उसी रक्तसिंचन का साक्षी दिया करती है। इस मुरम में चमकते हुए अभ्रककण उन महारथियों के विशद यश कणों की भांति अद्यापि बिखरे पड़े हैं और पुकार २ कह रहे हैं कि भारतभाग्य अब नष्ट होकर कथा २ होगया है। सच तो यह है कि जाति के नेताओं, मांडलिक महीपों, कला विशारदों, धर्माचार्यों, पुरोहितों और सेनानायकों, शूर-वीर रथियों और महारथियों आदि सभी के कट मरने से देश, जाति तथा धर्म व्यवस्थाओं की प्रणाली और श्रृङ्खला दोनोंहीनष्ट भ्रष्ट होगई। कोई भिन्न २ भागों का नेता और नियमानुकूल चलानेवाला न रहा, शंकाजनित विवादों का भी कोई मेटनेहारा न रहा, और न कोई ऐसे ही लोग शेष रहे जो आतङ्क से विवाद दबा सकें और द्वार द्वार पर उपस्थित होनेवाले विग्रह को सम्हाल सकें। अभिप्राय यह कि अपरिपक्व बुद्धि विद्यार्थी अथवा अशिक्षित समाज व अबोध बालक शेष रहगये और सब एक दूसरे से अपने को स्वतन्त्र समझने लगे। ये सब अपनी अपनी डफली पर अपना अपना राग निपट स्वतन्त्र, स्वच्छन्द और निरंकुश हो अलापने लगे। कुछ लोग तो केवल लकीर पीटने ही में लगे रहे और कुछ उससे आगे निकल अपना मनमाना मार्ग आगे की सरिता सरोवर, गिरिकंदर वन उपवन भूमि के ऊंच नीच धरातल को बिना समझेही काटने लगे। पहले शङ्काएं हुईं, पुनः शब्दविवाद जन्मा, शब्द विवाद से हठ बढ़ा और अन्त में सिद्धान्त विवाद होगया और सिद्धान्त विवाद होते ही पुण्यश्लोक ऋषियों की स्थापित जाति व धर्म मर्याद आहत होगई। पुनीत श्रौतस्मार्त धर्म उपनिषदादि प्रणीत ब्रह्मविचार, मन्वादि महर्षियों द्वारा निर्धारित वर्णाश्रम व्यवस्था सभी अस्तव्यस्त होगई। यदि किसी ने सैंधव का अर्थ लवण समझा तो वह उसका अवसर व प्रयोग समझे बिना ही हठ और दुराग्रहवश सैंधव को लवण ही मानने और मनवाने पर उतारू है और किसी ने उसका अर्थ घोड़ा समझा है तो वह प्राणपण से उसी पर डटा है और लवण माननेवाला सवारी के अवसर पर भी घोड़ा न मान कर लवण ही की ओर अड़ा रहा है और दूसरा भोजन अवसर पर लवण न मान

कर घोड़ा ही खिलाने को तत्पर है। कहां तक कहा जावे सभी उलट पुलट होने लगा और होते २ पूर्णरूप से हो ही गया क्योंकि कोई ऐसे नेता और गुरुजन शेष न रहे जो सब को अपने अनुशासन में रख सकते और सब बातों का रहस्य बता सकते। जो कहीं कुछ विद्वान आत्मदर्शी और तत्वदर्शी शेष रह भी गये थे वे तपस्या के लिए गहन गिरिगह्वरों में निवास कर रहे थे। समाधिस्थ होने से या तो उनको यह खबर ही न थी कि क्या होगया और क्या हो रहा है और यदि कुछ को खबर भी थी तो उनकी संख्या इतनी न्यूनातिन्यून थी कि इतने वृहत भूखंड के सम्हालने का काम वे उठा नहीं सकते थे और व्यर्थ काल नष्ट करने की अपेक्षा वह यह उचित समझते थे कि स्वयं श्रुति स्मृति उपनिषदादि ग्रंथों पर अपने विचार और लेख जहाँ तक सम्भव हो छोड़ जावें, जो भविष्य में उपकारक हों। उन्होंने अपने जीवन को इसी कार्य में लगाया परन्तु इधर दूसरी ओर परस्पर विवाद और वितंडे से द्वेष, दुराग्रह और ईर्षा बढ़ती ही गई और हठवश नाना प्रकार के मतभेद निकल पड़े। नाना सम्प्रदाय चल खड़े हुए, कर्मकांड और यज्ञादि की भी व्यवस्था विचलित होगई और एक ऐसे धर्म की सृष्टि हुई जिसमें मद्यपान, व्यभिचार, कुत्सित आचार हिंसादि ही धर्म के प्रधान हेतु समझे जाने लगे। पशुबलि, पक्षीबलि, फलबलि और नरबलि आदि तक होने लगे। जिन लोगों को नैपाल की तराई में ककारान्तर्गत कामाक्षा से कांगड़े तक घूमने को कभी अवसर हुआ होगा और दशहरे के अवसर अथवा नवरात्रि के समय पर इन स्थानों में विशेष कर रक्तदंता, कमिक्षा, काली, पाटेश्वरी आदि के मंदिरों में दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ होगा, जो उस समय भारतव्यापी सम्प्रदायों के मुख्यस्थान थे, उन्हें करुणावश एक बार हृदय पर हाथ रखकर त्राहि त्राहि ही पुकार करनी पड़ी होगा। कहीं शूकरों के नन्हें नन्हें बच्चे तालाबों में धोकर पूजे जा रहे हैं और देवी द्वार पर पटक पटक कर मारे जा रहे हैं, उनके रुधिर की बूंदें मंदिर के पवित्र स्थान में टपक रही हैं, कहीं मुर्गी, तीतर आदि जीवों की गर्दनें काटी जा रही हैं। कहीं बकरे कट और उधड़ रहे हैं, कहीं भैंसों के ऊपर कुठार चल रहे हैं। कौन कहे देवस्थानों, राजमंदिरों से लेकर एक भिक्षुक का घर और गाँव का चौराहा तक हत्याकांड का स्थल बन जाता है और जहां तहां लोथें पड़ी उछलती हैं। यह दशा वर्तमानकाल की है परन्तु इससे दो सहस्र या तीन सहस्र वर्ष पहले की ओर दृष्टि डालिये जब राज्यव्यवस्था ऐसी नियमबद्ध न थी। उस समय यहां हिंसा ही प्रधान धर्म हो गया था। मंदिरों में नरबलि का ही मुख्य विधान था, यज्ञों के अवसर पर बलि ही बलि की धूम थी, सोमपान के ठौर मदिरापान ही मुख्य पान था, नरहिंसा भी ऐसी होती थी कि उसे देख और सुनकर पिशाच का हिया काँपे। इसका वर्णन दुःखावसन्न हृदय से एक करुणामय व्यक्ति ने विषाद पूरित हो इस भाँति किया था :—

"सद्यः कृताच्छिनशिरः पंकजार्चित भैरवे।
नश्यस्तः लोकमर्य्यादा कापालिकाधमैः॥

अर्थात् लोक-मर्यादा को उल्लंघन कर जब कापालिक ब्राह्मण के ताजे काटे हुए शिर को कमल पुष्प मानकर उससे भैरव की अर्चा करने लग गये हैं तो अब न जाने संसार में और भावी क्या अनर्थ शेष है। पाठको, स्थाली पुलाक न्याय से देखिये तो धर्म की तो यह मर्याद रह गई थी। यज्ञों में भी पावन वैदिक विधान छूटकर पंचमकार और उससे भी अधिक अधम कर्मकांड होने लगा था जिसका सविस्तर वर्णन करने से हमें लज्जा पुकार २ कर रोक रही है। आप लोगों में से बहुतेरे हमारे पूज्य वृद्ध पितापितामह के सदृश और बहुतेरे हम से छोटे बन्धु के समान होंगे अतः

उभय कारणों से हम उस विधान का वर्णन नहीं करना चाहते और केवल यह कहकर कि वे महा कुत्सित, दूषित, घृणित और अश्लील विधान थे आगे बढ़ते हैं। सामाजिक दशा भी उस समय महा शोचनीय हो रही थी, गाँव गाँव के ठाकुर स्वतंत्र राजा थे और बहुत छोटी २ बातों पर परस्पर युद्ध करके जातीय बल और जीवन को नष्ट कर रहे थे। जो दो एक प्रभावशील राज्य शेष भी थे वे बहुत छोटे और अव्यवस्थित थे। कौशाम्बी से लेकर राजग्रह तक का छोटा सा टुकड़ा बहुत से राज्यों में विभाजित था। वत्सकोली, मल्ललिच्छिभी, शाक्य, नाग आदि सोलह राज्य कौशाम्बी; श्रावस्थि, विशाली पाटलीपुत्र, विशाखा, अयोध्या, काशी, राम ग्राम, पावापुर, राजग्रह आदि स्थानों में राज्य कर रहे थे और 'नाई के बरात के जने जने ठाकुर' की भाँति सब अपने को दूसरे से श्रेष्ठ मानते थे जिसके कारण परस्पर रात दिन समरकलह उपस्थित रहा करता था और "दुसह दुराज प्रजान को, क्यों न बढ़ै दुख द्वंद। अधिक अंधेरो जग करैं मिल मावस रविचंद॥" की कहावत ठीक आती थी। इस राजविग्रह के कारण जातीयता, जातीयबल, जातीय कौशल, जातीयव्योपार, जातीयशिक्षा और जातीयधन सब क्षीण होते जारहे थे। चतुर्दिक घोर अंधकार ही अंधकार फैलता जा रहा था; खल मंडली बढ़ रही थी, साधुगण दुःखित हो रहे थे, धर्म पर अधर्म और मर्यादा पर निर्लज्जता प्रबल होती जा रही थी और ठीक वह समय आगया था कि जब महान् आत्मा अवतरित होकर अपने तेज से विश्व को प्रकाशमय कर दे और अपने प्रादुर्भाव से अनाचार का तिरोहित कर दे। प्रिय पाठकवर्गो, अब सोचो ऐसे अवसर पर कौन सी महान् आत्मा जन्म लेती है?

आपको स्मरण होगा कि भगवान श्रीकृष्ण चन्द्र जी ने, जैसा हम ने इस लेख के प्रारम्भ ही में आपको बताया है, ऐसे अवसरों पर स्वातमाही के अवतरित होने की बात कही है। अब यह देखना है कि यह अवतार वास्तव में श्रीकृष्ण भगवान की आत्मा के योग्य अवतार था या नहीं और उसके उद्देश्य भी वास्तव में वैसे ही महान् थे या नहीं जैसे कि ईश्वरीय आत्मा के अनुकुल होने चाहिये। इसकी परीक्षा के लिए हमें उन बातों और सिद्धान्तों के जानने और खोजने की आवश्यकता है जिन्हें बुद्ध भगवान ने संसार में अपना कार्य प्रारम्भ करने के समय आगे रखा था। उन बातों का उल्लेख करने से प्रथम हमें यह उचित प्रतीत होता है कि भगवान सिद्धार्थ का समस्त जीवनचरित्र आपको सुनावें परन्तु "लोकजयस्त भगवान बुद्धदेव का जीवनचरित्र हमारे एक दूसरे लेख का विषय होगा जो हम मर्यादा के पाठकों को फिर से भेंट करनेवाले हैं, अतः यहां उसे क्रमबद्ध या संक्षेप से कुछ भी न कहकर हम महर्षि "असित ऋषि" की भविष्यद्वाणी का स्मरण पाठकों को दिलाना चाहते हैं। भगवान के जन्मोपरांत जब राजमंदिर में महर्षि ने जाकर उन्हें देखा था उस समय उन्होंने महाराज शुद्धोदन से ये शब्द कहे थे "राजन् राजकुमार के लक्षण अलौकिक हैं, इनका जन्म संसारी व्याधियों में फंसे हुए लोगों के चिकित्सार्थ हुआ है यह निर्वाण के पथप्रदर्शक होंगे, इनका उपदेश सर्वतंत्र होगा"। जब विंध्यकोष्ठ में भगवान रुद्रक आदि महर्षियों से मिले थे उस समय भी उन्होंने अपने सम्वाद में उनसे जगत् के कल्याणकारी पंथ ही के बताने की चर्चा की थी। पराड मुनि से भी यही उन्होंने जिज्ञासा प्रकट की थी और जब बुद्धपद प्राप्त करके धर्मचक्र संचालनार्थ वे काशी पधारे थे उस समय भी उन्होंने "धर्म कुरु, धर्म कुरु" के शब्दों ही की उच्चस्वर से घोषणा की थी और सर्वतंत्र रूप ही से प्राणी मात्र के सुख हित और उन पर अनुकम्पाकारी कामों और उपदेशों के प्रचारार्थ शिष्यों को आदेश करते हुए कहा था:—

"चरित भिक्खू चारितं बहुजन हिताय
बहुजन सुखाय, सर्वलोकानुकंपाय"

प्यारे पाठक महानुभावो, अब आप स्वयं समझ लेंगे कि बुद्ध भगवान का प्रादुर्भाव किसी साधारण कार्य या किसी एक व्यक्ति या एक देश के उपकारार्थ नहीं हुआ था वे जगत् भर की आवश्यकताओं के पूर्णार्थ और उद्धारार्थ प्रकट हुए थे आज हम केवल इतनी ही भेंट आपके सन्मुख उपस्थित करते हैं और यदि हो सका तो हमें आपको उनका जीवनचरित्र और वास्तव में उन्होंने प्रादुर्भूत हो क्या २ महान और अलौकिक कार्य किये, शीघ्र ही भेंट करेंगे।

प्राचीन मिश्र का इतिहास।

[लेखक-श्रीयुत अम्बादत्त पंत।]

मिश्र के इतिहास लिखने के लिए सामग्रियां बड़ी कठिनता से मिलती हैं। ईसाइयों की धर्म पुस्तक बाइबिल से बहुत कुछ सहायता मिल सकती है परन्तु केवल बाइबिल से ही इतनी बातें नहीं मालूम होतीं कि उनके ज़रोसे प्राचीन मिश्र के विषय में कुछ पूर्ण प्रकार से लिखा जाय। मिश्र की दन्त कथाओं और कहानियों से, दूसरी जातियों को, जिनका मिश्र से सम्बन्ध था, लेखों से, और मिश्र के पाषाण स्तम्भों और मूर्तियों में खुदे हुए लेखों से, प्राचीन मिश्र की दशा का बहुत कुछ ज्ञान हो सकता है।

अति प्राचीन काल में मिश्र कई छोटी २ रियासता में बंटा हुआ था। इनमें से मेम्फिस (Memphis) की रियासत सर्वश्रेष्ठ व बलशाली थी। यहां फ़ेरो (Pharaohs) लोग राज्य करते थे। इनकी आज्ञा को मिश्र भर की सब रियासतें मानती थी। मेम्फिस देशवासी सब कलाकौशलों में दक्ष थे। इस समय सम्पूर्ण मिश्र के लोग खेती करने में बड़े चतुर थे और नील नदी, में जो बाढ़ें आती हैं उनसे पूर्ण लाभ उठाया करते थे। चीनवासियों को छोड़कर उस समय संसार की सब सभ्य जातियों से ये लोग गणित व ज्योतिष में बढ़े चढ़े थे। इन लोगों का जातीय जीवन एक सभ्य, शांति इच्छुक जाति की तरह व्यतीत होता था। शांति-इच्छुक होनेपर भी ये लोग सामयिक युद्ध के लिए पूरी तय्यारियां कर रखते थे। इन लोगों में एक युद्ध विभाग था और जो अस्त्र शस्त्र इन लोगों के पास थे वेभी अति उत्तम थे। इन लोगों के घोड़े अति सुन्दर व सुदृढ़ थे। घोड़े रथों में जोते जाते थे। रथ में रथवान के अतिरिक्त एक और मनुष्य बैठता था। इन दोनों को शत्रु के आघातों से एक ढाल बचाये रहती थी। बाण चलाने में ये लोग सारे संसार में विख्यात थे। योद्धाओं को इनके यहां बड़ा सन्मान दिया जाता था और पुरोहितों के बाद वे लोग योद्धाही को सब से उत्तम स्थान देते थे।

क्रमशः मिश्र के लोग सब सुखों से घिरे रहने पर सुखमार्ग के अनुयायी हुये। इन लोगों ने युद्ध विद्या को छोड़सा दिया। इस सैनिक-कीर्ति का अधःपतन युसुफ (Joseph) के मिश्र में आने के पूर्वही शुरू हो गया था और मरुभूमि के घूमने वाले हाइक्सस (Hyksos) लोगों ने मिश्र के ऊपर कई बार चढ़ाइयां करके सफलता लाभ की थीं। ये लोग कई बार मिश्र से निकाल दिये गये थे परन्तु मिश्रवालों को यह डर लगा कि कहीं ये मरुभूमिवासी सुअवसर पाकर सम्पूर्ण मिश्र को निगल न जाएं। इसलिए युसुफ (Joseph) के समय में जो शासक था उसने

इन घूमनेवाले लोगों में से जिनको अधिक सभ्य व बलशाली देखा उन्हें गोशन (Goshen) के देश में बसा दिया। इस प्रकार सम्पूर्ण गोशन देश में इसराईल (Isrealites) जाति के लोग भर गये। ये लोग सभ्यता में मिश्रवासियों से कुछ कम नहीं थे और इन्होंने मिश्रवालों को कई एक विद्याएँ सिखलाईं।

कई एक वर्षों तक मिश्रवाले और इसराईल लोग सुख से रहे परन्तु असभ्य हाइक्सस लोग एक समय टिड्डीदल की तरह मिश्र में चढ़ आये। इसराईल लोग कुछ भी न कर सके और प्राचीन फ़ेरो वंश नष्ट होगया। एक गड़रिया मिश्र के राज्यासन में बैठ गया और उसने इसराईल लोगों को नाना प्रकार से दंड देकर देश से निकालना शुरू किया। होनहार बड़ी प्रबल है। इसराईल लोगों के जाने के पश्चातही गड़रियेवंश का नाश होगया। थीब्ज़ (Thebes) राजा ने दक्षिणी मिश्र और न्यूबिया (Nubia) पर अपना झंडा गड़वा दिया। उसने हाइक्सस लोगों को अस्त्रशस्त्र छीनकर भगा दिया। इसके बाद हाइक्सस लोग एक बार फिर भी मिश्र में आये परन्तु फिर भी वे सदा के लिए निकाल दिये गये।

इसके पश्चात् का समय मिश्र के लिए अतिही सुख व कीर्तिदायक हुआ। सिसौस्ट्रिस (Sesostris) ने जोकि पीछे महान रमेज़ेज (Ramieses the Great) के नाम से विख्यात हुआ, मिश्र की सब छोटी २ रियासतों को एक कर दिया। रमेज़ेज का राज्य इथियोपिया (Ethiopia) के दक्षिण से लेकर यूनान और फ़ारस तक फैला हुआ था। पूर्वी अरब का बड़ा भाग इसी के साम्राज्य में था और कोई २ इतिहासकर्ता लिखते हैं कि उसने जङ्गी जहाज़ों में आकर भारतवर्ष को जीतने का इरादा किया था। ये जहाज़ लालसागर में बनाये गये थे और बाबुल मन्दब के मार्ग से अरब सागर में लाये गये थे। संसार के भिन्न २ जातियों के लोग उसके क़ैदी थे और यह उनसे कई प्रकार की विद्याएं सीखता था। इसने शाम (Syria) व पेलस्टाईन (Palestine) को भी जीत लिया था।

सिसौस्ट्रिस के पश्चात् मिश्र के कई शासक हुये। परन्तु ३०० वर्ष तक का मिश्र का इतिहास कुछ भी ज्ञात नहीं है। मसीह से एक सहस्र वर्ष पूर्व मिश्र के राजा शीषक (Shishak) ने पैलेस्टाइन के ऊपर फिर चढ़ाई की और इसराईल लोगों को बहुत कष्ट दिया। कहा जाता है कि शीषक की चढ़ाई इसराईल लोगों के लिए ईश्वर का भेजा हुआ प्रथम कोप था क्योंकि उन लोगों ने ईश्वर का अनादर किया था।

इसके पश्चात् मिश्र का फिर अधिपतन हुआ। ईसा से ७१३ वर्ष पूर्व असीरिया (Assyria) का राजा सेनाशरीब मिश्र के ऊपर एक बड़ी सेना लेकर चढ़ आया परन्तु उसकी सेना में एकायक महामारी फैल गई और सहस्रों सैनिक काल के ग्रास हुये। अनन्तर उसकी सेना जेरूसलम को गई परन्तु वहां जाकर वह हर तरह से नष्ट होगई। * इस

---

* देखो अङ्गरेज़ी कवि बाइरन (Byron) लिखित कविता "The Destruction of Sennacherib" अर्थात् "सेनाशरीब का नाश।"

Like the leaves of forest, when summer
is green
That host with their banners at sunset
were seen
Like the leaves of forest, when autumn
has blown
That host on the morrow lay withered
and strown.

"हरे भरे ग्रीष्म ऋतु में जङ्गल की पत्तियों की तरह वह सेना अपने झंडों सहित सायङ्काल के समय दिखलाई दी। परन्तु दूसरे दिन पतझड़ में जङ्गल के पत्तों की तरह वह सेना मुरझा गई और बिखर गई।

समय में मिश्र में बाहरी देशों के इतने मनुष्य भर गये थे कि मिश्र जाति एक प्रकार से लोप सी होगई थी।

ईसा से ६१६ वर्ष पूर्व यहां "फरोहानीको" राज्य करता था। इसके समय में मिश्र के कई देशाटन करनेवाले जहाज़ अफ्रिका के पूर्वी तट से होते हुए केप आफ गुडहोप (Cape of Good Hope) से घूम कर, अटलांटिक महासागर में होते हुए, जिब्रालटर के द्वारा भूमध्य सागर में आकर मिश्र को लौट आये। इस यात्रा में पूरे ३ वर्ष लगे थे।

इसके पीछे मिश्र का अन्त समय निकट आया। फारस के शाह साइरस (Cyrus) और उसके बेटे कैमबाइज़ेज़ (Cambyses) ने मिश्र को जीता और यहां के सब राजकुमारों, सर्दारों और धनी लोगों को मरवा डाला। इसने मिश्रवालों के पवित्र मन्दिरों को अशुद्ध करदिया और मिश्र के पुरोहितों की खालें खिचवाकर भूसा भरवा दिया। जब तक फ़ारस वाले वहां रहे सदा अत्याचार होते ही रहे।

ईसा से ३२६ वर्ष पूर्व जब सिकन्दर आज़म ने फ़ारसवालों को हराया और स्वयं एक वर्ष के बाद मर गया तो मिश्रवाले ही वहां के शासक होगये। इनमें से टोलेमीज़ (Ptolemes) लोगों ने कई वर्षों तक राज्य किया और सुख शान्ति की स्थापना की। टोलेमीज़ लोगों का वंश क्लियोपैट्रा (Cleopatra) के पश्चात् नष्ट हो गया और ईसा के जन्म से ३० वर्ष पूर्व रूम का जगत् विख्यात सम्राट औगस्टस सीज़र (Augustus Caesar) मिश्र के ऊपर अपना झंडा गड़वा गया।

अब हम यहां पर अपना वृत्तान्त सम्पूर्ण करते हैं, पाठकों से प्रार्थना है कि वे ध्यानपूर्वक देखें कि कोई जाति किस प्रकार सभ्यता की उच्च श्रेणी में पहुँच कर गिर सकती है और किस प्रकार से कोई गिरी जाति परिश्रम कर कलाकौशलों की वृद्धि करके निकृष्ट दशा से सर्वोच्च स्थान पाकर औरों के लिए आदर्श रूप हो सकती है।

महाकवि भास।*

[लेखक—श्रीयुत पं० बाबूलाल मायाशंकर दूबे।]

अभी तक हम भास का नाम ही सुनते थे। अब उनके रचे हुए १२ नाटक मिले हैं। इनके नाम क्रमशः (१) स्वप्नवासवदत्तम् (२) प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् (३) पंचरात्रम् (४) चारुदत्तम् (५) दूतघटोत्कचम् (६) अविमारकम् (७) बालचरितम् (८) मध्यमव्यायोगः (९) कर्णभारम् (१०) ऊरुभङ्गम् (११) अभिषेकनाटकम् और (१२) प्रतिमानाटकम् हैं। इनमें संख्या (१) से (३) तक और (५) से (१०) तक के ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं और पं० गणपति शास्त्री त्रिवेन्द्रम् के पास मिल सकते हैं।

यद्यपि भास ने इन नाटकों में अपना नामोल्लेख कहीं नहीं किया, तथापि निम्नलिखित प्रमाणों से स्पष्ट है कि ये सब नाटक उन्हीं के रचे हुए हैं।

(१) इन सब के आरम्भ में "नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः" लिखा है। फिर मंगल श्लोक है।

(२) इन सब में "प्रस्तावना" के स्थान में "स्थापना" है।

(३) भरत-वाक्य में निम्नोक्त एक ही प्रार्थना इन सब में पाई जाती है। "इमामपि महीं कृत्स्नां राजसिंहः प्रशास्तु नः"।

---

* यह लेख "स्वप्नवासवदत्त" पर पंडित गणपति शास्त्री की भूमिका के आधार पर लिखा गया है। लेखक

(४) आरम्भ में मंगल-श्लोक के पश्चात् तीन वाक्य इन सब में एक से हैं।

(५) चार नाटकों के मंगल-श्लोकों में संकेतरूप से मुख्य मुख्य पात्रों के नाम दिये गये हैं।

(६) भिन्न भिन्न ग्रन्थों में कोई कोई श्लोक जैसे के तैसे मिलते हैं। इससे सिद्ध है कि इन सब की रचना एक ही व्यक्ति ने की है।

(७) आचार्याभिनवगुप्तपाद तथा अन्य अनेक प्रख्यात कवियों ने "स्वप्नवासवदत्त" नाटक का उल्लेख किया है और उनके बताये अनुसार विषय भी इस नाटक में उपस्थित है।

(८) दूसरे कवियों ने इन ग्रन्थों की प्रशंसा की है :—

(क) राजशेखर ने सूक्तिमुक्तावली में लिखा है

"भासनाटकचक्रेऽपिच्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः" ॥

जब पुरजनों ने भास के नाटकों की परीक्षा की तब पावक ने भी "स्वप्नवासवद" को नहीं जलाया। अर्थात् *स्वप्नवासवदत्त क्या है? वह बटर का सोना है।

(ख) मालविकाग्नि मित्र में कालिदास कहते हैं :—

"प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धनातिक्रम्य वर्तमानकवेः कालिदासस्य क्रियायां कथं बहुमानः"।

भास सौमिल्ल इत्यादि विख्यात कवियों के ग्रन्थों के सामने वर्तमान कालिदास की रचना का सम्मान कैसे हो सकता है?

(ग) कादम्बरीकार बाण कहते हैं :—

"सूत्रधारकृतारम्भै र्नाटकैर्बहुभूमिकैः।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव" ॥

पताका धारण किये हुए देवताओं के समान भास ने पताका रूपी इन नाटकों से यश प्राप्त किया जो सूत्रधार (नान्दी से नहीं) से आरम्भ होते हैं और जिनमें पात्रों की बहुलता है।

भास का समय।

वन्द्यघाटीय सर्वानन्द (अमरकोषसार में) आचार्य अभिनव गुप्तपाद (भरतनाट्यवेदविवृत्ति में) आनन्दवर्धन (ध्वन्यालोक में) वामन (काव्यालंकार सूत्रवृत्ति में) दंड (काव्यादर्श में) भामहाचार्य (काव्यालंकारम) गुणाढ्य (बृहत्कथा में) राजशेखर (सूक्तिमुक्तावली में) कालिदास (मालविकाग्निमित्र में) बाण, हर्ष, भवभूति, शूद्रक, चाणक्य इत्यादि के ग्रन्थों में भास का कुछ न कुछ पता लगता ही है। किसी ने इनका नामोल्लेख किया है तो किसी ने इनकी कृति की प्रशंसा की है। इनके ग्रन्थों से किसी ने शब्द, किसी ने शैली, किसी ने विचार, किसी ने श्लोक के श्लोक, किसी ने कथा-प्रबन्ध और किसी ने उदाहरण लिये हैं। शूद्रक ने तो "चारुदत्त" के श्लोकों के कुछ शब्द बदलकर और कुछ अपने भी श्लोक मिलाकर "मृच्छकटिक" नाटक तैयार कर लिया है। हम इन सब के ग्रन्थों से उद्धरण और मिलान करके लेख नहीं बढ़ाते। संस्कृत के विद्वान् स्वयं देख सकते हैं। इन सब में पुराने चाणक्य ने अपने अर्थशास्त्र में सेना को उत्तेजित करने के लिए बातें बताई हैं और प्रमाण के लिए श्रुति और स्मृति तुल्य महत्त्व के काव्यों से कुछ श्लोक उद्धृत किये हैं। उन श्लोकों में से एक प्रतिज्ञायौगन्धरायण (नं० २) का भी है :—

"नवं शरावं सलिलस्य पूर्णं
सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयं।
तत्तस्यमाभून्नरकं च गच्छे-,
द्योभर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत्"।

चाणक्य महाराज चन्द्र गुप्त मौर्य के गुरु अतः समकालीन थे। इन दोनों का समय (ई०

---

* लेखक के पास स्वप्नवासवदत्त का गद्यपद्यमय सचित्र हिन्दी-अनुवाद तैयार है।

पू०) चौथी शताब्दि निश्चय हो गया है। इसलिए भास जब हुए हों (ई० पू०) चौथी शताब्दि के पहिले ही हुए हैं।

इनके ग्रन्थों के गुण।

भास के नाटकों की शैली अद्वितीय है। विचार उच्च, बहुमूल्य, हृदयंगम और देशकालोचित हैं। पदयोजना विचारानुरूप संक्षिप्त और सान्वय है। प्रबन्ध पूर्णतः रसमय है। भाषा सरल, स्फुट, गंभीर, मधुर और मोहक है। इन्होंने वाणी की वर्षा ऐसी की है मानो सरस्वती इनके प्रत्येक श्वास में विराजमान हो। कालिदास सरीखे प्रसिद्ध कवियों में भी माधुर्य, सारल्य, प्रसाद इत्यादि गुण पाये जाते हैं। परन्तु भास में ये गुण अपनी उच्चतम सीमा को पहुंचे से जान पड़ते हैं। इनका जैसा पद्य वैसा गद्य भी श्लाघ्य है। इनकी वाणी और व्याख्या ऋष्युक्तियों से भिन्न अवश्य है किन्तु प्रत्येक अंश में उन से कहीं अधिक रोचक है।

शूद्रक ने तो बहुत कुछ इनसे नकल किया है। कालिदास और भवभूति ने भी इन ग्रन्थों के आधार पर अपने प्रसिद्ध ग्रन्थों की महिमा बढ़ाई है। देखिये भास की कविता की छाया अभिज्ञान शाकुन्तल में अनेक स्थानों में पाई जाती है। यथा अभिषेक नाटक के चौथे अंक में एक श्लोक है।

"यस्यां न प्रियमण्डनापि महिषी देवस्य मंदोदरी
स्नेहाल्लुम्पति पल्लवान्न च पुनर्जीवन्तियस्यांभयात्
वीजन्तो मलयानिला अपि करैरस्पृष्टबालद्रुमा
सेयं शक्ररिपोरशाकवनिका भग्नेति विज्ञाप्यतां॥"

अब कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तल के चौथे अंक के एक श्लोक को देखिये। स्मरण रहे कि कालिदास के चार प्रसिद्ध श्लोकों में का ही यह एक है जिनके विषय में कहा गया है।

"काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला।
तत्रापि च चतुर्थोंकस्तत्रश्लोक चतुष्टयं॥"

"पातुं न प्रथमं व्यवस्यतिजलं युष्मास्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवं।
आद्ये वः कुसुमप्रवृत्तिसमये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायतां॥"

यहां पर केवल श्लोक-शैली की छाया ही नहीं है, प्रत्युत "प्रियमण्डनापि, स्नेहात् पल्लवान्, सेयं" इन सरस पदों की अक्षरशः नकल है। बालचरित के प्रथमांक में अर्धरात्रि के समय वसुदेव के हाथ में बड़े कष्ट से शिशु को देकर देवकी की जो दशा हुई है, उसे भास ने यों अङ्कित किया है।

"हृदयेनेह तत्राङ्गैर्द्विधाभूतेव गच्छति।
यथा नभसि तोये च चन्द्रलेखा द्विधा कृता"॥

इसकी छाया शकुन्तला के पहिले अङ्क में देखिये।

"गच्छति पुरः शरीरं धावति पश्चादसंस्तुतं चेतः।
चीनांशुकमिव केतोः प्रतिवातं नीयमानस्य"॥

स्वप्नवासवदत्त के प्रथमाङ्क के एक श्लोक का एक पाद है।

"विस्रब्धं हरिणाश्चरन्त्यचकिता देशागतप्रत्ययाः"

इसी को कालिदास ने शाकुन्तल में दूसरे शब्दों में यों लिखा है।

"विश्वासोपगमादभिन्नगतयः
शब्दं सहन्ते मृगाः"।

एवं अन्यत्र भी कालिदास के ग्रन्थों में भास के नाटकों की छाया पाई जाती है।

भवभूति की कविता में भी भास-नाटक-चक्र के परिशीलनजनित संस्कार बहुलता में पाये जाते हैं। उत्तररामचरित्र के द्वितीयांक का आत्रेयी-संवाद स्वप्नवासवदत्त के प्रथमांक के ब्रह्मचारि संवाद का अनुकरण है और षष्ठांक का विद्याधर-संवाद अभिषेक नाटक के षष्ठांक के विद्याधर-संवाद की छाया है। मालतीमाधव के पञ्चमांक का दण्डक-प्रयोग अविमारक के पंचमांक के दण्डक-प्रयोग का अनुकरण है ८

भास की निरंकुशता।

"निरंकुशा हि कवयः" से भास अलिप्त नहीं हैं। व्याकरण-सम्बन्धी तथा अन्य दोष भी कहीं २ भास के नाटकों में पाये जाते हैं। किन्तु उन सब का समाधान पाणिनीय से हो जाता है। इनका प्रचार अधिक न होने के कारण अव्युत्पन्नों ने पाठ भेद कर दिया था ऐसा जान पड़ता है। मालूम नहीं ऐसे अमूल्य ग्रंथों का प्रचार कैसे बन्द हो गया।

साहित्योपयोगी होने के सिवाय ये नाटक भारत के प्राचीन इतिहास पर भी अपना प्रभाव डाले बिना न रहेंगे।

हम साहित्य-प्रेमियों के लिए भास के कुछ श्लोक उद्धृत करके अपना लेख समाप्त करते हैं:—

(१) भाग्य की परिवर्तन शीलता :—

... ...
... ...

कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना।
चक्रारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपङ्क्तिः॥

(२) कृतज्ञता और गुणग्राहकता :—

गुणानां वा विशालानां सत्काराणां च नित्यशः।
कर्तारः सुलभा लोके विज्ञातारस्तु दुर्लभाः॥

(३) उद्यम :—

काष्ठादग्निर्जायते मथ्यमाना
भूमिस्तोयं खन्यमाना ददाति।
सोत्साहानां नास्त्यसाध्यं नराणां
मार्गारब्धाः सर्वयत्नाः फलन्ति॥

(४) वर के लक्षण :—

कुलं तावच्छ्लाघ्यं प्रथममभिकाङ्क्षे हि मनसा
ततः सानुक्रोशं मृदुरपि गुणो ह्येष बलवान्।
ततो रूपे कान्तिं न खलु गुणतः स्त्रीजनभयात्
ततो वीर्योदग्रं न हि न परिपाल्या युवतयः॥

(५) कन्या की माता के भाव :—

अदत्तेत्यागता लज्जा दत्तेति व्यथितं मनः।
धर्मस्नेहान्तरे न्यस्ता दुःखिताः खलु मातरः॥

(६) गुरु की चिन्ता :—

अतीत्यबन्धूनवलङ्घ्य मित्रा-
ण्याचार्यमागच्छति शिष्यदोषः।
बालं ह्यपत्यं गुरवे प्रदातु-
र्नैवापराधोऽस्ति पितुर्न मातुः॥

(७) वीर पूजा :—

ताडितस्य हि योधस्य श्लाघनीयेन कर्मणा।
अकालान्तरिता पूजा नाशयत्येव वेदनां॥

(८) तमोवर्णन :—

(१)

सुलभशरणमाश्रयो भयानां
वनगहनं तिमिरं च तुल्यमेव।
उभयमपि हि रक्षतेऽन्धकारे
जनयति यश्च भयानि यश्च भीतः॥

(२)

अप्रकाशा इव दिशो घनीभूता इव द्रुमाः।
सुनिविष्टस्य लोकस्य कृतो रूपविपर्ययः॥

(३)

दुर्दिनविनष्टज्योत्स्ना रात्रिर्वर्तते निमीलिताकारा।
सम्प्रावृतप्रसुप्ता नीलनिवसना यथा गोपी॥

(४)

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्निष्फलतां गता॥

(९) चोर के विचार :—

लुब्धोऽर्थवान् साधुजनाभिमानी
बणिक् स्ववृत्तावतिकर्कशश्च।
यस्तस्य गेहं यदि नाम लप्स्ये
भवामि दुःखोपहतो न चित्त॥

(१०) राजा की जिम्मेवारी :—

धर्मः प्रागेव चिन्त्यः सचिवमति गतिः
प्रेक्षितव्या स्वबुद्ध्या।
प्रच्छाद्यौ रागरोषौ मृदुपरुषगुणौ
कालयोगेन कार्यौ॥

अयं लोकानुवृत्तं परचरनयनै
मंडलं प्रेक्षितव्यम्
रक्ष्यो यत्नादिहात्मा रणशिरसि पुनः
सोऽपि नावेक्षितव्यः ॥

(११) सचिव की गति :—

प्रसिद्धौ कार्याणां प्रवदति जनः पार्थिवबलम्
विपत्तौ विस्पष्टं सचिवमतिदोषं जनयति ।
अमात्या इत्युक्ताः श्रुतिसुखमुदारं नृपतिभिः
सुसूक्ष्मं दण्ड्यन्ते मतिबलविदग्धः कुपुरुषाः ॥

(१२) निशारम्भवर्णन :—

व्यामृष्टसूर्यतिलको विततोडुमालो
नष्टातपो मृदुमनोहर शीतवातः ।
संलीनकामुकजनः प्रविकीर्णचोरो
वेषान्तरं रचयतीव मनुष्यलोकः ॥

(१३) दैव की बलवत्ता :—

यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः
को वा न सिद्ध्यति ममेति करोति कार्यम् ।
यत्नैः शुभैः पुरुषता भवतीह नृणां
दैवं विधानमनुगच्छति कार्यसिद्धिः ॥

(१४) दान की महत्ता :—

शिक्षा क्षयं गच्छति कालपर्ययात्
सुबद्धमूला निपतन्ति पादपाः ।
जलं जलस्थानगतं च शुष्यति
हुतं च दत्तं च तथैव तिष्ठति ॥

भारत का अभ्युदय।

[लेखक—श्रीयुत पं० व्रजमोहन लाल गुप्त ।]

आज कल समस्त भारतवर्ष में उन्नति की ध्वनि गूंजती हुई सुनाई पड़ती है और इससे यह भी प्रतीत होता है कि प्रत्येक भारतसन्तान के हृदय में अपना और अपने देश के अभ्युदय करने का विचाररूपी अंकुर उत्पन्न होगया है। परन्तु इस कोमल और नवीन अंकुर को भलीभांति सींचकर एक फलदार वृक्ष के रूप में परिणत करने में बहुतसी कठिनाइयां उपस्थित हैं। हम केवल इस अंकुर की बाह्यावस्था के सुरक्षित रखने का प्रयत्न करते हैं परन्तु उन बातों की ओर दृष्टिपात नहीं करते जो कि इसके मूल की समृद्धि का आदिकारण है। यदि कुछ थोड़ेसे विद्वानों ने इस ओर ध्यान भी दिया है तो उनकी सम्मतियां भिन्न २ हैं। कोई कहते हैं कि इसकी वृद्धि उस समय हो सकती है जब कि भारतवर्ष से वर्णविभाग उठ जाय और हम सबका खानपान एक हो जाय जैसा कि पश्चिमीय देशों में है। किसीका मत है कि बहुतसी जातियों का होना ही इस कार्य में बाधक है। कोई कोई विचार करते हैं कि अनेक मत-मतान्तरों का लोप होकर केवल एक मत का प्रचलित होना ही उपर्युक्त अंकुर के पल्लवित करने में सहायक हो सकता है, इत्यादि २।

जब इन सब बातों के ऊपर विचार किया जाता है तो यही समझ में आता है और ठीक भी ज्ञात होता है कि ये सब सम्मतियां केवल उन्नति की आभासमात्र हैं। यदि कोई वस्तु इस अंकुर को सींचकर कल्पवृक्ष बना सकती है तो वह विद्यारूपी जल है। विचारदृष्टि से देखा जाय तो यही मालूम होगा कि इस विद्या ही के कारण आज एक छोटे से द्वीप, जापान की विजयवैजयन्ती आकाश में फहरा रही है, इङ्गलैंड मालामाल हो रहा है और अमेरिका, फ्रांस इत्यादि की विजयपताकाएं इसीके कारण नभमण्डल में अपनी २ छटाएं दिखा रही हैं। हमारी पूर्वकालीन ऐतिहासिक घटनाओं से भी विद्या का उन्नति में एकमात्र सहायक होना पूर्णतया सिद्ध होता है। ज्यों

ज्यों हमारे भारतवर्ष से विद्या का ह्रास होता गया है त्यों त्यों देश का अधःपतन भी होता गया है।

जबतक विद्यारूपी सूर्य प्रत्येक आर्यसन्तान के हृदय में भ्रमरूपी अन्धकार को नष्ट कर ज्ञान का प्रकाश न करेगा तब तक धर्म (Duty) का यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता। आज यदि हम भारतसन्तान कहलानेवालों ने अविद्या रूपी अन्धकार में धर्म के पथ को भूलकर छोड़ न दिया होता तो हमारी यह दीन दशा न हुई होती और न हमारा प्यारा भारत अन्य देशों के अधीन हुआ होता !

यह संतोष का विषय है कि अब कुछ थोड़े दिनों से विद्या की उन्नति की ओर हमारे देश के विद्वानों और नेताओं का ध्यान आकर्षित हुआ है। यदि हमारे देश के सब बड़े २ विद्वान और नेतागण अपना कर्तव्य समझकर एकदम विद्या की उन्नति करने को तैयार हो जायँ तो बहुत शीघ्र देश की उन्नति हो सकती है।

विद्या की उन्नति से ही देश की उन्नति होगी इस बात के सिद्ध करने के लिए कुछ विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि सभी उन्नतिशाली देश इस बात के प्रमाण हैं कि उन देशों की उन्नति विद्या के प्रचार पर ही निर्भर है। अब भी जो देश उन्नति करते जा रहे हैं उनमें विद्या की उन्नति के ऊपर ही अधिक ध्यान दिया जा रहा है। इससे यह सिद्ध होता है कि विद्या एक ऐसी वस्तु है जो हर एक मनुष्य, जाति अथवा देश को प्रतिभाशाली बना देती है। इन सब बातों को जानते हुए और हमारे देश में अविद्यारूपी अन्धकार फैला हुआ देखकर भी हम लोग जैसा चाहिये वैसा प्रयत्न विद्या-प्रचार के लिए नहीं कर रहे हैं। हमारे ही प्रजापालक श्रीमान् सम्राट जार्ज पंचम की दूसरे उपनिवेशों की प्रजाएँ, जिनके बराबर हमको भी सब प्रकार के स्वत्व मिलने चाहियें, अपनी २ गवर्नमेंटों की सहायता से विद्या की बहुत कुछ उन्नति कर रही हैं। हमारी गवर्नमेंट इस विषय में वैसी कर्तव्यशील नहीं है जैसी कि उसे होना चाहिये। इसका कारण यह है कि सेना, रेल आदि पर खर्च करने के बाद उसके पास इतना कम खर्च बचता है जो तीस कोटि भारतवासियों की शिक्षा के लिए आटे में नमक के बराबर भी नहीं होता। ऐसी दशा में हम दीन भारतवासी, जिनको कि पेटभर भोजन तक नहीं मिलता अपने भाइयों, बहिनों लड़कों और लड़कियों को शिक्षित बनाने के लिए क्या करें? हमारे पास इतना द्रव्य भी नहीं कि अपनी सन्तानों को स्कूलों या कालेजों में पढ़ने भेज सकें; क्योंकि आजकल स्कूलों और कालेजों में फीस इत्यादि का खर्च इतना बढ़ गया है कि थोड़े से धनवानों के सिवाय और कोई अपनी सन्तान को पढ़ाने में समर्थ नहीं है।

हम लोगों के लिए यह कितने दुःख की बात है कि ऐसे समय में जब कि हमारी न्यायशीला गवर्नमेंट के सामने माननीय मि० गोखले का प्रारम्भिक शिक्षा को अनिवार्य और मुफ्त कर देने के विषय में प्रस्ताव पेश है, कुछ प्रान्तीय गवर्नमेंटों और बोर्डों ने (जहां कि सब प्रान्तों से विद्या की अधिक आवश्यकता है) स्कूलों में फीस बढ़ा दी है। अब पाठक विचार करें कि इधर तो विद्या की अत्यन्त आवश्यकता और उधर गवर्नमेंट की ओर से ऐसी कठिनाइयां! ऐसी अवस्था में किस प्रकार विद्या की उन्नति हो सकती है? इस समय इससे अच्छा और सुगम कोई उपाय नहीं है कि जितना भार विद्याप्रचार का गवर्नमेंट अपने ऊपर ले सके उतना तो गवर्नमेंट ले और शेष भार का प्रबन्ध प्रजा के नेता, धनी और विद्वान अपने ऊपर लें और उसके व्यय के लिए प्रजा से किसी सुगम उपाय से धन एकत्रित करके विद्या का प्रचार हर एक गांव, कसबे और शहर २ में करें

जिससे एक बार फिर वह समय आजाय जैसा कि राजा भोज के राज्य में था जब कोई ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य यहां तक कि शूद्र भी मूर्ख मिलना असम्भव था। उस समय क्या पुरुष, क्या स्त्री; क्या बढ़ई, क्या कुम्हार, सभी विद्वान थे। यहां तक कि भंगी, डोम और चमार भी पढ़े लिखे थे। उस समय प्रजा के प्रतिनिधियों में से किसीकी भी यह राय नहीं थी कि यदि इन सेवा करनेवाली जातियों को पढ़ा दिया जायगा तो सेवक न मिल सकेंगे! हां इतना अवश्य था कि उस समय स्वामी और सेवक दोनों ही अपने २ धर्म को जानते थे और उसके अनुसार काम करते थे। एक समय वह था जब कि भारतवर्ष में विद्या का सूर्य प्रकाशित हो रहा था और एक समय अब है कि जब आप अपने घर की वस्तुओं के ढूंढ़ने तक में दूसरे के दीपक की सहायता चाहते हैं। याद रखिये जब तक आप दूसरों की सहायता और उनकी वस्तुओं के इच्छुक रहेंगे तब तक देश की उन्नति होना कठिन ही नहीं वरन् असम्भव है।

गवर्नमेंट पर निर्भर रह कर्तव्यपरायणता को तिलांजलि दे बैठना उचित नहीं है। कुछ हाथ पैर बढ़ाइये, अपने मोहल्लों, अपने गावों और अपने शहरों के लड़कों की शिक्षा का प्रबन्ध करिये। यदि आपको दिनमें समय नहीं मिलता तो आप नाइट स्कूल खोलिये, इष्टमित्रों की सहायता से शिक्षकों का कार्य अपने ऊपर ओढ़ लीजिये, कुछ कार्य दिखाइये तब सहायक आप से आप पैदा हो जायँगे।

यूरोप और भारत ।

[लेखक—श्रीयुत हेमचन्द्र जोशी ।]

भिन्न भिन्न जातियों व समाजों के क्रमविकाश के भिन्न भिन्न रास्ते हैं। बिना उन नियमों के माने और उस पथ पर चले, उन्नति नहीं हो सकती। सभी समाजों की प्रकृति एक सी नहीं है। इसलिए सबों की दवा भी एक नहीं हो सकती। एक समाज के नियम दूसरे समाज के लिए हानिकारक हो सकते हैं। इस कारण सब से पहिले समाज का प्राण किस स्थान पर है यह जानकर फिर किसी समाज हितकर काम में हाथ डालना चाहिये। स्वतन्त्रता कहां है, विशेषता क्या है, किस बात में, किस काम के भीतर छिपी हुई है, बिना इस प्रश्न को हल किये सारी मेहनत अकारथ हो जाती है। इमली के पेड़ से आम की आशा करने से जो फल मिलता है, प्रवृत्तिपरायण व्यक्ति व समाज से निवृत्ति की आशा करने का भी वही परिणाम होता है। इसलिए "यूरोप ने इस अवस्था में यह काम किया, इसीलिए हमें भी वही करना उचित है" यह न कहकर "इसी इतने वर्षों की जाति किस प्रकार किस रास्ते पर चली आरही है और किन किन बातों में इसकी प्रकृति बिगड़ रही है" इन बातों का पता लगाकर "हम अपने उपयुक्त अपनी चरम उन्नति किस प्रकार कर सकते हैं" इसपर विचार करना आवश्यक है।

यूरोप की सभ्यता का मूलमंत्र ।

यूरोप व भारत एक पथ के पथिक नहीं हैं, न इनका गन्तव्य स्थान एक है। इसलिए अनुकरण करने से सफलता की आशा नहीं की जा सकती। यूरोप का मन व प्राण बाहरी वस्तुओं की ओर है। इसकी सभ्यता व इसका आदर्श स्थूल जगत् के अकिञ्चित्कर पदार्थों से सम्बन्ध रखता है। इसकी जड़ में है- अर्थ

चरम लक्ष्य है संसार की पार्थिव उन्नति, इसी कारण ही वहां, प्रतियोगिता व जीवन-संग्राम का प्रकोप इतना अधिक है और शिल्प, वाणिज्य, कल, कारखानों का इतना आदर है। यही कारण यूरोप के जड़-विज्ञान की उन्नति का भी है।

रुपये पैसे की झनझनाहट भी वहां खब है और यदि यह कहा जाय कि पार्थिव जगत् से संबन्ध रखनेवाली वस्तुओं पर अत्यन्त आसक्ति ने उनके हृदय के कोमल भावों का नाश कर दिया है तो यह कुछ भी अत्युक्ति नहीं है। सिर मारकर जातीय भाव पैदा किया जाता है सही किन्तु उसके साथ हृदय का नाममात्र भी संबन्ध नहीं होता। उनके निकट स्वदेश-हितैषिता मातृप्रेम नहीं है। उनके हिसाब यह मनोविज्ञान की सिरजी हुई एक नीरस धारणा है। इसलिए यूरोपीय समाज में प्रकृत साम्य व बराबरी नहीं है। एक ओर जैसे धनाढ्य, लक्षपती हैं, दूसरी ओर वैसे ही असंख्य धनहीन परिश्रम मजूर हैं।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि विज्ञान ने यूरोप को बाहरी जगत् का हर्त्ता कर्त्ता व विधाता बना दिया है, किन्तु साथ ही साथ यूरोप आप भी वाह्य जगत् का मोल लिया हुआ गुलाम बन गया है। उन्होंने बिजली व भाप की शक्तियों को काम में लाकर देश काल को लँगड़ा बना दिया है सही किन्तु इन सब बातों के ऊपर, स्वार्थ व पाशविकता के बादल मड़रा रहे हैं। इस ही लिए तो "आत्यंतिकी दुःखनिवृत्ति" "निष्काम भाव" प्रभृति उनके लिए पागलपने की बातें हैं।

भारत की जातीयता।

भारत की सभ्यता इसकी ठीक उल्टी है। यहाँ के शिल्प, समाज, आचार-व्यवहार, रीति-नीति इत्यादि सभी बातों में दूसरा ही आर्य राज्य करता है। "सर्व परवशं दुःखं" और "सर्वमात्मवशं सुखं" ये भाव भारतवासियों की नस नस में घुसे हुए हैं। इसलिए हिन्दू समाज की हमेशा यही चेष्टा रही है कि मन बाहरी वस्तुओं की ओर न खिंचे और न आसक्त हो। हमारी सभ्यता की जड़ में धर्म है। हमारी समाज में इसी कारण यूरोप के समान प्रतियोगिता नहीं है। स्वार्थत्याग, सहानुभूति, प्रेम तथा एकान्तवर्तिता-अर्थात् एक परिवार में रहकर साथ ही एक रसोई में खाने की प्रथा-ही यहां पाई जाती है। हम लोगों में व्यवसाय व वाणिज्य में भी, उपरिलिखित बातें या गुण रहते हैं। तभी तो—अर्थ का अनादर करने व बाहरी वस्तुओं के ऊपर आसक्त न होने से जड़विज्ञान ने उन्नति नहीं की।

पूर्व व पश्चिम का मेल।

इन दो भिन्न पंथों के पथिकों के सम्मिलन से विप्लव अवश्य ही होना था। बस, वही विप्लव हमारे देश में आजकल चल रहा है। फल यह होगा कि त्यागपथावलंबी भारत भोगी यूरोप के पानी से घुलकर नये उद्यम के साथ त्याग के नवीन पथ में चलने लगेगा। हमारी समाज की विशेषता-धर्मभाव-तो कभी लोप होने की नहीं तो भी यूरोप के भारत में आने की आवश्यकता यों थी कि इस बीसवीं सदी के नूतन भाव या विचारों की टक्कर से भारतीय समाज टूटफूट न जाय, वरं दृढ़ और वर्त्तमान समय के उपयोगी भावों के भीतर से अपने गन्तव्य स्थान को जा सके। यूरोप ने अपना कर्तव्य किया है।

भारत का उत्तर।

भारतवर्ष ने भी यूरोप की पुकार सुनने का परिचय दिया है। आह्वान का उत्तर दिया है। बीसवीं शताब्दी के नये विचार व शक्ति-समूह को अपने काम में लाने के लिए भारतवासियों ने चिन्ता के कर्मक्षेत्रों में आन्दोलन जारी कर

दिया है। शिल्प, साहित्य व राष्ट्रीय कामों में हमारे छोटे छोटे गाँव भी सुविस्तृत समाज की समग्रता व ऐक्य को उपलब्ध कर रहे हैं। इससे प्राचीन पल्लीगत या ग्रामीण जीवन के स्थान में जातीय जीवन का विकाश होरहा है।

एक-राष्ट्रीयता।

हम लोग धीरे २ जिस विचित्र एकता का पता लगा रहे हैं वह भारत के लिए एकबारगी नई चीज़ है। हमारे धर्म, समाज व आचार-व्यवहारों के अनैक्य व विभिन्नता में ऐक्य व सामंजस्य का कभी भी अभाव नहीं रहा; किन्तु पश्चिमीय राष्ट्रनीति व शिक्षा के प्रभाव से हम क्रमशः जिस अवस्था को प्राप्त होरहे हैं वह राष्ट्रीय जीवन की एकता एक राष्ट्रीयता है।

जातीय आत्म-प्रतिष्ठा।

यूरोपीय सभ्यता को देखकर हमने अपनी सभ्यता को पहिचान लिया है। अङ्गरेज़ों ने भारत का गठन किया है। सारी मनुष्यजाति के बीच अपना स्थान ढूंढ़ निकालने का सुयोग या अच्छा मौक़ा पैदा कर दिया है।

पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में, जिस समय यूरोपियनों ने व्यवसाय की उन्नति के लिए भारत को आने का रास्ता खोज निकाला था उस समय यह घटना भूगोल संबन्धी आविष्कार समझी गई। फिर जब यूरोप में साम्राज्य व उपनिवेश-राज्यों के निमित्त राष्ट्रीय द्वंद्व उपस्थित हुआ तो भारत को भी यूरोपीय जीवन-संग्राम के चक्कर में गिरना पड़ा। इसका फल यह हुआ कि एक विचित्र राजनैतिक घटना होगई। इङ्गलैण्ड ने भारत-साम्राज्य पाया और भारत पराधीन होगया। तब मालूम हुआ कि यह आविष्कार राजनैतिक महत्व भी रखता है।

ऐतिहासिक तौर से आलोचना करने पर यह घटना हमारी आंतरिक कृतज्ञता का विषय बन जाती है। क्योंकि इसके बदि हम अपनी सत्य आत्मा को बाहर निकालने में समर्थ हुए हैं। आज देख रहे हैं कि सुदूर भूतकाल का एक भौगोलिक आविष्कार मानव-समाज की एक विचित्र जाति की आत्म-प्रतिष्ठा की सूचना दे गया है।

यदि गंभीर भाव व दूर-दृष्टि से देखा जाय तो पाश्चात्य शिक्षा से हमारा कुछ भी अनिष्ट नहीं हुआ है वरन् जिसे हम अपनी नई जातीयता की गौरव की वस्तु समझते हैं, अपनी श्रद्धा व भक्ति का विषय मानते हैं, वह हमें यूरोप के संघर्ष से मिला है।

कर्म व विचार के विविध केन्द्र।

अंगरेज़ी शिक्षा हमारे देश में चाहे जिस उद्देश्य से चलाई गई हो, हमने पश्चिमीय सभ्यता को पहले पहल जिस भाव से ग्रहण किया हो किन्तु जब से हम थोड़ी स्वाधीनता के साथ विज्ञान, स्वायत्त-शासन, राष्ट्रीय ऐक्य प्रभृति भावों को अपनी जातीय विशेषता के साथ मिलाने के कुछ भी योग्य हुए हैं, तब ही से हमारा विचित्र समाज सभी बातों में उन्नति की ओर बढ़ा है। फलतः हमने जातीय महासमिति, साहित्य-सभाएं, शिक्षा-परिषद्, विज्ञान-परिषद्, विदेश-प्रेरक-समाज प्रभृति गठन करने की उपयोगिता प्राप्त की है। शिल्प, साहित्य, विज्ञान, शिक्षा, समाज, धर्म इत्यादि हमारी चिन्ता व कर्मों के विषय बन गये हैं और हमारी जीवनी-शक्ति सब ओर से विकसित हो रही है।

भावुकता का परिवर्त्तन।

इतना ही क्यों, आजकल जो हमारे समाज में त्याग, वैराग्य, संन्यास, परोपकार, मनुष्य-सेवा, देशहितैषिता आदि आध्यात्मिक व नैतिक-सत्यों को अमली जीवन का अंग बनाने की चेष्टा हो रही है वह भी तो वास्तव में पाश्चात्य शिक्षा का फल है। यूरोप से प्राचीन उपनिषद्

व वेदान्त को नये मानों के साथ सीखकर हम अपने जीवन को गीता के प्रचार दर्शन-शास्त्रों की आलोचना तथा निष्काम कर्म के अर्पण कर रहे हैं । हमारे नये संन्यासी व कर्मयोगी गेटे, कार्लाइल, इमर्सन, रस्किन, टालस्टाय प्रभृति यूरोपीय ऋषियों के शिष्य हैं ।

फ़्रांस के विप्लव के समय से यूरोप नाना कारणों से बड़े जद्दाजहद के बाद, साम्य, मैत्री, स्वाधीन विचार, व्यक्तित्व-विकाश, नीची जातियों के अधिकार, सर्वसाधारण-तंत्र सोशियलिज़्म इत्यादि को जानने लगा है। इसके फल से वहां के साहित्य-क्षेत्र, व्यवसाय, धर्म व नैतिक जीवन में जो व्यापक व सर्वतोमुखी आन्दोलन उपस्थित हुआ है उसके प्रभाव से भावुकता, आध्यात्मिकता आदि भावों ने समाज में घुसकर नया युग खड़ा कर दिया है । यूरोप का यह आध्यात्मिक विप्लव ही हमारे वर्त्तमान वेदान्तिक आन्दोलन का उद्गम है ।

भारतवर्ष यूरोप का ऋणी है । इसे मानने से हमारी कुछ भी गौरवहानि नहीं होती, क्योंकि मनुष्य जाति की सभ्यता इसी प्रकार लेनदेन से परिपुष्ट होती है। प्राचीनकाल में भारत ने भी अनेक सत्यों का आविष्कार कर के उनसे मनुष्य का सभ्यता-भांडार भरा था। कुछ नये सत्यों का उपहार लेकर आजकल का यूरोप भी मनुष्य-जाति के दरवाज़े पर खड़ा है । मिश्रीय, बैबिलोनियन, ग्रीक प्रभृति समाज अपना अपना दातव्य देकर अतीत के गर्भ में लीन होगये हैं। उन्हें स्वतंत्र उपाय से आधुनिक सभ्यता को ग्रहण कर नये सत्यों को देने का अधिकार नहीं मिला । किन्तु प्राचीन भारत एक विचित्र अमरता प्राप्त करके आज भी विद्यमान है और आधुनिक सत्यों को अपनी विशेषता से रंगकर मानव-जाति के इतिहास में एक नया अध्याय खोलने की तैयारियां कर रहा है ।

आधुनिक ग्रीस व मिश्र में प्राचीन जीवन का एक भी चिह्न नहीं रह गया है पर आधुनिक भारत यूरोपीय जल से घुलकर भी पुरातन पारंपर्य की रक्षा कर रहा है । यथार्थ में हमारा देश ही प्राचीन व नवीन, पूर्व व पश्चिम का सम्मिलन-स्थल है । इस संगम-क्षेत्र में जो यह अपूर्व समन्वय होरहा है वह केवलमात्र यूरोप की नकल या प्राचीन भारत की पुनरावृत्ति नहीं है, लेकिन भारत का नई मूर्त्तिधारण नवीन शक्ति का प्रकाश है अर्थात् नवयुगोपयोगी नवरूप-धारण है ।*

संगृहीत ।

तोप के गोलों से रोशनी ।

अभी तक जलयुद्ध में शत्रुदल पर प्रकाश डालने का काम विजली से किया जाता था इसको अंगरेज़ी में सर्च लाइट (Searchlight) कहते हैं। अब आशा की जाती है कि भविष्य में यह काम तोप के गोलो से लिया जायगा । जर्मनी में जंगी जहाज़ो पर इसकी परीक्षा भी की गई है । ये गोले साधारण गोलों की भाँति तोप में रखकर छुड़ाये जाते हैं । जल में गिरने पर ये ऊपर आजाते हैं क्योंकि ये जल से हलके होते हैं । जल में प्रवेश करने के समय इनमें अपने आप पानी भर जाता है और यह पानी गोलों में भरी हुई कैलशियम कारबाइड (Calcieum carbide) से मिलकर ऐस्टलीन

---

* अध्यापक विनयकुमार सरकार एम० ए० महोदय के एक प्रबन्ध का उल्था ।

गैस (Acetylene gas) पैदा कर देता है। गोलों में से निकली हुई गैस ३००० बत्तियों के बराबर रोशनी पैदा करती है। इस गैस की तेज़ रोशनी से प्रायः पाठक भलीभांति परिचित होंगे क्योंकि अक्सर बाइसिकिलों में इसकी रोशनी होती है। दूरस्थित शत्रु के जहाज़ों के निकट यदि ऐसे ५। ६ गोले छोड़ दिये जायँ तो अवश्य ही उनपर निशाना लगाने में बड़ी सुगमता होगी।

बन्दूक की गोलियों से रोशनी।

हम ऊपर जलयुद्ध में तोप के गोलों का नवीन उपयोग वर्णन कर आये हैं। स्थलयुद्ध में भी इनसे काम लिया जाता है, वरन् बन्दूक की गोलियाँ भी यही काम देती हैं। भेद केवल इतनाही है कि स्थलयुद्ध के गोले और गोलियां हवा में जाकर फट जाती हैं और उनमें से एक २ छाता निकल आता है और प्रकाश उत्पन्न होजाता है। छाता दोहरा काम देता है एक तो वह गोले या गोली को शीघ्र पृथ्वी पर आने नहीं देता और दूसरे प्रकाश को केवल नीचे ही को ओर आने देता है जिससे थोड़े ही प्रकाश में शत्रुदल की स्थिति का भलीभांति ज्ञान हो जाता है। धन्य है पाश्चात्यों की कारीगरी!

पनामा की नहर से पहिला सफर।

यह चिरस्मरणीय ऐतिहासिक घटना २६ सितम्बर १९१३ को पौने पाँच बजे दिन के प्रारम्भ में हुई। उक्त समय पर एक स्टीम बोट ने नहर में प्रथम बार प्रवेश किया और हज़ारों मनुष्यों की करतलध्वनि के साथ यह घटना आनन्दपूर्वक समाप्त हुई।

काग़ज़ का आरा।

काग़ज़ इस समय बड़े विचित्र रूपों में बरता जाता है, यहां तक कि इसकी पत्थर के समान कड़ी शिलाएँ तैयार की गई हैं और उनसे मकान बनाये गये हैं। परन्तु काग़ज़ का एक और नया प्रयोग निकला है जो अत्यन्त ही अद्भुत है। इङ्गलैंड में एक कम्पनी नकशे के काग़ज़ से (Drawing paper) गोल आरा तैयार करती है जो बहुत उम्दा काम करता है। इन आरों से लकड़ी की बहुत पतली तहें काटी जाती हैं जिनसे नाज़ुक और सोफ़ियानी लकड़ी की चीज़ें बनती हैं। बारीक से बारीक स्टील के आरे इन आरों की अपेक्षा बढ़िया नहीं काट सकते। इन आरों से कटे हुये तख़्ते इतने चिकने और साफ़ होते हैं कि उनको फिर रंदने की ज़रूरत नहीं होती।

फोनोग्राफ से अध्यापक का काम।

भिन्न २ भाषाओं के सिखानेवाले बड़ी कठिनता से मिलते हैं। इस कठिनाई को दूर करने के लिए एक ऐसा फोनोग्राफ तैयार किया गया है जो अध्यापक का काम बहुत आसानी के साथ करता है। फोनोग्राफ के नीचे काग़ज़ की फर्री खुलती और लपटती जाती है और जिस समय जो शब्द काग़ज़ पर लिखा दिखलाई पड़ता है उसी समय उस शब्द का उच्चारण फोनोग्राफ से होता है। शब्द के माने दो अन्य भाषाओं में बराबर दिये रहते हैं। अभी केवल तीन भाषाओं अर्थात् अंगरेज़ी, जर्मन और स्पेनिश सिखानेवाला फोनोग्राफ तैयार हुआ है। हमारी समझ में अब केवल एक बात की त्रुटि रह गई है और वह यह है कि विद्यार्थी गुरु से न केवल उच्चारण सुनता है बल्कि उसके मुख के आकार को देखकर स्वभावतः अपने मुख को भी उच्चारण के समय वैसा ही बना लेता है जिससे उसको उच्चारण की नकल करने में बड़ी सहायता मिलती है। यह बात अभी फोनोग्राफ में नहीं हुई है परन्तु कौन जाने कि आगे बाइसकोप को फोनोग्राफ के साथ मिलाकर यह त्रुटि भी दूर कर दी जाय।

हरिकृष्ण अग्रवाल।

साहित्य-समालोचन ।

हिन्दी ।

"प्रभा"-उपयुक्त प्रेस न होने के कारण "प्रभा" के प्रकाशित होने में बड़ा ही विलम्ब होता है । कार्त्तिक का अङ्क हमारे सामने है । आरम्भ में कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर का एक सुन्दर चित्र है, जिसके साथही श्रीयुत लोचनप्रसाद पाण्डेय की एक कविता है। "हिन्दुस्थान में युनिवर्सिटियों की फसल" शीर्षक सम्पादकीय लेख निस्सन्देह अच्छे भाव में लिखा गया है किन्तु इसमें प्रकटित कुछ सम्मतियां वर्तमान समय के लिए शायद ही उपयुक्त हों । उदाहरणतः लेखक ने प्रान्तीय यूनिवर्सिटियों के बदले बड़े बड़े शहरों में स्थानिक यूनिवर्सिटियां स्थापित करने और उनमें मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने का परामर्श दिया है किन्तु देश की दशा और गवर्नमेंट की नीति को देखते हुए क्या यह सम्भव है ? हम बड़े कृतज्ञ हों यदि गवर्नमेंट कृपा करके अङ्गरेज़ी हाई स्कूलों ही में मेट्रिक्युलेशन कक्षा तक इतिहास, भूगोल, गणित आदि विषयों को देशी भाषा द्वारा पढ़ाने की आज्ञा दे दे । "हितकारिणी" के सम्पादक पं० रघुवरप्रसाद द्विवेदी बी० ए० का सचित्र चरित्र इस अङ्क में निकला है, जो उन्हींके 'एक अनन्य भक्त' एम० ए० सज्जन का लिखा हुआ है । जीवित प्रसिद्ध पुरुषों के चरित्रों का प्रकाशित होना बहुत अच्छा है किन्तु यदि वे आलोचनात्मक रीति से लिखे जायँ तो उनका मूल्य और भी बढ़ जाय । हमें यह जानकर हर्ष हुआ है कि "संसार की समस्त प्रधान जातियों की रीति-नीति, राजकीय, आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था का जितना आपको (द्विवेदी जी को) परिचय है उतना प्रायः हमारे विश्वविद्यालयोपाधिधारियों में से बहुतों को भारत के इतिहास का भी ज्ञान नहीं है। इङ्गलैंड के राजनैतिक तथा धर्मिक सङ्गठन के तो प्रत्येक अंश से आप इतने परिचित हैं, मानों वहां के राजकीय दल के अग्रेसर व्यक्तियों में से आप भी एक हों" ! ऐसी अवस्था में क्या हम आशा करें कि द्विवेदी जी अपने असाधारण अनुभव और ज्ञान का परिचय "हितकारिणी" द्वारा हिन्दी पाठकों को भी करावेंगे ?

"चान्द"-(मार्च) यह लाहौर से प्रकाशित होनेवाला स्त्रियों का एक मासिक पत्र है। आरम्भ में 'दक्षिण अफ्रिका में हिन्दी लोकों के साथ हमदर्दी रखनेवाले' कुछ उदार पुरुषों के चित्र एकही पत्र पर दोनों ओर छपे हैं। इसके "मज़मूनों की फेहरिस्त" में तीन लेख हैं:—(१) राधारानी (२) रानी बिन्दुमती और (३) स्नेहलता का पत्र । श्रीयुत बंकिमचन्द्र चटर्जी लिखित बङ्गले के 'राधारानी' नामक उपन्यास का आंशिक अनुवाद इस अङ्क में प्रकाशित हुआ है । हमें जहाँ तक मालूम है इस उपन्यास के दो अनुवाद पहिले ही हिन्दी में पुस्तकाकार निकल चुके हैं । न मालूम इस तीसरे अनुवाद की कौन सी आवश्यकता थी । अनुवादक का नाम भी नहीं लिखा है । 'रानी बिन्दुमती' भी एक अनुवादित उपन्यास है । पञ्जाब सरीखे उर्दू-प्रधान प्रान्त में "चान्द" हिन्दी की सेवा कर रहा है, यह निस्सन्देह प्रसन्नता की बात है । पत्र की उपयोगिता और बढ़ जायगी यदि भविष्य में इसमें अधिक महिलाहित-मूलक और सामयिक लेख तथा सम्पादकीय टिप्पणियां भी दी जाया करेंगी और साथ ही भाषा का दोष भी दूर कर दिया जायगा ।

सम्पादकीय टिप्पणियां।

संयुक्तप्रान्त में अकाल।

दुःख के साथ कहना पड़ता है कि संयुक्तप्रान्त के अनेक भागों में इस समय अकाल विकराल रूप धारण किये हुए है। निस्सन्देह कुछ समय से भारत में अकाल का अस्तित्व कुछ स्वाभाविकसा हो गया है और इसका कारण फसल का नष्ट होना इतना नहीं है जितना कि लोगों का धनहीन होना। अकाल के वास्तविक कारण दूर करने की शक्ति तो गवर्नमेंट के हाथ में है किन्तु अकाल का कष्ट कम करने के लिए हम सब को भी अपना कर्तव्य पालन करना चाहिये। इस समय हमारे लाखों भूखे भाई बहिन और मूक पशु सहायता के लिए हमारा मुख जोह रहे हैं और उनकी सहायता करना हमारा धर्म है। स्वयं गवर्नमेंट के अनुमान से "जितना भूमि पर अकाल की घोषणा करनी होगी उसका क्षेत्रफल करीब १७,००० वर्गमील होगा और उसपर ५२॥ लाख की आबादी होगी। इसके सिवाय १७,००० वर्गमील भूमि पर—आबादी १ करोड़ ४० लाख—भारी कष्ट होगा।" आगरा, मथुरा और बुन्देलखंड के ज़िलों में सब से अधिक विपत्ति है। 'भारत-सेवक-समिति' के मि० कुंज़रू अपनी रिपोर्ट में कहते हैं कि "किसी ज़िले के भीतरी भाग में जाने पर बबूल, नीम और पीपल के पत्रविहीन वृक्ष दिखलाई देते हैं क्योंकि उनके पत्ते पशुओं के खिलाने के काम में आचुके हैं। चारे के अकाल की भीषणता का यह निर्विवाद प्रमाण है।" वर्तमान अकाल में गोरुओं को विशेष रूप से कष्ट है। गवर्नमेंट के कथनानुसार बुन्देलखंड के एक ज़िले में लोग २० फी सदी से अधिक गोरू नहीं रख सकेंगे। कसाईखानों में आजकल गोरू बड़ी संख्या में पहुंच रहे हैं और लोग लाचार होकर नाममात्र के मूल्य पर उन्हें बेंच देते हैं। किन्तु फिर भी गोरुओं की रक्षा के सम्बन्ध में गवर्नमेंट की नीति बड़ी ही शोचनीय है। रेल द्वारा चारा मँगवाने के लिए उसने जो रियायती महसूल की व्यवस्था की है वह केवल संयुक्तप्रान्त के भीतर ही के स्थानों के लिए है! सब को मालूम है कि प्रान्त के भीतर सस्ता चारा मिल ही नहीं सकता; सस्ता चारा बहुतायत से केवल पंजाब तथा प्रान्त के बाहर के कुछ स्थानों से प्राप्त हो सकता है किन्तु बहुत कुछ प्रार्थना करने पर भी गवर्नमेंट पंजाब से चारा मँगवाने के लिए सुविधा प्रदान नहीं करती। बहुत से स्थानों में पानी की भी कमी है और हमीरपुर-कुलपहाड़ में तो पानी बिकने का समाचार आया है! ऐसे समय में 'भारत-सेवक-समिति' के सदस्य जिस साहस, स्वार्थत्याग और परिश्रम से कार्य कर रहे हैं वह बहुत ही सराहनीय है किन्तु यह समझ लेना चाहिये कि वे कार्य करने में तभी समर्थ हो सकते हैं जब चन्दे के रूप में उन्हें यथेष्ट सहायता दी जाय। बम्बई-वालों ने बड़ी उदारता से उनको सहायता दी है; पंजाब से भी लाला लाजपति राय द्वारा पाँच हज़ार की रक़म आरही है; क्या हम आशा नहीं कर सकते कि संयुक्तप्रान्त के लक्ष्मीपात्र सज्जन भी अपना कर्तव्य पालन करेंगे? इससे अधिक पुण्य कार्य और क्या हो सकता है?

*

हिन्दू अनाथ बालक ईसाइयों को दे दिये गये।

संयुक्तप्रान्तीय व्यवस्थापक कौंसिल में मान० राय शंकर सहाय ने पूछा कि क्या यह सत्य है कि हमीरपुर ज़िले के दो अनाथों को ज़िला मेजिस्ट्रेट ने ईसाइयों को दे दिया है? यदि यह सत्य है तो क्या ईसाइयों को देने के पहले इसका प्रयत्न किया गया कि वे हिन्दू अनाथालयों में भेज दिये जायँ? और यदि ऐसा नहीं किया गया तो क्या गवर्नमेंट

अब हिन्दू अनाथालयों में भेजने का प्रबन्ध करेगी ? गवर्नमेंट की ओर से मि० बर्न ने उत्तर दिया कि सितम्बर १९१३ में दो अनाथों को मेजिस्ट्रेट ने कुलपहाड़ तहसील के ईसाइयों को दे दिया था। ज़िले में कोई हिन्दू अनाथालय न था इसलिए वे हिन्दुओं को न दिये जा सके। अब उनका प्रबन्ध हो चुका है और गवर्नमेंट उनके सम्बन्ध में कुछ करना नहीं चाहती। भविष्य में मेजिस्ट्रेट अनाथों को उनके जातीय अनाथालयों में भेजा करेंगे। हमें खेद के साथ कहना पड़ता है कि यह उत्तर सन्तोषजनक नहीं है। भविष्य में हिन्दू बालक हिन्दू अनाथालयों ही को दिये जायँगे, इसमें गवर्नमेंट की कुछ दया या उदारता नहीं है। संयुक्तप्रान्तीय फेमीन कोड में स्पष्टतः ऐसी आज्ञा दी गई है कि अनाथ लड़कों को उन्हींके स्वजातियों को देने का भरसक प्रयत्न किया जाय। हमीरपुर के ज़िला मेजिस्ट्रेट के इस अनुचित कार्य को गवर्नमेंट उदासीनता से नहीं देख सकती; उसे उचित है कि वह उन अनाथ बालकों को ईसाइयों के पंजे से छुड़ाकर हिन्दुओं को समर्पित कर दे। बिना इसके हिन्दुओं को कदापि सन्तोष नहीं होगा। आशा है कि हिन्दू भी अपने बालकों को वापस लेने के लिए डटकर आन्दोलन करेंगे।

कार्यकारिणी कौंसिल और भारतीय मेम्बर।

पाठकों को मालूम है कि इस समय बम्बई, मद्रास और बंगाल के गवर्नरों और नवीन प्रान्त बिहार के लेफ्टिनेंट-गवर्नर की सहायता के लिए एक एक कार्यकारिणी कौंसिल संगठित है। नियमानुसार ऐसी कौंसिल के तीन मेम्बरों में एक भारतवासी भी होता है। प्रान्त के शासक की अनुपस्थिति में कार्यकारिणी कौंसिल या बोर्ड आफ़ रेवन्यू का सीनियर मेम्बर उसके स्थान पर काम करता है। इस प्रकार यदि भारतीय मेम्बर अपनी नियुक्ति के समय के कारण सीनियर मेम्बर हो जाय तो वह भी गवर्नर या लेफ्टिनेंट-गवर्नर के पद पर कार्य करने का अधिकारी हो सकता है। किन्तु अभी तक ऐसा प्रसंग नहीं आया है। कई वर्ष हुए बंगाल के बोर्ड आफ़ रेवन्यू में सर कृष्ण गोविन्द गुप्त सीनियर मेम्बर होगये थे और प्रान्त के शासक सर एंड्रू फ्रेज़र भी छुट्टी पर जाना चाहते थे। किन्तु बड़े दुःख के साथ कहना पड़ता है कि उस समय गवर्नमेंट ने एक बड़ी बेढब चाल चली। 'न रहे बाँस न बने बाँसुरी' की नीति का अवलम्बन किया गया और गुप्त महाशय तुरन्त 'फ़िशरीज़ कमीशन' के काम पर भेज दिये गये! हाल ही में मद्रास कौंसिल के मेम्बरों के परस्पर क्रम के सम्बन्ध में प्रश्न उठा है, क्योंकि एक मेम्बर सर जे० ए० एटकिंसन ने पेंशन ली है। एक एंग्लो-इन्डियन पत्र ने कह डाला है कि भारतीय मेम्बर यदि यूरोपियन मेम्बर से पहिले का हो तो भी वह सीनियर नहीं हो सकता क्योंकि सीनियर मेम्बर तो गवर्नर के पद पर भी काम कर सकता है! किन्तु बिहार कौंसिल के भी द्वितीय यूरोपियन मेम्बर के चले जाने से यही प्रसंग आया और हमें यह लिखते प्रसन्नता होती है सर चार्लस बेली ने कौंसिल के तृतीय मेम्बर महाराज दर्भंगा को द्वितीय पद प्रदान किया है और जैसा कि उचित था मि० मांड तृतीय मेम्बर हुए हैं। मि० गेट के चले जाने पर महाराज दर्भंगा सीनियर मेम्बर हो जायँगे। सर चार्लस का यह कार्य निस्सन्देह साहसयुक्त और सराहनीय है और हमें विश्वास है कि अब अन्य प्रान्तों में भी इसीका अनुसरण किया जायगा।

मर्यादा।

सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग ७] अप्रैल सन् १९१४—वैशाख [संख्या ६

अकाल की विकरालता।

अकाल के कारण, उसके निवारण के उपाय।

राजा और प्रजा को चेतावनी।

> It is better to follow the real truth of things than an imaginary view of them.
>
> Machiavelli.

> किसी बात के सम्बन्ध में वास्तविक सत्य का जानना उसके ख्याली चित्र से अधिक अच्छा है।

अकाल के सम्बन्ध की दो एक बातें।

अकालों में मृत्यु।

१७६९ से १८०० तक में

२,२५,००००० मनुष्य भूख से मर गये।

डिगबी।

१८३३ के मद्रास के अकाल में झुंड के झुंड मनुष्य सड़कों पर मर गये। गावों की सड़क एक बड़े भीषण रणक्षेत्र का नज़ारा दिखाता थीं। गंटोर की ५,००,००० की आबादी में से २,००,००० मनुष्य भूख से तड़प तड़प कर मर गये। १८३७ में उत्तरीय भारत के अकाल में १०,००,००० जानें गईं। १८६६ में उड़ीसा की तिहाई आबादी प्रायः १०,००,००० मनुष्यों ने हा अन्न! हा अन्न! कहते हुए प्राण त्याग दिया। १८६९ के उत्तरीय भारत के अकाल में मृत्यु संख्या १२,००,००० थी। १८७७ के मद्रास के अकाल में ५०,००,००० से अधिक मनुष्य मरे। १८७८ के उत्तरीय भारत के अकाल में मृत्यु संख्या १२,५०,००० थी। १८९७ के अकाल में ३०,००,००० मनुष्य केवल सरकारी सहायता पाकर ज़िन्दा रह सके।

Charles Edward Russell.

मोटे से मोटे हिसाब से १८९१ से १९०१ तक में ८०,००,००० मनुष्यों की जनसंख्या में कमी हुई।

—:०:—

१८९१ और १९०१ की मनुष्यगणना की तुलना से विदित होता है कि १९०० वाले अकाल में ७६,३६,८८४ मनुष्यों की कमी हुई।

—:o:—

"फसल का मारा जाना भारत के अकाल का सच्चा कारण नहीं है। पृथ्वी में ऐसे देश बहुत हैं जहां लोक-संख्या के हिसाब से उपजाऊ ज़मीन बहुत कम है। विलायत में ही खेती के लायक ज़मीन बहुत कम है। वहां साल भर में जो धान्य उत्पन्न होता है उससे वहां के लोगों का ९१ दिन से अधिक पेट नहीं भर सकता, तौ भी वर्ष के बचे हुए २७४ दिन अंगरेज़ों को फांका नहीं करना पड़ता। जर्मनी की भी प्रायः यही दशा है। वहां के लोगों को भी यदि देश में उत्पन्न हुए अन्न पर निर्भर रहना हो तो उन्हें वर्ष में १०२ दिन फांका करना पड़े।

—:o:—

इङ्गलैंड, एमेरिका आदि सभी देशों में पानी न बरसने से समय समय पर अच्छी खेती नहीं होती तब भी उन देशों में अकाल पड़ने की बात कभी सुनी नहीं जाती। सुतरां देश में फसल का मारा जाना ही अकाल का सच्चा कारण नहीं है।"

—:o:—

१७९३ से १९०० तक में अर्थात् १०७ वर्ष में सारे संसार की लड़ाइयों में ५० लक्ष मनुष्य मरे।

१८९१ से १९०० अर्थात् १० वर्ष में भारत में अकाल से १९०००००० मनुष्य मरे।

डिगबी।

—:o:—

हिसाब लगाकर देखने से विदित हुआ है कि श्रीलसचिव माननीय लार्ड जार्ज हमिल्टन ने वेतन की भांति रुपया जो प्राप्त किया था वह नव्वे हज़ार भारतीयों की वार्षिक आय के बराबर था।

—:o:—

भारत से प्रतिवर्ष प्रायः १६,५०,००,०००) का गेहूं और चावल देश के बाहर भेजा जाता है—

"डिगबी"

A system of land tenure and land taxation ... ... a system that throws the haviest burden upon those least able to bear it, has largely been responsible for India's unparalleled famine record of 28,000,000 deaths in one hundread and fifty years.

डेढ़ सौ वर्ष में अकाल से २,८०,००,००० मनुष्यों के मर जाने का जो अतुलनीय लेखा है उसका प्रधान कारण भूमि का लगान और ज़मीन के पट्टे की प्रणाली है................ ....जो सब से निर्बल लोगों पर सब से भारी बोझ डालती है।

"चार्ल्स एडवर्ड रसेल"

"The immediate cause of famines is the failure of rainfall. The primary and original cause is the...........land system and tax system."

अर्थात् अकाला का निकटस्थ कारण पानी का न बरसना है किन्तु उसका आरम्भिक और मूल कारण................लगान और टैक्स की प्रणाली है।

रसेल।

The farmer of India is the most heavily taxed person in the world. While he pays an income tax of 55 p. c., the merchant in the city, the tradesman in the town, the haypy owners of the comfortable bungalows, pay far less. And still there are those that wonder famines.

अर्थात् भारतीय किसान को संसार में सब से भारी टैक्स देना पड़ता है। उसको अपनी आमदनी पर फी सैकड़ा ५५ का टैक्स देना पड़ता है। नगरों के व्यापारी और रम्य बँगलों के सुखी स्वामियों को किसानों की अपेक्षा बहुत ही कम कर देना पड़ता है। तिस पर भी ऐसे मनुष्य विद्यमान हैं जिन्हें अकालों के पड़ने से आश्चर्य होता है।

रसेल।

भारतीय अकाल पर एक एमेरिकन की राय।

रेवरेन्ड जे० टी० संडरलैंड एम० ए० डी० डा० कई वर्ष तक भारत में रह चुके हैं। वे एक बार भारतीय राष्ट्रीय समिति कांग्रेस की बैठक में भी उपस्थित हुए थे। कुछ दिन हुए उन्होंने "भारतीय अकाल" के सम्बन्ध में अपनी सम्मति एक एमेरिकन पत्र में प्रकाशित की थी। आज हम उसीको पाठकों के सामने उपस्थित करते हैं:—

"भारतीय अकाल वर्तमान समय की सब से आश्चर्यजनक और रोमांचकारी बात है। दिन दिन वे अधिक पड़ते जाते हैं और साथ ही साथ उनकी कठोरता भी बढ़ती जाती है। १६वीं शताब्दी के पिछले ४० वर्षों में सन् १८६० से १६०० तक में भारत में बड़े बड़े विकराल २१ अकाल पड़े। बड़ी सावधानी और मोटा मोटा हिसाब लगाने से इनमें १५,०००,००० जाने गईं। यह संख्या भयानक है।

प्रायः लोगों का यह ख़याल है कि अकाल रोके नहीं जा सकते और उनके मुख्यतः दो कारण हैं:—(१) समय से वर्षा न होना और (२) उचित से अधिक जनसंख्या।

वर्षा के न होने से कहां तक हानि पहुंच सकती है? और क्या इसके कारण अकाल पड़ सकता है?

भारतवर्ष एक बहुत बड़ा देश है। बर्मा को सम्मिलित कर इस बड़े देश से ३६ न्यूयार्क के सदृश राज्य काटे जा सकते हैं। इस बड़े देश में तरह तरह की जलवायु हैं। यही नहीं इसमें भिन्न भिन्न प्रकार की ज़मीन हैं, उनकी भिन्न भिन्न प्रकार की उर्वरा शक्ति है और इनमें भिन्न भिन्न मात्राओं में वर्षा हुआ करती है।

हम लोगों को तीन बातें सदा ध्यान में रखनी चाहियें। पहली बात तो यह है कि ऐसा कभी नहीं होता कि समस्त देश में सभी स्थानों पर कभी सूखा पड़ा हो। जब कि एक प्रान्त में सूखा पड़ता है उसी समय अन्य प्रान्तों में बहुतायत से अन्न पैदा होता है। दूसरी बात यह है कि प्रकृति से भारत ऐसा देश है जहाँ आबपाशी का सामान बहुत है, यह बहुत सरलता से बढ़ाया भी खूब जा सकता है और जहाँ कहीं आबपाशी होती है वहां पानी न बरसने से अकाल नहीं पड़ता। तीसरी बात

जो याद रखने लायक है वह यह है कि देश के सभी स्थानों से माल लाया और पहुंचाया जा सकता है। देश दो दिशाओं में समुद्र से घिरा है। नहर और बड़ी बड़ी नदियां प्रान्तों में फैली हुई हैं। कोई ऐसी बड़ी जगह नहीं है जहां रेल न हो। इस प्रकार से सुकाल वाले प्रान्तों से अकालपीड़ित प्रान्तों में अन्न सरलता से पहुंचाया जा सकता है। इससे पानी के ठीक ठीक न बरसने की बात को मानते हुए भी यह साफ साफ सिद्ध होता है कि अकाल न पड़ने चाहियें और न जानें ही जाने चाहियें।

आजकल की दशा में भी जब कि आबपाशी का सामान बहुत अच्छी प्रकार से उन्नत दशा में नहीं है भारत एक सब से अधिक अन्न पैदा करनेवाला देश है।

कैसा ही भीषण सूखा एक प्रान्त में क्यों न पड़ा हो ऐसा समय कभी नहीं होता कि समस्त देश में इतना अन्न न पैदा होता हो जो उसकी जन संख्या के लिए काफी न हो। विकराल से विकराल काल के समय में भी बहुतायत से अन्न मिलता है और अकाल के समय में भी अन्न बाहर जाता ही है। इससे यह सिद्ध होता है कि अन्न तो देश में रहता है पर अन्न खरीदने के लिए लोगों के पास दाम नहीं रहता।

अब दूसरा प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या आबादी के बढ़ जाने से दुर्भिक्ष होता है? इस प्रश्न का उत्तर सहज ही में मिल सकता है। भारतवर्ष की आबादी योरोप के देशों की अपेक्षा कम है और फिर भी योरोप में कोई स्वप्न में भी दुर्भिक्ष का ध्यान नहीं करता। इसी प्रकार भारत में मनुष्यों के पैदा होने की संख्या भी विशेष नहीं है। जरमनी, इङ्गलैंड और अन्य योरोप के देशों में यह संख्या यहां से बढ़ चढ़ कर है। बात तो यह है कि यदि भारत के उपज की उन्नति की जाय और जो बहुतसी भूमि अभी बिलकुल बे जोती बोई पड़ी है वह भी जोती बोई जाय तो अभी अगणित मनुष्यों के लिए यहीं से भोजन निकल सकता है।

इससे यह निश्चय हुआ कि भारत में जनसंख्या की बहुतायत नहीं है--तो फिर

दुर्भिक्ष का कारण क्या है?

इसका उत्तर वही है जो हम ऊपर ही कह चुके हैं। दुर्भिक्ष का कारण भारतीय लोगों की गरीबी है। वहां के लोग इतने गरीब हैं कि जब उपज अच्छी होती है तब भी बिचारों को इतना नहीं मिलता कि वे आगे के लिए कुछ जमा कर सकें। यदि ऐसे समय में वे कुछ जमा कर सकें तो दुर्भिक्ष के काल में उन्हें थोड़ी सी सहायता अवश्य मिले; पर बिचारे एकत्रित कैसे करें वहां तो जब अच्छी उपज हुई तब भी इतना नहीं बचता कि वे उस साल में ही अच्छी तरह रह सकें।

उपज अच्छी होने पर भी उनके पास केवल इतनाही होता है कि वे अपना जीवन अत्यन्त सादगी के साथ किसी प्रकार से निर्वाह करलें। इसका परिणाम यह होता है कि उस साल तो वे रो गा कर गुज़र कर लेते हैं पर दुर्भिक्ष के समय में किसी प्रकार उनका गुज़र नहीं हो सकता। ऐसी दशा में पहिले तो वे अपने बैल बेचते हैं फिर जो दो एक थारया लोटा हुआ उसे बेचते हैं और फिर जब संसार की सामग्री में से कोई भी उनके पास नहीं रह जाती तब वे या तो घर ही में धनहीन और बलहीन हो कर प्राण खोदेते हैं या दुर्भिक्ष की फसिल की भाँति खेत ही में सूख कर मर जाते हैं।

लोगों की गरीबी।

सर विलियम हंटर (Sir William Hunter) कुछ दिन तक भारतीय स्टेटिस्टिक्स के डाइरेक्टर जेनरेल थे। आपने स्पष्ट रूप से यह लिखा है कि "इस देश में ४ करोड़

आदमी ऐसे हैं जिन्हें अपने जन्म में कभी भी पेट भर आहार नहीं मिलता" ! सन् १८६४ ई० में भारत के बड़े लाट लार्ड लारेन्स ने कहा था कि "भारत के अधिकांश लोग ऐसे दरिद्र हैं कि उनके पास जीवननिर्वाह करने की सामग्री तनिक भी नहीं है"—मि० ए० ओ० ह्यूम (A. O. Hume) साहेब ने जो सरकारी खेतीविभाग के मंत्री थे सन् १८८० में लिखा था कि 'प्रायः हज़ारों आदमी साल में कई महीने तक न तो स्वयं पेट भर खाते हैं और न अपने बाल बच्चों को खिला सकते हैं। इन्डियन विटनेस (Indian Witness) नामक समाचारपत्र ने लिखा था कि "यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि भारत में कम से कम दस करोड़ मनुष्यों की वार्षिक आमदनी ३॥।) पौने चार रुपये फी आदमी से कम ही कम है । दक्षिण भारत में काम करनेवाले एक एमेरिका के मिशनरी पादड़ी ने १९०१ में लिखा था "मुझे अपने जीवन में ऐसा समय कभी नहीं मिला था। दिन रात मेरे कैम्प के चारो तरफ क्षुधितजनों का आर्तनाद सुनाई देता था। तीन तीन दिन के बीच में एक बार उन्हें भोजन कठिनता से मिलता था। एक ईसाई ही ने मुझसे रोकर कहा था कि यदि दो दिन के बीच में एकबार भी मुझे भोजन मिल जाय तो फिर मैं कुछ न चाहूं। एक समय मैं धर्मोपदेश कर रहा था—उसी बीच में मैंने उन लोगों से उनकी आमदनी का पूरा भेद ले लिया था और शोक है कि इन विचारों की एक दिन की आमदनी एक आने फी आदमी से कम थी। इसके अतिरिक्त घूमते घूमते मैं ऐसे स्थान में भी पहुंचा था जहां के दुर्भिक्षपीड़ित लोग क्षुधाताप के वशीभूत हो लोथ और लाश खाकर अपना निर्वाह कर रहे थे और तिस पर तुर्रा यह था कि ...."—फिर आगे चल कर यही पादड़ी साहब लिखते हैं कि 'भारत के गरीब लोगों की अवस्था इतनी अधिक शोचनीय है कि उससे दुःख ही नहीं वरन् आश्चर्य भी होता है। भारतवासी इतने कम में अपना जीवन किस प्रकार से खाकर निर्वाह कर लेते हैं कि पश्चिमीय देश के दरिद्र लोगों के समझ में यह बात ही नहीं आ सकती कि इतने में किसी एक मनुष्य का जीवन निर्वाह हो सकता है।

जिस घर में छः आदमी निवास करते हों उसका मूल्य, सारी सामग्री बरतन, कपड़े; खटिया मचिया और सब कुछ मिला जुलाकर कोई ८) रु० के लगभग होगा । ऐसे घर में फी आदमी की आमदनी डेढ़ १॥) रु० महीने से अधिक नहीं वरन प्रायः इससे भी आधी ही होती है । अब इस आमदनी में से कैसे कोई पढ़ने, लिखने या सफाई या मकान की सजावट के लिए रुपया निकाल सकता है ।

अस्तु यह तो हुई पादड़ी साहब की बात—अब तनिक विलायत की दशा देखिये ।

प्रत्येक मनुष्य की वार्षिक आमदनी विलायत में १५०) रु० के लगभग होती है । फिर विलायत में प्रत्येक आदमी १५) रु० साल की शराब पी जाता है । भारतवासी जितना धन भोजन, कपड़ा और सब वस्तुओं पर मिलाकर खर्च करते हैं उसके ढाई गुने की तो केवल विलायत वाले शराब पी जाते हैं। ऐसी शोचनीय दशा में अकालों में मनुष्य मरें तो उसमें आश्चर्य ही क्या है ।

इस दरिद्रता का कारण क्या है ? क्या वह अनिवार्य है ? क्या इसका होना आवश्यक है ।

संसार में और देशों की अपेक्षा भारत धनधान्य से विशेषतः सम्पन्न है इसलिए वहां

के लोगों को तो खूब सुख से गुलछर्रे उड़ाते हुए जीवन बिताना चाहिये और जो कुछ विशेष अन्न अच्छे वर्षों में वहां हो उससे अकाल के समय में उनका काम चलना चाहिये।

इस सम्बन्ध में (Bishop Heber) विशाप हीबर ने जो मत प्रकाश किया था वह भी अत्यन्त उपयुक्त है। आपने लिखा था कि "भारत में टैक्स इतना अधिक लिया जाता है कि लोग अपनी उन्नति एकदम नहीं कर सकते। जब उपज अच्छी होती है तब भी यहां के लोगों के पास टैक्स देने के उपरान्त बहुत कम धन बचता है और जब उपज न हुई तो यद्यपि यहां की सरकार सैकड़ों रुपया दुर्भिक्ष के समय में लोगों को बांटने में और सहायता देने में व्यय करती है फिर भी न जाने कितनी स्त्रियां, पुरुष और बच्चे गलियों में भूखों मरते ही रहते हैं। इस विषय में मैंने जिन २ लोगों से एकान्त में बात किया है वे सबके सब एक स्वर से यही कहते हैं कि यह सब फसाद यहां के टैक्सों के अधिक होने से है और इन्हीं के कारण देश दिन २ दरिद्र होता जाता है।"

वास्तव में भारतीय दरिद्रता का एक बड़ा भारी कारण टैक्सों की विशेषता है। फिर भी सरकार के पक्षपाती इसका विरोध करते हैं। वे कहते हैं कि टैक्स भारी नहीं है। अस्तु इस विषय में विशेष बकवाद न करके इङ्गलैंड और स्काटलैंड ही से भारत की तुलना करना उचित है। प्रत्येक भारतवासी को अपनी आमदनी के अनुसार एक इङ्गलैंड या स्काटलैंडनिवासी की अपेक्षा तिगुना कर देना पड़ता है—पर वास्तव में यह तिगुना ही नहीं है यह इससे भी बहुत अधिक हो जाता है और इसका कारण यह है कि भारतवासियों की आमदनी इतनी कम है कि उसमें से कुछ भी देना उनके लिए बहुत है।

उदाहरण के लिए केवल नमक पर के टैक्स ही का विचार कीजिये। प्रत्येक मनुष्य को नमक की आवश्यकता होती है और गरीब से गरीब मनुष्य को भी उसको काम में लाना पड़ता है। यदि वे ऐसा न करें तो उनके क्षीण शरीर और भी शीघ्र नष्ट होजाँय।

अब इसी नमक ही पर जितना नमक का मूल्य होता है उसका बीस गुना टैक्स देना पड़ता है अर्थात् उन लोगों को नमक खाने के लिए सरकार को जुर्माना देना पड़ता है।

भला जिस वस्तु पर इतना टैक्स होगा उसे भारत ऐसे गरीब देश के लोग कैसे खा सकेंगे और यह बात नितान्त सत्य है कि वहां के न जाने कितने दरिद्र मनुष्य नमक तक नहीं खाते।

इन बातों से यह स्पष्ट है कि वहां के टैक्स बहुत अधिक हैं और वहां की दरिद्रता के दूर करने का एक मात्र आवश्यकीय उपाय इन टैक्सों को दूर करना है।"*

---

* पाठकों को इस लेख में कई स्थानों पर अत्युक्तियां मिलैंगी जैसे सड़कों पर मुर्दों का पड़ा रहना इत्यादि। यह लेख १९०५ या ०६ में लिखा गया था किन्तु अकाल से पीड़ित प्राणियों को सहायता पहुंचाने का जो विस्तारमय प्रबन्ध गवर्नमेंट १८९९ से करती आई है, उससे अकाल की पीड़ा बहुत कुछ घट गई है और उसके बहुत से भयंकर परिणाम अब देखने में नहीं आते। इसके लिए गवर्नमेंट धन्यवाद के योग्य है। नमक का टैक्स भी घटकर १) मन रह गया है, पर लेखक का यह कहना कि अकाल की बाधा मिटाने का प्रधान उपाय ज़मीन के लगान को घटाना ही है। हमारी राय में बिलकुल सत्य है और इस ओर हम ज़ोर के साथ गवर्नमेंट का ध्यान आकर्षित करते हैं।

२५ सैकड़ा लगान कम होनी चाहिये ।

लगान कम करना ही कृषक की दशा को सुधारने का एक मात्र उपाय है ।

[माननीय पं० मदनमोहन मालवीय ।]

इस देश में कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं है जो इतनी अधिक सहायता—केवल ज़बानी नहीं वरन् हार्दिक सहायता—का पात्र हो जैसा कि कृषक जो कि ज़मीन को जोतता है, जो प्रान हत कर मेहनत करता है और जो सबसे अधिक रुपया सरकारी कोष में प्रति वर्ष मालगुज़ारी के रूप में जमा करता है और सैकड़ों वर्षों से जमा करता आया है। हम लोग धन्यवाद सहित इस बात को स्वीकार करते हैं कि उसकी दशा में कुछ सुधार हुआ है किन्तु जितनी कठिन तपस्या उसे करनी पड़ती है उसको देख कर न्याय यही कहता है कि उसके गाढ़े पसीने की कमाई का जितना थोड़ा अंश अभी उसे दिया जाता है उससे अधिक अंश उसे दिया जाय । मि० ओकानर डाइरेक्टर जेनरल आफ स्टेटिस्टिक्स ने, जिन्हें भारत की आर्थिक दशा के सम्बन्ध में ४० वर्ष का अनुभव है, कहा है कि ऐसे पुरुषों की स्थिति में जिनका निर्वाह ज़मीन के सहारे होता है, बहुत कुछ सुधार की आवश्यकता है। उन्होंने गवर्नमेंट को कृषक सम्बन्धी नीति को बदलने के लिए सलाह दी है । उन्होंने कहा है कि वर्तमान नीति की श्रेष्ठता केवल आज दिन की लगान को पूर्वजों के समय की लगान से तुलना करने से प्रमाणित नहीं हो सकती। इससे यह अर्थ नहीं निकलता कि हम लोग ज़मीन से लगान कम उगाहते हैं क्योंकि हम लोग उतना नहीं ले लेते जितना कि पहिले के शासक, जोकि तनिक भी कृपा दिखाने पर पूजे जाते थे, "चूस लेते थे। हम लोगों को ऐसा बन्दोबस्त करना चाहिये जिसमें कृषक ज़िन्दा रहकर फल फूल सके और हमें उससे एक ज़मींदार की भाँति चढ़ा उतरी का अधिक लगान न लेना चाहिये। दशा को सुधारने का उपाय बताते हुए मि० ओकानर ने कहा था कि लगान २५ फी सैकड़ा के हिसाब से कम कर देनी चाहिये। चालीस वर्ष के अनुभवप्राप्त एक सरकारी अफसर ने यह कहा था कि उसकी सम्मति में सिवाय लगान कम करने के कृषक की दशा सुधारने का अन्य कोई उपाय नहीं है। आगे चलकर उसी सज्जन ने कहा था, यह नहीं कहा जा सकता कि कृषक को सूदखोरों के पंजे से छुड़ाने के प्रयत्न से लाभ होगा। यह मान लेने पर भी कि लाभ होगा यह नहीं कहा जा सकता है कि कृषक की स्थिति में उससे कोई वास्तविक सुधार तब तक होगा जब तक कि उसे पैदावार का अधिक अंश नहीं मिलता तथा जब तक कि इसका बन्दोबस्त नहीं हो जाता कि लगान न बढ़ सकेगी और ज़मींदार या सरकार कृषक को खेत से बेदख़ल न कर सकेगी। खेती भारतीय उद्यमों में सर्वश्रेष्ठ उद्यम है और इस ओर सरकार को आज पर्यन्त की अपेक्षा अधिक ध्यान देना चाहिये। सरकार जो कुछ कर रही और करना चाहती है उसकी हम मुक्तकंठ से प्रशंसा करते हैं। आबपाशी, नये पौधों, वैज्ञानिक रीति पर खेती आदि सभी ही बातें बहुत आवश्यक और फलप्रद हैं किन्तु हमें विश्वास है कि लगान का २५ या ३० फी सैकड़ा कृषक के हित के लिए कम करना इन सब की अपेक्षा कहीं अधिक हितकारी सिद्ध होगा।"

[कौंसिल की वक्तृता]

बिना सिंचाई के खेती।

[लेखक—श्रीयुत मुखत्यार सिंह जी वकील सम्पादक "विज्ञान कल्पतरु"।]

मुझे आज्ञा हुई है कि मैं उपर्युक्त विषय पर एक छोटा सा लेख दुर्भिक्ष नम्बर के लिए लिखूं यदि मुझे दुर्भिक्ष पर एक साधारणतया लेख लिखने की आज्ञा मिलती तो मैं शायद बहुत कुछ लिख सकता किन्तु मुझे इसमें कुछ कहने का अधिकार नहीं है, अतएव आज्ञा पालन करना आवश्यक समझ कुछ लिखता हूं। 'बिना सिंचाई के खेती' का विषय एक बिलकुल नया विषय है, अतएव एक बड़े लम्बे चौड़े लेख के बिना उस पर कुछ लिखा नहीं जा सकता। वस्तुतः इस पर कुछ उपयोगी बातें लिखने के लिए एक अलग पुस्तक की आवश्यकता है। यदि एक विशेष अङ्क ही इस विषय के लिए निकाला जाय तो सम्भव है कि वह लाभप्रद हो। तथापि इस विषय का कुछ परिचय देने के निमित्त यह छोटा सा लेख भेंट करता हूं, आशा है कि यह पाठकों को रुचिकर प्रतीत होगा।

दुर्भिक्ष भारत के लिए अब एक साधारण बात है। कोई वर्ष भी ऐसा नहीं जाता जिसमें भारतवर्ष के किसी न किसी कोने में अकाल की असह्य पीड़ा का घोर और भयानक शब्द न सुनाई देता हो। भारत के नेताओं के उन्नति के प्रोग्राम में दुर्भिक्ष का भी एक विशेष भाग है। भारत सरकार को भी इसके लिए प्रत्येक वर्ष कुछ न कुछ धन छोड़ना ही पड़ता है। यदि दुर्भिक्ष ऐसे ही कभी २०, ३० वर्षों पर पड़ता होता तब इसकी ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता न थी किन्तु जब कि यह नित्यप्रति रहनेवाला रोग बन गया है तब तो इस ओर विशेष ध्यान देने और इसके दूर करने के उपाय सोचने की विशेष आवश्यकता है।

यह सिद्धांत रूप से कहा जा सकता है कि वर्षा के ठीक समय पर न होनेसे ही दुर्भिक्ष पड़ता है। यद्यपि इस वर्ष दो तीन स्थानों पर वृष्टि के अधिक होजाने के कारण लोगों को बड़ा कष्ट उठाना पड़ा और सहस्रों मनुष्य और पशु इसकी भेंट हुये किन्तु मोटी दृष्टि से अनावृष्टि ही इस दुर्भिक्ष का कारण है। यदि भारतवर्ष में ऐसे उपाय किये जांय जिससे अनावृष्टि होनी असम्भव होजाय अथवा इसका कोई भी भय न रहे तो दुर्भिक्ष होने की कोई भी सम्भावना न रहे।

भारतवर्ष के पुराने इतिहास से कृत्रिम वर्षा करने का पता चलता है किन्तु अभीतक विज्ञान ने इस ओर विशेष उन्नति नहीं की है अतः इसपर विचार करना निष्फल है। नहरों तथा कूपों से पूरी तौर से आपपाशी होने पर भी यह कार्य्य भली भांति होसकता है किन्तु इसके लिए बहुतही अधिक धन की आवश्यकता है। यदि कोई ऐसा उपाय निकल आवे जिस से पानी की आवश्यकता ही न रहे अथवा इतने कम की आवश्यकता हो कि अनावृष्टि की दशा में भी इसका प्राप्त होना सम्भव हो तो कार्य्य बड़ी सुगमता से चल सकता है।

संसार के वैज्ञानिक विद्वानों ने हिसाब लगाकर बताया है कि एक फ़सल को जितनी मात्रा में पानी की आवश्यकता होती है उससे कई गुना विशेष पानी सूर्य की किरणों से उड़ जाता और वायु में निरर्थक नष्ट होता है। उपर्युक्त सिद्धांत के समझने के लिए पाठकों को निम्नलिखित हिसाब से कुछ सहायता मिलेगी :—

जितने पौधे संसार में पाये जाते हैं यदि उनको धूप में सुखाकर तौला जावे, अथवा रसायनिक विश्लेषण द्वारा उनकी परीक्षा की जावे

तो उनमें जल की मात्रा ३२ प्रति सैकड़ा से ६७ प्रति सौ सैकड़े तक होती है। इसका यह अर्थ है कि यदि किसी खेत में ३ मन अन्न उत्पन्न हो और तीन मनही भूसा तो उस खेत में पैदा हुए पौदों में ६ मन जल से न्यून ही जल होगा। किन्तु इससे कहीं अधिक मात्रा जल की पौधों के लिए आवश्यक होती है। जिस प्रकार मनुष्य एक वर्ष के भीतर अपने परिमाण से भी कहीं अधिक पानी पी जाता और भोजन करता है ठीक उसी प्रकार से पौधों को उनके भार से कहीं अधिक जल की आवश्यकता होती है। इसका कारण यह है कि पौधों की जड़ पृथ्वी में से धीरे २ पानी चूसती रहती हैं और उस पानी का बहुत सा भाग पत्तों द्वारा सूर्य की गर्मी से उड़ता रहता है। पौधों में इस प्रकार पानी का एक स्रोत नित्यप्रति बहा करता है। अनेक वैज्ञानिक महापुरुषों ने पता लगाया है कि प्रत्येक फसल के लिए कितने पानी की आवश्यकता होती है। जरमनी देश में एक पौंड सूखा पौधा तथा अन्न उत्पन्न करने के लिए गेहूं को ३३८ से ४५६ पौंड जल की, जई को ३७६ से ६६४ पौंड की और जौ को ३१० से ४३१ पौंड तक जल की आवश्यकता होती है। यह आवश्यक नहीं है कि सब देशों में पानी की इतनी ही मात्रा की आवश्यकता हो। जिन देशों में आकाश प्रायः मेघाच्छन्न नहीं रहता है तथा जहाँ वायु सूखी और गर्म रहती है वहां इससे कहीं अधिक जल की मात्रा की आवश्यकता होती है। ऊटाह देश में जो जरमनी से अधिक गरम है एक पौंड गेहूं के लिए १०४८ पौंड पानी की आवश्यकता होती है। भारतवर्ष के अनेक प्रान्तों में किस फसल को कितना जल आवश्यक है यह ठीक नहीं कहा जा सकता क्योंकि भारतवर्ष में इस बात का कभी कोई हिसाब नहीं लगाया गया है। यदि ७५० पौंड जल की मात्रा प्रत्येक प्रकार के अन्न के लिए पर्याप्त समझी जाय तो १ मन अन्न के लिए ६०००० पौंड पानी की आवश्यकता होगी। किन्तु एक मन अन्न के साथ प्रायः एक मन भूसा भी होगा। इस हिसाब से १२०,००० पौंड पानी १ मन अन्न और भूसे के लिए आवश्यक है। किन्तु साधारणतया १५ मन अन्न एक एकड़ में उत्पन्न होता है। उपर्युक्त हिसाब से १५ मन के लिए १८००,००० पौंड जल की आवश्यकता हुई। एक इञ्च जल की मात्रा एक एकड़ में पड़ने से १२६८७५ पौंड होती है अर्थात् यदि ८ इञ्च वर्षा हो तो वह पानी सारी गेहूं की फसल को पकाने के लिए पर्याप्त होगा। घोर से घोर दुर्भिक्ष में भी इससे अधिक जल भारत में पड़ता है। बीकानेर जैसे देश में भी वृष्टि ११ इञ्च के लगभग होती है, यदि किसी वर्ष में जल कम भी पड़ा तो उससे पहिले वर्षों में वर्षा अधिक हो जाने से वह कमी पूरी की जा सकती है।

उपर्युक्त कथन से पाठकों को यह स्पष्ट हो गया होगा कि यदि जल निरर्थक न जाने पाये तो यह सम्भव है कि बहुत ही कम वृष्टि होने पर भी अच्छी उमदी फ़सल पैदा की जा सके किन्तु जितना जल पृथ्वी पर पड़ता है उसका बहुत सा भाग तो पृथ्वी पर गिरकर बह जाता है और इस प्रकार नदियों नालों में गिरकर किसानों के काम का नहीं रहने पाता। इसके अतिरिक्त बहुत सा भाग पृथ्वी के नीचे चला जाता है और वह जड़ों से बहुत नीचा चला जाने के कारण पौधों के काम में नहीं आसकता। जो पानी अधिक देर तक खेतों में बना रहता है वह भी धीरे २ सूर्य की गरमी से उड़ जाता है। तात्पर्य यह कि यदि वर्षा का समस्त जल, चाहे वह कितना भी थोड़ा क्यों न हो, इन तीनों बाधाओं से बचा कर पृथ्वी में संयम किया जा सके तो बिना किसी प्रकार की सिंचाई के खेती हो सकती है।

पर क्या यह सम्भव है कि सूर्य की किरणें धरती से पानी खींचना छोड़ दें? अथवा पृथ्वी

का पानी धरती में अधिक नीचे न जा सकें और खेतों पर से बहकर नदी नालों की भेंट न हो ?

इन्हीं तीन प्रश्नों का उत्तर इस बड़े भारी कार्य के फलीभूत होने का कारण हो सकता है । हम देखते हैं कि यदि दो प्रकार के खेतों को एक साथ बराबर मात्रा में पानी दिया जाय तो एक का पानी दूसरे की अपेक्षा बहुत कम उड़ता है । जिन खेतों में लवणों की मात्रा अधिक हो, चिकनी मट्टी अधिक हो, उनका जल दूसरे खेतों की अपेक्षा कम उड़ता है तथा जिन खेतों को पानी देते ही अच्छा गहरा खोद दिया जाता है उनमें पानी की बहुत देर के पश्चात् आवश्यकता होती है, किन्तु जिन खेतों को केवल पानी देकर छोड़ दिया जाता है उनको पानी की आवश्यकता शीघ्र होती है । अन्य दूसरे नियमों का विचार इस स्थान पर छोड़कर इन्हीं तीन कारणों से यह पता लग जाता है कि खेतों की प्रकृति विशेष प्रकार की कर देने से तथा उनको गहरा खोद देने से जल की आवश्यकता बहुत न्यून हो जाती है । इसी प्रकार पानी बहुत नीचे न जाने देने से भी रोका जा सकता है । यदि खेत में नीचे तक चिकनी मिट्टी अधिकता से हो अथवा उसमें ऐसे रसायनिक पदार्थ उपस्थित हों जो जल को अधिक नीचे न जाने दें तो बहुत कुछ जल नष्ट होने से बचाया जा सकता है । जो खेत वर्षा से पूर्व खूब भले प्रकार जोत कर छोड़ दिये जाते हैं और वर्षा के पश्चात् मेड़ा देकर दबा दिये जाते हैं उनमें प्रायः गेहूं की फ़सल अब भी बिना सिंचाई के हो जाती है किन्तु साधारणतया खेतों को देर तक वर्षा न होने की अवस्था में खुला छोड़ने से उनकी सब की सब नमी उड़ जाती है । यदि पहिले से खेत जोत कर मेड़ा कर दिया जाय तो वर्षा होने पर जल अधिक नीचे न जासकेगा। इस नियम के अनुसार भलीभांति कार्य करने से सम्भव है बहुत से स्थानों में पानी की सिंचाई की आवश्यकता कम हो जाय । मुझे पता लगा है कि बिजनौर में प्रायः ईख जैसी पानी चाहने वाली फ़सल भी कीरतपुर के समीप बिना सिंचाई के इस नियम की बदौलत पैदा की जाती है । मुझे पूर्ण विश्वास है कि कोई भी ऐसा कृषि सम्बन्धी नियम अभी तक नहीं निकल सका है जिसका भारतवर्ष के किसी न किसी प्रान्त में पालन न किया जाता हो किन्तु शोक यह है कि कृषि का कार्य केवल उन लोगों के हाथ में है जो धन तथा विद्या के अभाव के कारण विशेष उन्नति नहीं कर सकते । मेरा विचार था कि मैं इस विषय के और भी नियमों को पूर्ण रीति से यहां लिखूं किन्तु लेख के अधिक लम्बा हो जाने के कारण यहीं विराम देता हूं और पाठकों तथा सरकार के लिए एक और आवश्यक बात लिखकर लेख को समाप्त करता हूं ।

संसार की रिपोर्टों से पता चलता है कि एफ्रीका जैसे रेतीले देश में, जहाँ वर्षा भारत से भी कम होती है तथा जहां यहां की अपेक्षा गरमी भी अधिक है, धरती भी बिलकुल रेतीली होने से अधिक उपजाऊ नहीं है, खेती बिना सिंचाई उत्पन्न की जा सकती है और आलू जैसी फसल बिना पानी दिये उत्पन्न की जा सकती है । ऐसी अवस्था में कोई कारण नहीं है कि झाँसी जैसे स्थानों में तथा अन्य प्रान्तों में जहां वर्षा न होने के कारण प्रायः सर्वदा ही दुर्भिक्ष रहता है इसकी परीक्षा करके फ़सल न पैदा की जा सके । यदि संसार के अन्य प्रान्तों में इस नियम से सफलता हो सकती है तो कोई कारण नहीं है कि वही सफलता भारत में न हो सके । क्या सरकार का कृषि विभाग इस ओर ध्यान देगा ? प्रार्थना है कि पाठकवृन्द भी इस आवश्यक विषय की ओर अधिक ध्यान दें और इससे लाभ उठावें । भारत का दुर्भिक्ष प्रतिवर्ष [illegible] करने से अथवा धन बांटने से

दूर नहीं किया जा सकता। यह आवश्यक है कि हम विचारपूर्वक दूसरे देशों की अवस्था को देखें और वहां की दशा को पढ़ें, विचारें और जो नियम अपने देश के लिए उपयोगी समझें उसका अपने देश में प्रचार करें। देश का भार उन लोगों पर सब से अधिक है जो पढ़े लिखे हैं और देश की हीन अवस्था का विचार कर सकते हैं। यदि संसार में दुर्भिक्ष के निवारण करने के उपाय उपस्थित हैं तो यह अत्यन्त आवश्यक है कि हमारे नेता उसकी ओर दृष्टि दें। अनेक उपायों में से मैंने एक उपाय पाठकों के सन्मुख बहुत ही सूक्ष्म रूप से धर दिया है। देखें पाठक इससे क्या लाभ उठाते हैं। यह भी देखना है कि मेरी धीमी पुकार भारत सरकार पर क्या प्रभाव डालती है ?

अन्त में ज्ञान स्रोत विद्या के आदि गुरु परमपिता परमेश्वर से प्रार्थना है कि वे हम भारतनिवासियों को भी विद्या और वैज्ञानिक ज्ञान से परिपूर्ण करें जिससे हम पुरुषार्थहीन आलसी न रह कर अपने २ कर्त्तव्य का पालन करें। संसार के प्रचलित वैज्ञानिक नियमों को जानने से और परमेश्वर की अटल आज्ञा का पालन करने से हम सुख से जीवन व्यतीत कर सकते हैं इसमें सन्देह नहीं।

अकाल और प्रजा।

अकाल से प्रजा को कितनी भयंकर पीड़ा होती है इसका वर्णन करना मनुष्य के सामर्थ्य से बाहर है। पिछले सौ वर्ष में अकालों से इस देश के निवासियों की कितनी हानि हुई है, कितनी जानें गई हैं, कितनी धन की हानि हुई है, कितना अकथनीय दुःख मनुष्यों और चौपायों को सहना पड़ा है इस बात का कुछ ज्ञान कराने के लिए हमने ऊपर कुछ विदेशियों के चेतावनी के वचन उद्धृत किये हैं।

गवर्नमेंट ने अकाल के सम्बन्ध में जिस नीति का अवलम्बन किया है वह कुछ अंश में प्रशंसनीय और कुछ में दोषी है। पहिले के अकालों की कथा को हम छोड़ देते हैं। १८७७—७८ में जो भयंकर अकाल पड़ा था और जिसमें असंख्य प्राणी भूख की आग में झुलस कर मरे थे उसके बाद गवर्नमेंट ने फैमिन कमीशन नियुक्त किया था। उस कमीशन में अच्छे ३ विद्वान सभ्य थे। उस कमीशन की राय के मुताबिक गवर्नमेंट ने कई बातों में सुधार किया है जिससे अकाल की बाधा कुछ अंशों में कम हो गई है किन्तु कई अंशों में कमीशन की सम्मति के अनुसार उचित काम नहीं हुआ है। रेल की लाइनें बहुत बन गई हैं उनके द्वारा अकालपीड़ित प्रान्तों में अन्न पहुंचाना सहज हो गया है। पानी सींचने के प्रबन्ध बहुत कुछ हुए हैं, कई बड़ी बड़ी नहरें जिनसे देश को, राजा और प्रजा को बहुत लाभ हुआ है बन गई हैं और इसके लिए गवर्नमेंट धन्यवाद की पात्र है। किन्तु कितने स्थान ऐसे हैं जहाँ नहर नहीं बन सकती और सिंचाई के लिए कूपों ही से काम लिया जा सकता है। कुओं के बनाने में सहायता के लिए गवर्नमेंट तकावी देती है और बहुत से नये कुएँ बन भी गए हैं। किन्तु कितने ही स्थान ऐसे पड़े हैं जहां कुओं के न होने से खेत का सींचना तो दूर रहे, पशुओं की प्यास बुझाना भी दूर रहे, मनुष्यों को भी प्यास बुझाने को पानी दुर्लभ है। इस विषय

में गवर्नमेंट को अधिक दूरदर्शिता और उदारता से प्रबन्ध करना उचित है। ऐसे सभ्य शासन में, ऐसे शान्तिमय प्रबन्ध में जैसा कि गवर्नमेंट ने इस देश में स्थापन किया है, गवर्नमेंट, ज़मीदार और खेतिहर के मिले हुए परिश्रम से देश का कोई भाग ऐसा नहीं रहना चाहिये जहां ५ वर्ष के भीतर कुओं का काफी प्रबन्ध न हो जाय। केवल तकावी देने से यह काम पूरा नहीं होगा। खेतिहर लगान के बोझ से दबा जाता है। गवर्नमेंट और ज़मीदार को, विशेष कर गवर्नमेंट को उचित है कि वह बिना किसी शर्त के खेतिहर को कुएँ बनाने के लिए आवश्यक सहायता दें। गवर्नमेंट और ज़मीदार का पैसा और खेतिहर का परिश्रम यह दोनों मिलकर पृथ्वी के हर एक भाग को कठिन से कठिन सूखे के समय में भी हराभरा रख सकता है। हमने गवर्नमेंट और ज़मीदार का पैसा कहा है, वस्तुतः वह उसी खेतिहर का पैसा है जो प्राण को हतकर उसे उपार्जन करता है और जिसका बड़ा अंश वह ज़मीदार की कोठी और गवर्नमेंट के ख़ज़ाने में पहुंचाकर उनको सम्पन्न करता है। माननीय मालवीय जी की वक्तृता में पाठक मि० ओकानर की राय को पढ़ चुके हैं। वे बार बार पड़ते हुए अकाल और उनके विकराल परिणाम से बचाने वाले उस सुधार की आवश्यकता की ओर गवर्नमेंट और ज़मीदार और देश का सुधार चाहनेवाले सब सजीव मनुष्यों का ध्यान बड़े ज़ोर के साथ इस बड़े सुधार की आवश्यकता की ओर खींचते हैं जिसके द्वारा खेतिहरों को उनके खेत के उपज का अधिक भाग बच सके और सूखा पड़ने पर उनको तुरन्त ही गवर्नमेंट की सहायता के लिए न दौड़ना पड़े और जिसमें अच्छे समय में वे कुछ ऐसी पूंजी एकत्र कर सकें जिसकी सहायता से अकाल के दिनों में भी वे अपने आत्मा को शीतल रख सकें।

गवर्नमेंट ने अकाल के समय में खेतिहरों की सहायता के लिए तथा और प्रतिष्ठित ग़रीबों की सहायता के लिए जो नियम बनाये हैं और जो फेमिनकोड में छपे हुए हैं वे प्रशंसनीय हैं। उनके द्वारा प्रजा को बहुत कुछ सहायता पहुंच जाती है। किन्तु जितने प्राणियों को यह सहायता पहुंचती है वे समस्त प्रजावर्ग के एक अंश मात्र हैं। देश में करोड़ों प्राणियों को जो अकाल की बाधा सहनी पड़ती है उसमें गवर्नमेंट न कुछ सहायता पहुंचाती है और न पहुंचा सकती है। इस बात का गवर्नमेंट को हम कोई उलहना नहीं देते। हम समझते हैं कि किसी सिद्धान्त के अनुसार गवर्नमेंट इतने अधिक प्राणियों को सहायता पहुंचा नहीं सकती। किन्तु इस देश में फी सदी ७१ प्राणी ज़मीन से सम्बन्ध रखते और किसी न किसी रूप में खेती से पलते हैं। यदि गवर्नमेंट लगान कम करके इस बड़े जनसमूह की दशा को सदा के लिए सुधार दे तो देश के अधिकतर प्राणी अकाल की बाधा से बच सकते हैं। इस प्रजाहितकारी प्रस्ताव में गवर्नमेंट का स्वार्थ प्रजा से किसी अंश में कम नहीं है। केवल दूरदर्शिता, उदारता और सच्ची और शुद्ध राजनीति को काम में लाने की आवश्यकता है।

एक और बड़ी बात जिस पर १८७८ के फेमिन कमीशन ने ध्यान दिलाया था वह यह थी कि प्रजा को व्यापार सम्बन्धी शिक्षा दे कर उनको खेती के सिवाय और उद्यम के द्वारा धन उपार्जन के योग्य बनाया जाय। इस देश में रेलों के विस्तार से जहां यह लाभ हुआ है कि अकाल के समय में अकालपीड़ित प्रान्तों में अन्न पहुंचाने की सुविधा हो गई है तहां यह एक बड़ा अनर्थ भी हुआ है कि विदेशों के लिए अन्न भेजने की भी सुविधा अधिक होगई है और घोर से घोर अकाल के समय में भी अन्न विदेश को ढोया चला जाता है। विदेशी लोग जिनके सुविधा के लिए हरमा

अन्न उनके देशों में भेजा जाता है केवल खेती के भरोसे नहीं रहते बल्कि वे अनेक प्रकार के कलाकौशल के द्वारा अपने २ देश से अनेक प्रकार की वस्तुओं को बनाकर हमारे देश में तथा अन्य देशों में भेजते हैं और उससे बड़ी आमदनी करते हैं और इसलिए हमारे देश के मँहगी के समय का अन्न भी उन्हें सस्ता मालूम होता है। रेल तार और जहाज़ के प्रभाव से और व्यापार की स्वतन्त्रता के सिद्धान्त के मीठे और कडुवे फल से हिन्दुस्तान की प्रजा संसार के व्यापार के दंगल में आपड़ी है। जबतक गवर्नमेंट देश के कलाकौशल की वृद्धि नहीं करती, जबतक अनेक प्रकार की उद्योग और व्यापार सम्बन्धी विद्या के प्रचार से इस देश के मनुष्यों को व्यापार द्वारा अपनी आय बढ़ाने में समर्थ नहीं करती तबतक गवर्नमेंट चाहे जितने और उपाय करे वह प्रजा को अकाल के पीड़ा से नहीं बचा सकती।

अकाल का वज्र बार बार जो हमारे देश पर गिर रहा है यह राजा और प्रजा दोनों के लिए भयंकर चेतावनी इस बात के लिए है कि प्रजा की अकाल सहने की शक्ति बढ़ानी चाहिये। जैसा हम बार बार कह चुके हैं अकाल से पीड़ित खेतिहर तथा अन्य प्राणियों, मनुष्यों तथा पशुओं को सहायता देना प्रशंसनीय है किन्तु इस देश की अवस्था में इतना ही काफी नहीं है।

अकाल के सम्बन्ध में गवर्नमेंट का सब से बड़ा कर्तव्य यह है कि ज़मीन के लगान को कम कर, सिंचाई का समस्त देश में पूरा प्रबन्ध कर, व्यापार सम्बन्धी शिक्षा का प्रचार और व्यापार की उन्नति कर, योग्य स्वदेशियों, को ऊँचे ऊँचे पदों पर अधिक संख्या में भरती कर भारतवासियों की जातीय औसत आमदनी को बढ़ावे और इस प्रकार से न केवल भारतवासियों की दृष्टि में वरन समस्त सभ्य संसार की दृष्टि में धन्यवाद और सुयश की भागी बने।

अकाल से बचने का उपाय।

[लेखक—माननीय ला० सुखबीर सिंह जी]

प्रजा को क़हत की मुसीबत से बचाने की फ़िक्र इस मुल्क में गवर्नमेंट को हमेशा रहती है और फिर भी पिछले बीस साल में लोगों को एक क़हत के बाद दूसरे क़हत की मुसीबत बरदाश्त करनी पड़ी है। इधर सिर्फ़ पांच चार साल के बाद क़हत फिर पड़ गया है। गवर्नमेंट तक़ाबी और रिलीफ़ वर्क्स के द्वारा लोगों को सहायता पहुंचाती है किन्तु खेद है कि अकाल को समूल नष्ट करने का कोई उपाय और देशों की भांति यहां अभी तक प्रयोग नहीं किया गया है। हम गवर्नमेंट के कृतज्ञ हैं कि उसने बाज़ ज़िलों में नहर की सिंचाई का पूरा इन्तज़ाम कर दिया है और वहां क़हत के आसार कम हो गए हैं। किन्तु बाज़ ज़िलों में जैसे आगरा, मथुरा, झांसी, जहां बारिश हमेशा कम होती है नहर की सिंचाई का अबतक काफ़ी बन्दोबस्त नहीं हुआ है। वहाँ के लिए यह आवश्यक है कि अगर नहर की सिंचाई हो सके तो उसका इन्तज़ाम किया जाय नहीं तो कुओं से पानी लेने का इन्तज़ाम होना चाहिये। इस देश में बार बार क़हत के पड़ने का प्रश्न विचारणीय है। इसकी कोई ख़ास वजह ज़रूर है किन्तु और मुल्कों में क़हत इस क़दर जल्द नहीं पड़ते और अगर पड़ते भी हैं तो लोग उसको बरदाश्त नहीं कर सकते हैं। किन्तु यहाँ यह दशा है कि यदि एक फ़सिल में बारिश समय पर न हो

तो तमाम लोग उसको बरदाश्त नहीं कर सकते और तमाम मुल्क में शोर गुल मच जाता है। इस मुल्क में क़रीब अस्सी फ़ीसदी मनुष्य अपना गुज़र कृषि से करते हैं और केवल बीस फ़ी सदी आदमी ऐसे हैं जो नौकरी, वाणिज्य या रोज़गार इत्यादि से गुज़र करते हैं। किन्तु इनका दारमदार भी खेती की पैदावार पर है। इससे ज़ाहिर है कि हिन्दुस्तान में तमाम लोगों का दारमदार खेती की पैदावार से सम्बन्ध रखता है। शिल्पकला और तिजारत पर दारमदार बहुत कम है। दूसरे मुल्कों की यह दशा है कि वहां शिल्पकला तथा तिजारत पर अधिक भरोसा है। यदि खेती से पैदावार कम हुई तो वहां वाले बाहर के मुल्कों से गल्ला वग़ैरः मँगा लेते हैं और तकलीफ़ नहीं उठाते। पर यहां यह दशा है कि यदि पैदावार ज़मीन की कम हो तो बाहर के मुल्कों से गल्ला आने के स्थान में हिन्दुस्तान ही का गल्ला बाहर भेजना बन्द नहीं होता और लोग भूखे मरने लगते हैं।

क़हत के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें विचारणीय हैं।

(१) नहर, कुओं या तालाब से सिंचाई बढ़ाई जावे जिसमें अगर बारिश किसी फ़सल पर न हो तो भी पैदावार काफ़ी हो जाय।

(२) लोगों में शिल्पकला और तिजारत बढ़ाई जावे जिससे वे अलावा खेती के अपनी गुज़र के लिए कुछ और पैदा कर सकें।

(३) गवर्नमेंट की पालिसी लगान व मालगुज़ारी की बाबत क्या होनी चाहिये जिससे ज़मींदार और काश्तकार पूरी तरक्की कर सकें।

(४) पेड़ और जंगल की तरक्की किस तरह पर हो जिससे बारिश अधिक हो।

(५) पशुओं की उन्नति, जिससे खेती के लिए, हल चलाने और कुएँ से पानी खींचने में और खाद मिलाने में बहुत मदद मिलती है और लोगों को घी व दूध व मट्ठा मिलता है, कैसे हो ?

(१) गवर्नमेंट ने बहुत रुपया लगाकर नहरें जारी की हैं जिससे मुल्क को बहुत फ़ायदा हुआ है, लेकिन यह नहर की आबपाशी अब तक समुद्र में एक बूंद की तरह है। लाखों करोड़ों बीघे रक़बा अभीतक बिना आबपाशी के पड़े हुए हैं। गवर्नमेंट आफ़ इन्डिया रेलों के बनाने में करीब पन्द्रह या सोलह करोड़ रुपया साल सर्फ़ करती है, लेकिन नहरों के बनाने में वह दो तीन करोड़ से ज्यादा सर्फ़ नहीं करती। नहरों में जिस क़दर रुपया गवर्नमेंट का अबतक लगा है उस पर, अलावा उस फ़ायदे के जो इजाफ़ा मालगुज़ारी में गवर्नमेंट को हासिल होता है १० या ११ फ़ीसदी के सूद वसूल होता है। रेल के बनाने से मुल्क को ज़रूर फ़ायदा पहुंचता है लेकिन इसी के साथ इस बात की ज़रूरत है कि पैदावार ज़्यादा हो। अगर पैदावार ज़रूरत से ज़्यादा न होगी, तो रेल के ज़रिये से वह बाहर नहीं जा सकेगी और अगर जावेगी तो उससे मुल्क के लोगों को बहुत तक़लीफ़ होगी। नहरों के बनाने के अलावा इस बात की भी बड़ी ज़रूरत है कि जहां नहर का पानी नहीं जा सकता वहां कुओं के बनाने का इन्तज़ाम किया जाय और जो कठिनाइयां इस वक़्त कुओं के बनाने में मौजूद हैं वे दूर की जावें। इसके सेवाय जहां मुमकिन हो तालाब बनाये जावें और उनमें बारिश का पानी वास्ते सिंचाई के जमा किया जावे। (Tube well) गलाने का तरीक़ा भी क़ाबिल इम्तहान के है। इसके द्वारा भी बहुत आबपाशी हो सकती है।

(२) दस्तकारी की कैफ़ियत बहुत ख़राब है। जो दस्तकार देहात में इस समय हैं, जैसे जुलाहे, बढ़ई, लुहार, सुनार, तेली, इत्यादि वे भी अपना काम छोड़ते जाते हैं। इसकी

तरफ़ गवर्नमेंट और पबलिक दोनों का ध्यान होना ज़रूरी है। मेरी राय में सहयोग समितियों की प्रथा के तरीक़े पर इन कारीगरों को रुपया दिया जावे तो मुमकिन है कि वे कुछ उन्नति करें। इस समय न उनके पास रुपया है और न सामान। इसके अलावा इसकी भी ज़रूरत है कि वर्तमान दस्तकारी के यंत्रों में तरक्की दी जाय जैसा कि मदरास इत्यादि में बुनने की मशीन में किया गया है।

(३) लगान व मालगुज़ारी के सम्बन्ध में यह विचारणीय है कि ज़मींदार व काश्तकार तरक्की आराज़ी में रुपया क्यों नहीं लगाते? इसकी ख़ास वजह यह मालूम होती है कि मालगुज़ारी में डंकिनी नियम नहीं है बल्कि मियाद के बाद लगान में वृद्धि की जाती है। इसकी वजह से जो रुपया ज़मींदार व काश्तकार तरक्की आराज़ी में लगाते हैं इसका पूरा फ़ायदा उनको हमेशा के लिए नहीं बल्कि केवल कुछ अर्से के लिए मिलता है। जिन नियमों के अनुसार इस वक्त उन्नति की बाबत मालगुज़ारी क़ायम करने के वक्त लिहाज़ किया जाता है वे काफ़ी नहीं हैं और ज़्यादातर वे बन्दोबस्त करने वाले पर निर्भर हैं, अगर उनमें उचित परिवर्तन किये जांय तो मुमकिन है कि ज़्यादा रुपया ज़राअत में सर्फ़ हो।

(४) तादाद पेड़ों व जंगलात की हर साल कम होती जाती है जिसकी वजह से बारिश काफ़ी नहीं होती। सरकारी जंगलात की तरफ़ अब चन्द साल से बहुत ध्यान दिया जाने लगा है लेकिन तरक्की बागात व दरख्तान की तरफ़ ज़मींदारों का ध्यान बहुत कम है। इसकी तरफ़ तवज्जह करने से उनको बहुत फ़ायदा है। पानी की बारिश ज़्यादा होने से ज़राअत को फ़ायदा पहुंचेगा और पेड़ों से फल व लकड़ी मिलेगी जिसकी रोज़ बरोज़ कमी होती जाती है। अगर फल ज़्यादा पैदा होगा तो क़हतसाली में भी इससे बहुत मदद मिलेगी।

(५) मवेशियों की हालत इस क़दर ख़राब है कि बयान नहीं हो सकता। उनकी तादाद रोज़बरोज़ घटती जाती है और नसल ख़राब होती जाती है। लाखों मवेशी चारे के न होने से मरते हैं। लाखों मवेशी वास्ते खाने के मारे जाते हैं और मार कर बर्मा भेजे जाते हैं। खेती के लिए बैल काफ़ी नहीं मिलते। क़ीमत बहुत बढ़ गई है। दूध देनेवाली गायें और भैंस मिलना दुशवार होगया है। दूध खाने को नहीं मिलता। मट्ठा ग़रीब लोगों को नहीं मिलता। अगर मवेशियों की तादाद ज़्यादा हो और उनके लिए चारा व चरागाहों का इन्तज़ाम हो तो क़हत का असर रोकने के लिए बहुत मदद मिले।

यह चन्द बातें मैंने सूक्ष्म रीति से लिखी हैं। इनसे मालूम होगा कि बार बार क़हतसाली होने का खास वजह क्या है और वह किस तरह रोकी जा सकती हैं। यह मामला अब ऐसा होगया है जिसमें गवर्नमेंट व पब्लिक दोनों को बहुत तवज्जह करनी चाहिये। कोई काम दुनियां में ऐसा नहीं है जो कोशिश करने से न हो सके और जब कि दूसरे मुल्कवाले अपने को क़हत से बचा सकते हैं तो कोई वजह नहीं कि हम लोग हिन्दुस्तान में क़हत से न बच सकें। यहां तो परमेश्वर ने हर क़िस्म का सामान पैदा किया है। तरह २ के पहाड़ व दरिया व तरह २ के फूल व फल और तरह २ के सामान मौजूद हैं। जो कुछ कमी है वह तवज्जह का है। इस समय जितने पढ़े लिखे आदमी हमारे मुल्क में हैं उनका झुकाव ज़्यादातर गवर्नमेंट की मुलाज़मत या वकालत की तरफ़ है। बहुत कम लोग शिल्प, वाणिज्य या कृषि की तरफ़ झुकते हैं। अगर कुछ आदमियों की तवज्जह इस ओर

भी हो तो वे बहुत फ़ायदा पहुंचा सकते हैं। इसके अतिरिक्त तिज़ारत में स्वार्थ बहुत फैला हुआ है। तिज़ारती एतबार (Trade Morality) बहुत कम है जिसकी वजह से आपस में एक दूसरे का भरोसा और एतबार नहीं है। इस कारण से सरमाया जमा होने में और काम के चलने में बहुत दिक़त पेश आती है। इस साल बेईमानी की वजह से कितने "बैंक" बिगड़ गये हैं। इनके कारण लोगों के तमाम काम बन्द हो गये और मुल्क को बहुत नुक़सान पहुंचा है। अगर हमारी गवर्नमेंट ज़्यादा ध्यान इस तरफ़ करे और नहर, कुएँ और तालाब बनाये जावें और माल-गुज़ारी के कानून में उचित परिवर्तन किया जावे तो इसमें कुछ शक नहीं कि हमारा मुल्क खुशहाल हो जाय, क़हत से बच सके और ऐसा इन्तज़ाम भी हो जावे कि अगर वक़्त पर बारिश न हो तो खेती को कुछ नुक़सान न पहुंचे और काफ़ी पैदावार मुल्क के लिए हो जावे।

गैर-सरकारी प्रबन्ध द्वारा अकालपीड़ितों की सहायता।

[लेखक—मि० एम० एन० जोशी।]

भारतवासियों को अभाग्यवश अब अकाल की विपत्ति बार बार सहन करनी पड़ती है। इसका कारण चाहे प्राकृतिक हो या आर्थिक अथवा दोनों। कारणों के सम्बन्ध में निश्चय करना मेरा यहाँ अभिप्राय नहीं है और न मैं इन अकालों के रोकने के उपायों ही पर यहाँ विचार करना चाहता हूं। इस लेख में मैं केवल अकालपीड़ितों की सहायता के प्रश्न तक ही परिमित रहूंगा, जो अकाल पड़ने पर एक आवश्यक कार्य हो जाता है और इस सम्बन्ध में भी मैं गवर्नमेंट के कार्य भाग की चर्चा न कर केवल गैर-सरकारी प्रबन्ध द्वारा सहायता के क्षेत्र और ढँगों पर विचार करूंगा। प्रत्येक अनुक्रमिक अकाल पर गवर्नमेंट की सहायता-प्रणाली अधिक अच्छी होती जाती है। मालूम पड़ता है कि वे दिन सौभाग्यवश बीत चुके हैं जब सैकड़ों आदमी भूखों मर जाते थे। अब गवर्नमेंट की गाड़ी पहले की अपेक्षा अधिक शीघ्रता से चलने लगी है और लोकमत के बढ़ते हुए प्रभाव ने भी अफसरों को अधिक उदार बना दिया है।

गवर्नमेंट सार्वजनिक कोष की संरक्षक है। इसलिए यदि वह उदार हृदय हो तब भी यह आवश्यक है कि वह ऐसा प्रयत्न करे जिससे जहाँ तक हो सके रुपया व्यर्थ ख़र्च न होने पावे। पहिले के कुछ अकालों में ठीक सिद्धान्तों और नियमों के न होने के कारण बुरा परिणाम हुआ था। बहुसंख्यक मनुष्यों को जानें भी गईं और लोगों को कष्ट भी बहुत सहना पड़ा, यद्यपि सहायता के काम पर कुछ कम ख़र्च नहीं किया गया। इससे एक विस्तृत नियमावली—फेमीन रिलीफ कोड—के बनाने की आवश्यकता हुई जिसमें वे सिद्धान्त अब लिख दिये गये हैं जिनके आधार पर गवर्नमेंट सहायता का काम अपने हाथ में लेती है तथा अन्य विशेष उपायों का अवलम्बन करती है। पिछले पचीस वर्षों में देश में बहुतवार अकाल पड़े जिनके अनुभव से फेमीन कोड अब करीब करीब इतना व्यापक बना दिया गया है कि उसमें मानव कष्ट के निवारणार्थ सब उपायों की व्यवस्था है। गवर्नमेंट का काम अधिकतर निम्न कर्मचारियों के प्रबन्ध ही से चलता है इसलिए नियमों को इतना विस्तृत बना देना

पड़ा कि उनसे कुछ स्वतंत्र होकर काम करने की बहुत ही कम गुञ्जायश रह गई है। किन्तु कोई नियमावली चाहे कितनी ही पूर्ण क्यों न हो, यह असम्भव है कि वह समस्त दशाओं के अनुकूल उपायों की व्यवस्था कर सके। परिणाम यह होता है कि जब अकाल का कष्ट बहुत भीषण और व्यापक हो जाता है तब बहुत से लोग बिना सहायता पाये ही रह जाते हैं। यह सत्य है कि कलेक्टर तथा अन्य उच्च अफसरों को मदद बाँटने के मामले में बहुत कुछ व्यक्तिगत अधिकार दिये गये हैं और वे निस्सहाय लोगों को मदद पहुंचाने का भरसक उद्योग भी करते हैं। किन्तु निम्न कर्मचारियों को स्वेच्छानुसार कार्य करने के अधिकार नहीं दिये जा सकते, विशेषतः जब कि अकाली कामों पर नियुक्त कर्मचारी बहुधा अल्पकालिक हुआ करते हैं। नियमों की इस कठोर प्रणाली का दोष यह है कि बहुत से ऐसे लोगों को जो सचमुच सहायता पाने योग्य हैं, मदद नहीं पहुंचती यदि वे उन श्रेणियों में से किसी के नहीं हैं जिनका कि फेमीन कोड में वर्णन किया गया है। और भी कई ऐसे कारण हैं जिनसे गवर्नमेंट के साथ साथ गैर-सरकारी लोगों को भी अकालपीड़ितों की सहायता का प्रबन्ध करना चाहिये। उनमें से एक यह है कि अकालपीड़ितों की मदद करने में गवर्नमेंट का उद्देश्य केवल इतना ही है कि लोग भूख के कारण मर न जायँ और स्वभावतः वह उतनी ही मदद देती है जितनी शरीर में प्राण बनाये रखने के लिए काफी है। किन्तु सभ्य समाज में उचित रीति से जीवन व्यतीत करने के लिए कपड़ा भी उतना ही ज़रूरी है जितना कि अन्न। किन्तु गवर्नमेंट कपड़े को फजूल समझती है इसलिए उसके बाँटने का प्रबन्ध नहीं कर सकती। निर्बलों और बीमारों को कभी कभी विशेष प्रकार के भोजनों की आवश्यकता होती है, जैसे दूध और अन्य पदार्थ जो बिलकुल ज़रूरी हैं। अधिकार न होने के कारण सब सरकारी कर्मचारी इनको नहीं दे सकते। फिर, बहुसंख्यक स्थानों में बहुसंख्यक लोगों के लिए सहायता का प्रबन्ध करने के कारण गवर्नमेंट का कार्य बहुत विस्तृत होता है इसलिए उसे "लगातार निरीक्षण और खुले रजिस्टरों" के क्रम पर चलना पड़ता है। इस क्रम के कारण मदद पाने वालों के नाम आम में प्रकट हो जाते हैं और यह उच्चकुलों के गरीब लोगों की इच्छा के विरुद्ध है। नीची श्रेणियों के लोग इस असुविधा के साथ भी सरकार से खैराती मदद ले लेते हैं। किन्तु उच्चकुलों के गरीब लोग, विशेषतः भले घरों की स्त्रियां जो देश के कई भागों में पर्दानशीन हैं, ऐसी मदद लेकर अपनी इज्ज़त खोने से घृणा करती हैं। अपने आत्मसम्मान को बनाये रखने के लिए उनमें जो यह भाव विद्यमान है उसकी रक्षा करना, व्यक्ति और जाति की भलाई की दृष्टि से आवश्यक है। गैर-सरकारी सहायता में नाम प्रकट होने की आशंका नहीं रहती, इसलिए, विशेषतः उच्चश्रेणियों के लोगों के निमित्त, अकाल के समय में गैर-सरकारी सहायता का भी प्रबन्ध होना अत्यावश्यक है। इससे व्यक्तियों की विशेष सुविधा के साथ सहायता की जा सकेगी और किन्हीं नियमों की पाबन्दी न होने के कारण उन लोगों तक उसी ढँग से जिसमें उनको कोई आपत्ति न होगी मदद पहुंचाई जा सकेगी। जिन अकालों में चारे की कमी से मवेशियों को भी कष्ट हो उनमें गैर-सरकारी सहायता की और भी अधिक ज़रूरत है।

जहाँ तक मैं कह सकता हूं चारे के अकालों में पशुओं की रक्षा के लिए गवर्नमेंट अब तक जो व्यवस्था करती आई है वह न तो उपयुक्त है और न पर्याप्त। वस्तुतः गवर्नमेंट सिर्फ इतना ही करती है कि बाहरी स्थानों से चारा मँगवाने के लिए उसपर रेलवे महसूल घटा

देती है और कृषकों के हाथ—सो भी केवल खेती के मवेशियों के लिए—कुछ कम मूल्य पर चारा नक़द या उधार बेंचने का प्रबन्ध कर देती है। बस, इससे अधिक और कुछ भी नहीं। किन्तु मेरी सम्मति में यह काफी नहीं है। प्रथम तो गवर्नमेंट ऐसे बहुसंख्यक लोगों को बिलकुल ही छोड़ देती है जो खेती के काम के लिए नहीं बल्कि दूध, गाड़ी आदि के लिए पशु पालते हैं। मैं समझता हूं कि जो गवर्नमेंट समस्त प्रजा की रक्षा की ज़िम्मेदार है उसे कृषकों और गैर-कृषकों के बीच भेद नहीं करना चाहिये। जो पशु खेती के लिए नहीं हैं वे भी—यद्यपि गवर्नमेंट को उनके काम से कोई सीधी आमदनी नहीं है—सर्वसाधारण के लिए उतने ही उपयोगी हैं जितने कि खेतीवाले मवेशी। किन्तु गवर्नमेंट ने न जाने किन कारणों से अपनी पशु-सम्बन्धी सहायता केवल कृषकों तक ही परिमित रक्खी है। इसलिए अन्य गरीब लोगों को अपने जानवरों की रक्षा के लिए गैर-सरकारी कार्यकर्ताओं ही का मुख जोहना पड़ता है। कृषकों को भी गवर्नमेंट केवल उन्हीं पशुओं के लिए मदद देती है जो खेती का काम देते हैं। किन्तु भारत जैसे देश में, जहां खेती की दशा बहुत ही शोचनीय है और जहाँ कृषक यदि कोई दूसरा व्यापार जानता है तो वह दूध ही का है, दुधार गोरुओं को सहायता से वञ्चित करना एक बड़ी भूल है। कृषक के कुछ पशुओं को सहायता देने और कुछ को न देने का एक बुरा परिणाम यह होता है कि कृषक गवर्नमेंट से जो कुछ पाता है उसे वह अपने दोनों प्रकार के जानवरों में बराबर बाँट देता है जिसका फल यह होता कि किसी के लिए भी चारा काफी न होने के कारण समस्त जानवर बराबर कष्ट सहते हैं। फिर भी जब गवर्नमेंट यही करना उचित समझती है तब कृषकों के भी दुधार गोरुओं की फ़िकिर गैर-सरकारी कार्यकर्ताओं ही को करनी पड़ती है। चारे के अकाल के समय में एक बड़ा ख़तरा यह रहता है कि लोग अपने अच्छी से अच्छी नसल के जानवरों से हाथ धो बैठते हैं या कम से कम ऐसे जानवर खराब हो जाते हैं। इसके लिए केवल एक यही उपाय है कि 'पशुशालाएँ' (Cattle-Camps or cattle-Kitchens) खाली जायँ जिनमें अच्छी नसल के जानवरों का पोषण किया जाय। किन्तु गवर्नमेंट ने कहीं भी इसका प्रयत्न नहीं किया है। जब मनुष्यों और पशुओं दोनों को कष्ट होता है तब पशुशालाएँ एक और तरह से भी उपयोगी सिद्ध होती हैं। जिन लोगों को अकालपीड़ितों की सहायता के काम का अनुभव है उनका कथन है कि जिन मनुष्यों को अकाला कामों पर जाने की वास्तविक आवश्यकता है वे वहाँ न जाकर अपने घरों ही में बने रहते हैं, क्योंकि वे अपने जानवरों से प्रेम करते हैं और इसलिए वे अपने को और अपने प्यारे साथियों को आधे पेट रखना पसन्द करते हैं। किन्तु यदि उनके जानवरों को रखने के लिए पशुशालाएँ खोल दी जायँगी तो वे अवश्य खुशी से अकाला कामों पर चले जायँगे और इस प्रकार अपनी और अपने पशुओं की भी रक्षा कर सकेंगे। इसलिए पशुशालाएँ जो सहायता देंगी वह मनुष्यों और पशुओं दोनों को मिलेगी। मगर गवर्नमेंट अब भी इसका प्रबन्ध नहीं कर रही है इसलिए इस काम की भी चिन्ता गैर-सरकारी कार्यकर्ताओं ही को करनी पड़ेगी। मनुष्यों और पशुओं दोनों की सहायता के सम्बन्ध में मैंने जो विचार ऊपर प्रकट किये हैं उनसे अकाल के समय में गैर-सरकारी सहायता के प्रबन्ध करने को आवश्यकता स्पष्टतः सिद्ध होती है। किन्तु गैर-सरकारी सहायता का उद्देश्य तभी सफल हो सकता है जब उसका कुल काम गैर-सरकारी लोगों ही के हाथों में रहे। सरकारी अफ़सरों के ऊपर काम छोड़

देने से उद्देश्य नष्ट हो जायगा । सरकारी अफ़सरों के काम का ढँग और भाव वही रहेगा, रुपया चाहे सरकारी खजाने से आवे या सर्वसाधारण के चन्दे से । सरकारी अफ़सरों के कोष की वृद्धि करने की आवश्यकता नहीं है ; आवश्यकता इस बात की है कि सरकारी अफसरों के काम के अलावा गैर-सरकारी प्रबन्ध द्वारा कुछ (सहायता का) काम अधिक उदार भाव से और भिन्न प्रणाली और सिद्धान्तों के आधार पर किया जाय । परन्तु मुझे स्पष्टतः कहना पड़ता है कि अकालपीड़ितों की सहायता के कार्यक्षेत्र में गैर-सरकारी लोगों ने अभी तक कुछ अधिक काम नहीं कर दिखाया है । कई भूतपूर्व अकालों में गैर-सरकारी सहायता के लिए बहुतसा धन एकत्र किया गया । परन्तु यद्यपि चन्दा गैर-सरकारी लोगों ही ने दिया था तथापि मदद बाँटने का वास्तविक कार्य पूर्णतः सरकारी अफ़सरों ही के हाथों में रहा । पहिले पहिल अपने प्रबन्ध से अकालपीड़ितों की सहायता का थोड़ा सा काम बंगाल के पिछले अकाल में रामकृष्ण सेवासदन के कुछ कार्यकर्ताओं ने किया और लाला लाजपत राय के संगृहीत कोष द्वारा १९०६-०७ के संयुक्तप्रान्तीय अकाल में कुछ स्वयंसेवकों ने भी किया । कभी कभी ब्रह्मसमाज ने भी अपने कुछ कार्यकर्ताओं को मदद बाँटने के लिए भेजा । परन्तु इस प्रकार के प्रयत्न या तो किन्हीं धार्मिक संस्थाओं द्वारा किये गये या व्यक्तिविशेष के उत्साह से हुए । जहाँ तक मुझे मालूम है, अकालपीड़ितों की सहायता के कार्य की ओर समस्त सर्वसाधारण के ध्यान दिलाने का पहिला प्रयत्न १९११-१२ के गुजरातवाले अकाल में किया गया । चन्दा उगाहने के लिए बम्बई में जो प्रधान कमेटी थी उसमें प्रायः सभी सज्जन गैर-सरकारी थे और मदद बाँटने के काम में भारत-सेवक-समिति के कुछ सदस्यों ने भी कमेटी की सहायता की । उसी अकाल में वाडिया ट्रस्टियों ने भी अधिकतर भारत-सेवक-समिति अथवा उसके द्वारा स्थापित स्थानीय कमेटियों द्वारा करीब एक लाख रु० की मदद बँटवाई । गत वर्ष भी अहमद-नगर के भयानक अकाल के अवसर पर गैर-सरकारी स्थानीय कमेटियों द्वारा, भारत-सेवक समिति के एक सदस्य की सहायता से और बम्बई-स्थित एक गैर-सरकारी कमेटी के निरीक्षण में एक लाख रु० की मदद बाँटी गई ।

मनुष्यों की सहायता के सम्बन्ध में जो एक ख़ास बात यहाँ उल्लेख करने योग्य है वह यह है कि काम करने के लिए स्त्रियों की भी आवश्यकता है । उच्चजातियों की निस्सहाय विधवाओं और उनके आश्रितों को बहुत कुछ सहायता देनी पड़ती है इसलिए विशेषतः उन स्त्रियों में, जिनमें पर्दा की प्रथा प्रचलित है, उचित रीति से मदद बाँटने का काम बहुत कठिन होता है । पिछले दो अकालों में सहायता का काम करने के लिए मैं नियुक्त किया गया था । किन्तु स्वयं जाकर मनुष्यों को मदद बाँटना मुझे कठिन ही नहीं वरन् असम्भव मालूम हुआ । दोनों अवसरों पर यह काम मुझे स्थानीय कमेटियों या सेवासदन की स्त्री कार्यकर्त्रियों पर—जो सौभाग्यवश सहायता देने आगई थीं—छोड़ देना पड़ा । उचित रीति से मदद बाँटने के लिए प्रथम आवश्यक बात यह है कि मदद पानेवालों की अवस्था की पूरी पूरी जाँच पहले ही कर ली जाय और जब औरतों को मदद देनी होती है तब कोई पुरुष कार्यकर्ता ठीक तरह से इसकी जाँच नहीं कर सकता । यदि पुरुष कार्यकर्त्ता उसी स्थान का हो तो भी यह काम कठिन ही होता है । बड़ी प्रसन्नता की बात है कि इस प्रकार का परोपकारी कार्य करने के लिए स्त्री कार्यकर्त्रियाँ क्रमशः आगे बढ़ रही हैं, यद्यपि उनकी संख्या अभी थोड़ी ही है । पिछले गुजरात के अकाल में स्वनामधन्य मि० जस्टिस रानाडे का धर्मपरा-

यण: पत्नी श्रीमती रामाबाई रानाडे अपनी दो संगिनियों--श्रीमती अन्नपूर्णा बाई आप्टे—के साथ अकालपीड़ित प्रान्त के एक भाग में घूमी थीं। स्त्री कार्यकर्त्रियों की दूसरी मंडली ने श्रीमती यमुनाबाई सकई की अध्यक्षता में गुजरात के पंचमहल ज़िले तथा अन्य भागों में भी बहुत उपयोगी कार्य किया। उसी अकाल के समय में सूरत के वनिता विश्राम की अध्यक्ष श्रीमती मणिविहार (?) गज्जर ने भी गुजरात और काठियावाड़ में एक लम्बा दौरा किया था। गत वर्ष अहमदनगर के अकाल में भी तीन स्त्री स्वयंसेविकाओं ने एक महीने से अधिक तक ज़िले में दौरा किया और वे ५० से अधिक गाँवों में गईं। इनमें एक गुजराती और दो दक्षिणी स्त्रियाँ थीं और प्रधान थीं श्रीमती काशीबाई कनिटकर, जो एक बड़ी ही गुण-सम्पन्न दक्षिणी विदुषी हैं। दोनों अकालों में इन श्रीमतियों के वास्तविक कार्य को स्वयं देखने का मुझे अवसर मिला था और इसलिए मैं कह सकता हूं कि, कभी कभी कड़ी धूप में भी गाँवों में घूमने की कठिनाइयों की कुछ भी परवाह न करते हुए, उन्होंने जिस भाव से कार्य किया वह बड़ा ही सराहनीय था।

गैर-सरकारी सहायता की आवश्यकता दिखलाते हुए मैंने ऊपर कई कार्यक्षेत्रों का भी उल्लेख किया है। इन में से कुछ के विषय में यहाँ विचार करना उचित प्रतीत होता है। अकाल के समय अनाथों का प्रश्न लोगों का ध्यान आकर्षित करता है क्योंकि कुछ भूतपूर्व अकालों में ईसाई मिशनरियों ने बहुसंख्यक लड़कों और लड़कियों को अपने दल में मिला लिया था। किन्तु गत वर्ष का मेरा अनुभव यह है कि न तो हम लोगों को बहुसंख्यक अनाथ मिलते ही हैं और जो थोड़े से मिलते भी हैं वे अपने गाँवों को छोड़ने के लिए राज़ी नहीं होते। इसका कारण शायद यही है कि सरकारी सहायता बड़ी सुव्यवस्थित और उदारतापूर्ण होती है। जो अब भी कुछ अनाथ ईसाई मिशनरियों के पास चले जाते है इसका कारण अकाल नहीं है। कुछ न कुछ अनाथ हमेशा पाये जाते हैं और वे ईसाइयों का इस कारण से मिल जाते हैं कि प्रथम तो प्रत्येक ज़िले में मिशनरियों का प्रबन्ध बड़ा सुव्यवस्थित होता है और दूसरे कुछ यूरोपियन मेजिस्ट्रेटों में भी उनके लिए स्वाभाविक पक्षपात होता है।

गैर-सरकारी प्रबन्ध द्वारा जो धर्मार्थ (बिना काम लिये) सहायता दी जाय उसका अधिकांश भाग मैं समझता हूं कि ऊँची जातिवालों को मिलना चाहिये विशेषतः उनको जो कृषक नहीं हैं। खेती और मज़दूरी करनेवालों की गवर्नमेंट ही अच्छी तरह फ़िकिर करती है। किन्तु इनके सिवा अन्य लोगों पर उसका ध्यान बहुत कम जाता है। मनुष्यों की सहायता का एक भाग वस्त्र-वितरण भी है, स्त्रियों की वर्तमान शोचनीय दशा में यह आवश्यक है कि उनके पास अंग ढाँकने के लिए काफ़ी कपड़ा हो, विशेषतः जब कि अकाली कामों पर पुरुषों और स्त्रियों को साथ साथ काम करना पड़ता है। निस्सहाय स्त्रियों को स्त्री कार्यकर्त्रियों द्वारा ही मदद दी जाने की आवश्यकता मैं पहले ही दिखला चुका हूं।

पशुओं की सहायता दो प्रकार से की जा सकती है। प्रथम तो बाहर से चारा मँगवाकर और गरीबों के हाथ उसे थोड़े मूल्य पर बेच कर—इससे बाज़ार के मूल्य की दर भी घटाई जा सकेगी। चारे के महसूल में गवर्नमेंट के रियायत कर देने पर भी गरीब मनुष्य उससे लाभ नहीं उठा सकते क्योंकि वे अज्ञान होते हैं और उनमें एकता और उत्साह भी नहीं होता। इसलिए रेलवे के रियायती महसूल द्वारा गैर-सरकारी उदार कार्यकर्ताओं को स्वयं चारा मँगाकर उसे इन गरीब लोगों के लिए सुलभ कर देने का प्रयत्न करना चाहिये।

मगर इस प्रकार की सहायता उन्हीं लोगों के लिए उपयोगी होती है जिनको सस्ते मूल्य पर चारा खरीदने की कम से कम कुछ सामर्थ्य है। जिनको चारा खरीदने की कुछ भी सामर्थ्य नहीं है उनको 'पशुशालाओं' द्वारा ही—और यह भी बहुत थोड़ी—मदद मिल सकती है।

मनुष्यों और पशुओं की सहायता के निमित्त काम करने के जो ढंग ऊपर दिखलाये गये हैं उनके अनुसार चलने के लिए बहुसंख्यक कार्यकर्ताओं की आवश्यकता होगी। किन्तु भारत में लोकसेवा का भाव उन्नत हो रहा है इसलिए कार्यकर्ताओं की कमी दिन पर दिन पूरी होती जायगी। यह उदारता और दया का काम है इसलिए युवा और वृद्ध सभी लोकहितैषियों का ध्यान शीघ्र ही इस ओर जायगा। इस प्रकार के सार्वजनिक कार्य तथा अन्य ऐसे कार्यों से जो बहुतसे अप्रत्यक्ष लाभ होते हैं उनके वर्णन करने की यहाँ आवश्यकता नहीं है वे सब को अच्छी तरह मालूम हैं।

रेल और नहर।

[एक किसान।]

स्थूल दृष्टि से अकाल का कारण अनावृष्टि है। अनावृष्टि ही के कारण हरेभरे खेत खड़े खड़े सूख जाते हैं। यदि उनमें पानी पहुंचाने का बन्दोबस्त हो, अगर वे सींचे जा सकें तो फसल का मारा जाना कठिन ही नहीं वरन् असम्भव भी हो जाय। इस उद्देश्य से राजा, महाराजा कूप और तड़ागों के खोदवाने का बन्दोबस्त किया करते थे। इसके बहुत से प्रमाण मौजूद हैं कि पुराने राजाओं के समय में सींचने की व्यवस्था बहुत अच्छी थी। सब भारतवासी इस बात को जानते और मानते हैं और इसी कारण से वे सरकार से नहर बनवाने में अधिक व्यय करने के लिए प्रार्थना किया करते हैं। सरकार भी इस बात को मानती है किन्तु साथ ही साथ वह नहर की अपेक्षा "रेल" को अधिक उपयोगी समझती है। सरकार की तरफ से कहा जाता है कि अकाल को रोकने के लिए, खेती को फलप्रद करने के लिए नहर की आवश्यकता अवश्य है किन्तु अकाल की भीषणता कम करने के लिए, अकाल को दबाने के लिए रेल अधिक उपयोगी है। अफसर कहते हैं कि अकाल पड़ जाने पर अकालपीड़ित प्रान्तों में सुकाल के स्थानों से अन्न शीघ्रता से पहुंचाया जा सकता है और इस तरह रेल मनुष्यों को भूख से मरने नहीं देती। इसके उत्तर में भारतवासी कहते हैं कि बात ठीक है किन्तु पहले वैसा प्रबन्ध करना उचित है जिससे आग लगे नहीं, यही प्रबन्ध सुदृढ़ रहना चाहिये, इसके बाद हम लोगों को दो एक कूप भी खोदवा रखने चाहियें जिनसे अग्नि लगने पर बुझाने को पानी लिया जा सके। तात्पर्य यह कि पहले "नहर" अधिक बनवानी चाहियें, सींचने की बहुत विस्तृत और अच्छी व्यवस्था होनी चाहिये। इसकी सहायता से हम अकाल को पड़ने न देंगे किन्तु भविष्य की बातों का हम ठीका नहीं ले सकते, इसलिए हम कुछ रुपया रेल में भी खर्च करेंगे जिनकी सहायता से अकालपीड़ित प्रान्तों में हम समय पड़ने पर अन्न पहुंचा सकें। सरकार कहती है कि रेल से और भी बहुत फायदे हैं। इससे वाणिज्य का विस्तार होता है। सभी सभ्य देश रेल की सहायता से आज कुबेर हो गये हैं। प्रजा के सुख और स्वच्छन्दता में जो रेल द्वारा बहुत कुछ वृद्धि होती है। इन सब कारणों से नहर की अपेक्षा रेल की उपयोगिता अधिक

है। प्रजा कहती है कि यह सब संभव है किन्तु हमारे लिए रेल की अपेक्षा नहर ही अधिक उपयोगी है। पहले तो रेल अकाल की विकरालता को ही कम कर सकती है, वह उसका समूल नाश नहीं कर सकती। इस अंश में नहर रेल से श्रेय है। दूसरे रेल की सहायता से हमारे दूर दूर के ग्रामों में से भी गल्ला खिंचता चला आता है, इस जीवनदायिनी वस्तु के बदले रेल हमारे ग्रामवासियों को टीन के खेलौने और अन्य विलासिता की चीज़ें पहुंचाती हैं। तीसरे रेल के लिए जो रुपया खर्च होता है उसमें ३१॥) फी सैकड़ा विलायतवाले लोहे के कारखाने वालों को मिलता है। इसके सिवाय रेलवे कम्पनियों के डाइरेक्टरों के दफ़्तर विलायत में हैं इससे और भी हमारा रुपया विलायतवाले खर्च करते हैं। रेल बनाने के लिए अधिकांश कर्ज़ भी विलायत से लिया जाता है। इसका सूद भी हमें विलायतवालों को देना पड़ता है। तात्पर्य यह कि रेल से जो कुछ आमदनी होती है उसकी मलाई विलायतवाले और छाछ हम लोग पाते हैं। रेल की कम्पनियों में से कितनों के साथ सरकार ने प्रतिज्ञा की है कि वह उनकी क्षति पूरी कर देगी। फायदा हुआ तो कम्पनी खूब लाभ उठावें, घाटा हो तो सरकार पूरा करे, इससे भी प्रजा का अहित होता है। रेल विभाग में भी अधिकतर अङ्गरेज़ अच्छे पदों पर हैं, इससे भी भारतवासियों को रेल से लाभ नहीं पहुंच रहा है। इन सबके सिवाय रेल बहुत काफी बन चुकी है, अकालपीड़ित प्रान्तों में अन्न पहुंचाने के लिए अब रेल के विस्तार की आवश्यकता नहीं है। सन् १८८० के कमीशन ने भी सरकार को रेल बनाना बन्द करने की सलाह दी थी किन्तु खेद के साथ कहना पड़ता है कि वह नेक सलाह मानी नहीं गई। रेल छोटे से छोटे पुरवों में भी विलायती वस्तुएँ पहुंचा रही है। इसके कारण प्रजा के बहुत से पुराने कारखाने नष्ट हो गये हैं।

'काहू को भांटा पित्त है, काहू को भांटा पथ्य'।

यह कहा जाता है कि रेल द्वारा वाणिज्य का विस्तार होता है पर हम देखते हैं तो मालूम होता है कि वाणिज्य-विस्तार तो हुआ है पर साथ ही साथ हमारी धनराशि भी कम होती जाती है। यह बात आने और जानेवाले मालों की तालिका देखने से स्पष्ट दिखाई देती है। जो कुछ व्यापार दिखाई देता है फायदा उसका अधिकतर अङ्गरेज़ों को होता है, भारतवासी तो केवल मज़दूर हैं या दलाल। मज़दूरी करनेवाला वाणिज्य श्री प्राप्त नहीं कर सकता। सुतरां रेल हमारे लिए बहुत उपयोगी नहीं है।

नहर।

भारतवासी उपर्युक्त बातों को देखते, भोगते और समझते हैं। इसी कारण से रेल की अपेक्षा नहर को अधिक लाभदायी समझते हैं। नहर केवल प्रजा ही के लिए नहीं वरन सरकार के लिए भी अधिक फलप्रद है। जो रुपया नहर बनाने में खर्च होता है उससे सींचने की तो सुविधा होती ही है साथ ही साथ उससे मुनाफा भी सरकार को अधिक होता है।

शुरू शुरू में जब रेल और नहर बनाने का विचार हुआ था उस समय जो हिसाब लगाया गया था उससे यह सारांश निकला था कि रेल और नहर में खर्च प्रायः बराबर पड़ेगा किन्तु नहर में रेल की अपेक्षा फी मील १५०) अधिक लाभ होगा किन्तु खेद के साथ कहना पड़ता है कि अब तक खेती की आराज़ी का पंचमांश भी मुश्किल से सरकारी नहरों से सींचा जा सकता है। प्रायः ६० करोड़ बीघे ज़मीन ऐसी पड़ी है जिसके सींचने के लिए कोई प्रबन्ध नहीं है। वर्षा किसीके बस की बात नहीं किन्तु यदि खेत के सींचने का प्रबन्ध

हो तो फिर निस्सन्देह हमारे खेतिहर इस तरह अकालों से जर्जरित न होते। सन् १८८० के कमीशन के सभ्यों ने भी इस बात को मुक्तकंठ से स्वीकार किया था किन्तु खेद की बात है कि उसके बाद भी नहर की अपेक्षा रेल पर सतगुना अधिक ख़र्च हुआ है।

भारत में प्रायः ३६, ३७ इंच पानी प्रतिवर्ष बरसता है। लोगों का कथन है कि जिस देश में १७ से २१ इंच तक पानी बरसता है वहां की फसल सूख नहीं सकती। भारत में विकराल से विकराल काल के साल में भी २०, २१ इंच पानी बरस जाता है। १८७७ में मद्रासी दुर्भिक्ष के समय में वहां ६६ इंच पानी बरसा था; १८६५-६६ के उड़ीसे के अकाल के समय में भी ६० इंच वर्षा हुई थी। इससे यह साफ सूचित होता है कि अकाल अनावृष्टि के कारण नहीं पड़ता। इसके न मानने पर भी वर्षा के जल को रोक रखने के लिए तालों, तड़ागों और बांधों की आवश्यकता है। यदि नहरों की सहायता से खेतिहर सुखसमृद्धि लाभ कर सकेंगे तो फिर सहज ही में वास्तविक वाणिज्य विस्तार भी हो जायगा। इन सब के सिवाय रेल बनाने में जो भारत का रुपया विलायत को जाता है नहर बनाने में वह रुपया भारत में रहेगा। सन् १८८२ से १६०२ तक में रेल के लिए भारत से ४५८ करोड़ रुपया विलायत को गया। यदि यह रुपया नहरों के बनवाने में व्यय होता तो खेती को तो लाभ पहुंचता ही साथ ही साथ हमारे मज़दूर और ठेकेदार मालामाल हो जाते।

एक बात और है, नहरों के बनने से अधिकतर माल रेल पर न जाकर नौकाओं पर आता जाता तो इससे भी हम लोगों को लाभ पहुंचता। हमारे नाविक फिर एक बार जी उठते, और नाव और जहाज़ बनाने की कला जो लोप हो गई है वह फिर प्रगट हो जात ।

नहरों के बन जाने से खेतिहर अपने सहारे काम कर सकता है। उसका जीना मरना बादल की अपेक्षा उसके आधीन हो जायगा। अनावृष्टि के कारण अकाल न पड़ सकेगा और साथ ही साथ दीन भारतवासियों को जो सहस्रों दुःख अकाल के समय सहने पड़ते हैं वे काफ़ूर हो जायँगे। सब से बड़ा लाभ तो यह होगा, दूसरे हमारे सहस्रों भाइयों को नहरों के खुल जाने पर रोटियां मिलेंगी, रेल के किराये से कम खर्च पर व्यापारी माल भेज और मँगा सकेंगे। जिस दृष्टि से देखा जाय भारत और भारतवासियों का उपकार इसीमें है कि रेल की अपेक्षा नहर को प्रधानता दी जाय; देश में आवश्यक से अधिक रेल का विस्तार हो चुका है। अब रेल के विस्तार की आवश्यकता भी नहीं रही है। अब तक में सरकार रेल पर प्रायः ४०० करोड़ रुपया खर्च कर चुकी है इसके बिपरीत नहर पर अब तक में केवल ५० करोड़ के लगभग खर्च हुए हैं। किसान ही सरकार के खजाने को भरते हैं। सरकार को भी उचित है कि वह किसानों की प्राणरक्षा करनेवाली नहरों पर ही अधिक व्यय करे।

"पूर्व समय में यह नियम था कि दो वर्ष की अनावृष्टि अथवा ३ वर्ष की अपर्याप्त वर्षा के अनन्तर ही अकाल पड़ता था।

"आजकल यदि वर्ष में एक बार भी फसल के लिए ठीक समय पर पानी न बरसे, वर्ष के शेष समय में चाहे बहुत वर्षा क्यों न हो चुकी हो, तो भयानक अकाल उपस्थित हो जाता है।

"प्रत्येक गांव में अनाज की जो खत्तियां होती थीं उनसे भी अकाल का कष्ट बहुत कम हो जाता था। एक और बात यह है कि इतिहास के अनुसार कभी ऐसा नहीं हुआ कि समस्त भारत में एक साथ ही पानी न बरसा हो, इसी कारण ऐसे अवसरों पर बुभुक्षा का कष्ट केवल प्रान्तविशेष ही में अनुभव किया जाता था, और देश के शेष भागों के—जो रेल आदि के अभाव से उस अकालपीड़ित प्रान्त

से पृथक् थे—लोग अपनी उपज से भरपेट भोजन करते थे।

"देश के प्रत्येक भाग में फैली हुई रेलों के कारण बचत का जो अन्न पहिले एकत्र किया जाता था वह अब दिसावर को भेज दिया जाता है। अब जिन ज़िलों में पानी कम बरसने के कारण कष्ट होता है वहाँ अच्छी उपजवाले ज़िलों से अन्न मँगवा लिया जाता है, जिसका परिणाम यह होता है कि समस्त भारत में अन्न का मूल्य बढ़ जाता है और ऐसा बढ़ जाता है कि फिर घट कर पुराने क्रम पर कभी नहीं पहुंचता। फलतः समस्त स्थानों में अन्न की तेज़ी हो जाती है और जहां बृटिश राज के पहले केवल कुछ करोड़ मनुष्यों ही को तकलीफ हुई होती वहां अब २० करोड़ मनुष्यों को कष्ट अनुभव करना पड़ता है। अकालपीड़ित स्थानों में रेलों द्वारा अन्न पहुंच जाने से लाखों मनुष्यों की प्राणरक्षा होती है मगर इसके कारण देशभर के लोगों को इतना मँहगा अन्न खरीदना पड़ता है कि करोड़ों मनुष्यों के लिए भर पेट भोजन करना असम्भव हो जाता है। भारत के अधिक गरीब श्रेणी के लोग, जिनको पिछले पचास वर्षों में शायद ही कभी भर पेट भोजन मिला है शीघ्र ही बीमारी के शिकार हो जाते हैं और अब तो बुखार के भयानक प्रकोप के कारण दशा यह हो गई है कि तीन वर्ष म व्यर्थ ही इतने भारतवासियों की जानें जाती हैं जितने मनुष्य कि समस्त संसार में ३० वर्ष में युद्ध के कारण मारे जाते ! करीब २० वर्ष हुए एक एंग्लो-इंडियन चिकित्साशास्त्रज्ञ ने कहा था कि 'बुखार' केवल अपर्याप्त भोजन, हीन वस्त्र और अनुपयुक्त निवासस्थान के लिए दूसरा अच्छा नाम है"

विलियम डिगबी सी० आई० ई०।

१८८० के अकाल-सम्बन्धी कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में अधिकारियों को यह परामर्श दिया था :—

"भारतवर्ष को अनावृष्टि-जन्य अकालों से बचाने के लिए जिन उपायों का अवलम्बन किया जा सकता है उनमें निस्सन्देह प्रधान स्थान नहर के कामों को दिया जाना चाहिये। नहर बनवाने की नीति के सम्बन्ध में बहस करते समय लोग बहुधा नहरों के लाभों का अनुमान केवल मुनाफे की उस आमदनी के आधार पर लगाते हैं जो कुल पूँजी के हिसाब से सरकार के खजाने में आता है। किन्तु नहरों के लाभों का अनुमान बिलकुल भिन्न रीति से करना होगा। अनावृष्टि के समय उनके द्वारा मनुष्यों के प्राणरक्षा होती है, मालगुज़ारी की हानि नहीं होती और अकालपीड़ितों की सहायता का व्यय रुकता है। यह प्रत्यक्ष लाभ प्रथम गणनीय है। किन्तु केवल अकाल के समय में ही उनसे लाभ नहीं होता। मामूली वर्षा के समय में भी नहरें बड़ा काम देती हैं और धनागम का एक बड़ा मार्ग होती हैं। वे खेती के समस्त कामों में सुनिश्चयता देती हैं, प्रत्येक एकड़ भूमि में फसल की उपज बढ़ाती हैं और भविष्य में बोई जानेवाली फसलों को अधिक मूल्यवान बतलाने योग्य करती हैं। भारत के उत्तर में पंजाब से लेकर दक्षिण में टिनेवली तक जहाँ कहीं नहरों से काम होता है वहाँ ये ही फल प्रकट हो रहे हैं और हम देख सकते हैं कि जौं, जून्हरी का स्थान धान, ऊख और गेहूं ग्रहण कर रहे हैं और ऐसे मौसम में नील की विस्तृत खेती होती है जब कि बिना पानी की ज़मीन अवश्य ही ऊसर की तरह पड़ी हुई होती।

आयरलैंड का स्वराज्य ।

[लेखक—श्रीयुत सुपार्श्वदास गुप्त एम ए० ।]

१६-अब ग्लैडस्टन का दूसरा सचिवत्व काल आया । दूसरा भूमि-सुधार सम्बन्धी ऐक्ट जिससे किसानों की अवस्था और अधिक सुधरी, १८८१ ई० में पास हुआ । ज़मीन्दार और वे प्रायः एक ही श्रेणी में रखे गये । पर थोड़े समय तक भी यह शान्ति स्थापन न कर सका था, कि "लैण्ड लीग" (Land league) ने आन्दोलन मचाना शुरू कर दिया, कि कोई किसान कर न दे ।

साथ २ स्वराज पक्षपाती पार्लामेण्ट के मेम्बरों ने भी वहाँ बड़ा ज़ोर बाँधा और उसे नाकों चने चबवाये । इस लीग का सच्चा उद्देश्य माइकेल डैविट (Michael Davitt) के निम्न लिखित शब्दों से पूर्णतया ज्ञात हो सकता है:—

"It was the complete destruction of Irish landlordism, first, as the system which was responsible for the poverty and periodical famines which have decimated Ireland; and secondly, because landlordism was a British garrison which bar ed the way to national independence."

"अर्थात् इसका मुख्य उद्देश्य आयरलैण्ड को ज़मीन्दारी प्रथा का जड़ से काटना था। यह प्रथा पहिले तो देश की ग़रीबी और समय २ पर होनेवाली अकालों का कारण, और दूसरे, राष्ट्रीय स्वतन्त्रता में बाधा डालनेवाला एक बृटिश सैन्य दल थी । इससे घबड़ाकर पार्लामेण्ट ने प्रथम लैण्ड लीग को तोड़ डाला और पीछे पार्नेल सहित कई नेताओं को जेल भेजा। ग्लैडस्टन भी इस समय इन लोगों के कार्य से सहानुभूति नहीं रखते थे । वे इनके साधनों का हमेशा बलपूर्वक विरोध करते थे । उन्होंने एक बार कहा था:—

"I utterly protest against it. I believe a greater columny, a more gross and injurious statement could not possibly be made against the Irish nation............

....

It is idle to talk of either lower order or religion or civilization, if these gentlemen are to carry through the recklessand chaotic schemes that they have devised. Repine is the first cbject, but repine is not the only object. It is perfectly true that these gentlemen wish to march through repine to disintegaation and dismemberment of the Empire."

"अर्थात् मैं इसका एक दम विरोध करता हूं । मेरी समझ में इससे अधिक मिथ्याभिशाप और हानिकारक शब्द आइरिश जाति के विरुद्ध नहीं कहे जा सकते । यदि ये लोग अपनी बनाई हुई हर अन्धाधुन्ध स्कीम को काम में लाने को तैय्यार हैं, तो कानून या शान्ति, धर्म्म या सभ्यता के विषय में बात करना समय नष्ट करना है । असंतोष फैलाना इन लोगों का प्रथम उद्देश्य है; पर केवल असंतोष ही इनका उद्देश्य नहीं है । यह पूर्ण रूप से सत्य है कि वे असंतोष से चलकर राष्ट्र के विश्लेष और अङ्गव्यवच्छेद तक पहुंचना चाहते हैं ।"

पर सदा इनके यही विचार न रहे । थोड़े ही दिनों में इनके विचारों ने पलटा खाया । इन्हें मालूम होगया कि पार्नेल का आन्दोलन निस्सार नहीं है और उसके प्रयत्न उद्देश्यरहित नहीं हैं । १८८२ ई० में पार्नेल कारागार से मुक्त किया गया; और उसकी इच्छापूर्ति के उपाय सोचे जाने लगे । पर इसी बीच में कई षड्यन्त्र रचनेवालों ने फ्रेडरिक कैवेलि-

डश और वर्क की हत्या की, जिससे पार्लामेण्ट बहुत असन्तुष्ट हुई। शीघ्र उन्हें दबाने के लिए " अपराध निवारण ऐक्ट " (Prevention of Crimes Act) पास किया गया, जिससे पार्लामेण्ट में कार्यवाही को नियमबद्ध करने के उद्देश्य से से अनेक कानून बनाये गये और यह भी निश्चित किया गया कि पार्लामेण्ट में जिस दल की संख्या अधिक हो, उसी को वादाविवाद रोकने का अधिकार प्राप्त है। इससे आइरिशों की कोधाग्नि बड़े ज़ोर से भभक उठी और वे लोग इसी ताक में रहने लगे कि कब इन बन्धनों का बहिष्कार किया जाय।

२०-१८८६ साल आयरलैण्ड के इतिहास में महत्वपूर्ण है। इसी साल ग्लैडस्टन ने अपने तीसरे मन्त्रिकाल में आयरलैण्ड को स्थानीय पार्लामेण्ट और प्रबन्धकारिणी देने का प्रस्ताव बिल रूप में किया था। दुर्भाग्यवश यह बिल पास न होसका। इसका विस्तृत वर्णन आगे किया जायगा। इसके बाद फिर १८९३ ई० में ग्लैडस्टन ने दूसरा बिल पार्लामेण्ट में उपस्थित किया। यहां पर इतना लिख देना ज़रूरी है कि इसके पहिले आइरिश मण्डली में दो दल होगये थे। एक तो उनका जो पार्नेल के पक्ष में थे, और दूसरा उनका जो इनके विपक्षी थे। इस विपक्षी दल में आयरलैण्ड के कैथेलिक पादड़ीही प्रधान थे। पार्नेल ने इन लोगों की एक बात भी न मानी और अपने थोड़े से साथियों की मदद से इनका प्रतिवाद करता करता १८९१ ई० में मर गया। इसकी मृत्यु के पहिले इसके चरित्र पर कई बार दोषारोपण भी हुआ था, लेकिन सभी में उसकी विजय हुई। आइरिश मण्डली में दो दल होजाने से कुछ दिनों तक होमरूल का आन्दोलन शिथिल पड़गया पर अन्त में इन लोगों को अपनी भलाई के हेतु जान डेमण्ड के नेतृत्व में मिल जाना पड़ा। १८९३ ई० का बिल भी जो १८८६ ई० के बिल से कई बातों में भिन्न था, लार्ड सभा से तिरस्कृत हुआ। १८८६ और १८९३ के दोनों बिलों का उद्देश्य आयरलैंड को स्थानीय राज्यप्रबन्धों में पूर्ण स्वतन्त्रता देना था। दोनों बिलों के तैयार करने में पार्नेल की स्कीम सेही सहायता ली गई थी। अर्थात् जो आयरलैण्डवासी व्यवस्थापक अधिकारों से वञ्चित किये गये थे, वे भी इनके अधिकारी बनाये गये। इन दोनों बिलों में यह विस्तृत रूप से बतला दिया गया था कि किन २ विषयों में आइरिश पार्लामेंट का पूर्ण अधिकार होगा और किन किन में साम्राज्य पार्लामेण्ट का। यथा १८९३ ई० के बिल में यह लिखा गया था कि आइरिश पार्लामेण्ट को किसी धर्म को स्थापित करने या आश्रय देने का अधिकार प्राप्त न होगा। जिनके जो धार्मिक अधिकार हैं, वे उनके रहेंगे। प्रोटेस्टेन्ट प्रोटेस्टेन्ट रहेगा, कैथेलिक कैथेलिक। एक धर्म की जड़ काट कर दूसरा धर्म्म स्थापित नहीं किया जा सकेगा। १८८६ ई० के बिल के अनुसार आयरलैण्ड का शासन एक व्यवस्थापक सभा द्वारा होना निश्चित हुआ था। सभा के दो विभाग किये गये थे। पहिले में १०३ मेम्बर थे, दूसरे में २०४। सब विषयों पर ये दोनों मिलकर वादाविवाद करने और वोट देने का अधिकार रखते थे परन्तु जिन बिषयों पर दूसरे विभाग (Chamber) को अपनी राय देने का अधिकार प्राप्त न था उनके निपटारा का अधिकार केवल प्रथम चेम्बर ही को था। पर १८९३ ई० के बिल से यह बखेड़ा हटा दिया गया। एक व्यवस्थापक सभा (Irish Legislature), जिसमें दो पृथक् चेम्बर निर्मित हुये; बनाई गई, प्रथम का नाम "व्यवस्थापक सभा" (Legislative assembly) और द्वितीय का नाम "व्यवस्थापक समिति" (Legislative Council) रक्खा गया। पहिले में १०३ और दूसरे में १४४ मेम्बर थे। वे दोनों साथ विचार न करते। यदि किसी विषय में दोनों में मतभेद होता तो

दोनों की बैठक बन्द करदी जाती (Dissolution) या दो वर्षों के बाद फिर उसी पर दोनों का वोट एक साथ लिया जाता और जिस पक्ष में वोट अधिक होता उसी पक्ष की जय होती। इसी तरीके को आस्ट्रियन प्रजातंत्र-राज्य (Austrian Commonwealth) और दक्षिण अफ्रीका की पार्लामेण्ट ने (South African Parliament) भी पसन्द किया है। १९१२ ई० के बिल में यही सब चीजें रक्खी गई हैं। पर मेम्बरों की संज्ञा से पराधीनता की गन्ध आने के कारण, उनके नाम बदलकर, स्वतन्त्रता-सूचक नाम सेनेट (Senate) और कामन्स सभा (House of Commous) रक्खे गये हैं। मतभेद होनेपर बन्द करने (Dissolution) की प्रथा का अवलम्बन कर, दोनों सभाएं मिलकर वोट द्वारा प्रश्न का निपटारा करेंगी। इन तीनों बिलों के पढ़ने से मालूम होता है कि शासन में सादापन और सीधापन लाने के लिए कैसे परिवर्तन हुये।

२१-१८८६ ई० के बिल में ग्लैडस्टन ने प्रस्ताव किया था कि साम्राज्य पार्लामेंट (Imperial Parliament) में आइरिश प्रतिनिधि एकदम न बैठें। इसी कारण से द्वितीय सभा के प्रतिनिधियों की संख्या बहुत अधिक (यानी २०४) थी। पर सात वर्षों के बाद उनके विचारों में परिवर्तन हुआ। उन्होंने देखा कि इस प्रकार से आइरिश और साम्राज्य पार्लामेण्ट में क्या भेद है इसको पूर्ण रूप से थाह लगानी कठिन होजायगी और साथ २ इसका भी भ्रम सदा बना रहेगा कि दोनों पार्लामेण्ट कहीं एक दूसरे से एकदम पृथक् अर्थात् स्वतन्त्र न होजांय। सारे देश की भी यही राय थी कि वेस्टमिन्स्टर में भी आयरलैण्ड के प्रतिनिधि जायं। १८९३ ई० में कामन्स सभा से यह बात स्वीकृत होगई कि "आयरलैण्ड के ८० मेम्बर जिनको सब विषयों पर अपनी राय स्वतन्त्र रूप से देने का अधिकार होगा, ब्रिटिश हाउस (British House) में बैठें। इसी वजह से दूसरी सभा की संख्या २०४ से घटाकर १६४ करदी गई। १९१२ ई० के बिल में भी यही बातें रक्खी गई हैं। केवल अन्तर इतना ही है कि इस बार ८० की जगह ४२ प्रतिनिधि बृटिश हाउस में रक्खे गये हैं। इसका विशेष कारण साम्राज्य सरकार की भलाई और पुष्टि करनी है। आजकल यूनाइटेड किङ्गडम का काम इतना बढ़ गया है कि वर्त्तमान शासन प्रणाली से इसका काम कदापि नहीं चल सकता। इसके लिए इस बात की आवश्यकता है कि इङ्गलैण्ड, स्काटलैण्ड आयरलैण्ड भारतवर्ष, वेल्स और अन्य उपनिवेशों को पृथक् पृथक् स्थानीय पार्लामेण्ट दी जायं और वे सेन्ट्रल सरकार (Central Government) के आधीन रहकर अपना अपना राज्य प्रबन्ध करें। इस सेन्ट्रल पार्लामेण्ट में आधीन देशों के प्रतिनिधि बैठेंगे और साम्राज्य गवर्नमेण्ट की भलाई के विषय पर विचार करेंगे। इस प्रकार का संगठन होने से सेन्ट्रल सरकार भिन्न देशों और उपनिवेशों के आन्तरिक राज्य-प्रबन्ध के भार से रहित होकर, अन्तराष्ट्रीय कामों में अधिक समय दे सकती है। १८८६ ई० में बिल के उपस्थित किये जाने पर मि० जोसेफ़ चैम्बरलेन ने अपनी जोशीली वक्तृता में कहा था:—

"In my view the solution of this question should be sought in some form of federation, which would really maintain the Imperial unity and which would, at the same time, conciliate the desire for a national Local Govrnment which is felt so strongly in Ireland. I say I believe it is on this line and not on the line of our relations with our self-governing colonies, that it is possible to seek for and to find a solution of the difficulty."

"अर्थात् मेरी समझ में यह प्रश्न किसी प्रकार के "संयोग" से ही हल हो सकता है।

यह संयोग सचमुच साम्राज्य की एकता को भी सुरक्षित रख सकेगा और आयरलंड में स्वराज्य की जो प्रबल इच्छा है उसे भी साथ ही पूर्ण कर देगा। मेरा विश्वास है कि इसी तरीक़े से न कि उससे जिससे स्वराज्यप्राप्त उपनिवेशों से हमारा वर्तमान सम्बन्ध चला जा रहा है—इस कठिनाई के हल करने का मार्ग मिलना सम्भव है।

२२-अब मैं होमरूल की वर्तमान व्यवस्था के बारे में कुछ कहना चाहता हूं। १९१२ ई० में जो होमरूल बिल बृटिश पार्लमेंट में उपस्थित किया गया था और जिसे स्वीकार करते समय मि० रेडमण्ड ने ये शब्द कहे थेः—

"Viewing this Bill as a whole, I say here—and speak for my colleagues on these benches—that this is a great measure and a measure adequate to carry out the objects of its promoter. It is a great measure and I welcome it."

अर्थात् "इस बिल को सब प्रकार से पूर्ण समझते हुए मैं अपनी और इन बेंचों पर बैठे हुए अपने साथियों की ओर से कहता हूं कि यह एक महान् प्रस्ताव है—ऐसा प्रस्ताव जो इसके हितेच्छुओं के उद्देश्यों की पूर्त्ति के उपयुक्त है। यह एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव है और हम इसका स्वागत करते हैं।" वही होमरूल बिल आज इङ्गलैंड के सामने उपस्थित है। उसी साल १९वीं एप्रिल को यह कामन्स सभा से ९४ के मेजारिटी (अधिक वोट) से पास होगया था। इस बिल का प्रधान प्रस्ताव एक आइरिश पार्लमेंट जिस पर आइरिश राज्य प्रबन्ध का भार होगा स्थापित करना है, इसमें एक राजा और दो सभाएं अर्थात् सेनेट और कामन्स सभा होंगी। इसके साथ २ एक आइरिश प्रबन्धकारिणी भी होगी, जो बृटिश साम्राज्य के कैबिनट की चाल की होगी। इससे आयरलंड को अपने देश में शान्ति स्थापन करने और राज्य प्रबन्ध करने का अधिकार प्राप्त होगा पर इससे साम्राज्य सरकार की शक्ति में न्यूनता न आवेगी क्योंकि इससे विदेशीय राष्ट्रों से सन्धि करने का, या नौसेना सम्बन्धी किसी कार्य्य के करने का जिसका सम्बन्ध केवल साम्राज्य पार्लमेंट से है, अथवा अन्य किसी प्रकार की सन्धि करने का जिससे साम्राज्य सरकार को क्षति पहुंचे, अधिकार आइरिश पार्लमेंट को प्राप्त न होगा। इसके अलावे और बहुत सी शर्तें हैं जिनका वर्णन करना लेख की सीमा का उल्लङ्घन करना है क्योंकि आगे चलकर प्रश्न की कठिनाइयों पर भी विचार करना है इसलिए इतना यहां कह देना युक्तियुक्त होगा कि कामन्स सभा के १०४ सदस्यों में ५९ सदस्य, जो सब से बड़ी संख्या है, अलस्टर प्रदेश के हैं। यही अलस्टर अपने को होमरूल से पृथक रखना चाहता है।

२३-हैरल्ड स्पेंडर दुःख के साथ लिखते हैं कि अलस्टर से अभीतक धार्मिक झगड़ा नहीं गया है। वही अलस्टर जिसने १२५ वर्ष हुए ग्रेटन का साथ देकर अपनी उदारता और समानवृत्ति का परिचय दिया था आज इस प्रकार यूनियन के समय से आयरलैंड की राष्ट्रीय स्वतंत्रता का घोर विरोधी हो रहा है। अभी तक वहां इतने धार्मिक कट्टर हैं कि वे कैथेलिकों को किसी उच्चपद पर चढ़ने नहीं देते। विशेषकर अलस्टर का उत्तर पूर्वीय भाग बहुत ही धर्मान्ध हो रहा है। यदि उन लोगों से कोई यह पूछता है कि अमुक सज्जन कौन हैं तो उत्तर देते हैं कि "वह प्रोटेस्टेंट हैं और वह कैथेलिक हैं।" सारा संसार इस बात पर सहमत है कि अब धार्मिक उद्दण्डता उस कक्षा की नहीं रही जितनी प्राचीन समय में थी। फिर भी हमें इसके चिन्ह इधर उधर मिलही जाते हैं। अलस्टरवालों को इस बात का विचार नहीं है कि आयरलैंड को स्वराज्य मिल जाने से उसकी स्थिति और दृढ़ हो जायगी।

वे लोग अपने प्रतिवाद के कई कारण देते हैं, जिनमें मुख्य निम्नलिखित हैं :—

(१) उनके सब अधिकार छिन जायँगे।

(२) उनके धर्म पर कुठाराघात होगा।

(३) उनके व्यापारादि में बाधा डाली जायगी।

(४) वे लोग इस समय शान्तिमय जीवन व्यतीत कर रहे हैं, उन्हें किसी नवीनता की आवश्यकता नहीं है।

(१) पहिले विरोध का यथोचित उत्तर यही दिया जा सकता है कि उन्हें सब से अधिक प्रतिनिधियों अर्थात् ५६ के भेजने का अधिकार प्राप्त होगा जिससे वे अपना सुख दुःख पार्लमेंट में समझा सकेंगे यदि वे बुद्धिमत्ता के साथ पार्लमेंट में अपने विचार उपस्थित करेंगे और अपने अधिकारों का अन्याययुक्त व्यवहार न करेंगे तो सर्वदा उन्हीं की जय रहेगी क्योंकि उन्हीं में बड़े बड़े धनी-मानी और प्रतिष्ठित पुरुष हैं।

(२) दूसरे विरोध का प्रतिकार तो बिल में ही विद्यमान है क्योंकि उसमें साफ तौर से लिख दिया गया है कि आइरिश पार्लमेंट को किसी धर्म को अधिक अधिकार देने या किसी को हानि पहुंचाने का कुछ भी अधिकार प्राप्त न होगा। इसलिए प्रोटेस्टंटों का यह भय कि कैथेलिकों का प्राधान्य होजाने से उनके धर्म को आघात पहुंचेगा, उनकी न समझी है। दूसरी बात यह है कि इङ्गलैंड जिसमें अधिक प्रोटेस्टेंट हैं, कैथेलिकों के धार्मिक अन्याय को यदि वे इसमें प्रवृत्त होंगे, सहन नहीं कर सकेगा। साम्राज्य सरकार ज़रूर उसमें हस्तक्षेप करेगी और अन्यायी को दंड देगी।

(३) तीसरा विरोध जो व्यापार सम्बन्धी है साररहित सा जान पड़ता है क्या बेलफास्ट* जो इस समय समस्त ग्रेटब्रिटेन को अपने कपड़ों से सुसज्जित कर लाभ उठाता है, समस्त आयरलैंड को सुसज्जित कर उससे लाभ न उठावेगा। अल्स्टर का यह विचार करना कि वह आयरलैंड से जुदा रह कर अपनी उन्नति कर सकता है, उसकी भूल है और धूल से रस्सी बटने के समान है। क्या वह अपने देश से जिसपर उसकी स्थिति निर्भर है, अलग रहकर उन्नति कर सकता है? कदापि नहीं! अल्स्टर के योग्य विद्वानों और नीतिज्ञों को युद्ध ठानने के पूर्व विचारना चाहिये कि किस साधन के अवलम्बन से दोनों की भलाई सम्भव है। तलवारों के खिंच जाने से या तोपों के दग-जाने से किसी दल को कुछ लाभ नहीं हो सकता।

(४) उनका चौथा विरोध कि उनको इस नवीन शासनप्रणाली की आवश्यकता नहीं है, स्वार्थपरता के सिवाय और कुछ नहीं है। एक ही देश में, एक ही राष्ट्र में, एक अंश दूध, दही और मालपुवा चाभें और दूसरे को सूखी रोटियों के टुकड़े तक नसीब न हों! यह कहाँ का न्याय है? आशा है कि अल्स्टर के नेता इस पर विचार करेंगे।

२४–जो हो, आयरलैंड को किसी न किसी रूप में स्वराज्य मिलना ही चाहिये। यदि अल्स्टर इसी पर डटा रहे कि उसे स्वराज्य से अलग कर दिया जाय तो दोनों पक्षों के लिए समय बड़ा भयानक आवेगा। ऐसी अवस्था में यदि सरकार शस्त्रास्त्र द्वारा अपना मार्ग बनाना चाहे तो उसकी भी यह गति न्याय-सङ्गत नहीं कही जा सकती। उस समय दोनों को उन्हीं के अनुसार अधिकार देकर सन्तुष्ट करना और परिणामों की राह देखना ही सब से अच्छा होगा। पर इस प्रस्ताव से मैं एकदम सहमत नहीं हूं कि आयरलैंड को स्वराज्य देते हुए अल्स्टर प्रान्त को टैक्स शिक्षा आदि कई विभागों में विशेष अधिकार दिये जांय। इस

---

* बेलफास्ट अल्स्टर प्रान्त का सब से बड़ा नगर है।

प्रकार की प्रथा का भविष्य कभी कल्याणकर न होगा । 'यह भारतवर्ष में मुसलमानों को स्वतन्त्र निर्वाचन के अधिकार देने की प्रथा के समान अनिष्टकर है । इससे फिर भी प्रोटेस्टेंटों और कैथेलिकों में वैमनस्य बना रहेगा । प्रोटेस्टेंटों को कैथेलिकों से अधिक स्वतंत्रता मिलने से उनका दिमाग़ आसमान पर चढ़ जायगा, जिससे दोनों में भेदभाव का क्षेत्र और भी बढ़ेगा । यदि किसी रूप से दोनों के एक ही स्वराज्य के अन्दर रहने का निपटारा न हो तो अल्स्टर को साम्राज्य सरकार के अधीन ही रखना मेरी समझ में सब से अच्छा होगा क्योंकि यदि ईश्वर की कृपा से कुछ दिनों के बाद इसके भी विचार बदलें और इसे भी स्वराज्य का रस चखने की अभिलाषा हुई तो उस अवस्था में यह कैथलिकों से मिल सकता है

२५—अब मैं यह दिखलाने की चेष्टा करूंगा कि आयरलैंड का स्वराज्य मांगना कहां तक युक्तियुक्त और न्यायसङ्गत है।

(१) प्राकृतिक पार्थक्य और आर्थिक अवस्था

आयरलैंड विशेष कर इन्हीं दोनों के बल पर स्वराज्य का अधिकारी है।

(१ यदि हम लोग इतिहास की ओर कुछ देर के लिए दृष्टि डालें तो प्रत्यक्ष मालूम होगा कि एक देश जो दूसरे देश से प्राकृतिक रुकावटों के कारण सर्वथा पृथक है उससे राजनैतिक और सामाजिक कामधन्धों में बहुत कम मिलता है और इनमें से कोई दूसरे पर शान्तिपूर्वक शासन नहीं कर सकता है। इतिहास में इसके उदाहरण भरे पड़े हैं । इटली के आस्ट्रिया से, अमेरिका के इङ्गलैंड से, यूनान आदि के टर्की से और उपनिवेशों के ग्रेटबृटेन से अलग होने का प्रधान कारण यही है । लिखा भी है कि [illegible] नैतिक उत्थान में बड़ा भाग लेता है" इसी कसौटी पर आयरलैंड को कसने से वह खरा उतरता है, क्योंकि अथाह समुद्र से बड़ी और कौन रुकावट हो सकती है । लोगों का यह कहना कि आधुनिक आविष्कारों से ये रुकावटें दूर कर दी गई हैं सर्वथा भ्रमपूर्ण है । यदि ऐसा ही था तो इङ्गलैंड उन कई उपनिवेशों को जो हाल ही में स्थानीय राजकाजों में स्वतन्त्र हुये हैं क्यों अपने शासन के अन्दर नहीं रख सका ।

(२) दूसरा प्रधान कारण आयरलैंड की आर्थिक दुरवस्था है । इसमें सन्देह का लेश मात्र नहीं है कि आयरलैंड बड़ा गरीब देश है । १८०० के यूनियन ने इसकी बड़ी ही दुर्दशा कर दी है । इसे अपने घरेलू राज कार्य्यों के लिए जितना कर देना पड़ता है, उतना और किसी देश को नहीं देना पड़ता है १९११ की ख़ज़ाने की रिपोर्ट से मालूम होता है कि सिविल गवर्नमेंट में आदमी पीछे इङ्गलैंड को २९ शिलिङ्ग २ पेन्स, स्काटलैंड को ३३ शि० ४ पे० और आयरलैंड को ५१ शि० ९ पे० खर्च करने पड़ते हैं। इसी प्रकार पुलीस में इङ्गलैंड को ३ शि० ४॥ पे० स्काटलैंड का २ शि० ५॥ पे० और आयरलैंड को ६ शि० ८ पे०। इतना ही नहीं साम्राज्य सरकार का भी खर्च आयरलैंड के माथे दस वर्षों में (१८९५ से १९०५ तक) ५८,३९,००० पाउंड से ७६,३५,५०० पा० हो गया है ।

इससे मालूम होता है कि सिर्फ आइरिश प्रजा को ही नहीं बल्कि इङ्गलिश प्रजा को भी कुराज प्रबन्ध के लिए अफसरों को यह रकम देनी पड़ती है । अब जरा उन सरकारी अफसरों की संख्या देखिए जो इनकमटैक्स अदा करते हैं । स्काटलैंड में १६० पाउंड से अधिक वेतन पानेवालों की संख्या ९८३ है और टैक्स का कुल जोड़ ३,२०,७६४ पाउंड है। आयरलैंड में ४,०३ अफसर हैं, जिनके वेतन का कुल जोड़ [illegible] पाउंड है तिस पर भी यह कि

आयरलैंड का जन-संख्या स्काटलैंड से कम है। और भी। इङ्गलैंड अपनी १ अरब ८० करोड़ पाउण्ड की आमदनी का केवल $\frac{१}{४०}$ भाग होम गवर्नमेंट के लिए खर्च करता है पर आयरलैंड अपनी ७ करोड़ पाउण्ड की आमदनी का $\frac{१}{१०}$ भाग।

इन सब संख्याओं से मालूम होता है कि आयरलैंड दिन दिन कितना गरीब होता जाता है और यदि ऐसा ही कुशासन रहा तो मालूम नहीं उसकी क्या दशा होगी।

२६-अब प्रश्न उठ सकता है कि यदि आयरलैंड इतना दरिद्र है तो वह स्वराज्य का प्रबन्ध कैसे कर सकेगा। इसका उत्तर मि० जे० एफ० मैक्डानेल की "Ireland and Home Rule Movement" नामक पुस्तक में मिलेगा, जहां वे लिखते हैं:—

"If one looks at the case of Denmark, one finds a richer agricultural country with a population of six and a half millions, which is able to maintain her home and foreign governments, a Royal family, a debt, an army with a war strength of 70,000, a fleet and the expenditure of three colonies on an expenditure of FOUR AND A HALF MILLIONS. Swedan, with a population of six and a half millions, a large commerce and many industries, is able to support her whole government, Army, Navy, diplomacy and civil service on a budget of little more than five millions ! The cost of civil government in Belgium with a greater population and four times the trade is one-half that of Ireland." अर्थात् डेनूमार्क को देखने से विदित होता है कि वह अपने घर और परराष्ट्र संबन्धी गवर्नमेंट, राजघराने, कर्ज़, ७०००० की फ़ौज और नौसेना और तीन उपनिवेशों पर केवल ४५ लाख पौंड वार्षिक खर्च करता है। स्वीडन जिसकी जनसंख्या ६५ लाख है, अपने समस्त व्यापार गवर्नमेंट, फौज, नौसेना आदि पर वार्षिक ५०००००० पाउन्ड खर्च करता है। बेलजियम का गवर्नमेंट का खर्च जहाँ कि जनसंख्या आयरलैंड से अधिक है और जहाँ का व्यापार आयरलैंड से चौगुना है, आयरलैंड के खर्च से आधा है।

अकाल अथवा अद्भुत अनिमंत्रित अतिथि।

[लेखक—श्रीयुत माधवाचार्य—श्रीनगर।]

नाटक के पात्र।

प्रकृति—चराचर की रानी।
ऋतुराज—नाटक का नायक, प्रकृति का सेनापति।
पावसकुमारी—नाटक की नायका।
वारिवाहिनी-(मानसून)—पावस की सहेली।
समीर, कादम्बिनी—ऋतुराज की सहेली।
दुर्भिक्ष—नाटक का प्रतिनायक, प्रकृति का शत्रु।
कालरा—विवलंकुमारी, दुर्भिक्ष के पक्षपाती।
[illegible], मर्य्यादा, विनोद—दुर्भिक्ष पीड़ित प्राणी।
रामसिंह—भूमाधिकारी।
रत्नपालसिंह—एक भूमाधिकारी।
शशिकुमार—रामसिंह का बेटा, विद्या का प्रेमी।
विद्या—रत्नपाल सिंह की बेटी।
प्रभा—विद्या की सखी।
निर्मल, विमल—दो राजकर्मचारी।
रामदास—एक अभियोगी वैश्य।
घनश्याम—रामदास का मित्र।
जम्बु, रसाल, खगपति, मनुष्यादि—प्रकृति की प्रजा।

गोकुल—[illegible] का [illegible]वन।

अङ्क १।

दृश्य १

(पर्दा उठता है और रङ्गभूमि पर ऋतुराज, समीर और कादम्बिनी दिखाई देते हैं।)

ऋतुराज—समीर! क्या तुझे मेरी वियोगजनित दुर्दशा का किंचित् ज्ञान नहीं है ? एक एक दिन गिनते २ मुझे आठ मास बीत गये किन्तु प्राणप्यारी वर्षा का आना तो दूर रहा, इस समय तक गगनमंडल पर उसके आगमन की सूचना देनेवाले मेघदूत तक दृष्टिगोचर नहीं हुए। इस दुर्घटना, इस दुखप्रद और असह्य दुःख के कारण तू नहीं देखती—मेरे सुन्दर भवन, वन, उपवन, वाटिका, उद्यानादि कैसे २ भयंकर रूप धारण करने लगे हैं। शीतल सलिल बहानेवाली सरिताएं, सलिलहीन, मेरे हृदय को कैसे बेध रही हैं ?

प्यारी समीर! कोयल, पिक, मयूरादि की मधुर मोहना मंडलियाँ क्यों और कहाँ अंतरध्यान होगई हैं ? उनके नृत्य गान की मधुर ध्वनि मेरे कानों तक क्यों नहीं पहुंचती ? सरोवरों के निर्मल नीर, नीर में कुतूहल करनेहारे जल-जीवों की टोलियाँ, कुसुमित, पल्लवित, कमल की अवली और उन पर गुंजार करनेवाली चंचरीक माला आजकल मुझे क्यों नहीं दिखाई देती है ? निज अदृश्य स्पर्श से, प्रकृति की अनुपम सन्तान को प्रमुदित करनेवाली समीर! तू भी आजकल न जाने कहाँ विचरा करती है ? क्या तुझे पावन भारत देश से घृणा होगई है ? मेरी प्रबल सेना को विचलित करनेवाला कौन है ? इस दुःखद परिवर्त्तन का मेरे राज्य में संचार करनेवाला कौन है ? तू मौन क्यों है ? [कादम्बिनी से] परछाईं की भांति सदा मेरी प्राणप्यारी का अनुसरण करनेवाली कादम्बिनी! मुझे इतने काल उपरांत तुझे अकेली देख बड़ा आश्चर्य है [दोनों का मौन देख समीर से] हैं! [illegible] तू मौन क्यों है ? तू गहरी उसासें क्यों ले रही है ? तुझे क्या दुःख है ? मेरे प्रश्नों का उत्तर न देकर व्यथा को तू क्यों आहुति पहुंचा रही है ? ऋतुओं के स्वामी और अजेय मन्मथ के मित्र को सतानेवाला कौन है ?

समीर—महाराज! श्रीमुखभाषित दुर्घटना का लानेवाला किसे बतलाऊं ? संसार में ऐसा कौन है जो आपके प्रचंड प्रताप के विरुद्ध आचरण करने का साहस करे ? स्थूल दृष्टि से इस दुर्घटना का कारण केवल पावसकुमारी की अनुपस्थिति ही है। प्रकृति भयंकर रूप क्यों धारण कर रही है? श्रीमान् केवल इसी कारण से कि प्रकृति की संगिनी, आपकी अद्वितीय रमणी और हमारी माननीया सहेली पावस यहां से जाकर न जाने किस स्थान को सुशोभित कर रही है ? यहां न आने का कारण मैं अवश्य जानती हूं किन्तु उनके विचरने के स्थान से अनभिज्ञ हूं।

ऋतुराज—[अधीरता से] इतने समय उपरांत मौनव्रत तोड़ने वाली समीर कहो, पावस की अनुपस्थिति का क्या कारण है ?

समीर—महानुभाव! हमारी सखी, प्रकृति महारानी से रूस रही है।

ऋतुराज—आपकी सहेली प्रकृति से सानंद रूसी रहे किन्तु मुझ अभागे ने उसका क्या अपराध किया है ? अच्छा यह बतलाओ! मेरी प्यारी प्रकृति महारानी से क्यों रूस रही है ? महारानी से और अनबन कर बैठना, नहीं यह अच्छा नहीं किया। ख़ैर तुम मेरे प्रश्न का उत्तर दो ?

समीर—कारण केवल यही है कि हम सब के प्रति प्रकृति का वर्ताव एक सा नहीं होता! कुछ काल से वे वर्णविचार करने लगी हैं।

ऋतुराज—तुम प्रकृति को, पक्षपात के निन्दित दोष से क्यों दूषित करती हो ? यह काम राजा, रानी के करने योग्य नहीं।

कादम्बिनी—[समीर का संकेत पा] सुनिये महोदय! प्रकृति की सहचरी ग्रीष्म केवल चार मास तक भूमंडल का पहरा दिया करती है, शिशिर भी केवल चार मास तक काम करती है किन्तु हमारी सखी से अधिक काम लिया जाता है।

ऋतुराज—कादम्बिनी यह कैसे? मेरी प्यारी भी केवल चार मास तक प्रकृति की सेवा में रहा करती है, अधिक काम लेना, इस दशा में तुम कैसे कहती हो?

कादम्बिनी—चार मास के अतिरिक्त कुछ काल से प्रकृति हमारी सखी से, शिशिर और ग्रीष्म ऋतु में भी काम लेने लगी है जो निस्सन्देह अनुचित है।

ऋतुराज—अच्छा अब समझा, क्या तुम्हारे कथन का यह तात्पर्य है कि ग्रीष्म और शिशिर ऋतु में भी, मेरी प्यारी वर्षा को, प्रकृति, पृथ्वी की तृषा शान्त करने की आज्ञा सुनाने लगी हैं?

समीर-अवश्य महाराज! ठीक ऐसा ही है।

ऋतुराज—इसको अवश्य अन्याय करना कह सकते हैं। प्रकृति ऐसा क्यों करने लगी है क्या इसका कारण तुम कुछ कह सकती हो?

समीर—हां! केवल पृथ्वीवासियों को प्रसन्न करने की इच्छा से जिसका परिणाम यह हुआ है कि प्रकृति की अनन्य कृपा ने उनको पूर्णतः आलसी और असावधान बना रक्खा है। वर्षा के बरसाये जल को एकत्रित न कर वे जिस समय उनको जल की आवश्यकता पड़ती है, प्रकृति को स्तुति सुनाया करते हैं। स्तुति से प्रसन्न हो प्रकृति वर्षा को जल बरसाने का निदेश सुनाती है चाहे उसका पहरा हो अथवा नहीं हमारी स्वामिभक्ता सहेली ने बिना बड़बड़ाये बहुत काल तक प्रकृति की आज्ञा का पालन किया किन्तु अब उसको यह असह्य होगया है। भविष्य में यह करने को वह प्रस्तुत नहीं जिसका परिणाम यह होगा कि भारतवासी न नहीं वरन् प्रत्येक जाति जो [illegible] आदि का प्रबन्ध न कर शिशिर और ग्रीष्म में हमारी सखी के दर्शन करने की आशा करेगी वह निरंतर दुर्भिक्ष से सताई जावेगी।

ऋतुराज—वर्षा के प्रति प्रकृति का व्यवहार अवश्य अनुचित है और इस कारण वर्षा का हड़ताल कर बैठना उचित है किन्तु मैं दुबारा तुम से पूछता हूं कि मैंने तुम्हारी सखी का क्या बिगाड़ा है जिसके कारण उन्होंने अद्यावधि अपना सांवला सलोना मुखारविन्द न दिखाकर मुझे इस प्रकार जर्जर, मलीन, और उद्विग्न कर रक्खा है।

समीर—महानुभाव! प्रकृति हम सभों की महारानी हैं। आप प्रकृति के सेनापति हैं। प्रकृति की सेना सन्तान का सर्वथा नाश कर, प्रकृति को न्याय के पंथ पर लाने का विचार हमारी सहेली ने परिणत किया है। इस विचार को वह तभी कार्य्य में परिणत कर सकती हैं, जब वह आप से दूर रहें। बस, यही उनके न आने का मूल कारण है। वर्षा की अनुपस्थिति के कारण प्रकृति की सन्तान जहां तहां क्लेश पाने लगी है। यदि आपके हार्दिक प्रेम का विचार कर वे आपकी सेवा में उपस्थित हों, तो उनके दृढ़ संकल्प का सर्वनाश होजायगा क्योंकि पहले की नाईं आपकी, बेला, गुलाब, रसाल, जम्बु आदि की सेना जो जलाभाव के कारण शुष्क होकर जीर्ण होरही है, पुनर्जीवित या हरी भरी हो जायगी। अन्न, जल बिन दुखी, मनुष्य जाति, प्रकृति की सेवा में डेप्यूटेशन लेकर जाने लगी है, यदि प्रकृति, राजा, रानी के धर्म्म, कर्त्तव्य से बोधित है, यदि वह मनुष्यजाति, चर अचर को अपनी सन्तान समझती है, यदि वह उनके दुःख सुख में भागी होने का घमंड करती है, यदि वह निष्कपट भाव से उनकी उन्नति चाहती है तो वह उनके दुःख की कहानी को सुनेगी, सुनकर उनके दुःखों को दूर करने का उपाय करेगी, पावस कुमारी को [illegible] करने की [illegible] करेगी और इस

तरह पावस कुमारी की विजय होगी। इस समय हमारी सखी अति कठिन दुचितई में है। एक ओर से आपका प्रेम और दूसरी ओर से मान, कान की रक्षा उसे झकझोर रही है। महोदय! धर्म, मान की रक्षा के उद्योग में जन, धाम तक का परित्याग उचित और प्रशंसनीय कहा गया है।

ऋतुराज—तुम भी अपनी सहेली के प्रस्ताव का अनुमोदन करोगी? जब तुम्हीं को जो मेरे सामने उपस्थित हो, मेरी दुर्दशा, शोक, संताप पर दया नहीं आती तो वर्षा ने, जो जानें कहां और मुझसे कितने योजन की दूरी पर है बहुत संभव है मुझे तिरस्कारपूर्वक निज मस्तिष्क से निकाल बाहर किया हो। तो क्या सचमुच इस विषम वियोग की कोई भी औषधि नहीं है?

समीर—(मुस्करा कर) महानुभाव! इसे आप विषम वियोग क्यों कहते हैं। वियोग कैसा? जब आपकी मनभावनी ग्रीष्म और शिशिर, परमात्मन् उन्हें युग २ जियाये! सर्वदा आप के चरण कमलों पर लोटने को प्रस्तुत रहा करती है!

नियम के विरुद्ध एक से अधिक रमणी के स्वामी बनने के लाभ और गुण ऐसेही अवसरों पर जाने जाते हैं।

कादम्बिनी—सखी! इसमें क्या सन्देह है?

ऋतुराज—! निर्दयी! समीर! इन कटु-वचनों से तूने किसी व्यभिचारी जीव का संबोधन किया होता! तू निस्सन्देह सच्चे प्रेम की परिभाषा से बोधित नहीं। सच्चे प्रेम का स्थान यदि किसी कारण से खाली होजाय तो किसी अन्य प्रेम से वह कदापि नहीं भरा जा सकता। दूसरे शिशिर और ग्रीष्म में मेरे विचलित चित्त को आनन्दित करने की शक्ति नहीं। इनका सौन्दर्य कृत्रिम है, स्वाभाविक नहीं, अथवा उनमें सौन्दर्य है ही नहीं। केवल सौन्दर्य की एक झलक के कारण, जो पावस इनके कुरूप रूप पर लेपकर, इन्हें सुन्दर बना देती है, ये सुन्दर होने का घमंड कर सकती हैं। यह विचित्र लेप, सुन्दरतावर्द्धक, वर्षा-जनित प्रकृति की सुन्दर और मनोहारिणी सेना है। बिना इसके ग्रीष्म और शिशिर की भगिनी सुन्दरता जाती रहती है और उनके स्वाभाविक गुण अर्थात् "जलाना" और "जमाना" भीषण रूप धारण कर चारों ओर धूम मचाने लगते हैं। वर्षा के वियोगजनित मेरे इस जर्जर शरीर को शिशिर और ग्रीष्म अपने हिम और अग्नि रूप हाथों की थपकियां दे देकर, सिवाय इसके कि उसे सर्वदा के लिए सुला दें और कुछ नहीं कर सकतीं। क्या तू नहीं जानती कि शिशिर और ग्रीष्म इस समय बिना श्रृङ्गार और आभूषण के मुझे कैसी भयङ्कर दिखाई पड़ती हैं। उनके भवन बेली, गुलाब के इत्र से सिंचित नहीं। कोटिशः प्रकार की नवल बेलें उनके भवन की दीवारों पर केल करतीं मुझे नहीं दिखाई देतीं, उनके कण्ठ में विचित्र मालिन वर्षा का गूथा हुआ चम्पा चमेली, मोतिया का हार मुझे दिखाई नहीं देता, उनकी शैय्या से कोमल कमल न जाने कहा अदृश्य होगये हैं, इस सामग्रीजनित आनन्द को दुगुना चौगुना करनेवाली, मधुर कोकिला, सारिका की सुरीली रागिनियों ने भी मेरे कान में प्रवेश करना बन्द करदिया है। तेरे शीतल मन्द सुगन्धमय झकोरे अपने स्थान पर मलीन, मैले, कुचैले, अन्धड़ और आंधी को नियुक्त कर न जाने कहां उनके द्वार को छोड़ टरक गये हैं। ऐसी दशा में ग्रीष्म और शिशिर निज विचलित सौन्दर्य से मेरे दुःखित चित्त को क्योंकर प्रसन्न कर, शांति पहुंचा सकती हैं? आज से प्रकृति और मुझ से कोई सरोकार नहीं। वह मेरी स्वामिनी नहीं, मैं उसका सेवक नहीं। मेरी प्राणप्यारी से मेरा वियोग कराने वाली एक निर्दया प्रकृतिही है। मैंने यथेष्ट सुख

का अनुभव करलिया है। अब शेष जीवन को तपोवन ही में व्यतीत करूंगा।

समीर—महोदय! धैर्य धरिये! आपत्ति काल में स्वामी का साथ देना सत्पुरुषों का काम है। क्या हुआ वर्षा आपकी पत्नी है। धर्म कहता है कि आप अपनी महारानी के मान पर ध्यान दें, उसकी रक्षा करें और अपनी प्राणप्यारी से कुछ सरोकार न रख उसे नीतिविरोधिनी समझकर उचित दंड से उसका सत्कार करें। मुझे यहां आए बहुत देर हुई, वर्षा की खोज में बाहर जाने की आज्ञा दीजिये, जहाँ तक होसकेगा शीघ्रही आप से उसको मिलाने का उद्योग करूंगी।

ऋतुराज—तुम्हारे इस उपकार का सर्वदा ऋणी रहूंगा। समीर और कादम्बिनी, यदि लौटने में तुम लोगों ने विलम्ब किया तो मुझे इस शरीर में तुम कदापि न पावोगी। मैं भी किसी जीवहीन भूमिभाग की शरण लेता हूं। वहीं जाकर मैं भी अपने आंसू बहाऊंगा।

दृश्य २।

[रङ्गभूमि पर एक प्राणी गाता दिखाई देता है]

वल ए, वी, जनाब, बने फिरते नवाब,
घर घर लाते दबाब, पछताने से क्या?
नहिं उठती कुदाल, नहिं पास नून दाल,
भूख करती बेहाल, लड़खाने से क्या?
आया ज़ालिम दुर्काल, मीन जीवन का जाल,
भूखा रोता है लाल, फुसलाने से क्या?
"पैसे छः में क्या हो" दीन उठते रो रो,
गोरे कहते "हलो" बहकाने से क्या?
पानी पैसे की दाल, तीन दो का हरताल,
हिन्द तेरा ये हाल! धिक्काने से क्या?

अब पछताने से भला क्या हाथ लग सकता है, सिवाय इसके कि मानसिक व्यथा भी इधर उधर से चित्त को पीड़ित करने के लिए आ उपस्थित हो। हाय! मैंने पूज्यपाद पिता जी की आज्ञा क्यों न मानी, अनेक लालच व दिलासा द्वारा उन्होंने मुझे पढ़ा लिखा कर मनुष्य बना देने का निरन्तर प्रयत्न किया किन्तु मैं अभागा दीर्घसूत्री जैसा का तैसा कुपढ़ ही बना रहा। अकेला होता तो भी किसी प्रकार की चिन्ता न थी। हा मर्य्यादा तू निस्सन्देह अभागिन है! ओः, क्या तुझे भूखों मारने के हेतु ही मुझ निर्दयी ने तेरा पाणिग्रहण किया था! शोक! अनजान विनोद रोते २ सोगया है। जिस समय वह सोकर उठेगा और रोटी २ की धुन लगायेगा उसके बेधड़क रोने को मैं क्योंकर सहूंगा। पढ़ाना लिखाना रहा दूर! मैं उसका उचित पालन पोषण करने में भी असमर्थ हूं। निस्सन्देह वह भी अभागा है जिसे जन्म धारण करने के लिए मेरे पुनीत गृह को छोड़ और कहीं स्थान ही न मिला। अब क्या करूं? क्या निस्सन्देह एक पैसे की अफ़ीम मुझे इस असह्य दुःख से छुटकारा दिला सकती है। नहीं! नहीं यह विचारमात्र निन्दित और पापमय है। फिर क्या करूं? अच्छे दिन देखकर भीरु चित्त दुर्दिन के दर्शन से डरता है। क्या हुआ एम० ए० बी० ए० नहीं! सर्वगुणसम्पन्न पिता जी की छोड़ी हुई अमित लक्ष्मी ने मुझे उत्तमोत्तम आनन्द का अनुभव करा दिया है। परिश्रम से उपार्जन किया हुआ धन, हा! पिता जी क्या इसीलिए छोड़ गये थे कि मैं उसे जुए, व्यभिचार में स्वप्न की सम्पत्ति की नाईं उड़ा दूं। किसी सन्निकट काल में निशिवासर नवल रमणियों का आलिङ्गन करनेवाले हाथ नीच काम करने से हिचकिचाते हैं। किन्तु नीच काम मात्र ही जीवन का सहारा रह गया है। किसी ने कहा है कि "अपमानित जीवन से मृत्यु कहीं उत्तम है।" मृत्यु ही का सहारा क्यों न लूं? किसकी मर्यादा और किसका विनोद? मर्यादा की मर्यादा और विनोद के लालन, पालन का भार अब परमात्मा हा पर छोड़ता हूं।

[फाँसी लगाने का उद्योग करता है।]

[कल कत्त का शब्द सुन]

हैं! हैं! यह कातरोक्ति किसकी है? इसका क्या अभिप्राय है, यह शोक संकुलित वाणी किस आगामी व्यथा की सूचक है? हा! स्नेह तेरा बुरा हो। क्यों? तू मुझे मरने न देगा। बेटा विनोद! विनोद! मर्यादा! मर्यादा! तू चुप क्यों है?

[मर्यादा प्रवेश करती है]

मर्यादा—[गले से रस्सी निकाल] आर्यपुत्र आपने क्या स्वांग बना रक्खा है? प्रियतम! आप आत्मघात करने पर सहसा क्यों उतारू होगये। संयोग! मैं तेरे उपकार के बन्धन से कदापि छुटकारा नहीं पा सकी। गये धन का आप इतना अधिक शोक क्यों करते हैं? इसे सामुद्रिक ज्वारभाटा के समान समझिये, जो प्रति पल समुद्र तट से टक्कर मारा करता है और लौट जाया करता है। किसी हानि अथवा शोक संताप का निरन्तर गुनन करना अति हानिकारक है! नश्वर वैभव का आप इतना सोच क्यों करते हैं।

कलंक—प्रिये! मुझ दुःखी पर इस प्रकार निठुर न हो, मुझे व्याख्यान सुनने समझने का अवकाश नहीं, बस कहता हूं हटजाओ और मुझे मर जाने दो। सौभाग्यवती! निज स्वभाव के विरुद्ध मेरे काम में व्यर्थ बाधा डालकर तू मुझे क्यों कष्ट पहुंचा रही है। जा अब तेरी और तेरे विनोद की परमात्मा रक्षा करेगा।

मर्यादा—आर्यपुत्र! परमात्मा ने मेरी और विनोद की रक्षा के हेतु आपही को हमारा रक्षक नियुक्त किया है। क्या आपको तोतली बात करनेवाले विनोद की किंचित् सुधि नहीं, हमारी ओर से संसारी सुख के सर्वथा खिंचाव से मुझे किंचित क्लेश नहीं, परमात्मा! केवल हमारे विनोद को चिरंजीवी करे!

आर्य! बालक की भूख भूख की ध्वनि सदन को प्रतिध्वनित कर रही है। शीघ्र ही चल कर उसको भूख का निवारण करिये।

कलंक—भूख निवारण करने के लिए मेरे पास क्या रक्खा है? [अफ़ीम की गोली दिखलाकर] बस इसके अतिरिक्त मेरे पास अन्य पदार्थ न समझो। इसी का पान कर हम में से कोई एक ही सर्वदा के लिए खाने, पीने की व्यथा से मुक्ति प्राप्त कर सकता है।

[बालक का रुदन सुन दोनों बाहर जाते हैं और पर्दा गिरता है।]

दृश्य ३।

[दो प्राणी वार्त्ता करते दिखाई देते हैं]

एक—मित्र कदम्ब! किसी काल में समयानुकूल निज मंगलकारी दर्शन से हमारी अनेक कामनाओं को पूरा करनेवाली प्रकृति महारानी की वर्षा नाम्नी सहचरी आजकल न जाने हम से क्यों रूस रही है?

रसाल—कदम्बे! रूस रही है नहीं किन्तु 'हड़ताल कर बैठी है' कहिये। आधुनिक समीपवर्ती घटनाओं के अनुसार तो हड़ताल का कहना ही ठीक जचता है।

कदम्ब—यह तो आपने अच्छा सुनाया! क्या आप निजवर्णित इस हड़ताल के विषय में और भी कुछ जानते हैं? भाई हड़ताल करने का कोई न कोई कारण आवश्य होगा यदि नहीं तो मेरा ही कहना ठीक जान पड़ता है। सम्भव है पावसकुमारी, सवतियाडाह के कारण ऋतुराज महाराज से रूस रही हो।

रसाल—हड़ताल का आपको क्या कारण बतलाऊँ। संसारी मनुष्यों की केवल देखादेखी या अनुकरण ही इसका कारण हो सकता है। वर्षा बिना समझे बूझे ऐसा काम कर बैठी है। रानी राजा से और हड़ताल! प्रकृति महारानी को अभी हमारे आपके इस कल्पित हड़ताल का कुछ भी ज्ञान नहीं हुआ। जिस समय वे इस दुर्घटना से परिचित होंगी उसी क्षण वे वर्षा को कान पकड़कर अपने दर्बार से डिसमिस कर देंगी। मित्र! ऐसा काम तो कोई मूर्ख भी

न करेगा। ज्ञात होता है यदि बड़ों में बुद्धि और विद्वत्ता अधिक होती है तो मूर्खता भी उसी हिसाब से होती है।

कदम्ब—इसमें क्या संदेह है? यह तो स्वयं सिद्ध है अतएव इसको सिद्ध करने को आपको मुझ से हठ न करना चाहिये। मित्र! हमारी वार्ता का विषय कल्पित है।

रसाल—इसे आप कल्पित क्यों कहते हैं? इसकी सत्यता के मैं सैकड़ों जीवित प्रमाण दे सकता हूं, दूसरे कल्पना मात्र ही संसार का आधार है। गणित शास्त्र निरी कल्पनाओं पर निर्धारित है। प्रथम कल्पना की जाती है जिसे बुद्धि के विचित्र 'क्यों' और 'इस लिए' शंका-रहित सत्यताओं में परिणत कर दिया करते हैं। हमारा विषय भी उसी ढंग का है। समीपवर्ती घटनाओं से हम ने एक कल्पना की है और अब उसे बैठकर हम एक सच्चे सिद्धान्त में ढालेंगे।

कदम्ब—मैं आपकी "देखादेखी" वाली बात नहीं समझा।

रसाल—[हँस कर] यह समझाने के लिए मैं समझता हूं मुझे श्यामपटा पर जाने की आवश्यकता नहीं! ऐतिहासिक प्रमाण आपकी शंका का समाधान कर देगा।

मित्र! पश्चिमीय देशों में हमारे देश की अपेक्षा अधिकतर भ्रमण और पर्यटन करने के कारण वर्षा ने वहां के निवासियों के दो चार गुण ग्रहण कर लिए हैं। लंडन मैनचेस्टर आदि के निरंतर हड़ताल मचानेवाले निवासियों ने ज्ञात होता है हमारी वर्षा को भी वही पाठ पढ़ा दिया है।

कदम्ब—वाह रे आपके गुण! मित्र! जिसे आप गुण की पदवी देते हैं उसे मैं निकृष्ट से निकृष्ट अवगुण से भी बुरी चीज़ समझता हूं। आपकी वार्त्ता से यदि उल्लास विल्लास का अवसर नहीं तो भी उल्लासित हुये बिना नहीं रहा जाता।

रसाल—मित्र! हमको इस हड़ताल वड़ताल से क्या सम्बन्ध? हमारा तो सिद्धान्त ही दूसरा है। "कोई नृप होय हमें का हानी"।

कदम्ब—अजी! हानि क्यों नहीं! वर्षा के हड़ताल का यही तात्पर्य है कि अब वर्षा नहीं होगी जिसका शोकान्त परिणाम यह होगा कि अल्पकाल में हमारी हरी भरी उपयोगी सन्तान अकालमृत्यु को प्राप्त होगी। इससे अधिक हानिकारक और हृदयविदारक और क्या हो सकता है? आपको इस समय निज प्रेमपात्री लताओं से सहानुभूति प्रकट करनी चाहिये।

रसाल—सहानुभूति प्रकट करने का मैं कोई कारण नहीं देखता! वर्षा के दिये हुए क्षणिक यौवन और सौन्दर्य का घमंड करनेवाली और हम से सहस्रों कोस की दूरी पर, उद्यानवाटिकादि में विहार करनेवाली लता अवलि, यही दंड पाने योग्य है। दूसरे केवल भरोसे का घमंड करनेवालों की अंत में यही दशा होती है। घमंड करनेवाले चर हों अथवा अचर हम बिना वर्षा के सहस्रों वर्ष यौंहीं घड़ियों में काट सकते हैं। वाह क्या आनन्दमय समय है। मालती, केतिकी, चमेली के साथ सदा विहार करनेवाले रम्भा महाशय निज स्वाभाविक लक्षण का परित्याग कर वास्तव में रम्भा इव उन्हीं रमणियों की नाईं सुकुमार शरीरवाले बन बैठे हैं। हड़ताल हुई नहीं कि देखो! प्रकृति की सेवा में इन मानियों का डेप्यूटेशन जाना आरम्भ होगया है।

कदम्ब—मित्र! मुझे तो प्रकृति महारानी की हरीभरी नवीन फूली फली संत्तान को इस चढ़ती हुई अवस्था में वैरागियों कैसे विचलित वस्त्र धारण करते देख अति शोक होता है। ये बेले की कलियां इसी रूप में शुष्क होकर शीघ्र ही भूमिशायी होंगी। इन रसाल के छोटे फलों को प्रज्वलित निदाघ, कुछ काल में तमाचे मारकर नीचे गिराना ही चाहती है। भाई! इनका दुःख कहाँ तक रोऊं? अ

कृपाकर इस दुःखदायी हड़ताल का कारण सुनाइये। क्या हड़ताल की धमकी द्वारा वर्षा प्रकृति से अपना वेतन बढ़वाना चाहती है ?

रसाल—यह आपने बेढब सुनाई ? आकाश मंडल पर भ्रमण करनेवाली वर्षा का आप साधारण भूमिवासी हड़तालियों से क्यों मिलान करते हैं ? बड़े आदमी पैसे दो पैसे बढ़वाने की इच्छा से नहीं किन्तु मानदान की रक्षा और न्याय के संचार के लिए हड़ताल किया करते हैं।

कदम्ब—मित्र ! यदि ऐसा ही है तो बतलाइये सर्वहितैषी पावस के साथ प्रकृति ने क्या अन्याय किया है ? जिसके कारण आज सम्पूर्ण वन, उपवन, जल, थल, नभवासी चर और अचर, विशरण मुख दृष्टिगोचर होते हैं।

रसाल—जहां तक मैंने इसके विषय में सुना है वह यह है कि प्रकृति का व्यवहार सर्वकर्मचारियों के प्रति एकसा नहीं होता।

कदम्ब—मित्र ! केवल इसी कारण से कि पावसकुमारी रंग की श्यामा है ?

रसाल—हे विधाता ! इन दुष्टों के हाथ से तू हमारी रक्षा कर। भाई कदम्ब ! अब आप से विदा चाहता हूं यदि जीते रहे तो फिर कभी एक दूसरे से मिलेंगे।

दोनों जाते हैं।

दृश्य ४।

[दो मनुष्य दिखाई देते हैं]

एक प्राणी—वाह भाई रामसिंह, आज आप से क्या भेंट हुई है ? भाई साहब ! आजकल आपने अपने को किस कार्य में उलझा रक्खा है जो अब आपको मित्रों से मिलने मिलाने तक का अवकाश नहीं मिलता ? खेती वेती तो कुछ होगी हो नहीं, फिर बात क्या है ?

रामसिंह—जै राम जी की ! रत्नपालसिंह जी ! कहिये आप प्रसन्न तो हैं ? आपने जो काम में उलझा रखने के विषय में पूछा, उसका आपको क्या उत्तर दूं ? आजकल करने कराने को कोई काम ही नहीं। खेती न है और न कभी उसके होने की आशा है। भाई [हँसकर] न जाने क्यों प्रकृति के कर्मचारियों ने अपना 'टाइमटेबल' बदल दिया है। जिस समय हम पानी चाहते हैं, उस समय तो पानी ही नहीं बरसता और जब कृषि की रक्षा हेतु इन्द्रदेव से कर जोड़कर प्रार्थना करते हैं कि "प्रभो मेघमाला को उनके काम से छुट्टी दिये रहिये"–उसी समय मेघ मूसलाधार से आप हमारे धन को मिट्टी में मिला दिया करते हैं। मैंने सुना है हमारी सरकार ने दीनजन की जीविका स्तंभनार्थ स्थान २ पर बड़े २ काम खोल दिये हैं।

रत्नपाल—मैंने भी पटवारी से यह समाचार सुना है। मित्र ! 'टाइमटेबिल' का क्या अर्थ है ? यह विचित्र शब्द आपने किससे सीखा ?

रामसिंह—शब्दार्थ तो भाई मैं जानता नहीं ? सीखने के विषय में जो आपने प्रश्न किया उसका उत्तर यही है कि मैंने प्रायः शशि और उसके साथियों को यह शब्द बोलते सुना है।

रत्नपाल—मित्र ! लगान आपका वसूल होगया ?

रामसिंह—क्या कहूं मित्र ! इस वर्ष लगान के रूप में एक फूटी कौड़ी तक देखने में नहीं आई, सरकार ने कहीं कहीं कुछ लगान छोड़ दिया है। हम लोगों ने प्रयत्न तो अनेक किये कि लगान बिल्कुल माफ हो जाय–अर्थात् प्रान्त के हाकिमों को जहाँ कहीं कुछ नहीं हुआ था सब दिखलाया किन्तु इस सब का परिणाम कुछ भी न हुआ।

रत्नपाल—मैंने इसके अतिरिक्त एक और हृदयवेधक समाचार सुना है वह यह है कि सरकार का प्रस्ताव हमारे सरोवरों का जीर्णो-

द्धार कराने का है। जिस दिन ऐसा हुआ उस दिन हमारी आय पर वज्रपात होगा। इस दशा में वे सरकारी हो जावेंगे और हमारा लगान मारा पड़ेगा क्योंकि फिर उनमें खेती तो होने से रहो?

रामसिंह—इसमें क्या संदेह है? किन्तु ऐसा होने ही क्यों पावेगा? सरकार के करने को अनेक काम बतला दिये जावेंगे। ऐसा करने से सर्वसाधारण को नहाने धोने का कष्ट अवश्य होगा पर हम किस किस सुख सुपास का विचार करें। संसार के ढंग ही विचित्र हैं। अपने अर्थ को प्राप्त करने के उद्योग में सैकड़ों के अर्थ का अनर्थ करना पड़ता है।

रत्नपाल—दुर्भिक्षजनित कष्ट तो जीवधारियों को अनेक हैं तो भी समय समय पर दुर्भिक्ष का आगमन अति आवश्यक है। नीच व्यवसायियों के घर में जो चार दिन के लिए खाने को अन्न होगया तो सीधे बात करना भूल जाते हैं। काम के लिए दिन में सौ २ बार बुलावा भेजते हैं तौ भी नहीं आते, अब जब भूखों मरेंगे तब उनको सात, पाँच का ज्ञान होगा। मैंने सुना है कि प्रतिदिन का वेतन केवल छः पैसे नियत किये गये हैं।

रामसिंह—छः पैसे में किन्तु हो क्या सकता है?

रत्नपालसिंह—अजी होना क्या है? सरकार के नहर, झील बँध जावेंगे। मज़दूरों के जीवन की किसी को चिन्ता नहीं! नये २ हाकिम आते हैं, कम वेतन से सरकार का काम करा कर, रुपये की बचत से सरकार की ख़ैरख्वाही दिखाना चाहते हैं। उनको बस किसी न किसी प्रकार अच्छे काम का सार्टीफिकेट मिलना चाहिये। मित्र! वर्षा अब उचितकाल में अपना दर्शन देती नहीं उसकी आशा पर खेती करना दुर्भिक्ष को केवल न्योत बुलाना है। मेरा तो विचार इस अवसर पर दो एक बँधी बनवाने का है।

रामसिंह— मैं भी ऐसाही करूंगा। ए, बी, सी, पढ़ने की अवस्था तो अब नहीं रही नहीं तो कैसा ताल और कैसी बंधी? चार घंटे दफ्तर में जाकर कुर्सी तोड़ते और कम से कम १० रुपया माहवार इधर उधर से लेही भागते। मित्र! क्या हुआ गुरू हैं तौ भी विना कहे रहा नहीं जाता। "विरजू तेरा बुरा हो" दुष्ट ने प्रारम्भही में मार पीट की भरमार से, पाठशाला में मेरा पैर ही न जमने दिया। मित्र! अब भी कुछ नहीं बिगड़ा। कहावत है खेलने के लिए लड़कपन, धन संचय करने को युवापन, हरिभजन को वृद्धापन, और अध्ययन के लिए सारेपन हैं। जो कुछ भी हो, भाई मैंने तो दी इङ्गलिश टीचर को चिट्ठी डाल दी है। यह पुस्तक छः महीने में अङ्गरेज़ी बोलना लिखना, पढ़ना अच्छी प्रकार सिखला देगी। घर बैठे पाठशाला में नहीं, आपही आप और बिना किसी ट्यूटर अध्यापक की सहायता के। पुस्तक की प्रशंसा पर पुस्तक लिखी जा सकती है।

रत्नपाल—[हँसकर] वर्षों में कभी अ श्रेणी से व में पहुंचे नहीं! पुस्तक अवश्य आपको यवन भाषा का आचार्य बना देगी और आप आचार्य भी बन जावेंगे। आपके "टाइम टेबल" का तात्पर्य मुझपर अब प्रगट हुआ। जान पड़ता है आपने अध्ययन भी प्रारम्भ करदिया है। जभी से आपके दर्शन दुर्लभ होते जाते हैं। आप सहसा झूठों की वाक्‌रचना को अक्षराक्ष समझ कर उस पर क्यों विश्वास लाने लगते हैं? मुझे आपके कार्ड का अति सोच है। अब भी कहता हूं आप यदि बुद्धिमान हैं तो पारसल को बैरंग लौटा दें।

रामसिंह—ऐसा करने से मेरे ऊपर अभियोग चलाया जा सकता है।

रत्नपाल—अकाल का समय है। महाशय आप कश बातें करते हैं। दूसरे अभियोग से वह डरे जो चोरी डकैती करता हो अथवा

जो चोर, जुआरी का साथ रखता हो ! अपने अङ्गरेज़ी भाषा के अध्ययन को ताख में रख दीजिये केवल शशि की शिक्षा में विशेष ध्यान रखिये ताकि युवावस्था में उसको भी आपकी नाईं पछताना न पड़े । मुझे तो कहने में शर्म सी आती है । विद्या की मां ने भी मेरी इच्छा के प्रतिकूल उसका नाम मिशन पाठशाला में लिखा दिया है । ख़ैर इसे जाने दीजिये । मान लिया जैसे तैसे कभी आप मिडिल तक पहुंच भी जाते तो क्या ? बीस या चालीस रुपये के वेतन की जगह भी पा जाते तो क्या ? स्वतन्त्रतामय जन्मभूमि का निवास गो साधारण रहन का हो उस ऊपरी भड़क दमक वाली नौकरी से जो वास्तव में सेवकत्व ही है, कहीं उच्चतर है । जो २॥) रुपया पाता है वह सेवक और जो ढाई सौ पाता है वह सेवक । अङ्गरेज़ी शिक्षा प्राप्त मनुष्यों में कठिनता से सौ में एक भी आप ऐसा न पावेंगे जो सनातनी आचार विचार का संचार करता कराता हो । धर्म्म संबन्धी पुस्तकों के ग्रन्थ उसके कान को ऐसे सुनाई पड़न लगते हैं जैसी कि "सहस्र रजनी चरित्र" की निराधार कहानियां । भाई ! प्रत्येक चमकीली दमकीली वस्तु को सहसा सुवर्ण की पदवी न दे डालना चाहिये । काले, पीले, सूट बूट और सौ सवासौ के मासिक वेतन की ओट में न जाने कितने और कैसे २ भयंकर पदार्थ रक्खे हैं । इस सब आनन्द का अनुभव अब शशि ही को करने दो । "सूट बूट" कहा नहीं कि सूट, बूट वाले आही गये ।

[दो युवक प्रवेश करते हैं]

रामसिंह—मित्र । आप इन्हें जानते हैं ? आइये छिपकर इनकी वार्त्ता को सुनें । [दोनों छिप जाते हैं] युवक वार्ता करते दिखाई देते हैं ।

एक—निर्मल क्या हमारा भारतवर्ष वही भारतवर्ष नहीं जो किसी काल में दुर्भिक्ष से इस भांति अपरिचित था जैसे स्वर्ग से मरुभूमि ? क्या सुधा इव सलिल धारा बहानेवाली हिमालय हमारे देश की उत्तरी असीम सीमा इस पुनीति भूमि से उठकर किसी अन्य जगह जा टिका है । शोक ! वही भारत है, वही हिमालय है, वही पावन मंदाकिनी और जाह्नवी सरिताएं हैं यह सब होते हुए भी हम भारतवासियों को नित नूतन आपत्ति से ग्रसित क्यों देखते हैं ? इसका कर्त्ता धर्ता अवश्य समय का दुखदाई उलट पलट है । जभी तो है आर्यावर्त की संतान आज भूखों मर रही है ।

दूसरा—विमल ! काल इस विषय में कदापि अपराधी नहीं ठहराया जा सकता, दोषी वास्तव में भारत की व्यसन विलासप्रिय, दीर्घसूत्री और प्रमादी संतान है ।

निर्मल—मित्र ! अपराध केवल प्रकृति और प्रकृति के कर्मचारियों का है जो कुछ काल से इतराने लगे हैं और अपना २ काम ठीक समय और उचित रीति से नहीं करते ।

विमल—आपका कथन वर्षादि को भारत के अधोगति का मूल कारण बतलाता है किन्तु वास्तव में ऐसा कदापि नहीं है । क्या आप नहीं जानते अमरीका कल क्या था और आज क्या बन बैठा है ? वहां के निवासी कृषि के लिए वर्षा के भरोसे पर इस भाँति निर्भर नहीं रहते यही उनकी उन्नति के मूल मंत्रों में से एक है ।

निर्मल—मित्र ! क्या रसातलवासियों ने बिना जलबल के ही अन्न उपजाने के किसी यंत्र का आविष्कार कर लिया है ?

विमल—अवश्य ! इसमें क्या संदेह है । साल की प्रत्येक फसल के लिए वे इकट्ठे होकर मेघ महाराज से पानी की झड़ी निमित्त पूजा पाठ लेकर नहीं बैठ जाते किन्तु वे वर्षाकाल के एकत्रित किये जल से ही समय पड़ने पर काम लिया करते हैं। दूसरे वे अपनी सम्पूर्ण शक्तियाँ कृषि विद्या को ही अर्पण नहीं कर देते किन्तु

उन्हें भिन्न २ व्यापार में लगाया करते हैं। जब कि भारतवासी अपने सारे बल को इसी की ओर झुकाते हैं। भारत में जिसे देखो उसी ने हलवंखखल बाँध रक्खा है। जिस घर में एक प्राणी है. वह भी कृषि करता है और जिसमें दस हैं दस के दस उसी धंधे को स्वीकार कर लेते हैं और वह भी इन्द्रदेव के भरोसे पर। जभी तो है वे नाना प्रकार के दुर्कालजनित क्लेशों से क्लेशित रहने लगे हैं।

रत्नपाल—देखा! यह सिड़ी बोलनेवाला हमारी सनातनी प्रथा का किस प्रकार अपमान कर रहा है, जी में यही आता है कि बकबक करनेवाले की रसना को पकड़ कर निकाल ही लूं।

रामसिंह—मित्र! ऐसे विचार को कदापि मस्तिष्क में स्थान न दो। क्रोध के कारण सम्भव है वह हमारी कृषि विधि की निन्दा कर रहा हो।

निर्मल—मित्र! अमेरिकावासियों की नाइ, सिंचाई और कल, यंत्र द्वारा खेती करना प्रारंभ में इतना महँगा है कि हमारे निर्धन देशभाई उससे लाभ नहीं उठा सकते। नहर निकालने में लाखों करोड़ों का व्यय होगा जिनका व्यय वे बिचारे स्वप्न में भी नहीं कर सकते।

विमल—किन्तु व्याह के अवसर पर नाच रंग में, आतशबाज़ी में स्वप्न में पाई सम्पत्ति की नाईं अवश्य प्रतिवर्ष जितना चाहें उतना धन व्यय कर धूल में मिला सकते हैं।

निर्मल—सुधार का क्या उपाय है?

विमल—श्रीमान् गोखले महाराज को परमात्मा युगयुग जिआये! जिन्होंने हिन्द के सुधार का मूल मंत्र सब के कान में फूंक दिया है। यह मंत्र सर्वसाधारण के लिए शिक्षा प्राप्त करना है। देश का उद्धार मूर्ख कुपढ़ जाति से कदापि नहीं हो सकता। जब तक उनके निशाइव अज्ञान का नाश नहीं होता तबतक वे अपना भला बुरा कदापि नहीं सोच व समझ सकते। विद्यारूपी प्रचंड मारतंड की किरणें ही उनको अज्ञानता के घोर अंधकार से छुटकारा दिला सकती हैं। सायंकाल होनेवाली है, अंधेरा चारो ओर फैलने लगा है, अब तो कैम्प को लौटना चाहिये।

[दोनों जाते हैं]

रामसिंह—मुझे बाबू लोगों के विचार अति अच्छे लगे।

रत्नपाल—अच्छे! क्या उनको बेपते की गप्पें मारने का अच्छा अभ्यास है। भला बिना वर्षा के भी संसार में कोई खेती कर सकता है? उस नाटे बाबू ने वह क्या नाम लिया था जहाँ के निवासी बिना जल की वर्षा ही के खेती किया करते हैं। क्या उसने 'सरवीका' कहा था या कुछ और? भाई यह 'सरवीका' कहाँ है?

रामसिंह—कहाँ बतलाऊँ! यह स्थान उस झूठे की वाणी में हो सकता है। हमारे आस पास 'सरवीका' नामी कोई ग्राम तो है नहीं। प्रान्त की बड़ी भूगोल में भी मुझे स्मरण है मैंने यह विचित्र नाम कभी नहीं पढ़ा।

रत्नपाल—मित्र! मेरी समझ में तो यह आता है कि हो न हो उस बाबू नें किसी गाँव का नाम अंगरेज़ी भाषा में लिया था।

रामसिंह—अवश्य! ऐसा ही है। जै राम जी की!

[दोनों जाते हैं और पर्दा गिरता है]

(क्रमशः)

प्राचीन समय में भारतीय कृषकों की सामाजिक व आर्थिक दशा।

[लेखक—श्रीयुत पं० रुद्रदत्त भट्ट ।]

निस्सन्देह अपने बन्धुवर्गों के हेतु अनाज पैदा करना मनुष्य के संसार में उच्च, अथवा श्रेष्ठ कर्मों में से एक है। इसीलिए कृषकों का समाज में विशेष मान होता था और अब भी स्वतन्त्र देशों में कृषक बड़े आदर व मान की दृष्टि से देखे जाते हैं। वहां भारत के समान कृषकों का अनादर नहीं होता और न बड़े से बड़े मनुष्य कृषि करने में संकोच करते हैं। पाठकों में से बहुतों ने सन् १८८८ की कृषि सम्बन्धी प्रदर्शिनी के बाबत जो विलायत के "न्यूपोर्ट" नामक स्थान में हुई थी कुछ न कुछ सुना वा पढ़ा ही होगा। उसमें हमारे भूतपूर्व सम्राट् सप्तम एडवर्ड को ही प्रथम पारितोषिक सब से अच्छे पशु व सुअरों को दिखलाने के लिए मिला था।

हमारे देश में भी गृहस्थ का यथार्थ आशय कृषि से है और बहुधा कृषकों व कृषि के लिए गृहस्थी व गृहस्थ शब्द का प्रयोग किया जाता है। वशिष्ठ संहिता में गृहस्थ के आदर में कहा गया है:—

यथा नदी नदः सर्वे समुद्रे यान्ति संस्थितिम्।
एवमाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम्॥
यथा मातरमाश्रित्य सर्वे जीवन्ति जन्तवः।
एवं गृहस्थ माश्रित्य सर्वे जीवन्ति भिक्षुकः॥

अध्याय ८

जैसे सब नदियों का आधार समुद्र है वैसे ही अन्य श्रेणी के मनुष्यों का आधार कृषक अथवा गृहस्थी है। जैसे सब जीवगणों की पालना माता करनेवाली होती है वैसे ही सब भिक्षुकों का पालन करनेवाला गृहस्थ होता है।

यद्यपि संस्कृत में अब कोई कृषि सम्बन्धी पुस्तकें नहीं मिलती हैं तथापि विशेष कारणों से प्रकट होता है कि प्राचीन समय में कृषि विद्या का भी गणित, न्यायशास्त्र अथवा अन्य विज्ञानशास्त्रों के सदृश पठन पाठन होता था। आजकल के विपरीत पहले वाणिज्य से कृषि ही श्रेष्ठ समझी जाती थी। ऐसा समझना ठीक भी था क्योंकि जब कृषि से खूब उत्पत्ति होकर भण्डार परिपूर्ण हो जाते हैं तब स्वयं ही वाणिज्य उन्नति कर लेता है और अन्त में कृषि से विशेष लाभकारी बन जाता है। (वाणिज्ये वसते लक्ष्मीः तदर्द्धं कृषिकर्मणि) परन्तु हमारे भारतवर्ष के समान और सभ्य देशों में भी वाणिज्य से कृषि ही आदर मान अथवा दर्जे में श्रेष्ठ समझी जाती है क्योंकि स्वतः व्यापारी का व्यौपार कृषक के कृषी पर निर्भर है। भारत में प्राचीन समय में वैश्य जाति का मुख्य कर्म कृषि व वाणिज्य था जैसा कहा भी गया है:—"कुसीद कृषि वाणिज्यं पाशुपाल्यं विशःस्मृतं" अथवा लेनदेन कृषि व्यापार व पशु पालना विशः अथवा वैश्यजाति का कर्म है।

आजकल के मोटे तोंदवाले, प्रियभाषी, यजमानियों के प्रिय लाला जी के मित्र आर्यसमाजियों के शत्रु, विद्या में हीन, परनिन्दा में प्रवीण, पगड़ी पहिरे, लाँबी धोती झलकाये पंडित जी महराज भले ही कहें कि उत्पत्ति ही के अनुसार जाति होती है पर हर एक प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ पढ़नेवालों को विदित होगा कि जाति का विभाग उत्पत्ति से नहीं वरन् कर्म व गुण से माना जाता था 'गुण कर्म विभागशः' अर्थात् गुण व कर्म से जिसका विभाग किया हो और जैसा महाभारत के शान्तिपर्व में कहा है "कर्मभिर्वर्णतां गतं" अर्थात् कर्म के अनुसार जातियां विभाजित की गईं। हमारे पूर्वज आर्यों ने जाति का विभाग कर्मों अथवा व्यवसायों के ही अनुसार किया है और वैश्य इसी कारण से

वैश्य कहलाते थे कि वे कृषि, वाणिज्य अथवा लेन देन का कर्म करते थे और जो कोई भी इन व्यापारों अथवा कर्मों को करता था वह भी नाम से वैश्य कहलाता था चाहे उसने किसी कुल में ज़न्म लिया हो।

अब हमको यह देखना चाहिये कि सामाजिक व राजनैतिक दृष्टि से प्राचीन समय के कृषकों की भारत में क्या दशा थी?

महाभारत के पढ़नेवालों को विदित ही होगा कि नृपतिगण बहुधा 'विशाम्पते' अथवा विशया वैश्यों की रक्षा करनेवाले सम्बोधन किये जाते थे। विष्णु संहिता में लिखा है कि राजा को ऐसे स्थान पर अपना प्रासाद बनाना चाहिये जहां घास लकड़ी बहुतायत से मिले, गाय बैल इत्यादि सुगमता से पाले जा सकें, भूमि उपजाऊ हो और जहां वैश्य व शूद्रों का निवासस्थान पास हो। ब्राह्मण व क्षत्री दोनों जाति वैश्यों के उपार्जन पर निर्भर थी। प्राचीन समय में ब्राह्मणों की दशा गड़ेरिये के समान व क्षत्रियों में श्रेष्ठ भूपति की दशा उसके कुत्ते के समान थी। जिस प्रकार कुत्ते का काम चतुरता से चौकीदारी करके भेड़ियों की रक्षा करना है उसी प्रकार नृपति का काम वैश्यों की रक्षा करना था। जिस प्रकार गड़ेरिया अपने कुत्ते के सहित भेड़ियों के उपार्जन पर निर्भर है उसी प्रकार ब्राह्मण व क्षत्री दोनों वैश्यों की कमाई के अवलम्बन पर जीवित थे।

दान देना भी वश्यों का मुख्य कर्तव्य बतलाया गया है।

वज्रपाणि ब्राह्मणः स्यात् क्षत्रं वज्ररथं स्मृतं।
वैश्या वै दान वज्राश्च कर्म वज्रा यवीयसः॥
(महाभारत आदिपर्व।)

ब्राह्मण का मुख्य अस्त्र होम, जप, तप इत्यादि करना है, क्षत्रियों का मुख्य कर्तव्य रण में शत्रुओं का संहार कर के प्रजा की रक्षा करना है, वैश्यों का मुख्य कर्म दान देना है और शूद्रों का कर्तव्य अन्य जातियों की सेवा करना है। प्राचीन समय में वैश्यों की रक्षा करना, उनको सहायता पहुंचाना, उनको सन्तुष्ट करना राजाओं का मुख्य कर्तव्य था। यह इन नीचे लिखे हुए प्रश्नों से जिनको देवर्षि महात्मा नारद ने महाराज युधिष्ठिर से पूछा था भली प्रकार विदित हो जायगा :-

नारद पूछते हैं "हे राजन् आपकी प्रजा चोरों अथवा लुटेरों से तो रक्षित है, आपकी प्रजा कृपण अथवा लोभी पुरुष व राजकुमारों व स्त्रियों व आपके कर्मचारियों से दुःखित तो नहीं है; आपके कृषकगण तो सब भांति संतुष्ट हैं; आपने ठीक २ स्थान पर तालाब, कुएँ इत्यादि तो सारे राज्य में खुदवा रक्खे हैं, और आपके कृषक केवल वर्षा पर तो निर्भर नहीं हैं; आपके प्रजा के भण्डार खाने व बोने के वास्ते अनाज से परिपूर्ण तो हैं?"

सतयुग में भी भगवान रामचन्द्रजी ने बन से लौटने पर जो प्रश्न अपने भ्राता भरत से पूछे थे उनसे भलीभाँति प्रतीत हो जाता है कि उस प्राचीन समय में भी कृषकगणों का कितना मान सन्मान होता था और उनको सब प्रकार सन्तुष्ट करने का कितना भार राजा पर था। रामचन्द्र जी पूछते हैं:- "हे भ्राता, हमारे पूज्य पूर्वजों की भूमि कुल तो बोई गई है और उस पर पशु (चौपाये) तो खूब हैं; प्रजा में रागद्वेष तो नहीं है; प्रजा केवल वर्षा पर ही निर्भर रह कर खेती तो नहीं करती; प्रजा को हिंसक जन्तुओं से तो डर कर नहीं रहना पड़ता; राज्य में धातुओं की खानें तो बहुत हैं; राज्य में चोर, लुच्चे इत्यादि भयानक मनुष्य तो नहीं हैं; प्रजा प्रसन्न व धनवान तो हैं और कृषकगण तुम से सब भाँति प्रसन्न हैं या नहीं?"

यद्यपि वैश्यों का मुख्य सम्बन्ध कृषि से रक्खा गया है पर अन्य जाति वाले कृषि न करें ऐसा नहीं कहा गया है। आजकल के क्षत्रिया

के समान क्षत्री कृषि करना अपनी हतक नहीं समझते थे।

पराशर संहिता में कहा है "क्षत्रियोऽपि कृषिं कृत्वा द्विजान् देवांश्च पूजयेत्।" अर्थात् क्षत्रियों को भी कृषि करके ब्राह्मण व देवताओं का पूजन करना चाहिये। बड़े २ भूपति भी कृषि करने में अपना गौरव समझते थे। जगद्विख्यात भक्तशिरोमणि महाराजा जनक का नाम किस रामायण प्रेमी ने न सुना होगा। ये ही रामचन्द्र जी के सामने महात्मा विश्वामित्र से अभिमानरहित होकर कहते हैं :-

"अथ मे कृषतः क्षेत्रं लाङ्गला दुत्थिता ततः।
क्षेत्रं शोधयता लब्धा नाम्ना सीतेति विश्रुता॥
भूतला दुत्थिता सा तु व्यवर्द्धिता ममात्मजा॥

"हे मुनि जब मैं भूमि को साफ कर रहा था तो मैंने उसमें से एक कन्या पाई जो सीता नाम से प्रख्यात है। यद्यपि उसका जन्म पृथ्वी से हुआ है तथापि मैंने उसको पुत्री के समान पाला है।" यदि क्षत्रियों को कृषि कर्म निषेध किया गया होता तो जनक भूपाल के समान ज्ञानवान नृपति कभी कृषि कर्म में अपना गौरव न समझते। सती शिरोमणि रामचन्द्र जी की प्रिय पत्नी सीता देवी ने ऋषि पत्नी अनुसूया से अपनी उत्पत्ति का वर्णन इस प्रकार किया था:—

तस्य लाङ्गल हस्तस्य कृषतः क्षेत्र मण्डलम्।
अहं किलोत्थिता भित्वा जगतीं नृपते सुता॥
समां दृष्ट्वा नरपतिर्मुष्टि विक्षेपतत्परः।
पांशु गुण्ठित सर्वाङ्गी विस्मितो जनकोऽभवत्॥

जिस समय राजा जनक हाथ में हल ले भूमि को जोत रहे थे उस समय मैं पृथ्वी को फाड़कर प्रगट हुई। राजा अपने हाथों से राज बखेर रहे थे, वे मुझे देख आश्चर्य में होगये। आजकल की दशा को देखकर जब कि एक सामान्य ज़मीन्दार भी अपने हाथों खेतों में काम करना अपनी मानहानि समझता है इस कठिनता से अनुभव कर सकते हैं कि जनक से प्रतापी राजा कैसे अपनी भूमि को जोतते रहे होंगे। और सुनिये, ब्राह्मण भी कृषि कर्म से वञ्चित नहीं रक्खे गये थे। पराशर संहिता में कहा है:—

स्वयं कृष्टेतथा क्षेत्रे धान्यैश्च स्वयमर्जितैः।
निर्वपेत् पञ्च-यज्ञानि क्रतु दीक्षाञ्च कारयेत्॥

अर्थात् ब्राह्मण को अपने ही बोए हुए भूमि से अपने आप चावल एकत्र करके नित्य पञ्चयज्ञ करने चाहियें। पर समय के फेर से और ही कुछ देखने में आता है। अब तो मोटे पण्डित जी को विष्णु २ कह कर ही मनों अनाज मिल जाता है फिर परिश्रम कौन करे? अब यदि कोई ब्राह्मण हल हाथ में लेने का विचार भी करे तो जातिच्युत होने के साथही साथ "हल-फोड़" नामक उपाधि भी उसके सारे कुल को लग जायगी।

हर एक ब्राह्मण पुत्र को ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने की अवस्था में गुरू के नीचे कृषि का कार्य भी करना पड़ता था। महाभारत में कहा है कि एक दिन महात्मा धौम्य ने अपने एक अरुणि नामक ब्रह्मचारी शिष्य को अपने खेत में एक छेद जिसमें से बरसाती पानी बहा जा रहा था बन्द करने की आज्ञा दी। बालक अरुणि ने कितना प्रयत्न किया पर छेद बन्द न हो सका, लाचार अन्त में वह स्वयं ही छेद के किनारे सोगया और इस प्रकार अपने शरीर से छेद को बन्द कर पानी का बहाव बन्द किये रहा। महात्मा धौम्य का एक और छात्र उपमन्यु नाम का था। उसका काम गुरू के गाय बैलों को चराना था। (वत्सोपमन्यु गा रक्षस्वेति। स उपाध्याय वचनात् अरक्षत् गाः॥ आदिपर्व) देव बृहस्पति का पुत्र कच भी अपने गुरू शुक्राचार्य के गायों को चराता था। इसी प्रकार उपनिषदों अथवा अन्य पुस्तकों में भी बहुत से ऐसे उदाहरण ढूँढ़े मिल सकते हैं जिससे यह भली भाँति विदित हो सकता है कि प्राचीन

समय में शास्त्रों के अनुसार भी कृषि कर्म करने से किसी की जातिहानि अथवा मानहानि नहीं होती थी ? आजकल ध्यान से देखिये क्या हो रहा है ? कृषि व वाणिज्य घृणा की दृष्टि से देखे जाते हैं। कृषकों में कृषि सम्बन्धी विद्या का अभाव होने से भूमि को उपजाऊ बनाने का प्रयत्न नहीं किया जा सकता है। कृषकगण सब से दीन हैं, सब से नीच समझे जाते हैं, सब से दुःखी हैं पर सबों का सहारा भी उन्हीं से है। कृषकों के पुत्र अब जो देखते हैं कि कृषि में तो कुछ मान मर्यादा है नहीं, उलटे पटवारी, पेशकार इत्यादि की भर पेट पूजा, स्वयं भूखे रहकर महीने में कई बार करनी पड़ती है, तब वे कुछ योंही टिम टाम जैसे तैसे सीखकर चपरासी इत्यादि बनकर लाल पगड़ी बाँधने की चेष्टा करने लग जाते हैं। उनमें से कुछ बड़भागियों की चेष्टा सफल भी होगई तो अन्यों की दशा धोबी के कुत्तों के सदृश होजाती है। सरकारी अफसरों की दृष्टि में तो कृषकों का जन्म उनका बोझ लेजाकर उनकी सेवा शुश्रुषा करने के हेतु ही हुआ है पर खेद तो इसका है कि अन्य मनुष्य भी उनको आदर की दृष्टि से नहीं देखते हैं।

जबतक भारत के युवकों को इस प्रकार की उद्योग-कला-सम्बन्धी शिक्षा देने का ठीक २ प्रयत्न नहीं किया जावेगा और जबतक हम लोग अपने जीवनाधार कृषक का यथोचित आदर सत्कार करना न सीखेंगे हमको अपने भण्डारों को पहिले सदृश भरे पूरे देखने की आशा कदापि न करनी चाहिये।

भारत का कौन मनुष्य सांवरे, मुरारे, गोपीजन वल्लभ, कृष्ण कन्हैया के नाम से परिचित न होगा। मथुरा अथवा गोकुल का नाम सुनते ही सांवरे, प्यारे, ग्वाल बालों के मित्र, गौओं के रखवारे नन्दलाल का चित्र किस धार्मिक हिन्दु के हृदयपट पर नहीं खिंच जाता है। प्रेमसागर में कन्हैया का गौओं के चराने का वृत्तान्त कैसा प्यारा लगता है। इन्द्र के कोप करने पर अनायास भारी वृष्टि होने से जब गाय, बच्छी करुणा स्वर से पुकार २ कर कृष्ण की ओर रक्षा करने के हेतु निहारने लगे तो श्याम ने उनका दुःख दूर करने के लिए गिरिवर गोवर्द्धन को एक सप्ताह तक थाम स्वयं कष्ट पा उनकी रक्षा की। भक्तजन, पूतना और कंस नाशक, महाभारत में सन्धि स्थापन करने की चेष्टा करनेवाले, पाण्डवों के हितकारी, रुक्मिणी के प्रिय, यशोदा के प्राण, कृष्णचन्द्र का ध्यान नहीं करते, वरन ग्वालबाल, गौओं को चराने वाले माखनचोर, कन्हैया के ध्यान में मग्न हो आनन्द के लहरों में गोते खाते हैं। इस प्रकार द्वापर में भी कृषि आदर से ही नहीं वरन् प्रेम व भक्ति भाव से देखी जाती थी। आजकल मूर्खतावश कृषि का अनादर करके हम साथ ही श्रीकृष्णचन्द्र का भी अनादर करते हैं। बाहर से श्रीकृष्ण २ ऐसा नाम जप यथार्थ में हम लोग ग्वालबाल श्रीकृष्ण के परम शत्रु शिशुपाल की उपासना करते हैं जिसने, "भीष्मपितामह से तुम चतुर व बूढ़े होकर भी गोकुल के ग्वाले कृष्ण की प्रशंसा करते हो" यह कहकर, पाण्डवों की भरी सभा में कृष्ण का अनादर किया था और कृषि पर घृणा प्रगट की थी। और सुनिये, भगवान् कृष्ण के तेजस्वी भ्राता बलदेव अथवा बलराम तो जहां जाते थे अपने हल मूसल को साथही लिए रहते थे। इसी से उनका हलधर नाम प्रसिद्ध है। क्या इन दोनों भाइयों के इस प्रकार कृषि का सन्मान करने पर भी हम यह कह सकते हैं कि यह नीच कर्म है ? संस्कृत पुस्तकों के पढ़नेवालों को बहुधा अनेकानेक स्थानों पर ऐसे श्लोक मिलेंगे जिनसे प्राचीन समय के मनुष्यों की कृषिसम्बन्धी विज्ञता का परिचय मिलता है। उदाहरणार्थ भट्टिकाव्य का यह श्लोकः—

"दिग्वापिणीर्लोचन लोभनीया,
मृजान्विताः स्नेहमिवस्रवन्तीः।

ऋज्वायताः शस्य विशेष पंक्ति,
स्ततोष पश्यन् वितृणान्तरालाः ॥

उस समय के कृषि की परिपूर्ण दशा का ही दृश्य नेत्रों के सामने नहीं लाता वरन् यह भी जतलाना है कि कविगणों का कृषि सम्बन्धी ज्ञान कैसा बढ़ा चढ़ा था। इसके अतिरिक्त आपस्तम्ब ने अपनी संहिता में गाय बच्छी के पालने की कैसी सुन्दर विधि बतला रक्खी है:—

द्वौमासौ दापयेत् वत्सं द्वौमासौ द्वौस्तने दुहेत्।
द्वौमासौ वेक वेलायां शेषकाले यथारुचिः ॥

अर्थात् बच्छी के पैदा होने के पश्चात् पहिले दो मास तक उसको अपने मन भर गाय का दूध पीने देना चाहिये, फिर और दो मास तक केवल दो स्तनों का दूध निकालना चाहिये। पांचवें व छठे मास में केवल एक बार दूध दुहना चाहिये और तत्पश्चात् जिस समय जितना दूध दुहना हो रुचि अनुसार दुहे।

जिस स्थान में जङ्गल, घास पात से परिपूर्ण हैं उर्युक्त विधान गौओं को पालने तथा बच्छी को हृष्ट पुष्ट बनाने के लिए निःसन्देह सर्वश्रेष्ठ है।

भारतीय कृषि सम्बन्धी विद्या के ऐसे हीन होने के ये ही कारण हैं कि पहिले ज़मीन्दार लोग स्वयं अपने २ गावों में रहकर कृषि को सुधारने में दत्तचित्त रहते थे पर अब वे नौकरी को ही सर्वश्रेष्ठ समझ, किसी दफ़्र में नाज़िर अथवा शरिस्तेदार बन कर ही अपने को धन्य समझते हैं। उनकी खेती दीन कृषकों के हाथों में चली गई है जिनमें न तो सुधारने योग्य विद्या ही है और न व्यय करने को धन। फिर अपनी ज़मीन्दारी से दूर रह और नये फ़ैशनों के बशीभूत होकर ज़मीन्दारों को अपने असामियों से ज़्यादा रकम खसोटने की ही चिन्ता लगी रहती है। इससे दुःखित हो कृषक खेत की उर्वरा शक्ति बढ़ाने का प्रयत्न नहीं करते।

पर अब पुराना समय नहीं रहा, अब हम अपनी भूल को जानने लग गये हैं, अब दुर्भिक्षरूपी भूत मुंह खोले चारों ओर से ताक लगाये भारत में बैठा है, हमारे बाप दादाओं की भूल का दण्ड हमको मिल रहा है क्योंकि

पुत्रेषु वा न पितृषु वा नचेदात्मनि पश्यति।
फलत्येव ध्रुवं पापं गुरुभुक्तमिवोदरे ॥

अर्थात् जिस प्रकार कोई कठिन वस्तु के खाने से पेट का दुःख सहना ही पड़ता है उसी प्रकार से जो कुछ पाप हम करते हैं उसका यदि हमको नहीं तो निश्चय हमारे सन्तानों को दण्ड भुगतना ही पड़ेगा।

क्या अब भी हम न चेतेंगे, क्या सूर्य भगवान के अर्ध गगनमण्डल में पहुंचने पर भी हमारी नींद न टूटेगी, क्या माता के इतनी बार जगाने से हम आँख मींजते न उठेंगे? निश्चय उठेंगे और भगवान् भी अब हमारी सहायता करेंगे*

हमारी सरकार और खेती का लगान।

[लेखक—श्रीयुत के० डी० मालवीय।]

कृषि सम्बन्धी बातों पर विशेष ध्यान देना हमारे जातीय-जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। एक बड़ा भारी कारण जो इस आवश्यकता को प्रमाणित करता है वह यह है कि कृषि की ओर हमारा विशेष ध्यान न होने से ही आज हमारी यह दशा हो रही है कि "गली गली कंगाल पेट पर, हांथ दोऊ धर धाव। पग पग चल गिरैं पग पग पर, आरतनाद सुनावैं।" आज ऐसे दुर्भिक्ष ने घोर हाहाकार मचा रक्खा है, इस लिए इसके दूर करने का प्रयत्न करने के पू

---

* माडर्न रिव्यू नामक अङ्गरेज़ी मासिक पत्र में महाशय द्विजदास दत्त के लेख का छायानुवाद।

यह आवश्यक है कि हम कुछ कृषि सम्बन्धी बातों पर विचार करें।

हमारे देश में कर उगाहने की दो मुख्य रीतियां हैं। एक तो यह है कि कर ज़मीन्दारों से वसूल किया जाय और दूसरी यह है कि सीधे कृषकों से ही वसूल कर लिया जाय।

ज़मीन्दारों से लगान उगाहने की रीति पंजाब को छोड़कर प्रायः उत्तरी भारत में सब जगह प्रचलित है। इसी भाँति कृषकों से कर उगाहने की रीति मद्रास को छोड़कर दक्षिण प्रान्त में सब जगह प्रचलित है। पर इन दोनों रीतियों में वास्तविक भेद बहुत कम है। जहां लगान ज़मीन्दार वसूल करते हैं वहां पर वे स्वयं कृषकों पर अत्याचार करते हैं और जहां पर सरकार वसूल करती है वहां सरकार भी कुछ कम सख्ती नहीं करती 'शायलाक' की नाक काटती है।

इससे कृषकों के लिए तो इन दोनों रीतियों में विशेष भेद नहीं है पर देश के हित के विचार से इन दोनों रीतियों में भेद होता है। कृषकों से सीधे लगान वसूल करने में कृषक तो धनहीन रहते ही हैं और ज़मीन्दारों के पास भी धन नहीं जाने पाता साथ ही साथ एक धनवान समुदाय के होने से देश को जो लाभ होते हैं उससे भी वह वञ्चित हो जाता है।

इन दोनों भेदों के अतिरिक्त कर उगाहने की रीति में दो और मुख्य भेद हैं—एक में तो यह होता है कि कर सदा के लिए एकदम नियत कर दिया जाता है और दूसरे में कुछ समय के बाद सरकार चट लगान अधिक कर देती है। उपज का घटना बढ़ना बहुत कुछ कृषकों के परिश्रम पर निर्भर है अतः जहां पर लगान सदा के लिए नियत है वहां तो ज़मीन्दार सदा सम्पन्न होते जाते हैं पर जहां सरकार उपज के साथ २ लगान बढ़ाती चलती है वहां उन्नति की कौन कहे, दरिद्रता दिन २ अपना राज्य स्थापित करती जाती है। बंगाल प्रान्त में और हमारे प्रान्त के कुछ भाग में ऐसा ही स्थायी या डंकिनी बन्दोबस्त (Permanent Settlement) है। इन स्थानों के ज़मीन्दार सारे भारत के ज़मीन्दारों से विशेष समृद्धिशाली हैं।

स्थायी बन्दोबस्त से केवल देश का ही लाभ नहीं है—सरकार को भी इससे लाभ है। सब से भारी बात तो यह है कि इन धनवान ज़मीन्दारों के रुपये प्रायः सध (Promissory Note) में रहते हैं और भारत की सरकार इसी काग़ज़ी गोरखधन्धे की बदौलत प्रति वर्ष लक्ष और करोड़ मुद्रा सेनाविभाग और रेलविभाग पर खर्च करती है।

दूसरा विशेष व्यय जो सरकार को इन धनिक ज़मीन्दारों से प्राप्त होता है वह यह है कि ये अपने धन से नये २ वाणिज्य और व्यवसाय और कारखाने खोलते हैं और इनसे सरकार को टैक्स रूप में अखिल सम्पत्ति प्राप्त होती है। फिर एक तीसरा लाभ सरकार को यह होता है कि जिन स्थानों में ये धनिक-निवास करते हैं वहां से स्थानीय टैक्स में भी गहरी रकम उसके हाथ लगती है। इन कारणों से लगान सदा के लिए नियत कर देने से प्रजा और राजा दोनों को लाभ होता है। कुछ लोगों का यह मत है कि सदा के लिए लगान नियत कर देने से सरकार भविष्य लाभ को तिलाञ्जलि दे देती है—पर यह मत ठीक नहीं है।

भविष्य लाभ एक तो नितान्त अनिश्चित वस्तु है, हुआ हुआ न हुआ तो न हुआ। दूसरी बात यह है कि सरकार को कई अमलों की तनख्वाह इस प्रकार से बच जाती है। ज़मीन्दार लगान सीधे सरकार को दे देता है इस लिए एक २ कलेक्टर के आधीन विशेष भूमि ऐसे स्थानों में रक्खी जा सकती है। इन

सब बातों पर विचार करने से यही प्रतीत होता है कि स्थायी बन्दोबस्त से सरकार को लाभ छोड़ कर हानि होने की सम्भावना नहीं है। पर फिर भी यह बन्दोबस्त अभीतक केवल बंगाल और युक्तप्रान्त के थोड़े से भाग में ही प्रचलित है। जहां यह नियम प्रचलित नहीं है वहां के ज़मीन्दार अपनी भूमि की उन्नति करने पर इस भय से उद्यत नहीं होते कि परिश्रम तो वे करेंगे पर मज़ा सरकार उठावेगी। ऐसी दशा में उन ज़मीन्दारों का धनहीन होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

यह तो हुई पंजाब और युक्तप्रान्त के ज़मींदारों की बात, अब तनिक मध्यप्रदेश की ओर दृष्टि फेरिये। यहां एक अनोखी रीति का प्रचार है। यहां भूमि के मालिक तो होते हैं 'मालगुज़ार' लोग पर लगान सब मालगुज़ारों से पृथक २ नहीं ली जाती। इनमें जो सबसे धनाढ्य हुए वे नम्बरदार हो जाते हैं और उनका काम यह होता है कि वे सब मालगुज़ारों की तरफ से स्वयं लगान दे दिया करें और बाद में वे उसे उन मालगुज़ारों से वसूल कर लिया करें। इस रीति से और तो जो कुछ लाभ हानि होती है सो तो होती ही है एक बात यह भले ही होती है कि ये नम्बरदार जी महाशय किसी न किसी बैंक के ऋणी बने रहते हैं और ये मालगुज़ार सज्जन सदा नम्बरदार जी के ऋणी बने रहते हैं। ऐसे कर्ज़दारों की मंडली से देश को जो कुछ क्षति होती है वह प्रत्यक्ष है। इसके सिवाय मालगुज़ारों और नम्बरदारों का सम्बन्ध ही ऐसा है जिसमें कुछ न कुछ अवश्य कर्ज़दार बने रहें।

यहां तक तो हम लोगों ने भिन्न २ लगानों के उगाहने की रीति पर विचार किया है। अब भूमि की मिल्कियत के विषय में भी हम लोगों का साधारण रीति से विचार करना परम आवश्यक है।

भारत में कुछ प्राचीनकाल से यह रीति चली आई है कि भूमि का मालिक खेतिहर नहीं रहता। हम लोग देश में राजा को साधारणतः भूपति कहते चले आए हैं और इसका कारण यही है कि भूमि का मालिक यहां राजा ही समझा जाता था, पर अब योरोप की भांति कहीं २ कृषकों को ही सरकारने भूमि का आधिपत्य दे दिया है। निस्सन्देह सरकार ने यह एक अत्यन्त उदार काम किया है पर उसकी उदारता प्रायः निष्फल हुई है और इसका कारण यह है कि जैसे बादल और बिजली साथ चलते हैं तथा जैसे सूर्य और गर्मी साथ ही साथ रहते हैं उसी प्रकार भूमि के आधिपत्य के साथ ही साथ लगान का उचित होना भी परम आवश्यक है। अब यद्यपि कृषक अपने भूमि का मालिक होगया तथापि उसे लगान इतना देना पड़ता है कि बिना श्री महाजन जी की दया के उसका पार नहीं लगता। इसका परिणाम क्या होता है? इसका परिणाम यही होता है कि धनहीन होने के कारण और लगान के बढ़ जाने के भय से इनके भूमि में बढ़ती तो होती नहीं उलटे होता यह है कि जो कर्ज़ा देनेवाले महाजन जी महाशय पहिले उसी कृषक को उसके निज की भूमि न होने के कारण कर्ज़ा देने में हिचकते थे और कम कर्ज़ देते थे वेही सज्जन महज्जन सदृश महाजन जी कृषक के भूमि के मालिक होजाने पर खूब खुशी से अपना धन देते हैं और इस प्रकार धीरे २ कर के कृषक ऐसे दरिद्रावस्था में पहुंच जाता है जब उपज और खेत की उन्नति करना उसके लिए नितान्त असम्भव हो जाता है।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि इसमें दोष किसका है? महाजन का या कृषक का? वास्तविक बात यह है कि दोष न तो बहुत कृषक का है न महाजन का वरन् यह सब दोष हमारी सरकार के कानून का है। कृषक धन की आवश्यकता होनेपर कभी २ कठिन शर्तों पर कर्ज़ा ले लेते हैं पर प्राचीनकाल से ही यह

रीति चली आई है कि यद्यपि ये शर्तें लिखने में कड़ी रहें पर रुपये के वसूल करने के समय इनका प्रयोग न किया जाय। इस रीति का प्रभाव अब भी ऐसा है कि कुछ महाजन दावा तो कानूनी तौर पर अपने सब शर्तों के साथ सब रुपये का करते हैं पर उनका अभिप्राय केवल पुरानी रीति के अनुसार अपने रुपये पाने का रहता है। यह कहा जा सकता है कि वे अपने सब शर्तों का परिपालन कभी न करें यदि अदालत के कानून से वे वाध्य न हों। पर अदालत यह नहीं होने देती और इसके कारण कृषकों को क्षति पहुंचती है। अब यदि ऐसा सोचा जाय कि महाजनों का रुपया देना ही बन्द कर दिया जाय तो यह असंभव है। महाजनों के धन से ही विशेषतः कृषकों का जीवन निर्वाह होता है और यही समझ कर गत राजा सर टी॰ माधवराव जी ने भी महाजनों के रहने की आवश्यकता तथा इनकी संख्या पर विशेष ज़ोर दिया था। सम्पत्ति शास्त्र के वेत्ता स्वर्गवासी सर, ए॰ शाशिया शास्त्री जी का भी यही मत था। राजा साहेब का तो यह मत था कि कर्ज़े में जितना रुपया दिया गया हो सूद के सहित कभी उसके दूने से अधिक अदालत न दिलाया करे। आजकल हमारे प्रान्त के माननीय मौलवी गुलाम उस्सक़लैन साहब भी सूद के सम्बन्ध में उचित कानून पास कराने का प्रयत्न कर रहे हैं। देश में संयोग-समितियां भी स्थापित हो चली हैं। अतः इस प्रश्न पर हम किसी दूसरी संख्या में विशेष रूप से विचार करेंगे।

इस समय हम लोगों को एक दूसरी बात पर ध्यान देना चाहिये। इस क़र्ज़दारी और दरिद्रता का कारण क्या है? बारंबार यही समस्या उपस्थित होती है। सर थियोडर होप साहब तो साफ़ शब्दों में कहते हैं ''To our revenue system must in candour be ascribed a large part of the indebtedness of the ryot.'' कि लगान की अधिकता के ही कारण रैयत क़र्ज़ के बोझ से दबी जा रही है।

पर सरकार इस बात को क़बूल करनेवाली नहीं है। अपने ख़रीते में सरकार यह लिखती है :—

> ''Our assessment is not a source of poverty or indebtedness in India—it cannot be fairly regarded as a contributory cause of famine.''

सरकार की ओर से यह प्रमाण दिया जाता है कि पूर्व के राजा लोग भूमि पर आजकल से कुछ अधिक लगान लेते थे और यह बात कुछ सत्य भी है। पर इसके साथ ही साथ और बातों को सरकार वा उसके नीति के पक्षपाती क्यों भुला देते हैं? पुराने समय में सब का सब कर कभी नहीं वसूल हो जाता था। लगान यद्यपि सख़्ती से वसूल की जाती थी तदपि उसमें ढिलाई अधिक थी और राजाओं के समय में जङ्गल इत्यादि पर रैयत को टैक्स नहीं देना होता था? फिर पोथे भर स्थानीय टैक्स जो आजकल रैयत से वसूल किये जाते हैं वे भी उन राजाओं के समय में नहीं थे?

सच्ची बात तो यह है कि टैक्स अधिक हैं और वेही वास्तव में रैयत की दरिद्रता के मुख्य कारण हैं। सरकार की ओर से फिर यह कहा जाता है कि अब सरकारी ख़र्चा तो पहिले की अपेक्षा बढ़ गया है पर इस बात पर फिर भी विचार नहीं किया जाता कि क्या यह ख़र्चा टैक्सों के हिसाब से बढ़ा है? या क्या यह सब ख़र्चा ऐसा है जिसके लिए रैयत पर कर लगाना आवश्यक है? पर इनसे भी बढ़कर एक मुंह तोड़ जवाब सरकार के नीति के पक्षपातियों को दिया जा सकता है—यदि वे यह कहते हैं कि ख़र्चा बढ़ जाने के कारण टैक्स भी बढ़ गये हैं और केवल खेती पर टैक्स न लिया जाकर औरों वस्तुओं पर टैक्स लिया

जाने लगा है तो यह विचार करना चाहिये कि पहिले की अपेक्षा अब अधिक भूमि पर खेती होती है या नहीं और यदि होती है तो क्या इससे सरकार को प्राप्ति नहीं होती ? जब उपजाऊ भूमि में बढ़ती होगी तो सरकार की आमदनी में भी बढ़ती होगी और उपजाऊ भूमि की बढ़ती सरकार स्वयं मानती है "Since 1858 the cultivated area has more than doubled itself in thinly peopled tracts like Burma and Assam ; it has increased from 30 to 60 p. c. in Central Provinces Berar and Bombay, in U. P. it has increased 30 p. c."

(Memorandum on some of the results of Indian administration published in 1911 by Government of India.)

इन बातों से यह प्रमाणित होता है कि टैक्स पूर्व की अपेक्षा अब बहुत बढ़ गये हैं और रैयत के दरिद्र होने का एक मुख्य कारण यही है । कुछ काल हुआ लार्ड सालसबरी भारत सचिव थे । आपने लगान के सम्बन्ध में एक अत्यन्त उपयुक्त प्रश्न उपस्थित किया था । सरकार की नीति सब उसी प्रश्न से प्रत्यक्ष है । प्रश्न यह था कि जो लगान भूमि पर लिया जाता है वह ज़मीन का किराया रेन्ट है या रेवेन्यू (Revenue) ?

रेन्ट शब्द सम्पत्ति शास्त्र के अर्थ में प्रयोग किया गया है, इसे समझने के लिए मान लीजिये कि बीस खेत जोते बोये जाते हैं जिस खेत में सब से कम उपज होती है उसी के हिसाब से रेन्ट नियत होता है । अर्थात् यदि सब से कम उपजाऊ खेत में दस मन अनाज होता है और फिर दूसरे में २० फिर ३० फिर ४० मन तब दस मन के ऊपर जो कुछ इन खेतों में होगा वह सब रेन्ट समझा जाता है । अर्थात् कृषक एक उतने बड़े खेत में से १० मन से अधिक नहीं पा सकता, भला इससे बढ़कर और क्या अनीति हो सकती है । कृषक पर इससे बढ़कर अत्याचार दूसरा नहीं हो सकता । इस प्रश्न के उपस्थित करने का प्रयोजन यही था कि भूमि पर लगान इसी नीति के अनुसार लगाई जाती है और यह लार्ड सालसबरी के मत में अनुचित है । फिर बन्दोबस्त और लगान तय करने के समय में इसी रेन्ट को नियत करने में सरकारी अमले रैयत की और भी गर्दन काटते हैं । अब इस रेन्ट की नीति के प्रचलित होते हुए दरिद्रता का कारण ढूढ़ने में विलम्ब नहीं हो सकता । इसमें सन्देह नहीं कि इसी अनर्थकारी प्रणाली के कारण भूमि की उन्नति नहीं होती और उपज बढ़ने की कोई आशा भी नहीं रह जाती ।

भारत सरकार की प्रधान आमदनी इसी खेती के लगान से है और साथ ही साथ भारत के अधिकांश मनुष्यों का उदरपालन भी खेती ही से होता है । ऐसी अवस्था में लगान कितनी होनी चाहिये इसका निश्चय करना अत्यन्त कठिन है । पर यदि दूरदर्शिता के साथ इस प्रश्न पर विचार किया जाय और यदि थोड़ी देर के लिए मान लिया जाय कि सरकार १० साल के लिए लगान अधिक कम कर दे और इस रकम को शराब पर टैक्स बढ़ाकर या अफीम पर टैक्स बढ़ाकर या जो चीज़ें यहां बाहर से आती हैं उन पर ड्यूटी लगाकर या सेना विभाग या पुलिस विभाग या मुल्क़ख़ोर विभाग का खरचा घटा कर अपना काम चलावें तो १० वर्ष के बीच में कृषकों के भूमि की बहुत कुछ उन्नति हो सकती है पर 'न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेगी' । अब यहां पर यह प्रश्न उठता है कि यदि लगान कम नहीं की जा सकती तो बंगाल की भांति सारे भारत में स्थायी या डंकिनी बन्दोबस्त क्यों नहीं कर दिया जाता ? ज़मींदारों के अत्या-

वारों से कृषकों को बचाने के लिए सरकारी अस्ल टेनेन्सी के कानून का जारी होना भी आवश्यक है।

कृषकों की रक्षा के लिए कुछ अधिक समय के लिए लगान का निश्चित होना और अपनी गाढ़ी कमाई में से अधिक अंश कृषक को मिलना बहुत आवश्यक है।

दुर्भिक्ष के विषय में एक और बात पर विचार करना आवश्यकीय मालूम होता है। आजकल हमारे देश के विचारशील विद्वानों तथा सज्जनों का मत है कि इस देश में व्यवसाय न होने ही के कारण यहां के लोगों को दुर्भिक्ष के समय में भूखों मरना पड़ता है। अभी मेरठ की औद्योगिक कानफरेन्स के सभापति श्रीयुत ब्रह्मानन्द जी ने भी अपने स्पीच में यही मत प्रगट किया था। सरकार की ओर से भी यही बात सदा कही जाती है पर यद्यपि इसमें कोई सन्देह नहीं है कि व्यवसाय के विस्तार से देश विशेष धनवान हो जायगा तथापि यह समझ में नहीं आता कि व्यवसाय से दुर्भिक्ष का सामना कैसे होगा। महाशय ब्रह्मानन्द जी ने कहा था कि देश में अन्न इस समय भी काफी है पर धन के अभाव से गरीब प्रजा उसे पा नहीं सकती पर अब प्रश्न यह है कि व्यवसाय होने से गरीब प्रजा उसे कैसे पा सकेगी? दुर्भिक्ष से वास्तव में कौन लोग विशेषतः पीड़ित होते हैं? शहरवाले या ग्रामीण? शहर में वास्तव में दुर्भिक्ष का कोप नहीं दिखाई देता, इसका कारण यह है कि शहर में प्रायः नौकरी पेशा या व्यवसायी लोग रहते हैं और चाहे इन्हें अन्य कष्ट हों पर ये भूखे नहीं मरते। भूखे मरने की नौबत गाँव में ही आती है और भूखे मरते हैं वेही खेतिहर और उसके नौकर चाकर जो वर्षा न होने से बे पैसे कौड़ी और बिना रोज़ी के इधर उधर मारे २ फिरते हैं। देश में व्यवसाय रहे तो इन खेतिहरों को यहां रोज़ी मिल सकती है। यह तो सत्य है, पर एक बात पर ध्यान देना इस प्रकार से तर्क करनेवाले भूल गये हैं और वह यह है कि यदि ये ही खेतिहर और खेती पर काम करनेवाले व्यवसाय में लग जांयगे तब इतना अन्न कहाँ से होगा कि दुर्भिक्ष होते हुए भी अन्न काफ़ी हो और प्रजा केवल धनाभाव से पीड़ित रहे। इसमें सन्देह नहीं कि व्यवसाय से बहुत लोग रोज़ी पावेंगे पर दुर्भिक्ष के सम्बन्ध में व्यवसाय होने से केवल यही लाभ हो सकता है कि चन्दा विशेष मिले या इस प्रकार के अन्य दूसरे लाभ हों। व्यवसाय की चर्चा करते समय लोग यह भूल जाते हैं कि खेती भी व्यवसाय के सिवाय अन्य कुछ नहीं है। जैसे अन्य व्यवसायों में उन्नति का स्थान है, जैसे अन्य व्यवसाय अधिक कर आदि के कारण नाश को प्राप्त होते हैं वैसी ही खेती की भी दशा है। दुर्भिक्ष से प्रजा का जो अंश वास्तव में पीड़ित होता है उसका कष्ट निवारण करने का एकमात्र उपाय यही है कि कृषि सम्बन्धी सुधार किये जाँय और भारत सरकार अपनी कृषि सम्बन्धी नीति को नए सिरे से बदल डाले। यदि कृषकों को उपज का विशेष भाग मिले और यदि अपनी भूमि की वे उन्नति निडर होकर कर सकें तो वे भली प्रकार से दैवी कोप से अपने को बचा सकते हैं। पहिले तो इससे कृषक सम्पन्नशाली होंगे फिर उनके खेत पर काम करनेवाले विशेष धनवान होंगे और कुछ बचा सकेंगे। ऐसी दशा में वे दुर्भिक्ष के समय में अपना निर्वाह सुखपूर्वक कर सकेंगे।

कल की बनाई हुई चीज़ों के लिए इस समय बाज़ार मिलना अत्यन्त कठिन है पर अन्न इत्यादि के लिए सारे संसार की बाज़ारें एक भांति से खाली हैं। भारत को आर्थिक दृष्टि

से कृषि से विशेष लाभ होना चाहिये। इस सम्बन्ध में आने और जाने वाले माल का प्रश्न उपस्थित होता है। इस विषय पर हम फिर कभी विचार करेंगे। साम्प्रति तो दुर्भिक्ष को सदा के लिए दूर करने का उपाय कृषि सुधार ही है।

दुर्भिक्ष और उससे बचने का उपाय।

[लेखक—श्रीयुत पं० रुद्रदत्त भट्ट।]

आज दिन संयुक्तप्रान्त में चारों ओर हाहाकार मचा हुआ है। वनाग्नि के समान चारों ओर दुर्भिक्षाग्नि फैल रही है। जठराग्नि की घोर, कठोर, ज्वाला से सैकड़ों नर-नारी दग्ध हो रहे हैं। चारों ओर से "भूख भूख" की हृदयविदारक ध्वनि सुनाई पड़ रही है। वृद्ध, युवक, बालक, स्त्री, पुरुष, रोगी, धनी, निर्धनी सबों को इसकी कठोर ज्वाला की लपक से दग्ध होना पड़ रहा है। दुर्बल, दीन, मलीन, माँसरहित, अस्थिपिञ्जर के मध्य से केवल एक ध्वनि निकल रही है "अन्न"।

सन् १६०८ के घोर, कठोर, दुर्भिक्ष को हम भली प्रकार भूलने भी न पाये थे कि फिर चारों ओर से इसने इस प्रान्त को अपने कठिन पंजों में जकड़ लिया है। इस घोर आपत्ति का वर्णन करना हो कठिन कार्य है तिस पर उन पशु पक्षियों की दशा का वर्णन करना, जिनमें न तो बोलने की और न दुर्बल होने के कारण चलने ही की शक्ति है, असम्भव सा प्रतीत होता है। भारतवर्ष के वास्ते तो अब दुर्भिक्ष का होना एक प्रकार से सामान्य बात हो गई है। प्रतिवर्ष एक न एक प्रान्त, एक न एक प्रदेश इसके चंगुल में फँसा ही रहता है। प्रति वर्ष एक न एक स्थान से जठराग्नि विह्वल मनुष्यों का घोर आर्तनाद सुनाई ही पड़ता है। यह उस भारतवर्ष की दशा है जो एक दिन पृथ्वी का रत्न समझा जाता था और जो धन-धान्य से सम्पन्न हो अनेकों का प्रतिपालन किया करता था। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि हमारी दयालु सरकार ऐसे अवसर पर प्रजा को दोनों हाथों से सहायता पहुंचाती है पर आग लगने पर कूप खोदने से होता ही क्या है?

इस अवसर पर भी चारों ओर "अकाली" काम खोले गये हैं। हज़ारों मनुष्य इन कामों पर नियुक्त हो जठराग्नि की प्रबल ज्वाला को शान्त कर रहे हैं। इन अकाली कामों को भली प्रकार दयालुता से सञ्चालन करने के लिए बहुत से सरकारी कर्मचारी नियुक्त किये गये हैं। चारों ओर से धन एकत्र किया जा रहा है। सब ही महकमों से बचत दिखलाने का आदेश दिया जा रहा है। प्रान्त के धनीमानी महाजन भी धन से दुर्भिक्षपीड़ित मनुष्यों की सहायता कर रहे हैं, पर इन सब का फल क्षणभंगुर है। यह केवल कुछ समय के वास्ते पीड़ित मनुष्यों की सान्त्वना स्वरूप प्राण रक्षा करने का साहस मात्र है। इसका फल दृढ़ नहीं। फिर दो चार वर्ष में वही दशा, वही दुःख, वही आर्तनाद। इस वास्ते यहां पर यह देखना आवश्यक है कि दुर्भिक्ष के जड़ पर कुठार देने का सरल वा समयानुकूल उपाय हो सकता है या नहीं? कृषक ही दुर्भिक्ष के लक्ष्य हैं, वे ही सब से अधिक इससे दुःख पाते हैं। क़िस्मत का फेर है जो दुनियां को अन्न देते हैं वे ही दुर्भिक्ष के पंजों में जकड़े जाकर भूख से प्राण गवांते हैं—

यह क्यों ?

पुराने समय के कृषकों की दशा में और अब उनकी दशा में ज़मीन आस्मान का अन्तर है। अब कृषी का वह आदर नहीं, वह मान नहीं, वह गौरव नहीं। पुरानी प्रथा का परिवर्तन होगया। कृषि कर्म नीच व अपमानजनक समझा जाने लगा है। कृषकों का दिल टूट गया है।

अब यहां पर प्रश्न उठता है कि भारत में पुराने समय में भी दुर्भिक्ष हुआ करते थे या नहीं? महाभारत में सम्वर्ण राजा के राज्य में एक घोर दुर्भिक्ष का वर्णन है और रामायण में अङ्ग देश के राजा रोमपाद के समय में भी अनावृष्टि के कारण एक महाकठोर दुर्भिक्ष का वर्णन है, पर उन दोनों दुर्भिक्षों का होना उन राजाओं के ही पाप का फल बतलाया गया है।

इस कारण कृषकों की दशा व स्थिति पर लोगों का विशेष ध्यान रहता था। उनको सब से प्रथम सहायता देने की चेष्टा करना राजा का मुख्य कर्तव्य होता था। उनकी भलाई व बुराई का ध्यान रखना राजा का कर्म था।

एक बार जब नारद जी महाराज युधिष्ठिर से मिले तो उन्होंने पहिला प्रश्न राजा से कृषि व कृषकों के बारे में पूछा था।

कच्चित स्वनुष्ठिता तात वार्त्ता ते साधुभिर्जनैः।
वार्त्तायां संश्रिता स्तात लोकोऽयं सुखमेधते॥

वत्स तेरे राज्य में कृषि व वाणिज्य तो साधु मनुष्यों से भली प्रकार किया जाता है क्योंकि प्रजा के सुखी व प्रसन्न रहने का मुख्य कारण कृषि व वाणिज्य ही है।

पर इससे यह न समझना चाहिये कि भारतवर्ष में दुर्भिक्ष आजकल के समान बराबर ही पड़ते रहते थे। उस काल में दुर्भिक्ष बहुत कम होते थे और जब होते भी थे तो प्रजा में बड़ी खलबली मच जाती थी और वह किसी घोर पाप का फल बतलाया जाता था। केवल अनावृष्टि ही दुर्भिक्ष का कारण नहीं हो सकती है। यों तो किसी एक कारण के सिर दुर्भिक्ष का होना निर्माण करना बहुत सरल है पर अभी तक यह साबित नहीं हुआ है कि पहिले समय के समान वृष्टि अब नहीं होती अथवा बहुत कम होती है। इस वास्ते दुर्भिक्ष का इतना शीघ्र २ होना और वर्षों तक रहना क्योंकर समझ में आसकता है तिस पर भी एक बात और है। पहिले समय में आजकल के समान दुर्भिक्ष रोकने व पीड़ित मनुष्यों को सहायता देने का उपाय नहीं किया जाता था। पहिले पुराने मनुष्यों के समय में उन नये २ उपयोगी कृषिसम्बन्धी औज़ारों, नहरों, खाद्य, यन्त्रों का आविष्कार नहीं हुआ था जिससे आजकल के वैज्ञानिक अनावृष्टि में भी भूमि को उपजाऊ बनाने का दावा करते हैं। तब इतने शीघ्र दुर्भिक्ष होने का क्या कारण दिया जा सकता है? चारों ओर वैज्ञानिक उन्नति देखकर तो ऐसा समझ में आता है कि दुर्भिक्ष होही नहीं सकते फिर इनसे पीड़ित मनुष्यों का आर्तनाद क्योंकर सुनाई पड़ता है? इसके विपरीत पाश्चात्य राष्ट्रों में जिनकी भूमि न तो गङ्गा, यमुना, ब्रह्मपुत्र समान नदियों से सींची जाती हैं और न पर्वतराज हिमालय समान पर्वत श्रेणी से सुशोभित हैं दुर्भिक्ष बहुत कम सुनाई पड़ते हैं।

इसका कारण क्या है ?

पुराने समय का हमारा यह आदर्श कि कृषि बिना वर्षा भी हो सकती है कहां लोप हो गया:—

सुकृष्टसीमा पशुमान् हिंसाभि रभिवर्जितः।
अदेव मातृकोरम्यः आपद्दैः परिवर्ज्जितः॥

साधारणतः तो यह समझा जाता है कि यह उपर्युक्त आदर्श पहिले के समान अब भली भांति कृतकार्य होसकता है क्योंकि पृथ्वी के

नीचे से पानी खींचने के कई एक वैज्ञानिक यंत्रों का, जिनका नाम भी पुराने मनुष्यों को मालूम न था, अब आविष्कार होगया है। ऐसी दशा में अनावृष्टि से इतनी हानि क्यों होती है?

हमें तो यह मालूम होता है कि दुर्भिक्ष का होना कुछ हमारे ही पापों का फल है, कुछ हमारी ही कापुरुषता का परिचय है। आजकल के दुर्भिक्षपीड़ित मनुष्यों को सहायता देने की प्रथा से कुछ विशेष लाभ नहीं होता है जैसे कि इन चार २ पाँच २ वर्ष के ही पश्चात दुर्भिक्षों के होने से साफ साबित हो रहा है। इस प्रकार टल्ले मारने से तो काम न चलेगा। आज इधर टल्ला मारा कल उधर फट गया, उधर टल्ला मारा इधर फट गया। इससे ये ही होगा कि कुछ समय पश्चात् सहायता देने वालों को अरुचि हो जांयगी और लेनेवाले सदा के मँगते हो जांयगे किन्तु दुर्भिक्ष कम न होंगे। इस वास्ते हमको यह देखने का प्रयत्न करना चाहिये कि दुर्भिक्ष का

समूल विनाश कैसे हो सकता है?

हम जड़ में पानी न देकर लता व पत्ते सींचने का प्रयत्न करते हैं जिससे एक न एक दिन वृक्ष निश्चय ही सूख जावेगा। हमको दुर्भिक्ष के समूल विनाश करने का उपाय ढूढ़ने को दूर नहीं जाना पड़ेगा। यदि हम अपने पूर्वजों की कृषि सम्बन्धी प्रणाली को ध्यान से देखंगे तो हमें वह उपाय सहलही हाथ आजायगा। कोई सभ्य देश यह नहीं भूल सकता है कि सारे राष्ट्र को धान्य से तृप्त करने का भार जितना उसके कृषकों पर उतना ही अन्य मनुष्यों पर भी है। सारा पाश्चात्य देश इस बात को भली भांति जानता है और यदि आवश्यकता पड़ती है तो प्रजा व राजा दोनों ही कृषि को धन से सहायता करने में तनिक भी न हिचकिचाते। पाश्चात्य देश कभी भी अपने कृषकों के ऊपर किसी प्रकार का भार जिससे कृषि में कुछ हानि होने की सम्भावना हो नहीं आने देते। वे जहांतक हो सहायता दे कृषकों के भार को हलका करने का प्रयत्न करते हैं। इसका फल यह है कि यद्यपि पाश्चात्य देश विशेष कर इङ्गलैंड जितना धान्य पैदा करता है उससे कहीं अधिक खा डालता है पर तब भी वहां दुर्भिक्ष न होते हैं और न उनका वहां पर होना ही सम्भव है। वहां कभी पानी का अकाल तो पड़ सकता है पर दुर्भिक्ष कभी न पड़ सकता। प्राचीन भारत को यह बात भली प्रकार मालूम थी। इसी कारण से भूमि कर का लगान उस समय भूमि की पैदावारी पर निर्भर किया गया था। जितनी उपजाऊ भूमि रहती थी उसके ही अनुसार उसका पञ्चमांश, अष्टमांश इत्यादि उस पर लगान राजा को दिया जाता था।

धान्यानामष्टमो भागः षष्ठो द्वादश एव वा।

इसका फल यह होता था कि दुर्भिक्ष के कारण राजा के कोष में भी उतनी ही कमी आती थी जितनी कि एक सामान्य कृषक के। दुर्भिक्ष का प्रभाव जितना गरीब कृषकों पर पड़ता था उससे कहीं अधिक राजा पर। इस कारण अनावृष्टि के समय में भूमि को कुएँ, तालाबों, नहरों इत्यादि कृत्रिम रूपों से सींचे जाने का यत्न राजा को भी उतना ही करना पड़ता था जितना कि कृषकों को। भूमि को कृत्रिम रूप से उपजाऊ बनाने में राजा भी उतना ही दत्तचित्त रहता था जितना कि ज़िमीदार अथवा कृषक। इसका प्रतिफल क्या होता था? हमारे पुराने संस्कृत के साहित्याचार्य आप को बतला देंगे। कृषि की चारों ओर से उन्नति होती थी और जिधर देखिये हरी भरी भूमिही दृष्टिपड़ती थी। "उर्द्धशस्या भवद्भूमि शस्यानि फलवन्ति च"। उन दिनों सारा देश धन धान्य से सम्पूर्ण था। पेट भर जाने पर अनेक महान पुरुष आत्माविद्योन्नति, वैज्ञानिक उन्नति, धर्म की उन्नति, समाज की उन्नति इत्यादि की ओर दत्तचित होते थे। कृषकगण आनन्द से रहते

थे। चारों ओर सुख छाया रहता था। इस वास्ते कृषि की वैज्ञानिक रूप से उन्नति और कृषकों की सामाजिक उन्नति करने ही से हम दुर्भिक्ष के मूल में कुठार मार सकते हैं।

आजकल जैसे हमारी कृषि की स्थिति है उससे ज़मींदार स्वयं कृषि की ओर कुछ ध्यान नहीं देते। वह उस ओर ध्यान देना अपमानजनक समझते हैं। जबतक सरकारी लगान बराबर चुकाया जा रहा है और मालिकाना बराबर आता जा रहा है तब तक उनको कुछ परवाह नहीं है कि असामियों की स्थिति कैसी है ? वे मर रहे हैं अथवा ज़िन्दा हैं ? यदि कोई उनका असामी (कृषक) किसी प्रकार से अपनी उन्नति करने की चेष्टा करे तो वे लाल २ आंखें दिखाते हैं क्योंकि फिर उनका वैसा मान, वैसा आदर, वैसी प्रभुताई न रहने पावेगी। यदि किसी प्रकार से इन ज़मींदारों को दुर्भिक्ष से शारीरिक अथवा मानसिक कष्ट उठाना पड़ता या स्वयं कृषि की देख भाल करनी पड़ती या उपजाऊ न होने के कारण ज़मीन से मालिकाना कम आता तब तो वे ज़मीन आस्मान एक करके अनावृष्टि के समय वैज्ञानिक यन्त्रों की सहायता ले अपने आप अपने लिए भूमि को उपजाऊ बनाने की चेष्टा करते।

आजकल बहुत से स्थानों में हमें जो टूटे फूटे मिट्टी से भरे हुये तालाब, कुएँ, नहर इत्यादि मिलते हैं उनसे साफ प्रगट होता है कि पुराने समय में कृषि पर मनुष्यों का कितना ध्यान रहता था। उन दिनों का आदर्श था "न कृषि देवमातृका" कृषि केवल वृष्टि पर ही निर्भर नहीं है।

कृषि सम्बन्धी बहुत से ऐसे कर्तव्य हैं जिनको केवल राष्ट्र ही कर सकता है और बहुत ऐसे हैं जिनको राष्ट्र के धनिक ही कर सकते हैं। यदि इनमें से कोई भी समयानुसार सहायता न पहुंचावें तो कृषकों के हज़ार प्रयत्न और शारीरिक उद्योग करने पर भी उनका दुःख दूर नहीं हो सकता है।

दुर्भिक्ष के होने का एक कारण यह भी हो सकता है कि हम राष्ट्र के भिन्न २ व्यवसायी मनुष्यों की स्थिति व कर्तव्य को भली भांति नहीं जान सके हैं। किस का क्या कर्तव्य है, क्या काम है, कितना आदर किस का होना चाहिये इत्यादि बातों को हम कुछ भी नहीं जान सके हैं। इससे ज़मींदार ज़मीन से लगान व मालिकाना वसूल कर और कुछ अपना काम नहीं समझता। ज़मींदार हमारी घरेलू बिल्लियों के समान घी खाना तो जानते हैं पर घी के बनाने में प्रयत्न करना वे अपना कर्तव्य नहीं समझते। उनको कृषि को सुधारने से कुछ प्रयोजन ही नहीं है।

प्राचीन समय के समान यदि समाज के भिन्न २ मनुष्य अपने २ कर्तव्य को धर्म के समान उच्च समझ कर पालन करने की चेष्टा करें और एक दूसरे की स्थिति को देखकर सुधारने एवं सहायता देने का प्रयत्न करें तो हमारे पूर्वजों के समान वे भी कभी दुर्भिक्ष की कठोर लपक से दग्ध न हों।

दुर्भिक्षों के होने का यही कारण हो सकता है। वृष्टि पर दोषारोपण करना वृथा है यदि प्राचीन समय में दुर्भिक्ष नहीं होते थे तो अब बीसवीं शताब्दी के वैज्ञानिक समय में उनका होना आश्चर्यजनक है ?

आदर्श हमारे सामने है; समय हमारे पास है, आवश्यकता हमें है, राम राज्य के समान सुखी हम अपने बृटिश राज्य में हैं, कृषि सम्बन्धी पुस्तकें व कृषिकालेज हमारे निकट हैं, तब हम क्यों न नेत्र खोलें अपना कर्तव्य समझें।

पुस्तकालय
कांगड़ी

बलि-प्रदान।

(डीपोवालों की करतूत)

[लेखक–पं० माधव शुक्ल ।]

विपत प्लेग दुष्काल गरीबी
ने इतना नहिं नाश किया।
जैसा हमको दुशमन डीपो
वालों ने बरबाद किया॥
देखो भरी हुई दुःखों की
किन की करुणा से सानी।
सिंधुपार से संग हवा के
आती रोने की बानी॥
झलक रहा जिसमें भाईपन
अजब भाव सरसाती है।
कुछ बचपन का प्रेम याद कर
फटती जाती छाती है॥
हाय वही वे हम जिनके संग
खेले खाये संग रहे।
प्यारे भाई वही बिछुड़ कर
हम से दुख में डूब रहे॥
बचो २ देखो यह जालिम
कौन चला यां आता है।
जो मेरे भोले बच्चों को
हँस २ कर फुसलाता है॥
अरे चला जा रे पापी
वह चार दिनों का भूखा है।
देख देख निर्दय उसका मुख
कैसा व्याकुल सूखा है॥
तेरे हित भी पापी! उसने
लाखों कष्ट उठाया है।
आज नहीं है पास कुछ उसके
इससे बाहर आया है॥
मारे हुये काल के मूरख
देख उठाकर टुक आँखी।
और न प्यारे बच्चो तन पर
केवल हड्डी है बाकी॥
इन पर जादू कर हत्यारे
कितना द्रव्य कमायेगा।
मरे हुओं को मार मार कर
क्या फल पापी पायेगा॥
हाय! न माना ज़ालिम तूने
उन्हें जाल में बाँध लिया।
स्त्री बच्चे उस गरीब के
एक मकान में धाँध दिया॥
हाय कहाँ तीरथ को आया
माँ का एकी बेटा है।
उसका प्यारा आज काल की
कठिन गोद में लेटा है॥
हाय! हाय!! यह क्या है
घर है या कोई है कारागार।
नहीं नहीं ये सब निर्दोष हैं
नहीं हुये दंडित सरकार॥
तब भी क्यों कर फिर यह ज़ालिम
अंग हमारे काट रहा।
गवर्नमेंट का भी क्या इसको
नहीं तनिक भी ख़ौफ रहा॥
हाय २ देखो ये चढ़ कर
अब जहाज़ पर जाते हैं।
आओ भाई रोलें हमसे
ये सब बिछुड़े जाते हैं॥
प्रेम बन्धुओ तनिक देख लो
अब जाते हो और कहीं।
मैं रोता रह जाऊंगा फिर
तुम आओगे लौट नहीं॥

पुराने अकालों की कथा।

[स्वर्गवासी आर० सी० दत्त।]

इंडियन फेमिन कमीशन की रिपोर्ट जो १८८० और ९८ में प्रकाशित हुई है उसको पढ़ने से चित्त दुःखी होता है। महँगी को अलग रखकर १७७० से १८७८ तक में कुल १८ अकाल पड़े। १८८९. १८९२. १८९७ और १९०० के अकालों की संख्या जोडने से १३० बर्ष के बृटिश शासन में भारत में २२ बिकराल अकाल पड़े।

१७७० का बङ्गाल का अकाल।

पहला भीषण अकाल जिसने अङ्गरेज़ों का ध्यान आकर्षित किया बङ्गाल का अकाल था। सब अकालों की भांति अनावृष्टि ही इसका निकटस्थ कारण था किन्तु यह मानी हुई बात है कि ईस्ट इन्डियो कम्पनी का बुरा बन्दोबस्त और शासन और भारतीयों की गरीबी के कारण ही अकाल बहुत बिकराल हुआ और बहुतसी जानें गईं। डाइरेक्टरों की कोर्ट ने अपने नौकरों की बेईमानी और लूट पर खेद प्रकट किया था किन्तु वे इन ज़्यादतियों को रोकने में तब तक समर्थ नहीं हुए जब तक कि अकाल ने प्रजा की वास्तविक दशा का उन्हें दिग्दर्शन नहीं कराया। एक सभ्य ने जिसने स्वयम् घूम घूम कर जांच की थी लिखा है कि बङ्गाल की तिहाई आबादी अर्थात् १,००,००,००० मनुष्य उस अकाल में मरे थे। इस दशा को देखकर पार्लमेंट ने शासन की सुव्यवस्था के लिए १७७३ में रेगुलेटिङ्ग ऐक्ट पास किया।

१७८३ का मदरास का अकाल।

१७८३ में मदरास में अकाल पड़ा। इसका सच्चा कारण वारन हेस्टिङ्गस और मैसूर राज्य की लड़ाई है। इसका कुछ पता नहीं है कि इस अकाल में कितने मनुष्य मरे थे।

१७८४ का उत्तरीय भारत का अकाल।

इस समय उत्तरीय भारत पर अङ्गरेज़ों का शासन नहीं था किन्तु अङ्गरेज़ी अफसर नवाब की फौज पर हुकूमत करने को भेजे जा चुके थे। तत्कालीन ज़बर्दस्ती के अनुसार इन लोगों ने आय, लगान वगैरः अपने व्यक्तिगत मुनाफे के लिए वसूल की थी। हज़ारों आदमी इस कारण से बागी हो गये किन्तु बड़ी निर्दयता के साथ वे कब्ज़े में किये गये। कैप्टन एडवर्ड दो बार १७७४ और १७८३ में अवध घूमने गये थे। पहले बार उन्होंने अवध में कृषि, वाणिज्य और कारखानों आदि को बहुत अच्छी अवस्था में देखा था। दूसरी बार अवध उन्हें निर्जन मिला। वारन हेस्टिङ्गस ने स्वयम् ही बिहार के अकाल की दशा को देखकर लिखा था कि "सूखे के कारण साधारण असन्तोष बढ़ गया है किन्तु हमें भय है कि वास्तविक कारण बुरा बन्दोबस्त था (I have reason to fear that the cause existed principally in a defective, if not a corrupt and oppresive administration.) बक्सर से उस पार तक उजड़े ग्रामों के सिवाय हमने कुछ नहीं देखा"। जांच होने पर मालूम हुआ कि बनारस राज्य की एक तिहाई ज़मीन पर खेती करना लोगों ने छोड़ दिया है। मृत्युसंख्या विदित नहीं है। १७८४ में पिट साहब के उद्योग से भारत के सुशासन के लिए एक बिल पास हुई।

१७९२ का बंबई और मदरास का अकाल।

इस अकाल में पहले पहल रिलीफ वर्क्स (अकाली काम) खोले गये थे। इसी अकाल के बाद लार्ड कार्नवालिस ने बङ्गाल में डंकनी या स्थायी बन्दोबस्त किया। बन्दोबस्त होने के

जाए तो बङ्गाल में कभी भीषण अकाल नहीं पड़ा है।

१८०३ का बंबई का अकाल।

महरठा युद्ध के कारण खेत बोये नहीं गये थे और इसी कारण से अकाल पड़ा था। बाहर से गल्ला मंगाकर बंबई में बेचा गया और गल्ले की रफ़्तनी बन्द कर दी गई। अस्पताल और रिलीफ वर्क्स आदि भी सूरत और बंबई में खोले गये थे।

१८८३ का मदरासी अकाल।

उत्तरीय भाग में भीषणता अधिक थी। कष्ट को कम करने के लिए नाममात्र का प्रयत्न किया गया था। यह अनुमान किया गया था कि ५,००,००० की गंटोर की आबादी में से २०,००० मनुष्य मरे थे। झुंड के झुंड मनुष्य मदरास की सड़कों पर मरे दिखाई देते थे। मछलीपाटम में भी यही दशा थी और नेलोर में तो सड़कें लाशों से भरी पड़ी थीं।

१८३७ का उत्तर भारतीय अकाल।

ज़मीन के सबन्ध में कुछ बन्दोबस्त हुआ था किन्तु लगान तब भी अधिक थी। १८३७ में वर्षा नहीं हुई और अकाल पड़ा। मि० जान लारेन्स ने लिखा था कि ऐसा उजाड़ हमने पहले कभी नहीं देखा था। मृत्युसंख्या बहुत थी। कानपुर में कुछ मनुष्य इसीलिए सड़कों और नदी के किनारे पर घूमा करते थे कि वे मुर्दों को उठा कर ले जायँ। आगरे और फतेपुर में भी ऐसी ही दशा थी। बहुतसी जगहों में सड़कों पर मुर्दे तब तक पड़े रह जाते थे जब तक कि जंगली जानवर उन्हें न खा जाते। गवर्नमेंट की उस समय नीति थी कि वह काम कर सकने के लायक़ मनुष्यों को काम दे, बाकी कमज़ोर निस्सहाय मनुष्यों का पालन सर्वसाधारण जन करें। कर्नल वेयर्ड स्मिथ के हिसाब से उस अकाल में ८,००,००० मनुष्य मरे किन्तु फेमिन कमीशन की राय में यह संख्या बहुत कम थी।

१८६० का उत्तर भारतीय अकाल।

गवर्नमेंट की नीति वही थी किन्तु इस अकाल में सर्वसाधारण की तरफ से पका खाना बांटा जाता था। १० मास तक रिलीफ वर्क्स पर ३५,००० मनुष्य काम करते थे। ८०,००० मनुष्यों को सहायता मिल रही थी। सर ए० काटन के हिसाब से इस अकाल में २०,००० मनुष्य मरे। अकाल के कारण की जांच करने के लिए कर्नल ए० वेयर्ड नियुक्त हुए थे और उन्होंने कहा था कि बङ्गाल की भांति सब स्थानों में स्थायी बन्दोबस्त हो जाना चाहिये। तत्कालीन वाइसराय लार्ड केनिङ्ग और भारत-सचिव ने इस प्रस्ताव का ज़ोर के साथ अनुमोदन किया था किन्तु खेद के साथ कहना पड़ता है कि जनसाधारण की भलाई की अपेक्षा लगान की ओर अधिक ध्यान होने से, यह प्रस्ताव स्वीकृत नहीं हुआ और १८८३ में यह प्रस्ताव रद्द हो गया। यदि यह प्रस्ताव स्वीकृत हो जाता तो फिर भारत को बाद में पड़नेवाले अकालों के मुख देखने का सौभाग्य न प्राप्त होता।

१८६६ का उड़ीसा का अकाल।

यद्यपि १२,००० मनुष्य रिलीफ वर्क्स पर काम कर रहे थे और ३१,००० मनुष्यों को सहायता मिल रही थी तथापि इस अकाल में मृत्युसंख्या में ४,५०,००० की वृद्धि हुई। अन्न पहुंचाने का बन्दोबस्त न होने के कारण अकाल की तिहाई आबादी 'हा अन्न! हा अन्न!!' कहती हुई इस लोक से बिदा हो गई।

१८६९ का उत्तर भारत्तीय अकाल।

अकाल और हैज़े ने राजपूताने पर १८६८ में हमला किया। ६५००० मनुष्य सहायता के कामों पर १२ मास तक काम कर रहे थे,

१८००० मनुष्य उस समय सहायता प्राप्त कर रहे थे किन्तु तब भी यह अनुमान किया गया कि १२,००,००० मनुष्यों की अकाल के कारण मृत्यु हुई।

१८७४ का बङ्गाल का अकाल।

लार्ड नार्थब्रुक के सुप्रबन्ध के कारण कहा जाता है कि भूख से एक भी मनुष्य उस अकाल में नहीं मरा। ७,३५,००० मनुष्य रिलीफ वर्क्स पर काम कर रहे थे और प्रायः ४,५०,००० मनुष्यों को सहायता दी जाती थी और सब अकालों की गाथा गाकर हम पाठकों का समय नहीं लिया चाहते। कोई भी मनुष्य भारतीय अकालों की गाथाओं को पढ़कर बिना द्रवित हुए नहीं रह सकता। गत शताब्दी और इस शताब्दी के पहले भाग के अकालों के कारण हैं। एक शासन के बाद जब दूसरी शक्ति प्रधानता प्राप्त करती है तब युद्ध, गड़बड़ आदि ज़रूरी हैं। मोगलों के अन्त में जब महाराष्ट्रों और अफगानों का ज़ोर था युद्ध और नाश चारो तरफ मू बाये फिरते थे। जब अङ्गरेज़ों ने अखाड़े में पैर रक्खा उस समय भी युद्ध हुए जिनके कारण कृषि नहीं हुई और सीधे सादे शान्तिमय ग्राम के रहनेवालों में अशान्ति फैली। इसके साथ ही ईस्ट इंडिया कम्पनी का बुरा शासन और नई शक्ति के प्रधानता प्राप्त करने के समय की अनिवार्य गलतियां भी उस समय के अकालों के कारणों में गिनी जा सकती हैं। किन्तु अब ये बातें नहीं रह गई हैं। १८५८ से भारत में शान्ति राज्य कर रही है, एक भी लड़ाई उस समय से नहीं हुई है, ज़मीन उर्वरा है, भारतवासी राजभक्त, शान्तिप्रिय, मेहनती और कमखर्च हैं।

अङ्गरेज़ मुंतज़िमों की पीढ़ियां की पीढ़ियां भारत के शासन में शिक्षा पा चुकी हैं किन्तु अकाल अब भी पड़ते ही जाते हैं। मोटे से मोटे हिसाब से भारतीय १० अकालों में प्रायः १,५०,००,००० मनुष्यों की मृत्यु हुई है। वर्तमान समय में किसी भी सभ्य शासित देश में ये बातें नहीं दिखाई देतीं। यह कहा जाता है कि लोग फजूलखर्च हैं, महाजन सूद बहुत लेते हैं या यह कि जनसंख्या में वृद्धि हुई है। विचार की कसौटी पर कसने से ये बातें असत्य दिखाई देती हैं। भारतीय जनसंख्या में वृद्धि इङ्गलैंड, वेल्स और अन्य देशों की अपेक्षा बहुत कम है। भारतीय किसान फज़लखर्च नहीं हैं वरन समस्त संसार के किसानों की अपेक्षा मितव्ययी हैं। बनियों का अधिक सूद लेना कारण नहीं वरन यह किसानों की गरीबी का फल है। सच्चे हृदय से यदि हम लोग भारतीय अकालों के कारणों को सोचने बैठें तो वह हमें सहज ही में मालूम हो सकते हैं। निकटस्थ कारण अनावृष्टि है किन्तु जब तक देश में उचित सुव्यवस्थित आबपाशी और सींचने का बन्दोबस्त नहीं हो जाता, यह कारण सदा ही बना रहेगा। किन्तु अकालों के भीषण होने और जल्दी जल्दी पड़ने का कारण किसानों का दीन हीन दशा है और इसका एक मात्र कारण उस ज़मीन पर, जिसपर उनका जीना निर्भर है, अधिक लगान का होना है।

अब युद्ध नहीं होते किन्तु शान्ति के साथ ही साथ शासन के खर्च या जनसाधारण के कर्ज़ में कमी नहीं हुई है। दुनियाभर में भारत सब से अधिक खर्च से विदेशीय शासन द्वारा रक्षा प्राप्त कर रहा है और एक तिहाई या आधी आय का रुपया भारत से प्रतिवर्ष बाहर भेज दिया जाता है। देश में इसी रुपये की सहायता से औद्योगिक और व्यापार-सम्बन्धी उन्नति हो सकती है। आमदनी में लगान प्रधान है और इस भाँति सबसे अधिक बोझ भारतीय किसानों पर पड़ता और उन्हें गरीब किये देता है। अच्छी फसल के समय में वा व कुछ नहीं बचा सकते और इस कारण से सूखे के साथ ही साथ अकाल का जन्म हो जाता है।

वर्तमान अवस्था।

इस समय अकाल तो संयुक्तप्रान्त के कई भागों में है परन्तु बुन्देलखण्ड डिवीज़न और इटावा ज़िले में लोगों को सब से अधिक कष्ट है। वर्तमान अकाल की एक विशेषता यह है कि मनुष्यों की अपेक्षा पशुओं की विपत्ति अधिक भयानक है। चारे की तेज़ी और कमी से बहुसंख्यक कृषक तथा अन्य लोग मवेशियों को रखने में असमर्थ हो गये हैं। इसी अवसर पर कई स्थानों में पशुओं में बीमारी का भी प्रकोप हुआ है जिससे विपत्ति और बढ़ गई है। स्वभावतः इसका परिणाम यह हुआ है कि पिछले कुछ महीनों में पशुओं की एक बड़ी संख्या कसाइयों के हाथ बेंची जा चुकी है और अब भी यही हाल है। म्यूनिसिपलिटियों की आमदनी आदि के अंक इस बात के प्रमाण में प्रकाशित हो चुके हैं।

अकालपीड़ित मनुष्यों और पशुओं की सहायता का कार्य विशेषतः १९१३ ई० के अन्त से हो रहा है। गैर-सरकारी प्रबन्ध द्वारा सहायता पहुँचाने का कार्य मार्च में आरम्भ हुआ। गत २१ फरवरी को प्रयाग में मान० पंडित सुन्दरलाल की अध्यक्षता में 'संयुक्तप्रान्तीय अकालपीड़ित-रक्षिणी सभा' संगठित हुई जिसकी कार्यकारिणी समिति के सभापति डा० सतीशचन्द्र बनर्जी नियुक्त किये गये। यह कह देना आवश्यक है कि इस सभा का कार्य प्रधानतः मि० गोखले की भारत-सेवक-समिति की प्रयागस्थ शाखा के सभ्यों के सहयोग से चल रहा है। ये गैर-सरकारी कार्यकर्ता अपने कोष की दशा के अनुसार बहुत उचित रीति से और प्रशंसनीय उत्साह एवं परिश्रम के साथ अपना काम कर रहे हैं। अकाल के समय सरकारी प्रयत्न के अतिरिक्त गैर-सरकारी उद्योग की भी आवश्यकता होती है, इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं। अकालपीड़ितों की सहायता के सम्बन्ध में सरकारी प्रबन्ध कभी इतना व्यापक और उदार नहीं हो सकता कि गैर-सरकारी उद्योग की आवश्यकता ही न रहे। वर्तमान अकाल में गैर सरकारी उद्योग की आवश्यकता और भी प्रबलता के साथ सिद्ध हो गई है।

पशुओं की सहायता।

सरकार की ओर से जो अकाल-सम्बन्धी कमेटी बनाई गई है वह ज़रूर अपने ढँग पर अपना काम कर रही है और निस्सन्देह लोगों को उससे बड़ी सहायता भी मिल रही है, किन्तु फिर भी खेद के साथ यह स्वीकार करना पड़ेगा कि बेचारे मूक पशुओं की सहायता के सम्बन्ध में सरकार और सरकारी कमेटी की नीति बड़ी ही अनुदार है। इसी कारण गैर-सरकारी सभा पर इस काम का बोझ बेतरह पड़ा है। किन्तु यह स्पष्ट है कि सभा का कोष परिमित और सहायता का क्षेत्र असाधारणतः विस्तृत है। यदि इस विषय में सरकार वैसी ही संकीर्ण बनी रहेगी जैसी कि वह इस समय है तो परिणाम बड़ा ही शोचनीय होगा और पशुओं को भारी संकट का सामना करना पड़ेगा। डा० सतीशचन्द्र बनर्जी ने हाल ही में इस सम्बन्ध में एक बहुत ही महत्वपूर्ण और ध्यान देने योग्य प्रार्थनापत्र प्रान्तीय सरकार की सेवा में भेजा है और हम सब लोग बड़े ही हताश हो जायँगे यदि सरकार उसके कुछ अंश को भी स्वीकार करने में अपने को असमर्थ साबित करेगी। इस प्रार्थनापत्र का कुछ आशय यहाँ लिखना अनावश्यक न होगा। पशुओं की सहायता के नाम से सरकार ने अभीतक इतना ही किया है कि मध्यप्रदेश के ५ स्थानों से और संयुक्तप्रान्त के किसी भी स्थान से अकालपीड़ित स्थानों को जानेवाले चारे पर रेलवे महसूल घटा दिया है। किन्तु कहने की आवश्यकता नहीं कि यह कोई बड़ी रियायत नहीं

W1173

है। संयुक्तप्रान्त के भीतर सस्ते मूल्य पर चारा मिलता नहीं। सस्ते मूल्य पर और बहुतायत से यदि चारा खरीदना हो तो पंजाब से अथवा प्रान्त के बाहर के कुछ अन्य स्थानों ही से मँगवाना होगा। किन्तु प्रान्त के बाहर से चारा मँगवाने के लिए सरकार महसूल में रियायत करने पर राज़ी नहीं होती! सभा की प्रार्थना है कि देशभर में जहाँ कहीं चारा मिल सके वहाँ से उसे मँगवाने की सरकार सुविधा कर दे। १९११-१२ में गुजरात में जो अकाल पड़ा था उसमें भी बम्बई सरकार ने इसी उपाय का अवलम्बन किया था। दूसरी शिकायत यह है कि रेलवे कम्पनियों ने समझ लिया है कि वर्तमान अकाल में हमारा कोई कर्तव्य नहीं है। १९०७-०८ और १९११-१२ में रेलवे कम्पनियों ने चारे पर महसूल आधा कर दिया था। न जाने इस समय कौनसी बात उन्हें ऐसा करने से रोकती है। सरकार को उचित है कि वह उनपर दबाव डालकर महसूल में रियायत करवाये। सभा ने एक और बात कही है और इसी बात पर मेरठ की कानफरेंस में भी ज़ोर दिया जा चुका है। "प्रचलित नियमों के अनुसार चारा प्रान्त के एक सिरे से दूसरे सिरे तक रियायती महसूल पर ढोया जा सकता है। अर्थात् सहारनपुर से झाँसी तक और गोरखपुर और बलिया से मथुरा तक—यह ५०० मील से अधिक का फासला है। अब यदि वर्तमान प्रान्तीय मर्यादा के स्थान में फासले की मर्यादा नियत की जाय, अर्थात् प्रत्येक अकालपीड़ित स्थान के लोगों को यह अधिकार दिया जाय कि वे एक नियत फासले के भीतर के किसी स्थान से—चाहे वह स्थान संयुक्तप्रान्त के अन्दर हो या बाहर—रियायती महसूल पर चारा मँगवा सकें।" इस उपयोगी बात को मानने में यद्यपि सरकार का एक पैसा उस रकम से अधिक खर्च नहीं होगा जिसको खर्च करने के लिए वह इस समय तैयार है तथापि लोगों को इससे बड़ा सुभीता हो जायगा।

बुन्देलखंड में सहायता का कार्य ।

गैर-सरकारी सभा की ओर से उरई, जालौन, और कालपी में 'स्थानीय कमेटियाँ' बना दी गई हैं। सभा के कोष का अधिकांश भाग पशुओं की सहायता में खर्च हो रहा है। पशुओं की सहायता दो प्रकार से की जा रही है, प्रथमतः 'पशु-शालाओं' (Cattle camps) द्वारा और द्वितीयतः सस्ते मूल्य पर चारा बेंचनेवाली दूकानों द्वारा इन दूकानों से उन्हीं लोगों को सहायता मिल सकती है जिनमें चारा खरीदने की कुछ सामर्थ्य है। सभा द्वारा स्थापित पशुशालाएँ दो हैं, एक जालौन में, दूसरी कालपी में। इनमें सब मिलाकर २६० जानवर हैं। इनके मालिक ब्राह्मण, ठाकुर, मुसलमान सभी जातियों के हैं। एक मनुष्य के एक या दो से अधिक जानवर नहीं लिये जाते। सभा उन्हीं लोगों की सहायता करती है जिनकी दशा की जांच पहले कर लेती है।

अप्रेल के अन्त तक सस्ते चारे की दूकानों द्वारा करीब पाँच हज़ार मन भूसा ११५०) की हानि सहकर गरीबों के हाथ बेंचा जा चुका है।

मनुष्यों की सहायता ।

गरीब भले आदमियों, निस्सहाय और वृद्धा विधवाओं को भी गैर-सरकारी सभा की ओर से सहायता दी जा रही है। अप्रेल के अन्त तक १०००) इस मद में खर्च किये गये और करीब ५०० लोगों को मदद दी गई। इस विपत्ति के समय में बहुत से विद्यार्थी भी मदरसे छोड़कर अकाली कामों पर चले गये थे। इसलिए कर्वी के सब-डिप्टी इंस्पेक्टर आफ़ स्कूल्स को १००) नकद और अधिक का वचन देकर सभा ने एक बहुत ही उचित और प्रशंसनीय कार्य किया है। इस रकम से उन विद्या-

र्थियों को सहायता दी जा रही है जो अकाली कारों से लौटकर स्कूलों में आकर पढ़ने लगे हैं। गत मास में इस प्रकार ६० विद्यार्थियों को सहायता दी गई। सभा अपना कार्य कई महीने तक जारी रखना चाहती है। आगामी दो महीनों में लोगों की सहायता करने की आवश्यकता और भी बढ़ जागयी। इसलिए अधिक धन और कार्यकर्ताओं की ज़रूरत होगी।

गर्मी के कारण सभा को कई स्थानों में पीने योग्य पानी का भी प्रबन्ध करना होगा। सभा ने उरई में अनाथों को रखने और पालने की भी व्यवस्था की है। अभी तक ५ अनाथ आये जिनमें से २ को उनके सम्बन्धी ले गये हैं, एक अस्पताल में है और २ सभा के संरक्षण में हैं।

अन्य कार्यकर्ता।

बुन्देलखंड में कुछ अन्य कार्यकर्ता भी सहायता पहुंचा रहे हैं। बम्बई की अन्न-व्यवसायी-समिति की ओर से बाँदा और महोबे (हमीरपुर) में २ पशुशालाएँ खोल दी गई हैं। इसी समिति के धन से इन्हीं दोनों ज़िलों के ५ स्थानों में मनुष्यों को भी मदद दी जा रही है। कई स्थानों के व्यापारी और ब्रह्मसमाज भी बुन्देलखंड में मदद बाँट रही है। बाँदा नगर में बाबू अविनाशचन्द्र मज़ूमदार मनुष्यों की सहायता कर रहे हैं।

मथुरा ज़िले में कार्य।

गत दिसम्बर में बम्बई के वस्त्र-व्यवसायियों की ओर से पशुओं की सहायता करने के लिए एक कमेटी बनाई गई। श्रीयुत रणछोरदास वरजीवनदास ने स्वयं जाकर मथुरा, गोकुल और वृन्दावन में सस्ते चारे की दूकानें खुलवा दीं। प्रयागस्थ गैर-सरकारी सभा की ओर से भी फ़रवरी के अन्त में एक कार्यकर्ता—मि० अमृतलाल वी० ठक्कर—वहाँ भेजे गये। उन्होंने गाँवों में भ्रमण किया और वृद्धों और रोगियों की सहायता की। सभा की ओर से चारे की दूकानें भी खोली गईं। मार्च के आरम्भ में बम्बई के अन्न-व्यवसायियों की ओर से भी कार्यकर्ताओं ने भी आकर गोशालाओं की सहायता की और निर्धन मनुष्यों और बन्दरों को भी भोजन देने का प्रबन्ध किया। मथुरा में अब भी काम चल रहा है।

कलकत्ते में उद्योग।

कलकत्ते में भी कतिपय देशहितैषियों के उद्योग से अकालकष्ट-निवारणार्थ कुछ चन्दा जमा किया गया है। विशेषतः पं० बैजनाथ चौबे की उदारता और परिश्रम प्रशंसनीय है। उन्होंने अपनी मंडली के साथ स्वयं इटावे में जाकर सहायता का प्रबन्ध किया है। गर्मी के दिनों में उन्होंने गाँवों में भ्रमण किया है और गौ आदिक पशुओं के लिए एक बाड़ा भी बनवा दिया है। अब वे ५००० मन भूसे को उचित रीति से बाँटने की व्यवस्था कर रहे हैं।

कालीगुदाम के सेठ ताराचन्द्र जी घनश्याम दास की कोठी के सज्जनों ने भी उदारतापूर्वक सहायता दी है और मौक़े पर अपना कार्यकर्ता भी भेजा है।

कई देशहितैषी स्वयं सेवक भी बुन्देलखंड में काम कर रहे हैं।

हरिद्वार के ऋषिकुल ने भी अपना एक प्रतिनिधि सहायता पहुंचाने के लिए भेजा है।

अकालपीड़ितों के सहायतार्थ "अभ्युदय", "दैनिक भारतमित्र", "प्रताप" और "स्त्रीदर्पण" ने अपने पाठक-पाठिकाओं से विशेष रूप से अपील की है और कुछ चन्दा भी जमा किया है। "अभ्युदय" इस प्रकार गैर-सरकारी सभा को २०००) से अधिक दे चुका है।

सरकारी प्रबन्ध।

सरकार के प्रबन्ध से इन स्थानों में भिन्न भिन्न प्रकार के (सिविल, परीक्षामूलक इमदादी, प्राइवेट आदि) अकाली काम खुल गये हैं:—जालौन, हमीरपुर, बाँदा, इटावा, मुरादा-

Compiled
1999-2000

111173

111173